भट्टाचार्योपाह्वश्रीकृष्णानन्दागमवागीशप्रणीतः

बृहत्तन्त्रसारः

भाषाटीकाविभूषितः

भाषाटीकाकारः
कपिलदेवनारायणः
स्वरूपावस्थितः

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

भट्टाचार्योपाह्वश्रीकृष्णानन्दागमवागीशप्रणीतः

बृहत्तन्त्रसारः

भाषाटीकाविभूषितः

(द्वितीयो भागः ⁕ तृतीयपरिच्छेदतः परिशिष्टात्मकः)

आद्योपान्त परिष्कृत इस ग्रन्थ के संशोधित
मूलपाठ, रेखाचित्र, यन्त्र, चक्र आदि
का सर्वाधिकार प्रकाशक द्वारा
पूर्णरूपेण स्वायत्तीकृत है ।

।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

431

भट्टाचार्योपाह्वश्रीकृष्णानन्दागमवागीशप्रणीतः

बृहत्तन्त्रसारः

भाषाटीकाविभूषितः

(द्वितीयो भागः ∗ तृतीयपरिच्छेदतः परिशिष्टात्मकः)

भाषाटीकाकारः

स्वरूपावस्थित श्रीकपिलदेवनारायण

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : 2335263
ई-मेल : csp_naveen@yahoo.co.in

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संस्करण 2007 ई०
मूल्य : 1500.00 (1-2 भाग सम्पूर्ण)

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002
दूरभाष : 23286537

❖

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली 110007

❖

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

मुद्रक
डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली-

द्वित्राः शब्दाः

प्रथम भाग की भूमिका में आप तन्त्र एवं आगम की परिभाषा से परिचित हो चुके हैं, जिसके अनुसार आपको विदित हो गया है कि तन्त्र एक स्वतन्त्र शास्त्र है, जिसमें पूजा और आचारपद्धति देते हुए इच्छित कार्यों को वश में करने का मार्ग दिखलाया जाता है। अब यह जानना शेष है कि कलियुग में तन्त्रशास्त्रों के अनुसार की जाने वाली साधना किस प्रकार शीघ्र फलदायिनी होती है। श्रीश्वर द्वारा कहा गया है कि इस कराल कलिकाल में आगम मार्ग का आश्रयण किये विना सिद्धि की प्राप्ति असम्भव है—

विना ह्यागममार्गेण नास्ति सिद्धिः कलौ प्रिये।

निर्वीर्या श्रौतजातीया विषहीनोरगा इव।
सत्यादौ सफला आसन् कलौ ते मृतका इव।। (योगिनीतन्त्र)

पाञ्चालिका यथा भित्तौ सर्वेन्द्रियसमन्विताः। अमूरशक्ताः कार्येषु तथान्ये मन्त्रराशयः।।
कलावन्योदिते मार्गे सिद्धिमिच्छति यो नरः। तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः।।
कलौ तन्त्रोदिता मन्त्राः सिद्धास्तूर्णफलप्रदाः। शस्ताः कर्मसु सर्वेषु जपयज्ञक्रियादिषु।।

आशय यह है कि वैदिक मन्त्र विषरहित सर्पों के समान निर्वीर्य हो गये हैं। यद्यपि वे सतयुग, त्रेता और द्वापर में सफल थे; परन्तु वर्त्तमान में वे मृतक के समान हो गये हैं। जैसे दीवाल पर बनी सभी इन्द्रियों से युक्त पुतलियाँ अशक्त होती हैं, वैसे ही तन्त्र के अतिरिक्त सभी मन्त्रसमुदाय कलिकाल में निर्बल हो गये हैं। कलियुग में अन्य शास्त्रों में कथित मन्त्रों से जो सिद्धि की कामना करता है, वह अपनी प्यास बुझाने के लिये गंगा के पास रहकर भी दुर्बुद्धिवश मानों कूआँ खोदने का कार्य करता है। कलियुग में तन्त्रवर्णित मन्त्र ही सिद्ध हैं और शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाले हैं। ये मन्त्र जप, यज्ञ और क्रिया आदि में भी प्रशस्त हैं। मत्स्यपुराण में कहा भी गया है—

विष्णुर्वरिष्ठो देवानां ह्रदानामुदधिर्यथा। नदीनां च यथा गङ्गा पर्वतानां हिमालयः।।
तथा समस्तशास्त्राणां तन्त्रशास्त्रमनुत्तमम्। सर्वकामप्रदं पुण्यं तन्त्रं वै वेदसम्मतम्।।

तन्त्र में पटल, पद्धति, कवच, सहस्रनाम तथा स्तोत्र—इन पाँच अंगों से युक्त पूजाविधान होता है। पटल में जप, होम, मन्त्र का शापोद्धार होता है। पद्धति में शास्त्रीय साधना-विधि एवं प्रातःकृत्य से लेकर जप-समाप्ति तक नित्य और नैमित्तिक पूजन का वर्णन होता है। कवच में देवता के नामों को अपने शरीर के अंगों में न्यस्त करते हुये उन अंगों की रक्षा की प्रार्थना की जाती है। पुरश्चरण से कवच के सिद्ध होने पर झाड़ने-फूंकने का कार्य किया जाता है। भोजपत्र पर लिखकर ताबीज में भरकर इन मन्त्रों को धारण करने से, अभिमन्त्रित तिलक, वलयादि से धारक के रोगादि का निवारण होता है।

सहस्रनाम में देवता के हजार नाम होते हैं। उनका स्वतन्त्र पाठ किया जाता है और ये हवन में प्रयुक्त होते हैं। देवता के गुण-कर्मों के वर्णन करने वाले सिद्ध मन्त्रमय होते हैं। स्तोत्र में आराध्य देव की स्तुति का संग्रह होता है, जिसके द्वारा साधक अपने इच्छित कार्यों की याचना करता है।

दो भागों में विभक्त बृहत्तन्त्रसार ग्रन्थ के तृतीय परिच्छेद से ग्रन्थ-समाप्तिपर्यन्त इस द्वितीय भाग में मन्त्र, पूजा, पद्धति, कवच, सहस्रनाम, शतनाम स्तोत्र आदि विषय गुम्फित हैं। द्वितीय भाग की विषयवस्तु का संक्षिप्त विवेचन निम्नवत् है—

तृतीय परिच्छेद—इसमें कर्णपिशाचिनी एवं मञ्जुघोष के मन्त्र; तारिणी, सरस्वती, कात्यायनी के कल्प; दुर्गा, विशालाक्षी, गौरी, ब्रह्मश्री, राजमुखी, इन्द्र, गरुड़ के मन्त्र; हनुमत्कल्प है; विषहराग्नि मन्त्र एवं वृश्चिकादि के विषहर मन्त्र हैं। श्मशानकाली, महाकाली एवं ज्वालामालिनी के मन्त्र; निगडवन्ध-मोक्षणमन्त्र, चिटिमन्त्र, त्र्यम्बकमन्त्र, अमृतसञ्जीवनी, शुक्रोपासित मृतसञ्जीवनी, आकर्षण, वशीकरण, विद्वेषण, उच्चाटन, रिपुमलरोधन, अभिचार, सुखप्रसव, अदर्शनप्रकार, योगिनीसाधन, योगिनीसाधन के समय-स्थानादि का निर्णय, पूजाधार-निरूपण, यन्त्रसंस्कार एवं उनके प्रयोग भी इसमें निवद्ध हैं। साधक अपनी इच्छानुसार यथाविधि इनकी साधना करके अपने मनोरथ को प्राप्त कर सकते हैं।

चतुर्थ परिच्छेद—इसमें पूजा-दिग्विधान, पूजा में विहित-निषिद्ध, जपविशेष, पञ्चाङ्गशुद्धि, मन्त्रशुद्धि के उपाय, सिद्धिलक्षण, मन्त्रों के दोष एवं दोषशान्ति के उपाय, हवनहेतु कुण्ड-निर्णय, नवकुण्ड-प्रयोग, कुण्ड के विशेष फल और काम्य हवन में कुण्डप्रमाण, घर वनाने के लिए लम्बाई-चौड़ाई के माप-हेतु हस्तनियम, नित्य हवन, संक्षिप्त हवनपद्धति, बृहत् हवन-पद्धति, हवनीय द्रव्यों के परिमाण, षट्कर्म-लक्षण, कालनियम, तिथिनियम, उपयुक्त आसन, भूतोदय और भूतमण्डल का वर्णन है। इसी परिच्छेद में भुवनेश्वरीकवच, अन्नपूर्णास्तोत्र, अन्नपूर्णाकवच, त्रिपुरास्तोत्र, त्रिपुराकवच, दुर्गाशतनामस्तोत्र, दुर्गाकवच, महिषमर्दिनीस्तोत्र, महिषमर्दिनीकवच, लक्ष्मीस्तोत्र, लक्ष्मीकवच, सरस्वतीस्तोत्र, गणेशस्तोत्र, श्रीकृष्णकवच, नृसिंहकवच, शिव-स्तोत्र, शिवकवच, बटुकभैरव स्तोत्र, भैरवी कवच, श्रीविद्यास्तोत्र, श्रीविद्या-कवच, महात्रिपुरसुन्दरीकवच, प्रचण्डचण्डिका-(छिन्नमस्ता)-कवच, श्यामास्तोत्र, श्यामाकवच, तारास्तोत्र, तारा का त्रैलोक्यमोहन कवच, बगलामुखी स्तोत्र और मातंगी कवच भी इसी परिच्छेद में निबद्ध है।

पञ्चम परिच्छेद—इसमें पूजा के उपचारों का वर्णन किया गया है। चौसठ उपचार, अट्ठारह उपचार, षोडश उपचार, दश उपचार और पञ्चोपचार का वर्णन भी यहीं किया गया है। मणिमुक्तादि द्रव्यों के निर्माल्यकाल का कथन भी यहीं है। त्रिपुरसुन्दरी के षोडश उपचार से पूजन-विधान का वर्णन है। रुद्राक्ष-माहात्म्य, रुद्राक्षसंस्कार, प्रकारान्तर से रुद्राक्षसंस्कार में देवता और मन्त्रादि का वर्णन, नित्य-नैमित्तिकादि कार्यों के न करने का प्रायश्चित्त और उसकी परिभाषा का वर्णन भी इसी परिच्छेद में किया गया है। विष्णु की

आराधना के मन्त्र, बारह प्रकार की वैष्णव शुद्धि, विष्णु के प्रति बाईस अपराधों का वर्णन, योग के आसन, मुद्रा, धारणयन्त्र आदि का विवेचन, भुवनेश्वरीयन्त्र, त्रिपुरायन्त्र, श्रीविद्यायन्त्र, गणेशयन्त्र के निर्माण की विधि, श्रीरामयन्त्र, नृसिंहयन्त्र, गोपालयन्त्र, श्रीकृष्णयन्त्र, शिव-यन्त्र, मृत्युञ्जययन्त्र, कालीयन्त्र की निर्माण-विधि, शान्तिकर्म में ताराधारण यन्त्र, यन्त्रलेखन द्रव्य, प्रयोगान्तर, शान्ति एवं जलस्नान का वर्णन भी इसी परिच्छेद में वर्णित है।

नित्य पूजाविधि का संक्षिप्त वर्णन, श्रीविद्या की संक्षिप्त पूजन-विधि, नैमित्तिक पूजाविधि, श्रीविद्या-पूजन एवं मन्त्र-यन्त्र के प्रयोग की विधि का विवेचन भी यहीं किया गया है। भुवनेश्वरी, त्वरिता, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी, गणेश, सूर्य, श्रीराम, श्रीकृष्ण, दधिवामन, हयग्रीव, नृसिंह, वराह, मृत्युञ्जय, दक्षिणामूर्ति, भैरवी, सुन्दरी, छिन्नमस्ता, श्यामा के मन्त्रप्रयोग का विधान इस परिच्छेद में वर्णित हैं। तर्पण-विधि का वर्णन भी यहीं है।

अभिचार-निग्रह के उपाय, वेतालादि की सिद्धि, बालक-संस्कार, शान्तिमन्त्र एवं का विवेचन भी प्रकृत पञ्चम परिच्छेद में ही किया गया है। बकरे की बलि, कुलाचार, शिवा-बलि, कुलमार्ग की गोपनीयता, प्रातःकृत्य, दूतीयाग, यजनप्रकार, मांसादि-शोधन, शक्ति-शोधन, वीर साधकों के पुरश्चरण, साधकों के मन्त्रस्नान, सन्ध्या, आन्तर पूजा एवं हवन का विधान, पञ्चमकार की आन्तरिक पूजा, कुमारीपूजा, पूजाक्रम, योगप्रक्रिया और उसके प्रकारान्तर का वर्णन भी इस अन्तिम पञ्चम परिच्छेद में ही किया गया है।

परिशिष्ट—इसमें देवताविशेष के मन्त्र-स्तोत्रादि निबद्ध हैं। गंगामन्त्र, कार्तिकेयमन्त्र, षष्ठीदेवी का मन्त्र, स्वाहा का मन्त्र, कर्मों में दक्षिणा के मन्त्र, क्रोधराज भैरव के मन्त्रों का वर्णन परिशिष्ट भाग में किया गया है। गंगाकवच, कार्तिकेयाक्ष कवच, वंशलाभनामक कवच, षष्ठीस्तोत्र, विषहरी मनसा देवी-स्तोत्र, स्वाहा का स्तोत्र, दक्षिणास्तोत्र, बलरामस्तोत्र, महाकालीस्तोत्र, नायिका-कवच, नायिकास्तोत्र, गुरुकवच, योषिद्गुरु का ध्यान, स्त्रीगुरुकवच, गुरुस्तोत्र, श्रीहनूमत्स्तोत्र, मातंगीस्तोत्र, धूमावतीस्तोत्र का उट्टङ्कन भी परिशिष्ट भाग में ही किया गया है। कलशस्थापन, कवचसंस्कार, मन्त्रों के श्रोत्रादि का निरूपण, नेत्रनिर्णय, स्वरशक्तियाँ और मन्त्रांग-संकेत भी ग्रन्थ के परिशिष्ट भाग में ही समाहित हैं।

इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि जिन मन्त्रों को दुरुपयोग से बचाने के लिये अन्य ग्रन्थों में कूट सांकेतिक शब्दों में निबद्ध किया गया है, उनका स्पष्ट एवं सरल शब्दों में विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है; फलस्वरूप आवश्यकता के अनुसार साधकगण इसका प्रयोग सरलता से कर सकते हैं। आशा है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी की इस सेवा से राष्ट्र के साधक और जनसामान्य लाभान्वित हो सकेंगे एवं चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन के अधिष्ठाता श्री नवनीत दास जी गुप्त इस महनीय ग्रन्थ को सर्वजन-सामान्य-हेतु सुलभ कराकर अलौकिक यश के भाजन बनेंगे।

वसन्तपञ्चमी-२०६३

स्वरूपावस्थित कपिलदेवनारायण

विषयानुक्रमणी

तृतीय: परिच्छेद:

विषया:	पृष्ठाङ्का:
कर्णपिशाचीमन्त्र:	७०७
मञ्जुघोषमन्त्रा:	७०९
तारिणीकल्प:	७२३
सारस्वतकल्प:	७३०
कात्यायनीकल्प:	७३६
दुर्गामन्त्रा:	७४१
विशालाक्षीमन्त्रा:	७४५
गौरीमन्त्रा:	७४८
ब्रह्मश्रीमन्त्र:	७५०
राजमुखीमन्त्र:	७५१
इन्द्रमन्त्र:	७५१
गरुडमन्त्र:	७५३
गरुडस्तव:	७५७
हनूमत्कल्प:	७५७
वीरसाधनम्	७६१
विषहराग्निमन्त्र:	७६२
वृश्चिकादिविषहरमन्त्र:	७६३
श्मशानभैरवीमन्त्र:	७६४
महाकालीमन्त्र:	७६५
महाकालीमन्त्रप्रयोग:	७६५
ज्वालामालिनीमन्त्र:	७६६
निगडबन्धनमोक्षणम्	७६८
चिटिमन्त्र:	७६८
त्र्यम्बकमन्त्र:	७६९
मृतसञ्जीवनीमन्त्र:	७७४
आकर्षणम्	७७५
वशीकरणम्	७७७
विद्वेषणम्	७७७
उच्चाटनम्	७८०
रिपुमलरोधनम्	७८१
अभिचार:	७८२
सुखप्रसवमन्त्र:	७८२
अदर्शनप्रकार:	७८३
योगिनीसाधनम्	७८३
सुरसुन्दरी	७८४
मनोहरा	७८६
कनकावती	७८८
कामेश्वरी	७८९
रतिसुन्दरी	७९०
पद्मिनी	७९१
नटिनी	७९२
मधुमती	७९४
योगिनीसाधनस्य कालपात्र-स्थानादिनिर्णय:	७९६
पूजाधारनिरूपणम्	७९६
यन्त्रसंस्कार:	७९८
यन्त्रसंस्कारप्रयोग:	८००

चतुर्थ: परिच्छेद:

विषया:	पृष्ठाङ्का:
पूजायां दिग्विधानम्	८०३
पूजायां विहितनिषिद्धानि	८०३
जपविशेष:	८१०
पञ्चाङ्गशुद्धि:	८११

विषयाः पृष्ठाङ्काः
मन्त्रसिद्धेरुपायः ८१२
सिद्धिलक्षणम् ८१४
मन्त्राणां दोषाः ८१६
मन्त्राणां दोषशान्तिः ८२२
होमार्थं कुण्डनियमः ८२३
स्रुक्स्रुवाप्रमाणम् ८३१
कुण्डानां विशेषफलानि ८३३
काम्यहोमार्थं कुण्डनिर्णयः ८३३
गृहादिकरणे हस्तनियमः ८३४
नागशिर-आदि-निर्णयः ८३७
नवकुण्डपक्षे योनिनियमः ८४१
नित्यहोमः ८४३
संक्षेपहोमप्रयोगः ८४४
बृहद्धोमपद्धतिः ८४९
होमद्रव्याणां परिमाणम् ८६३
षट्कर्मलक्षणम् ८६६
तिथिनियमः ८६७
आसनादिकथनम् ८६९
भूतानामुदयः ८७३
भूतानां मण्डलानि ८७४

स्तवकवचानि

भुवनेश्वरीस्तोत्रम् ८७५
भुवनेश्वरीकवचम् ८८१
अन्नपूर्णास्तोत्रम् ८८५
अन्नपूर्णाकवचम् ८८७
त्रिपुटास्तोत्रम् ८९१
त्रिपुटाकवचम् ८९४
दुर्गाशतनामस्तोत्रम् ८९८
श्रीदुर्गाकवचम् ९००
महिषमर्दिनीस्तोत्रम् ९०२
महिषमर्दिनीकवचम् ९०६
लक्ष्मीस्तोत्रम् ९१०

विषयाः पृष्ठाङ्काः
लक्ष्मीकवचम् ९११
सरस्वतीस्तोत्रम् ९१५
गणेशस्तोत्रम् ९१९
हरिद्रागणेशकवचम् ९२२
श्रीसूर्यकवचम् ९२४
श्रीविष्णुस्तवः ९२७
श्रीरामस्तोत्रम् ९२९
रामाष्टशतकं नाम स्तोत्रम् ९३१
श्रीरामकवचम् ९३७
श्रीकृष्णस्तोत्रम् ९४३
गोपालस्तोत्रम् ९४६
श्रीकृष्णकवचम् ९४८
नृसिंहकवचम् ९५४
शिवस्तोत्रम् ९५७
शिवकवचम् ९५९
वटुकभैरवस्तोत्रम् ९६२
भैरवीस्तोत्रम् ९७०
भैरवीकवचम् ९७४
श्रीविद्यास्तोत्रम् ९७८
किङ्किणीस्तोत्रम् ९८१
श्रीविद्याकवचम् ९८३
महात्रिपुरसुन्दरीकवचम् ९८५
प्रचण्डचण्डिकास्तोत्रम् ९८८
प्रचण्डचण्डिकाकवचम् ९९१
श्यामास्तोत्रम् ९९५
श्यामाकवचम् १००१
तारास्तोत्रम् १००५
ताराकवचम् १००८
त्रैलोक्यमोहनंनाम ताराकवचम् १०१५
बगलामुखीस्तोत्रम् १०२०
मातङ्गीकवचम् १०२४

विषयाः **पृष्ठाङ्काः** **विषयाः** **पृष्ठाङ्काः**

पञ्चमः परिच्छेदः

उपचारादिनिरूपणम् १०२८
चतुःषष्ट्युपचाराः १०२८
अष्टादशोपचाराः १०३०
षोडशोपचाराः १०३०
दशोपचाराः १०३०
पञ्चोपचाराः १०३०
मणिमुक्ताद्रव्याणां निर्माल्यकालकथनम् १०३०
त्रिपुरसुन्दर्याः षोडशोपचारमन्त्राः १०३१
रुद्राक्षमाहात्म्यम् १०३६
रुद्राक्षसंस्कारः १०३७
प्रकारान्तर-रुद्राक्ष-संस्कारे देवतामन्त्रादिकथनम् १०३९
नित्य-नैमित्तिकादिकर्मभङ्गे प्रायश्चित्तम् १०४१
परिभाषाः १०४२
विष्ण्वाराधनमन्त्राः १०४४
वैष्णवानां द्वादशशुद्धयः १०४८
विष्णोर्द्वात्रिंशदपराधाः १०४९
विष्णुचरणोदकधारणमन्त्रः १०५१
योगाङ्गासनानि १०५३
मुद्राप्रकरणम् १०५४
भुवनेश्वरीयन्त्रम् १०७२
त्वरितायन्त्रम् १०७५
नवदुर्गायन्त्रम् १०७६
लक्ष्मीयन्त्रम् १०७७
त्रिपुरभैरवीयन्त्रम् १०७९
त्रिपुरायन्त्रम् १०८०
श्रीविद्यायन्त्रम् १०८१
गणेशयन्त्रम् १०८२
श्रीरामयन्त्रम् १०८४
नृसिंहयन्त्रम् १०८५
गोपालयन्त्रम् १०८६
श्रीकृष्णयन्त्रम् १०८८
शिवयन्त्रम् १०९०
मृत्युञ्जययन्त्रम् १०९१
कालीयन्त्रम् १०९२
शान्तिकादौ ताराधारणयन्त्रम् १०९४
यन्त्रलेखनद्रव्यम् १०९६
प्रयोगानन्तरं शान्त्युदकस्नानम् १०९६
संक्षेपतो नित्यपूजाविधिः १०९८
श्रीविद्यायाः संक्षेप-पूजाविधिः १०९८
नैमित्तिकविधिः ११००
श्रीविद्यापूजनम् ११०५
प्रयोगविधिः ११०९
भुवनेश्वरीप्रयोगः ११०९
त्वरिताप्रयोगः १११०
दुर्गाप्रयोगः ११११
सरस्वतीप्रयोगः १११२
लक्ष्मीप्रयोग १११२
गणेशप्रयोगः १११३
सूर्यप्रयोगः १११४
श्रीरामप्रयोगः १११६
श्रीकृष्णप्रयोगः १११६
दधिवामनप्रयोगः ११२३
हयग्रीवप्रयोगः ११२४
नृसिंहप्रयोगः ११२४
वराहप्रयोगः ११२६
मृत्युञ्जयप्रयोगः ११२७
दक्षिणामूर्तिप्रयोगः ११२९
भैरवीप्रयोगः ११२९

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
सुन्दरीप्रयोगः	११३२
छिन्नमस्ताप्रयोगः	११३८
श्यामाप्रयोगः	११३९
तर्पणम्	११४१
निग्रहाद्युपायः	११४३
वेतालादिसिद्धिः	११४५
बालकसंस्कारः	११४८
शान्तिमन्त्रः	११४९
छागादिबलिः	११५०
कुलाचारनिरूपणम्	११५४
शिवाबलिः	११६३
कुलवर्त्मनो गोपनीयता	११६५
प्रातःकृत्यम्	११६६
दूतीयागः	११६९

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
यजनप्रकारः	११७२
मांसादिशोधनम्	११७८
शक्तिशोधनम्	११७९
नैवेद्यमहिमा	११८९
वीराणां पुरश्चरणम्	११८९
मन्त्रिणां मन्त्रस्नानम्	११९६
सन्ध्या	११९६
आन्तरपूजा	११९७
होमः	११९८
अन्तःपञ्चमकारयजनप्रकारः	१२००
कुमारीपूजा	१२०१
पूजाक्रमः	१२०२
योगप्रक्रिया	१२०५
प्रकारान्तरेण योगप्रक्रिया	१२१३
ग्रन्थप्रशंसा	१२१९

परिशिष्टम्

गङ्गामन्त्रः	१२२१
कार्तिकेयमन्त्रः	१२२२
षष्ठीमन्त्रः	१२२३
विषहरी-जगद्गौरी-मनसामन्त्रः	१२२४
स्वाहामन्त्रः	१२२४
कर्मणां दक्षिणामन्त्रः	१२२५
क्रोधराजमन्त्रः	१२२५
गङ्गाकवचम्	१२२६
कार्तिकेयाक्षयकवचम्	१२२७
वंशलाभाख्यकवचम्	१२२८
षष्ठीस्तोत्रम्	१२३०
विषहरीमनसास्तोत्रम्	१२३२
स्वाहास्तोत्रम्	१२३३
दक्षिणास्तोत्रम्	१२३३
बलरामस्तोत्रम्	१२३५
महाकालीस्तोत्रम्	१२३६
नायिकाकवचम्	१२४२
नायिकास्तोत्रम्	१२४५
गुरुकवचम्	१२४८
योषिद्गुरुध्यानम्	१२५०
स्त्रीगुरुकवचम्	१२५०
गुरुस्तोत्रम्	१२५३
श्रीहनूमत्स्तोत्रम्	१२५५
मातङ्गीस्तवः	१२५७
धूमावतीस्तोत्रम्	१२५९
घटस्थापनम्	१२६२
कवचसंस्कारः	१२६३
मन्त्राणां श्रोत्रादिनिरूपणम्	१२६४
नेत्रनिर्णयः	१२६७
स्वरशक्तयः	१२६९
मन्त्राङ्गसङ्केतः	१२७१

यन्त्राणि	पृष्ठाङ्काः
अष्टास्रकुण्ड	८३१
घटार्गलयन्त्र	१०७४
भुवनेश्वरीयन्त्र	१०७४
त्वरितायन्त्र	१०७५
नवदुर्गायन्त्र	१०७७
लक्ष्मीयन्त्र	१०७८
त्रिपुरभैरवीयन्त्र	१०७९
त्रिपुरायन्त्र	१०८०
श्रीविद्याधारणयन्त्र	१०८२
गणेशयन्त्र	१०८३
श्रीरामधारणयन्त्र	१०८५
नृसिंहधारणयन्त्र	१०८६
गोपालधारणयन्त्र	१०८८
श्रीकृष्णधारणयन्त्र	१०८९
शिवधारणयन्त्र	१०९१
मृत्युञ्जयधारणयन्त्र	१०९२
कालीधारणयन्त्र	१०९३
ताराधारणयन्त्र	१०९५

श्रीकृष्णानन्दवागीशभट्टाचार्यप्रणीतः

बृहत्तन्त्रसारः

(तृतीयपरिच्छेदतः परिशिष्टात्मको द्वितीयो भागः)

बृ०त०-४५

पाठकों के लिये सर्वतोभावेन ध्यातव्य है कि सुयोग्य गुरु की अनुज्ञा एवं निर्देश प्राप्त किये विना मात्र स्वविवेक से ग्रन्थ का अध्ययन कर किसी भी मन्त्र का प्रयोगात्मक अनुष्ठान न करें। स्वयम्भू प्रयोगों से होने वाले किसी भी दुष्परिणाम का उत्तरदायित्व स्वयं अनुष्ठातः का ही होगा, इसके लिये लेखक अथवा प्रकाशक किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं होगा।

।। श्रीः ।।

श्रीकृष्णानन्दवागीशभट्टाचार्यप्रणीतः

बृहत्तन्त्रसारः

भाषाटीकासमन्वितः

तृतीयः परिच्छेदः

कर्णपिशाचीमन्त्रः

तदुक्तं तन्त्रान्तरे—

कर्णास्येक्षणलोहितोरकगतोऽनन्तश्चिकारोवदा-
तीतानागतशब्दयुक्त भुवनेशीवह्निजायान्विता ।
ताराद्यो मनुरेष लक्षजपतो व्यासेन संसेवितः
सार्वज्ञं लभतेऽचिरेण नियतं पैशाचिकी भक्तितः ।।

मन्त्रान्तरम्—

कहयुग्मं कालिके च गृह्ययुग्मं तथैव च ।
पिण्डं पिशाचि स्वाहेति नृपार्णः कथितः प्रिये ।।

ध्यानं यथा—

कृष्णां रक्तविलोचनां त्रिनयनां खर्वाङ्गि लम्बोदरीं
बन्धूकारुणजिह्विकां वरकराभीयुक्करामुन्मुखीम् ।
धूम्रार्चिर्जटिलां कपालविलसत्पाणिद्वयां चञ्चलां
सर्वज्ञां शवहृत्कृताधिवसतीं पैशाचिकीं तां नुमः ।।

अथ पूजा—

निशायामर्द्धरात्रौ च हृदि न्यस्य पिशाचिकीम् ।
दग्धमीनं बलिं दत्त्वा रात्रौ सम्पूज्य सञ्जपेत् ।।

ॐ कर्णपिशाचि दग्धमीनबलिं गृह्ण गृह्ण मम सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहेति दग्धमीनबलिं दद्यात्।

रक्तचन्दनबन्धूकजवापुष्पादिकञ्च यत् ।
अमृतं कुरु देवेशि स्वाहेति प्रोक्षयेज्जलैः ।।

पूर्वाह्णे किञ्चिज्जप्त्वा मध्याह्ने एकभक्तं निरामिषं भुक्त्वा रात्रावपि तत्संख्यं जपेत्—

अन्यत्किञ्चिन्न भोक्तव्यं ताम्बूलकादिकं विना ।

जपस्य दशांशं तर्पणम्। ॐ कर्णपिशाचीं तर्पयामि ह्रीं स्वाहा। एवं क्रमेण लक्षमेकं पुरश्चरणं कृत्वा दशांशं होमयेत्।

तदभावे दशांशं तर्पणं कृत्वा वरं प्रार्थयेत्। मूलं रक्तचन्दनेन लिखित्वा यन्त्रोपरि इष्टदेवतां पूजयेत्।

अथ सिद्धिलक्षणमुच्यते—गगने हूंकारादिश्रवणदीर्घाग्निशिखारूपसन् दर्शनात्सिद्धिर्भविष्यतीति ज्ञात्वा तथाविधमाचरेत्।

मन्त्रान्तरम्—प्रणवं माया कर्णपिशचि मे कर्णे कथय हूँ फट् स्वाहेति। प्रदीपतैलं पादयोर्दत्त्वा रात्रौ लक्षं जपेत्। ततः सर्वज्ञो भवति। नास्य पूजाध्यानम्।

तथा—तारं कामबीजं जयादेवि स्वाहा। अस्यापि ऋष्यादिन्यासादेरभावः। पूर्वं लक्षं जप्त्वा गृहगोधिकां निपात्य तदुपरि जयादेवीं यथाशक्ति सम्पूज्य तावज्जपेद्यावत्सा जीवति, ततः सिध्यति। सिद्धिस्तु मानसादिप्रश्ने कृते सा आयाति, ततस्तस्याः पृष्ठे सर्वं भूतभविष्यादिकं पश्यति।

कर्णपिशाचिनी-मन्त्र—ॐ कर्णपिशाचि वदातीतानागतं ह्रीं स्वाहा—इस मन्त्र का जप करने से महर्षि वेदव्यास अल्प काल में ही सर्वज्ञ हो गये थे।

कह कह कालिके गृह्ण गृह्ण पिण्ड पिशाचि स्वाहा। यह कर्णपिशाची का दूसरा मन्त्र है। इसका ध्यान इस प्रकार का है—

कृष्णां रक्तविलोचनां त्रिनयनां खर्वाञ्च लम्बोदरीं
बन्धूकारुणजिह्विकां वरकराभीयुक्करामुन्मुखीम्।
धूम्रार्चिर्जटिलां कपालविलसत्पाणिद्वयां चञ्चलां
सर्वज्ञां शवहृत्कृताधिवसतीं पैशाचिकीं तां नुमः।।

पिशाची देवी का शरीर कृष्ण वर्ण का है। लाल रंग के तीन नेत्र हैं। कद नाटा है। उदर लम्बा है। बन्धूकपुष्प के समान लाल जीभ है। चार हाथ हैं। दो हाथों में से एक में वरमुद्रा और दूसरे में अभयमुद्रा है। अन्य दो हाथों में नरकपाल हैं। उनके शरीर से

धूम्रवर्ण की ज्वाला निकलती रहती है। वे ऊर्ध्वमुखी हैं। जटाओं से युक्त हैं। स्वभाव चञ्चल है। वे सब विषयों की ज्ञाता हैं। शव के हृदय पर निवास करती हैं। इस प्रकार की पैशाचिकी देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

पूजाविधि यह है—आधी रात में पिशाची देवी का हृदय में ध्यान करे। दग्ध-मत्स्य की बलि देकर पूजा करे।

बलिमन्त्र है—ॐ कर्णपिशाचि! दग्धमीनबलिं गृह्ण गृह्ण मम सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।

रक्तचन्दन, बन्धूकपुष्प आदि पूजा की सामग्री का जल से प्रोक्षण इस मन्त्र से करे—ॐ अमृतं कुरु देवेशि ! स्वाहा।

दिन के पूर्वाह्न में कुछ जप कर मध्याह्न काल में निरामिष एकभक्त भोजन करके रात के समय भी पूर्ववत् जप करे। ताम्बूलादि के अतिरिक्त कुछ न खाए। प्रतिदिन जितना जप करे, उसका दशांश निम्न मन्त्र से तर्पण करे—ॐ कर्णपिशाचीं तर्पयामि ह्रीं स्वाहा।

एक लाख जप करके दशांश हवन करने से इसका पुरश्चरण होता है। हवन करने में असमर्थ हो तो दशांश तर्पण करके अभीष्ट वर देने की प्रार्थना करे। तब रक्त चन्दन से मूल मन्त्र लिखकर यन्त्र के ऊपर इष्टदेवता की पूजा करे।

मन्त्र सिद्ध होने के लक्षण ये हैं—पूर्वोक्त प्रकार से पुरश्चरण करने पर यदि आकाश में हूंकार की ध्वनि सुनाई पड़े और दीर्घाकार अग्निशिखा दिखाई पड़े तो समझे कि मन्त्र सिद्ध हो गया। इसके बाद तदनुसार कार्य करे।

ॐ कर्णपिशाचि मे कर्णे कथय हुं फट् स्वाहा—यह तीसरा मन्त्र है। रात्रिकाल में दीपक का तेल पैरों में मलकर उक्त मन्त्र का जप एक लाख करे। इससे मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इस मन्त्र की साधना में पूजा और ध्यानादि की आवश्यकता नहीं है।

ॐ क्लीं जया देवि स्वाहा—यह चौथा मन्त्र है। इस मन्त्र में भी ऋष्यादि न्यास नहीं हैं। पहले एक लाख जप करे। तब एक गृहगोधिका (गोह) को मारकर उसके ऊपर यथाशक्ति जया देवी की पूजा करे। जब तक वह गोधिका पुन: जीवित न हो जाय तब तक जप करे। उस गोधिका के जीवित हो जाने पर समझे कि मन्त्र सिद्ध हो गया।

इस मन्त्र के सिद्ध होने पर साधक अपने मन में जो भी प्रश्न करेगा, उसका उत्तर देवी तुरन्त आकर देगी। साधक उस गृहगोधिका की पीठ पर भूत-भविष्य की सभी बातें अंकित देखेगा।

मञ्जुघोषमन्त्रा:

जाड्यौघतिमिरध्वंसी संसारार्णवतारक: ।
श्रीमञ्जुघोषो जयतां साधकानां सुखावह: ।।

तत्र आगमोत्तरे—

मातृकादिं समुद्धृत्य वह्निबीजं समुद्धरेत् ।
वामांशं कूर्मसंज्ञञ्च ततो मेषे समुद्धरेत् ।।
मीनेशञ्च ततः कुर्याद्वामनेत्रेन्दुसंयुतम् ।
षडक्षरो मनुः प्रोक्तो मञ्जुघोषस्य शम्भुना ।।

मातृकादिरकारः वामांशोऽन्तस्थश्चतुर्थः कूर्मश्चकारः मेषेशो लकारः मीनेशो धकारः।

ईयन्तु दीपनी प्रोक्ता मूलमन्त्रस्तु कथ्यते ।
अंकुशं शक्ति बीजञ्च रमाबीजं ततः प्रिये ।
बीजत्रयात्मको मन्त्रो जाड्यौघध्वान्तनाशनः ।।
शक्तिबीजं रमाबीजं कामबीजं ततः प्रिये ।
विद्या श्रुतिधरी प्रोक्ता एषा वर्णत्रयात्मिका ।।
हकारो वह्निमारूढो वामनेत्रेन्दुभूषितः ।
प्रोक्ता सर्वज्ञविद्येयमेककर्णात्मिका प्रिये ।।
सिद्धः साध्यः सुसिद्धो वा साधकस्य रिपूंश्च वा ।
तदा मन्त्रो भवेद्भक्त्या शुभदो बुद्धिदो भवेत् ।।
मध्याह्ने सलिले चैव भोजने भाजने तथा ।
गोमये तु बहिर्देशे मैथुने रमणीकुचे ।।
गोष्ठे च निशि गोमुण्डे यन्त्रं डमरुसन्निभम् ।
विलिख्य मन्त्रवर्णांश्च त्रिंश ऊर्ध्वे अधस्तथा ।
लिखेच्चन्दनलेखन्या प्रयत्नात् साधकोत्तमः ।।
उच्चाटने लिखेद्यन्त्रं (मन्त्रं) गोचर्मणि विशेषतः ।
सलिले विजयी नित्यं भोजने च महेश्वरः ।।
गोमये वावदूकः स्याद् गोष्ठे सर्वज्ञतां व्रजेत् ।
कुचे श्रुतिधरो नित्यं गोमुण्डे च महाकविः ।।
गोमूत्रं बदरीमूलं चन्दनं पांशुमेव च ।
एकीकृत्याष्टधा जप्त्वा तिलकं धारयेत्सदा ।।
नमस्कृत्य वरं श्रेष्ठं प्रार्थयेद्भक्तितत्परः ।
वरं प्राप्य च तस्माद्वै विहरेत्तु यथासुखम् ।।
नान्यदेवार्च्चनं स्नानं प्रणवोच्चारणं न तु ।
वस्त्राञ्चलेन दन्तानां शोधनं लवणेन वा ।।

रात्रिवासो न मुञ्चेत न शुचिः स्यात्कदाचन ।
एवं कृत्वा प्रयत्नेन ज्ञात्वा गुरुमुखात् सुधीः ॥
मासैकेन कवीन्द्रः स्याद्द्विमासेनैव ईश्वरः ।
त्रिभिर्मासैर्भवेन्मर्त्यः सर्वशास्त्रविशारदः ॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी विपुलं धनम् ।
आयुरारोग्यकामस्तु सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥

मञ्जूघोष-मन्त्र—साधक की जड़ता के विनाशक, संसारसागर से पार उतारने वाले सुखदायक मञ्जुघोष की जय हो।

आगमोत्तर के अनुसार 'अ र व च ल धीं' छः अक्षरों का मन्त्र है। यही मञ्जुघोष का दीपनी मन्त्र है। क्रों ह्रीं श्रीं—यह त्र्यक्षर मन्त्र जड़ता का नाशक है। ह्रीं श्रीं क्लीं—इस त्र्यक्षर मन्त्र से उपासना करने से साधक श्रुतिधर होता है। 'ह्रीं' यह एकाक्षर मन्त्र सर्वज्ञतादायक है। इसमें सिद्ध, साध्य, सुसाध्य, रिपु का विचार नहीं है। भक्ति से मन्त्र शुभ और बुद्धिदायक होता है।

दोपहर दिन में जल में, भोजन के अन्त में भोजनपात्र में, गाँव के बाहर गोबर पर, मैथुनकाल में रमणी के स्तन पर और रात में गोशाला में गोमुंड पर डमरू के समान यन्त्र लिखकर उसके ऊपर और नीचे के भाग में तीन पंक्तियों में मूल मन्त्र को चन्दन की लेखनी से लिखे।

उच्चाटन में गोचर्म पर मन्त्र लिखना चाहिये। जल में रहकर मन्त्र जपने से साधक विजयी होता है। भोजन करते समय जपने से धनवान होता है। गोबर पर यन्त्र लिखकर मन्त्र जपने से वक्तृत्वशक्ति मिलती है। गोशाला में उपासना करने से सर्वज्ञता होती है। युवती के स्तन पर यन्त्र लिखकर जपने से विद्वत्ता प्राप्त होती है। गोमुण्ड पर यन्त्र लिखकर पूजा एवं जप करने से कवित्वशक्ति प्राप्त होती है।

इस देवता की उपासना में गोमूत्र, वदरीमूल, चन्दन और धूलि को एकत्र करके इनके ऊपर मूल मन्त्र का आठ बार जप कर इनसे अपने माथे पर तिलक लगाए। देवता को प्रणाम करके भक्तिपूर्वक वाञ्छित वर की प्रार्थना करे। इस प्रकार देवता से वर पाकर इच्छानुकूल विहार करे।

मञ्जुघोष की उपासना में अन्य देवार्चन, स्नान और ॐ का उच्चारण नहीं करना चाहिये। वस्त्र से या नमक से दाँतों को साफ करे। रात्रि के वस्त्रों को न बदले। सदा अपवित्र रहे। गुरुमुख से इस मन्त्र को लेकर एक महीने तक उपासना करे। इससे साधक महाकवि हो जाता है। दो महीने में अति धनी और तीन महीने में सब शास्त्रों का ज्ञाता होता है।

इस मन्त्र की उपासना से धनार्थी को धन, पुत्रार्थी को पुत्र, आयुष्कामी को दीर्घ आयु और आरोग्यकामी को आरोग्य प्राप्त होता है तथा सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं।

मञ्जुघोष यन्त्र

अर्धचन्द्र

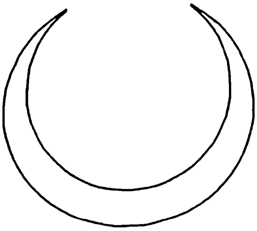

षट्कोण

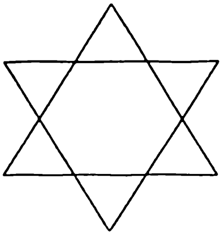

डमरू

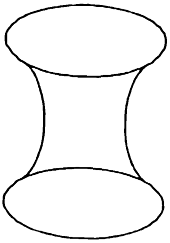

ततः कराङ्गन्यासौ—क्षां शां अंगुष्ठाभ्यां नमः। एवं हृदयादिषु। तथा च तन्त्रे—

संवर्त्तको वकेशश्च द्वौ वर्णौ कथितौ प्रिये।
षड्दीर्घभाग्भ्यामेताभ्यां षडङ्गानि समाचरेत् ॥

संवर्त्तकः क्षकारः। वकेशः शकारः। ध्यानम्—

शशधरमित्र शुभ्रं खड्गपुस्ताङ्गपाणिं
सुरुचिरमतिशान्तं पञ्चचूडं कुमारम्।
पृथुतरवरमुख्यं पद्मपत्रायताक्षं
कुमतिदहनदक्षं मञ्जुघोषं नमामि ॥

पीठपूजां ततः कुर्यादाधाराद्यादिशक्तितः।
भूतप्रेतादिभिः कुर्यात् पीठासनमनन्तरम् ॥
ज्ञानदात्रे नमः पाद्यं बुद्धिकर्त्रे तथाचमम्।
जाड्यनाशाय गन्धः स्यादर्घ्यं यक्षाधिपाय वै ॥
सर्वसिद्धिं प्रदायेति पुष्पं दद्याद्विचक्षणः।
कुन्दपुष्पं समादाय भैरवान् पूजयेत्ततः ॥
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोध-उन्मत्तसंज्ञकः।
कपाली भीषणश्चैव संहारश्चाष्टमः स्मृतः ॥
ततो धूपादिकं दत्त्वा प्रसूनानि विसर्जयेत्।
तैः पुष्पैः पूजयेदष्टौ यक्षिणीश्च विशेषतः ॥
सुरादिसुन्दरी चैव मनोहारिण्यनन्तरम्।

कनकावती तथा कामेश्वरी च रतिवर्यथ ।।
पद्मिनी च नटी चैव अनुरागिण्यनन्तरम् ।
पूजा एतास्तु योगिन्यो हृल्लेखाबीजपूर्विकाः ।।
एवं सम्पूज्य देवेशं लक्षषट्कं जपेन्मनुम् ।
घृताक्तकुन्दपुष्पैश्च एकादशशतानि च ।।
जुहुयादेधिते वह्नौ कान्तारे पितृवेश्मनि ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री महायोगीश्वरो भवेत् ।।

इस मन्त्र की न्यासविधि निम्न प्रकार की है—

मन्त्र	करन्यास	अंगन्यास
क्षां शां	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
क्षीं शीं	तर्जनीभ्यां स्वाहा	शिरसे स्वाहा
क्षूं शूं	मध्यमाभ्यां वषट्	शिखायै वषट्
क्षैं शैं	अनामिकाभ्यां हुं	कवचाय हुं
क्षौं शौं	कनिष्ठाभ्यां वौषट्	नेत्रत्रयाय वौषट्
क्षः शः	करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्	अस्त्राय फट्

तन्त्र में लिखा है कि संवर्तक क्ष और वकेश श को छः दीर्घ स्वरों से युक्त करके करांगन्यास करना चाहिये। इसके बाद ध्यान करे। ध्यानश्लोक इस प्रकार है—

शशधरमिव शुभ्रं खड्गपुस्ताङ्कपाणिं सुरुचिरमतिशान्तं पञ्चचूडं कुमारम्।
पृथुतरवरमुख्यं पद्मपत्रायताक्षं कुमतिदहनदक्षं मञ्जुघोषं नमामि।।

मञ्जुघोष का वर्ण चन्द्रमा के समान उज्ज्वल है। कौमार्य अवस्था है। शान्त स्वरूप है। एक हाथ में खड्ग और एक हाथ में पुस्तक है। शरीर अत्यन्त सुन्दर है। मस्तक पर पाँच जटायें हैं। शरीर स्थूल है। कमलपत्र के समान विस्तृत दोनों नेत्र हैं। साधकों की कुबुद्धि का विनाश करते हैं। ऐसे मञ्जुघोष को मैं प्रणाम करता हूँ।

ध्यान के बाद आधारशक्तये नमः इत्यादि से पीठपूजा करे। हसौः भूतप्रेतासनाय नमः से पीठ का पूजन करे। पुनः ध्यान करके यथाशक्ति पाद्यादि उपचारों से पूजा करे। जैसे— मूलं एतत् पाद्यं ज्ञानदात्रे नमः। मूलं एतत् आचमनीयं बुद्धिकर्त्रे नमः। मूलं एष गन्धो जाड्यनाशाय नमः। मूलं इदमर्घ्यं यक्षाधिपाय नमः। मूलं एतत् पुष्पं सर्वसिद्धिप्रदाय नमः।

इस प्रकार मंजुघोष की पूजा करके कुन्दपुष्पों से अष्टभैरवों की पूजा करे—१. ॐ असितांगभैरवाय नमः। २. ॐ रुरुभैरवाय नमः। ३. ॐ चण्डभैरवाय नमः। ४. ॐ क्रोधभैरवाय नमः। ५. ॐ उन्मत्तभैरवाय नमः। ६. ॐ कपालिभैरवाय नमः। ७. ॐ भीषणभैरवाय नमः। ८. ॐ संहारभैरवाय नमः।

धूपादि देकर पुष्पों का विसर्जन करे। इसी प्रकार कुन्दपुष्पों से अष्टयक्षिणियों का पूजन करे—१. ह्रीं सुरसुन्दर्यै नम:। २. ह्रीं मनोहारिण्यै नम:। ३. ह्रीं कनकावत्यै नम:। ४. ह्रीं कामेश्वर्यै नम:। ५. ह्रीं रतिकर्यै नम:। ६. ह्रीं पद्मिन्यै नम:। ७. ह्रीं नट्यै नम:। ८. ह्रीं अनुरागिण्यै नम:।

इसके बाद मन्त्र का एक लाख जप करे। घृताक्त कुन्दपुष्पों से श्मशान में या वन में ग्यारह सौ हवन करे। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होने पर साधक महायोगी होती है।

कुक्कुटेश्वरतन्त्रे—

मेरुपृष्ठे सुखासीनं देवदेवं जगद्गुरुम्।
शङ्करं परिपप्रच्छ पार्वती परमेश्वरम्॥

श्रीपार्वत्युवाच—

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रागमादिषु।
वाञ्छितार्थप्रदं लोके मञ्जुघोषं ब्रवीहि मे॥
विशेषतोऽपि जप्त्वा हि कवित्वपदवीं नृणाम्।
सर्वकामप्रदं चैव मन:सिद्धिप्रदन्तथा।
भक्तानां कामदं मन्त्रं कल्पवृक्षमिवापरम्॥

श्रीशंकर उवाच—

श्रृणु देवी महामन्त्रं साधकानां सुखावहम्।
यज्ज्ञात्वा जडधी: प्रायो वाचस्पतिसमो भवेत्॥
अङ्गन्यासकरन्यासबहिर्न्याससमन्वितम्।
जपात्सिद्धिप्रदं मन्त्रं विना होमार्चनादिभि:॥
जपेद्वा जापयेद्वापि साधको विधिपूर्वकम्।
सर्वज्ञत्वमवाप्नोति सत्यं सत्यं हि पार्वती॥
कार्त्तिकेयमुखं यावत्तावल्लक्षं जपेन्मनुम्।
सर्वशास्त्रेषु सोऽप्युच्चैर्बृहस्पतिसमो भवेत्॥

श्रीपार्वत्युवाच—

कोऽप्यत्रापि ऋषिश्छन्द: पूज्यते कात्र देवता।
ध्येय: को वात्र तत्सर्वं ब्रूहि मे भक्तवत्सल॥

ईश्वर उवाच—

बृहदारण्यको नामर्षिर्विराट्छन्द एव च।
स एव मञ्जुघोषाख्यो भक्तिदानेन मुक्तिद:॥

ध्यात्वा भैरवरूपेण जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।
तदा मुक्तिप्रदो मन्त्रो नात्र कार्या विचारणा ।।
ध्यानं तत्र प्रवक्ष्यामि भैरवस्य महात्मनः ।
यथा ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं तन्मे निगदतः शृणु ।।
सात्त्विकं राजसञ्चैव तामसं तदनन्तरम् ।
ध्यानं वक्ष्ये महेशानि क्रमेण हितकाम्यया ।।
सद्यः सिद्धिकरं रूपं ध्यात्वा जपेच्च सात्त्विकम् ।
सिद्धिप्रदं साधकानां भक्तानां चिन्तितप्रदम् ।।
मन्त्रोद्धारमिमं देवि त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम् ।
अप्रकाश्यं परं गुह्यं न देयं यस्य कस्यचित् ।
मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं प्रिये ।।

कुकुटेश्वरतन्त्र में पार्वती शंकर से पूछती हैं कि सर्वाभीष्ट-फलदायक मंजुघोष का मन्त्र बतलाइये, जिससे कवित्व शक्ति और सभी प्रकार की सिद्धियाँ मिलती हैं।

शंकर जी ने कहा कि अब मैं जो मन्त्र बतलाने जा रहा हूँ, उस मन्त्र के द्वारा साधक बृहस्पति के समान महाकवि पंडित हो सकता है। हवन और अर्चन के बिना केवल अंगन्यास और बहिर्न्यास के साथ मन्त्र जपने से वह सिद्ध हो जाता है।

साधक विधिपूर्वक स्वयं जप करे अथवा दूसरे से जप कराये तो वह अवश्य सर्वज्ञता प्राप्त करता हैं। इसमें सन्देह नहीं है। मंजुघोष के मन्त्र का कार्तिकेय के जितने मुख हैं, उतने ही लाख अर्थात् छः लाख जप करने से साधक सभी शास्त्रों में बृहस्पति के समान पंडित होता है।

पार्वती ने पुनः पूछा कि इस मन्त्र के ऋषि कौन हैं। छन्द क्या है। किस देवता की पूजा करे और किसका ध्यान करे।

शंकर ने बतलाया कि इस मन्त्र के ऋषि बृहदारण्य, छन्द विराट् और देवता मंजुघोष हैं। इनकी भक्ति करने से ये अपने भक्त को मोक्ष देते हैं। अनन्य चित्त से भैरवरूप में देवता का ध्यान करके मन्त्र जपने से निस्सन्देह मुक्ति प्राप्त होती है।

इनका ध्यान तीन प्रकार का है—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। सात्त्विक ध्यान से मन्त्र तुरन्त सिद्ध होता हैं और भक्त साधक की मनोकामना पूर्ण होती है।

विष्ण्वग्निपाशशशियुक्चलधीस्वरूपषड्वर्णमन्त्र उदितो जगतां सुखाय ।
सर्वज्ञतां सदसि वाक्पटुतां प्रसूते वेदान्तवेदनिरतस्य वसुप्रदः स्यात् ।।
आद्यमन्त्रं जपेन्मन्त्री अयुतं यदि साधकः ।
बलिनैवेद्यभुक् साक्षाद्बृहस्पतिरिवापरः ।।

मासमात्रेण यः कुर्यात्पुरश्चरणवान्नरः ।
तस्यापि वदनाद्वाणी निःसरेद्रसवर्त्तिनी ।
मासत्रयेण सततं कविरेव न संशयः ॥
गोमुण्डे गवि पृष्ठे च चक्रे वापि च गोमये ।
यन्त्रे मन्त्रं लिखेदादौ पश्चान्मन्त्रं जपेत्पुनः ॥
ध्यानमात्रं विधायादौ भावयित्वा चिरं सुधीः ।
निर्जनं स्थानमागत्य जपेन्मन्त्रमधोमुखः ॥
पौर्णमासीं समारभ्य कुन्दस्य कुसुमैः शतैः ।
अष्टाधिकैश्च सम्पूज्य जपेन्मन्त्रं चतुष्पथे ॥
त्रिमुण्डारोहणं कृत्वा निशीथे मुक्तकुन्तलः ।
षण्मासमात्रं हि जपेद्यदि कृत्वा विधानवित् ।
वृहस्पतिसमो वक्ता नात्र कार्या विचारणा ॥
कुक्कुरस्य च मुण्डैकं मुण्डं क्रोष्टुर्वृषस्य च ।
त्रिमुण्डमेतद्विख्यातं साधकानां सुखावहम् ॥
आसनञ्चैव गोमुण्डे वामे कुक्कुरमुण्डकम् ।
दक्षिणे च शिवामुण्डं कृत्वा पूजां समाचरेत् ॥
अर्द्धचन्द्राकृतिं साक्षाद्बालचन्द्रोपमं स्फुटम् ।
यन्त्रं लिखेत्तत्र पूजा कुन्दस्य कुसुमेन च ॥

सव्येन पाणिकमलेन जपादिपूजां शृङ्गारशीलनविधौ खलु दक्षिणेन ।
राकासुधाकरतुषारमरीचिगौरं ध्यात्वा चतुष्पथतटे वृषमस्तकस्थः ॥

विष्णु (अ) अग्नि (र) वरुण (व) एवं विन्दुयुक्त चलधी शब्द से अरवचलधीं षडक्षर मन्त्र बनता है, जो जगत् के अभ्युदय के लिये प्रकट हुआ है। यह मन्त्र सर्वज्ञतादायक और वाक्पटुताप्रदायक है। इसके प्रसाद से साधक वेद-वेदान्तादि शास्त्रों में पारंगत होता है और धनवान होता है।

बलि नैवेद्य को खाते हुए इस मन्त्र का जप दश हजार करने से साधक साक्षात् दूसरे वृहस्पति के समान हो जाता है।

एक महीने तक इस मन्त्र का पुरश्चरण करने से साधक के मुख से सर्वदा सरस गद्य-पद्यमयी वाणी निकलती है। तीन मास तक पुरश्चरण करने से वह असाधारण कवित्व शक्ति से सम्पन्न हो जाता है।

गोमुण्ड पर, गोपृष्ठ पर, चक्र पर अथवा गोबर पर यन्त्र अंकित करके उसके बीच में मन्त्र लिखे तब जप करे।

मंजुघोष का ध्यान करके चिन्तन करते हुए निर्जन स्थान में अधोमुख होकर मन्त्रजप करे। चौरास्ते पर पूर्णिमा से आरम्भ करके १०८ कुन्दपुष्पों से पूजन करके जप करे। आधी रात में त्रिमुण्ड के ऊपर आसीन होकर मुक्त केश होकर छ: मास तक जप करे तो साधक नि:सन्देह वृहस्पति के समान वक्ता हो जाता है।

कुक्कुरमुण्ड, शृगालमुण्ड और वृषमुण्ड को ही त्रिमुण्ड कहते हैं। यह मुण्डत्रय जप-क्रिया में साधक के लिये सुखदायक होता है। गोमुण्ड पर बैठकर बाँई ओर कुक्कुर-मुण्ड और दाईं ओर शृगालमुण्ड रखकर अर्चन करे।

अर्द्ध चन्द्राकृति बालचन्द्र के समान उज्ज्वल यन्त्र लिखकर उसके ऊपर कुन्द-पुष्पों से पूजन करे। यह यन्त्र इस प्रकार का होता है—

अर्धचन्द्र

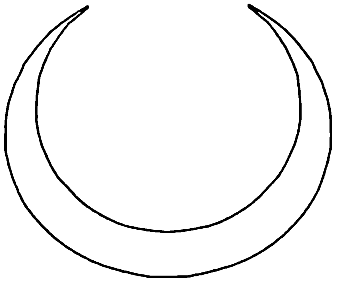

पूर्णिमा के चन्द्रमा की उज्ज्वल किरणों के समान शुभ्र मंजुघोष देव का ध्यान करते-करते चौराहे पर वृषमुंड पर आरूढ़ होकर बाँयें हाथ से इस देवता का जप-पूजनादि करे। वीराचार मत से शृंगार रसादि से युक्त होकर कार्य करे तो दाँयें हाथ से जप-पूजनादि करे।

सञ्चिन्त्य कुक्कुरशिवाशिरसाधिरूढः
कुन्देन साधकतमो जपति प्रकामम्।
गोचर्मणा विरचितं रसकोणमात्रं
चक्रं ततोऽपि नवकुङ्कुमरोचनाभिः ॥
निर्माय सव्यविधिना विजने श्मशाने
सम्पूजयेद्वनभवैश्च नवैः पलाशैः।
सम्पूर्णमण्डलतुषारमरीचिमध्ये
बालं विचिन्त्य धवलं वरखड्गहस्तम् ॥
उद्दामकेशनिवहं वरपुस्तकाढ्यं
नग्नं जपेत् क्षतजपद्मदलायताक्षम्।

अरिष्टगेहे निशि तैलमेवमादाय यत्नात्करपल्लवेन ।
तेनाञ्चितं काञ्चनपुष्पमेव निवेद्य तस्यै जपति प्रकामम् ॥
आकिंशुकाक्षोडतरोश्च मूले विलिप्य पादौ वदनामृतेन ।
त्रिमुण्डमात्राश्रित एव रात्रौ जपेद्यथाशक्ति तु पौर्णमास्याम् ॥

लकुचतरुतलस्थो मुण्डमात्रैकरूढो
हिमकरकरगौरं चिन्तयित्वा निशीथे ।
यदि जपति जडो वा मन्त्रमेनं त्रिलक्षं
भवति जगति साक्षाद्गीष्पतिर्नात्र चित्रम् ॥
भुक्तानशेषकदलीतरुमूलसंस्थ
आस्तीर्णपुष्परचितासनसन्निविष्टः ।
एकाविधूद्गममुपेत्य करोति पूजां
यस्सोप्यजेय इह वाक्पतिरीश्वरः स्यात् ॥

निर्जन श्मशान में कुक्कुर या शृगाल के मुंड पर आरूढ़ होकर गोचर्म पर नवकुंकुम और गोरोचन से षट्कोण चक्र अंकित कर कुन्दपुष्पों और वन में उत्पन्न पलाशपुष्पों से बाँयें हाथ से पूजा करे। यन्त्र इस प्रकार का है—

षट्कोण चक्र

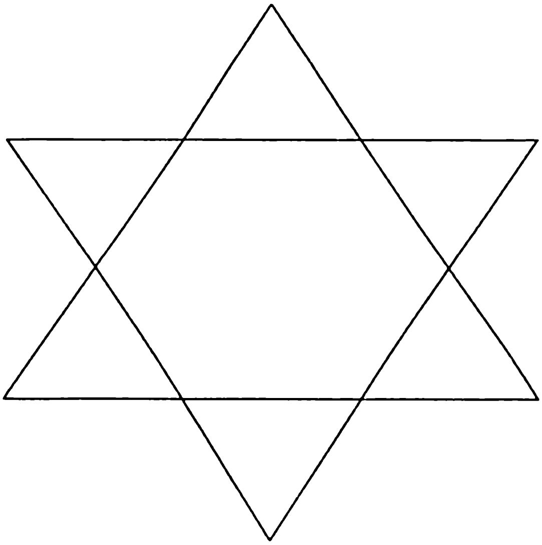

पूर्णचन्द्र के समान उज्ज्वल वर्ण वाले, वरमुद्रा और खड्गधारी, बालरूप, मुक्त केश, हाथों में वर और पुस्तक लिए, रक्तकमल के पत्रों के समान विस्तृत नेत्र वाले

मंजुघोष देव का भजन करे। रात में सूतिकागृह से तेल लाकर दोनों हाथों में मले। तब उन्हीं हाथों से काञ्चनपुष्प प्रदान कर इच्छानुसार जप करे।

पलाश और अशोक वृक्ष के मूल में बैठकर मुखामृत (थूक) द्वारा पदलेपन कर त्रिमुण्ड के ऊपर बैठकर पूर्णिमा की रात में यथाशक्ति जप करे।

आधी रात में लकुचवृक्ष के मूल में पूर्वोक्त त्रिमुण्ड में से किसी एक मुंड पर बैठकर चन्द्रवत् गौरवर्ण मञ्जुघोष देव का ध्यान करके यदि कोई जड़ बुद्धि वाला व्यक्ति भी उस मन्त्र का तीन लाख जप करे तो वह साक्षात् देवगुरु के समान विद्वान् हो जाता है।

भोजन का जूठा अन्न लेकर केले के मूल में पुष्पासन की रचना करके उस पर बैठकर पूर्णिमा चन्द्रोदय काल में जो व्यक्ति मंजुघोष की पूजा करता है, वह इस लोक में देवगुरु के समान अजेय और दैवी शक्ति से युक्त होता है।

जिह्वां विमृज्य निजपाणिसरोरुहाभ्यां
रास्नाप्रसूनशतकैः परिपूज्यगोष्ठे ।
यो वै जपेदनुदिनं रसलक्षमात्र-
मीशं जयेत्किमुत वाक्पतिमेव चित्रम् ।।
स्थित्वा निशीथसमये रजकस्य काष्ठे
खड्गान्वितो जपति यद्यपि पौर्णमास्याम् ।
सम्पूर्णमासमथवा तरसापि तस्य
वक्त्राद्विनिःसरति गीरमृतायमाना ।
यो दन्तधावनकरश्च करञ्जकाष्ठै-
स्तस्यापि गीष्पतिवचो नियतं सुलभ्यम् ।

तिलतैलेन मतिमान् कुन्दकैरवपुष्पकैः ।
जुहुयाद्यत्नतो मन्त्री सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ।।

मञ्जिष्ठतोयदवचासितभानुमूलैः
स्वीयाङ्गशोणितयुतैः समकुष्ठकैश्च ।
कृत्वा ललाटफलके तिलकं जपस्थो
विद्याप्रबोधविषये नवगीष्पतिः स्यात् ।।

अपने दोनों हाथों से जिह्वा का मार्जन कर ओष्ठ में सौ रास्नापुष्पों से पूजा करके प्रतिदिन छः लाख मन्त्र जप करने से साधक ईश्वर को भी जीत सकता है। पूर्णिमा के निशीथ काल में रजक के काष्ठ पर बैठकर खड्ग धारण करके जप करे। इस प्रकार एक महीने तक जप करने से साधक के मुख से निरन्तर अमृतवत् गद्य-पद्यमयी वाणी

निकलती रहती है। जो व्यक्ति करञ्ज के दतुवन से मुख धोकर मंजुघोष का मन्त्र जपता है, वह अनायास ही बृहस्पति के समान वाक्य-रचना कर सकता है। तिलतैल के साथ कुन्दकलिका और कैरवपुष्प से हवन करने से साधक सर्वसिद्धियों का स्वामी होता है।

माञ्जिष्ठ, मुथा, वच, श्वेत आकन्द मूल, स्वगात्ररुधिर और कुड़काष्ठ—सबों को एकत्र कर ललाट में तिलक लगाकर मंजुघोष की उपासना करने से साधक देवगुरु के समान हो जाता है।

भैरवतन्त्रेऽपि—

मञ्जुघोषाख्यममलं मन्त्रमाकर्णय प्रिये।
धनवंशप्रदं रम्यं सार्वज्ञवाग्मिताप्रदम्।
अदोषकवितामूलं सर्वत्र प्रतिभाप्रदम्॥

देव्युवाच—

भगवन् गिरिजानाथ कथयस्व यथोचितम्।
मञ्जुघोषः स कः कीदृक्तस्यानुष्ठानमेव हि॥

ईश्वर उवाच—

श्रूयतां देवि मे वाक्यं नात्र कार्या विचारणा।
मञ्जुघोषस्तु यो देवः सोऽहं देवि न संशयः॥
एकोऽहं शङ्करो देवि नानामूर्त्तिधरः स्वयम्।
तस्यानुष्ठानमधुना श्रूयतां मम तत्त्वतः॥
मन्त्रः षडक्षरः सारः सद्यः कुमतिनाशनः।
रसलक्षावधिस्तस्य जाप्य एव सुरेप्सितः॥
त्रिपक्षजपनाद्देवि वाग्मी भवति मानवः।
सुकवित्वं भवेत्तस्य प्रतिभा विश्वजित्वरी॥
मासत्रयं जपेद्यस्तु पण्डितोऽपण्डितो यदि।
षण्मासं यस्तु जपति स सर्वज्ञः कुशाग्रधीः॥
अब्देन सिद्धयः सर्वा भवन्ति सत्यमीश्वरि।
आहारोऽस्य नृणां वर्चो नैवेद्यं चक्षुषोर्मलम्॥
मूत्रैः पाद्यं ददेत्तस्य गन्धो विट्खदिरोद्भवः।
आरण्यकस्य पत्राणि पुष्पाण्यैव सुनिश्चितम्॥
एरण्डमूलैः कार्पासबीजमर्घ्यं प्रचक्षते।
तुण्डकीनालदानेन भवेदाचमनीयकम्।
ध्यानं वक्ष्ये महादेवि सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥

शशधरमिव शुभ्रं खड्गपुस्ताङ्गपाणिं
सुरुचिरमति शान्तं पञ्चचूडं कुमारम् ।
पृथुतरवरमुख्यं पद्मपत्रायताक्षं
कुमतिदहनदक्षं मञ्जुघोषं नमामि ।।

भैरवतन्त्र में महादेव पार्वती को बतलाते हैं कि मंजुघोष का मन्त्र धन, वंश, सर्वज्ञता और वाक्शक्ति प्रदान करता है। इस मन्त्र से आराधना करने पर निर्दोष कवित्व शक्ति और सभी शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त होता है।

महादेव ने कहा है कि मैं ही मंजुघोष हूँ, इसमें सन्देह नहीं है। एक मैं ही नाना रूप धारण करके स्थित हूँ। मंजुघोष का मन्त्र षडक्षर है। उसकी उपासना से कुमति का नाश तत्काल हो जाता है। छ: लाख जप से इसका पुरश्चरण होता है। तीन लाख जप से साधक वाक्शक्ति-सम्पन्न हो जाता है। उसे असाधारण कवित्व शक्ति और विश्वविजयिनी बुद्धि प्राप्त होती है। मूर्ख व्यक्ति भी यदि तीन मास तक इस मन्त्र का जप करे तो वह विद्वान् होता है, सर्वज्ञ होता है। एक वर्ष तक मंजुघोष के मन्त्र का जप करने से सभी सिद्धियाँ सिद्ध हो जाती हैं।

इस देवता का आहार नरविष्टा, नैवेद्य नेत्रमल, पाद्य मूत्र और गंध विट् खदिर हैं। जंगली वृक्ष के पत्र-पुष्पों द्वारा पूजा करे। एरंडमूल के साथ कपासबीज से अर्घ्य दे और अपने थूक से आचमनीय प्रदान करे।

स्तुतिरूप में मंजुघोष का मन्त्रोद्धार महादेव के द्वारा निम्न प्रकार का किया गया है। उसके पहले ध्यान का वर्णन है, जो निम्नवत् है—

शशधरमिव शुभ्रं खड्गपुस्ताङ्गपाणिं
सुरुचिरमति शान्तं पञ्चचूडं कुमारम् ।
पृथुतरवरमुख्यं पद्मपत्रायताक्षं
कुमतिदहनदक्षं मञ्जुघोषं नमामि।।

महादेव जी ने कहा कि हे महादेवि! अब मैं सर्वसिद्धिदायक मंजुघोष के ध्यान का वर्णन करता हूँ। इनका शरीर चन्द्रमा के समान शुभ्र है। इनके हाथों में खड्ग और पुस्तक हैं। सुरुचिर शान्त बुद्धि है। अवस्था कुमार की है। शिर पर पाँच जटायें हैं। शरीर पृथुल है। कमल के पत्तों जैसी आँखें हैं। कुमति-विनाशक मंजुघोष को मैं नमस्कार करता हूँ।

मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि नमस्कारोपदेशतः ।
शृणु देवि महाभागे कलौ सद्यः फलप्रदम् ।।
मन्त्रं सर्वार्थदं सारं वशीकरणरूपकम् ।
अमलं निर्गुणं सारं गुणिनं सर्वकामदम् ।

तं नमामि हितं नाथं मञ्जुघोषं नमाम्यहम् ।।
रवीशं परमं सारं स्तुतं ब्रह्मादिभिः सुरैः ।
रक्तं रजोगुणैर्युक्तं मञ्जुघोषं नमाम्यहम् ।।
वचनेन च जानन्ति न कायेन च कोविदाः ।
तं शान्तं तमसायुक्तं पीतवस्त्रं नमाम्यहम् ।।
चरणे पतिता देवा दैत्यानां जयहेतवे ।
चरणे पतितो जीवो बुद्धये तं नमाम्यहम् ।।
न जानन्ति सुरा यस्य तत्त्वं सत्त्वगुणेन वै ।
हृष्टं समस्तसारञ्च मञ्जुघोषं नमाम्यहम् ।।
धीशं विश्वेश्वरञ्चैव प्रतिपत्त्यादिहेतुकम् ।
सकलं निष्कलञ्चैव तं नमामि हितप्रदम् ।।
ऋषिः कण्वो भवेत् पंक्तिश्छन्दोऽङ्गानि षडक्षरैः।
दक्षिणा शक्तितो दद्याद्गुरुतुष्टिर्यथा भवेत् ।।
गुरुसन्तोषमात्रेण सिद्धिर्भवति निश्चितम् ।
पिता गुरुर्न कार्यो वै दीक्षाकर्मणि पार्वति ।
यावत् कालं सुतो दुःखी पिता तु नरकं व्रजेत् ।।

भगवान् शंकर कहते हैं कि स्तुतिरूप में इनका मन्त्रोद्धार कलियुग में शीघ्र फलप्रद है। मन्त्र सर्वार्थदायक, सारस्वरूप एवं वशीकरणरूप है।

मंजुघोष देव निर्मल, निर्गुण, सर्वदेवश्रेष्ठ, सर्वगुणसम्पन्न, सर्वकामप्रद, साधकों के हितकारी और जगत् के आश्रय हैं। उन्हें नमस्कार है।

मंजुघोष देव सर्वश्रेष्ठ, सारतर, ब्रह्मादि देवगण-पूज्य, रक्तवर्ण, रजोगुणयुक्त हैं। उन्हें नमस्कार है।

कोई पंडित वाक्य अथवा शरीर द्वारा जिनको जान नहीं सकता, जो शान्तमूर्ति, तमोगुणयुक्त पीत वस्त्रधारी हैं, उन मंजुघोष को मैं नमस्कार करता हूँ।

देवगण दैत्यवर्ग को जीतने के लिये और बृहस्पति बुद्धि प्राप्त करने के लिये जिनके चरणों पर गिरे थे तथा अखिल जीव जिनके चरणों में गिरे हैं, ज्ञान-लाभ के लिये उन्हीं मंजुघोष को मैं नमस्कार करता हूँ।

सत्त्व गुणावलम्बी देवगण जिनके तत्त्व को नहीं जान सकते, सर्वसारभूत उन्हीं मंजुघोष को मैं नमस्कार करता हूँ।

जो बुद्धि और विश्व के ईश्वर हैं, प्रतिपत्ति आदि के हेतु हैं, जो कलाशून्य होते हुए भी कलापूर्ण हैं, उन मंजुघोष देव को मैं नमस्कार करता हूँ।

मंजुघोष के उक्त मन्त्र के ऋषि कण्व हैं। छन्द शक्ति है। मन्त्र के षडक्षरों से षडंग न्यास करना चाहिये।

मंजुघोष का मन्त्र ग्रहण करके अपनी शक्ति के अनुसार गुरु के प्रीत्यर्थ स्वर्णादि दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये।

गुरुदेव की प्रसन्नता से ही मन्त्रसिद्धि मिलती है। दीक्षा-कार्य में पिता को गुरु नहीं बनाना चाहिये। पिता से मन्त्र लेने पर पुत्र यावज्जीवन दुःख पाता है और पिता नरकगामी होता है।

तारिणीकल्पः

तारिणीतन्त्रे ईश्वर उवाच—

श्रूयतां शैलतनये जाड्यनाशकरी परा।
चर्तुवर्गफला विद्या सर्वसिद्धिप्रदायिका॥
वर्गाद्यं वह्निसंयुक्तं वामाक्षिपरिभूषितम्।
नादविन्दुसमायुक्तं वसुसिद्धिप्रदायकम्॥
पुनश्चतुर्मुखं देवि लकारेण विभूषितम्।
स्वरेणैव चतुर्थेन चन्द्रखण्डेन च प्रिये॥
लाञ्छितं वै महाबीजं चतुर्वर्गफलप्रदम्।
ततः कृष्णपदं चोक्त्वा ततो देविपदं स्मृतम्॥
ह्रींकारञ्च ततो दद्यात् खपूर्वमुद्धरेत्ततः।
ईकारेण च रेफेण मकारेण विभूषितम्॥
ततो वाग्भवमुच्चार्य मन्त्रमेनं समुद्धरेत्।
नवाक्षरो मनुर्देवि तारिण्याः समुदीरितः॥
इयमेव महाविद्या स्वर्गे मर्त्त्ये च दुर्लभा।
अष्टसिद्धिप्रदा देवी चतुर्वर्गफलप्रदा॥
अनया सदृशी विद्या अनेन सदृशो मनुः।
अनया सदृशी सिद्धिर्न भूता न भविष्यति॥
यो विद्यां लभते देवि किं नु तस्य न जायते।
अचिराल्लभते वाणीं गद्यपद्यप्रमोदिनीम्॥
ज्ञानमात्रेण विद्यायाः क्षिप्रं द्रुतकविर्भवेत्।
विना छन्दो विना शिक्षां विनाभ्यासेन पार्वति॥
विना ज्ञानं विना यत्नं विनालापं कवेरपि।
जिह्वायां जायते तस्य कवित्वं रसनिर्मितम्॥

तारिणीकल्प—तारिणीतन्त्र में तारिणी विद्या के सम्बन्ध में शंकर जी कहते हैं कि यह विद्या जड़तानाशिनी, चतुर्वर्गप्रदा, सर्वसिद्धिदायिनी परमा विद्या है।

क्रीं क्लीं कृष्णदेवि ह्रीं क्रीं ऐं—यह नवाक्षर मन्त्र अष्टैश्वर्य-सिद्धि एवं चतुर्वर्ग-फलदायक है। यह दुर्लभ मन्त्र है। इस विद्या के समान दूसरी कोई विद्या नहीं है। इसकी उपासना से जो फल मिलते हैं, वे अन्य किसी की उपासना से नहीं मिलते।

इस विद्या को प्राप्त कर लेने पर कुछ भी अप्राप्य नहीं रहता। वाणी आशु गद्य-पद्यमयी होती है। साधक आशु कवि होता है। छन्द, शिक्षा, अभ्यास, ज्ञान और कवि-सत्संग के अभाव में भी साधक की जिह्वा सरस कवित्व से सम्पन्न होती है।

तत्र पूजाप्रयोगः—

प्रथमं जलमादाय पादप्रक्षालनं स्मृतम् ।
द्विराचम्य शिखां बद्ध्वा ततो भूमिविशोधनम् ॥
विघ्नानुत्सारणं कृत्वा ततः पुष्पविशोधनम् ।
करौ संशोध्य देवेशि चास्त्रमन्त्रेण तत्परम् ॥
गुरून् गणपतिं नत्वा भूतशुद्धिं समाचरेत् ।
स्वाधिष्ठाने स्थितं बीजं वाग्भवं सर्वसिद्धिदम् ।
तदुद्भूताग्निबलिभिः शरीरं दह्यते बुधैः ॥
तद्भस्मपुञ्जमुत्सार्य ह्रीं समुद्भूतवायुना ।
ललाटे कामबीजन्तु तदुद्भूतामृतेन च ॥
तदस्थि प्लावितं कृत्वा दृढीभूतं चरेत्ततः ।
निर्लेपं निर्गुणं शुद्धमात्मानं देवतामयम् ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तं देहं सञ्चिन्त्य साधकः ।
शरीरस्य विशोधेन प्राणायामं चरेत्ततः ॥
आद्येन मूलबीजेन प्राणायामत्रयञ्चरेत् ।
मन्त्रन्यासस्ततो देवि श्रूयतां मन्त्रसिद्धिदः ॥
शङ्करोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो बृहतीच्छन्द ईरितम् ।
तारिणी देवता प्रोक्ता ह्रींकारं बीजमुच्यते ।
वाग्भवं शक्तिरित्युक्तमिति ऋष्यादिकं न्यसेत् ॥

प्रयोगः—शिरसि शङ्करऋषये नमः। मुखे बृहतीच्छन्दसे नमः। हृदि तारिण्यै देवतायै नमः। गुह्ये ह्रीं बीजायः नमः। पादयोः वाग्भवशक्तये नमः।

ततः कराङ्गन्यासौ—क्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः, क्लीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, कृष्णदेवि

मध्यमाभ्यां वषट्, ह्रीं अनामिकाभ्यां हुं, क्रीं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ऐं करतलकर-पृष्ठाभ्यां फट्, एवं हृदयादिषु। तथा बीजेन तु षडङ्गानि प्रकल्पयेत्।

पूजाविधि यह है कि पैर धोकर दो बार आचमन करे, शिखाबन्धन करे। भूमिशोधन, विघ्नोत्सारण और पुष्पशोधन करके फट् मन्त्र से करशोधन करके गुरुदेव और गणपति को नमस्कार करके भूतशुद्धि करे।

स्वाधिष्ठान चक्र में सर्वसिद्धिदाता 'ऐं' बीज विद्यमान है। उससे उत्पन्न अग्नि-शिखा द्वारा साधक अपने शरीर को दग्ध होने की भावना करे। 'ह्रीं' बीज से उत्पन्न वायु द्वारा उस भस्म को उड़ा दे।

ललाट-स्थित क्लीं बीज से उत्पन्न अमृत से उस भस्मास्थि को प्लावित करके दृढ़ करे। तब उस दृढ़ीभूत अस्थि से सांसारिक माया से परे निर्गुण शुद्ध देवतामय शरीर के प्रकट होने की चिन्ता करे। इस प्रकार अपने शरीर को निष्पाप समझ-कर देहशोधनपूर्वक मूल मन्त्र के प्रथम वर्ण से तीन प्राणायाम करे।

उक्त मन्त्र के ऋषि शंकर, छन्द वृहती, देवता तारिणी, बीज ह्रीं और शक्ति ऐं है। तब न्यास करे।

ऋष्यादि न्यास—शिरसि शंकरऋषये नमः। मुखे बृहतीछन्दसे नमः। हृदये तारिणीदेवतायै नमः। गुह्ये ह्रीं बीजाय नमः। पादयो ऐं शक्तये नमः।

मन्त्र	करन्यास	अंगन्यास
क्रीं	अङ्गुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
क्लीं	तर्जनीभ्यां स्वाहा	शिरसे स्वाहा
कृष्णदेवि	मध्यमाभ्यां वषट्	शिखायै वषट्
ह्रीं	अनामिकाभ्यां हुं	कवचाय हुं
क्रीं	कनिष्ठाभ्यां वौषट्	नेत्रत्रयाय वौषट्
ऐं	करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्	अस्त्राय फट्

धर्मादि विन्यसेद्देवि ततोऽधर्मादि विन्यसेत्।
उपर्युपरि मध्ये च क्रमेणैतान्न्यसेत्ततः॥
कल्पवृक्षं समुच्चार्य मणिपीठं ततः स्मरेत्।
शवमुच्चारयित्वा तु तत्रोपरि कपालकम्॥
चतुर्दिक्षु न्यसेद्देवि चितामग्निसमन्विताम्।
हृत्पद्माष्टदले तत्र चाष्टशक्तीर्न्यसेत्ततः॥
दुर्गा जया ततो मेधा विजया सुप्रभा मता।
काली गौरी शिवा चैव इत्यष्टौ शक्तयः स्मृताः॥

तत एव स्वदेहेषु पञ्चयोनिं न्यसेद् बुधः ।
केशान्ते दक्षिणे भागे योनिवीरां न्यसेत्ततः ॥
केशान्ते वामभागे च योनिविश्वां ततो न्यसेत् ।
नासामूले च देविशि योनिरूपां विभागतः ॥
योनिकामां योनिहारां नेत्रयोः सव्यवामयोः ।
योनिरूपां न्यसेदोष्ठे सर्वकामार्थसिद्धये ॥
मुखकोणे च देविशि दक्षवामादिभेदतः ।
चिबुके च महादेवी विन्यसेत् साधकोत्तमः ॥
योनिच्छायां योनिकामां योनिरूपां तत परम् ।
बाहुमूले तथा वामे हृदि चैव वरानने ॥
योनिचिन्तां योनिनित्यां योनिरूपां स्मरेद् बुधः ।
स्तन्योर्नाभिदेशे च योनिस्थानं सदा स्मरेत् ॥
योनिसिद्धां योनिविद्धां योनिरूपां न्यसेद् बुधः ।
एताः स्मृताश्चतुर्थ्यन्ता नमोऽन्ताश्च विचक्षणैः ।
देहपीठे ततो देवीं ध्यायेत्सुस्थिरमानसः ॥

ध्यानमाह—

कृष्णां लम्बोदरीं भीमां नागकुण्डलशोभिताम् ।
रक्तमुखीं ललज्जिह्वां रक्ताम्बरधरां कटौ ।
पीनोन्नतस्तनीमुग्रां महानागेन वेष्टिताम् ॥
शवस्योपरि देवेशि तस्योपरि कपालके ।
नासाग्रध्याननिरतां महाघोरां वरप्रदाम् ॥
चतुर्भुजां दीर्घकेशीं दक्षिणस्योर्ध्वबाहुना ।
विभ्रतीं नलिनीमेकां वामोर्ध्वे पानपात्रकम् ॥
वराभयधरां देवीमधस्ताद्दक्षवामयोः ।
पिबन्तीं रौधिरीं धारां पानपात्रे सदाशिवे ॥
सर्वसिद्धिप्रदां देवीं नित्यां गिरिनिवासिनीम् ।
लोचनत्रयसंयुक्तां नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥
दीर्घनासां दीर्घजङ्घां दीर्घाङ्गीं दीर्घजिह्विकाम् ।
चन्द्रसूर्याग्निभेदेन त्रिलोचनसमन्विताम् ॥
शत्रुनाशकरीं देवी महाभीमां वरप्रदाम् ।
व्याघ्रचर्मशिरोबद्धां जगत्त्रयविभाविनीम् ॥

साधकानां सुखं कर्त्रीं सर्वलोकभयङ्करीम् ।
एवंभूतां महादेवीं तारिणीं प्रणमाम्यहम् ।।

इसके बाद धर्मादि का न्यास करके अधर्मादि का न्यास करे। इसके बाद चारों दिशाओं में ॐ कल्पवृक्षाय नमः। ॐ मणिपीठाय नमः। ॐ शवाय नमः। ॐ कपालाय नमः से न्यास करे। मध्य में ॐ चिताग्नये नमः से न्यास करे। हृदयपद्म के आठ दलों में अष्ट शक्तियों का न्यास करे—ॐ दुर्गायै नमः। ॐ जयायै नमः। ॐ मेधायै नमः। ॐ विजयायै नमः। ॐ सुप्रभायै नमः। ॐ काल्यै नमः। ॐ गौर्यै नमः। ॐ शिवायै नमः।

केशान्तदक्षिणभागे ॐ योनिवीरायै नमः। केशान्तवामभागे ॐ योनिविश्वायै नमः। नासामूले ॐ योनिरूपायै नमः। दक्षिणनेत्रे ॐ योनिकामाय नमः। वामनेत्रे ॐ योनिहारायै नमः। ओष्ठे ॐ योनिरूपायै नमः। दक्षमुखकोणे ॐ योनिच्छायायै नमः। वाममुखकोणे ॐ योनिकामायै नमः। चिबुके ॐ योनिरूपायै नमः। दक्षबाहुमूले ॐ योनिचितायै नमः। वामबाहुमूले ॐ योनिनित्यायै नमः। हृदये ॐ योनिरूपायै नमः। दक्षस्तने ॐ योनिसिद्धायै नमः। वामस्तने ॐ योनिविद्धायै नमः। नाभिदेशे ॐ योनिकम्पायै नमः।

इस प्रकार अपने देह में योनिन्यास करने से सभी कामनायें सिद्ध होती हैं। अब देहपीठ में देवी का निम्नवत् ध्यान करे—

तारिणी देवी कृष्ण वर्ण की हैं। उदर लम्बा और आकृति भयंकर है। दोनों कानों में नागनिर्मित कुंडल शोभित है। मुखवर्ण लाल है। लपलपाती जीभ है। कमरवस्त्र लाल है। स्तन स्थूल और उन्नत हैं। देवी का रूप उग्र है। ये महानाग से वेष्टित हैं। शव के ऊपर स्थित कपाल पर बैठी हुई देवी नासाग्र में दृष्टि टिकाकर ध्यानमग्न हैं। इनका वेश भयानक है। ये वरदायिनी हैं। देवी के चार हाथ हैं। लम्बे केश हैं। दाँयें ऊपरी हाथ में पद्म, बाँयें ऊपरी हाथ में पानपात्र है। निचले दाँयें हाथ में वरमुद्रा और निचले बाँयें हाथ में अभयमुद्रा है। पानपात्र से रक्तधार का पान करती हैं। सदैव पर्वत में निवास करती हैं। साधक को सभी सिद्धियाँ देती हैं। चन्द्र, सूर्य और अग्निस्वरूप तीन नेत्र हैं, गले में नाग का यज्ञोपवीत है। नाक, जंघा, जीभ, आदि सभी अंग दीर्घ हैं। उपासना करने से ये देवी साधक के शत्रुओं का नाश करती हैं। देवी का शिरोदेश व्याघ्रचर्म से आवृत है। ये तीनों लोकों का ऐश्वर्य प्रदान करने में समर्थ हैं। साधकों को सुखदायिनी और सभी लोकों के लिये भयंकर हैं। ऐसी देवी को मैं नमस्कार करता हूँ।

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य शङ्खस्थापनं तारावत्कुर्यात्। अस्याः पूजायन्त्रम्—

यन्त्रं निर्माय देवेशि स्थापयेन्मन्त्रमध्यतः ।
रक्तमलयजेनापि वसुपत्रं लिखेत्ततः ।।

तद्वाह्ये वसुपत्राणि लिखेत्साधकसत्तमः ।
वह्निमण्डलयुग्मञ्च यन्त्रमध्ये लिखेत्ततः ॥
पूर्वदले च देवेशि आद्यं बीजं लिखेत्ततः ।
द्वितीयं दक्षिणे चैव तृतीयं पश्चिमे दले ॥
उत्तरे च दले देवि फट् वाणीञ्च ततो लिखेत् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तमष्टवज्रसमन्वितम् ॥

तत्र पूर्वोक्तमन्त्रेण पीठं सम्पूज्य, पूर्ववद्ध्यात्वा,

तत्रावाह्य महेशानीं यजेद्वै मन्त्रमुच्चरन् ।
षडङ्गेनैव देवेशि पूजयित्वा तु पार्वतीम् ॥
क्षेत्रपालं भैरवञ्च गणनाथं महान्तकम् ।
एतच्चतुष्टयं देविं यजेद्द्वारचतुष्टये ॥
पूर्वाद्यष्टदले देवि एताः सम्पूज्य साधकः ।
अणिमानङ्गमदना लघिमा मदनातुरा ॥
अनङ्गकुसुमा देवि ततोऽष्टकर्णिका तथा ।
कपालिका च देवेशि ततोऽष्टयोगिनीस्तथा ॥
तथा षोडशपत्रेषु पूजयेत्परिचारिकाः ।
सुखदां मोक्षदां तत्र भुक्तिदां भोगदां तदा ॥
मुक्तिदां सिद्धिदां चैव कामदां धनदां तथा ।
क्षेमदां शिवदां वापि वरदामात्मदां तथा ॥
योगदां भोगदां देवि भक्तिदां सर्वसिद्धिदाम् ।
अणिमाद्यष्टसिद्धीश्च पूर्वद्वारे यजेत्ततः ॥
वह्नेर्दशकला देवि द्वारे च दक्षिणे तथा ।
पाश्चात्यद्वारे देवेशि कलाश्चन्द्रस्य पूजयेत् ॥
उत्तरे च तथा देवि रवेरपि कलास्ततः ।
षडङ्गेन यजेद्देवि ततश्चास्त्राणि पूजयेत् ॥
एतास्तु देवदेवेशि चतुर्थ्यन्ताः समीरिताः ।
नमोऽन्ताश्च महादेवि प्रोक्ताः सकलसिद्धिदाः ॥
पुष्पैर्बहुविधैश्चैव रक्तचन्दनचर्चितैः ।
रक्तपुष्पैर्महादेवि नानागन्धसमन्वितैः ॥
बिल्वपत्रैस्तथा गन्धैर्जवापुष्पैर्विशेषतः ।
श्वेतरक्तपलाशैश्च करवीरैर्मरूवकैः ॥
बिल्वपुष्पैः कुन्दपुष्पैर्लवङ्गकुसुमैः शुभैः ।

अपराजितापुष्पैश्च चम्पकैः केशरैस्तथा ।।
एभिः पुष्पैर्महादेवि पूजयेन्नित्यतारिणीम् ।
मालतीवकपुष्पैश्च सदूर्वैर्वार्चयेत्तथा ।।
कदम्बैः श्वेतकुसुमैः कुंकुमैः काञ्चनैस्तथा ।
एवं सम्पूजयित्वा तु एभिर्द्रव्यैर्महेश्वरि ।
लक्षमात्रं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः ।।

ध्यान के बाद मानस पूजा करे। भगवती तारा की पूजा-विधि के समान शंख-स्थापन करे। तारिणी देवी का पूजा यन्त्र इस प्रकार है—षट्कोण बनाकर उसके मध्य में 'क्रीं क्लीं कृष्णदेवि ह्रीं क्रीं ऐं' मन्त्र लिखे। उसके बाहर रक्तचन्दन से अष्टदल कमल बनाकर उसके बाहर षोडशदल कमल अंकित करे। अष्टदल कमल के पूर्व दल में प्रथम बीज क्रीं लिखे। दक्षिण दल में द्वितीय बीज क्लीं लिखे। पश्चिम दल में ह्रीं और उत्तर दल में फट् ऐं लिखे। तदनन्तर चतुर्द्वारयुक्त भूपुर बनाकर उसमें आठ वज्र लिखे।

तारिणी-पूजन यन्त्र

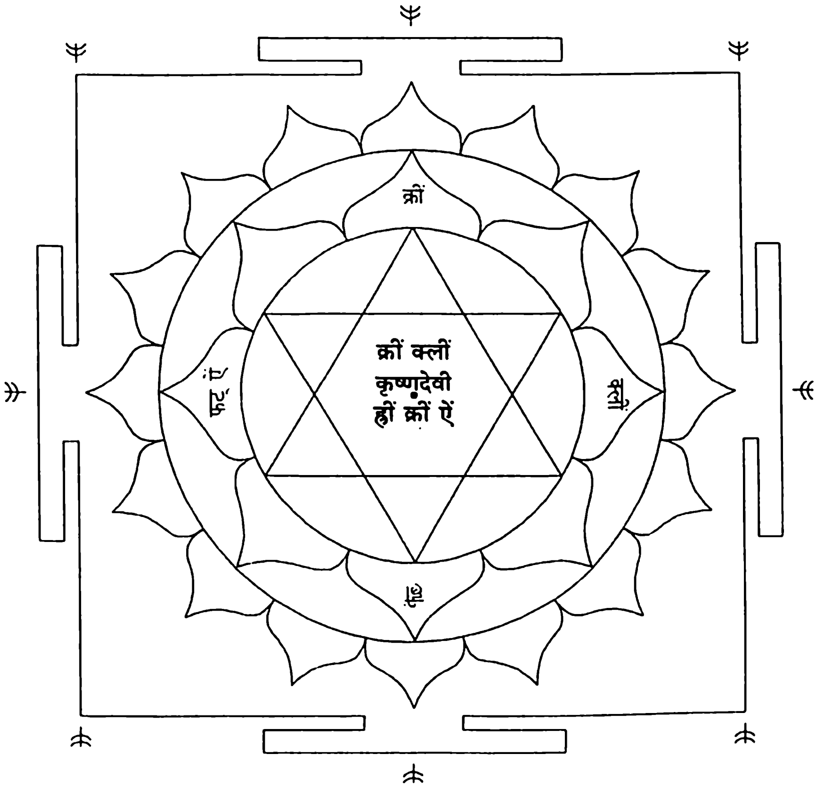

उक्त यन्त्र में पूर्वोक्त क्रम से पीठपूजा करके पुन: ध्यान-आवाहन करके यथासम्भव उपचारों से मूल मन्त्र द्वारा देवी की पूजा करे। तब षडंग पूजा करके चारो द्वारों में क्षेत्रपाल, भैरव, गणनाथ और महान्तक की पूजा करे। तब अष्टदल कमल के पूर्वादि आठ दलों में इनकी पूजा करे—ॐ अणिमायै नम:, ॐ अनंगमदनायै नम:, ॐ लघिमायै नम:, ॐ मदनातुरायै नम:, ॐ अनंगकुसुमायै नम:। ॐ अष्टकर्णिकायै नम:, ॐ कपालिकायै नम: से सात देवताओं की पूजा करके अष्टम दल ईशान कोण में आठ योगिनियों की पूजा करे—ॐ सुरसुन्दर्यै नम:। ॐ मनोहरायै नम:। ॐ कनकावत्यै नम:। ॐ कामेश्वर्यै नम:। ॐ रतिसुन्दर्यै नम:। ॐ पद्मिन्यै नम: ॐ नटिन्यै नम: ॐ अनुरागिन्यै नम: तब षोड़श दल में पूर्वादि सोलह दलों में सोलह परिचारिकाओं की पूजा करे—ॐ सुखदायै नम:। ॐ मोक्षदायै नम:। ॐ मुक्तिदायै नम:। ॐ भोगदायै नम:। ॐ भुक्तिदायै नम:। ॐ सिद्धिदायै नम:। ॐ कामदायै नम:। ॐ धनदायै नम:। ॐ क्षेमदायै नम:। ॐ शिवदायै नम:। ॐ वरदायै नम:। ॐ आत्मदायै नम:। ॐ योगदायै नम:। ॐ भोगदायै नम:। ॐ भक्तिदायै नम:। ॐ सर्वसिद्धिदायै नम:।

इसके बाद पूर्व द्वार में अणिमादि अष्ट सिद्धियों की, दक्षिण द्वार में वह्नि के दश कलाओं की, पश्चिम द्वार में चन्द्र के सोलह कलाओं की और उत्तर द्वार में सूर्य के बारह कलाओं की पूजा करके देवी की षडंगपूजा करे। तब अस्त्रों की पूजा करे। तब रक्तचन्दनयुक्त और नाना गन्ध से पूर्ण विविध रक्तपुष्पों से देवी की पूजा करे।

बेलपत्र, गन्ध, अड़हुल, श्वेत पलाश, रक्त पलाश, कनैल, मरूवक, वेलफूल, कुन्दपुष्प, लवंगपुष्प, अपराजितापुष्प, चम्पापुष्प, केशरपुष्प—इन सबसे तारिणी देवी की पूजा प्रतिदिन करे; किन्तु मालतीपुष्प, वकपुष्प और दूर्वा न चढ़ाये।

कदम्ब, श्वेत कुसुम, कुंकुम, कांचपुष्प से तारिणी देवी की पूजा करके जितेन्द्रिय और हविष्याशी होकर मन्त्र का एक लाख जप करे।

सारस्वतकल्प:

नारद उवाच—

केनोपायेन देवेश विद्योत्पत्तिर्भवेन्नृणाम्।
वेदविद्याप्रकाशस्तु तन्मे ब्रूहि जगत्पते ॥

ब्रह्मोवाच—

साधु साधु त्वया पृष्टं लोकानां हितकारकम्।
एतदेव पुरा पृष्टं कल्पादौ विष्णवे मया ॥
ब्रह्मशब्दस्वरूपेण प्रसन्नेनान्तरात्मना ।
यत्प्रोक्तं तेन मे ब्रह्मन् तत्ते वक्ष्यामि यत्नत: ॥

भगवानुवाच—

शृणु ब्रह्मन् परं गुह्यं कल्पं सारस्वतं मम ।
यस्या विज्ञानमात्रेण जाड्यापहरणं भवेत् ।।
सर्वशास्त्रप्रकाशश्च सर्वज्ञो जायतेऽचिरात् ।
अभ्यासाच्च भवेद्यस्य वाचश्चित्रा भवन्ति हि ।।
अवापुस्त्रिदशा व्याप्तिं वागीशत्वं बृहस्पतिः ।
द्वैपायनोऽपि यं ज्ञात्वा वेदव्यासोऽभवन्मुनिः ।।
मन्त्रोद्धारं प्रवक्ष्यामि साङ्गावरणपूजनैः ।
अनन्तं विन्दुना युक्तं वामगण्डान्तभूषितम् ।
जपेद् द्वादशलक्षन्तु मूकोऽपि वाक्पतिर्भवेत् ।।
नाभौ शुद्धारविन्दञ्च ध्यायेद्दशदलं सुधीः ।
तन्मध्ये भावयेन्मन्त्री मण्डलानान्त्रयं चिरम् ।।
रत्नसिंहासनं ध्यायेद्वर्णं ज्योत्स्नामयं पुनः ।
तस्योपरि पुनर्ध्यायेद्देवीं वागीश्वरीं ततः ।।
मुक्ताकान्तिनिभां देवीं ज्योत्स्नाजालविकाशिनीम् ।
मुक्ताहारयुतां शुभ्रां शशिखण्डविमण्डिताम् ।।
विभ्रतीं दक्षहस्ताभ्यां व्याख्यां वर्णस्य मालिकाम् ।
अमृतेन तथा पूर्णं घटं दिव्यञ्च पुस्तकम् ।।
दधतीं वामहस्ताभ्यां पीनस्तनभरान्विताम् ।
मध्ये क्षीणां तथा स्वच्छां नानारत्नविभूषिताम् ।
आत्माभेदेन ध्यात्वैवं ततः सम्पूजयेत्क्रमात् ।।

सारस्वतकल्प—नारद ने ब्रह्मा से पूछा कि किस उपाय से विद्योत्पत्ति होती है और वेदान्त का प्रकाश होता है। ब्रह्माजी ने कहा कि यही प्रश्न मैंने कल्पारम्भ में विष्णु से पूछा था। उन्होंने बताया कि सारस्वतकल्प के जानने मात्र से जड़ता दूर होकर सभी शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त होता है। उससे आशु सर्वज्ञता मिलती है, विचित्र वाक्यरचना की शक्ति प्राप्त होती है।

इसी सारस्वतकल्प के प्रसाद से देवगण सर्वपूज्य हैं। बृहस्पति वाचस्पति और द्वैपायन वेदव्यास हुए हैं। आकार-एकार की सन्धि से जो वर्ण बनता है, उसमें बिन्दु देने से 'ऐं' बनता है। यही सारस्वत बीजमन्त्र है। इसका बारह लाख जप करने से गूंगा भी वाचस्पति बनता है।

अपनी नाभि में दश दल कमल का ध्यान करके उसमें सुशोभित सूर्यमण्डल,

चन्द्रमण्डल और वह्निमण्डल की कल्पना करे। इन मण्डलों के मध्य में ज्योत्स्नामय रत्नसिंहासन का ध्यान करके उस पर वागीश्वरी देवी का इस प्रकार ध्यान करे—

देवी के शरीर की कान्ति मोती की चमक के सामन उज्ज्वल है। ज्योत्स्ना जैसा प्रकाश उससे निकल रहा है। वे मोतियों के हार से विभूषित हैं। वर्ण शुभ्र है। अर्द्धचन्द्र से सुशोभित हैं। वागीश्वरी देवी के चार हाथ हैं। दाँयें दोनों हाथों में से एक हाथ में व्याख्यानमुद्रा और दूसरे हाथ में वर्णमाला है। बाँयें दोनों हाथों में से एक में अमृतपूर्ण कलश है और दूसरे में पुस्तक है। कमर पतली है। दोनों स्तन स्थूल हैं, जिनके भार से देवी विनम्र हैं। विविध रत्नाभूषणों से सुशोभित हैं। इस प्रकार आत्मा से अभिन्नभाव में वागीश्वरी देवी का ध्यान करके क्रमपूर्वक उनकी पूजा करे।

आद्येन दीर्घयुक्तेन कुर्यादङ्गानि हस्तयोः ।
हृदयादौ तथा कुर्याद्बीजेनाङ्गक्रियां पुनः ॥
भ्रुवोर्मध्ये तथा नाभौ गुह्ये च देशिकस्तथा ।
न्यसेद्बीजं पुनर्वस्तौ व्यापकं विन्यसेत्ततः ॥
पीठन्यासं तनौ कुर्याद्देवताभावसिद्धये ।
मातृकायास्तु यत्प्रोक्तं पीठमभ्यर्च्य यत्नतः ॥
वर्णाब्जेनासनं कुर्यान्मूर्त्तिं मूलेन कल्पयेत् ।
आवाह्य पूजयेत्तस्यां देवीं वागीश्वरीं ततः ॥
अङ्गैः प्रथमा वृत्तिः स्याद् द्वितीया शक्तिभिस्ततः ।
दलाग्रेषु समभ्यर्च्य ब्रह्माण्याद्या यथाविधि ॥
लोकपाला बहिः पूज्यास्तेषामस्त्राणि तद्बहिः ।
एवं सम्पूजयेन्मन्त्री जपपूजारतः सदा ॥
कवित्वं लभते वाग्मी लक्षैर्द्वादशभिर्ध्रुवम् ।
प्रातर्जप्त्वा सहस्त्रन्तु पिवेद् ब्राह्मीं वचान्विताम् ॥
न विस्मरति मेधावी श्रुतान् वेदागमानपि ।
कण्ठमात्रोदके स्थित्वा ध्यायेन्मार्त्तण्डमण्डले ॥
ज्योतिःपुञ्जनिभां देवीं परिवारसमन्विताम् ।
वराभययुतां हस्ते मुद्रापुस्तकधारिणीम् ॥
जपन् सहस्त्रमानेन षण्मासं विजितेन्द्रियः ।
भीमां सम्प्राप्य वाक्सिद्धिं कवीनामग्रणीर्भवेत् ॥

आं ईं ऊं ऐं औं अः से करन्यास करे। आं ईं ऊं ऐं औं अः से हृदयादि षडंग करे। जैसे—आं अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि। आं हृदयाय नमः इत्यादि।

। भ्रूमध्य, नाभि, गुह्य और वस्ति में बीजन्यास करके व्यापक न्यास क
व की सिद्धि के लिये अपने शरीर में पीठन्यास करे। पूर्वोक्त मातृकाओं व
करे। तब 'वर्णपद्मासनाय नमः' से आसन देकर मूलमन्त्र से देवी की मृ
करके आवाहनपूर्वक वागीश्वरी का पूजन करे।

म आवरण में आं हृदयाय नमः। ईं शिरसे स्वाहा। ऊं शिखायै वषट्। ऐं व
नेत्रत्रयाय वौषट्। अः अस्त्राय फट् से षडंग पूजन करे। द्वितीय आव
ों की पूजा करे। तृतीय आवरण में ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं की पूज
ावरण में इन्द्रादि दश लोकपालों और पञ्चम आवरण में वज्रादि उनके
न भूपुर में करे।

वागीश्वरी यन्त्र

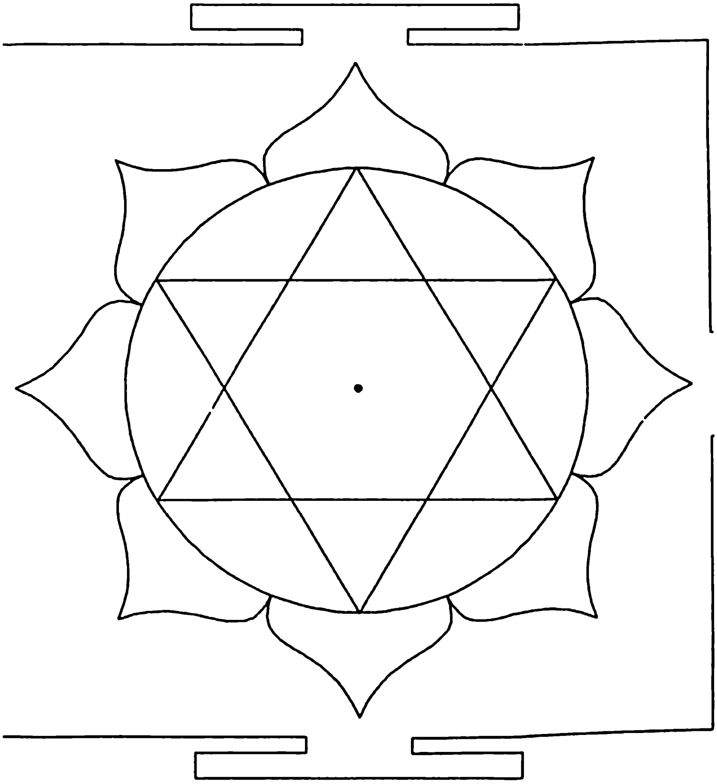

रह लाख जप करने से वक्तृता शक्ति और कवित्व शक्ति प्राप्त होती है। प्रात
त्र का एक हजार जप कर ब्राह्मी रस और वच का पान करने से मेधा शक्ति
ठ में श्रुति-वेद-आगमादि विराजमान हो जाते हैं और उनकी विस्मृति नहीं

गले तक नदी-जल या सरोवर के जल में खड़े होकर सूर्यमण्डल में देवी का इस प्रकार ध्यान करे—

ज्योतिःपुञ्जनिभां देवीं परिवारसमन्विताम्।
वराभययुतां हस्ते मुद्रापुस्तकधारिणीम्।।

वागीश्वरी देवी की प्रभा ज्योतिःपुञ्ज के समान है। ये परिवार से समन्वित हैं। हाथों में वर, अभय, व्याख्यान मुद्रा और पुस्तक हैं।

इस प्रकार का ध्यान करते हुए छः महीने तक इन्द्रियसंयमपूर्वक प्रतिदिन वागीश्वरी मन्त्र का एक हजार जप करने से साधक को वाक्सिद्धि प्राप्त होती है। वह कवियों में श्रेष्ठ होता है।

अथ प्रयोगं वक्ष्यामि जाड्यनाशकरं परम् ।
रात्रिशेषे समुत्थाय शुचिर्भूत्वा समाहितः ।।
शुद्धभावेन चात्मानं गुरुञ्च परिकल्पयेत् ।
तत्प्रभापटलं व्याप्तं जगत्सर्वं विचिन्तयेत् ।।
मूलाधारे स्थितां देवीं कुण्डलीं परदेवताम् ।
सुप्तां प्रोत्थाय तां शक्त्या क्रमाच्चक्राणि भेदयेत् ।।
ततः परशिवे नीत्वा सौधीञ्च प्रापयेत्ततः ।
ऊर्ध्वग्रन्थिं विनिर्भिद्य जित्वा दीपस्वरूपिणीम् ।।
बीजरूपस्वशक्त्या तु प्रोल्लसन्तीं परात्मिकाम् ।
शब्दब्रह्मस्वरूपाञ्च निश्चलां चिन्तयेत्ततः ।।
तत्प्रभापटलव्याप्तं शरीरं चिन्तयेत्ततः ।
नित्यं सहस्रमानेन जपेत्संवत्सरं यदि ।
ततः सञ्जायते मन्त्री वाचस्पतिरिवापरः ।।
छन्दोऽलंकार-तर्कादि-नानाशास्त्रार्थविद्भवेत् ।
कवित्वं ज्ञानशक्त्या तु पाण्डित्यमधिकं भवेत् ।।
अथापरं प्रवक्ष्यामि योगं भुवि सुदुर्लभम् ।
नाभिचक्रे स्थितां सौम्यां रक्ताकारां विचिन्तयेत् ।।
क्षौमाबद्धनितम्बाञ्च रक्ताभरणभूषिताम् ।
पाशांकुशधरां दिव्यां वराभययुतां पुनः ।।
दृष्ट्या चामृतवर्षिण्या पूरयन्तीं मनोरथान् ।
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं मनुजो विहितं ततः ।।
होमं कुर्यात्त्रिमध्वक्तं रक्तोत्पलयुतैर्द्विजः ।

ततः सन्तर्पयेद्देवीं दुग्धयुक्तेन सर्पिषा ॥
पायसेन बलिं दद्याद्दधिपिष्टैर्मधुप्लुतैः ।
एवं कृत्वा विधानन्तु साक्षाद्वैश्रवणो भवेत् ॥

रात समाप्त होने पर उठकर पवित्र भाव से एकाग्र होकर आत्मा को गुरुरूप में ध्यान करके यह भावना करे कि सारा संसार उनके तेज से व्याप्त है। मूलाधार में स्थित परदेवतास्वरूपा सोई हुई कुण्डलिनी देवी को जगाकर क्रमशः षट्चक्रों का भेदन करते हुए परमशिव के पास लाकर सहस्त्रारस्थित सुधा प्रदान करे। इसके बाद ऊर्ध्व ग्रन्थि का भेदन करके दीपस्वरूपा बीजस्वरूपा अपनी शक्ति से देदीप्यमान शब्दब्रह्मरूपा कुल-कुण्डलिनी देवी को परमशिव के साथ निश्चल भाव से संलग्न होते हुए ध्यान करे। यह भावना करे कि उस देवी की देहप्रभा से अपना शरीर व्याप्त है।

इस प्रकार के अनुष्ठान में रत एक वर्ष तक प्रतिदिन वागीश्वरी मन्त्र का एक हजार जप करने से साधक दूसरे वृहस्पति के समान होकर छन्द, अलंकार और तर्कादि विविध शास्त्रों की मीमांसा करने में दक्ष होता है। वह ज्ञानशक्ति के साथ कवित्व और सभी शास्त्रों का पाण्डित्यलाभ करता है।

एक अन्य प्रयोग है। अपने नाभिचक्र में सौम्य मूर्ति वाली लोहितवर्णा, पट्टवस्त्र-धारिणी, रक्तालंकारभूषिता, पांशाकुशधारिणी, दिव्यरूपा, वराभययुक्ता, अपनी दृष्टि से अमृतवर्षा करने वाली देवी का ध्यान करे। इस प्रकार का ध्यान करने से देवी साधक के मनोरथों को पूर्ण करती है। यह ध्यान इस प्रकार कहा गया है—

नाभिचक्रे स्थितां सौम्यां रक्ताकारां विचिन्तयेत्।
क्षौमाबद्धनितम्बाञ्च रक्ताभरणभूषिताम्।।
पाशांकुशधरां दिव्यां वराभययुतां पुनः।
दृष्ट्या चामृतवर्षिण्या पूरयन्तीं मनोरथान्।।

ऐसा ध्यान करके मन्त्र का एक लाख जप करे। तब त्रिमधुराक्त रक्तोत्पल से एक लाख हवन करे। दूध और घी मिलाकर देवी का तर्पण करे। मधुमिश्रित दही, पिष्टक और पायस की बलि प्रदान करे। इस प्रकार की उपासना करने से साधक कुबेर के समान धनवान हो जाता है।

सिद्धार्थस्त्रिमधूपेतैर्हुत्वा जगद्वशं नयेत् ।
पद्महोमेन महतीं प्राप्नुयाच्छ्रियमूर्ज्जिताम् ॥
देवीहृदयविद्याया नास्ति किञ्चित्सुदुर्लभम् ।
स्नेहभावेन सम्प्रोक्तं न देयं यस्य कस्यचित् ॥
एतत्ते कथितं गुह्यं विद्योत्पत्तेश्च कारणम् ।

विष्णुना दत्तमस्मभ्यं मया तुभ्यं द्विजोत्तम ॥
सिद्धमन्त्रो यदा मन्त्री बालीशस्यापि मूर्धनि ।
हस्तं दत्त्वा स्पृशेत् सोऽपि सौधीं वाचमनर्गलाम् ।
गद्यपद्यमयीं ब्राह्मीं सिद्धविद्याप्रसादतः ॥

इति स्वायम्भुवमातृकातन्त्रे सारस्वतः पटलः

◆

उक्त मन्त्र के जप के बाद त्रिमधुराक्त श्वेतसरसो से हवन करने से तीनों लोक वशीभूत होते हैं। कमल से हवन करने पर अपार सम्पत्ति प्राप्त होती है।

इस विद्या की उपासना से साधक को त्रिलोक में कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं रहता। इस मन्त्र को सिद्ध करने वाला यदि किसी मूर्ख के मस्तक पर हाथ रखकर मन्त्र का जप करे तो वह मूर्ख भी पंडित के समान गद्य-पद्यमयी वाणी बोलने लगता है। उपर्युक्त वर्णन स्वायम्भुवमातृकातन्त्र के सारस्वत पटल का सारांश है।

कात्यायनीकल्पः

भगवानुवाच—

अतिगुह्यतरं मन्त्रं पृष्टवत्यसि पार्वति ।
भक्तिभावेन ते देवि कथयामि शुचिस्मिते ॥
प्रसन्नतां यदा याति देवि कात्यायनी तदा ।
कवितामतुलैश्वर्यं ददाति पदमुत्तमम् ॥
स्त्रीणामाकर्षणञ्चैव मारणोच्चाटने रिपोः ।
नृपाणां वश्यता चैव जायते च तथा प्रिये ॥
कथयामि तथा सर्वं भक्त्या कलय मद्वचः ।
आदौ श्रृणु महामन्त्रं वाग्भवादिनमोऽन्तकम् ।
वह्न्यासनं शिवं वान्तं विन्दुशान्तिविभूषितम् ॥
चकारं विन्दुना युक्तं चतुर्दशस्वरान्वितम् ।
ङेयुता चण्डिका चैव मन्त्रः प्रोक्तो दशाक्षरः ॥
चिन्तामणिरिति ख्यातो मायाद्यापि विचिन्त्यते ।
देवता चण्डिका छन्दो गायत्री कपिलो मुनिः ॥
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्ततः ।
मातृकोक्ते यजेत्पीठे बीजेनाङ्गक्रिया मता ॥
आदावङ्गानि सम्पूज्य शस्त्रपूजा ततः परम् ।

लोकपालास्ततः पूज्यास्तेषामस्त्राणि तद्बहिः ॥
डाकिनी योगिनी चैव खेचरी शाकिनी तथा ।
दिक्षु पूज्या इमा देव्यः सुसिद्धाः फलदायिकाः ॥

ततो ध्यानम्—

सव्यपादसरोजेनालंकृतोरुमृगाधिपाम् ।
वामपादाग्रदलितमहिषासुरनिर्भराम् ॥
सुप्रसन्नां सुवदनां चारुनेत्रत्रयान्विताम् ।
हारनूपुरकेयूरजटामुकुटमण्डिताम् ॥
विचित्रपट्टवसनामर्द्धचन्द्रविभूषिताम् ।
खड्गखेटकवज्राणि त्रिशूलं विशिखं तथा ॥
धारयन्तीं धनुः पाशं शङ्खं घण्टां सरोरुहाम् ।
बाहुभिर्ललितैर्देवीं कोटिचन्द्रसमप्रभाम् ॥
समावृतैर्दिविषदैर्देवैराकाशसंस्थितैः ।
स्तूयमानां मोदमानैर्लोकपालादिभिः सदा ।
एवं सञ्चिन्तयेद्देवीं जायते नरपुङ्गवः ॥

कात्यायनीकल्प—महादेव ने पार्वती से कहा कि हे देवि! कात्यायनी देवी प्रसन्न होकर साधक को अतुल ऐश्वर्य और कवित्व शक्ति प्रदान करती हैं। इनके मन्त्र के प्रभाव से स्त्रियों का आकर्षण, शत्रु का मारण और उच्चाटन तथा राजा का वशीकरण होता है। इनका मन्त्र है—ऐं ह्रीं श्रीं चौं चण्डिकायै नम:। यह दशाक्षर है।

कात्यायनी देवी का यह मन्त्र चिन्तामणि के समान है। इस मन्त्र की देवता चंडिका देवी, छन्द गायत्री एवं ऋषि कपिल हैं। एक लाख जप और दस हजार हवन से इसका पुरश्चरण होता है। मातृका यन्त्र में इसका पूजन होता है। मूल बीज से करांगन्यास करना चाहिये।

अंगपूजा के बाद देवी के अस्त्रों की पूजा करे। तब लोकपालों की पूजा करे। तब उनके आयुधों की पूजा करे। पूर्वादि चार दिशाओं में डाकिनी, योगिनी, खेचरी और शाकिनी की पूजा करे। ये देवियाँ सिद्ध होने पर तुरन्त फल प्रदान करती हैं। इसके बाद कात्यायनी देवी का इस प्रकार ध्यान करे—

देवी का दाँयाँ चरणकमल सिंह पर है। बाँयें पैर से महिषासुर को विदलित कर रही हैं। मुख पर प्रसन्नता है। सुन्दर तीन नेत्र हैं। हार, नूपुर, केयूर, जटा, मुकुट आदि अलंकारों से अलंकृत हैं। विचित्र पट्ट उनका वस्त्र है। मस्तक पर अर्द्धचन्द्र है। खड्ग, खेटक, वज्र, त्रिशूल, वाण, धनुष, पाश, शंख, घंटा और कमल दश भुजाओं में हैं।

करोड़ों चन्द्रमा के समान प्रभा वाली हैं। आकाश में स्थित इन्द्रादि देवगण उन्हें सदैव घेरे रहते हैं। लोकपालगण प्रसन्नतापूर्वक सदैव उनकी वन्दना करते हैं।

क्षत्रियेषु यथा रामो देवेषु च पुरन्दरः ।
भुजङ्गेषु यथा तार्क्ष्यः क्रूरकार्यो यथा शनिः ॥
शकुन्तेषु यथा श्येनो मन्त्रज्ञो बलवांस्तथा ।
इदन्तु परमं गुह्यं संक्षेपात्कथितं मया ॥
इदानीं जपहोमानां विधानञ्च शृणु प्रिये ।
मन्त्रोऽयं चिन्त्यते देवि सभायां पुरतो यदि ॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशो दृश्यते वादिभिस्तथा ।
पलायन्ते महादेवि साध्वसेन क्षणात्ततः ॥
ईषे मास्यसिते पक्षे नवम्यामारभेज्जपम् ।
सहस्रं प्रत्यहं कृत्वा सम्प्राप्य नवमीं सिताम् ॥
विजयं खड्गमादाय पूजयित्वा यथाविधि ।
अर्द्धरात्रे बलिं दत्त्वा प्रातर्यात्रां समाचरेत् ॥
रणभूमिं समासाद्य सहस्रं प्रजपेन्मनुम् ।
तं दृष्ट्वा पुरुषं देवि हृत्क्षोभो जायते रिपोः ॥
सदूतं यममायातं मन्यमाना नराधिपाः ।
पलायन्ते महादेवि नात्र कार्या विचारणा ॥
शुक्लाम्बरधरो मौनी ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
शुक्लवर्णां महादेवीं ध्यात्वा शुक्लविभूषणाम् ॥
सहस्रं मासमेकन्तु जपेन्नित्यं यथाविधि ।
मालती-बकुलैः कुन्दैर्मन्त्री मधुरसंयुतैः ॥
सहस्रत्रितयं हुत्वा वागीशो जायतेऽचिरात् ।
हेलया कवितां देवि विशदां कुरुते द्रुतम् ॥
जपं वा कुरुते नित्यं शतशो वत्सरावधि ।
बन्ध्यापि लभते पुत्रः कार्त्तिकेयपराक्रमम् ।
दुर्भगा च भवेत्पत्युः सुभगातिमनोरमा ॥

जिस प्रकार राजाओं में रामचन्द्र, देवताओं में इन्द्र, सर्पों के बीच में गरुड़, क्रूर कर्मों में शनि, पक्षियों में बाज श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार भगवती का ध्यान करने वाला व्यक्ति मनुष्यों में प्रधान और बलवान होता है। सभा में कात्यायनी मन्त्र के जप से प्रतिपक्षी उसे कोटि सूर्य के तेज से सम्पन्न देखकर तुरन्त ही भाग खड़े होते हैं।

आश्विन मास की कृष्ण नवमी तिथि से आरम्भ करके शुक्ल नवमी तक प्रतिदिन उक्त मन्त्र का एक हजार जप करने से विजयखड्ग प्राप्त होता है। रथयात्रा के पूर्व दिवस में यथाविधि पूजा करके अर्द्ध रात्रि के समय बलिदान देकर अगले दिन प्रातः युद्ध के लिये प्रस्थान करे। रणभूमि में उपस्थित होकर कात्यायनी मन्त्र का एक हजार जप करे।

ऐसा करने से उसके देखने मात्र से ही शत्रुओं का हृदय क्षुब्ध हो जाता है। उसे दूतवर्ग से परिवृत यमराज के समान देखकर राजा लोग पलायन कर जाते हैं।

श्वेत वस्त्र धारण करके मौन होकर ब्रह्मचारी के समान संयत मन से शुक्ल वर्णा, शुक्लविभूषणा महादेवी का ध्यान करे। एक महीने तक प्रतिदिन एक हजार जप करे। तब मालती या कुन्दपुष्पों को त्रिमधुराक्त करके तीन हजार हवन करे। इससे साधक आशु वागीश्वरत्व प्राप्त करता है। वह अनायास ही कविता रचने में समर्थ होता है।

एक वर्ष तक प्रतिदिन एक सौ जप करने वाली वन्ध्या नारी भी षडानन के समान रूपवान और पराक्रमी पुत्ररत्न प्राप्त करती है। मन्दभाग्या नारी भी स्वामी के सौभाग्य की वृद्धि करके उसकी प्रियतमा बनती है।

रूपं विचिन्त्य पूर्वोक्तं लक्षं जप्त्वायुतं ततः ।
नीलोत्पलैः सरोजैर्वा हुत्वा वैश्रवणायते ॥
व्याघ्रचर्मपरीधानां मुण्डमालाविभूषिताम् ।
रक्तवर्तुलभीमाक्षीं जिह्वया लोलयासुरान् ॥
चर्वयन्तीं महाकालीं कालरात्रिमिवापराम् ।
क्षोभयन्तीं जगत्सर्वं ससुरासुरपर्वतान् ॥
एवं ध्यात्वा जपेद्देवीं श्मशाने वा चतुष्पथे ।
सप्ताहं त्रिशतं कृत्वा व्रतस्थः स्थिरमानसः ।
जपेद् यो नियतं देवि स रिपून्नाशयेद् ध्रुवम् ॥
अनेनैव विधानेन बलिं दद्याच्चतुष्पथे ।
दग्धमत्स्यं सरक्तान्नं पिण्डीकृत्य समाहितः ॥
आममांसं हरिद्राक्तं यं विचिन्त्य प्रदापयेत् ।
सप्ताहाल्लभते शत्रुर्यमसद्म न संशयः ।
हरिर्वा शंकरो वापि न शक्तो रक्षितुं क्वचित् ॥

बलिमन्त्रस्तु—

उमाबीजयुगञ्चादौ चामुण्डाबीजयुग्मकम् ।
कालि-कालि पदञ्चोक्त्वा खादय द्वितयं ततः ॥
वशीकुरु महासत्त्वानादिद्वन्द्वं पुनर्वदेत् ।

वह्निजायां ततः प्रोक्त्वा बलिमन्त्रः शुभावहः ।।
उमाबीजं हृल्लेखाबीजं चामुण्डाबीजं श्यामाबीजम्।

एणाजिनं परिधाय उपविश्य निजाङ्गने ।
आत्मानं घोररूपञ्च चिन्तयित्वा समाहितः ।।
अङ्गारकदिने चैव निन्दितासु तिथिष्वपि ।
पूजितं खड्गमादाय निशीथे बलिमाहरेत् ।।
प्रहारशोणितञ्चास्य दद्याद्देव्यै यथाविधि ।
अच्छेद्याभेद्यकायः स्याद्रिपूणां नात्र संशयः ।।
मायाबीजं समुद्धृत्य रमाबीजं ततः परम् ।
कत्यायनीपदं ङेऽन्तं वह्नेर्भार्या ततः परम् ।।
अष्टाक्षरी महाविद्या सर्वकामफलप्रदा ।
ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्ववच्च समाचरेत् ।।

इति कात्यायनीकल्पः

●

पूर्वोक्त प्रकार का ध्यान करते हुए पूर्वोक्त मन्त्र का एक लाख जप करके नीलोत्पल या कमल द्वारा दश हजार हवन करने से साधक कुबेर के समान धनवान हो जाता है।

साधक श्मशान या चौराहे में बैठकर देवी कात्यायनी का इस प्रकार ध्यान करे—

व्याघ्रचर्मपरीधानां मुण्डमालाविभूषिताम्।
रक्तवर्तुलभीमाक्षीं जिह्वया लोलयासुरान्।।
चर्वयन्तीं महाकालीं कालरात्रिमिवापराम्।
क्षोभयन्तीं जगत्सर्वं ससुरासुरपर्वतान्।।

कात्यायनी देवी व्याघ्रचर्म धारण की हुई हैं। मुण्डमाला से विभूषित हैं। नेत्रों का वर्ण लाल है। वे वर्तुलाकार भयंकर हैं। लपलपाती जीभ से असुरों का चर्वण कर रही हैं। महाकाली रूप में दूसरी कालरात्रि के समान सुरासुर-पर्वतसहित तीनों लोकों को क्षोभित कर रही हैं।

ऐसा ध्यान करके स्थिर मन से एक सप्ताह तक तीन सौ मन्त्र जप करने से शत्रुओं का नाश होता है।

इस प्रकार जप करके चौराहे के मध्य में दग्ध मछली और खूनसहित अन्न को पिंडाकार बनाकर उसके साथ हरिद्राक्त आम मांस मिलाकर जिस व्यक्ति का चिन्तन करते हुए बलि दी जाती है, वह शत्रु एक सप्ताह के अन्दर मृत्यु को प्राप्त होता है।

बलिमन्त्र यह है—ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं कालि कालि खादय खादय वशी कुरु महासत्त्वान् ह्रीं ह्रीं स्वाहा।

हरिणचर्म पहन कर अपने आँगन में बैठे। अपने को भयंकर रूप का ध्यान करके मंगल के दिन और निन्दित तिथि में पूजित खड्ग द्वारा आधी रात में अपने शरीर का रुधिर निकाल कर विधिपूर्वक बलि देने से शत्रु के लिये साधक अच्छेद्य और अभेद्य बन जाता है।

कात्यायनी देवी का अन्य अष्टाक्षर मन्त्र है—ह्रीं श्रीं कात्यायन्यै स्वाहा। यह मन्त्र साधक की सभी कामनाओं को पूर्ण करता है। इसका ध्यान-पूजन आदि पूर्वोक्त मन्त्र के समान ही है।

दुर्गामन्त्राः

विश्वसारे—

अथ दुर्गामनुं वक्ष्ये शृणुष्व कमलानने।
यस्याः प्रसादमात्रेण भवेद् गङ्गाधरः स्वयम्॥
थान्तबीजं समुद्धृत्य वामकर्णाभिभूषितम्।
इन्दुविन्दुसमायुक्तं बीजं परमदुर्लभम्॥
चतुर्वर्गप्रदं साक्षान्महापातकनाशनम्।
एकाक्षरीसमा नास्ति विद्या त्रिभुवने प्रिये॥
विना गन्धैर्विना पुष्पैर्विना होमपुरःसरैः।
विनायासैर्महादेवि जपमात्रेण सिद्धिदा॥
मन्त्रस्यास्य ऋषिर्देवि नारदः परिकीर्त्तितः।
गायत्रीच्छन्दः आख्यातं जगद्धात्री च देवता।
चतुर्वर्गप्रदा दुर्गा सर्वसत्त्वेषु संस्थिता॥
विविधा सा महाविद्या तच्छृणुष्व गणेश्वरि।
कूर्चाद्यां वा जपेद्विद्यां तदन्ते वह्निसुन्दरी॥
लज्जाद्यां वा जपेद्विद्यां फडन्तां वा जपेत्सुधीः।
वधूबीजयुतां वापि स्वाहान्तां वा जपेत्पुनः॥
लक्ष्म्याद्यां वा जपेद्विद्यां चतुर्वर्गफलाप्तये।
वाग्भवाद्यां जपेद्वापि प्रणवाद्यां जपेत्पुनः॥
कामबीजादिकं वापि फडन्तां वा जपेत्सुधीः।
त्र्यक्षरी विविधा विद्या कथिता ब्रह्मणा पुरा॥
दीर्घस्वरसमायुक्तनिजबीजानि पार्वति।
विन्यसेदात्मनो देहे हृदयादिषु पूर्ववत्॥

दुर्गामन्त्र—विश्वसारतन्त्र में लिखा है कि दुर्गामन्त्र की उपासना से महेश्वर की प्राप्ति होती है। दुर्गा का एकाक्षर मन्त्र 'दुं' है। यह मन्त्र परम दुर्लभ, चतुर्वर्गदायक और महापापनाशक है। त्रिभुवन में इसके समान दूसरी विद्या कोई नहीं है। गन्ध-पुष्प और हवन के विना केवल जप से ही इस मन्त्र की सिद्धि होती है। इस मन्त्र के ऋषि नारद, छन्द गायत्री और देवता सबों को चतुर्वर्ग देने वाली, सभी प्राणियों में संस्थित जगद्धात्री दुर्गा देवी हैं।

चतुर्वर्गदायिनी दुर्गा का यह एकाक्षर मन्त्र सभी बीजों में अधिष्ठित है। यह द्व्यक्षर, त्र्यक्षर और चतुरक्षर होता है। इस एकाक्षर मन्त्र के आदि में हूं और अन्त में स्वाहा लगाकर जप करे। अथवा पहले ह्रीं लगाकर बाद में फट् लगाकर जप करे। अथवा आदि में स्त्रीं लगाकर जप करे या वधूवीजयुक्त एकाक्षर मन्त्र के अन्त में स्वाहा लगाकर जप करे। चतुर्वर्ग की प्राप्ति के लिए एकाक्षर मन्त्र के आदि में श्रीं लगाकर जप करे। अथवा इसके पहले ऐं लगाने से पहला द्व्यक्षर, ॐ लगाने से दूसरा द्व्यक्षर और क्लीं लगाने से तीसरा द्व्यक्षर मन्त्र बनता है। कामबीजादि मन्त्र में फट् लगाने से एक अन्य मन्त्र होता है। इस प्रकार कुल नौ मन्त्र बनते हैं—

१. हूं दुं स्वाहा २. ह्रीं दुं फट्। ३. स्त्रीं दुं। ४. स्त्रीं दुं स्वाहा। ५. श्रीं दुं। ६. ऐं दुं। ७. ॐ दुं। ८. क्लीं दुं। ९ क्ली दुं फट्।

पूर्वकाल में ब्रह्मा ने दकार, उकार और बिन्दुरूप त्र्यक्षर मूल मन्त्र दुं का विविध रूप बतलाया है। इसी मूल मन्त्र में षड्दीर्घ स्वर लगाकर करांग न्यास करे।

करन्यास—दां अंगुष्ठाभ्यां नमः। दीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। दूं मध्यमाभ्यां वषट्। दैं अनामिकाभ्यां हुं। दौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। दः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

हृदयादि न्यास—दां हृदयाय नमः। दीं शिरसे स्वाहा। दूं शिखायै वषट्। दैं कवचाय हुं। दौं नेत्रत्रयाय वौषट्। दः अस्त्राय फट्।

पूर्ववन्न्यासवर्गन्तु पूर्ववत्कर्म चाचरेत् ।
कालीवदाचरेद्विद्यां जपेद्विद्यामहर्निशम् ॥
लक्षैर्द्वादशकैर्देवि पुरश्चरणमीरितम् ।
यथास्थाने यथाकाले यथाचारविधानतः ।
प्रजपेत्परया भक्त्या दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥
मत्स्यमांसैः सूपपूपैर्मृगैः शशकशल्लकैः ।
पूजयेत्परया भक्त्या दुर्गां दुर्गतिहारिणीम् ॥
स्वयम्भूकुसुमैः शुक्रैः सुगन्धिकुसुमान्वितैः ।
जवायावकसिन्दूरैः रक्तचन्दनसंयुतैः ।

नानामांसैर्नानाद्रव्यैः पूजयेत्परमेश्वरीम् ॥
काकैः शुकैश्च महिषैश्छागैर्मेषैर्नरैस्तथा ।
गजैरुष्ट्रैः खरैर्गृध्रैः पूजयेद्विधिनामुना ।
तदा भवेन्महासिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा ॥

ध्यानन्तु—

सिंहस्कन्धाधिरूढां नानालङ्कारभूषिताम् ।
चतुर्भुजां महादेवीं नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥
शंखशार्ङ्गसमायुक्तवामपाणिद्वयान्विताम् ।
चक्रञ्च पञ्चवाणांश्च धारयन्तीञ्च दक्षिणे ॥
रक्तवस्त्रपरीधानां बालार्कसदृशीं तनुम् ।
नारदाद्यैर्मुनिगणैः सेवितां भवसुन्दरीम् ।
त्रिवलीवलयोपेत - नाभिनाल - मृणालिनीम् ॥
रत्नद्वीपमयद्वीपे सिंहासनसमन्विते ।
प्रफुल्लकमलारूढां ध्यायेत्तां भवगेहिनीम् ॥

कालीपूजा-पद्धति में लिखित नियमानुसार सभी पूजनादि करके दिन-रात इस मन्त्र का जप करे। बारह लाख जप से इसका पुरश्चरण होता है। उपयुक्त स्थान में विहित काल में शास्त्रोक्त नियम से परम भक्ति के साथ दुर्गतिनाशिनी दुर्गा देवी के मन्त्र का जप करे। मत्स्य, मांस, सूप, पूप, मृग, शशक और शल्लकी के मांसादि उपचारों से अति भक्तिपूर्वक दुर्गतिनाशिनी दुर्गा देवी की पूजा करे।

स्वयम्भू पुष्प, सुगन्धित पुष्पयुक्त शुक्र, रक्तचन्दनयुक्त अड़हुल, अलता, सिन्दूर, नानाविध मांस और नानाविध द्रव्यों से परमेश्वरी का अर्चन करे।

काक, शुक, महिष, छाग, नर, गज, ऊँट, खर और गीध की बलि देकर यथाविधि पूजा करे। इस प्रकार दुर्गा देवी की उपासना करने से निःसन्देह मन्त्र-सिद्धि होती है।

दुर्गा देवी का ध्यान निम्न प्रकार से करे—

दुर्गा देवी सिंह पर सवार हैं। विविध आभूषणों से विभूषित हैं। इनकी भुजायें चार हैं। नागनिर्मित यज्ञोपवीत है। बाँयें दोनों हाथों में शंख और शार्ङ्ग तथा दाँयें दोनों हाथों में चक्र और पाँच वाण हैं। वस्त्र का रंग लाल है। उनका शरीर तरुण सूर्य के समान उज्ज्वल है। इन भुवनमोहिनी की सेवा नारदादि मुनि सदैव करते हैं। नाभिपद्म का नालरूप मृणाल त्रिवलीवलय से युक्त होकर सुशोभित है। रत्ननिर्मित महाद्वीप में सिंह के आसन पर प्रफुल्ल कमल के ऊपर देवी आसीन हैं। इस प्रकार की भवमोहिनी का मैं ध्यान करता हूँ।

दुर्गायन्त्रं प्रवक्ष्यामि शृणुष्व हरवल्लभे ।
त्रिकोणं विन्यसेत्पूर्वं नवकोणसमन्वितम् ।।
त्रिविम्बसहितं कार्यमष्टपत्रसमन्वितम् ।
त्रिरेखासहितं कार्यं रुद्रभूपुरसंयुतम् ।।
समीकृत्य यथोक्तेन विलिखेद्विधिनामुना ।
नानास्त्रसंयुतं लेख्यं चक्रं मन्त्रसमन्वितम् ।।
तत्र तां पूजयेद्देवीं मूलप्रकृतिरूपिणीम् ।
पद्मस्थां पूजयेद्दुर्गां सिंहपृष्ठनिषेदुषीम् ।
प्रभाद्याः शक्तयः पूज्या गन्धाद्यैर्नवकोणके ।।
प्रभा माया जया सूक्ष्मा विशुद्धा नन्दिनी पुनः ।
सुप्रभा विजया सर्वसिद्धिदा नव शक्तयः ।।
ह्रीमाद्याः पूजयेत्तास्तु गन्धचन्दनवारिणा ।
ॐकारं पूर्वमुच्चार्य ह्रींकारं तदनन्तरम् ।।
यथा पदं चतुर्थ्यन्तं पूजयेत्क्रमतः प्रिये ।
शंखपद्मनिधी देव्या वामदक्षिणयोगतः ।।
पूजयेत्परया भक्त्या रक्तचन्दनपूर्वकैः ।
अर्घ्यदानं सदा कुर्यात् पूजान्ते पर्वतात्मजे ।।
अङ्गावृत्तिः पुनः पूज्याः पत्रकोणेषु मातरः ।
वज्राद्यायुधसंयुक्ता भूपुरे लोकपालकाः ।।

इति दुर्गामन्त्राः

●

पूजायन्त्र इस प्रकार का है पहले त्रिकोण बनाकर उसके साथ नव कोण-विशिष्ट चक्र बनाए। उसके बाहर तीन वृत्त, तब अष्टदल पद्म और उसके बाहर चतुर्द्वारयुक्त त्रिरेखात्मक भूपुर बनाये। नियमानुसार समभाव से यन्त्र अंकित करे। इस यन्त्र के मध्य में देवी का मूल मन्त्र लिखकर उसमें मूल प्रकृतिरूपिणी दुर्गादेवी की पूजा करे। (चित्र अगले पृष्ठ पर अंकित है)

सिंह की पीठ पर सवार दुर्गा देवी की पूजा करके गन्धादि उपचारों से नवकोणों में नव शक्तियों की पूजा करे। जैसे—ॐ ह्रीं प्रभायै नमः। ॐ ह्रीं मायायै नमः। ॐ ह्रीं जयायै नमः। ॐ ह्रीं सूक्ष्मायै नमः। ॐ ह्रीं विशुद्धायै नमः। ॐ ह्रीं नन्दिन्यै नमः। ॐ ह्रीं सुप्रभायै नमः। ॐ ह्रीं विजयायै नमः। ॐ ह्रीं सर्वसिद्धिदायै नमः। देवी के वाम भाग में शंखनिधि और दक्षिण भाग में पद्मनिधि की पूजा करे। परम भक्ति से देवी को रक्तचन्दन

से अर्घ्य देकर पुनः षडंग पूजन करे। अष्टदल पद्मपत्रों में ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं की पूजा करे। भूपुर में इन्द्रादि दश लोकपालों और वज्रादि दश आयुधों की पूजा करके अर्चन पूरा करे।

दुर्गा यन्त्र

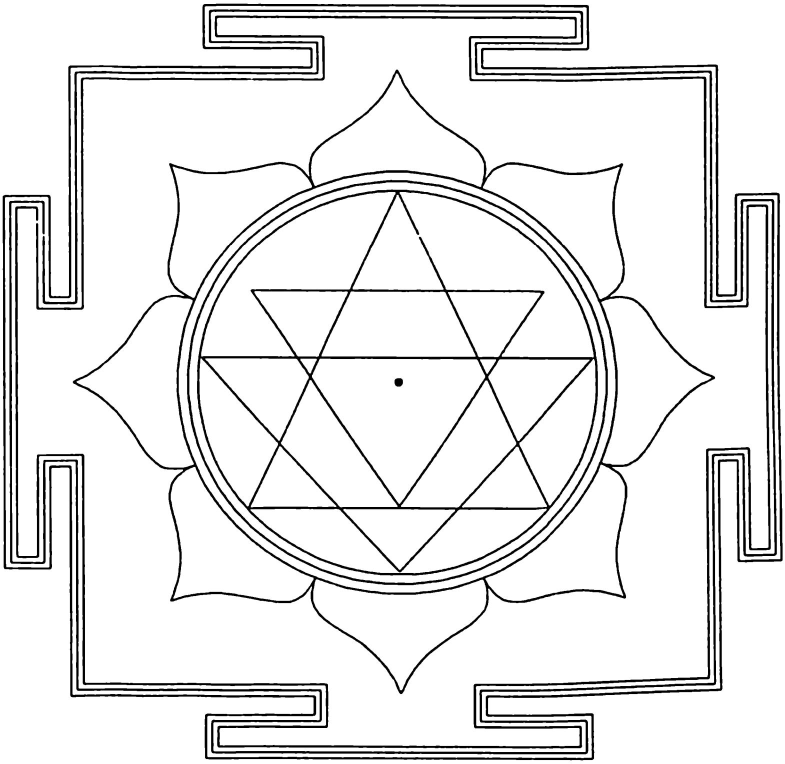

विशालाक्षीमन्त्राः

आदियामले ईश्वर उवाच—

ध्रुवमाद्यं समुद्धृत्य मायाबीजं समुद्धरेत्।
विशालाक्षीपदं ङेऽन्तं हृदन्तं मन्त्रमुद्धरेत्॥
अष्टाक्षरी महाविद्या अष्टसिद्धिप्रदा शिवे।
प्रसङ्गात् कथिता विद्या त्रैलोक्यदुर्लभा प्रिये॥
ऋषिरस्य महेशानि सदाशिवो महाप्रभुः।
पंक्तिच्छन्दश्च कथितं विशालाक्षी च देवता॥
शक्तिः प्रणवमित्युक्तं लज्जाबीजञ्च बीजकम्।

धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।।
अङ्गन्यासकरन्यासौ यथावदभिधीयते ।
षड्दीर्घभाजा बीजेन प्रणवाद्येन कल्पयेत् ।।

वाक्यन्तु ॐ ह्रां हृदयाय नमः इत्यादि।

मूलेन व्यापकं न्यस्य ध्यायेद्देवीं परां शिवाम् ।
ध्यायेद्देवीं विशालाक्षीं तप्तजाम्बुनदप्रभाम् ।।
द्विभुजामन्वितां चण्डीं खड्गखेटकधारिणीम् ।
नानालङ्कारसुभगां रक्ताम्बरधरां शुभाम् ।।
सदा षोडशवर्षीयां प्रसन्नास्यां त्रिलोचनाम् ।
मुण्डमालावलीरम्यां पीनोन्नतपयोधराम् ।।
शवोपरि महादेवीं जटामुकुटमण्डिताम् ।
शत्रुक्षयकरीं देवीं साधकाभीष्टदायिकाम् ।।
सर्वसौभाग्यजननीं महासम्पत्प्रदां स्मरेत् ।
एवं ध्यात्वा महादेवीमुपचारैः प्रपूजयेत् ।।

विशालाक्षी मन्त्र—'आदियामल' में ईश्वर ने बताया है कि 'ॐ ह्रीं विशालाक्ष्यै नमः'—यह विशालाक्षी मन्त्र आठ अक्षरों का है। यह महाविद्या अष्टसिद्धिदायिनी है। यह मन्त्र तीनों लोकों में दुर्लभ है।

इसके ऋषि सदाशिव, छन्द पंक्ति, देवता विशालाक्षी, बीज ॐ, शक्ति ह्रीं है। चतुर्वर्ग-लाभ के लिये इसका विनियोग होता है।

करन्यास—ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः। ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट्। ह्रैं अनामिकाभ्यां हुं। ह्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

अंगन्यास—ह्रां हृदयाय नमः। ह्रीं शिरसे स्वाहा। ह्रूं शिखायै वषट्। ह्रैं कवचाय हुं। ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्रः अस्त्राय फट्।

करांग न्यास सम्पन्न करने के बाद मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करे। तब निम्न प्रकार से देवी का ध्यान करे—

विशालाक्षी देवी का वर्ण प्रतप्त स्वर्ण के समान है। भुजायें दो हैं। स्वभाव क्रोधी है। हाथों में तलवार-ढाल है। नाना अलंकारों से युक्त हैं। वस्त्र लाल रंग का है। ये सदैव सोलह वर्षों की सुन्दर युवती रहती हैं। मुख प्रसन्न है। आँखें तीन हैं। स्तन-युगल स्थूल और उन्नत हैं। शवरूप शिव के ऊपर आसीन हैं। जटा और मुकुट से शोभित हैं। साधक के शत्रुओं का नाश करती हैं। अभीष्ट वर प्रदान करती हैं। सभी विषयों में सौभाग्य और सभी वैभव प्रदान करती हैं।

पुरश्चरणकाले तु वर्णलक्षं जपेत्सुधीः ।
यन्त्रमध्ये समावाह्य प्रतिष्ठां कारयेत्ततः ।।
त्रिकोणं चाष्टपत्रञ्च ततो वृत्तं समालिखेत् ।
चतुरस्त्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत् ।।
तत्रावाह्य यजेद्देवीं सर्वसौभाग्यसुन्दरीम् ।
विशालाक्षीं विशालास्यां यथाविधि प्रपूजयेत् ।।
त्रिकोणान्तर्महादेवीं सम्पूज्य मातरः क्रमात् ।
पङ्कजाक्षी विरूपाक्षी रक्ताक्षी च सुलोचना ।।
एकनेत्रा द्विनेत्रा च कोटराक्षी त्रिलोचना ।
एताः पूज्या महेशानी पत्राग्रेष्वष्टयोगिनीः ।।
पश्चिमादिक्रमेणैव अष्टसिद्धिस्वरूपिणीः ।
चतुरस्त्रे महादेवी लोकपालान् समर्चयेत् ।।
तद्बहिश्चैव वज्राद्यान् पूजयेद्भाग्यहेतवे ।
ततो यथाशक्ति जप्त्वा पूर्ववच्च समाचरेत् ।। इति।

विशालाक्षी यन्त्र

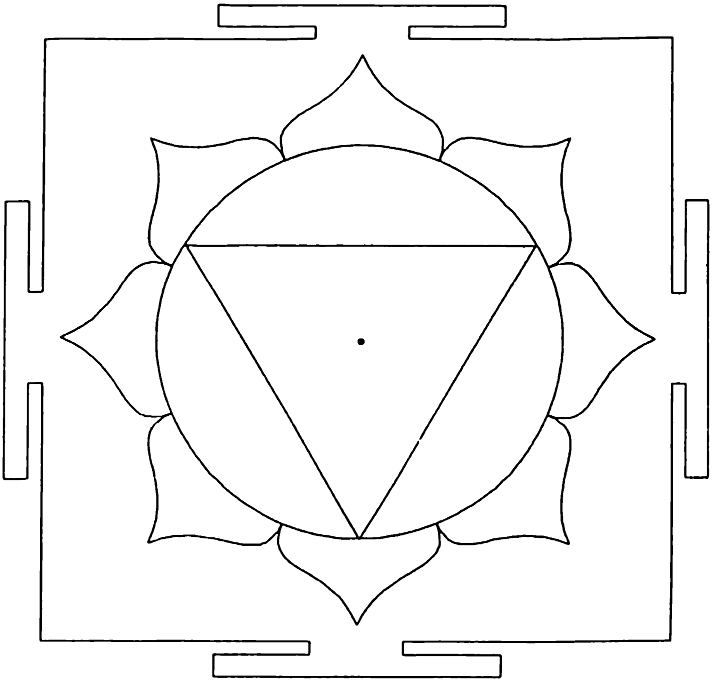

विशालाक्षी-मन्त्र का पुरश्चरण आठ लाख जप से होता है। विशालाक्षी देवी का पूजनयन्त्र इस प्रकार का है पहले त्रिकोण बनाकर उसके बाहर अष्टदल पद्म वृत्त और चार द्वारों से युक्त भूपुर बनाए। इस यन्त्र में सर्वसौभाग्यदायिनी विशालमुखी विशालाक्षी देवी का आवाहन करके विधिवत् पूजन करे।

त्रिकोण के मध्य में महादेवी की पूजा करे। अष्टदलमूल में ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं की पूजा करे। दलों के अग्रभाग में पश्चिमादि क्रम से अष्ट योगिनियों की पूजा करे—ॐ पङ्कजाक्ष्यै नमः ॐ विरूपाक्ष्यै नमः। ॐ रक्ताक्ष्यै नमः। ॐ सुलोचनायै नमः। ॐ एकनेत्रायै नमः। ॐ द्विनेत्रायै नमः। ॐ कोटराक्ष्यै नमः। ॐ त्रिलोचनायै नमः। ये आठों योगिनियाँ अष्टसिद्धिस्वरूपिणी हैं। भूपुर में इन्द्रादि दश लोकपालों की और उसके बाहर वज्रादि दश आयुधों की पूजा करे। अन्त में मूलमन्त्र का जप करे। तब धूपादि विसर्जनान्त कर्म करे।

गौरीमन्त्राः

तन्त्रे—

ह्रीं गौरी रुद्रदयिते योगेश्वरि सवर्म फट् ।
द्विठान्तः षोडशार्णोऽयं मन्त्रः सद्भिरुदाहृतः ॥

अस्या पूजा—प्रातःकृत्यादि प्राणायामान्तं कर्म समाप्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। यथा—शिरसि पर्वतऋषये नमः। मुखे गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदि श्रीगौर्यै देवतायै नमः।

ततः कराङ्गन्यासः—ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि। ह्रां हृदयाय नमः इत्यादि। ततो ध्यानम्—

हेमाभां विभ्रतीं दोर्भिर्दर्पणाञ्जनसाधने ।
पाशांकुशौ सर्वभूषां तां गौरीं सर्वदा भजे ॥

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य, शंखस्थापनादि पीठमन्वन्तं सम्पूज्य, पुनर्ध्यात्वावाह्य, देवीं पूजयेत्।

ततोऽग्न्यादिकोणेषु ह्रां हृदयाय नमः इत्यादिना षडङ्गानि पूजयेत्। पत्रेषु पूर्वादि ॐ सुभगायै नमः। एवं रति-कामिनी-कामदायिनी-पाशांकुशदर्पणाञ्जन-शलाकाः पूजयेत्। तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयेत्। ततो धूपादिविर्सजनान्तं कर्म समापयेत्। अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः। आज्येन दशांशहोमः। तथा च—

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः ।
दशांशं होमयेदाज्यैः पुरश्चरणसिद्धये ॥

फलन्तु—गन्धपुष्पाञ्जनभक्ष्यचन्दनादिकं मूलमन्त्राभिमन्त्रितं यस्मै कस्मै दीयते स वश्यो भवति निश्चितम्। यथा रात्रौ हरिद्रया वामोरुमध्ये प्रियस्त्रीनामाभिलिख्य, वामकरेण पिधाय, शतं सहस्रं वा जपन्निष्ठां स्त्रियमाकर्षयति। एतत्पूजादिकं सौभाग्यवश्यसर्वसम्पत्करम्।

गौरी मन्त्र—ह्रीं गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि हूं फट् स्वाहा—यह सोलह अक्षरों का गौरी का मन्त्र है। सामान्य पूजाविधि से प्रात:कृत्य से प्राणायाम तक करके न्यास करे।

ऋष्यादि न्यास—शिरसि पर्वतऋषये नम:। मुखे गायत्रीछन्दसे नम:। हृदि श्रीगौर्यै देवतायै नम:।

करन्यास—ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नम:, ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट्, ह्रैं अनामिकाभ्यां हुं, ह्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ह्र: करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

अंगन्यास—ह्रां हृदयाय नम:, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रूं शिखायै वषट्, ह्रैं कवचाय हुं, ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्र: अस्त्राय फट्।

न्यास करने के बाद गौरी का इस प्रकार ध्यान करे—

हेमाभां बिभ्रतीं दोर्भिर्दर्पणाञ्जनसाधने।
पाशांकुशौ सर्वभूषां तां गौरीं सर्वदा भजे।।

अर्थात् गौरी देवी स्वर्णवर्णा हैं। चार हाथों में दर्पण, अंजनशलाका, पाश और अंकुश हैं। सभी आभूषणों से अलंकृत हैं। उन्हीं गौरी देवी का मैं भजन करता हूँ।

तब मानसिक उपचारों से पूजा करके शंखस्थापन करे। पीठदेवताओं का पूजन करे। पुन: ध्यान-आवाहनादिपूर्वक विधिवत् पूजा करे। तब षडंग पूजन उपरोक्त षडंग न्यास के मन्त्रों से करे। जैसे—ह्रां हृदयाय नम:। ह्रीं शिरसे स्वाहा इत्यादि।

अष्टदल में पूर्वादि क्रम से ॐ सुभगायै नम:, ॐ रत्यै नम:, ॐ कामिन्यै नम:, ॐ कामदायिन्यै नम: से पूजा करे। कोणीय दलों में अग्न्यादि क्रम से ॐ पाशाय नम:, ॐ अंकुशाय नम:, ॐ दर्पणाय नम:, ॐ अंजनशलाकायै नम: से पूजा करे। तब भूपुर में इद्रादि दश लोकपालों और उनके आयुधों का पूजन करे। धूपादि विसर्जनान्त करके पूजन सम्पूर्ण करे।

एक लाख जप से इस मन्त्र का पुरश्चरण होता है। जप के बाद घी से हवन दश हजार करे। तन्त्र में वर्णन है कि साधक हविष्याशी और जितेन्द्रिय होकर पुरश्चरण की सिद्धि के लिये एक लाख जप और दश हजार हवन करे।

इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होने पर गन्ध, पुष्प, अंजन या किसी खाद्य पदार्थ और चन्दनादि को इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके किसी व्यक्ति को देने से वह वशीभूत होता है।

रात के समय बाँई जंघा में अभिलषित स्त्री का नाम हल्दी से लिखकर बाँयें हाथ से उसे ढककर गौरी-मन्त्र का एक सौ या एक हजार जप करने से उस नारी का आकर्षण होता है। इस देवता की उपासना से सौभाग्य-सम्पत्तिलाभ, वशीकरणादि सिद्ध होते हैं।

ब्रह्मश्रीमन्त्र:

स च मन्त्रदेवप्रकाशिन्याम्—हृल्लेखा नमस्कारादि ब्रह्मश्री: राजिते राजपूजिते जये-विजये गौरि गान्धारि त्रिभुवनवशङ्करि सर्वलोकवशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सुयुद्धदुर्घोरां ह्रीं स्वाहा।

अङ्गन्यासश्च—राजिते राजपूजिते अंगुष्ठाभ्यां नम:। जये विजये गौरि गान्धारि तर्ज्जनीभ्यां स्वाहा। त्रिभुवनवशङ्करि मध्यमाभ्यां वषट्। सर्वलोकवशङ्करि अनामिकाभ्यां हुं। सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि कनिष्ठाभ्यां वौषट्। सुयुद्धदुर्घोररावे ह्रीं स्वाहा अस्त्राय फट्। राजिते राजपूजिते हृदयाय नम:। जये विजये गौरि गान्धारि शिरसे स्वाहा। त्रिभुवनवशङ्करि शिखायै वषट्। सर्वलोकवशङ्करि कवचाय हुं। सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि नेत्रत्रयाय वौषट्। सुयुद्धदुर्घोररावे ह्रीं स्वाहा अस्त्राय फट्। ततो ध्यानम्—

अविकलशशिराजन्मौलिराबद्धपाशां
कुशरुचिरकराब्जा　बन्धुजीवारुणाङ्गी ।
अमरनिकरवन्द्या　त्रीक्षणा　शोणलेपां-
शुककुसुमयुता　स्यात्सम्पदे　पार्वती　व: ।।

अस्याङ्गैर्लोकपालैर्मातृकाभिस्त्रीण्यावरणानि। तस्या पुरश्चरणमयुतजप:। पायसेन दशांशहोम:। मधुत्रययुतैस्तिलतण्डुलैर्लवणैर्वा दिनत्रयं सहस्रहोम: शीघ्रवशंकर:। प्रात:काले सूर्यमण्डलस्थां देवीं सम्पूज्य अष्टोत्तरशतं जपन्त्रिभुवनवश्यकर:।

ब्रह्मश्रीमन्त्र—'मन्त्रदेवप्रकाशिनी' ग्रन्थ के अनुसार 'ब्रह्मश्री' का मन्त्र इस प्रकार का है—ह्रीं नमो ब्रह्मश्री: राजिते, राजपूजिते, जये, विजये, गौरि, गान्धारि, त्रिभुवनवशंकरि सर्वलोकवशंकरि सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि सुयुद्धदुर्घोररावे ह्रीं स्वाहा।

करन्यास—राजिते राजपूजिते अंगुष्ठाभ्यां नम:। जये विजये गौरि गान्धारि तर्जनीभ्यां स्वाहा। त्रिभुवनवशंकरि मध्यमाभ्यां वषट्। सर्वलोकवशंकरि अनामिकाभ्यां हुं। सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि कनिष्ठाभ्यां वौषट्। सुयुद्धदुर्घोररावे ह्रीं स्वाहा अस्त्राय फट्।

अंगन्यास—राजिते राजपूजिते हृदयाय नम:। जये विजये गौरि गान्धारि शिरसे स्वाहा। त्रिभुवनवशंकरि शिखायै वषट्। सर्वलोकवशंकरि कवचाय हुं। सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि नेत्रत्रयाय वौषट्। सुयुद्धदुर्घोररावे ह्रीं स्वाहा अस्त्राय फट्।

इसके बाद देवी का इस प्रकार ध्यान करे—

अविकलशशिराजन्मौलिराबद्धपाशां
कुशरुचिरकराब्जा बन्धुजीवारुणाङ्गी।
अमरनिकरवन्द्या त्रीक्षणा शोणलेपां-
शुककुसुमयुता स्यात्सम्पदे पार्वती व:।।

अर्थात् देवी के मस्तक पर पूर्ण चन्द्र निबद्ध है। करकमलों में पाश-अंकुश हैं। शरीर का वर्ण बन्धूकपुष्प के समान अरुण है। देवगण सदैव इनकी वन्दना करते हैं। तीन नेत्र हैं। विशुद्ध रक्त वर्ण लेप से युक्त वस्त्र है। फूलों के अलंकार से अलंकृत हैं। इस प्रकार की पार्वती देवी तुम लोगों को सम्पत्ति प्रदान करे।

इसके बाद पूजन करे। पहले षडंग पूजा, तब इन्द्रादि की पूजा, तब ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं की पूजा करे। यही इनके तीन आवरण की पूजा है।

इस मन्त्र के पुरश्चरण में दश हजार जप करे। पायस या घी-शक्कर-मधुयुक्त तिल, चावल अथवा नमक से तीन दिन में एक हजार हवन करे। इसके द्वारा शीघ्र वशीकरण सिद्ध होता है। प्रात:काल सूर्यमण्डल में स्थित देवी का ध्यान करके एक सौ आठ मन्त्रजप से तीनों लोक वशीभूत होते हैं।

राजमुखीमन्त्र:

स च द्विचत्वारिंशदक्षर: अङ्गन्यासे विविच्यते। यथा—ॐराजमुखि हृदयाय नम:। वश्यमुखि ह्रीं ह्रीं क्लीं शिरसे स्वाहा। देवि देवि शिखायै वषट्। महादेवि कवचाय हुं। देवाधिदेवि नेत्रत्रयाय वौषट्। सर्वजनस्य मुखं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा अस्त्राय फट्। सर्वं श्रीमनोरिव। जपादौ सर्वजनस्थाने साध्यनाम देयमिति।

राजमुखी मन्त्र—इनका बयालीस अक्षरों का मन्त्र अंगन्यास में निरूपित है। मन्त्र है—ॐ राजमुखि वश्यमुखि ह्रीं ह्रीं क्लीं देवि देवि महादेवि देवाधिदेवि सर्वजनस्य मुखं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा।

अंगन्यास—ॐ राजमुखि हृदयाय नम:। वश्यमुखि ह्रीं ह्रीं क्लीं शिरसे स्वाहा। देवि देवि शिखायै वषट्। महादेवि कवचाय हुं। देवाधिदेवि नेत्रत्रयाय वौषट्। सर्वजनस्य मुखं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा अस्त्राय फट्।

अन्यान्य पूजन-प्रक्रिया ब्रह्मश्री मन्त्र के समान है। इस मन्त्र का जप करने से पूर्व सर्वजन के स्थान पर साध्य का नाम जोड़ लेना चाहिये।

इन्द्रमन्त्र:

मन्त्रदेवप्रकाशिकायाम्—इं इन्द्राय हृत्। अस्य ब्रह्मा ऋषि: पंक्तिश्छन्द इन्द्रो देवता इं बीजं आयेति शक्ति:।

बीजेनाङ्गन्यासः। यथा—इं अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि। इं हृदयाय नमः इत्यादि। ततो ध्यानम्—

पीतवर्णं सहस्राक्षं वज्रपद्मकरं विभुम्।
सर्वालङ्कारसंयुक्तं नौमीन्द्रं दिक्पतीश्वरम्॥

एवं ध्यात्वावाह्य पूजयेत्। ततोऽग्न्यादिकोणे मध्ये दिक्षु च इं हृदयाय नमः इत्यादिना षडङ्गानि पूजयेत्। ततः पत्रेषु पूर्वादि कं कार्त्तिकेयाय नमः। एवं रं अग्नये, यं यमाय, क्षं निर्ऋतये, वं वरुणाय, यं वायवे, सं सोमाय, ईं ईशानाय। ततो वज्रादीन् पूजयेत्। अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः। आज्येन तिलैरयुतहोमः।

अथ प्रयोगः—चतुष्कोणस्थपद्मे नववस्त्रवेष्टितं जलकुम्भं स्थापयित्वा, गन्धोदकेन सम्पूर्य, तत्र सपरिवारमिन्द्रमाराध्य, सहस्रं जप्त्वा तज्जलाभिषेकेण भ्रष्टराज्यस्य राज्यप्राप्तिरन्येषां परमा श्रीर्भवति।

इन्द्रमन्त्र—मन्त्रदेवप्रकाशिका के अनुसार 'इं इन्द्राय नमः' मन्त्र से इन्द्रदेव की पूजा करे। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द पंक्ति, देवता इन्द्र, बीज इं, शक्ति आय है।

ऋष्यादि न्यास—शिरसि ब्रह्मणे नमः, मुखे पंक्तिछन्दसे नमः इत्यादि से करे।

करन्यास—इं अंगुष्ठाभ्यां नमः, इं तर्जनीभ्यां स्वाहा, इं मध्यमाभ्यां वषट्, इं अनामिकाभ्यां हुं, इं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, इं करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

अंगन्यास—इं हृदयाय नमः, इं शिरसे स्वाहा, इं शिखायै वषट्, इं कवचाय हुं, इं नेत्रत्रयाय वौषट्, इं अस्त्राय फट्।

इसके बाद निम्नवत् ध्यान करे—

पीतवर्णं सहस्राक्षं वज्रपद्मकरं विभुम्।
सर्वालङ्कारसंयुक्तं नौमीन्द्रं दिक्पतीश्वरम्॥

अर्थात् इन्द्र का वर्ण पीला और नेत्र एक हजार हैं। एक हाथ में वज्र और दूसरे में पद्म है। सब अलंकारों से विभूषित हैं। दिक्पालों के स्वामी इन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ।

इस प्रकार ध्यान और आवाहन करके विधिवत् पूजा करे। अग्नि आदि कोणों में, मध्य में और चारो दिशाओं में 'इं हृदयाय नमः' इत्यादि क्रम से षडंग पूजा करे। पद्मदलों में पूर्वादि क्रम से कं कार्तिकेयाय नमः। रं अग्नये नमः। यं यमायै नमः। क्षं निर्ऋतये नमः। वं वरुणाय नमः। यं वायवे नमः। सं सोमाय नमः। ईं ईशाय नमः से पूजा करे।

तब भूपुर में इन्द्रादि लोकपालों और वज्रादि आयुधों की पूजा करे। एक लाख जप और घीमिश्रित तिल से दश हजार हवन करे। पूजन यन्त्र षट्कोण, अष्टदल पद्म और भूपुर से बनता है।

सिद्ध मन्त्र का प्रयोग करे। चतुष्कोण मण्डल के मध्य में अष्टदल पद्म अंकित करके उस पद्म के ऊपर नवरत्नवेष्टित कलश स्थापित करे। उसे गन्धोदक से पूर्ण करे। उस कलश में सपरिवार इन्द्र की पूजा करके इस मन्त्र का जप एक हजार करे।

इस कलशजल से जिसका अभिषेक किया जायगा, राज्यभ्रष्ट होने पर भी उसे पुन: राज्य प्राप्त होता है। अन्य साधकों को परम सम्पदा प्राप्त होती है।

गरुडमन्त्र:

निबन्धे—

संवर्त्तको नेत्रयुत: पार्श्वस्तारोऽग्निसुन्दरी ।
गारुडो मनुराख्यातो विषद्वयविनाशक: ॥
स्मरन् गरुडमात्मानं मन्त्रमेनं जपेन्नर: ।
विषमालोकनेनैव हन्यान्नागकुलोद्भवम् ॥

अस्य पूजा—प्रात:कृत्यादिवैष्णवोक्तपीठमन्वन्तं विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। यथा—शिरसि रुद्रऋषये नम:, मुखे पंक्तिच्छन्दसे नम, हृदि पक्षीन्द्राय देवतायै नम:। प्रणवो बीजं, स्वाहा शक्ति:।

तत: कराङ्गन्यासौ—ज्वल ज्वल महामते स्वाहा अंगुष्ठाभ्यां नम:, गरुडचूडामणे स्वाहा तर्जनीभ्यां स्वाहा, गरुडशिखिशिखे स्वाहा मध्यमाभ्यां वषट्, गरुड प्रभञ्जन प्रभञ्जन प्रभेदन प्रभेदन विद्रावय विद्रावय विमर्द्दय स्वाहा अनामिकाभ्यां हुं, ॐ उग्ररूपधर सर्वविषहर भीषण भीषण स्वाहा कनिष्ठाभ्यां वौषट्, सर्वं दह दह भस्मीकुरु स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। हृदयादिष्वप्येवम्। तत: करद्वयांगुष्ठादिकनिष्ठांगुलिषु मन्त्रवर्णान्विन्यस्य पादकटिहृदयवक्त्रमूर्द्धसु पञ्चवर्णान्न्यसेत्। ततो ध्यानम्—

वर्मान्तर्वह्नियुग्माक्षरकमलगतं पञ्चभूताद्यवर्णं
क्लृप्ताकल्पं फणीन्द्रैरभयवरकरं पद्मनेत्रं सुवक्त्रम् ।
दुष्टाहिच्छेदितुण्डं स्मरदखिलविषप्रोक्षणं प्राणभूतं
प्राणाग्रण्यं त्रिवेदीतनुममृतमयं पक्षिराजं भजेऽहम् ॥

गरुडमन्त्र—निबन्ध के अनुसार गरुड़ का मन्त्र है—क्षिप ॐ स्वाहा। इससे स्थावर और जंगम दोनों प्रकार के विषों का निवारण होता है।

गरुड़ का स्मरण करते हुए इस मन्त्र का जप करके विषपीड़ित व्यक्ति को देखने से ही उसका सर्पादि दंश का विष तुरन्त दूर हो जाता है। प्रात:कृत्यादि करके विष्णुपूजा में वर्णित नियमानुसार पीठन्यास करके ऋष्यादि न्यास करे।

ऋष्यादि न्यास—शिरसि ॐ रुद्रऋषये नमः। मुखे ॐ पंक्तिछन्दसे नमः। हृदि ॐ पक्षीन्द्राय नमः। गुह्ये ॐ बीजाय नमः। पादद्वये स्वाहा शक्तये नमः।

करन्यास—ज्वल ज्वल महामते स्वाहा अंगुष्ठाभ्यां नमः। गरुड़चूड़ामणे स्वाहा तर्जनीभ्यां स्वाहा। गरुड़शिखि शिखे स्वाहा मध्यमाभ्यां वषट्। गरुड़प्रभञ्जन प्रभञ्जन प्रभेदन प्रभेदन विद्रावय विद्रावय विमर्दय विमर्दय स्वाहा अनामिकाभ्यां हुं। ॐ उग्ररूपधर सर्वविषहर भीषय भीषय स्वाहा कनिष्ठाभ्यां वौषट्। सर्वं दह दह भस्मी कुरु कुरु स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

इसी प्रकार हृदयादि अंगन्यास करे। अंगुलियों के स्थान में हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्रत्रय और अस्त्र रक्खे।

इसके बाद दोनों हाथों के अंगूठों से लेकर कनिष्ठा तक की अंगुलियों में न्यास करता हुआ दोनों पैर, कमर, हृदय, मुख और मस्तक में मन्त्र के पाँचो वर्णों का न्यास करे। जैसे—क्षिं नमः अंगुष्ठाभ्यां। पं नमः तर्जनीभ्यां। ॐ नमः मध्यमाभ्यां। स्वां नमः अनामिकाभ्यां। हां नमः कनिष्ठाभ्यां। इसी प्रकार क्षिं नमः पादयोः, पं नमः कटिदेशे, ॐ नमः हृदये, स्वां नमः मुखे, हां नमः मस्तके।

इसके बाद निम्नवत् ध्यान करे—

वर्मान्तर्वह्नियुग्माक्षरकमलगतं पञ्चभूताद्यवर्णं
क्लृप्ताकल्पं फणीन्द्रैरभयवरकरं पद्मनेत्रं सुवक्त्रम्।
दुष्टाहिच्छेदितुण्डं स्मरदखिलविषप्रोक्षणं प्राणभूतं
प्राणाग्रण्यं त्रिवेदीतनुममृतमयं पक्षिराजं भजेऽहम्।।

आशय यह है कि जिस पद्मकर्णिका के मध्य में उपरि भाग में रेफद्वय हैं, उसके नीचे क्षकार और इकार खट्वाकार में स्थित हैं। उसी पद्म के ऊपर जो आसीन हैं; जो अंगों में भुजंग-भूषण धारण किए हुए हैं; जिनके एक हाथ में अभय और दूसरे में वरमुद्रा है, जिनका एक नेत्र कमल के समान है, जिनका मुख अति उत्तम है; उसी मुख के अग्रभाग के द्वारा जो दुष्ट भुजंग का छेदन करते हैं, स्मरण करने वालों के सभी विषों को जो विनष्ट कर देते हैं; जो प्राणवायु के समान सभी के अग्रणी और प्राणस्वरूप हैं; त्रिवेद जिनका शरीर है, उन्हीं अमृततुल्य पक्षीराज का मैं भजन करता हूँ।

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य, शङ्खस्थापनं कृत्वा, वैष्णवोक्तं पीठमन्वन्तं पीठं सम्पूज्य पुनर्ध्यात्वावाह्य, रेफद्वयं हुङ्कारमध्यस्थं क्षकारेकारविन्द्वात्मकबीजयुक्त-कर्णिकं स्वरद्वन्द्वाष्टकेशरे कचटतपयशलाष्टवर्गयुक्ताष्टदले मातृकापद्मे पक्षिराजं पूजयेत्। अङ्गैः प्रथमावरणाम्। अनन्त-वासुकि-तक्षक-कर्कोटक-पद्म-महापद्म-शङ्ख-कुलिकाष्टनागैर्द्वितीयम्। इन्द्रादिभिस्तृतीयम्। अस्या पुरश्चरणं पञ्चलक्षजपः।

अथवा पुरश्चरणार्थं मूलमयुतं प्रत्येकमक्षरसंख्यसहस्त्रं मालामन्त्रं जपेत्। घृताक्तैः कृष्णपुष्पैर्दशांशहोमः।

मालामन्त्र उच्यते—ॐ नमो भगवते गरुडाय कालाग्निवर्णाय एह्येहि कालानललोलजिह्वाय पातय पातय मोहय मोहय विद्रावय विद्रावय भ्रम भ्रम भ्रामय भ्रामय हन हन दह दह पच पच हूं फट् स्वाहा।

इसके बाद मानसोपचार से पूजा करके शंखस्थापन करे। विष्णुपूजाविधि से पीठपूजा तक के कर्म करके पुन: ध्यान और आवाहन करे। तब यन्त्र अंकित करे। पहले अष्टदल पद्म बनाकर इसके बाहर भूपुर बनावे।

कर्णिका के मध्य में हूं बीज लिखकर हूं के ऊपर दो रेफ़ और हूं के मध्य में क्षिं लिखे। पद्म के आठ दलों में दो-दो स्वरों को लिखे। पद्म के दलों में कवर्गादि आठ वर्गों को पूर्वादि क्रम से लिखे। इस प्रकार मातृका पद्म अंकित करके उसमें पक्षिराज की पूजा करनी चाहिए।

गरुड़ यन्त्र

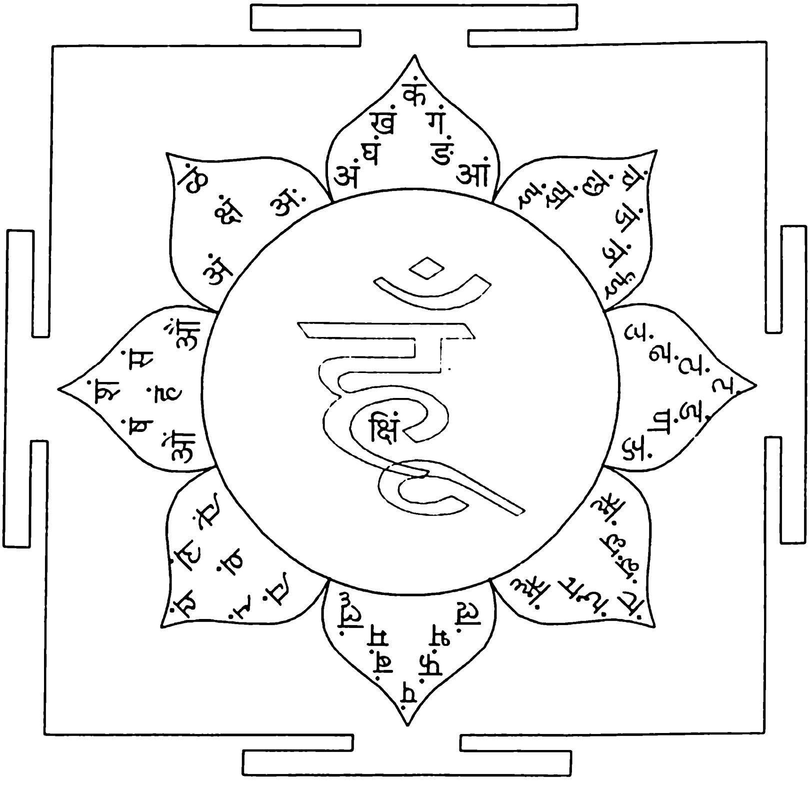

प्रथम आवरण में षडंग पूजन; द्वितीय आवरण में अनन्त, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंख, कुलिक अष्ट नागों का पूजन; तृतीय आवरण में इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुवेर, ईशान, ब्रह्मा और अनन्त का पूजन करे।

एक लाख जप से इसका पुरश्चरण होता है। अथवा पुरश्चरण में दस हजार मूल मन्त्र जप कर पाँच हजार मालामन्त्र का जप करे। घृताक्त काले फूलों से १५०० हवन करे। मालामन्त्र इस प्रकार का है—ॐ नमो भगवते गरुड़ाय कालाग्निवर्णाय, एह्येहि कालानल लोलजिह्वाय पातय पातय मोहय मोहय विद्रावय विद्रावय भ्रम भ्रम भ्रामय भ्रामय हन हन दह दह पच पच हूं फट् स्वाहा।

क्षीराब्धिमध्ये तत्रोत्पन्नपूर्वोक्तमातृकाक्षरमयममृतात्मकं श्वेतवर्णं विचिन्त्य, तत्पद्मे दष्टं विचिन्त्य, दष्टस्य मूर्द्ध-वक्त्र-हृदय-नाभिषु रं हं ठं वमिति बीजचतुष्टयं अमृतस्रावित्वेन सञ्चिन्त्य, दष्टशिरस उपरि चन्द्रकान्तवर्णं सुधामयं गरुडं ध्यात्वा, तद्धस्तस्थितामृतपूरितशंखनिर्गलदमृतधारया दष्टं प्लावयन्तं गरुडं ध्यायन् मन्त्रं जपेत्।

एवं ध्यानमात्रेण दष्टो निर्विषः समुत्थाय चिरं जीवेत्। ॐ नमो भगवते गरुडाय महेन्द्ररूपाय पर्वतशिखराकाररूपाय संहर संहर मोचय मोचय चालय चालय पातय पातय निर्विष निर्विष विषमप्यमृतं चाहारसदृशं रूपमिदं प्रज्ञापयामि स्वाहा नमः नल नल वर वर दुन दुन क्षिप क्षिप हर हर स्वाहा। अनेन गरुडमन्त्रेण मन्त्री गरुडो भूत्वा अभिमन्त्रितं स्थावरविषं भक्षितमप्यमृतं भवति किमुतान्नपानादिकमिति।

इति गरुडमन्त्रः

◆

क्षीरसमुद्र में पूर्वोक्त मातृकावर्णमय सुधारूप शुभ्र वर्ण पद्म का ध्यान करके भुजंगदष्ट व्यक्ति को उस पद्म पर बैठा हुआ मानकर सर्प-दष्ट व्यक्ति के मस्तक, मुख, हृदय, नाभि को पूर्वोक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित करके रं हं ठं वं चार बीजों को सुधास्रावी के रूप में चिन्तन करते हुए सर्पदष्ट व्यक्ति के मस्तक के ऊपर चन्द्रकान्त वर्ण अमृतमय गरुड़ का ध्यान करे।

तब यह ध्यान करते हुए कि गरुड़ अपने हाथ में स्थित अमृतपूर्ण शंख से गिरती हुई अमृतधारा से सर्पदष्ट व्यक्ति को आप्लावित कर रहे हैं। ऐसी भावना करते हुए मन्त्रजप करे। ऐसा करने से विषपीड़ित व्यक्ति स्वस्थ होकर चिर काल तक सुख से जीवित रहता है।

निम्नलिखित मन्त्र जपने से भक्षित स्थावर विष अमृत के समान हो जाता है। अन्य विषाक्त अन्नपानादि भी इसके जप से अमृततुल्य हो जाते हैं—

ॐ नमो भगवते गरुड़ाय, महेन्द्ररूपाय पर्वतशिखराकाररूपाय, संहर संहर मोचय मोचय चालय चालय पातय पातय निर्विष निर्विष विषमप्यमृतं चाहारसदृशं रूपमिदं प्रज्ञापयामि स्वाहा नमः। नल नल वर वर दुन दुन क्षिप क्षिप हर हर स्वाहा।

इसके बाद गरुड़स्तोत्र का पाठ करे।

गरुडस्तवः

सुपर्णं वैनतेयञ्च नागारिं नागभीषणम् ।
जितान्तकं विषारिञ्च अजितं विश्वरूपिणम् ॥
गरुत्मन्तं खगश्रेष्ठं तार्क्ष्यं कश्यपनन्दनम् ।
द्वादशैतानि नामानि गरुडस्य महात्मनः ॥
यः पठेत्प्रातरुत्थाय स्नाने वा शयनेऽपि वा ।
विषं नाक्रामते तस्य न च हिंसन्ति हिंसकाः ॥
संग्रामे व्यवहारे च विजयस्तस्य जायते ।
बन्धनान्मुक्तिमाप्नोति यात्रायां सिद्धिरेव च ॥

इति गरुडस्तोत्रम्

◆

१.सुपर्ण, २. वैनतेय, ३. नागारि, ४. नागभीषण, ५. जितान्तक, ६. विषारि, ७. अजेय, ८. विश्वरूपी, ९. गरुत्मान् , १०. खगश्रेष्ठ, ११. तार्क्ष्य और १२. कश्यपनन्दन—इन बारह नामों का जो प्रातःकाल उठ कर पाठ करता है, उस पर किसी विष का कुप्रभाव नहीं पड़ता।

किसी प्रकार का हिंसक जन्तु उसे काटने में समर्थ नहीं होता। संग्राम और व्यवहार में उसे विजय प्राप्त होती है। इस स्तोत्र के पाठ से बन्धन छूट जाता है। यात्रा में कार्य-सिद्धि होती है।

हनूमत्कल्पः

देव्युवाच—

शैवानि गाणपत्यानि शाक्तानि वैष्णवानि च ।
साधनानि च सौराणि चान्यानि यानि तानि च ॥
श्रुतानि तानि देवेश त्वद्वक्त्रान्निःसृतानि च ।
किञ्चिदन्यत्तु देवानां साधनं यदि कथ्यताम् ॥

शङ्कर उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय ।
हनूमत्साधनं पुण्यं महापातकनाशनम् ।
एतद्गुह्यतमं लोके शीघ्रसिद्धिकरं परम् ॥
जयो यस्य प्रसादेन लोकत्रयजितोऽभवत् ।
तत्साधनविधिं वक्ष्ये नृणां सिद्धिकरं द्रुतम् ॥
वियत्सनरकं हनूमते तदनन्तरम् ।
रुद्रात्मकाय कवचं फडिति द्वादशाक्षरः ॥
एतन्मन्त्रं मयाख्यातं गोपनीयं प्रयत्नतः ।
तव स्नेहेन भक्त्या च दासोऽस्मि तव सुन्दरि ॥
एतन्मन्त्रमर्जुनाय प्रदत्तं हरिणा पुरा ।
जयेन साधनं कृत्वा जितं सर्वं चराचरम् ॥
नदीकूले विष्णुगृहे निर्जने पर्वते वने ।
एकाग्रचित्तमाधाय साधयेत्साधनं महत् ॥

ध्यानमाह—

महाशैलं समुत्पाट्य धावन्तं रावणं प्रति ।
तिष्ठ तिष्ठ रणे दुष्ट घोररावत्समुत्सृजन् ॥
लाक्षारसारुणं रौद्रं कालान्तकयमोपमम् ।
ज्वलदग्निलसन्नेत्रं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
अङ्गदाद्यैर्महादेवैर्वेष्टितं रुद्ररूपिणम् ॥
एवंरूपं हनूमन्तं ध्यात्वा यः प्रजपेन्मनुम् ।
लक्षजपात्प्रसन्नः स्यात्सत्यं ते कथितं मया ॥
ध्यानैकमात्रतः पुंसां सिद्धिरेव न संशयः ।
प्रातः स्नात्वा नदीतीरे उपविश्य कुशासने ॥
प्राणायामं षडङ्गञ्च मूलेन सकलञ्चरेत् ।
पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा ध्यात्वा रामं ससीतकम् ॥
ताम्रपात्रे ततः पद्ममष्टपत्रं सकेशरम् ।
रक्तचन्दनघृष्टेन लिखेत्तस्य शलाकया ॥
कर्णिकायां लिखेन्मन्त्रं तत्रावाह्य कपिप्रभुम् ।
कर्णिकायाः हनूमन्तं ध्यात्वा पादादिकं ततः ॥
गन्धपुष्पादिकञ्चैव निवेद्य मूलमन्त्रतः ।

सुग्रीवं लक्ष्मणञ्चैव अङ्गदं नलनीलकम् ॥
जाम्बवन्तञ्च कुमुदं केशरिणं दले दले ।
पूर्वादिक्रमतो देवि पूजयेद् गन्धचन्दनैः ॥
पवनञ्चाञ्जनाञ्चैव पूजयेद्दक्षवामतः ।
दलाग्रेषु कपिभ्योऽपि पुष्पाञ्जल्यष्टकं ततः ॥
ध्यात्वा तु मन्त्रराजं वै लक्षं यावत्तु साधकः ।
लक्षान्तदिवसं प्राप्य कुर्याच्च पूजनं महत् ॥
एकाग्रचित्तमनसा तस्मिन् पवननन्दने ।
दिवारात्रौ जपं कुर्याद्यावत्सन्दर्शनं भवेत् ॥
सुदृढं साधकं मत्वा निशीथे पवनात्मजः ।
सुप्रसन्नस्ततो भूत्वा प्रयाति साधकाग्रतः ॥
यथेप्सितं वरं दत्त्वा साधकाय कपिप्रभुः ।
वरं लब्ध्वा साधकेन्द्रो विहरेदात्मनः सुखम् ॥
एतद्धि साधनं पुण्यं देवानामपि दुर्लभम् ।
तव स्नेहान्मयाख्यातं भक्तासि मयि पार्वति ॥

इति गरुडतन्त्रे देवीश्वरसंवादे हनूमत्साधनम्

हनूमत्कल्प—देवी ने कहा कि हे महादेव! आपने शैव, गाणपत्य, शाक्त, वैष्णव, सौर और अन्य देवी की साधना के विषय में मुझे बतलाया। अब मुझे कुछ अन्य देवों की साधना के बारे में बतलाने की कृपा करें।

महादेव ने कहा कि हे देवि! हनुमत् साधना महा पवित्र, पापनाशक, गोपनीय और महासिद्धिदायक है। इस साधना से तीनों लोकों पर विजय पायी जा सकती है। अर्जुन ने इसी मन्त्र की साधना करके चराचर जगत् पर विजय प्राप्त की थी।

हनुमान का द्वादशाक्षर मन्त्र है—हं हनुमते रुद्रात्मकाय हुं फट्। अर्जुन को श्रीकृष्ण ने यही मन्त्र प्रदान किया था।

नदी के किनारे, विष्णु-मन्दिर में, निज स्थान में अथवा पर्वत पर एकाग्र चित्त से उक्त मन्त्र की साधना करे। इनका ध्यान इस प्रकार है—

महाशैलं समुत्पाट्य धावन्तं रावणं प्रति।
तिष्ठ तिष्ठ रणे दुष्ट घोररावत्समुत्सृजन्।।
लाक्षारसारुणं रौद्रं कालान्तकयमोपमम्।
ज्वलदग्निलसन्नेत्रं सूर्यकोटिसमप्रभम्।
अङ्गदाद्यैर्महादेवैर्वेष्टितं रुद्ररूपिणम्।।

महापर्वत को उखाड़कर हनुमान रावण की ओर दौड़े। भीषण हुंकार करके रावण से बोले कि हे दुष्ट! युद्ध में खड़े रहो। हनुमान लाक्षारस के समान रक्तवर्ण और कालान्तक यम के समान हैं। दोनों नेत्र अग्नि के समान जाज्वल्यमान हैं। शरीर कोटि सूर्यों के समान उज्ज्वल हैं। रुद्ररूपी हनुमान अंगदादि महावीरगण से घिरे हुए हैं।

इस प्रकार हनुमान का ध्यान करके मन्त्र का जप करे। एक लाख जप पूरा होने पर हनुमान साधक पर प्रसन्न होते हैं।

प्रात:काल नदी में स्नान करके किनारे कुशासन पर बैठकर मूल मन्त्र से प्राणायाम और करांग न्यास करे। तब मूल मन्त्र से आठ पुष्पाञ्जलियाँ देकर सीतासहित राम का ध्यान करते हुए ताम्रपत्र में हनुमान का पूजायन्त्र अंकित करे। पहले केशरयुक्त अष्टदल पद्म बनावे। लाल चन्दन की लेखनी से घिसे हुए लाल चन्दन से यन्त्र लिखे।

हनुमत्पूजन यन्त्र

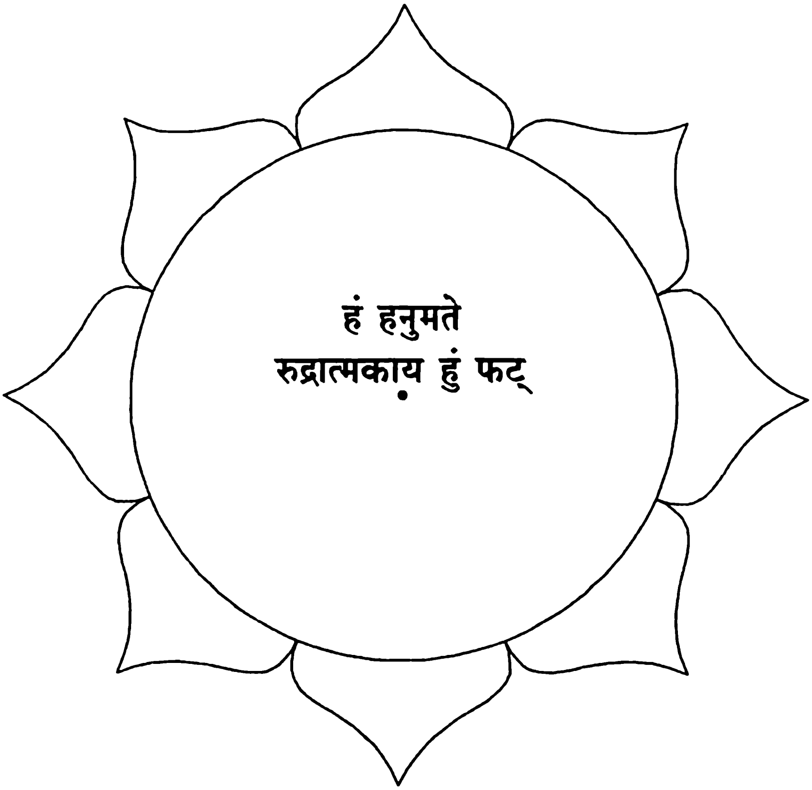

पद्म की कर्णिका में हनुमान का मूल मन्त्र लिखकर उक्त मन्त्र में हनुमान का आवाहन करके पाद्यादि प्रदान करे। तब मूल मन्त्र से गन्ध-पुष्पादि निवेदन करके पद्म के आठ दलों

में पूर्वादि क्रम से सुग्रीव, लक्ष्मण, अंगद, नल, नील, जाम्बवान, कुमुद और केसरी का पूजन गन्ध-पुष्पादि से करे। हनुमान के दाँई ओर पवन का और बाँई ओर अंजना की पूजा करे। दलों के अग्रभाग में ॐ कपिभ्यो नम: से आठ पुष्पाञ्जलियाँ देकर कपिराज का ध्यान करते हुए मन्त्र का जप एक लाख करे। जप पूरा होने पर महापूजा करे। एकाग्र मन से दिन-रात जप करने से हनुमान देवता का दर्शन प्राप्त होता है। साधक को दृढ़ प्रतिज्ञ जानकर हनुमान प्रसन्न होकर रात में उपस्थित होकर वांछित वर देते हैं।

वीरसाधनम्

हनूमतोऽतिगुह्यन्तु लिख्यते वीरसाधनम् ।
ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय कृतनित्यक्रियो द्विजः ॥
गत्वा नदीं ततः स्नात्वा तीर्थमावाह्य चाष्टधा ।
मूलमन्त्रं ततो जप्त्वा सिञ्चेदादित्यसंख्यया ॥

ततो वाससी परिधाय गङ्गातीरे पर्वते वा उपविश्य, हां अंगुष्ठाभ्यां नमः, हां हृदयाय नमः इत्यादिना च कराङ्गन्यासौ कुर्यात्।

ततः प्राणायामः—अकारादिवर्णान् उच्चार्य वामनासापुटेन वायुं पूरयेत्। पञ्चवर्गानुच्चार्य वायुं कुम्भयेत्। यकारादिवर्णान् उच्चार्य दक्षिणनासापुटेन वायुं रेचयेत्। एवं वारत्रयं कृत्वा मन्त्रवर्णैरङ्गन्यासं कृत्वा ध्यायेत्।

ध्यायेद्रणे हनूमन्तं कोटिकपिसमन्वितम् ।
धावन्तं रावणं जेतुं दृष्ट्वा सत्वरमुत्थितम् ॥
लक्ष्मणञ्च महावीरं पतितं रणभूतले ।
गुरुञ्च क्रोधमुत्पाद्य गृहीत्वा गुरुपर्वतम् ॥
हाहाकारैः सदर्पैश्च कम्पयन्तं जगत्त्रयम् ।
आब्रह्माण्डं समाव्याप्य कृत्वा भीमं कलेवरम् ॥

इति ध्यात्वा षट्सहस्रं जपेत्। अस्य मन्त्रः—

स्वबीजं पूर्वमुच्चार्य पवनञ्च ततो वदेत् ।
नन्दनञ्च ततो देयं ङेऽवसानेऽनलप्रिया ।
दशार्णोऽयं मनुः प्रोक्तो नराणां सुरपादपः ॥

सप्तमदिवसे दिवारात्रिं व्याप्य जपेत्, ततो महाभयं दत्त्वा त्रिभागशेषासु निशासु नियतमागच्छति। साधको यदि मायां तरति तदेप्सितं वरं प्राप्नोति।

विद्यां वापि धनं वापि राज्यं वा शत्रुनिग्रहम् ।
तत्क्षणादेव चाप्नोति सत्यं सत्यं सुनिश्चितम् ॥

इति हनूमत्कल्पः

हनुमद् देव की वीरसाधनविधि—ब्राह्म मुहूर्त में नित्यक्रिया और स्नान करके तीर्थावाहनपूर्वक आठ बार मूल मन्त्र का जप करे। उस जल से बारह बार अपने मस्तक पर अभिषेक करे। दो वस्त्र धारण कर गंगा के तट पर या पर्वत पर बैठकर 'हां अंगुष्ठाभ्यां नमः' इत्यादि से करन्यास और अंगन्यास करे। तब प्राणायाम करे। जैसे—

अकारादि सोलह स्वरवर्णों का उच्चारण करते हुए बाँईं नासिका से पूरक करे। 'क' से 'म' तक पच्चीस वर्णों का मानसिक उच्चारण करते हुए दोनों नासापुटों को बन्द करके कुम्भक करे।

य से ळ क्ष तक के वर्णों का उच्चारण करते हुए दाँईं नासिका से रेचक करे। इसी क्रम से दाँईं नासा से पूरक, कुम्भक और बाँईं नासा से रेचक करे।

पुनः बाँईं नासा से पूरक, नाक बन्द करके कुम्भक और दाँईं नासिका से रेचक करे। इस प्रकार तीन प्राणायाम करके मन्त्रवर्णों से अंगन्यास करे। तब निम्नवत् ध्यान करे—

ध्यायेद्रणे हनूमन्तं कोटिकपिसमन्वितम्।
धावन्तं रावणं जेतुं दृष्ट्वा सत्वरमुत्थितम्।।
लक्ष्मणञ्च महावीरं पतितं रणभूतले।
गुरुञ्च क्रोधमुत्पाद्य गृहीत्वा गुरुपर्वतम्।।
हाहाकारैः सदर्पैश्च कम्पयन्तं जगत्त्रयम्।
आब्रह्माण्डं समाव्याप्य कृत्वा भीमं कलेवरम्।।

महावीर लक्ष्मण को रणभूमि में गिरा देख कर हनुमान युद्ध में उपस्थित करोड़ों कपियों से घिरकर रावण को पराजित करने के लिये दौड़े। अत्यन्त क्रोध करके महान् पर्वत् को उखाड़कर गर्व के साथ हाहाकार ध्वनि से उन्होंने तीनों लोकों को कँपा दिया। ब्रह्माण्डव्यापी भीमकाय शरीर उन्होंने धारण किया।

ऐसा ध्यान करके दशाक्षर मन्त्र का छः हजार जप करे। मन्त्र है—हं पवननन्दनाय स्वाहा। यह मन्त्र कल्पवृक्ष के समान है। छः दिन तक उक्त मन्त्र का जप करके सातवें दिन दिन-रात जप करे।

ऐसा करने से रात के चौथे प्रहर में महाभयकारी हनुमान साधक के सामने उपस्थित होते हैं। साधक धैर्यपूर्वक दर्शन करे। वांछित वर प्राप्त करे। विद्या, धन, राज्य या शत्रुनिग्रह इच्छानुसार वर साधक प्राप्त करे।

विषहराग्निमन्त्रः

स च विसर्गविन्दुयुक्तः खकारद्वयस्वरूपः ।

अथ पूजाप्रयोगः—प्रातःकृत्यादिकं कृत्वा ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। यथा—शिरसि अग्नये ऋषये नमः। मुखे पङ्क्तिच्छन्दसे नमः। हृदि अग्नये देवतायै

नमः। गुह्ये खं बीजाय नमः। पादयोः विन्दुशक्तये नमः।

षड्दीर्घयुक्तखकारेण कराङ्गन्यासकल्पना ।
ध्यानार्चने शारदोक्तवैश्वानरमन्त्रवत् ।।

अस्य पुरश्चरणं द्वादशलक्षजपः आज्येन दशांशहोमः। स्ववामहस्ततले पञ्चदलं श्वेतपद्मं ध्यात्वा, तत्कर्णिकायां सविसर्गं खकारं तत्पञ्चदलेषु सानुस्वारं खकारञ्च ध्यात्वा, रक्तवर्णामृतमयं विचिन्त्य, तत्स्पर्शनात् सर्वं विषं नाशयेत्। इत्थम्भूतकरेण विषरोगग्रस्तं स्पृष्ट्वा अष्टोत्तरशतं जपेत्। सर्ववृश्चिकादिविषज्वराजीर्णविसर्पदन्तादि-शूलनेत्ररोगसर्ववेदनाञ्च नाशयेत्।

विषहराग्नि मन्त्र—खं खं—यह द्व्यक्षर मन्त्र विष को दूर करता है। सामान्य पद्धति से प्रात:-कृत्यादि करके ऋष्यादि न्यास करे।

ऋष्यादि न्यास—शिरसि अग्नये ऋषये नम:। मुखे पंक्तिछन्दसे नम:। हृदि अग्नये देवतायै नम:। गुह्ये खं बीजाय नम:। पादयो: बिन्दुशक्तये नम:।

मन्त्र	करन्यास	अंगन्यास
ॐ खां	अंगुष्ठाभ्यां नम:	हृदयाय नम:
ॐ खीं	तर्जनीभ्यां स्वाहा	शिरसे स्वाहा
ॐ खूं	मध्यमाभ्यां वषट्	शिखायै वषट्
ॐ खैं	अनामिकाभ्यां हुं	कवचाय हुं
ॐ खौं	कनिष्ठाभ्यां वौषट्	नेत्रत्रयाय वौषट्
ॐ ख:	करतलपृष्ठाभ्यां फट्	अस्त्राय फट्

'शारदातन्त्रोक्त' वैश्वानर पद्धति से इस मन्त्र का ध्यान-पूजनादि करे। बारह लाख जप से इसका पुरश्चरण होता है। पुरश्चरणांग में घी से बारह हजार हवन करे।

अपने बाँयें हाथ में पञ्चदल श्वेत कमल बनाए। कर्णिका में विसर्गयुक्त ख = ख: लिखे। दलों में अनुस्वारयुक्त ख अर्थात् खं लिखे।

इस कमल का ध्यान लाल वर्ण अमृतरूप करता हुआ इस हाथ से स्पर्श करने से सभी प्रकार के विष दूर होते हैं। विषपीड़ित व्यक्ति को अभिमन्त्रित हाथ से स्पर्श करके पूर्वोक्त विषहराग्नि मन्त्र का १०८ जप करने से वृश्चिक आदि के विष, ज्वर, अजीर्ण, विसर्प, दन्तादि मूल, नेत्ररोग, सभी प्रकार की पीड़ायें दूर होती हैं।

वृश्चिकादिविषहरमन्त्र:

स च—ॐ स व ह स्फुः ॐ हिलि मिलि चिलि हस्फुः, ॐ हिलि हिलि चिलि चिलि हस्फुः। ब्रह्मणे फुः विष्णवे फुः इन्द्राय फुः सर्वेभ्यो देवेभ्यो स्फुः।

एते वृश्चिकविषहरा:।

ॐ गेरि ठः। इति मूषिकविषहरमन्त्र:।

ॐ सरणे स्फुः ॐ असरणे स्फुः ॐ विषहरणे स्फुः। एतन्मन्त्रं जप्त्वा श्वेतसर्षपनिक्षेपेण मूषिकविनाशनम्। इति मूषिकविनाशनमन्त्र:।

ॐ ह्रां ह्रीं हूं हूं ॐ स्वाहा गरुड हूं फट्। इति दुर्गामन्त्रो लूताविषहर:।

ॐ नमो भगवते विष्णवे सर सर हन हन हूं फट् स्वाहा। इति विष्णुमन्त्र: सर्वकीटजातिविषहर:।

अथार्द्रपटी—प्रणवो हृदयं भगवति चामुण्डे रक्तवाससे अप्रतिहतरूपपराक्रमे अमुकवधाय विचेतसे वह्निवल्लभा। आर्द्ररक्तपटेनावृतः समुद्रगामिनदीतीरे ऊषरभूमौ वा दक्षिणामुख ऊर्ध्वबाहुर्जपेत्। यावत्पटः शुष्यति, तावत्प्राणा शुष्यन्ति शत्रोः। इत्यार्द्रपटी।

वृश्चिकादि विषहर मन्त्र—ॐ स व हस्फू:। ॐ हिलि मिलि चिलि हस्फू:। ॐ हिलि हिलि चिलि चिलि हस्फू:। ब्रह्मणे फू: विष्णवे फू: इन्द्राय फू: सर्वेभ्यो देवेभ्य: स्फू:। यह मन्त्र वृश्चिकादि विष का नाशक है।

ॐ गेरि ठ:—यह मन्त्र मूषिक-विष को दूर करता है।

ॐ सरणे स्फू:। ॐ असरणे स्फू:।

ॐ विषहरणे स्फू:—मन्त्र के जप से अभि-मन्त्रित श्वेत सरसों फेंकने से मूषिक नष्ट होते हैं।

ॐ ह्रीं ह्रीं हूं हूं ॐ स्वाहा गरुड़ हूं फट्—यह दुर्गामन्त्र मकड़ी के विष को दूर करता है।

ॐ नमो भगवते विष्णवे सर सर हन हन हूं फट् स्वाहा—यह विष्णुमन्त्र सभी प्रकार के कीटविषों को नष्ट करता है।

ॐ नमो भगवति चामुण्डे रक्तवाससे अप्रतिहतरूपपराक्रमे अमुकवधाय विचेतसे स्वाहा—इस मन्त्र का किसी समुद्रगामिनी नदी में दक्षिणमुख बैठकर बाँह उठाकर गीला वस्त्र पहने हुए जप करे।

जब तक गीला वस्त्र सूखेगा तक तक के समय के भीतर शत्रु का प्राण सूखता जायगा। यह आर्द्रपटी नामक अभिचार क्रिया है।

श्मशानभैरवीमन्त्र:

श्मशानभैरवि नररुधिरास्थिरसभक्षिणि सिद्धिं मे देही मम मनोरथान् पूरय हूँ फट् स्वाहा।

श्मशानभैरवी मन्त्र—ॐ श्मशानभैरवी नररुधिरास्थिरसभक्षिणि (अस्थिवसाभ-

क्षिणि वा) सिद्धिं मे देहि, मम मनोरथान् पूरय, हूं फट् स्वाहा—इस मन्त्र से मारण आदि क्रूर कर्म करे।

महाकालीमन्त्रः

ॐ फ्रें फ्रें क्रों क्रों पशून् गृहाण हूं फट् स्वाहा। श्मशानभैरवीमन्त्रेण यावत्क्रूरकर्मणि प्रयोगः कर्त्तव्यः।

ॐ फ्रें फ्रें क्रों क्रों पशून् गृहाण हूं फट् स्वाहा—यह पञ्चदशाक्षर महाकाली का मन्त्र है। पूर्वोक्त श्मशान भैरवी मन्त्र के समान ही समस्त क्रूर कर्मों में इसका प्रयोग किया जाता है।

महाकालीमन्त्रप्रयोगः

तत्र न न्यासादिकं कर्त्तव्यम्। तथा च—

न्यासशुद्ध्यादिकं किञ्चिन्नात्र कार्या विचारणा।
कृष्णतोयैश्च सम्पूर्णे कृष्णकुम्भेऽथ कालिकाम् ।
पूजयेत् कृष्णपुष्पेण श्मशाने दक्षिणामुखः ।।
पञ्चवक्त्रां महारौद्रीं प्रतिवक्त्रत्रिलोचनाम् ।
शक्तिशूलधनुर्वाण - खड्गखेटवराभयान् ।।
दक्षादक्षभुजैर्देवीं बिभ्राणां भूरिभूषणाम् ।
ध्यात्वैवं साधकः साध्यं साधयेन्मनसि स्थितम् ।।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ।
वाराही च तथा चैन्द्री चामुण्डा चण्डिकाष्टमी ।
पूर्वादीशानपर्यन्तं कुम्भस्थाने स्थिता इमाः ।।

तत्र क्रमः—देवीं ध्यात्वा यथाविध्युपचारेण सम्पूज्य ब्राह्याद्यष्टशक्तीः पूर्वादिक्रमेण पूजयेत्। तथा—

नामोच्चारणसंरब्धं वह्नौ प्रज्वलितेऽम्बरे ।
जुहुयाद्वैरिणां शुद्धौ देवीमन्त्रं जपस्तथा ।।
समिधः पिचुमर्दस्य तथा विभीतकाष्ठिका ।
गृहधूमं श्मशानान्तं विभीताङ्गारहोमतः ।
सप्ताहाद्वैरिणं हन्ति कालीमन्त्रप्रयोगतः ।।
उच्चाटनं चापराह्णे सन्ध्यायां मारणं तथा ।
दक्षिणस्यां दिशि स्थित्वा ग्रामादेर्दक्षिणामुखः ।।

महाकाली मन्त्रप्रयोग—पूर्वोक्त ॐ फ्रें फ्रें क्रों क्रों पशून् गृह्ण हूं फट स्वाहा—पन्द्रह अक्षरों के इस मन्त्र की उपासना में किसी न्यास, शुद्धि की आवश्यकता नहीं है।

काले रंग के जल से पूर्ण काले कुम्भ में श्मशान में दक्षिणमुख होकर काले पुष्पों से पूजा करे। ध्यान निम्न प्रकार से करे—

पञ्चवक्त्रां महारौद्रीं प्रतिवक्त्रत्रिलोचनाम्।
शक्तिशूलधनुर्वाणखड्गखेटवराभयान् ।।
दक्षादक्षभुजैर्देवीं विभ्राणां भूरि भूषणाम्।

देवी के पाँच मुख हैं। प्रत्येक मुख में तीन नेत्र हैं। स्वरूप अत्यन्त रौद्र है। दाँयें और बाँयें हाथों में शक्ति, शूल, धनुष, वाण, खड्ग, खेटक, वर और अभयमुद्रा हैं। सभी अलंकारों से विभूषित हैं। ऐसी महाकाली का ध्यान करके साधक अपने अभीष्ट की साधना करे।

कुम्भ के पूर्व से ईशान तक आठो दिशाओं में ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकायें विराजमान हैं। ऐसा ध्यान करके यथासम्भव उपचारों से देवी की पूजा करके ब्राह्मी आदि आठ शक्तियों की पूजा करे।

शत्रुनिवारण में अग्नि प्रज्वलित कर शत्रु का नामोच्चारण करके देवी का मन्त्र जपते हुए हवन करे। नीम की लकड़ी की समिधा या श्मशानस्थित लिसोड़े के अंगार द्वारा सप्ताह तक हवन करने से शत्रु का नाश होता है।

अपराह्न में उच्चाटन कार्य और सायंकाल में मारण कार्य करे। गाँव की दक्षिण दिशा में दक्षिणमुख होकर अपराह्न में उच्चाटन और सन्ध्याकाल में मारण कार्य का अनुष्ठान करे।

ज्वालामालिनीमन्त्रः

ॐ नमो भगवति ज्वालामालिनि गृध्रगणपरिवृते हूं फट् स्वाहा। तत्र प्रयोगः; तत्राङ्गन्यासः—

ॐ नमो हृदयं प्रोक्तं भगवतीति शिरः स्मृतम् ।
ज्वालामालिनी च शिखा गृध्रगणपरिवृते ततः ।
वर्म स्वाहास्त्रमित्युक्तं जातियुक्तं न्यसेत्तनौ ।।

प्रयोगस्तु—ॐ नमो हृदयाय नमः इत्यादि ।

अभुक्त्वा नियतं चैव जपेन्मन्त्रं जपाज्जयी ।
जपेदष्टसहस्रन्तु त्रयोविंशतिवासरान् ।।
प्रत्यहं साधनं सिद्धिं ददाति च न संशयः ।
स्मृतिमात्रेण वै मन्त्री रिपून् सर्वान् विनाशयेत् ।।

प्रयोगान्तरं फेत्कारीये—ॐ ठं ठां ठिं ठीं ठुं ठूं ठें ठैं ठों ठौं ठं ठः अमुकं

गृह्ण गृह्ण हूं हूं ठः ठः। अनेन मन्त्रेण शृगालास्थिमयं कीलकं पञ्चांगुलं सहस्रेणाभिमन्त्रितं यस्य गेहे निखनेत्, यस्य नाम्ना श्मशाने वा निखनेत्, स उन्मत्तो भवति।

ॐ डं डां डिं डीं डुं डूं डें डैं डों डौं डं डः अमुकं गृह्ण गृह्ण हूं हूं ठः ठः। अनेन मन्त्रेण मनुष्यास्थिमयं कीलकं वितस्तिप्रमाणं सहस्रेणाभिमन्त्रितं यस्य गृहे निखनेत्, यस्य नाम्ना श्मशाने वा निखनेत् तस्य समस्तपरिवारा नश्यन्ति।

उद्धृते खलु शान्तिः। शान्तिमन्त्रो यथा—ॐ सः सं सं हः अमुकस्य शान्तिर्भवतु स्वाहा। अनेन मन्त्रेण घृतमधुसिक्तं क्षीरं हुनेत्। तेन शान्तिर्भवति।

ॐ ढं ढां ढिं ढीं ढुं ढूं ढें ढैं ढों ढौं ढं ढः अमुकं मारय मारय ठः ठः। अनेन मन्त्रेण गर्द्भास्थिमयं कीलकं त्रयोदशांगुलं सहस्रेणाभिमन्त्रितं यस्य गेहे निखनेत्, स ज्वरेण विनश्यति।

ॐ णं णां णिं णीं णुं णूं णें णैं णों णौं णं णः। अनेन खदिरकाष्ठमयं कीलकं षडंगुलं सहस्रेणाभिमन्त्रितं यस्य गृहे निखनेत्, यस्य नाम्ना श्मशाने वा निखनेत्, तस्य सर्वान्नाशयति।

ज्वालामालिनी-मन्त्र—ज्वालामालिनी का मन्त्र है—ॐ नमो भवगति ज्वालामालिनि, गृध्रगणपरिवृते हूं फट् स्वाहा। साधनाविधि यह है कि पहले करन्यास तब अंगन्यास करे।

मन्त्र	करन्यास	अंगन्यास
ॐ नमो	अंगुष्ठाभ्यां नम:	हृदयाय नम:
भगवति	तर्जनीभ्यां स्वाहा	शिरसे स्वाहा
ज्वालामालिनि	मध्यमाभ्यां वषट्	शिखायै वषट्
गृध्रगणपरिवृते	अनामिकाभ्यां हुं	कवचाय हुं
हूं फट्	कनिष्ठाभ्यां वौषट्	नेत्रत्रयाय वौषट्
स्वाहा	करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्	अस्त्राय फट्

विना भोजन किए नियमित रूप से उक्त मन्त्र का जप करने से विजय प्राप्त होती है। तेईस दिन तक आठ हजार प्रतिदिन जप से मन्त्र सिद्ध होता है। इस मन्त्र के स्मरण-मात्र से सभी शत्रुओं का नाश होता है।

अन्य प्रयोग—फेत्कारिणीतन्त्र में वर्णन है कि ॐ ठं ठां ठिं ठीं ठुं ठूं ठैं ठौं ठं ठः अमुकं गृह्ण गृह्ण हूं हूं ठः ठः मन्त्र से शृगालास्थि की पाँच अंगुल लम्बी कील को एक हजार जप से अभिमन्त्रित करके जिसके घर में गाड़ा जाय या जिसके नाम से श्मशान में गाड़ा जाय, वह उन्मत्त हो जाता है।

ॐ डं डां डिं डीं डुं डूं डें डैं डों डौं डं डः अमुकं गृह्ण गृह्ण हूं हूं (ह्लं ह्लं वा) ठः ठः। इस मन्त्र से मानवास्थि की बारह अंगुल की कील को एक हजार जप से अभिमन्त्रित करके जिसके घर में या जिसके नाम से श्मशान में गाड़ा जाय, उस व्यक्ति के समस्त परिवार का नाश हो जाता है।

उक्त कील को उखाड़कर 'ॐ सः सं सं हः अमुकस्य शान्तिर्भवतु स्वाहा' मन्त्र से घृताक्त खीर में हवन करने से शान्ति होती है।

ॐ ढं ढां ढिं ढीं ढुं ढूं ढें ढैं ढों ढौं ढं ढः अमुकं मारय मारय ठः ठः (ठं ठः वा)। गर्दभास्थि की तेरह अंगुल लम्बी कील को इस मन्त्र के एक हजार जप से अभिमन्त्रित करके जिसके घर में गाड़ा जायेगा, उसकी मृत्यु ज्वर से हो जाती है।

ॐ णं णां णिं णीं णुं णूं णें णैं णों णौं णं णः। छः अंगुल लम्बी खैर की कील को इस मन्त्र के हजार जप से अभिमन्त्रित करके जिसके घर में या जिसके नाम से श्मशान में गाड़ा जायगा, उस व्यक्ति के सभी विषय नष्ट हो जाते हैं।

निगडबन्धनमोक्षणम्

ॐ नमः निर्ऋते निर्ऋते तिग्मतेजो यन्मयं विव्रेता बन्धमेत यमेन दत्तं तस्य संविदा नोत्तमे नाके अघोरोह वैरम्।

अस्य निगडभञ्जनमन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्निर्ऋतिर्देवता तृष्टुप्छन्दो बन्धनादिव्यसनपरिहारे विनियोगः।

एवं ऋष्यादिकं न्यस्य अयुतं प्रजपेत्सुधीः ।
ततो बन्धनाद्व्यसनाच्च मुक्तो भवति नान्यथा ।।

निगड़बन्धनमोक्षण मन्त्र—ॐ नमः निर्ऋते ऋते तिग्मतेजो यन्मयं विव्रेता बन्धमेत यमेन दत्तं तस्य संविदा (तत्सन्विता वा) नोत्तमे नाके अघोरो ह वैरम्।

इस मन्त्र का विनियोग इस प्रकार का है—ॐ अस्य निगड़बन्धनमोक्षणमन्त्रस्य प्रजापति ऋषिः निर्ऋति देवता तृष्टुप् छन्दो बन्धनादिव्यसनपरिहारे विनियोगः।

इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करके दश हजार जप करने से शीघ्र ही बन्धन से मुक्ति प्राप्त होती है।

चिटिमन्त्रः

तारं चिटिद्वयं ब्रूयाच्चाण्डालि च ततः परम् ।
महदाद्यां ततो ब्रूयादमुकं मे ततः परम् ।।
वशमानय ठद्वन्द्वं चिटिमन्त्र उदाहृतः ।
सप्तभिर्दिवसैर्भूपान् वशयेद्विधिनामुना ।।

विधिमाह—

विलिख्य तालपत्रे तं साध्यनाम्ना विदर्भितम् ।
निक्षिप्य क्षीरसम्मिश्रे जले तत्क्वाथयेन्निशि ।
वश्यो भवति साध्यश्च नात्र कार्या विचारणा ॥
तालपत्रे लिखित्वैनं भद्रकाली गृहे खनेत् ।
वश्याय सर्वजन्तूनां प्रयोगोऽयमुदाहृतः ॥

चिटिमन्त्र—ॐ चिटि चिटि चाण्डालि महाचाण्डालि अमुकं मे वशमानय स्वाहा। यह मन्त्र एक सप्ताह में राजा को वश में करता है।

अभीष्ट व्यक्ति के नाम के सहित उक्त मन्त्र को ताड़पत्र पर लिखकर दुग्धमिश्रित जल में डाले। रात में उसे अग्नि से पकाये। साध्य व्यक्ति निश्चय ही वशीभूत होता है।

मन्त्र को ताड़पत्र पर लिखकर यदि भद्रकाली के मन्दिर में गाड़ दे तो सभी प्राणी वशीभूत होते हैं।

त्र्यम्बकमन्त्र:

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥
वसिष्ठोऽस्य मुनिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
देवतास्य समुद्दिष्टा त्र्यम्बकः पार्वतीपतिः ।
विभक्तैर्मन्त्रवर्णैश्च षडङ्गानाञ्च कल्पनम् ॥

तत्र प्रयोगः—भूतशुद्ध्यादिपीठन्यासान्तं कर्म समाप्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। यथा—शिरसि वसिष्ठऋषये नमः, मुखे अनुष्टुप्छन्दसे नमः, हृदि त्र्यम्बकाय देवतायै नमः। अमुकस्यामुकशान्तये विनियोगः।

ततः कराङ्गन्यासौ यथा—त्र्यम्बकं अंगुष्ठाभ्यां नमः, यजामहे तर्जनीभ्यां स्वाहा, सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनं मध्यमाभ्यां वषट्, उर्वारुकमिव बन्धनात् अनामिकाभ्यां हुं, मृत्योर्मुक्षीय कनिष्ठाभ्यां वौषट्, मामृतात्करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु। यथा—

त्रिभिस्तु वर्णैर्हृदयं शिरश्चतुर्भिरीरितम् ।
अष्टाभिश्च शिखा प्रोक्ता नवार्णैः कवचं तथा ॥
तथाक्षि पञ्चाक्षरैस्त्र्यक्षरं करतले स्मृतम् ।
ततः पूर्वपाश्चात्ययाम्योत्तरवक्त्रेषु तदनन्तरम् ॥
उरोगलास्येषु पुनर्नाभिहृत्पृष्ठकुक्षिषु ।
लिङ्गपायूरुमूलान्तर्जानुजङ्घायुगेषु तत्परम् ॥

तद्वृत्तयुग्मे स्तनयोः पार्श्वयोः पादयोः पुनः ।
पाण्योर्नासिकयोः शीर्षे मन्त्रवर्णान्न्यसेत्क्रमात् ।।

ततः पदान्येकादश न्यसेत्। शिरोभ्रूयुगलाक्षिषु वक्त्रे गण्डद्वये भूयो हृदये जठरे पुनः। गुह्योरुजानुपदेषु न्यासमेवं समाचरेत्। ततो ध्यानम्—

हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम्।
अङ्गन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे ।।

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य अर्घ्यस्थापनं कुर्यात्।

त्र्यम्बकमन्त्र—मन्त्र है—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारूकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।

इस मन्त्र के ऋषि वशिष्ठ, छन्द अनुष्टुप् और देवता पार्वतीपति त्र्यम्बक हैं।

सामान्य विधि से भूतशुद्धि से पीठन्यास तक के कर्म करके ऋष्यादि न्यास करे। शिरसि वशिष्ठऋषये नम:। मुखे अनुष्टुप् छन्दसे नम:। हृदि त्र्यम्बकाय देवतायै नम:। सर्वांगे अमुकस्य अमुकशान्तये जपे विनियोग:।

मन्त्र	करन्यास	अंगन्यास
त्र्यम्बकं	अंगुष्ठाभ्यां नम:	हृदयाय नम:
यजामहे	तर्जनीभ्यां स्वाहा	शिरसे स्वाहा
सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्	मध्यमाभ्यां वषट्	शिखायै वषट्
उर्वारूकमिव बन्धनात्	अनामिकाभ्यां हुं	कवचाय हुं
मृत्योर्मुक्षीय	कनिष्ठाभ्यां वौषट्	नेत्रत्रयाय वौषट्
मामृतात्	करतलपृष्ठाभ्यां फट्	अस्त्राय फट्

मन्त्रवर्णन्यास—पूर्ववक्त्रे त्र्यं नम:। पश्चिमवक्त्रे म्बं नम:। दक्षिणवक्त्रे कं नम:। उत्तरवक्त्रे यं नम:। वक्ष:स्थले जां नम:। गलदेशे मं नम:। मुखे हें नम:। नाभौ सुं नम:। हृदये गं नम:। पृष्ठे न्धिं नम:। उदरे पुं नम:। लिंगे ष्टिं नम:। गुह्यदेशे वं नम:। दक्षोरुमूले र्धं नम:। वामोरुमूले नं नम:। दक्षजानौ उं नम:। वामजानौ र्वां नम:। दक्षजंघायां रुं नम:। वामजघायां कं नम:। दक्षजंघावृते मिं नम:। वामजंघावृते वं नम:। दक्षस्तने बं नम:। वामस्तने न्धं नम:। दक्षपार्श्वे नां नम:। वामपार्श्वे न्मृं नम:। दक्षपादे त्यों नम:। वामपादे र्मुं नम:। वामहस्ते यं नम:। दक्षनासिकायां मां नम:। वामनासिकायां मृं नम:। शीर्षे तात् नम:।

तब अपने शरीर के ग्यारह स्थानों में ग्यारह मन्त्रपदों का न्यास करे। शीर्षे त्र्यम्बकं नमः। भ्रूयुगले यजामहे नमः। नेत्रद्वये सुगन्धिं नमः। वक्त्रे पुष्टिवर्धनं नमः। गण्डे उर्वारुकं नमः। हृदये मिव नमः। उदरे बन्धनात् नमः। गुह्ये मृत्यो नमः। ऊरूद्वये मुक्षीय नमः। जानुद्वये मा नमः। जंघाद्वये अमृतात् नमः। इसके बाद निम्नवत् ध्यान करे—

हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम्।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे।।

अर्थात् त्र्यम्बक देव के आठ हाथ हैं। अपने दो हाथों में वे दो अमृतकलशों में अमृत लेकर अपने मस्तक को आप्लावित कर रहे हैं। अन्य दो हाथों में दो अमृतकलश लिए हुए हैं। दूसरी ओर के दो हाथों में से एक में मृग और दूसरे में अक्षमाला है। अन्य दो हाथ अपनी गोद में उत्तान रूप से रक्खे हुए हैं; जिन पर दो अमृतपूर्ण घट स्थित हैं। कैलासनाथ त्र्यम्बकदेव श्वेत पद्म पर आसीन हैं। नवेन्दु मुकुटस्वरूप अलंकर से सुशोभित हैं। उनके तीन नेत्र हैं।

इस प्रकार ध्यान करने के बाद मानसोपचारों से पूजा करे। अर्घ्य स्थापन करे।

ततः शैवोक्तपीठपूजां विधाय, पुनर्ध्यात्वा, आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय, आवरणपूजामारभेत्। अग्न्यादिकोणे केशरेषु मध्ये दिक्षु च त्र्यम्बकं हृदयाय नमः इत्यादिना षडङ्गः पूजयेत्।

ततोऽष्टपत्रेषु ॐ अर्काय नमः, एवं इन्दवे वसुधायै जलाय वह्नये वायवे वियते यजमानाय। तद्बाह्ये पूर्वादि—रमा राका प्रभा ज्योत्स्ना पूर्णा पूषा पूरणी सुधा। वाक्यन्तु—रमायै नमः इत्यादि। तद्बाह्ये—विश्वा विद्या सिता प्रज्ञा सारा सन्ध्या शिवा निशा। तद्बाह्ये—आर्द्रा प्रज्ञा प्रभा मेधा कान्तिः शान्तिर्धृतिर्मतिः। तद्बाह्ये—परा उमा पावनी पद्मा शान्ता अमोघा जया अमला; एताः पूजयेत्।

ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। अस्य पुर-श्चरणं लक्षजपः। तथा च शारदायाम्—

जपेन्मन्त्रमिमं लक्षमेवं ध्यायञ्जितेन्द्रियः।
जुहुयाद्दशभिर्द्रव्यैरयुतं घृतसंप्लुतैः।।
बिल्वं पलाशं खदिरं बटञ्च तिलसर्षपौ।
दौग्धं दुग्धं दधि पुनर्दूर्वास्तानि विदुर्बुधाः।।

तब शिवपूजन पद्धति में वर्णित पीठदेवताओं की पूजा करके पुनः ध्यान-आवाहन से पञ्च पुष्पाञ्जलि अर्पण तक के कर्म करके आवरण पूजा करे।

अग्नादि कोणों के केशरों में, मध्य में, चारो दिशाओं में षडंग पूजन करे। षडंग न्यास में वर्णित मन्त्रों से षडंग पूजा करे।

अष्टदलों में ॐ अर्काय नमः, ॐ चन्द्राय नमः, ॐ वसुधायै नमः, ॐ जलाय नमः, ॐ वह्नये नमः, ॐ वायवे नमः, ॐ वियते नमः, ॐ यजमानाय नमः से आठ देवताओं की पूजा करे।

इसके बाहर पूर्वादि क्रम से इनकी पूजा करे—ॐ रमायै नमः, ॐ राकायै नमः, ॐ प्रभायै नमः ॐ ज्योत्स्नायै नमः, ॐ पूर्णायै नमः, ॐ पूषायै नमः, ॐ पूरण्यै नमः, ॐ सुधायै नमः।

त्र्यम्बक पूजनयन्त्र

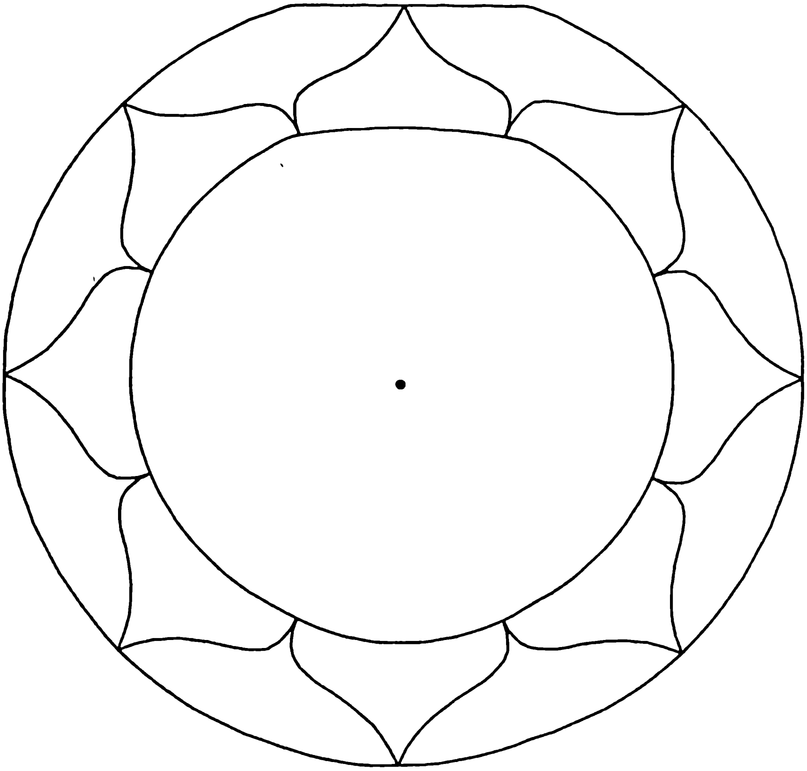

इसके बाहर—ॐ विश्वायै नमः। ॐ विद्यायै नमः। ॐ सितायै नमः। ॐ प्रज्ञायै नमः। ॐ सारायै नमः। ॐ सन्ध्यायै नमः। ॐ शिवायै नमः। ॐ निशायै नमः से पूजा करे।

इसके बाहर—ॐ आर्द्रायै नमः। ॐ प्रज्ञायै नमः। ॐ प्रभायै नमः। ॐ मेधायै नमः। ॐ कान्त्यै नमः। ॐ शान्त्यै नमः। ॐ धृत्यै नमः। ॐ मत्यै नमः से पूजा करे।

इसके बाहर इनकी पूजा करे—ॐ परायै नमः। ॐ उमायै नमः। ॐ पावन्यै नमः। ॐ पद्मायै नमः। ॐ शान्तायै नमः। ॐ अमोघायै नमः। ॐ जयायै नमः। ॐ अमलायै नमः।

इस अष्टदल में पहले घेरे में अर्क आदि का, दूसरे घेरे में रमा आदि का, तीसरे घेरे में विश्वा आदि का, चौथे घेरे में आर्द्रा आदि का और पाँचवें घेरे में परा आदि का पूजन करे।

इसके बाद धूपादि से विसर्जन तक के कर्म करके पूजन पूरा करे। एक लाख जप से इस मन्त्र का पुरश्चरण होता है। शारदातन्त्र में लिखा है कि साधक जितेन्द्रिय होकर इस देवता का ध्यानपूर्वक एक लाख जप करके घृताक्त दस वस्तुओं से दश हजार हवन करे।

हवन-सामग्री—१. बेल, २. पलाश, ३. खैर, ४. वट, ५. तिल, ६. सरसो, ७. दूध का मक्खन, ८. दूध, ९. दही, १०. दूर्वा।

प्रयोगस्तु—शनैश्चरदिने अन्यदिवसे वा अश्वत्थमूलं स्पृष्ट्वा सहस्रं जपेत्।

तथा च—

शनिवारे दिनेऽश्वत्थमूलं संस्पृश्य यो जपेत् ।
साक्षान्मृत्योर्विमुच्येत किमन्याः क्षुद्रिकाः क्रियाः ॥

तथा—

स्नात्वा सहस्रं प्रजपेदादित्याभिमुखो मनुम् ।
आधिव्याधिविनिर्मुक्तो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥
प्रत्यहं जुहुयान्मन्त्री दूर्वयाष्टोत्तरं शतम् ।
आमयानखिलाञ्जित्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥
वटवृक्षस्य समिधो जुहुयादयुतावधि ।
धनधान्यसमृद्धिः स्यादचिरेणैव सिध्यति ॥

विशेष प्रयोग—शनिवार अथवा अन्य कुलवार में अश्वत्थमूल का स्पर्श करके त्र्यम्बक मन्त्र का एक हजार जप करने वाला व्यक्ति साक्षात् मृत्यु पर भी विजय प्राप्त करता है। अन्य सभी कार्य उसके लिये तुच्छ रहते हैं।

लिखा है कि स्नान कर पूर्वाभिमुख होकर मन्त्र का जप करने से सब व्याधियों से छुटकारा मिलकर दीर्घ जीवन मिलता है। प्रतिदिन दूर्वा से दश हजार हवन करने से

साधक सब रोगों से मुक्त होकर दीर्घायु प्राप्त करता है।

वटवृक्ष की समिधा से दश हजार हवन करने से शीघ्र ही धन-धान्यादि की समृद्धि प्राप्त होती है।

मृतसञ्जीवनीमन्त्र:

आदौ प्रासादबीजं तदनु मृतिहरं तारकं व्याहृतिञ्च ।
प्रोच्चार्य त्र्यम्बकं यो जपति च सततं सम्पुटं चानुलोमात् ॥

मृतिहरं त्र्यक्षरमृत्युञ्जयमन्त्रम्। ॐ जूं स:। अस्य जपात्सर्वसिद्धिर्भवति। अथ शुक्रोपासिता मृतसञ्जीवनी विद्या गायत्र्या: प्रथम: पादस्त्र्यम्बकपादैकं तथा। गायत्र्या: द्वितीय: पाद: त्र्यम्बकस्य द्वितीय: पाद:। गायत्र्या: तृतीय: पाद: त्र्यम्बकशेषपाद:।

मन्त्रो यथा—ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनं भर्गो देवस्य धीमहि उर्वारुकमिव बन्धनात् धियो यो न: प्रचोदयात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। ध्यानम्—

स्वच्छं स्वच्छारविन्दस्थितमुभयकरे संस्थितौ पूर्णकुम्भौ
द्वाभ्यामेणाक्षमाले निजकरकमले द्वौ घटौ नित्यपूर्णौ ।
द्वाभ्यां तौ च स्रवन्तौ शिरसि शशिकलां चामृतै: प्लावयन्तं
देहं देवो दधान: प्रदिशतु विशदाकल्पजात: श्रियं व: ॥

एवं ध्यात्वावाह्य त्र्यम्बकाय महारुद्राय नम: इत्यनेन पूजयेत्। अस्य जपात् सर्वसिद्धिर्भवति।

मृतसञ्जीवनी मन्त्र—प्रासाद बीज, मृत्युंजय मन्त्र, प्रणव व्याहृतित्रय, त्र्यम्बक मन्त्र, प्रासाद बीज, मृत्युंजय मन्त्र, प्रणव और व्याहृतित्रय से पुटित करने से यह मृतसञ्जीवनी मन्त्र बनता है—हौं ॐ जूं स: ॐ भूर्भुव: स्व: ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् हौं ॐ जूं स: भुर्भुव: स्व:। इस मन्त्र के जप से सभी कार्यों की सिद्धि होती है।

शुक्राचार्य द्वारा उपासित मृतसञ्जीवनी विद्या इस प्रकार की है—पहले गायत्री का प्रथम पाद, तब त्र्यम्बक का एक पाद, तब गायत्री का द्वितीय पाद, तब त्र्यम्बक का द्वितीय पाद, तब गायत्री का तृतीय पाद, तब त्र्यम्बक का तृतीय पाद—इनके मिलने से मन्त्र बनता है—

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनं भर्गोदेवस्य धीमहि उर्वारुकमिव बन्धनात् धियो यो न: प्रचोदयात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।

मृतसञ्जीवनी मन्त्र का ध्यान इस प्रकार है—

स्वच्छं स्वच्छारविन्दस्थितमुभयकरे संस्थितौ पूर्णकुम्भौ
द्वाभ्यामेणाक्षमाले निजकरकमले द्वौ घटौ नित्यपूर्णौ।
द्वाभ्यां तौ च स्रवन्तौ शिरसि शशिकलां चामृतैः प्लावयन्तं
देहं देवो दधानः प्रदिशतु विशदाकल्पजातः श्रियं वः।।

अर्थात् त्र्यम्बकदेव का निर्मल शरीर स्वच्छ कमल पर विराजमान है। उनके दो हाथों में दो अमृतपूर्ण कलश हैं अन्य दो हाथों में मृग तथा अक्षमाला हैं। अन्य दो हाथों में अमृतपूर्ण घट हैं।

अन्य दो हाथों से उन्हीं घटों से अमृत लेकर अपने शिर पर स्थित चन्द्रकला को आप्लावित कर रहे हैं। निर्मल वेश से विभूषित इस प्रकार के त्र्यम्बकदेव हमारा मंगल करें।

इस प्रकार ध्यान करके आवाहन करे। ॐ त्र्यम्बकाय महारुद्राय: नम: मन्त्र से पूजन करे। इस मन्त्र के जप से सभी प्रकार की सिद्धियाँ मिलती हैं।

आकर्षणम्

आकर्षणविधानानि कथयामि समासतः ।
यद्दृष्टं त्रिपुरातन्त्रे यद्दृष्टं भूतडामरे ।।
श्रीबीजं मान्मथं बीजं लज्जाबीजं समुद्धरेत् ।
प्रथमं प्रणवं दत्त्वा त्रिपुरादेविपदं ततः ।।
अमुकीमिति पदद्वन्द्वं आकर्षय द्विधा पदम् ।
स्वाहान्तं मन्त्रमुद्धृत्य जपेद्दशसहस्रकम् ।।
षट्कोणञ्च समालिख्य रक्तचन्दनकुङ्कुमैः ।
षडङ्गं कारयेन्मन्त्री लज्जाबीजसमन्वितम् ।।
षड्दीर्घभाक्स्वरेणैव नादविन्दुविभूषितम् ।
रक्तपुष्पाक्षतधूपादिर्नैवेद्यैः परिपूज्यताम् ।।
भावयञ्चेतसा देवीं त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम् ।
बालार्ककिरणप्रख्यां सिन्दूरारुणविग्रहाम् ।।
पद्मञ्च दक्षिणे पाणौ जपमालाञ्च वामके ।
मन्त्रस्यास्य प्रसादेन रम्भामपि तथोर्वशीम् ।
आकर्षयेन्न सन्देहः किं पुनर्मानुषीमिह ।।
भूर्जपत्रे समालिख्य कुङ्कुमालक्तवारिणा ।
काश्मीरागुरुकस्तूरीरोचनामिलितेन तु ।

अनामारक्तमिश्रेण कमलाक्षीमनुं जपेत् ।।

'ॐ श्रीं कमलाक्षि अमुकीमाकर्षयाकर्षय ॐ फट्।'

इमं मन्त्रं जपेदादौ सहस्रैकं ततः पुनः ।
भूर्ज्जपत्रे समादाय गुलिकां कारयेत्सुधीः ।।
तेनैव साध्यपादोत्थं मृत्तिकापङ्कवेष्टिताम् ।
शोषितां तेजसा भानोर्वेष्टयेत्त्रिकटुकैः पुनः ।।
प्रतिमां स्त्रीनिभां कृत्वा तस्याः क्षिपेत्तथोदरे ।
गुलिकां पातयेत्पात्रे प्रतिमां साध्यरूपिणीम् ।।
तादृशाभिमुखी भूत्वा निर्जने निशि साधकः ।
यावद् गच्छति चित्तञ्च तावद्रूपं जपेन्मनुम् ।
यावदायाति सन्त्रस्ता मदनालसविग्रहा ।।

आकर्षण—त्रिपुरातन्त्र और भूतडामर में आकर्षण का जो विधान है, उसका संक्षिप्त रूप इस प्रकार का है—श्रीं क्लीं ह्रीं ॐ त्रिपुरा देवी अमुकीं अमुकीं आकर्षय आकर्षय स्वाहा। इस मन्त्र का जप दश हजार करे।

रक्तचन्दन और कंकुम से षट्कोण बनाकर पूजन मन्त्र से करे। लज्जाबीज ह्रीं को षड्दीर्घ स्वरों से युक्त करके करांग न्यास करे। जैसे—ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः, ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादि और ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा इत्यादि।

रक्त पुष्प-अक्षत-धूप-दीप और नैवेद्य से पूजन करे। तब मन ही मन देवी का इस प्रकार ध्यान करे—

भावयाञ्चेतसा देवीं त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम्।
बालार्ककिरणप्रख्यां सिन्दूरारुणविग्रहाम्।
पद्मं च दक्षिणे पाणौ जपमालां च वामके।।

देवी के तीन नेत्र हैं। मस्तक पर चन्द्रमा है। देहकान्ति बाल सूर्य के समान है। देह का वर्ण सिन्दूर के समान लाल है। उनके दाँयें हाथ में पद्म और बाँयें हाथ में जपमाल है।

इस मन्त्र के प्रभाव से रम्भा और उर्वशी को भी निश्चय ही आकृष्ट किया जा सकता है। तब मानुषी आकर्षण में क्या आश्चर्य हो सकता है।

भोजपत्र पर कुंकुम अथवा कस्तूरी, अगर, गोरोचन में अनामिका रक्त को मिलाकर उससे 'ॐ श्रीं कमलाक्षि अमुकीम् आकर्षय आकर्षय हूं फट्'—यह कमलाक्षी मन्त्र लिखकर उस पर उक्त मन्त्र का एक हजार जप करे। तब उस भोजपत्र की गुलिका बनाकर अभीष्ट व्यक्ति के पैर की मिट्टी से उसे वेष्टित करे। तब उस मिट्टी-लिप्त गुलिका को धूप में सुखा ले। तब मरिच, पीपल, सोंठ, त्रिकटु से अभीष्ट रमणी की प्रतिमा बनाकर उसके

पेट में उक्त गुलिका को डाल दे। तब उस प्रतिमा को किसी पात्र में स्थापित कर वह रमणी जिस दिशा में हो, उसी की ओर मुख करके बैठे और निशाकाल में किसी निर्जन स्थान में पूर्वोक्त कमलाक्षी मन्त्र का जप करे। ऐसा करने से रमणी आकर्षित होकर साधक के समीप उपस्थित हो जाती है।

वशीकरणम्

तत्र चामुण्डामन्त्रः—तारं चामुण्डे जय चामुण्डे मोहय वशमानयामुकं स्वाहा। ध्यानम्—

दंष्ट्राकोटिविशङ्कटा सुवदना सान्द्रान्धकारे स्थिता
खट्वाङ्गारनिगूढदक्षिणकरा वामेन पाशं शिरः।
श्यामा पिङ्गलमूर्द्धजा भयकरी शार्दूलचर्मावृता
चामुण्डा शववाहिनी जपविधौ ध्येया सदा साधकैः॥
लक्षं जप्त्वा दशांशं किंशुककुसुमैर्वह्निमध्ये च देवी।
चामुण्डा साधकानां भवति च फलदा नाममात्रेण शीघ्रम्॥

वशीकरण—वशीकरण के सम्बन्ध में चामुण्डा का मन्त्र है—चामुण्डे जय चामुण्डे मोहय वशमानय अमुकं स्वाहा।

इसका ध्यान इस प्रकार है—

दंष्ट्राकोटिविशङ्कटा सुवदना सान्द्रान्धकारे स्थिता
खट्वाङ्गारनिगूढदक्षिणकरा वामेन पाशं शिर:।
श्यामा पिङ्गलमूर्द्धजा भयकरी शार्दूलचर्मावृता
चामुण्डा शववाहिनी जपविधौ ध्येया सदा साधकै:।।

चामुण्डा देवी विकट दाँतों से भयंकर आकृति वाली हैं। उनका मुख सुन्दर है। वे घोर अन्धकार में अवस्थित हैं। उनके हाथ चार हैं। दाहिने दो हाथों में खड्ग और खट्वांग है। बाँयें दो हाथों में पाश और नरमुण्ड है। शरीर का वर्ण काला और केश पिंगल वर्ण का है। भयंकर वेश वाली, व्याघ्रचर्मधारिणी, शव के ऊपर आसीन हैं। जपकाल में साधक इसी प्रकार का ध्यान करे।

मन्त्र का एक लाख जप करके दश हजार हवन पलाश के फूलों से करे। इससे प्रसन्न होकर चामुण्डा देवी साधक के सभी अभीष्टों को प्रदान करती हैं।

विद्वेषणम्

अन्योन्यसमसंरम्भाद्रोषितौ समरे युतौ।
तदीयनखरोड्डीनधूलिमादाय साधकः॥
धूलिना तेन विद्वेषस्ताडनादभिजायते।

परस्परं रिपोर्वैरं मित्रेण सह निश्चितम् ।।
महिषाश्वपुरीषाभ्यां गोमूत्रेण समालिखेत् ।
ययोर्नाम तयोः शीघ्रं विद्वेषञ्च परस्परम् ।।
रक्तेन महिषाश्वेन श्मशानवस्त्रके लिखेत् ।
यस्य नाम भवेत्तस्य विद्वेषञ्च परस्परम् ।।
षट्कोणचक्रमध्ये तु रिपोर्नामसमन्वितम् ।
मन्त्रन्तु सम्प्रवक्ष्यामि महाभैरवसंज्ञकम् ।।

ॐ नमो महाभैरवाय श्मशानवासिने अमुकामुकयोर्विद्वेषं कुरु कुरु हूं फट्।

एतन्मन्त्रं लिखेत्तत्र विद्वेषो जायते ध्रुवम् ।।
अन्ययोगमहं वक्ष्ये दुर्लभं वसुधातले ।
ज्ञानमात्रेण शत्रूणां विद्वेषो जायते ध्रुवम् ।।

ॐ नमो भगवति श्मशानकालिके अमुकं विद्वेषय विद्वेषय हन हन पच पच मथ मथ हूँ फट् स्वाहा।

अमुना मन्त्रराजेन होमयेत् प्रयतः सुधीः ।
वह्निकुण्डे निम्बपत्रेण कटुतैलान्वितेन च ।।
प्रज्वाल्य खादिरं वह्निं श्मशानजं ततः पुनः ।
दशसाहस्रसंयुक्तं तिलयवाक्षतान्वितम् ।।
भावयन् कालिकां देवीं इन्द्रनीलसमप्रभाम् ।
व्योमनीलां महाचण्डां सुरासुरविमर्द्दिनीम् ।।
त्रिलोचनां महारावां सर्वाभरणभूषिताम् ।
कपालकर्त्तृकाहस्तां चन्द्रसूर्योपरि स्थिताम् ।।
शरजालगतां चैव प्रेतभैरववेष्टिताम् ।
वसन्तीं पितृकान्तारे सर्वसिद्धिप्रदायिनीम् ।।
होमयेद्विविधैः पुष्पैर्बलिच्छागोपहारकैः ।
पूजयित्वा महेशानीं भक्तियुक्तेन चेतसा ।।
तद्भस्म च समादाय धारयेदभिमन्त्रितम् ।
भस्मना तेन यं हन्याद्विद्वेषस्तद्भवेन्नृणाम् ।।
वह्निः शीतलतां याति पतेद्भूमौ यदा रविः ।
यदा शुष्यति पाथोधिश्चन्द्रमाः पतते यदि ।
यदा मिथ्या भवेद्देवि योगराजः सुदुर्लभः ।।
षट्कोणं चक्रराजन्तु शत्रूणां नामटङ्कितम् ।

पूर्वद्रव्येण विद्वेषं कारयेदथ साधकः ॥

ॐ द्रां विद्वेषिणि अमुकामुकयोः परस्परं विद्वेषं कुरु कुरु स्वाहा।

यन्त्रबाह्ये लिखेन्मन्त्रमिमं पूर्वोक्तवस्तुभिः ।
परस्परं भवेद्द्वेषो योगोऽयं कुब्जिकामते ॥

विद्वेषण—दो व्यक्तियों के परस्पर क्रुद्ध होकर लड़ने से उनके पैरों के नाखूनों से उठी हुई धूल को लाकर यदि दो बन्धुओं का उससे ताड़न करे तो उन दोनों में तुरन्त विद्वेषभाव उत्पन्न हो जाता है।

महिष और अश्व के मल को गोमूत्र से मिश्रित करके जिन दो व्यक्तियों के नाम उससे लिखे जायेंगे, उनमें परस्पर वैरभाव उत्पन्न हो जाता है।

महिष और अश्व के रक्त द्वारा श्मशान के वस्त्र पर जिनके नाम लिखे जायँ, उन दो व्यक्तियों में विद्वेष हो जाता है।

षट्कोण के मध्य में दो शत्रुओं के नाम लिखकर उसके ऊपर 'ॐ नमो महाभैरवाय श्मशानवासिने अमुकामुकयोः विद्वेषं कुरु कुरु हूं फट्' महाभैरव मन्त्र लिखने से उन दोनों शत्रुओं में परस्पर वैर होता है।

ॐ नमो भगवति श्मशानकालिके अमुकं विद्वेषय हन हन पच पच मथ मथ हूं फट् स्वाहा—मन्त्र से कडुआ तेलयुक्त नीम के पत्तों से हवन करने से शत्रुओं के मध्य में विद्वेष उत्पन्न होता है।

श्मशान की अग्नि लाकर खैर की लकड़ी से उसे प्रज्ज्वलित करे। तब उसमें तिल, यव और अक्षतसहित नीमपत्रयुक्त कडुआ तेल से एक हजार हवन करे। इससे शत्रुओं में परस्पर वैरभाव उत्पन्न होता है। हवन करते समय कालिका देवी का ध्यान इस प्रकार करे—

भाावयन् कालिकां देवीं इन्द्रनीलसमप्रभाम्।
व्योमनीलां महाचंडां सुरासुरविमर्दिनीम्।।
त्रिलोचनां महारावां सर्वाभरणभूषिताम्।
कपालकर्तृकाहस्तां चन्द्रसूर्योपरि स्थिताम्।
शरजालगतां चैव प्रेतभैरववेष्टिताम्।
वसन्तीं पितृकान्तारे सर्वसिद्धिप्रदायिनीम्।।

कालिका देवी का वर्ण इन्द्रनील आकाश के समान नीला है। आकृति अति प्रचण्ड है। देवासुर को भेदन करने वाली हैं। तीन नेत्र हैं। घोर शब्द करने वाली हैं। सभी प्रकार के आभूषणों से सुशोभित हैं। उनके एक हाथ में कपाल और दूसरे में कैंची है। चन्द्र-

सूर्य के ऊपर अवस्थित हैं। प्रेतभैरवगण उन्हें घेरे हुए हैं। शरजाल के मध्य में वे स्थित हैं। सर्वसिद्धिदायिनी देवी श्मशान में निवास करती हैं।

ध्यान के बाद साधक भक्तिपूर्वक अनेक पुष्पों से और छागादि विविध उपचारों से देवी की पूजा करे। तब हवन करे। हवन के अन्त में भस्म लाकर पूर्वोक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित करे। इस भस्म को जिसके शरीर पर छोड़ा जायगा, उसमें विद्वेषभाव उत्पन्न होगा; इसमें सन्देह नहीं है।

षट्कोण बनाकर उसके मध्य में पूर्वोक्त कुंकुमादि द्रव्यों से शत्रु का नाम लिखे। उसके बाहर 'ॐ द्रां विद्वेषिणि अमुकामुकयोः परस्परविद्वेषं कुरु कुरु स्वाहा' मन्त्र कुंकुमादि से लिखे। ऐसा करने से शत्रुओं में परस्पर विद्वेष होता है। यह प्रयोग कुब्जिका तन्त्र में कहा गया है।

उच्चाटनम्

उच्चाटनविधिं वक्ष्ये यथोक्तं श्रीमतोत्तरे ।
निम्बपत्रे लिखेन्नाम महिषाश्वपुरीषकैः ॥

ॐ नमः काकतुण्डि धवलामुखि अमुकमुच्चाटय हूं फट्।

एतन्मन्त्रं समभ्यर्च्य लिखित्वा पूर्ववस्तुभिः ।
निम्बवृक्षस्थितं सर्वं काकालयं हुनेदथ ॥
श्मशानवह्निमानीय धुस्तूरकाष्ठदीपितम् ।
वह्निं हुत्वा महातैलैरथवा कटुवस्तुभिः ॥
पूर्वोक्तमनुना तस्य पत्रं राजिकटुप्लुतम् ।
सम्पूज्य धवलामुखीं पञ्चोपचारपूजया ॥
तद्भस्म प्रक्षिपेच्छत्रोर्मन्दिरोपरि मन्त्रवित् ।
ध्यानयुक्तेन मनसा शत्रोरुच्चाटनं भवेत् ॥
धूम्रवर्णां महादेवीं त्रिनेत्रां शशिशेखराम् ।
जटाजूटसमायुक्तां व्याघ्रचर्मपरिच्छदाम् ॥
कृशाङ्गीमस्थिमालाढ्यकर्त्तृकाढ्यकराम्बुजाम् ।
कोटराक्षीं सुदंष्ट्राञ्च पातालसन्निभोदराम् ॥
एवंविधं धिया भाव्यं कार्यमुच्चाटनं रिपोः ।
एष योगविधिं प्रोक्तो वीरतन्त्रे महेश्वरि ।
गोपनीयं प्रयत्नेन न प्रकाश्यं कदाचन ॥

तथा—

सौरारयोर्दिने ग्राह्यं नरास्थिचतुरंगुलम् ।

निशारसेन संलिख्य प्रधानभवने क्षिपेत् ।
सप्ताहाभ्यन्तरे शत्रोरुच्चाटनकरं भवेत् ।।

मन्त्रस्तु—हूं अमुकस्य उच्चाटनं कुरु कुरु स्वाहा। हूं अमुकं हन हन स्वाहा।।

उच्चाटन—नीम के पत्ते पर कौए के पंख की लेखनी से भैंसा और घोड़े के मल से 'ॐ नम: काकतुण्डि धवलामुखि अमुकमुच्चाटय हूं फट्' मन्त्र लिखे। उसमें शत्रु का नाम भी इन्हीं द्रव्यों से लिखें। तब इस मन्त्र की पूजा करके नीमवृक्ष पर काक के घोसले की लकड़ी से हवन करे। इसके लिये श्मशान की अग्नि लाकर धुस्तूर काष्ठ से उसे प्रज्ज्वलित करे।

नरचर्बी से बने महातेल या त्रिकटुसहित काकनिवास की लकड़ी से हवन करे। होमकाल में उल्लिखित हवन काष्ठ में श्वेत सरसो का तेल मिलावे। तब धवलामुखी का पूजन पञ्चोपचार से करे।

इसके बाद ध्यानयुक्त चित्त से साधक जिसके घर में उक्त हवन का भस्म फेंकेगा, उसका उच्चाटन हो जायगा।

देवी का ध्यान इस प्रकार है—

धूम्रवर्णां महादेवीं त्रिनेत्रां शशिशेखराम्।
जटाजूटसमायुक्तां व्याघ्रचर्मपरिच्छदाम्।।
कृशाङ्गीमस्थिमालाढ्यकर्तृकाढ्यकराम्बुजाम्।
कोटराक्षीं सुदंष्ट्राञ्च पातालसन्निभोदराम्।।

देवी का वर्ण धूम्र है। तीन लोचन हैं। दुबली-पतली देह वाली हैं। मस्तक पर अर्द्धचन्द्र है। व्याघ्रचर्म का वस्त्र है। एक हाथ में हड्डी की माला और दूसरे हाथ में कैंची है। आँखें धँसी हुई हैं। दाँत भयानक हैं। उदर पाताल के समान है।

वीरतन्त्र में लिखा है कि देवी का ध्यान इस रूप में करके शत्रु के उच्चाटन का कार्य करे। शनिवार या मंगलवार में चार अंगुल लम्बी मनुष्य की हड्डी की कील बनाकर उसमें हल्दी के घोल से यह लिखे—हूं अमुकस्य उच्चाटनं कुरु कुरु स्वाहा, अथवा—हूं अमुकं हन हन स्वाहा। तब उस हड्डी को शत्रु के मुख्य घर में डाल दे। ऐसा करने से एक सप्ताह में उच्चाटन होता है।

रिपुमलरोधनम्

रिपोर्मूलं वृश्चिकञ्च खनित्वा भुवि निक्षिपेत् ।
म्रियते मलरोधेन उद्धृते च सुखावहम् ।।

मन्त्रस्तु—ॐ स्तम्भिनि अमुकस्य मलं स्तम्भय स्तम्भय हूं फट्।

शत्रुमल रोधन—शत्रु का मल लेकर बिच्छू के साथ भूमि में गाड़ने से शत्रु का मल रुक जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। उक्त मल और वृश्चिक को भूमि से निकाल कर बाहर फेंक देने से दोष की शान्ति होती है। इस कार्य के लिये मन्त्र है—ॐ स्तम्भिनि! अमुकस्य मलं स्तम्भय स्तम्भय हूं फट्।

अभिचार:

ॐ विरुद्धे रूपिणि चण्डिके वैरिणममुकं देहि देहि स्वाहा। इति खड्गमभिमन्त्र्य खड्गमन्त्रांश्च पठित्वा खड्गं सम्पूज्य छागादिकममुकोऽसि इति वैरिनाम्नाभिमन्त्र्य, रक्तसूत्रेण त्रिधा मुखं बद्ध्वा, वैरिनाम्ना प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा—

ॐ अयं स वैरी यो द्वेष्टि तमिमं पशुरूपिणम्।
विनाशय महादेवि स्फें स्फें खादय खादय ॥

इति पठित्वा, बलिशिरसि पुष्पं दत्त्वा, बलिमन्त्रं पठित्वा बलिं सम्पूज्य, अद्याश्विने मासि महानवम्यां अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकशत्रुं इमं छागं महिषं वा अमुकदैवतं भगवत्यै दुर्गायै तुभ्यमहं सम्प्रददे। इत्युत्सृज्य आं हूं फट् इति छित्त्वा, मूलं पठित्वा, एतद्रुधिरं दुर्गायै नमः इति रक्तं शिरश्च दत्त्वा, अष्टाङ्गमासैर्होमं मूलमन्त्रेण कुर्यादिति।

अभिचार—ॐ विरुद्धे रूपिणि चण्डिके वैरिणममुकं देहि देहि स्वाहा—इस मन्त्र से खड्ग को अभिमन्त्रित करके खड्गमन्त्रों के पाठ करने के बाद खड्ग की पूजा करे। तब एक छाग लाकर उसे शत्रु के नाम से अभिमन्त्रित करे। यथा—त्वं अमुकोऽसि। इस प्रकार उसे शत्रुरूप मानकर लाल सूत्र से छाग के मुख को तीन बार बाँधकर उसमें शत्रु की प्राण-प्रतिष्ठा करे। यथा—ॐ अयं स वैरी यो द्वेष्टि तमिमं पशुरूपिणं विनाशय महादेवि स्फें स्फें खादय खादय।

यह मन्त्र पढ़कर छाग के मस्तक पर फूल रक्खे। तब बलिमन्त्र का पुनः पाठ करके बलि की पूजा करके संकल्प करे। यथा—अद्याश्विने मासि महानवम्यां अमुकगोत्रः श्री अमुकदेवशर्मा अमुकशत्रुं नाशय इमं छागं महिषं वा अमुकदैवतं भगवत्यै दुर्गायै तुभ्यमहं सम्प्रददे।

इस प्रकार बलि का उत्सर्ग कर 'आं हूं फट्' से बलि का छेदन करे। तब मूलं एतद् रुधिरं दुर्गायै नमः से उक्त छाग का रक्त और मस्तक दुर्गा देवी को अर्पित करे। इसके बाद उसी छाग के अष्टांगों के मांस से मूल मन्त्र पढ़ते हुए हवन करे।

सुखप्रसवमन्त्र:

ॐ मन्मथ मन्मथ वाहि वाहि लम्बोदर मुञ्च मुञ्च स्वाहा ।
ॐ मुक्ताः पाशा विपाशाश्च मुक्ता सूर्येण रश्मयः ।

मुक्तः सर्वभयाद् गर्भ एह्येहि मारीच स्वाहा ।
एतदन्यतरेणाष्टवारं जलमभिमन्त्र्य पेयम्। ततः सुखप्रसवो भवति।

सुखप्रसवमन्त्र—ॐ मन्मथ मन्मथ वाहि वाहि लम्बोदर मुञ्च मुञ्च स्वाहा ॐ और ॐ मुक्ताः पाशाः विपाशाश्च मुक्ता सूर्येण रश्मयः। मुक्तः सर्वभयाद् गर्भ एह्येहि मारीच स्वाहा—इन दो मन्त्रों में से किसी एक मन्त्र से जल को आठ जप से अभिमन्त्रित करके गर्भिणी को पिलाने से शीघ्र ही सुखपूर्वक प्रसव होता है।

अदर्शन-प्रकारः

अर्कशाल्मलिकार्पासपट्टपङ्कजतन्तुभिः ।
पञ्चभिर्वर्तिकाभिश्च नृकपालेषु पञ्चसु ॥
नरतैलेन दीपाः स्युः कज्जलं नृकपालकैः ।
ग्राहयेत् पञ्चभिर्यत्नात्पूर्ववच्च शिवालये ॥
पञ्चस्थानीयजायन्तु एकीकुर्याच्च तं पुनः ।
मन्त्रयित्वाञ्जयेन्नेत्रे देवैरपि न दृश्यते ॥

मन्त्रस्तु—ॐ हूं फट् कालि कालि महाकालि मांसशोणितं खादय खादय देवि मा पश्यतु मानुषेति हूं फट् स्वाहेति मन्त्रेणाष्टोत्तरसहस्रजप्तेन मन्त्रयेत्। अथ मूलमन्त्रेणाष्टोत्तरसहस्राभिमन्त्रितम् कृत्वा, तत्कज्जलं नेत्रे दत्त्वा त्रैलोक्यादृश्यो भवति।

अदर्शनप्रकार—आक, शेमल, कपास, पद्मसूत्र और पट्टसूत्र से पाँच बत्तियाँ बनावे। पाँच कपालों में नरतैल द्वारा पाँच दीपक जलावे। इन पाँच दीपकों की शिखा से पाँच प्रकार का काजल प्राप्त करे। यह कार्य किसी शिवमन्दिर में करे।

तब उन पाँचो काजलों को एकत्र करके उसे ॐ हूं फट् कालि कालि महाकालि मांसशोणितं खादय खादय देवि मा पश्यतु मानुष हूं फट् स्वाहा के एक हजार एक सौ आठ जप से अभिमन्त्रित करे। इस काजल को आँखों में लगाने से साधक तीनों लोकों में अदृश्य हो जाता है।

योगिनीसाधनम्

भूतडामरे—

अथात सम्प्रवक्ष्यामि योगिनीसाधनोत्तमम् ।
सर्वार्थसाधनं नाम देहिनां सर्वसिद्धिदम् ।
अतिगुह्या महाविद्या देवानामपि दुर्लभा ॥
यासामभ्यर्च्चनं कृत्वा यक्षेशोऽभूद्धनाधिपः ।

तासामाद्यां प्रवक्ष्यामि सुराणां सुन्दरीं प्रिये ।
अस्या अभ्यर्चनेनैव राजत्वं लभते नरः ।।

अष्टयोगिनीसाधन—भूतडामरतन्त्र में वर्णन है कि यह महाविद्या अत्यन्त गुह्य है। देवताओं को भी दुर्लभ है। इन योगिनियों की ह्रीं पूजा करके कुवेर धनाधिपति हुए। इनमें सबसे पहली है—सुरसुन्दरी, जिनकी पूजा करने से मनुष्य राजत्व प्राप्त करता है।

सुरसुन्दरी

अथ प्रातः समुत्थाय कृत्वा स्नानादिकं शुभम् ।
प्रासादञ्च समासाद्य कुर्यादाचमनं ततः ।
प्रणवान्ते सहस्रारे हूं फट् दिग्बन्धनञ्चरेत् ।।
प्राणायामं ततः कुर्यान्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ।
षडङ्गं मायया कुर्यात्पद्ममष्टदलं लिखेत् ।।
तस्मिन् पद्मे महामन्त्रं जीवन्यासं समाचरेत् ।
पीठदेवीः समावाह्य ध्यायेद्देवीं जगत्प्रियाम् ।।
पूर्णचन्द्रनिभां गौरीं विचित्राम्बरधारिणीम् ।
पीनोत्तुङ्गकुचां वामां सर्वेषामभयप्रदाम् ।।
इति ध्यात्वा च मूलेन दद्यात्पाद्यादिकं शुभम् ।
पुनर्धूपं निवेद्यैव नैवेद्यं मूलमन्त्रतः ।।
गन्धचन्दनताम्बूलं सकर्पूरं सुशोभनम् ।
प्रणवान्ते भुवनेशीमागच्छ सुरसुन्दरि ।।
वह्नेर्भार्या जपेन्मन्त्रं त्रिसन्ध्यञ्च दिने दिने ।
सहस्रैकप्रमाणेन ध्यात्वा देवीं सदा बुधः ।।
मासान्ते दिवसं व्याप्य बलिपूजां सुशोभनाम् ।
कृत्वा च प्रजपेन्मन्त्रं निशीथे याति सुन्दरी ।।
सुदृढं साधकं मत्वा याति सा साधकालये ।
सुप्रसन्ना साधकाग्रे सदा स्मेरमुखी ततः ।।
दृष्ट्वा देवीं साधकेन्द्रो दद्यात्पाद्यादिकं शुभम् ।
सुचन्दनं सुमनसो दत्त्वाभिलषितं वदेत् ।।
मातरं भगिनीं वापि भार्यां वा भक्तिभावतः ।
यदि माता तदा वित्तं द्रव्यञ्च सुमनोहरम् ।
भूपतित्वं प्रार्थितं यत्तद्ददाति दिने दिने ।।
पुत्रवत्पालितं लोके सत्यं सत्यं सुनिश्चितम् ।

स्वसा ददाति द्रव्यञ्च दिव्यवस्त्रं तथैव च ।
दिव्यकन्यां समानीय नागकन्यां दिने दिने ॥
यद्यत्प्रार्थयते सर्वं सा ददाति दिने दिने ।
भ्रातृवत्पालितं लोके कामनाभिर्मनोगतैः ॥
भार्या स्याद्यदि सा देवी साधकस्य मनोहरा ।
राजेन्द्रः सर्वराजानां संसारे साधकोत्तमः ॥
यद्यद्भवति भूतञ्च भविष्यतीति यत्पुनः ।
तत्सर्वं साधकेन्द्राय निवेदयति निश्चितम् ॥
स्वर्गे मर्त्त्ये च पाताले गतिः सर्वत्र निश्चितम् ।
यद्यद्ददाति सा देवी कथितुं नैव शक्यते ॥
तथा सार्द्धञ्च सम्भोगं करोति साधकोत्तमः ।
अन्यस्त्रीगमनं त्यक्त्वा अन्यथा नश्यति ध्रुवम् ॥

सुरसुन्दरी योगिनी—सुरसुन्दरी योगिनी की पूजा-पद्धति यह है कि प्रातःस्नानादि क्रिया करके 'हौं' मन्त्र से आचमन 'ॐ सहस्रारे हूं फट्' से दिग्बन्ध, मूल मन्त्र से प्राणायाम और ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि से करांगन्यास करे। तब अष्टदल पद्म अंकित कर उसमें देवी का जीवन्यास करे। तब पीठदेवताओं की पूजा कर सुरसुन्दरी का ध्यान करे—

पूर्णचन्द्रनिभां गौरीं विचित्राम्बरधारिणीम्।
पीनोत्तुंगकुचां वामां सर्वेषामभयप्रदाम्।।

देवी का मुख पूर्ण चन्द्र के समान सुन्दर है। देह का वर्ण गौर है। वस्त्र विचित्र हैं। दोनों स्तन स्थूल और उच्च हैं। ये सबको अभय देती हैं।

ऐसे ध्यान के बाद मूल मन्त्र से पाद्यादि देकर धूप-दीप-नैवेद्य-गन्ध-चन्दन और ताम्बूल निवेदन करे। 'ॐ ह्रीं आगच्छ सुरसुन्दरि स्वाहा' इनका मन्त्र है। इसी मन्त्र से पूजा करे। तीनों सन्ध्याओं में प्रतिदिन ध्यानपूर्वक साधक एक हजार जप करे। इस प्रकार एक महीने तक जप करके महीने के अन्तिम दिन बलि आदि विविध उपहारों से देवी की पूजा करे। पूजा के बाद पूर्वोक्त मन्त्र का जप करे।

ऐसा करने पर आधी रात के समय देवी साधक के सम्मुख प्रकट होती हैं। साधक को दृढ़प्रतिज्ञ जानकर सुरसुन्दरी उसके घर में आती हैं। प्रसन्न हँसमुखी देवी का दर्शन पाकर साधक पुनः पाद्यादि से उनका अर्चन करे।

चन्दन तथा सुन्दर पुष्प प्रदान करके अभीष्ट वर माँगे। उस समय साधक देवी को माता, वहन या पत्नी कहकर सम्बोधित करना चाहिए।

मातृभाव से भक्ति करने पर देवी साधक को धन और विविध मनोहर द्रव्य तथा राजत्व तक देती हैं। प्रतिदिन आकार पुत्रवत् उसका पालन करती हैं। बहन भाव से आराधना करने पर देवी विविध द्रव्य एवं दिव्य वस्त्र प्रदान कर दिव्य कन्या तथा नागकन्या ला देती हैं। साधक जो कुछ भी देवी से माँगता है, वह उसे तुरन्त प्रदान करती है। साधक का पालन वे भाई के समान करती हैं और उसकी सभी कामनाओं को पूर्ण करती हैं।

पत्नी रूप से उपासना करने पर साधक संसार में सब राजाओं में प्रधान होता है। भूत-भविष्य-वर्तमान की सभी घटनाओं से देवी साधक को अवगत कराती रहती हैं। वह साधक स्वर्ग, मर्त्य और पाताल सभी स्थानों में निर्विघ्न रूप से भ्रमण करने में समर्थ होता है। देवी उसे सभी वस्तुयें प्रदान करती हैं। उनका वर्णन करना सम्भव नहीं है। साधक देवी के साथ सुख-सम्भोग में समय व्यतीत करता है। इस प्रकार पत्नीरूप में सिद्धि करने पर साधक अन्य स्त्रियों में आसक्ति न करे; अन्यथा देवी रुष्ट होकर साधक को नष्ट कर देती हैं।

मनोहरा

ततोऽन्यत्साधनं वक्ष्ये निर्मितं ब्रह्मणा पुरा ।
नदीतीरं समासाद्य कुर्यात्स्नानादिकं ततः ॥
पूर्ववत्सकलं कार्यं चन्दनैर्मण्डलं लिखेत् ।
स्वमन्त्रं तत्र संलिख्यावाह्य ध्यायेन्मनोहराम् ॥
कुरङ्गनेत्रां शरविन्दुवक्त्रां विम्बाधरां चन्दनगन्धलिप्ताम् ।
चीनांशुकां पीनकुचां मनोज्ञां श्यामां सदा कामदुघां विचित्राम् ॥
एवं ध्यात्वा जपेद्देवीमगुरुधूपदीपकैः ।
गन्धं पुष्परसञ्चैव ताम्बूलादींश्च मूलतः ॥
तारं माया गच्छ मनोहरे पावकवल्लभा ।
कृत्वायुतं प्रतिदिनं जपेन्मन्त्रं प्रसन्नधीः ॥
मासान्ते व्याप्य दिवसं कुर्याच्च जपमुत्तमम् ।
आनिशीथं जपेन्मन्त्रं ज्ञात्वा च साधकं दृढम् ॥
गत्वा च साधकाभ्यासे सुप्रसन्ना मनोहरा ।
वरं वरय शीघ्रं त्वं यत्ते मनसि वर्तते ॥
साधकेन्द्रोऽपि तां ध्यात्वा पाद्याद्यैरर्चयेन्मुदा ।
प्राणायामं षडङ्गञ्च मायया च समाचरेत् ॥
सद्योमांसं बलिं दत्त्वा पूजयेच्च समाहितः ।
चन्दनोदकपुष्पेण फलेन च मनोहराम् ।

ततोऽर्चिता प्रसन्ना सा पुष्णाति प्रार्थितञ्च यत् ॥
स्वर्णशतं साधकाय ददाति सा दिने-दिने ।
स चाशेषं व्ययं कुर्यात्स्थिते तत्तु न दास्यति ॥
अन्यस्त्रीगमनन्तस्य न भवेत्सत्यमीरितम् ।
अव्याहतगतिस्तस्य भवतीति न संशयः ॥
इयं ते कथिता विद्या सुगोप्या या सुरासुरैः ।
तव स्नेहेन भक्त्या च बद्धोऽहं परमेश्वरि ॥

मनोहरा योगिनी—नदी किनारे स्नानादि नित्य कर्म करके पूर्ववत् न्यासादि करे। चन्दन का मण्डल बनाकर उसके मध्य में देवी का मन्त्र लिखकर मनोहरा योगिनी का ध्यान करे—

कुरंगनेत्रां शरदिन्दुवक्त्रां विम्बाधरां चन्दनगन्धलिप्ताम्।
चीनांशुकां पीनकुचां मनोज्ञां श्यामां सदा कामदुघां विचित्राम्।।

अर्थात् देवी के नेत्र मृगनयनी के समान हैं। शरत् कालीन चन्द्रमा के समान मुख सुन्दर है। अधर बिम्बाफूल के समान लाल है। सारा शरीर सुगन्धित चन्दन से अनुलिप्त है। चीनी रेशमी वस्त्र है। दोनों स्तन स्थूल और उन्नत हैं। स्वरूप सुन्दर, वर्ण श्याम है। कामधेनु के समान सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाली हैं। वर्ण विचित्र है।

ध्यान के बाद साधक मूल मन्त्र से अगर-धूप-दीप-गन्ध-पुष्प-मधु और ताम्बूल से पूजा करे। बाद में देवी का मन्त्र जप करे। मन्त्र है—ॐ ह्रीं आगच्छ मनोहरे स्वाहा। दश हजार जप प्रतिदिन करे। एक महीने तक जप करके अन्तिम दिन प्रातःकाल से सारे दिन तक मन्त्र जप करे।

आधी रात तक जप करने से साधक को दृढ़प्रतिज्ञ जानकर मनोहरा देवी प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष होती है और वर मांगने को कहती है। उस समय साधक देवी को देखकर पाद्यादि से पूजन करे। इस योगिनी की पूजा में 'ह्रीं' से प्राणायाम और 'ह्रां अंगुष्ठाभ्यां' इत्यादि से करांगन्यास करे।

इसके बाद साधक संयत होकर सद्योमांस द्वारा बलि प्रदान करे। चन्दनोदक और विविध पुष्प-फल से मनोहरा की पूजा करे। ऐसा करने से देवी प्रसन्न होकर साधक की अभिलाषा पूर्ण करती है। प्रतिदिन साधक को सौ स्वर्णमुद्रा प्रदान करती है। स्वर्णमुद्राओं को साधक प्रतिदिन खर्च कर डाले, कुछ भी बचाए नहीं; क्योंकि कुछ भी शेष रहने से देवी क्रुद्ध होती है और फिर कुछ नहीं देती है। इस योगिनी की साधना करने पर साधक को अपनी पत्नी-सहित अन्य स्त्रियों से सहवास करना निषिद्ध है। इस साधना के बल से साधक निश्चिन्त होकर सर्वत्र निर्विघ्न विचरण करने में समर्थ होता है।

कनकावती

ततोऽन्यत्साधनं वक्ष्ये शृणुष्वैकमनाः प्रिये ।
गत्वा वटतलं देवीं पूजयेत्साधकोत्तमः ।
प्राणायामं षडङ्गञ्च माययाथ समाचरेत् ।।
सद्योमांसं बलिं दत्त्वा पूजयेत्तां समाहितः ।
अर्घ्यमुच्छिष्टरक्तेन दद्यात्तस्यै दिने-दिने ।।
प्रचण्डवदनां देवीं पक्वविम्बाधरं प्रिये ।
रक्ताम्बरधरां बालां सर्वकामप्रदां शुभाम् ।।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रमयुतं साधकोत्तमः ।
सप्तदिनं समभ्यर्च्य चाष्टमे विधिवच्चरेत् ।
कायेन मनसा वाचा पूजयेच्च दिने-दिने ।।
तारं माया तथा कूर्च्चं रक्ष कर्मणि तद्वहिः ।
आगच्छ कनकान्ते तु वति स्वाहा महामनुः ।
आनिशीथं जपेन्मत्रं बलिं दत्त्वा मनोहरम् ।।
साधकेन्द्रं दृढं मत्वा आयाति साधकालये ।
साधकेन्द्रोऽपि तां दृष्ट्वा दद्यादर्घ्यादिकं ततः ।।
ततः सपरिवारेण भार्या स्यात् कामभोजनैः ।
वस्त्रभूषादिकं त्यक्त्वा याति सा निजमन्दिरम् ।।
एवं भार्या भवेन्नित्यं साधकाज्ञानुरूपतः ।
आत्मभार्यां परित्यज्य भजेत्ताञ्च विचक्षणः ।।

कनकावती—कनकावती देवी की पूजा वटमूल में होती है। ह्रीं मन्त्र से प्राणायाम करे। ह्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि से करांग न्यास करे। तब संयत होकर सद्योमांस से बलि प्रदान करे। दन्तरक्त से अर्घ्य प्रदान कर प्रतिदिन पूजा करे। तब ध्यान करे—

प्रचण्डवदनां देवीं पक्वबिम्बाधरां प्रिये।
रक्ताम्बरधरां बालां सर्वकामप्रदां शुभाम्।।

अर्थात् देवी का मुख प्रचण्ड है। सुपक्व बिम्बाफल के समान लाल अधर हैं। वस्त्र लाल है। वे बालिकारूपिणी हैं। साधक की सभी कामनाओं को पूर्ण करती हैं।

ध्यान के बाद प्रतिदिन दश हजार मन्त्र जप करे। सात दिनों तक इसी प्रकार पूजा जप करे। आठवें दिन विधिवत् पूजन करे।

कनकावती का अन्य मन्त्र है—ॐ ह्रीं हूं रक्ष कर्मणि आगच्छ कनकावति स्वाहा। इस मन्त्र से पूजा-जप करे। देवी को बलि देकर निशीथकाल आधी रात तक जप करे।

साधक को दृढ़प्रतिज्ञ जानकर देवी उसके सामने प्रकट होती हैं। उस समय साधक अर्घ्यादि से उनकी पूजा करे।

इससे देवी अपनी परिचारिकाओं सहित साधक की पत्नी बनकर मनोवांछित भोग्य वस्तुयें प्रदान करती हैं एवं अपने वस्त्र तथा आभूषणादि छोड़कर अपने स्थान में लौट जाती हैं। साधक अपनी पत्नी को त्यागकर कनकावती की उपासना करे।

कामेश्वरी

ततः कामेश्वरीं वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदाम् ।
प्रणवं भुवनेशानीं चागच्छ कामेश्वरि ततः ।
वह्नेर्भार्या महामन्त्रः साधकानां सुखावहः ॥
पूर्ववत्सकलं कृत्वा भूर्जपत्रे सुशोभने ।
गोरोचनाभिः प्रतिमां विनिर्माय स्वलंकृताम् ॥
शय्यामारुह्य प्रजपेन्मन्त्रमेकमनास्ततः ।
सहस्रैकप्रमाणेन मासमेकं जपेद् बुधः ॥
घृतेन मधुना दीपं दद्याच्च सुसमाहितः ।
कामेश्वरीं शशाङ्कास्यां खेलत्खञ्जनलोचनाम् ॥
सदा लोलगतिं कान्तां कुसुमास्त्रशिलीमुखीम् ।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं निशीथे याति सा तदा ॥
दृष्ट्वा तु साधकश्रेष्ठमाज्ञां देहीति तं वदेत् ।
स्त्रीभावेन तदा तस्यै दद्यात्पाद्यादिकं ततः ॥
सुप्रसन्ना मुदा देवी साधकं तोषयेत्सदा ।
अन्नाद्यै रतिभोगेन पतिवत्पालयेत् सदा ॥
नीत्वा रात्रौ सुखैश्वर्यं दत्त्वा च विपुलं धनम् ।
वस्त्रालङ्कारद्रव्यादीन् प्रभाते याति निश्चितम् ।
एवं प्रतिदिनं तस्य सिद्धिः स्यात्कामरूपतः ॥

कामेश्वरी—कामेश्वरी योगिनी का मन्त्र है—ॐ ह्रीं आगच्छ कामेश्वरि स्वाहा। यह महामन्त्र साधक के लिये सुखप्रदायक है।

पूर्ववत् अर्चनादि करके भोजपत्र पर गोरोचन से सर्वालंकारभूषित देवी की मूर्ति अंकित करे। शय्या पर बैठकर एकाग्र मन से एक मास तक प्रतिदिन एक हजार जप उस मन्त्र का करे।

इस देवता के पूजन और जपकाल में घी और मधु से दीपक प्रज्ज्वलित रक्खे। ध्यान इस प्रकार करे—

कामेश्वरीं शशप्रंकास्यां खेलत् खञ्जनलोचनाम्।
सदा लोलगतिं कान्तां कुसमास्त्रशिलीमुखीम्।।

कामेश्वरी देवी चन्द्रमुखी हैं। क्रीड़ारत खंजन पक्षी के समान नेत्र चंचल हैं। ये सदा चंचल गति से गमन करती हैं। हाथ में पुष्पवाण है।

ऐसा ध्यान करके पूजा और जप करने से देवी प्रकट होकर साधक से कहती हैं—तुम्हारी किस आज्ञा का पालन करना है। उस समय साधक देवी की पूजा स्त्रीभाव से करे। पाद्यादि अर्पण करे। इससे प्रसन्न होकर देवी साधक को अन्नादि विविध भोज्य पदार्थ द्वारा पतिवत् प्रतिपालित करके रात भर साधक के पास रहकर ऐश्वर्यादि सुख भोग्य सामग्री और विविध आभूषण देकर प्रातःकाल प्रस्थान करती हैं। साधना सुरसुन्दरी के समान करे। तीनों सन्ध्याओं में प्रतिदिन एक माह तक एक हजार मन्त्र जप करे।

रतिसुन्दरी

**ततः पटे विनिर्माय पुत्तलीं ध्यानरूपतः ।
सुवर्णवर्णां गौराङ्गीं सर्वालङ्कारभूषिताम् ॥
नूपुराङ्गदहाराढ्यां रम्याञ्च पुष्करेक्षणाम् ।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं दत्त्वा च पाद्यमुत्तमम् ॥
सचन्दनेन पुष्पेण जातीपुष्पेण साधकः ।
गुग्गुलुं धूपदीपौ च दद्यान्मूलेन साधकः ॥**

मन्त्रस्तु—

**तारं माया तथागच्छ रतिसुन्दरी पदं ततः ।
वह्निजायाष्टसाहस्र्यं जपेन्मन्त्रं दिने-दिने ॥
मासान्ते दिवसं व्याप्य कुर्यात् पूजादिकं शुभम् ।
घृतदीपं तथा गन्धं पुष्पताम्बूलमेव च ॥
तावन्मन्त्रं जपेद्विद्वान् यावदायाति सुन्दरी ।
ज्ञात्वा दृढं साधकेन्द्रं निशीथे याति निश्चितम् ॥
ततस्तामर्चयेद्भक्त्या जातीकुसुममालया ।
सुसन्तुष्टा साधकेन्द्रं तोषयेद्रतिभोजनैः ॥
भूत्वा भार्या च सा तस्मै ददाति वाञ्छितं वरम् ।
भूषादिकं परित्यज्य प्रभाते याति सा ध्रुवम् ।
साधकाज्ञानुरूपेण प्रयाति सा दिने-दिने ॥
निर्जने प्रान्तरे देवि सिद्धिः स्यान्नात्र संशयः ।
त्यक्त्वा भार्यां भजेत्ताञ्च अन्यथा नश्यति ध्रुवम् ॥**

रतिसुन्दरी योगिनी—पहले निम्नांकित ध्यान के अनुसार पट्ट पर देवी का चित्र अंकित करे—

सुवर्णवर्णगौरांगीं सर्वालंकारभूषिताम्।
नूपुरांगदहाराढ्यां रम्यां च पुष्करेक्षणाम्।।

देवी का वर्ण सुनहला है। अंग गौर है। सभी प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित हैं। नूपुर, अंगद, हार आदि आभूषणों से सुशोभित हैं। उनके दोनों नयन प्रफुल्ल कमल के समान सुन्दर हैं।

ध्यान के बाद पाद्य, चन्दन और जाती आदि पुष्पों से पूजा करके जप करे। मन्त्र है—ॐ ह्रीं आगच्छ रतिसुन्दरि स्वाहा। इसका जप प्रतिदिन आठ हजार करे और एक माह तक करे। महीने के अन्तिम दिन विधिवत् पूजा करे। घृतदीप-गन्ध-पुष्प और ताम्बूल देकर सुन्दरी के आगमन की प्रतीक्षा करता हुआ साधक जप करता रहे। जब तक देवी प्रकट न हो तब तक जप करता रहे।

साधक को दृढ़प्रतिज्ञ जानकर निशीथकाल में देवी अवश्य प्रकट होती है। उस समय साधक जातीपुष्पों की माला से भक्तिपूर्वक देवी की पूजा करे। इससे प्रसन्न होकर देवी साधक को भोज्य पदार्थ देकर उसे सन्तुष्ट करती हैं। साधक की पत्नी बनकर उसे अभीष्ट वरदान देती हैं। रात भर साधक के पास रहकर वस्त्राभूषणादि छोड़कर प्रात: प्रस्थान करती हैं। साधक की इच्छानुसार इसी प्रकार वे प्रतिदिन गमन-आगमन करती हैं।

जनशून्य स्थान में इस साधना से निश्चय ही सिद्धि मिलती है। अपनी पत्नी को त्यागकर साधक देवी की उपासना करे; अन्यथा उसकी मृत्यु होने में सन्देह नहीं है।

पद्मिनी

ततोऽन्यत्साधनं वक्ष्ये स्वगृहे शिवसन्निधौ ।
वेदाद्यं भुवनेशीञ्चागच्छ पद्मिनि वल्लभा ।।
पावकस्य महामन्त्रं पूर्ववत्सकलं ततः ।
मण्डलं चन्दनैः कृत्वा मूलमन्त्रं लिखेत्ततः ।।
पद्मासनां श्यामवर्णां पीनोत्तुङ्गपयोधराम् ।
कोमलाङ्गीं स्मेरमुखीं रक्तोत्पलदलेक्षणाम् ।।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं सहस्रञ्च दिने दिने ।
मासान्ते पूर्णिमां प्राप्य विधिवत्पूजयेत्सदा ।।
आनिशीथं जपेन्मन्त्रं दृढाभ्यासेन साधकः ।
सर्वत्र कुशलं ज्ञात्वा याति सा साधकालयम् ।।
भूत्वा भार्या साधकं हि साधयेद्विविधैरपि ।

भोज्यैर्दिव्यैर्भूषणाद्यैः पद्मिनी सा दिने दिने ॥
पतिवत्पालितं लोके नित्यं स्वर्गे च सर्वदा ।
त्यक्त्वा भार्यां भजेत्ताञ्च साधकेन्द्रः सदा प्रिये ॥

पद्मिनी योगिनी—पद्मिनी योगिनी की साधना अपने घर में या शिवमन्दिर में करे। मन्त्र है—ॐ ह्रीं आगच्छ पद्मिनि स्वाहा।

पूर्ववत् इस मन्त्र से अर्चनादि करके चन्दन द्वारा मण्डल बनाकर उसमें मूल मन्त्र लिखे। ध्यान इस प्रकार करे—

पद्मासनां श्यामवर्णां पीनोत्तुंगपयोधराम्।
कोमलांगीं स्मेरमुखीं रक्तोत्पलदलेक्षणाम्।।

देवी कमल पर बैठी हैं। वर्ण श्याम है। दोनों स्तन स्थूल और उन्नत हैं। शरीर कोमल है। मुख पर मुसकान रहती है। दोनों नयन लाल कमलदलों के समान सुन्दर हैं।

ध्यान के बाद प्रतिदिन एक महीने तक एक हजार जप करे। महीने के अन्त में पूर्णिमा के दिन विधिपूर्वक पूजन करके दृढ़तापूर्वक रात भर जप करता रहे।

पद्मिनी देवी साधक के सामने प्रत्यक्ष उपस्थित होती हैं। साधक को पति मानकर सब सुखभोग देती हैं; किन्तु साधक को अपनी भार्या तथा अन्य औरतों का त्याग करना पड़ता है; अन्यथा उसकी मृत्यु होती है।

नटिनी

ततो वक्ष्ये महाविद्यां विश्वामित्रेण धीमता ।
ज्ञात्वा यां साधिता विद्या बला चातिबला प्रिये ॥

मन्त्रस्तु—

प्रणवान्ते महामाया नटिनि पावकप्रिया ।
महाविद्येति कथिता गोपनीया प्रयत्नतः ॥
अशोकस्य तटं गत्वा स्नानं पूर्ववदाचरेत् ।
मूलमन्त्रेण सकलं कुर्याच्च सुसमाहितः ॥
त्रैलोक्यमोहिनीं गौरीं विचित्राम्बरधारिणीम् ।
विचित्रालंकृतां रम्यां नर्त्तकीवेशधारिणीम् ।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं सहस्रञ्च दिने दिने ॥
मांसोपहारैः सम्पूज्य धूपदीपौ निवेदयेत् ।
गन्धचन्दनताम्बूलं दद्यात्तस्यै सदा बुधः ॥
मासमेकन्तु तां भक्त्या पूजयेत्साधकोत्तमः ।

मासान्ते दिवसं प्राप्य कुर्याच्च पूजनं महत् ।।
अर्द्धरात्रौ भयं दत्त्वा किञ्चित् साधकसत्तमे ।
सुदृढं साधकं मत्वा याति सा साधकालयम् ।।
विद्याभिः सकलाभिश्च किञ्चित्स्मेरमुखी ततः ।
वरं वरय शीघ्रं त्वं यत्ते मनसि वर्त्तते ।।
तच्छ्रुत्वा साधकश्रेष्ठो भावयेन्मनसा धिया ।
मातरं भगिनीं वापि भार्यां वा प्रीतिभावतः ।
कृत्वा सन्तोषयेद्भक्त्या नटिनी तत्करोत्यलम् ।।
माता स्याद्यदि सा देवी पुत्रवत्पालितं मुदा ।
स्वर्णशतं सिद्धिद्रव्यं ददाति सा दिने दिने ।।
भगिनी यदि सा कन्यां देवस्य नागकन्यकाम्।
राजकन्यां समानीय ददाति सा दिने दिने ।
अतीतानागतां वार्त्तां सर्वां जानाति साधकः ।।
अन्नाद्यैरुपचारैस्तु ददाति कामभोजनम् ।
स्वर्णशतं सदा तस्मै ददाति सा ध्रुवं प्रिये ।
यद्यद्वाञ्छति तत्सर्वं ददाति नात्र संशयः ।।

नटिनी योगिनी—विश्वामित्र ने इस विद्या को प्राप्त करके 'बला' और 'अतिबला' नामक विद्याओं को सिद्ध किया था। यह महाविद्या है—ॐ ह्रीं नटिनि स्वाहा। यह अति गोपनीय है।

साधक अशोक वृक्ष के मूल में जाकर पूर्ववत् स्नान करे और मूल मन्त्र से पूजा करे। नटिनी देवी का ध्यान इस प्रकार है—

त्रैलोक्यमोहिनीं गौरीं विचित्राम्बरधारिणीम्।
विचित्रालंकृतां रम्यां नर्तकीवेशधारिणीम्।।

नटिनी देवी तीनों लोकों को मोहित करने की शक्ति वाली हैं। वर्ण गौर है। वस्त्र विचित्र है। विविध आभूषणों से सुसज्जित नर्तकी के वेश में रहती हैं।

ध्यानपूर्वक प्रतिदिन एक हजार मन्त्र जप करे। मांस से देवी की पूजा करके धूप-दीप-गन्ध-पुष्प और ताम्बूल प्रदान करे।

एक महीने तक पूजा करके अन्तिम दिन में महापूजा करे। तब देवी अर्द्धरात्रि के समय आकर साधक को भयभीत करती हैं; किन्तु साधक निर्भय होकर मन्त्रजप करते रहना चाहिए।

साधक को दृढ़प्रतिज्ञ जानकर देवी उसके पास आती हैं और मधुर हंसी से उससे

कहती हैं कि तुम्हारा जो अभीष्ट वर हो, उसे मांगो। साधक अपनी इच्छानुसार मन ही मन देवी को माता, बहन या पत्नी कहकर सम्बोधित करे। इससे प्रसन्न होकर नटिनी साधक के मनोरथ पूर्ण करती हैं।

मातृभाव से देवी की उपासना करने से वे साधक को पुत्रवत् मानती हैं और प्रतिदिन उसे सौ स्वर्णमुद्रा और वांछित द्रव्य देती हैं। बहनरूप मानने से साधक को प्रतिदिन नागकन्या और राज्यकन्या लाकर देती हैं।

साधक भूत-भविष्य का ज्ञाता हो जाता है। पत्नीरूप मानने से देवी साधक को प्रतिदिन अतुल धन, अन्नादि विविध सामग्री और सौ स्वर्णमुद्रा प्रदान करती हैं।

मधुमती

महाविद्यां प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय ।
कुङ्कुमेन समालिख्य भूर्जपत्रे स्त्रियं मुदा ।।
ततोऽष्टदलमालिख्य कुर्यान्न्यासादिकं प्रिये ।
जीवन्यासादिकं कृत्वा ध्यायेत्तत्र प्रसन्नधीः ।।
शुद्धस्फटिकसङ्काशां नानालङ्कारभूषिताम् ।
मञ्जीरहारकेयूररत्नकुण्डलमण्डिताम् ।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं सहस्रन्तु दिने दिने ।।
प्रतिपद्दिनमारभ्य पूजयेत् कुसुमादिभिः ।
धूपदीपविधानैश्च त्रिसन्ध्यं पूजयेन्मुदा ।।
पूर्णिमां प्राप्य गन्धाद्यैः पूजयेत्साधकोत्तमः ।
घृतदीपं तथा धूपं नैवेद्यञ्च मनोरमम् ।।
रात्रौ च दिवसे जाप्यं कुर्याच्च सुसमाहितः ।
प्रभातसमये याति साधकस्यान्तिकं ध्रुवम् ।।
प्रसन्नवदना भूत्वा तोषयेद्रतिभोजनैः ।
देवदानवगन्धर्वविद्याधृग्यक्षरक्षसाम् ।।
कन्याभी रत्नभूषाभिः साधकेन्द्रं मुहुर्मुहुः ।
चर्व्यं चोष्यादिकं द्रव्यं दिव्यं ददति सा ध्रुवम् ।।
स्वर्गे मर्त्त्ये च पाताले यद्वस्तु विद्यते प्रिये ।
आनीय दीयते सत्यं साधकाशानुरूपतः ।।
स्वर्णशतं सदा तस्मै ददाति सा दिने दिने ।
साधकाय वरं दत्त्वा याति सा निजमन्दिरम् ।।
तस्या वरप्रसादेन चिरजीवी निरामयः ।

सर्वज्ञः सुन्दरः श्रीमान् सर्वगो भवति ध्रुवम् ।
रेमे सार्द्धं तया देवी साधकेन्द्रो दिने दिने ॥

मन्त्रस्तु—

तारं माया तथा गच्छानुरागिणि मैथुनप्रिये ।
वह्निभार्या मनुः प्रोक्तः सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥
एषा मधुमती तु स्यात्सर्वसिद्धिप्रदा प्रिये ।
गुह्याद् गुह्यतरा ह्येषा तव स्नेहात्प्रकीर्त्तिता ॥

मधुमती योगिनी—भोजपत्र पर कुंकुम से स्त्री का चित्र बनाकर उसके बाहर अष्टदल पद्म बनाए। तब न्यासादि और जीवन्यास करके उसमें मधुमती देवी का निम्नवत् ध्यान करे—

शुद्धस्फटिकसङ्काशां नानाऽलङ्कारभूषिताम्।
मञ्जीरहारकेयूररत्नकुण्डलमण्डिताम् ॥

देवी का वर्ण शुभ्र स्फटिक के समान है। विविध अलंकारों से सुसज्जित हैं। नूपुर, हार, केयूर तथा रत्नजटित कुण्डलों से विभूषित हैं।

ऐसा ध्यान करके प्रतिदिन एक हजार मन्त्र जप करे। कृष्ण प्रतिपदा तिथि से आरम्भ करके पुष्प-धूप-दीप और नैवेद्यादि उपचारों से तीनों सन्ध्याओं में पूजा करे।

एक महीने तक पूजा और मन्त्रजप करके पूर्णिमा के दिन गन्धादि उपचारों से देवी की पूजा करे। घी का दीपक, धूप और उत्तम नैवेद्य देकर दिन-रात एकाग्र होकर मन्त्रजप करता रहे। इस प्रकार पूजा और जप करने से देवी प्रातःकाल साधक के समक्ष अवश्य प्रकट होती हैं।

प्रसन्न होकर देवी साधक को रति और भोजन द्रव्य द्वारा सन्तुष्ट करती हैं। देव-कन्या, दानवकन्या, गन्धर्वकन्या, विद्याधरकन्या, यक्षकन्या, राक्षसकन्या और विविध रत्नाभूषण तथा चर्व्य-चोष्यादि विविध भक्ष्य द्रव्य प्रदान करती हैं।

स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और पाताललोक में जो भी वस्तुयें विद्यमान हैं, उन सबको साधक के निर्देशानुसार देवी ला देती हैं। प्रतिदिन सौ स्वर्णमुद्राएँ देती हैं।

देवी की कृपा से साधक निरोग रहकर चिरकाल तक जीवित रहता है। देवी की कृपा से वह सर्वज्ञ, सुन्दर और श्रीमान् होता है। सर्वत्र जाने की शक्ति उसे प्राप्त होती है। प्रतिदिन देवी के साथ क्रीड़ाकौतुक करने का सौभाग्य प्राप्त करता है।

इनका मन्त्र है—ॐ ह्रीं आगच्छ अनुरागिणि मैथुनप्रिये स्वाहा। यह मन्त्र सभी कार्यों में सिद्धिदायक है। यह सर्वसिद्धिदायिनी मधुमती देवी अतिगुह्य हैं।

योगिनीसाधनस्य कालपात्रस्थानादिनिर्णय:

देव्युवाच—

श्रुतञ्च साधनं पुण्यं यक्षिणीनां सुखप्रदम् ।
कस्मिन् काले प्रकर्त्तव्यं विधिना केन वा प्रभो ।
अथाधिकारिण: के वा समासेन वद प्रभो ।।

ईश्वर उवाच—

वसन्ते साधयेद्धीमान् हविष्याशी जितेन्द्रिय: ।
सदा ध्यानपरो भूत्वा तद्दर्शनमहोत्सुक: ।।
उज्जटे प्रान्तरे वापि कामरूपे विशेषत: ।
स्थानेष्वेकतमं प्राप्य साधयेत्सुसमाहित: ।
अनेन विधिना साक्षाद्भविष्यति न संशय: ।।
देव्याश्च सेवका: सर्वे परं चात्राधिकारिण: ।
तारकब्रह्मणो भृत्यं विनाप्यत्राधिकारिण: ।।

इति योगिनीसाधनप्रकरणम्

●

योगिनी-साधना का काल, पात्र और स्थान—बुद्धिमान साधक हविष्याशी, जितेन्द्रिय होकर वसन्तकाल में योगिनी की उपासना करे। निरन्तर योगिनी का ध्यान करके उसके दर्शन के लिये उत्सुक होकर उज्जट और प्रान्तर में साधना करे। विशेषत: कामरूप कामाख्या में यह साधना विशेष फलदायिनी होती है।

इन स्थानों में से किसी एक स्थान और काल में संयत मन से यह साधना करे। इससे निश्चय ही देवी का दर्शन मिलता है।

देवी के सभी सेवक इस साधना के अधिकारी हैं। ब्रह्मोपासक संन्यासी इस साधना के अधिकारी नहीं हैं।

पूजाधारनिरूपणम्

तत्र नारदीये—

आपोग्निर्हृदयं चक्रं विष्णो: क्षेत्रसमुद्भवम् ।
यन्त्रञ्च प्रतिमास्थानमर्चने सर्वदा हरे: ।।

गौतमीये—

शालग्रामे मणौ यन्त्रे प्रतिमामण्डलेषु वा ।
नित्यं पूजा हरे: कार्या न तु केवलभूतले ।।

शालग्रामशिलास्पर्शात्कोटिजन्माघनाशनम् ।
किं पुनश्चार्चनं तत्र हरिसान्निध्यकारणम् ।।
बहुभिर्जन्मभिः पुण्यैर्यदि कृष्णां शिलां लभेत् ।
गोष्पदेनैव चिह्नेन तेन जन्म समाप्यते ।।

एतेन विष्णुपूजायां शिलाया अपि प्राधान्यम्। मण्डलादीनान्तु सर्वसाधारणत्वात्।

योगिनीतन्त्रे—

लिङ्गस्थां पूजयेद्देवीं पुस्तकस्थां तथैव च ।
मण्डलस्थां महामायां यन्त्रस्थां प्रतिमासु च ।
जलस्थां वा शिलास्थां वा पूजयेत्परमेश्वरीम् ।।

कौलावलीये—

यत्रापराजितापुष्पं जवापुष्पञ्च विद्यते ।
करवीरे शुक्लरक्ते द्रोणं वा यत्र तिष्ठति ।
तत्र देवी वसेन्नित्यं तद्यन्त्रं चण्डिकार्चनम् ।।

एतत्सर्वं यन्त्राभावे। तथा च—

यन्त्रं मन्त्रमयं प्रोक्तं मन्त्रं वा देवतेति च ।
देहात्मनो यथा भेदो यन्त्रदेवतयोस्तथा ।
तथादौ विलिखेद्यन्त्रं देवतायाश्च विग्रहम् ।।
कामक्रोधादिदोषोत्थं सर्वदुखःनियन्त्रणात् ।
यन्त्रमित्याहुरेतस्मिन् देवः प्रीणाति पूजितः ।।

विना यन्त्रेण देवता न प्रसीदति। दुःखनियन्त्रणाद्यन्त्रमित्याहुस्तन्त्रवेदिनः। इति यन्त्रस्य पूजायां प्राधान्यमिति।

पूजाधार-निरूपण—नारदतन्त्र में लिखा है कि जल, अग्नि, हृदय, विष्णुक्षेत्र से समुत्पन्न शालग्रामादि यन्त्र और प्रतिमारूप आधारों में विष्णु की पूजा करे।

गौतमतन्त्र के मत से शालग्राममणि, यन्त्र, प्रतिमा और मण्डलरूपी आधारों में विष्णु की नित्य पूजा करे। केवल भूतल पर पूजा कभी न करे। शालग्रामशिला के स्पर्श से कोटि जन्मों के पापों का नाश होता है। उसमें हरि की पूजा करने से विष्णु का सान्निध्य प्राप्त होता है।

बहुजन्मार्जित पुण्य से यदि एक भी कृष्णशिला मिल जाय और उसमें गोपद का चिह्न हो तो उसे पाने वाले का जन्म सफल हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि विष्णुपूजा में शालग्रामशिला की प्रधानता है। मण्डलादि साधारण आधार हैं।

योगिनीतन्त्र में लिखा है कि शिवलिंग, पुस्तक, मण्डल, यन्त्र, प्रतिमा, जल अथवा शिला में परमेश्वरी की पूजा करे।

कौलावली तन्त्र के मत से जिस स्थान में अड़हुल, अपराजितापुष्प, श्वेत या रक्त कनैलपुष्प और द्रोणपुष्प है, उस स्थान में देवी की स्थिति होती है। अतएव इन्हीं पुष्प-यन्त्रों में चण्डिका की पूजा करे। इसका तात्पर्य यह है कि यन्त्राभाव में उक्त पुष्पयन्त्रों में पूजा करे। यन्त्र उपलब्ध हो तो उसी में पूजा करे।

कौलावली के ही अनुसार यन्त्र मन्त्रमय होता है और मन्त्र देवतामय होता है। देह और आत्मा का जैसा भेद निर्दिष्ट है, वैसा ही भेद यन्त्र, मन्त्र और देवता में समझा जाना चाहिये। अत: पहले यन्त्र अंकित करे और तब उसमें देवता का पूजन करे।

यन्त्र में पूजन करने से काम-क्रोधादि से उत्पन्न सभी दोष नियन्त्रित होते हैं और देवता प्रसन्न होते हैं। इसी से इसे यन्त्र कहते हैं। यन्त्र के विना पूजा करने से देवता प्रसन्न नहीं होते। यन्त्र के ज्ञाता पण्डितों का कथन है कि यन्त्र से दु:ख का नियन्त्रण होता है; इसीलिये इसका नाम यन्त्र पड़ा है, अत: यन्त्र में जो पूजा होती है, उस पूजा को सर्वप्रधान पूजा मानी जाती है।

यन्त्रसंस्कार:

वामकेश्वरतन्त्रे भैरव्युवाच—

चक्रभेदं महादेव त्वत्प्रसादान्मया श्रुतम्।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि प्रतिष्ठाकर्मनिर्णयम्॥

श्रीशङ्कर उवाच—

शृणु देवि महाभागे जगत्कारिणि कौलिनि।
तस्योद्यापनकर्माङ्गं सर्ववर्णविनिर्णयम्॥
स्नात्वा सङ्कल्पयेन्मन्त्री गुरोरर्चनमाचरेत्।
पञ्चगव्यं तत: कृत्वा शिवमन्त्रेण मन्त्रितम्॥
तत्र चक्रं क्षिपेन्मन्त्री प्रणवेन समाकुलम्।
तदुद्धृत्य ततश्चक्रं स्थापयेत्स्वर्णपात्रके॥
पञ्चामृतेन दुग्धेन शीतलेन जलेन च।
चन्दनेन सुगन्धेन कस्तूरीकुङ्कुमेन च॥
पयोदधिघृतक्षौद्रशर्कराद्यैरनुक्रमात्।
तोयधूपान्तरै: कुर्यात्पञ्चामृतविधिं बुध:॥
हाटकै: कलशैर्देवीमष्टाभिर्वारिपूरितै:।
कषायजलसम्पूर्णै: कारयेत्स्नानमुत्तमम्॥

स्नानं समाप्य तां देवीं स्थापयेत् स्वर्णपीठके ।
यन्त्रराजाय विद्महे महायन्त्राय धीमहि तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात्।

स्पृष्ट्वा यन्त्रं कुशाग्रेण गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत् ।
अष्टोत्तरशतं देवि देवताभावसिद्धये ।।
आत्मशुद्धिं ततः कृत्वा षडङ्गैर्देवतां यजेत् ।
तत्रावाह्य यजेद्देवीं जीवन्यासं समाचरेत् ।।
उपचारैः षोडशभिर्महामुद्रादिभिः सदा ।
फलताम्बूलनैवेद्यैर्देवीं तत्र समर्चयेत् ।।
पट्टसूत्रादिकं दद्याद्वस्त्रालङ्कारमेव च ।
मुद्गरं चामरं घण्टां यथायोग्यं महेश्वरि ।
सर्वमेतत्प्रयत्नेन दद्यादात्महिते रतः ।।
ततो जपेत् सहस्रन्तु सकलेप्सितसिद्धये ।
बलिदानं ततः कृत्वा प्रणमेद्यन्त्रराजकम् ।।
अष्टोत्तरशतं हुत्वा सम्पाताज्यं विनिक्षिपेत् ।
होमकर्मण्यशक्तश्चेद्द्विगुणं जपमाचरेत् ।।
धेनुमेकां समानीय स्वर्णशृङ्गाद्यलंकृताम् ।
गुरवे दक्षिणां दद्यात्ततो देव्या विसर्जनम् ।।

तन्त्रप्रदीपे—

फले भित्तौ तथा पट्टे स्थापयेद्यन्त्रमीश्वरि ।
धनधान्य-पुत्र-पौत्र-यश-आयूंषि मुञ्चति ।।

अन्यत्रापि—

न भित्तौ स्थापयेद्यन्त्रं न पट्टे फलके तथा ।
यस्य वै ममता देवि पुत्र-पौत्रगृहादिषु ।।

यन्त्रसंस्कार—वामकेश्वरतन्त्र में वर्णन है कि साधक विधिवत् स्नान करके संकल्पपूर्वक गुरुदेव की पूजा करे। तब ह्रीं मन्त्र से गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और कुशोदक का शोधन कर उस विशुद्ध पञ्चगव्य के मध्य में ॐ मन्त्र से यन्त्र को डाल दे। तब पञ्चगव्य में से यन्त्र को बाहर निकालकर स्वर्णपात्र में रक्खे। तब दूध, दही, घी, शक्कर, मधु के पञ्चामृत से उसे नहलाए। तब दूध से स्नान कराकर शीतल जल से उसे स्वच्छ करे। तब उस यन्त्र को स्थापित करे।

चन्दन, सुगन्धित फूल, कस्तूरी, कुंकुम, दही, घी, दूध, मधु और शक्कर से स्नान कराकर धूप प्रदान करे। तब जल से स्नान कराकर पुनः पञ्चामृत से स्नान करावे। तब

जलपूर्ण अष्ट स्वर्णकलशों से स्नान कराकर कलशस्थ कषाय जल से उस यन्त्र को स्नान कराए।

इस प्रकार स्नानक्रिया पूर्ण कर उस यन्त्र को स्वर्णपात्र में स्थापित करे। तब 'यन्त्रराजाय विद्महे महायन्त्राय धीमहि तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात्'—इस यन्त्रगायत्री का पाठ कर कुशाग्र से यन्त्र का स्पर्श कराकर गायत्री मन्त्र के १०८ जप से उसे अभिमन्त्रित करे। उस यन्त्र में देवता का अधिष्ठान होता है।

इसके बाद आत्मशुद्धि करके देवता का षडंग न्यास करे। यन्त्र में देवता का ध्यान-आवाहन करे। तब उसमें देवता की प्राणप्रतिष्ठा करे। विविध मुद्रायें दिखाकर षोडशोपचारों से इष्टदेवता की पूजा करे।

तब उस यन्त्र को पट्टवस्त्र, आभूषण, मुकुर, चामर, घण्टा और अन्य यथायोग्य द्रव्य यत्नपूर्वक प्रदान करे। सभी कामनाओं की सिद्धि के लिये इष्टदेवता के मन्त्र का एक हजार जप करे। तब बलि प्रदान कर उस यन्त्र को प्रणाम करे। तब १०८ हवन करे। हवन के समय उस यन्त्र के ऊपर प्रत्याहुति देवे। हवन में असमर्थ व्यक्ति हवनसंख्या से दुगुना जप करे।

इसके बाद एक गाय लाकर उसके शृंगादि को स्वर्णादि विविध भूषणों से अलंकृत करके दक्षिणारूप में गुरुदेव को देकर विसर्जन करे।

तन्त्रप्रदीप में लिखा है कि किसी काष्ठफलक या घर के दीवाल पर यन्त्र को रखने से पुत्र, पौत्र, धन-धान्य और आयु का नाश होता है।

अन्यान्य तन्त्रों के मतानुसार जिसे पुत्र-पौत्रादि की ममता हो, वह घर के दीवाल, वस्त्र या फलक पर यन्त्र स्थापित न करे।

यन्त्रसंस्कारप्रयोग:

कृतनित्यक्रियः स्वस्तिवाचनपूर्वकं सङ्कल्पं कुर्यात्। अद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकदेवतायाः प्रीत्यर्थं यन्त्रसंस्कारमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य पञ्चगव्यमानीय हौमिति मन्त्रेणाष्टोत्तरशतमभिमन्त्र्य प्रणवेन तत्र यन्त्रं निक्षिपेत्। तत उत्तोल्य स्वर्णादिपात्रे स्थापयेत्।

ततः शीतलजलचन्दनगन्धकस्तूरीकुङ्कुमैः स्नापयित्वा पञ्चामृतमानीय हौमिति मन्त्रेणाष्टोत्तरशतमभिमन्त्र्य पूर्ववत् शोधयित्वा स्नापयेत्।

तत्र क्रमः—प्रथमं क्षीरेण स्नापयित्वा पुनर्जलेन स्नापयित्वा धूपं दद्यात्। एवं दध्ना घृतेन मधुना शर्करया च। ततो दुग्धेन शीतलजलेन (सुगन्धेन चन्दनेन कस्तूरीकुङ्कुमेन च) स्नापयेत्।

ततो हाटकैरष्टभिः कलशैः कुंकुमरोचनामिश्रितैस्तोयैः स्नापयेत्। सर्वत्र स्नानं मूलमन्त्रेण।

ततो यन्त्रमुत्तोल्य पात्रान्तरे स्थापयित्वा कुशाग्रेण यन्त्रं स्पृष्ट्वा- यन्त्रराजाय विद्महे महायन्त्राय धीमहि तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात् इति गायत्र्या चाष्टोत्तरशतमभिमन्त्र्य प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्। विश्वसारतन्त्रे—

प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य देवता ब्राह्मणादयः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ऋषयः परिकीर्त्तिताः ।
ततः ऋग्-यजुःसामानि छन्दांसि च तदाचरेत् ॥

अस्य प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऋषयः। ऋग्-यजुःसामानि छन्दांसि चैतन्यं देवता प्राणप्रतिष्ठायां विनियोगः। तद्यथा—

आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः अमुकदेवताया प्राणा इह प्राणाः, एवं आमित्यादि अमुकदेवताया जीव इह स्थितः, एवं आमित्यादि अमुकदेवतायाः सर्वेन्द्रियाणि, एवं आमित्यादि अमुकदेवताया वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा—इति प्राणान् प्रतिष्ठाप्य तत्र देवतामावाह्य षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा पूजयेत्। तथा च भैरवतन्त्रे—

मूर्त्तिं मूलेन सङ्कल्प्य जीवन्यासं समाचरेत् ।
मायां पाशाङ्कुशाद्यन्तां यादीन् सप्त सविन्दुकान् ॥
वियत्सत्येन्दुसंयुक्तं तदन्ते हंस उच्चरेत् ।
अस्याः प्राणा इह प्राणाः पुनर्जीव इह स्थितः ॥
पुनरुच्चार्य्य तस्या वै सर्वेन्द्रियाणि पुनर्वदेत् ।
तस्याश्च वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणपदान्यपि ॥
प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु ठद्वयम् ।
इति प्राणान् प्रतिष्ठाप्य देवीमावाहयेत्ततः ॥

ततः षडङ्गानि पूजयेत्। ततः पट्टसूत्रादिकं दत्त्वा अष्टोत्तरसहस्रं जप्त्वा शक्तश्चेद्बलिं दद्यात्। ततोऽष्टोत्तरशतं हुत्वा प्रत्याहुतिसम्पातं दद्यात्। होमाभावे द्विगुणजपः कार्यः। ततो दक्षिणां दत्त्वा अच्छिद्रावधारणं कुर्यात्।

इति यन्त्रसंस्कारविधिः

इति महामहोपाध्यायश्रीकृष्णानन्दभट्टाचार्यविरचिते
तन्त्रसारे तृतीयः परिच्छेदः

यन्त्रसंस्कारप्रयोग—यथाविधि नित्यक्रिया सम्पन्न करने के बाद स्वस्तिवाचनपूर्वक संकल्प करे। तब पञ्चगव्य को ह्रीं मन्त्र के १०८ जप से अभिमन्त्रित करे। 'ॐ' का उच्चारण करते हुए यन्त्र को पञ्चगव्य में रक्खे। तव उसमें से बाहर निकालकर स्वर्णादि पात्र में रक्खे। तब शीतल जल, चन्दन, सुगन्धि, कस्तूरी और कुंकुम से उस यन्त्र को स्नान कराकर पञ्चामृत को 'हौं' के एक सौ आठ जप से अभिमन्त्रित करे। पूर्ववत् शोधन के बाद स्नान कराए।

इसका क्रम यह है कि पहले दुग्धस्नान कराकर जल से स्नान कराए। इसी प्रकार दही से, तब जल से, घी से, तब जल से, मधु से, तब जल से और शक्कर से, तब जल से स्नान कराए। इसी को पञ्चामृत स्नान कहते हैं। पञ्चामृत को 'हौं' मन्त्र से शोधित कर ले। तब दूध, जल, सुगन्ध, चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम, गोरोचन, चन्दनयुक्त जल लेकर उससे यन्त्र को स्नान कराए। मूल मन्त्र से सर्वत्र स्नान कराए। इसके बाद यन्त्र को दूसरे पात्र में स्थापित करे। उसका स्पर्श कुशाग्र से करे। 'यन्त्रराजाय विद्महे महायन्त्राय धीमहि तन्नो यन्त्र: प्रचोदयात्'—इस गायत्री मन्त्र का १०८ जप करे। तब प्राणप्रतिष्ठा करे।

विश्वसारतन्त्र में लिखा है कि प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा-विष्णु-महेश हैं। छन्द ऋक्, यजु:, साम है। देवता चैतन्य है और प्राणप्रतिष्ठा के लिये इसका विनियोग किया जाता है। जैसे—ॐ अस्य प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्माविष्णुमहेश्वरा ऋषय: ऋग् यजु: सामानि छन्दांसि, चैतन्य देवता प्राणप्रतिष्ठापने विनियोग:। मन्त्र—आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौ हंस: अमुकदेवताया: प्राणा इह प्राणा:। आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंस: अमुकदेवताया: जीव इह स्थित:। आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं हंस: अमुकदेवताया: सर्वेन्द्रियाणि। आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं हंस: अमुकदेवताया: वाङ्मनश्चक्षु:श्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा। इस मन्त्र से प्राणप्रतिष्ठा कर देवता का आवाहन करने के पश्चात् षोडश या पञ्चोपचार से उनका पूजन करे।

भैरवतन्त्र में लिखा है कि मूल मन्त्र से देवता की मूर्ति की कल्पना कर जीवन्यास करे। उक्त प्राणप्रतिष्ठामन्त्र में अमुकदेवताया: के स्थान पर सर्वत्र देवता के नाम का उल्लेख करे। इस प्रकार प्राणप्रतिष्ठा कर देवता का आवाहन करे। तब षडंग पूजन कर यन्त्र के ऊपर पट्टसूत्रादि अर्पित कर १०८ बार मूल मन्त्र का जप करे। समय हो तो बलि प्रदान करे। तब १०८ हवन करते समय घी का बूंद टपकावे। हवन करने में असमर्थ हो तो दुगुना जप करे। अन्त में गुरुदेव को दक्षिणा देकर अच्छिद्रावधारण करे।

तृतीय परिच्छेद सम्पूर्ण

◆

चतुर्थः परिच्छेदः

अथ प्रकीर्णकम्

तत्र पूजायां दिग्विधानम्

विष्णुविषये नारदीये—

स्नातः शुक्लाम्बरधरश्चाचान्तः पूर्वदिङ्मुखः ।
शुद्धासनं समासाद्य भूतोत्सारणमाचरेत् ॥

अन्यत्र तु निबन्धे—

उपविश्यासने मन्त्री प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ।
बद्धपद्मासनो मन्त्री समाहितजितेन्द्रियः ॥

सारसमुच्चयेऽपि—प्रागाननो धनददिग्वदनोऽथ वापीति। रात्रौ पूजने नायं नियमः। तथा च स्मृतिः—

रात्रावुदङ्मुखः कुर्यात् देवकार्यं सदैव हि ।
शिवार्चनं सदाप्येवं शुचिः कुर्यादुदङ्मुखः ॥

पूजा में दिशानिर्णय—विष्णुपूजा के सम्बन्ध में नारदतन्त्र में लिखा है कि साधक स्नान के बाद श्वेत वस्त्र पहन कर आचमनपूर्वक पूर्वमुख होकर आसनादि शुद्धि और भूतापसारण करे।

अन्यान्य देवताओं की पूजा के बारे में निबन्ध में लिखा है कि पूर्व या उत्तरमुख होकर पद्मासन में बैठकर संयत मन जितेन्द्रिय होकर पूजन कर्म करे।

सारसमुच्चय के मत से पूर्व या उत्तरमुख होकर देवपूजा करे। दिन में इसी नियम से कार्य करे; किन्तु रात्रिकाल की पूजा में यह नियम नहीं है।

स्मृतिशास्त्र के मत से रात्रिकाल में उत्तरमुख होकर देवपूजा करे; किन्तु शिवपूजा में दिन-रात दोनों समय पवित्र भाव से उत्तराभिमुख होकर कार्य करे।

पूजायां विहितनिषिद्धानि

यन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

लिङ्गद्वयं तथा नार्च्यं गणेशद्वयमेव च ।
शक्तिद्वयं तथा सूर्यद्वयमेकत्र नार्चयेत् ॥
द्वे चक्रे द्वारकायान्तु शालग्रामशिलाद्वयम् ।

एतेषामर्चनान्नित्यमुद्वेगं प्राप्नुयाद् गृही ॥

लैङ्गे—

एकीकृत्य च लिङ्गानि दशपञ्चशतानि च ।
प्रत्येकेनाथवा देवि बिल्वपत्रैः प्रपूजयेत् ॥
एकं पाशुपतं लिङ्गं मृच्छिलादिविनिर्मितम् ।
शालग्रामशिलामेकां गृहस्थोऽपि प्रपूजयेत् ॥

यामले—

नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुं न तुलस्या विनायकम् ।
न दूर्वया यजेद्दुर्गां बिल्वपत्रैर्दिवाकरम् ॥
उन्मत्तमर्कपुष्पञ्च विष्णोर्वर्ज्यं सदा बुधैः ।

गौतमीये—

न रक्तचन्दनं जातु गृह्णीयाद्रक्तपुष्पकम् ।
बिल्वपत्रैस्तत्प्रसूनैर्नार्चयेद्देवकीसुतम् ॥

पूजा में विहित और निषिद्ध—यन्त्रतन्त्रप्रकाश के मत से एक साथ दो शिवपूजा, दो गणेशपूजा, दो शक्तिपूजा और दो सूर्यपूजा न करे। द्वारका के दो गोमती चक्र और दो शालग्राम की पूजा एक साथ न करे। इससे गृहस्थ साधक को सदा उद्वेग प्राप्त होता है।

लिंगपुराण में वर्णन है कि पाँच, दस या सौ लिंगों को एकत्र कर या एक-एक की अलग-अलग बिल्वपत्रों से पूजा कर सकते हैं। गृहस्थ मिट्टी और शिलादि-निर्मित एक शिवलिंग और एक ही शालग्राम की पूजा करे।

यामल में वर्णन है कि केवल अक्षत से विष्णु की, केवल तुलसी से गणेश की, केवल दूर्वा से दुर्गा की और केवल बेलपत्र से सूर्य की पूजा न करे।

विष्णुपूजा में अकवन-पुष्प और धत्तूर-पुष्प निषिद्ध हैं। गौतमतन्त्र में लिखा है कि रक्तचन्दन, रक्तपुष्प, बिल्वपुष्प से विष्णु की पूजा कभी न करे।

यत्तु तत्रैव—

कमले करवीरे द्वे तुलस्यौ जातिकेतके ।
नागकेशरपावन्ती कह्लारं चम्पकोत्पले ।
नान्द्यावर्त्तञ्च यूथी च मल्लिका नवमल्लिका ॥
कुन्दं मन्दारकञ्चैव सौगन्धिकञ्च केशरम् ।
कुरुण्टाशोकसर्जानि बिल्वञ्च मुनिपुष्पकम् ॥

पत्रमामलकं शुद्धं कर्णिकारं पलाशजम् ।
एतान्यन्यानि पुष्पाणि यथालाभं समर्चयेत् ॥

इति यद्बिल्वविधानं तद्विहितपुष्पाभावे। तन्त्रान्तरे—

देवीनामर्क-मन्दारावादित्ये तगरं तथा ।
गणेशाय च सूर्याय रक्तपुष्पमतिप्रियम् ॥
शिवे कुन्दं मदन्तीञ्च यूथीं बन्धूककेतके ।
रक्तां जवां त्रिसन्ध्यो द्वे मालतीं केतकीन्तथा ।
घुसृणं कुमुदं रक्तं हयारिञ्च विवर्जयेत् ॥

तथा—

उग्रगन्धमगन्धञ्च कृमिकेशादिदूषितम् ।
वासोभिः सम्भृतं नीतं मतिमान्नार्चयेच्छिवे ॥
कलिकाभिस्तथा नार्च्यं विना चम्पकपद्मकैः ।
शुष्कैश्च नार्चयेद्विष्णुं पत्रैः पुष्पैः फलैरपि ।
स्नात्वानीतैः पर्युषितैर्याचितैः कृष्णवर्णकैः ॥
स्वयं विकसितैः पुष्पैः स्वयञ्च पतितैर्भुवि ।
वर्जयेद्बृहतीपुष्पमगन्धञ्च विशेषतः ॥

स्वयं विकसितैरिति पुरुषेण स्वयं विकासितैरित्यर्थः।

त्रिपत्रन्यूनकुसुमैर्नार्चयेत्तु कदाचन ।
भूगतञ्चाङ्गसंस्पृष्टं केशकीटादिदूषितम् ॥
कुमुदं पाटलञ्चैव शिरीषं परिवर्जयेत् ।
भूगतं वर्जयेत्पुष्पं शेफालीं वकुलं विना ॥

तथा—

बिल्वस्य खादिरस्यैव तथा धात्रीदलस्य च ।
तमालस्य च पद्मस्य छिन्नभिन्ने न दूष्यति ॥

उसी तन्त्र में लिखा है कि श्वेत और लाल कमल, श्वेत और लाल कनैल, कृष्ण और श्वेत तुलसी, जातीपुष्प, केतकीपुष्प, नागकेशर, गुलाब, कल्हार, चम्पा, कुमुद, तगर, जूही, मल्लिका, नवमल्लिका, कुन्द, मन्दार, श्वेतोत्पल, केशर, पीत झिण्टी, अशोक, सर्जपुष्प, बिल्वकुसुम, बकपुष्प, आमलकी-पत्र, कर्णिकार और पलाशपुष्प से तथा यथाप्राप्त पुष्पों से देवता की पूजा करे। विहित पुष्प के अभाव में बिल्वपुष्प की विधि है। अतः विहित पुष्पों का अभाव न होने पर विहित पुष्पों से ही पूजा करे।

तन्त्रान्तर में कहा हैं कि शक्तिदेवताओं को अकवन, मन्दार; सूर्य को तगर; गणेश और सूर्य को लाल फूल अति प्रिय हैं। कुन्द, नवमल्लिका, जूही, बन्धूक, केतकी, लाल अड़हुल, मालती, स्वर्णकेतकी, कुंकुम, कुमुद और लाल कनैल—ये सब पुष्प शिवपूजा में निषिद्ध हैं।

उग्र गन्ध, गन्धहीन, कीटभक्षित, कृमि-केशादि से दूषित और वस्त्र से ढँककर लाए गये पुष्प से देवता की पूजा न करे।

पद्म और चम्पक के अतिरिक्त अन्य पुष्पों की कली से देवता की पूजा न करे। शुष्क पत्र, शुष्क पुष्प और शुष्क फल से विष्णु की पूजा निषिद्ध है। स्नान के बाद लाए हुए, बासी, मांगे हुए, कृष्ण वर्ण, प्रयत्न से विकसित, भूपतित और गन्धहीन फूलों से देवता की पूजा न करे। जिस फूल में तीन से कम दल हों, वह त्याज्य है। जिस पुष्प का देह या भूमि से स्पर्श हुआ हो, केश-कीटादि से दूषित पुष्प, कुमुद, पाटल तथा शिरीषपुष्प से पूजा न करे। शेफाली और वकुलपुष्प को छोड़कर भूमि पर गिरे हुए अन्य किसी फूल से पूजा न करे।

तन्त्र में लिखा है कि विल्बपत्र, खैरपुष्प, आमलापत्र और तमालपुष्प छिन्न-भिन्न होने पर भी दूषित नहीं माने जाते।

गौतमीये—

मलिनं भूमिसंस्पृष्टं कृमिकेशादिदूषितम् ।
पर्युषितानि पुष्पानि वर्जयेद्देवतार्चने ॥
तिष्ठेद्दिनद्वयं शुद्धं पद्ममामलकं तथा ।
तुलसी सर्वदा शुद्धा तथा बिल्वदलानि च ।
दिनैकं करवीराणि योग्यानि च तपोधन ॥

ज्ञानार्णवे—

पुष्पैः पर्य्युषितैर्द्देवि नार्च्चयेत्स्वर्णजैरपि ।
निर्माल्यभूतैः कुसुमैरुच्छिष्टैः परमेश्वरि ॥

त्रिपुरामधिकृत्य वाराहीये—

पलाशकाशकुसुमैर्नार्चयेद्दूरतस्त्यजेत् ।
धात्रीतमालजैः पत्रैस्तुलसीद्वितयैस्तथा ।
पूजनात्पातको तु स्याल्लग्नैश्चापि श्रियं हरेत् ॥
त्रिपुरापूजने वर्ज्या तुलसी सर्वदा बुधैः ।
तुलसीघ्राणमात्रेण क्रुद्धा भवति सुन्दरी ॥

कौलावलीये—

रक्तमार्घ्यं श्वेतदूर्वां नीलकण्ठं कुरुण्टकम् ।
न दद्यात्तु महादेव्यै यदीच्छेच्छुभमात्मनः ।।

गौतमीय में कहा है कि मलिन पुष्प, भूमिसंगत पुष्प, कृमि-कीटादि से दूषित पुष्प और बासी पुष्प त्याज्य हैं। पद्मपुष्प और आमलकी-पत्र तीन दिनों तक शुद्ध रहते हैं। तुलसीपत्र, बिल्वपत्र सदा ही शुद्ध रहते हैं। करवीरपुष्प एक दिन तक पूजा के योग्य रहता है।

ज्ञानार्णव के मत से स्वर्णपुष्प के भी बासी होने पर उससे पूजा न करे। जो पुष्प निर्माल्य हों अथवा उच्छिष्ट हों, उनसे पूजा करना निषिद्ध है।

वाराही तन्त्र में कहा है कि त्रिपुरा की पूजा में पलाश और काशपुष्प निषिद्ध हैं। आमलकी-पत्र, तमाल पत्र, श्वेत-कृष्ण दोनों तुलसी-पत्र से त्रिपुरा देवी की पूजा करने से पाप लगता है।

शालग्रामशिला में त्रिपुरसुन्दरी की पूजा करना हो तो शिला पर चढ़े हुए तुलसीपत्रादि के रहने से साधक का श्रीनाश होता है। तुलसी के गन्ध से त्रिपुरा देवी क्रुद्ध होती हैं।

कुलावलि ग्रन्थ में कहा है कि जो साधक अपना कल्याण चाहता हो, वह लाल कुन्दपुष्प, श्वेत दूर्वा, नीलकंठ और पीत झिण्टी पुष्प महोदवी को न प्रदान करे।

योगिनीतन्त्रेऽपि देवीमधिकृत्य—

झिण्टीपुष्पेण पीतेन श्वेतेन तगरेण च ।
श्वेतोड्रेण च पुष्पेण वर्जयेत्पूजनं सदा ।।
तुलस्यौ द्वे च मन्दारकह्लारजतमालजैः ।
नार्चयेत्तु महादेवीं कुशकाशोद्भवेन च ।।

तथा सर्वमधिकृत्य—

वकुलस्य त्वशोकस्य अर्जुनस्य महेश्वरी ।
पूजयेद्वृन्तवर्ज्येन सवृन्तेन च वर्जयेत् ।।
विष्णुक्रान्ता जवा नागकेशरं नागवल्लभम् ।
बन्धूकञ्चैव मन्दारं सवृन्तेन समर्चयेत् ।।
न स्पृशेद् हस्तवर्जञ्च भूगतञ्च न संस्पृशेत् ।
शेफालिबकुले भद्रे भूगतेऽपि समर्चयेत् ।।
मालूरं भूगतं देयं तस्य काष्ठस्य चन्दनम् ।
बिल्वस्य मूलकं वर्ज्यं कदल्या पत्रकं तथा ।।

तथा—

बिल्वपत्रञ्च माध्यञ्च तमालामलकीदलम् ।
कह्लारं तुलसीञ्चैव पद्मञ्च मुनिपुष्पकम् ।
एतत्पर्युषितं न स्याद्यच्चान्यत्कलिकात्मकम् ।।
नीरजस्य च बिल्वस्य तुलस्या दलमेव च ।
न दूष्येच्छिन्नभिन्नञ्च जातीपुष्पञ्च शङ्करि ।।

योगिनीतन्त्र में लिखा है कि पीत झिण्टी, तगर, श्वेत अड़हुल, द्विविध तुलसी, मन्दार, कल्हारपुष्प, कुश और काशपुष्प से देवी की पूजा न करे। सभी देवताओं की पूजा में वकुल, अशोक और अर्जुनपुष्प का वृन्त छोड़कर पूजा करे। वृन्तयुक्त ये पुष्प हों तो त्याज्य हैं।

अपराजिता, अड़हुल, नागकेशर, नागवल्लभ, बन्धूक और मन्दार—ये सभी वृन्तयुक्त हों तो प्रशस्त हैं। भूपतित, वृन्तशून्य अन्य पुष्पों को स्पर्श न करे; किन्तु शेफाली और मौलशिरी-पुष्प भूमि पर गिरने पर भी पूजा के योग्य होते हैं। बिल्वपत्र भी भूमिस्पर्श से दूषित नहीं होता।

देवपूजा में बिल्वकाष्ठ का चन्दन प्रशस्त है; किन्तु बिल्वमूल का चन्दन, कदलीपत्र ग्राह्य नहीं है। बेलपत्र, कुन्दपुष्प, तमालपत्र, आमलकीपत्र, कल्हारपुष्प, तुलसीपत्र, पद्मपुष्प और बकपुष्प तथा पुष्पकलिका बासी नहीं होती। पद्मपुष्प, बेलपत्र, तुलसीपत्र, जातीपुष्प छिन्न-भिन्न होने पर भी दूषित नहीं होते।

तथा नक्षत्रविद्यादौ मत्स्यसूक्ते—

पुष्पं श्रेष्ठं रक्तकोकं बन्धूकं शतपत्रकम् ।
वर्वराद्वितयञ्चैव कर्णिकाद्वितयन्तथा ।
ाकमन्दारचूतानि करवीराणि शस्यते ।।
मल्लिकाद्वितयं जाती क्षौमपुष्पं जयन्तिका ।
बिल्वपत्रं कुरुवकं मुनिपुष्पञ्च केशरम् ।।
वासन्तीद्वितयञ्चैव काशपुष्पं मरूवकम् ।
मदनञ्च लवङ्गञ्च यूथीं शेफालिकान्तथा ।।
सुगन्धिश्वेतलौहित्यकुसुमैरर्चयेद्दलैः ।
बिल्वैर्मरूवकाद्यैश्च तुलसीदलवर्जितैः ।।

यद्यपि—

तुलसीवर्जिता पूजा न जातु फलदा भवेत् । इति।

तथापि तन्नियमस्तु न त्रिपुरादौ। तथा च—

सुन्दरी भैरवी-काली-ब्रह्मविघ्न-विवस्वताम्।
तुलसीवर्जिता पूजा सा पूजा विफला भवेत्॥

इति अविफला सफला इत्यर्थः। तेन भैरव्यादिपूजायां तुलसी सदैव त्याज्या पूर्ववचनात्। इतरासान्तु पूजायां तदसत्त्वे सत्त्वे वा न दोषः। नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुं इति पुष्पाभावेऽतिदेशप्राप्तस्य तण्डुलस्य निषेधपरम्। तथा हि—

पुष्पाभावे जलेनापि दूर्वया तण्डुलेन वा।
नित्यं पूजा प्रकर्त्तव्या पुष्पाभावेन सुन्दरि॥

न त्वर्घ्यादिनिषेधपरम्। तथा च—

गन्ध-पुष्पाक्षत-यव-कुशाग्र-तिलसर्षपैः।
सदूर्वैः सर्वदेवानामेतदर्घ्यमुदाहृतम्॥

एवं न दूर्वया यजेद् दुर्गामित्यादि।

विना वै दूर्वया देवि पूजा नास्तीह कर्हिचित्।
तस्माद् दूर्वा ग्रहीतव्या सर्वपुष्पमयी शिवे।

इति श्रीक्रमीयवाक्यात्। तथा च राघवभट्टः—

सर्वैः पुष्पैः सदा पूज्या विहिताविहितैरपि।
कर्तव्या सर्वदेवानां भक्तियोगोऽत्र कारणम्॥

तथा तन्त्रान्तरे—

देवीपूजा सदा कार्या जलजैः स्थलजैरपि।
विहितैरविहितैर्वापि भक्तियुक्तेन चेतसा॥

इदन्तु विहितपुष्पाभावे अत्यन्तभक्तिविषयम्। तथा कालीतन्त्रे—

अपामार्गैश्च भृङ्गैश्च तुलसीवर्जितैः शुभैः।

मुण्डमालातन्त्रे—

धुस्तूराशोकबकुलश्वेतकृष्णापराजिता।

इत्यादि पुष्पनियमो बोद्धव्यः।

मत्स्यसूक्त के मत से नक्षत्रविद्यादि की पूजा में रक्त कोकनद, बन्धूकपुष्प, पद्म, द्विविध बर्वरापुष्प, द्विविध कर्णिकारपुष्प, बकपुष्प, मन्दारपुष्प, चूतपुष्प और करबीपुष्प प्रशस्त हैं। द्विविध झिण्टी, बकपुष्प, नागकेशर, द्विविध माधवी, काशपुष्प, पीत झिण्टी, मदनपुष्प, जूही, शेफालिकापुष्प और अन्यान्य श्वेत पुष्प द्वारा देवपूजन करे। तुलसीदल छोड़कर बेलपत्र नक्षत्रविद्या में उत्तम है।

अन्यान्य तन्त्रों में तुलसी-रहित पूजा की जो विफलता बताई गयी है, वह त्रिपुरादि देवताओं को छोड़कर अन्य देवताओं के बारे में समझनी चाहिये।

यह भी कहा गया है कि त्रिपुरसुन्दरी, भैरवी, काली, ब्रह्मा, गणेश और सूर्य की तुलसी-रहित पूजा ही सफल होती हैं। इसी से भैरवी आदि की पूजा में तुलसीपत्र सर्वथा त्याज्य है। अन्य देवियों की पूजा में तुलसीपत्र रहे या न रहे, इससे कोई दोष नहीं होता।

अक्षत द्वारा विष्णुपूजा न करे—इस कथन का आशय यह है कि पुष्पादि के अभाव में केवल तण्डुल से विष्णु की पूजा न करे। यह आशय नहीं है कि विष्णुपूजा में तण्डुल का प्रयोग नहीं होता।

पुष्पों के अभाव में केवल जल, केवल दूर्वा, केवल अक्षत द्वारा नित्य पूजा भक्तिभाव से कर सकते हैं; किन्तु विष्णुपूजा में केवल तण्डुल का प्रयोग न करे।

सर्वाभावे अक्षतान् समर्पयामि न करे। अर्घ्यादि में उसका प्रयोग करे; क्योंकि सभी देवताओं के अर्घ्य में तण्डुल देने की विधि है। यथा—१. गन्ध, २. पुष्प, ३. अक्षत, ४. यव, ५. कुशाग्र, ६. तिल, ७. सरसो और ८. दूव—द्रव्याष्टक से सब देवताओं को अर्घ्य देना चाहिये।

इसी प्रकार दूर्वा द्वारा दुर्गापूजा का जो निषेध है, उसका आशय यह है कि पुष्पाभाव में केवल दूर्वा से दुर्गा की पूजा न करे। वैसे दुर्गापूजा के अर्घ्य में दूर्वा का होना निषिद्ध नहीं है। दूर्वा के विना पूजा कभी नहीं होती। इससे सर्वमयी दूर्वा सभी पूजनों में ग्राह्य है।

राघव भट्ट के मतानुसार विहित और अविहित सभी पुष्पों से सभी देवताओं की पूजा की जा सकती है। इस विषय में भक्तियोग ही मुख्य है। विहित पुष्प के अभाव में भक्तिपूर्वक अविहित पुष्पों से भी पूजा करने से सिद्धि प्राप्त होती है।

तन्त्रान्तर में कहा है कि भक्तिपूर्वक विहित-अविहित जलज-स्थलज सभी प्रकार के पुष्पों से देवपूजा हो सकती है। विहित पुष्पों के अभाव में अविहित पुष्पों से पूजन की विधि अति भक्तिमान के लिये निर्दिष्ट है।

कालीतन्त्र के मत से अपामार्गपत्र और भृंगराजपत्र द्वारा देवता की पूजा करे; किन्तु तुलसीपत्र द्वारा देवपूजा कभी न करे।

मुण्डमालातन्त्र में कहा गया है कि धत्तूरपुष्प, अशोकपुष्प, वकुलपुष्प, श्वेत या कृष्ण अपराजिता—इन सभी फूलों से शक्तिपूजा प्रशस्त होती है।

जपविशेष:

तत्र सेतुं विना जपस्य व्यर्थत्वात्तन्निरूप्यते। तत्र कालिकापुराणे—

शास्त्राणां प्रणवः सेतुर्मन्त्राणां प्रणवः स्मृतः ।
स्रवत्यनोंकृतः पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यति ।।

निःसेतुसलिलं यद्वत्क्षणान्निम्नं प्रगच्छति ।
मन्त्रस्तथैव निःसेतुः क्षणात् क्षरति यज्वनाम् ॥
चतुर्दशः स्वरो योऽसौ सेतुरौकारसंज्ञकः ।
स चानुस्वारनादाभ्यां शूद्राणां सेतुरुच्यते ॥

जप के विशेष नियम—जप का विशेष नियम यह है कि सेतु के विना जप निष्फल होता है।

सभी प्रकार के मन्त्रों में 'ॐ' बीज ही सेतु है। जप के पूर्व ॐकाररूपी सेतु के न होने से सेतुहीन जल के समान वह जप पतित होता है। चौदहवाँ स्वर 'औ' बिन्दु नाद से भूषित होकर औँ बीज वनता है। यह शूद्रों का सेतु है।

पञ्चाङ्गशुद्धिः

पञ्चाङ्गशुद्धिं विना पूजाया निष्फलत्वात्तन्निरूप्यते। तत्र कुलार्णवे—

आत्म-स्थान-मन्त्र-द्रव्य-देवशुद्धिस्तु पञ्चमी ।
यावन्न कुरुते देवि तस्य देवार्चनं कुतः ।
पञ्चशुद्धिं विना पूजा अभिचाराय कल्पते ॥
सुस्नातैर्भूतशुद्ध्या च प्राणायामादिभिस्तथा ।
षडङ्गाद्यखिलन्यासैरात्मशुद्धिरुदीरिता ॥
सम्मार्जनानुलेपाद्यैर्दर्पणोदरवत् शुभम् ।
वितान-धूप-दीपादि-पुष्पमाल्यादिशोभितम् ।
पञ्चवर्णरजोभिश्च स्थानशुद्धिरितीरिता ॥
ग्रथित्वा मातृकावर्णैर्मूलमन्त्राक्षराणि च ।
क्रमोत्क्रमाद् द्विरावृत्त्या मन्त्रशुद्धिरितीरिता ॥
पूजाद्रव्याणि सम्प्रोक्ष्य मूलास्त्रैश्च विधानतः।
दर्शयेद्धेनुमुद्रादीन् द्रव्यशुद्धिः प्रकीर्त्तिता ॥
पीठे देवीं प्रतिष्ठाप्य सकलीकृत्य मन्त्रवित् ।
मूलमन्त्रेण माल्यादीन् धूपादीनुदकेन च ॥
त्रिवारं प्रोक्षयेद्विद्वान् देवशुद्धिरितीरिता ।
पञ्चशुद्धिं विधायेत्थं पश्चात्पूजां समाचरेत् ॥

पञ्चाङ्गशुद्धि—पञ्चाङ्गशुद्धि के विना पूजा निष्फल होती है। कुलार्णव में कहा है कि आत्मा, स्थान, मन्त्र, द्रव्य और देवता—इन पाँचों की शुद्धि पञ्चाङ्गशुद्धि कहलाती है। पञ्चाङ्गशुद्धि न होने पर देवार्चन का अधिकार नहीं होता है। पञ्चाङ्गशुद्धि से रहित पूजा अभिचार के लिये होती है।

१. तीर्थादि विशुद्ध जल में स्थान कर भूतशुद्धि, प्राणायाम और षडंग न्यासादि से आत्मशुद्धि होती है।

२. पूजास्थान का मार्जन गोबर से लीपकर दर्पण के समान स्वच्छ तथा चन्द्रातप, धूप, दीप, पुष्पमाला से सुशोभित कर पञ्चवर्ण चूर्ण से चित्रित करने से स्थानशुद्धि होती है।

३. मातृका वर्ण से अनुलोम-विलोम क्रम से मन्त्रवर्णों को पुटित कर दो बार पाठ करने से मन्त्रशुद्धि होती है।

४. कुशाग्र द्वारा मूलं फट् मन्त्र से पूजा के द्रव्यों का प्रोक्षण कर उन्हें धेनुमुद्रादि दिखाने से द्रव्यशुद्धि होती है।

५. पीठ के ऊपर देवता की प्रतिष्ठा कर सकलीकरण मुद्रा से सकलीकरण कर मूल मन्त्र से माल्यादि धूप-दीप निवेदित करके तीन बार प्रोक्षण करने से देवशुद्धि होती है।

इस प्रकार पञ्चाङ्गशुद्धि करके देवार्चन करना चाहिये।

मन्त्रसिद्धेरुपाय:

तदुक्तं गौतमीये—

सम्यगनुष्ठितो मन्त्रो यदि सिद्धिर्न जायते ।
पुनस्तेनैव कर्त्तव्यं ततः सिद्धो भवेद् ध्रुवम् ।।
पुनरनुष्ठितो मन्त्रो यदि सिद्धो न जायते ।
पुनस्तेनैव कर्त्तव्यं ततः सिद्धो न संशयः ।।
पुनः सोऽनुष्ठितो मन्त्रो यदि सिद्धो न जायते ।
उपायास्तत्र कर्त्तव्याः सप्त शङ्करभाषिताः ।।
भ्रामणं रोधनं वश्यं पीडनं पोषशोषणे ।
दहनान्तं क्रमात्कुर्यात्ततः सिद्धो भवेन्मनुः ।।
भ्रामणं वायुबीजेन ग्रथनं क्रमयोगतः ।
तन्मन्त्रं यन्त्रे त्वालिख्य शिह्लकर्पूरकुङ्कुमैः ।
उशीरचन्दनाभ्यान्तु मन्त्रं संग्रथितं लिखेत् ।।
क्षीराज्यमधुतोयानां मध्ये तल्लिखितं भवेत् ।
पूजनाज्जपनाद्धोमाद् भ्रामितः सिद्धिदो भवेत् ।।
भ्रामितो यदि न सिद्ध्येद्रोधनं तस्य कारयेत् ।
सारस्वतेन बीजेन सम्पुटीकृत्य सञ्जपेत् ।
एवं रुद्धो भवेत्सिद्धो न चेदेतद्वशीकुरु ।।
अलक्तं चन्दनं कुष्ठं हरिद्रा मादनं शिला ।

एतैस्तु मन्त्रमालिख्य भूर्जपत्रे सुशोभने ।
धृत्वं कण्ठे भवेत्सिद्धिः पीडनं वास्य कारयेत् ।।
अधरोत्तरयोगेन पदानि परिजप्य वै ।
ध्यायेच्च देवता तद्वदधरोत्तररूपिणीम् ।।
विद्यामादित्यदुग्धेन लिखित्वाक्रम्य चांघ्रिणा ।
तथाभूतेन मन्त्रेण होमः कार्यो दिने-दिने ।
पीडितो लज्जयाविष्टः सिद्धः स्यादथ पोषयेत् ।।
बालायाः त्रितयं बीजमाद्यन्ते तस्य योजयेत् ।
गोक्षीरमधुनालिख्य विद्यां पाणौ विभावयेत् ।
पोषितोऽयं भवेत् सिद्धो न चेत्कुर्वीत शोषणम् ।।
द्वाभ्यान्तु वायुबीजाभ्यां मन्त्रः कुर्याद्विदर्भितम् ।
एषा विद्या गले धार्या लिखित्वा वरभस्मना ।
शोषितश्चाप्यसिद्धश्चेद्दहनीयोऽग्निबीजतः ।।
आग्नेयेन तु बीजेन मन्त्रेष्वेकैकमक्षरम् ।
आद्यन्तमध-ऊर्ध्वञ्च योजयेद्दाहकर्मणि ।।
ब्रह्मवृक्षस्य तैलेन मन्त्रमालिख्य धारयेत् ।
कण्ठदेशे ततो मन्त्रः सिद्धः स्याच्छङ्करोदितम् ।।

शिव उवाच—

इत्येवं कथितं सम्यक्केवलं तव भक्तितः ।
एकेनैव कृतार्थः स्याद्बहुभिः किमु सुव्रते ।।
अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रसिद्धेस्तु कारणम् ।
मातृकापुटितं कृत्वा मन्त्रञ्च प्रजपेत् सुधीः ।
क्रमोत्क्रमाच्छतावृत्त्या तदन्ते केवलं मनुम् ।।
एवन्तु प्रत्यहं कुर्याद्यावल्लक्षं समाप्यते ।
निश्चितं मन्त्रसिद्धिः स्यादित्युक्तं तन्त्रवेदिभिः ।।

मन्त्रसिद्धि के उपाय—गौतमीय तन्त्र में कहा गया है कि समुचित प्रकार से पुरश्चरणादि करने से भी यदि मन्त्र सिद्ध न हो तो पुनः पूर्ववत् पुरश्चरण करना चाहिये। उस पर भी सिद्धि न मिले तो तीसरी बार भी वैसा ही करे। तीन बार करने पर भी यदि मन्त्र की सिद्धि नहीं हो तो शिवोक्त भ्रामणादि सात उपायों का सहारा लेना चाहिये। ये सात उपाय निम्नवत् हैं—१. भ्रामण, २. रोधन, ३. वशीकरण, ४. पीड़न, ५. पोषण, ६. शोषण और ७. दाहन। इन सात उपायों को क्रमशः करने से मन्त्रसिद्धि अवश्य होती है।

१. वायुबीज 'यं' द्वारा सभी मन्त्रवर्णों का ग्रन्थन करे। मन्त्र में जितने वर्ण हों, उन सबको अलग-अलग करके एक 'यं' और एक मन्त्राक्षर लिखे।

शिलाजीत, कपूर, कुंकुम, खश और चन्दन को मिलाकर उसके घोल से मन्त्र के प्रत्येक वर्ण को 'यं' से ग्रथित करे। यन्त्र में सबों को लिखे।

तब लिखित मन्त्र को दूध, घी, मधु और जल मिश्र में डाल दे। तब पूजा और हवन करने से मन्त्र सिद्ध होता है। इसी को भ्रामण कहते हैं।

२. यदि भ्रामित मन्त्र सिद्ध न हो तो रोधन क्रिया करे। ऐं बीज से मन्त्र को पुटित करके जप करे।

३. रोधन क्रिया से भी यदि मन्त्र सिद्ध न हो तो वशीकरण करना चाहिये। आलता, रक्त, चन्दन, कूट, हल्दी, धत्तूरबीज और मैनसिल द्रव्यों के घोल से भोजपत्र पर मन्त्र को लिखकर उसे कण्ठ में धारण करे।

४. वशीकरण से भी यदि मन्त्र सिद्ध न हो तो पीड़न क्रिया करे। 'ॐ' के साथ मन्त्र का जप करे। 'ऐं' रूपिणी देवता की पूजा करे। तब अकवन के दूध से मन्त्र को लिखकर पैरों से रौंदकर उस मन्त्र से प्रतिदिन हवन करे।

५. पीड़न से भी सिद्धि न हो तो पोषणक्रिया करे। मूल मन्त्र के आदि और अन्त में 'ऐं क्लीं सौ:' लगाकर जप करे। गाय के दूध और मधु मिलाकर हाथ पर मन्त्र लिखकर भावना करे।

६. पोषणक्रिया से भी मन्त्र सिद्ध न हो तो शोषणक्रिया करे। 'यं यं' दो वायुबीजों से मन्त्र को विदर्भित करे। अर्थात् मन्त्र के बाद इन दो बीजों को यज्ञीय भस्मघोल से भोजपत्र पर लिखकर गले में धारण करे।

७. शोषणक्रिया से भी मन्त्र सिद्ध न हो तो दाहन क्रिया करे। मन्त्र के प्रत्येक अक्षर के आदि-अन्त और ऊपर-नीचे अग्निबीज 'रं' लिखकर दग्ध करे। पलाशबीज के तेल से मन्त्र को लिखकर कण्ठ में धारण करे।

मन्त्रसिद्धि का एक अन्य उपाय यह है कि अनुलोम-विलोमक्रम से मातृका वर्ण द्वारा मन्त्र को पुटित कर एक सौ बार उसका जप करे। तब केवल मन्त्र का जप करे। प्रतिदिन जप से एक लाख जप पूरा होने पर मन्त्र सिद्ध होता है।

सिद्धिलक्षणम्

मनोरथानामक्लेशः सिद्धिरुत्तमलक्षणम् ।
मृत्यूनां हरणं तद्वद्देवतादर्शनन्तथा ।
प्रयोगोऽस्याक्लेशसिद्धिः सिद्धेस्तु लक्षणं परम् ॥

परकायप्रवेशश्च पुरप्रवेशनं तथा ।
ऊर्ध्वोत्क्रमणमेवं हि चराचरपुरे गतिः ॥
खेचरीमेलनञ्चैव तत्कथाश्रवणादिकम् ।
भूच्छिद्राणि प्रपश्येत्तु तदुत्तमस्य लक्षणम् ॥
ख्यातिर्वाहनभूषादिलाभः सुचिरजीवनम् ।
नृपाणां तद्गणानाञ्च वशीकरणमुत्तमम् ॥
सर्वत्र सर्वलोकेषु चमत्कारकरः सुखी ।
रोगापहरणं दृष्ट्या विषापहरणन्तथा ॥
पाण्डित्यं लभते मन्त्री चतुर्विधमयत्नतः ।
वैराग्यञ्च मुमुक्षुत्वं त्यागिता सर्ववश्यता ॥
अष्टाङ्गयोगाभ्यसनं भोगेच्छापरिवर्जनम् ।
सर्वभूतेष्वनुकम्पा सार्वज्ञादिगुणोदयः ।
इत्यादिगुणसम्पत्तिर्मध्यसिद्धेस्तु लक्षणम् ॥
ख्यातिर्वाहनभूषादिलाभः सुचिरजीवनम् ।
नृपाणां तद्गणानाञ्च वात्सल्यं लोकवश्यता ।
महैश्वर्यं धनित्वञ्च पुत्रदारादिसम्पदः ॥
अधमाः सिद्धयः प्रोक्ता मन्त्रिणां प्रथमभूमिका ।
सिद्धमन्त्रस्तु यः साक्षात् स शिवो नात्र संशयः ॥

मन्त्रसिद्धि के लक्षण—विना क्लेश के मनोरथ सिद्ध होना ही मन्त्रसिद्धि का प्रधान लक्षण है। साधक जब जिस बात की इच्छा करे, वह उसी समय पूरी हो जाय तो समझे कि मन्त्रसिद्धि मिल गई है। मृत्यु-निवारण, देवता-दर्शन, विना क्लेश के प्रयोग की सिद्धि इत्यादि भी मन्त्रसिद्धि के लक्षण हैं।

परकायाप्रवेश, परपुरप्रवेश, शून्य में विचरण, सर्वत्र अबाध गति, खेचरी, देवीगण से मिलन और उनकी कथा का श्रवण, भूच्छिद्रदर्शन, पार्थिव तत्त्वज्ञान, वाहन-भूषणादि बहुद्रव्य-लाभ, दीर्घ जीवन, राजा और राजपरिवार का वशीकरण, सभी स्थानों में चमत्कारपूर्ण कार्यप्रदर्शन, दृष्टिपात से रोग और विषनिवारण, चतुर्विध विद्याओं में पाण्डित्य, विषय-भोग से वैराग्य, मुक्ति-कामना, त्यागशीलता, सर्ववशीकरणक्षमता, अष्टांग योग का अभ्यास, सभी प्राणियों के प्रति दया, भोगेच्छा का त्याग, सर्वज्ञता—ये सब मन्त्रसिद्धि के लक्षण हैं।

कीर्ति और वाहन-भूषणादि का लाभ, दीर्घ जीवन, राजप्रियता, राजपरिवारादि सर्वजनवात्सल्य, लोकवशीकरण-शक्ति, प्रभूत ऐश्वर्य, धन-सम्पत्ति-पुत्र-दारादि सम्पत्—ये

सब अधम सिद्धि के लक्षण हैं। मन्त्रसिद्धि की प्रथम अवस्था में ये सभी लक्षण प्रकट होते हैं।

जो वास्तव में प्रकृत मन्त्रसिद्धि प्राप्त करते हैं, वे साक्षात् शिवतुल्य होते हैं। इसमें सन्देह नहीं है।

मन्त्राणां दोषा:

मुण्डमालातन्त्रे शङ्कर उवाच—

भुवनेशी महाविद्या देवराजेन वै पुरा ।
आराधिता महाविद्या वीर्यहीनाभवत्तदा ।।
एकाक्षरी वीर्यहीना वाग्भवेनोज्ज्वलीकृता ।
कामराजाख्यविद्या या विद्या सा पुष्पधन्वना ।
शरेण पीडिता पूर्वं भुवनेश्याः प्रतिष्ठिता ।।
कुमारी या च विद्येयं त्वया शप्ता पतिव्रते ।
केवलं शिवरूपेण शक्तिरूपेण केवलम् ।
मया प्रतिष्ठिता विद्या तारा चन्द्रस्वरूपिणी ।।

भैरव्यादिविद्यामधिकृत्य—

सुप्ता दग्धा कीलिता च सैव संहाररूपिणी ।
मदोन्मत्ता मूर्च्छिता च हीनवीर्या च स्तम्भिता ।
छिन्ना रुद्धा च वृद्धा च निर्बीजा शक्तिहीनका ।।

मन्त्रों के दोष—मुण्डमालातन्त्र में लिखा है कि भुवनेश्वरी का एकाक्षर मन्त्र 'ह्रीं' इन्द्र द्वारा अभिशप्त है और वीर्यहीन है; किन्तु उसे वाग्बीज 'ऐं' से पुटित कर आराधना करने से यह दोष दूर हो जाता है।

भुवनेश्वरी का कामराज नामक मन्त्र कामदेव से अभिशप्त है। कामबीज 'क्लीं' से पुटित करने से वह शुद्ध हो जाता है।

बालामन्त्र 'ऐं क्लीं सौ:' देवी द्वारा अभिशप्त है। उसके आदि में शिव अर्थात् 'ह' और शक्ति अर्थात् 'स:' का योग करने से शापोद्धार होता है। ताराबीज से चन्द्र अर्थात् 'स' का योग करने से वह शुद्ध होता है।

भैरवी आदि विद्यायें सुप्ता, दग्धा, कीलिता, संहाररूपिणी, मदोन्मत्ता, मूर्च्छिता, हीनवीर्या, स्तम्भिता, छिन्ना, रुद्धा, वृद्धा, निर्बीजा और शक्तिहीना हैं; अत: त्याज्य हैं।

तथा विश्वसारे—

छिन्नो रुद्धः शक्तिहीनः पराङ्मुख उदीरितः ।

वधिरो नेत्रहीनश्च कीलितः स्तम्भितस्तथा ॥
दग्धः स्रस्तश्च भीतश्च मलिनश्च तिरस्कृतः ।
भेदितश्च सुषुप्तश्च मदोन्मत्तश्च मूर्च्छितः ॥
हृतवीर्यश्च हीनश्च प्रध्वस्तो बालकः पुनः ।
कुमारस्तु युवा प्रौढो वृद्धो निस्त्रिंशकस्तथा ॥
निर्बीजः सिद्धिहीनश्च मन्दः कूटस्तथा पुनः ।
निरंशकः सत्त्वहीनः केकरो जीवहीनकः ॥
धूमितालिङ्गितौ स्यातां मोहितश्च क्षुधार्त्तकः ।
अतिदृप्तोऽङ्गहीनः स्यादतिक्रुद्धः समीरितः ॥
अतिक्रूरश्च सव्रीडः शान्तमानस एव च ।
स्थानभ्रष्टश्च विकलो निःस्नेहः परिकीर्त्तितः ।
अतिवृद्धः पीडितश्च वक्ष्याम्येषाञ्च लक्षणम् ॥
मनोर्यस्यादिमध्यान्तेष्वानिलं बीजमुच्यते ।
संयुक्तं वा वियुक्तं वा स्वराक्रान्तं त्रिधा पुनः ।
चतुर्द्धा पञ्चधा वापि स मन्त्रश्छिन्नसंज्ञकः ॥
आदिमध्यावसाने तु भूबीजद्वयलाञ्छितः ।
रुद्धमन्त्रः स विज्ञेयो भुक्तिमुक्तिविवर्जितः ॥
मायात्रितत्त्वश्रीबीजरावहीनश्च यो मनुः ।
शक्तिहीनः स कथितो यस्य मध्ये न वर्त्तते ॥
कामबीजं मुखे माया शिरस्यङ्कुशमेव च ।
असौ पराङ्मुखः प्रोक्तो हकारो विन्दुसंयुतः ॥
आद्यन्तमध्येष्विन्दुर्वा स भवेद्बधिरः स्मृतः ।
पञ्चवर्णो मनुर्यः स्याद्रेफार्केन्दुविवर्जितः ।
नेत्रहीनः स विज्ञेयो दुःखशोकामयप्रदः ॥
आदिमध्यावसानेषु हंसः प्रासादवाग्भवौ ।
हकारो विन्दुमाञ्जीवो रावश्चापि चतुष्फलः ।
माया नमामि च पदं नास्ति यस्मिन् स कीलितः ॥

विश्वसारतन्त्र के मत से मन्त्र के दोष निम्न प्रकार के हैं—छिन्न, रुद्ध, शक्तिहीन, पराङ्मुख, बधिर, नेत्रहीन, कीलित, स्तभित, दग्ध, त्रस्त, भीत, मलिन, तिरस्कृत, भेदित, सुषुप्त, मदोन्मत्त, मूर्च्छित, हतवीर्य, भीम, प्रध्वस्त, बालक, कुमार, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, निस्त्रिशक, निर्बीज, सिद्धिहीन, मन्द, कूट, निरंशक, सत्त्वहीन, केकर, जीवहीन,

धूमित, आलिंगित, मोहित, क्षुधार्त, अतिदृप्त, अंगहीन, अतिक्रुद्ध, अतिक्रूर, सव्रीड़, शान्तमानस, स्थानभ्रष्ट, विकल, अतिवृद्ध और पीड़ित। इन सबके लक्षण निम्नवत् हैं—

जिस मन्त्र का आदि, मध्य और अन्त वायुबीज 'यं' के साथ युक्त या वियुक्त हो अथवा त्रिधा, चतुर्धा, पञ्चधा दीर्घ स्वरविशिष्ट हो तो वह मन्त्र छिन्न होता है।

जिस मन्त्र के आदि, मध्य अथवा अन्त में दो पृथ्वीबीज 'लं' हों, उन्हें रुद्ध कहते हैं। उनसे भुक्ति-मुक्ति का लाभ नहीं होता।

जिस मन्त्र के मध्य में मायाबीज 'ह्रीं' त्रितत्त्व अथवा राव 'फ्रें' न हो, वह मन्त्र शक्तिहीन होता है।

जिस मन्त्र के पहले कामबीज क्लीं, मायाबीज ह्रीं और अंकुशबीज क्रों हो, वह मन्त्र पराङ्मुख होता है।

जिस मन्त्र के आदि, मध्य और अन्त में 'हं' या 'सं' बीज दृढ़ हो, वह मन्त्र बधिर होता है।

जो मन्त्र पञ्चाक्षर हो और 'र' 'ऐ' 'स' से रहित हो, वह नेत्रहीन होता है। ऐसा मन्त्र दुःख, शोक और रोगदायक होता है।

जिस मन्त्र के आदि, मध्य और अन्त में हंसः, हौं, ऐं, हं स फ्रें ह्रीं और नमामि न हो, वह मन्त्र कीलित होता है।

एकं मध्ये द्वयं मूर्ध्नि यस्मिन्नस्त्रपुरन्दरौ ।
न विद्येते स मन्त्रस्तु स्तम्भितः सिद्धिवर्जितः ॥
वह्निवायुसमायुक्तो यस्य मन्त्रस्य मूर्धनि ।
सप्तधा दृश्यते तत्तु दग्धमन्त्रं प्रचक्षते ॥
अस्त्रं द्वाभ्यां त्रिभिः षड्भिरष्टभिर्दृश्यतोऽक्षरैः ।
त्रस्तः स कथितो मन्त्रः सर्वसिद्धिविवर्जितः ॥
यस्य मुखे नास्ति माया प्रणवो वा विधानतः।
शिवो वा शक्तिरथवा भीताख्यः स प्रकीर्त्तितः ॥
आदौ मध्ये तथा चान्ते यस्य मार्णचतुष्टयम् ।
स एव मलिनो मन्त्रः सर्वविघ्नसमन्वितः ॥

जिस मन्त्र के मध्य और अन्त में 'फट्' और 'लं' में से कोई बीज न हो, वह स्तम्भित होता है। इससे सिद्धि नहीं मिलती।

जिस सप्ताक्षर मन्त्र के अन्त में अग्निबीज 'रं' और वायुबीज 'यं' संयुक्त हो, वह दग्ध होता है।

जो मन्त्र द्व्यक्षर, त्र्यक्षर, षडक्षर या अष्टाक्षर हैं और अन्त में फट् से युक्त हैं, वे त्रस्त हैं। इनसे सिद्धि प्राप्त नहीं होती।

जिस मन्त्र के पहले माया ह्रीं, प्रणव ॐ या शिव 'ह' या शक्ति 'स' न हो, वह भीत होता है।

जिस मन्त्र के आदि, मध्य और अन्त में चार 'म'कार हों, वह मलिन होता है। ऐसे मन्त्र की साधना में बहुत विघ्न होते हैं।

यस्य मध्ये दकारो वा कवचं मूर्धनि द्विधा ।
अस्त्रं तिष्ठति मन्त्रः स तिरस्कृत उदाहृतः ॥
द्योद्वयं हृदये शीर्षे वषट् वौषट् च मध्यतः ।
स एव भेदितो मन्त्रः सर्वशास्त्रविवर्जितः ॥
त्रिवर्णो हंसहीनो यः स सुषुप्त उदाहृतः ।
मन्त्रो वाप्यथवा विद्या सप्ताधिकदशाक्षरः ।
फट्कारपञ्चकादिर्यो मदोन्मत्त उदाहृतः ॥
तद्वदस्त्रं स्थितं मध्ये यस्य मन्त्रः स मूर्च्छितः ।
विरामेऽङ्गस्य यो मन्त्रो हतवीर्यः स उच्यते ॥
आदौ मध्ये तथा चान्ते चतुरस्त्रयुतो मनुः ।
ज्ञातव्यो भीम इत्येव यः स्यादष्टादशाक्षरः ॥
एकोनविंशत्यर्णो वा यो मन्त्रस्तारसंयुतः ।
हृल्लेखाङ्कुशबीजाढ्यः प्रध्वस्तस्तं प्रचक्षते ॥

जिस मन्त्र के मध्य में 'द'कार, मस्तक पर दो कवच अर्थात् 'हूं' और अस्त्र अर्थात् 'फट्' हो, वह तिरस्कृत होता है।

जिस मन्त्र के हृदय में दो दकार, शीर्ष में वषट्, मध्य में वौषट् हो, वह भेदित होता है। ऐसा मन्त्र सर्वथा परित्याज्य है।

हंस बीज से रहित त्र्यक्षर मन्त्र सुषुप्त हैं। मन्त्र पुरुष देव से सम्बन्धित, विद्या स्त्री दैवत देवी से सम्बन्धित यदि सप्तदशाक्षर हो और आदि में फट्कार पञ्चक हो तो वह मदोन्मत्त होता है। इस प्रकार के मन्त्र के मध्य यदि अस्त्र (फट्) स्थित हो तो वह मूर्च्छित होता है।

जिस सप्तदशाक्षर मन्त्र के अन्त में पाँच फट् हो, वह हतवीर्य होता है। जिस मन्त्र के आदि, मध्य, अन्त में फट्चतुष्टय हो, वह अष्टादशाक्षर होने पर भीम कहा जाता है। जो उन्नीस अक्षर का मन्त्र ॐ ह्रीं क्रीं से युक्त हो, वह प्रध्वस्त होता है।

सप्तवर्णः स्मृतो बालः कुमारोऽष्टाक्षरः स्मृतः ।
षोडशार्णो युवा प्रौढश्चत्वारिंशल्लिपिर्मनुः ॥
त्रिंशदर्णश्चतुःषष्टिवर्णो मन्त्रः शताक्षरः ।
चतुःशताक्षरश्चापि वृद्धः स परिकीर्त्तितः ॥
नवाक्षरो ध्रुवयुतो मनुर्निस्त्रिंश ईरितः ।
यस्यावसाने हृदयं शिरोमन्त्रो च मध्यतः ॥
शिखा वर्म च न स्यातां वौषट् फट्कार एव वा ।
शिवशक्त्यर्णहीनो वा स निर्बीज उदाहृतः ॥
एषु स्थानेषु फट्कारः प्रौढो यस्मिन् प्रदृश्यते ।
स मन्त्रः सिद्धिहीनः स्यान्मन्दः पंक्त्यक्षरो मनुः ॥
कूट एकाक्षरो मन्त्रः स एवोक्तो निरंशकः ।
द्विवर्णः सत्त्वहीनः स्याच्चतुर्वर्णस्तु केकरः ॥
षडक्षरो जीवहीनः सार्द्धसप्ताक्षरो मनुः ।
सार्द्धद्वादशवर्णोऽपि धूमितः स तु निन्दितः ॥
सार्द्धबीजद्वयं तद्वदेकविंशतिवर्णकः ।
विंशत्यर्णस्त्रिंशदर्णो यः स्यादालिङ्गितः स्मृतः ॥
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो मोहितः परिकीर्त्तितः ।
द्वात्रिंशद्वर्णो मन्त्रो यः सप्तविंशतिवर्णकः ।
क्षुधार्त्तः स तु विज्ञेयो चतुर्विंशतिवर्णकः ॥
एकादशाक्षरो वापि पञ्चविंशतिवर्णकः ।
त्रयोविंशतिवर्णो वा मन्त्रो दृप्त उदाहृतः ॥
षड्विंशत्यक्षरो मन्त्रः षट्त्रिंशद्वर्णकस्तथा ।
त्रिंशदेकोनवर्णो वा त्वङ्गहीनः स एव हि ॥

सप्ताक्षर मन्त्र को बाल कहते हैं। अष्टाक्षर कुमार है। षोडशाक्षर युवा और चौबीस अक्षर का मन्त्र प्रौढ़ कहलाता है।

जो मन्त्र तीस, चौंसठ, सौ या चार सौ अक्षर के हैं, वे वृद्ध कहलाते हैं।

जो मन्त्र ॐ युक्त नवाक्षर है, वह निस्त्रिंश होता है।

जिस मन्त्र के अन्त में नमः, मध्य में दो स्वाहा हो और जिसमें वषट्, हुं, वौषट् न हो तथा 'फट्' न हो, हकार-सकारहीन हो, वह निर्बीज होता है।

जिस मन्त्र के मध्य में छः 'फट्' है, वह सिद्धिहीन कहलाता है।

जिस मन्त्र में दश अक्षर हों, वह मन्द होता है।

एकाक्षर मन्त्र 'कूट' एवं निरंशक होते हैं तथा द्व्यक्षर मन्त्र सत्त्वहीन और चतुरक्षर केकर होते हैं।

षडक्षर मन्त्र जीवहीन है। साढ़े सात या साढ़े बारह अक्षर वाले मन्त्र धूमित हैं। शास्त्र में ये निन्दित कहे गये हैं।

ढाई बीजों से युक्त इक्कीस, बीस या तीस अक्षर वाले मन्त्र आलिंगित हैं। बाईस अक्षर वाला मन्त्र मोहित है। बत्तीस, सताईस या चौबीस अक्षर वाले मन्त्र क्षुधार्त हैं।

चौबीस, ग्यारह, पच्चीस या तेईस अक्षर वाले मन्त्र दृप्त हैं। छब्बीस, छत्तीस और उन्तीस अक्षरों के मन्त्र अंगहीन हैं।

अष्टाविंशदक्षरो वा एकत्रिंशदथापि वा ।
अतिक्रुद्धः स विज्ञेयो निन्दितः सर्वकर्मसु ॥
त्रिंशदक्षरको मन्त्रस्त्रयस्त्रिंशदथापि वा ।
अतिक्रूरः स विज्ञेयो निन्दितः सर्वकर्मसु ॥
चत्वारिंशतमारभ्य त्रिषष्टिर्यावता भवेत् ।
तावत्संख्या निगदिता मन्त्राः सव्रीडसंज्ञकाः ॥
पञ्चषष्ट्यक्षरा ये स्युर्मन्त्रास्ते शान्तमानसाः ।
एकोनशतपर्यन्तं पञ्चषष्ट्यक्षरादितः ।
ते सर्वे कथिता मन्त्राः स्थानभ्रष्टा न शोभनाः ॥
त्रयोदशाक्षरा ये स्युर्मन्त्राः पञ्चदशाक्षराः ।
ते सर्वे विकला ज्ञेयाः शतं सार्द्धं शतन्तथा ॥
शतद्वयं द्विनवतिरेकहीना तथापि वा ।
यावच्छतत्रयं संख्या निःस्नेहास्ते प्रकीर्त्तिताः ॥
चतुःशतमथारभ्य यावद्वर्णसहस्रकम् ।
अतिवृद्धः स मन्त्रस्तु सर्वशास्त्रविवर्जितः ॥
सहस्रार्णाधिका मन्त्रा दण्डकाः पीडिताह्वयाः ।
द्विसहस्राक्षरा मन्त्राः खण्डशः सप्तधा कृताः ॥
ज्ञातव्याः स्तोत्ररूपास्ते मन्त्रा एते यथास्थिताः ।
तथा विद्याश्च बोद्धव्या मन्त्रिभिः सर्वकर्मसु ॥
दोषानिमानविज्ञाय यो मन्त्रं भजते बुधः ।
सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि ॥

अट्ठाईस और इकतीस अक्षरों के मन्त्र अतिक्रुद्ध हैं। ये सभी कार्यों में निन्दित हैं।

तीस और तैंतीस अक्षर के मन्त्र अतिक्रूर हैं। ये भी सभी कार्यों में निन्दित हैं। चालीस से तिरसठ अक्षरों के मन्त्र सव्रीड़ हैं। पैंसठ वर्ण के मन्त्र शान्तमानस हैं। पैंसठ से निन्यानबे अक्षर के मन्त्र स्थानभ्रष्ट होने से अशुभ हैं।

तेरह और पन्द्रह अक्षर वाले मन्त्र विकल हैं। इक्यानबे, सौ, डेढ़ सौ, दो सौ से तीन सौ अक्षर के मन्त्र नि:स्नेह हैं।

चार सौ से हजार वर्ण के मन्त्र अतिवृद्ध हैं। ये मन्त्र त्याज्य हैं। जिन मन्त्रों में हजार से अधिक वर्ण हों, वह पीड़ित है। दो हजार से अधिक वर्ण के मन्त्र सात प्रकार के बताये गये हैं; किन्तु समष्टि रूप से उन्हें स्तोत्र समझना चाहिये। दो हजार वर्णात्मक विद्यामन्त्रों को भी ऐसा ही समझना चाहिये।

इन सभी दोषों पर विचार न करके मन्त्र का जप करने से करोड़ों युगों में भी सिद्धि नहीं मिलती।

मन्त्राणां दोषशान्तिः

तत्रैव—

छिन्नादिदुष्टा ये मन्त्रास्तन्त्रे तन्त्रे निरूपिताः ।
ते सर्वे सिद्धिमायान्ति मातृकार्णप्रभावतः ॥
मातृकार्णैः पुटिकृत्य मन्त्रं विद्यां विशेषतः ।
शतमष्टोत्तरं पूर्वं प्रजपेत्फलसिद्धये ।
तदा मन्त्रो महाविद्या यथोक्तफलदा भवेत् ॥
मातृकापुटितं कृत्वा मध्ये वर्णं निधाय च ।
मन्त्रवर्णांस्ततः कुर्यात् शोधनः तन्त्रसम्मतम् ॥
बद्ध्वा च योनिमुद्रां तां सङ्कोच्याधारपङ्कजम् ।
तदुत्पन्नान् मन्त्रवर्णान् कुर्वतश्च गतागतान् ॥
ब्रह्मरन्ध्रावधि ध्यात्वा वायुमापूर्य कुम्भयेत् ।
सहस्रं प्रजपेन्मन्त्री मन्त्रदोषप्रशान्तये ॥

तथा—

एषु दोषेषु पत्रेषु मायां कामममथापि वा ।
क्षिप्त्वा चादौ श्रियञ्चैव तद्दूषणविमुक्तये ॥

तथा—

तारसम्पुटितो वापि दुष्टमन्त्रोऽपि सिध्यति ।
यस्य यत्र भवेद्भक्तः सोऽपि मन्त्रोऽस्य सिध्यति ॥

तथा—

प्रणवो मातृका देवी हृल्लेखेत्यमृतत्रयम् ।
अमृतत्रयसंयोगाद् दुष्टमन्त्रोऽपि सिध्यति ।।

मन्त्रदोष-शान्ति-विधान—सभी तन्त्रों में मन्त्रों के छिन्नादि दोषों का वर्णन है। मातृका वर्ण के प्रभाव से इन दोषों की शान्ति होती है। मन्त्र और विद्या को मातृका वर्ण से पुटित कर जप करे।

पहले अनुलोम में मन्त्र के आदि और अन्त में एक-एक मातृका जोड़कर एक सौ आठ जप करे। तब प्रतिलोम में इसी प्रकार जप करने से मन्त्र या विद्या का शास्त्रोक्त फल प्राप्त होता है।

मन्त्र को मातृकापुटित अर्थात् मातृका वर्ण के मध्य में मन्त्र का एक-एक वर्ण सन्निविष्ट करके जप करने से मन्त्र की शुद्धि होती है।

तब योनिमुद्रा बाँधकर आधारपद्म का संकोच कर यह ध्यान करे कि मन्त्रवर्णसमूह मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक जाता और आता है।

ऐसा ध्यान करते हुए वायु से पूरक करके कुम्भक में एक हजार जप करने से मन्त्रदोष की शान्ति होती है। मन्त्र के आदि में ह्रीं क्लीं श्रीं का योग करके जप करने से दोष की शान्ति होती है।

ॐ से मन्त्र को पुटित कर जप से दुष्ट मन्त्र सिद्ध होता है। जिस व्यक्ति को जिस मन्त्र में भक्ति का उदय हो, उसे वही मन्त्र सिद्ध होता है।

ॐ, मातृकावर्ण और ह्रीं—ये तीनों अमृत के समान हैं। इन तीनों अमृतों से युक्त अर्थात् इनमें से एक-एक को मन्त्र के पहले लगाने से सभी प्रकार के मन्त्रदोष दूर होते हैं।

होमार्थ कुण्डनियमः

तत्र कुण्डपदव्युत्पत्तिमाह सारावलीधृतविश्वसारे—

कौ पृथिव्यां विलं देवि दृश्यते सुमनोहरम् ।
तस्मात्कुण्डं समाख्यातं साधकानां हिताय वै ।।

विलं गर्त्तम्। सुमनोहरमेखलायोन्यादिविशिष्टमित्यर्थः। तत्र तावद् गृहनिर्णयः। तत्रापि प्रथमं भूमिनिर्णयः। गौतमीये—

भूमेः परिग्रहं कुर्याद्यावदायतनं भवेत् ।
शुक्लमृत्स्ना तु या भूमिर्ब्राह्मी सा परिकीर्त्तिता ।
क्षत्रियां रक्तमद्भूमिर्हरिद्वैश्या प्रकीर्त्तिता ।।
कृष्णा भूमिर्भवेच्छूद्रा चतुर्द्धा भूः प्रकीर्त्तिता ।

ब्राह्मी सर्वार्थसिद्धिः स्यात्क्षत्रिया राज्यदा मता ।
धन्यधान्यकरी वैश्या शूद्रा तु निन्दिता भवेत् ॥

गणेशविमर्शिण्याम्—

आदौ भूमिं परीक्षेत वास्तुशास्त्रविशारदः ।
शल्यादिशोधनं कुर्यात्पौरुषं वा खनेत्ततः ॥
वास्तोः संयोज्य पूर्वस्यामैशान्यामुत्तरेऽपि वा ।
दिशि सङ्कल्पयेन्मन्त्री मण्डपञ्च विभागतः ॥
नवहस्तप्रमाणं वा सप्तहस्तमथापि वा ।
पञ्चहस्तप्रमाणं वा चतुरस्रं समन्ततः ॥

पञ्चहस्तन्तु एककुण्डपक्षे। तदुक्तं तत्रैव—

एककुण्डमतेनान्यत्पञ्चहस्तगृहं भवेत् ।

तदेककुण्डं गृहस्योत्तरभागे प्रशस्तम्। यथा—

अथोत्तरे तथा कुण्डमेकं वेदास्रमुद्धरेत् ।
लक्षहोमे तु तत्कुर्यात् गृहमध्ये न दूषणम् ॥

तथा वसिष्ठसंहितायाम्—

वास्तोरीशानभागे तु मण्डलं रचयेत्सुधीः ।
षड्द्वादशाष्टभिर्हस्तैः षोडशैर्वा समन्ततः ।
चतुर्द्वारसमायुक्तं तोरणाद्यैरलंकृतम् ॥

निबन्धे—

तत्त्रिभागमिते क्षेत्रेऽरत्निमात्रसमुन्नतम् ।
चतुरस्रां ततो वेदीं मण्डलाय प्रकल्पयेत् ॥

होमार्थ कुण्डनियम—तारावली में उद्धृत विश्वसारतन्त्र में 'कुण्ड' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है—'कु' माने पृथ्वी में जो गर्त मनोहर मेखला-योन्यादि से युक्त सुन्दर दिखाई दे, उसी को कुण्ड कहते हैं। साधना में साधक के लिये यह मंगलदायक है।

गृहनिर्णय के सम्बन्ध में गौतमीय तन्त्र में लिखा है कि जितना विस्तृत गृह बनाना हो, उसी परिमाण में परीक्षा करके भूमि का ग्रहण करना चाहिये। जिस भूमि की मिट्टी शुक्ल वर्ण की हो, वह ब्राह्मी कही जाती है। रक्त वर्ण की भूमि को क्षत्रिया, हरे वर्ण की भूमि को वैश्या और कृष्णवर्णा भूमि शूद्रा कही गयी है।

ये चार प्रकार की भूमियाँ कही गई हैं। ब्राह्मी भूमि सर्वार्थसिद्धिदायिनी, क्षत्रिया

राज्यदायिनी, वैश्या धन-धान्यदायिनी और शूद्रा निन्दिता है।

'गणेशविमर्शिनी' तन्त्र में लिखा है कि पहले वास्तुशास्त्रविशारद भूमि की परीक्षा करे। भूमि के शल्यादि दोषों का शोधन करे। तब उस परीक्षित भूमि को पुरुष बराबर खोदे।

वास्तु के पूर्व भाग में, ईशान कोण में या उत्तर दिशा में कुण्डार्थ मण्डप बनाए। कुण्ड के लिये मण्डप नौ, सात या पाँच हाथ के वराबर चतुरस्र बनाए। एक कुण्ड के लिये पाँच हाथ का मण्डप बनाए और मण्डप की उत्तरी दिशा में कुण्ड का निर्माण करे। मतान्तर है कि एक कुण्ड के लिये उत्तर दिशा में एक चतुष्कोण बनाकर कुण्ड बनाए। एक लाख हवन करना हो तो मण्डप के मध्य में कुण्ड बनाने में कोई दोष नहीं है।

वशिष्ठसंहिता में कहा गया है कि वास्तु के ईशान भाग में छः, आठ, बारह या सोलह हाथ लम्बा-चौड़ा चतुर्द्वारयुक्त तोरणादि-शोभित मण्डप बनाए।

निबन्ध के मत से मण्डप को पूर्व से पश्चिम तीन भाग में और उत्तर से दक्षिण तीन भाग में अर्थात् नव भागों में विभक्त करके मध्य स्थान में बित्ते भर ऊँची चतुरस्र वेदी बनाए।

अथ प्रसङ्गान्नवकुण्डानि तत्र शारदायाम्—

प्राक्प्रोक्ते मण्डपे विद्वान् वेदिकाया बहिस्त्रिधा ।
क्षेत्रं विभज्य मध्येंऽशे पूर्वादि परिकल्पयेत् ॥
अष्टाशास्वष्टकुण्डानि रम्याकाराण्यनुक्रमात् ॥

तथा च वसिष्ठसंहितायाम् अष्टकुण्डप्रकारमाह—

चतुरस्रं योनिमर्द्धचन्द्रं त्र्यस्रं सुवर्त्तुलम् ।
षडस्रं पङ्कजाकारमष्टास्रं तानि नामतः ॥
आचार्यकुण्डमध्ये स्याद् गौरीपतिमहेन्द्रयोः ।
हस्तमात्रमितां भूमिं पूर्ववत् परिसूत्रयेत् ।
समन्तात्कुण्डमेतत्तु चतुरस्रं शुभावहम् ॥
चतुरस्रीकृतं क्षेत्रं पञ्चधा विभजेत्सुधीः ।
न्यसेत्पुरस्तादेकांशं कोणार्द्धार्द्धप्रमाणतः ॥
भ्रामयेत्तेन मानेन तथान्यदपि मन्त्रवित् ।
सूत्रयुग्मं ततो दद्यात्कुण्डं योनिनिभं भवेत् ॥
चतुरस्रीकृतं क्षेत्रं दशधा विभजेत्सुधीः ।
एकमेकं त्यजेदंशं अथ ऊर्ध्वञ्च तन्त्रवित् ॥
ज्यासूत्रं पातयेदग्रे तन्मानाद् भ्रामयेत्ततः ।

अर्द्धचन्द्रनिभं कुण्डं रमणीयमिदं भवेत् ।।

अग्रे सम्मुखे प्रक्षिप्तशरधनुर्वदिति भट्टव्याख्यानात्। तथा च—

ज्यासूत्रं पातयेदग्रे शरावार्द्धतया यतः ।
चतुर्द्धा भेदिते क्षेत्रे न्यसेदुभयपार्श्वयोः ।।
एकैकमंशं तन्मानादग्रतो लाञ्छयेत्ततः ।
सूत्रत्रयं बुधः कुर्यात् त्र्यस्त्रं कुण्डमुदाहृतम् ।।
अष्टादशांशो क्षेत्रेंऽशं न्यसेदेकं बहिर्बुधः ।
भ्रामयेत्तेन मानेन वृत्तं कुण्डमुदाहृतम् ।।
अष्टधा विभजेत्क्षेत्रं मध्ये सूत्रस्य पार्श्वयोः ।
भागं न्यसेदेकमेकं मानेनानेन मध्यतः ।।
कुर्यात्पार्श्वद्वये मत्स्यचतुष्कं मन्त्रवित्तमः ।
सूत्रषट्कं ततो दद्यात्षडस्त्रं कुण्डमीरितम् ।।

नवकुण्डप्रमाण—शारदातिलक में वर्णन है कि पूर्वोक्त प्रकार का मण्डप बनाकर उसके मध्य में स्थित वेदी के बहिर्भाग की भूमि को तीन बराबर भागों में विभक्त करके उसके मध्य में पूर्वादि दिशाओं की कल्पना करके उसकी आठ दिशाओं में कुण्ड बनाए।

वशिष्ठसंहिता के अनुसार कुण्ड आठ प्रकार के होते हैं—चतुरस्त्र कुण्ड, योनि कुण्ड, अर्द्धचन्द्रकुण्ड, त्र्यस्त्र कुण्ड, वर्तुल कुण्ड, षडस्त्र कुण्ड, पद्मकुण्ड एवं अष्टास्त्र कुण्ड। ईशान कोण और पूर्व के मध्य में आचार्य कुण्ड बनाए।

चार दिशाओं में एक हाथ की भूमि में सूत्रपात कर समचतुष्कोण कुण्ड खोदे। इसी का नाम **चतुरस्त्र** है। यह साधक के लिये शुभदायक है। इसकी लम्बाई, चौड़ाई एवं गहराई बराबर होती है।

चतुरस्त्र कुण्ड

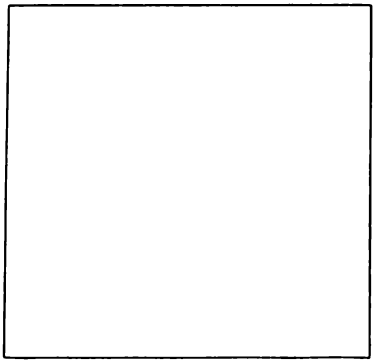

योनिकुण्ड—चतुरस्र क्षेत्र को पाँच भागों में विभक्त कर उसकी पूर्वदिशा के कोणभाग में अर्द्धार्द्ध प्रमाण में स्थानवृद्धि कर दो-दो सूत्रपात करते हुए सूत्र को घुमाए। फिर नीचे भी त्रिकोणाकार दो सूत्रपात कर कुण्ड बनाये। इसका नाम योनिकुण्ड है।

योनिकुण्ड

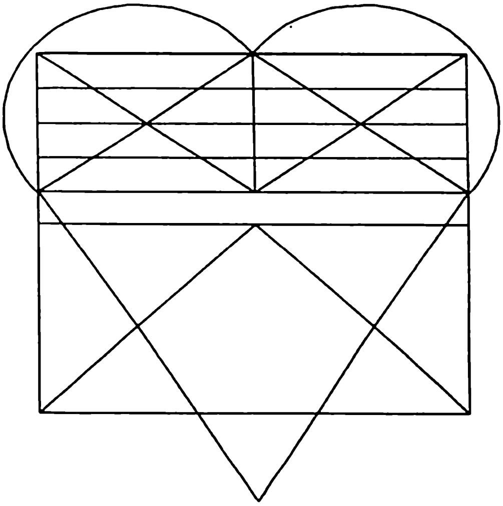

अर्द्धचन्द्र कुण्ड—समचतुरस्र भूमि को सम दशांश विभक्त कर उसके ऊर्ध्व में एकांश और अधोभाग में एकांश का त्याग करे। अवशिष्ट भागों पर ज्यासूत्र गिराकर उसे घुमाये। इसका नाम अर्द्धचन्द्र कुण्ड है। यह अति सुन्दर है। राघव भट्ट में बताया गया है कि इस कुण्ड को निक्षिप्त धनुर्वाण के समान बनाए।

अर्द्धचन्द्र कुण्ड

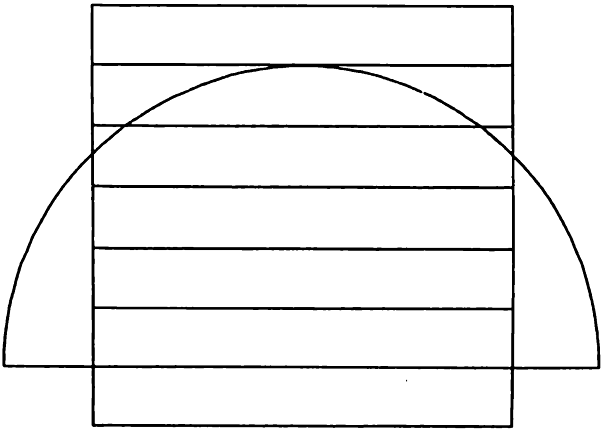

त्र्यस्त्र कुण्ड—मनोनीत स्थान को चार भागों में विभक्त कर उत्तर पार्श्व में एक-एक अंश में दो सूत्र और नीचे एक सूत्र गिराकर एक त्रिकोण बनाए। इसका नाम त्र्यस्त्र कुण्ड है।

त्र्यस्त्र कुण्ड

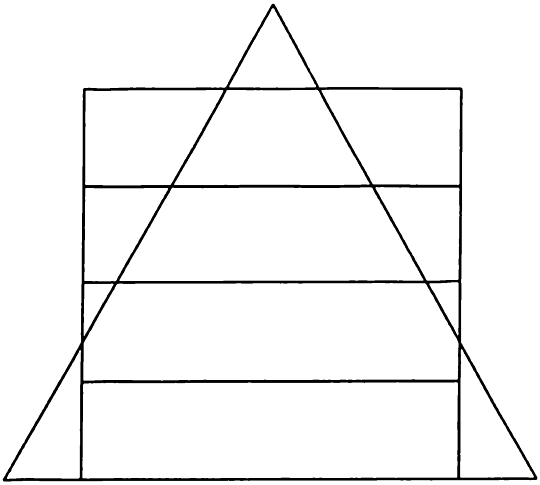

वृत्त कुण्ड—एक चतुरस्त्र क्षेत्र को अट्ठारह अंशों में विभक्त कर उसके बहिर्भाग में एक कोण स्थान में सूत्रपात कर उसी परिमाण में घुमाए। इससे वर्तुलाकार कुण्ड बनेगा। इसका नाम वर्तुल या वृत्त कुण्ड है।

वृत्त कुण्ड

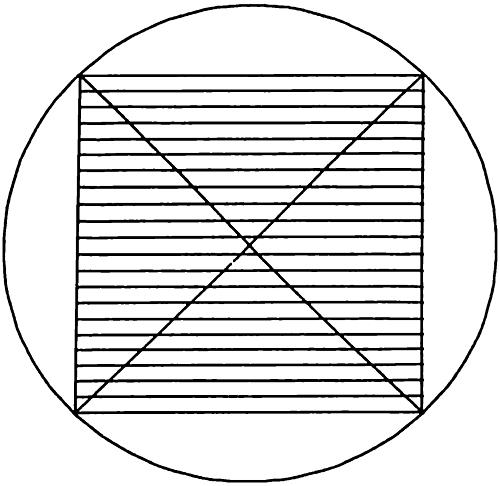

षडस्र कुण्ड—एक चतुरस्र क्षेत्र को सूत्रपात से आठ भागों में विभक्त कर मध्य सूत्र के दोनों ओर और मध्य स्थल से एक-एक अंश चिह्नित कर दोनों पार्श्व में चार मत्स्यरेखाएँ बनाए। फिर पार्श्व में छः सूत्रपात द्वारा षट्कोण कुण्ड बनाए।

षडस्र कुण्ड

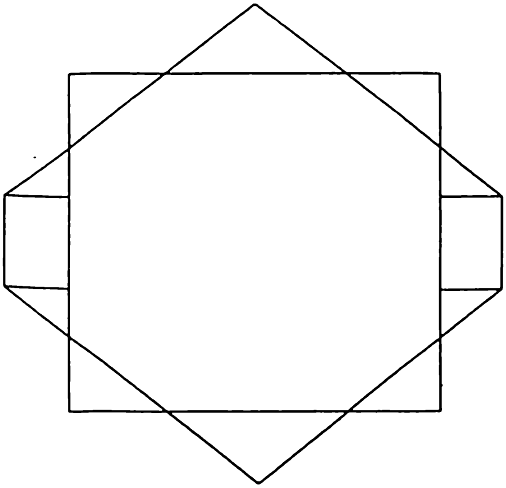

चतुरस्रीकृतं क्षेत्रं विभज्याष्टादशांशतः ।
एकं भागं बहिर्न्यस्य भ्रामयेत्तेन वर्त्तुलम् ॥
वृत्तानि कणिकादीनां बहिस्त्रीणि प्रकल्पयेत् ।
पद्मकुण्डमिति प्रोक्तं विलोचनमनोहरम् ॥

बहिरिति मध्ये, बहिःशब्दो मध्यवाचकः अव्ययानामनेकार्थत्वादिति गुरवः। कर्णिकादीनां वृत्तानि बहिर्बहिः कुर्यादिति भट्टः। अन्यथा मानाधिक्यापत्तेः।

चतुरस्रेऽष्टधा भक्ते कुर्याद् वृत्तचतुष्टयम् ।
कर्णिकाकेशरौ मध्ये तृतीये पत्रकाण्यथ ।
तदग्राणि चतुर्थे स्युर्वृत्तान्येवं प्रकल्पयेत् ॥ इति भट्टः।
पूर्वोक्तं विभजेत्क्षेत्रं चतुर्विंशतिभागतः ।
एकं भागं बहिर्न्यस्य चतुरस्रं प्रकल्पयेत् ॥
अन्तःस्थचतुरस्रस्य कोणार्द्धार्द्धप्रमाणतः ।
बाह्यस्य चतुरस्रस्य कोणाभ्यां परिकल्पयेत् ॥
दिशं प्रति यथान्यायमष्टौ सूत्राणि पातयेत् ।
अष्टास्रं कुण्डमेतद्धि तन्त्रविद्भिरुदीरितम् ॥

यावान् कुण्डस्य विस्तारः खननं तावदेव हि ।
कुण्डानां यादृशं रूपं मेखलानाञ्च तादृशम् ।।
कुण्डानां मेखलास्तिस्रो मुष्टिमात्रेण ताः क्रमात् ।
एवं प्रोक्तानि कुण्डानि कथ्येते स्रुक्स्रुवौ ततः ।।

पद्म कुण्ड—चतुरस्र बनाकर उसे अट्ठारह भागों में विभक्त कर एक भाग बाहर रखकर एक सूत्र घुमाकर वृत्त अंकित करे। कर्णिका के मध्य में तीन वृत्तों की कल्पना करे। इसका नाम पद्मकुण्ड है। यह सुन्दर होता है।

पद्म कुण्ड

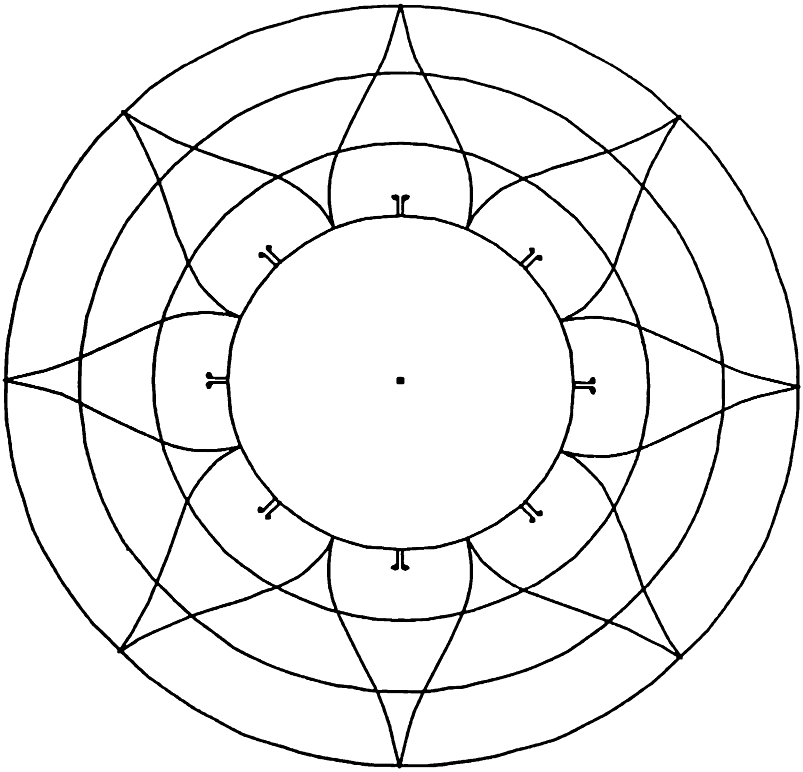

अष्टास्र कुण्ड—चतुरस्र क्षेत्र को चौबीस भागों में विभक्त कर उस चतुरस्र के बाहरी भाग में एकांश प्रमाण स्थान चिह्नित करे। तब चिह्नित स्थान में दूसरा चतुरस्र अंकित करे। अन्त:स्थ चतुरस्र के कोणार्द्ध के अर्द्ध प्रमाण में बहि:स्थ चतुरस्र के कोणद्वय की आठ दिशाओं में आठ रेखाएँ अंकित करने से अष्टास्र कुण्ड होता है।

अष्टास्र कुण्ड

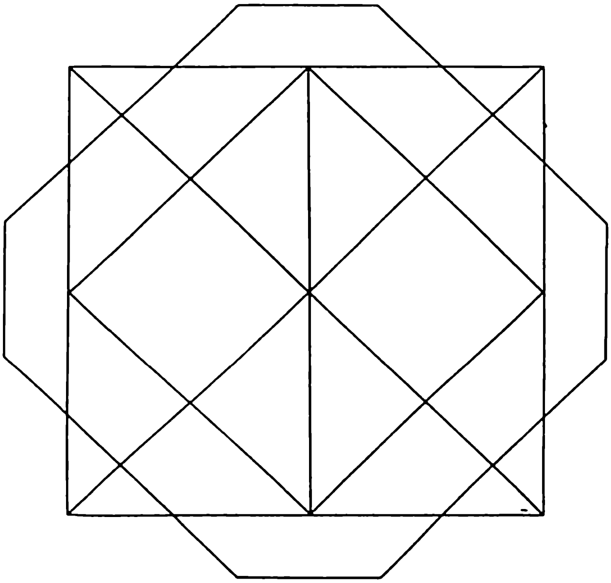

जिस कुण्ड का परिमाण जितने का हो, उसी परिमाण में उस कुण्ड को गहरा खोदे। जिस आकार का कुण्ड हो, उसी आकार की मेखला बनाए। प्रत्येक कुण्ड में तीन मेखलायें होती हैं। इसी प्रकार सभी कुण्डों का अंकन और खनन करे। मेखला की ऊँचाई मुट्ठी भर होती है।

प्रकल्पयेत्स्रुवं यागे वक्ष्यमाणेन वर्त्मना।
श्रीपर्णी-शिंशपा-क्षीर-शाखिष्वेकतमं गुरुः॥
गृहीत्वा विभजेद्धस्तमात्रं षट्त्रिंशता पुनः।

हस्तमात्रं बाहुमात्रम्। तथागस्त्यः—

स्रुचं बाहुप्रमाणेन होमार्थं विदधीत वै।
विंशत्यंशैर्भवेद्दण्डो वेदी तैरष्टभिर्भवेत्॥
एकांशेन मितः कण्ठः सप्तांशेन मितं मुखम्।
वेदीत्र्यंशेन विस्तारः कण्ठस्य परिकीर्त्तितः॥
मुखं कण्ठप्रमाणं स्यान्मुखे मार्गं प्रकल्पयेत्।
कनिष्ठांगुलिमानेन सर्पिषो निर्गमाय च॥
वेदीमध्ये विधातव्या भागेनैकेन कर्णिका।

विदधीत बहिस्तस्या एकांशेनाभितोऽवटम् ।।
तस्य खातं त्रिभिर्भागैर्वृत्तमर्द्धांशतो बहिः ।
अंशेनैकेन परितो दलानि परिकल्पयेत् ।।
मेखला मुखवेद्योः स्यात्परितोऽर्द्धांशमानतः ।
दण्डमूलाग्रयोः कुम्भौ गुणवेदांगुलैः क्रमात् ।।
गण्डीयुग्मं समांशं स्याद्दण्डस्यानाह ईरितः ।
षड्भिरंशैः पृष्ठभागो वेद्याः कूर्माकृतिर्भवेत् ।।
हंसस्य वा हस्तिनो वा पौत्रिणो वा मुखं लिखेत् ।
मुखस्य पृष्ठभागेऽस्याः सम्प्रोक्तं लक्षणं स्रुचः ।।
स्रुचश्चतुर्विंशतिभिर्भागैरारचयेत् स्रुवम् ।
द्वाविंशत्या दण्डमानमंशैरेतस्य कीर्त्तितम् ।।
चतुर्भिरंशैरानाहः कर्षाज्यग्राहि-तच्छिरः ।
अंशद्वयेन विलिखेत्पङ्के मृगपदाकृतिम् ।।
दण्डमूलाग्रयोर्गण्डो भवेत्कङ्कणभूषिता ।
स्रुवस्य विधिराख्यातः सर्वतन्त्रसमन्वितः ।।

गण्डी कुम्भः कङ्कणश्च। गण्डी कङ्कणकुम्भयोरिति भागुरिः। तयोरभावे तु वसिष्ठे—

पलाशपत्रे निश्छिद्रे रुचिरे स्रुक्स्रवौ ततः ।
विदध्यात्त्वश्वत्थपत्रे संक्षिप्ते होमकर्मणि ।।

स्रुक्-स्रुवा—शीशम, श्रीपर्णी और क्षीरी वृक्ष में से किसी एक वृक्ष की लकड़ी से स्रुक् और स्रुवा को कारीगर से बनवाए।

हाथ बराबर लकड़ी लेकर छत्तीस अंगुल में विभक्त कर स्रुक्-स्रुवा को बनवावे। यहाँ हाथ भर से तात्पर्य छत्तीस अंगुल के बराबर से है। यही बाहुप्रमाण है।

अगस्त्यसंहिता में कहा गया है कि हवन के लिए बाहु के बराबर स्रुक् बनवाए। पूर्वोक्त छत्तीस भागों में से बीस भाग में दण्ड, अष्टम भाग में वेदी, एक भाग में कण्ठ और सात भाग में स्रुक् का मुख होता है।

वेदी के तीन भाग के बराबर कण्ठ का विस्तार होता है। कण्ठ-परिमाण में मुख और उसी मुख में मार्ग की कल्पना करे। घी गिराने के लिये कनिष्ठा अंगुली के बराबर मोटा छेद बनाए।

वेदी के मध्य में एक भाग के बराबर कर्णिका बनाए। कर्णिका के बहिर्भाग में चारो ओर एकांश के बराबर गर्त बनाए। गर्त के तीन भाग के बराबर खात बनाकर उसके बाहर

अर्द्धांश बराबर वृत्त बनाए। वृत्त के चारो ओर एकांश के बराबर दल की कल्पना करे। मुख और वेदी के चारो ओर अर्द्धांश बराबर मेखला बनाए। स्रुक् के दण्ड के मूल और अग्र में क्रमश: तीन और चार अंगुल बराबर कुण्ड बनाए। तब समानांश में दो कंकण बनाए। छ: अंश में दण्ड का आनाह होता है।

वेदी का पृष्ठभाग कूर्मपृष्ठ के समान होता है। वेदी के पृष्ठ भाग में हंस, हस्ती या शूकर का मुख अंकित करे।

स्रुक छत्तीस अंगुल का होता है। स्रुवा चौबीस अंगुल का बनाए। इसके चौबीस अंशों के बाईस अंशों में स्रुव का दण्ड और शेष दो अंशों में शिर बनाए।

इस शिरोभाग का खनन इस प्रकार करे कि उसके द्वारा अस्सी रत्ती बराबर दस ग्राम आज्य ग्रहण किया जा सके। जिस प्रकार कीचड़ में हिरण का पग अंकित होता है, उसी आकृति का उसका शिरोभाग बनाये। दण्ड के मूल और अग्रभाग में कंकणभूषित कुम्भ बनाना चाहिए।

वशिष्ठ के मत से उक्त प्रकार के स्रुक्-स्रुवा के अभाव में छिद्रहीन सुन्दर पलाशपत्र या अश्वत्थपत्र द्वारा होमकार्य के लिये स्रुक् और स्रुवा बनवा ले।

कुण्डानां विशेषफलानि

निबन्धे—

सर्वसिद्धिकरं पुंसां चतुरस्रमुदाहृतम् ।
पुत्रप्रदं योनिकुण्डमर्द्धेन्द्वाभं शुभप्रदम् ॥
शत्रुक्षयकरं त्र्यस्रं वर्त्तुलं शान्तिकर्मणि ।
छेदमारणयो: कुण्डं षडस्रं पद्मसन्निभम् ।
दृष्टिदं रोगशमनं कुण्डमष्टास्रमीरितम् ॥

कुण्डविशेष का फल—निबन्ध में कहा गया है कि चतुरस्र कुण्ड से सभी कार्यों की सिद्धि होती है। योनिकुण्ड से पुत्र प्राप्त होता है। अर्द्धचन्द्र कुण्ड से कल्याण होता है। त्रिकोण कुण्ड से शत्रु का विनाश होता है। शान्ति कार्य में वर्तुल कुण्ड प्रशस्त है। षडस्र कुण्ड छेदन कार्य में उत्तम होता है। मारण कार्य में पद्मकुण्ड प्रशस्त है। अष्टास्र कुण्ड वृष्टिदायक और रोगविनाशक है।

काम्यहोमार्थं कुण्डनिर्णय:

तदुक्तं सिद्धसारस्वते—

शान्तौ पुष्टौ तथारोग्ये कुण्डञ्च चतुरस्रकम् ।
आकर्षणे त्रिकोणं स्यादुच्चाटे वर्त्तुलं तथा ।
मारणे च तथा योज्यं वर्त्तुलं मन्त्रिभि: सदा ॥

तन्त्रान्तरे—

उदीच्यां पौष्टिके कुण्डं वारुणे शान्तिकादिषु ।
उच्चाटे चानिले कुण्डं याम्ये च मारणं भवेत् ।।

तथा च—

विप्राणां चतुरस्रं स्याद्राज्ञां वर्त्तुलमिष्यते ।
वैश्यानामर्द्धचन्द्राभं शूद्राणां त्र्यस्रमीरितम् ।।
चतुरस्रन्तु सर्वेषां केचिदिच्छन्ति तान्त्रिकाः ।
चतुरस्रे महेशानि सर्वकर्माणि साधयेत् ।।

तथा—

सर्वाधिकारिकं कुण्डं सर्वदं चतुरस्रकम् ।

काम्य होमार्थ कुण्डनिर्णय—सिद्धसारस्वत में लिखा है कि शान्तिकार्य में, पुष्टि-कर्म में और आरोग्य-साधनकार्य में चतुरस्र कुण्ड विहित है। आकर्षण में त्रिकोण कुण्ड एवं उच्चाटन और मारण कार्य में वर्तुल कुण्ड विहित हैं।

तन्त्रातर में कहा गया है कि पुष्टिकर्म में कुण्ड मण्डप की उत्तर दिशा में, शान्तिकर्म में पश्चिम में, उच्चाटन में वायुकोण में और मारणकार्य में दक्षिण दिशा में बनाए।

मतान्तर है कि ब्राह्मण के लिये चतुरस्र, क्षत्रिय के लिये वर्तुल, वैश्य के लिये अर्द्धचन्द्राकार और शूद्र के लिये त्रिकोण कुण्ड प्रशस्त होता है। यह भी मत है कि सभी वर्णों के लिये चतुरस्र कुण्ड विहित है। इस कुण्ड से सभी कार्य सम्पन्न होते हैं।

गृहादिकरणे हस्तनियम:

गौतमीये—

रथादिदोलिका चैव पोतं शकटमेव च ।
मानांगुलेन कर्त्तव्यं नान्येनापि कदाचन ।।
मुष्ट्यरत्निप्रमाणानि यत्किञ्चित् कथितानि च ।
यजमानस्य कर्त्तव्यं नान्यस्यापि कदाचन ।।

तथा—

मानक्रियायामुक्तायामनुक्ते मानकर्त्तरि ।
मानकृद्यजमानः स्याद्विदुषामेव निर्णयः ।।
चतुर्विंशत्यंगुलाढ्यं हस्तं तन्त्रविदो विदुः ।
कर्त्तुर्दक्षिणहस्तस्य मध्यमांगुलिपर्वणः ।
मध्यस्य दैर्घ्यमानेन मानांगुलमुदाहृतम् ।।

तन्त्रान्तरे—

कर्मकर्त्तुर्निजाङ्गुष्ठतिर्यङ्मानेन मध्यमम् ।
प्रमाणाङ्गुष्ठमेतत्तु सर्वकर्मणि चापरे ॥

यजमानासन्निधाने पुनः—

यवानां तण्डुलैरेकमङ्गुलं चाष्टभिर्भवेत् ।
अदीर्घयोजितैर्हस्तैश्चतुर्विंशतिभिर्भवेत् ॥

वयोऽनुक्रमे पुनः—

अष्टभिस्तैर्भवेज्ज्येष्ठं मध्यमं सप्तभिर्यवैः ।
कन्यसं षड्भिरुद्दिष्टमंगुलं मुनिसत्तमैः ॥
सहस्रे खलु होतव्ये कुर्यात्कुण्डं करात्मकम् ।
द्विहस्तमयुते तच्च लक्षहोमे चतुष्करम् ॥
षट्करे वेदलक्षञ्चाष्टकरे दशलक्षकम् ।
दशहस्तन्तु कोट्यां वै हस्तसंख्या व्यवस्थिता ।
दशहस्तात्परं कुण्डं नास्ति होमे महीतले ॥

गृहादि-निर्माण में हस्तनियम—गौतमीय तन्त्र में कहा गया है कि रथादि वस्तु, दोलिका, पोत-शकट का निर्माण शास्त्रनिर्दिष्ट अंगुल्यादि परिमाण में करे; अन्यथा कभी न करे।

मुष्टि, अरत्नी आदि जो कथित प्रमाण हैं, उन्हें यजमान के हाथ के अनुसार माने; दूसरे के हाथ के अनुसार नहीं। परिमाण क्रिया में कहा हो या न कहा हो, सर्वत्र ही यजमान का परिमाण लेकर कार्य करे। पण्डितों की व्यवस्था ऐसी ही है।

कर्ता के दाँयें हाथ की मध्यमांगुली का मध्य पर्व जितना दीर्घ हो, उतने ही परिमाण का नाम अंगुल है। इसी चौबीस अंगुल के परिमाण को एक हस्त कहते हैं।

तन्त्रान्तर में कहा गया है कि कर्मकर्ता के तिर्यक् भाव से स्थित अंगुष्ठप्रमाण को सब कार्यों में अंगुष्ठपरिमाण कहते हैं।

यजमान के उपस्थित न होने पर आठ यव तण्डुल में एक अंगुल की कल्पना कर ऐसे चौबीस अंगुलों को एक हाथ मानना चाहिये।

यजमान की आयु के अनुमान के अनुसार अंगुली का परिमाण तीन प्रकार का है। आठ यव से एक ज्येष्ठ अंगुल, सात यवों से मध्यम और छ: यवों से कनिष्ठ अंगुली होती है।

एक हजार आहुति में एक हाथ, दश हजार आहुति में दो हाथ, लक्षाहुति में चार

हाथ, चार लाख आहुति में छ: हाथ, दश लाख आहुति में आठ हाथ और एक करोड़ आहुति में दश हाथ परिमाण का कुण्ड बनाए। दश हाथ से अधिक परिमाण का कुण्ड न बनाए। इन कुण्डों में लम्बाई-चौड़ाई और गहराई बराबर होती है।

शारदायाम्—कोट्यामष्टकरं स्मृतमिति द्रव्यस्य गुरुत्वाऽगुरुत्वेन बोद्धव्यम्। तथा च—

एकहस्तमितं कुण्डं लक्षहोमे विधीयते ।

अत्राप्याज्यहोमे मधु-घृत-दूर्वा-करवीरादिहोगे च बोद्धव्यम्। तथा—

मुष्टिमात्रमितं कुण्डं शतार्द्धे च प्रचक्षते ।
शतहोमेऽरत्निमात्रं हस्तमात्रं सहस्रके ॥
द्विहस्तमयुते लक्षे चतुर्हस्तमुदाहृतम् ।
दशलक्षे तु षड्हस्तं कोट्यामष्टकरं स्मृतम् ॥
एकहस्तमिते कुण्डे लक्षमेकं विधीयते ।
लक्षाणां दशकं यावत्तावद्धस्तेन वर्द्धयेत् ॥

द्विहस्तादिकुण्डमानं तु गौतमीये—

पूर्वपूर्वस्य कुण्डस्य कोणसूत्रन्तु यद्भवेत् ।
उत्तरोत्तरकुण्डानां मानं तत्परिकीर्त्तितम् ॥
कर्णसूत्रप्रमाणेन द्विहस्तं कुण्डमाहरेत् ।
सर्वकुण्डेषु सर्वत्र वर्द्धयेद्विधिनामुना ॥

कुण्डप्रकरणे विशेषमाह गौतमीये—

ततः कुण्डं खनेन्मन्त्री यथाशास्त्रविधातनः ।
त्यक्त्वा सर्पस्य गात्रञ्च शिरोदेशं प्रयत्नतः ॥
शिरोघाते भवेन्मृत्युः पिण्डेषु पिण्डघातनम् ।
पुच्छे तु दुःखसम्भूतिः क्रोडे सर्वार्थसाधनम् ॥

शारदातिलक के अनुसार कोटि होम में आठ हाथ परिमित कुण्ड बनाए। हवनीय वस्तुओं के गुरुत्व और लघुत्व को ध्यान में रखकर ऐसा समझे।

यह भी कहा गया है कि आज्य हवन में मधु, घृत, दूर्वा और करवीरादि से लक्ष होम में एक हाथ परिमाण का कुण्ड बनाना चाहिये।

यह भी कहा गया है कि पचाश आहुति में मुट्ठी भर का कुण्ड बनाए। शत आहुति में वित्ता भर का, सहस्र हवन में एक हाथ का, दश हजार में दो हाथ का, लाख आहुति में चार हाथ का, दश लाख में छ: हाथ का और करोड़ आहुति में आठ हाथ का कुण्ड

प्रशस्त है। एक हाथ परिमाण के कुण्ड में एक लाख हवन हो सकता है। एक लाख के बाद दस लाख तक के हवन के लिये प्रतिलाख एक-एक हाथ परिमाण से कुण्ड को बढ़ाता जाय।

कुण्ड के परिमाण के विषम में गौतमीय तन्त्र में कहा गया है कि पूर्वकुण्ड का कोणसूत्र जितना हो, उसी परिमाण में उत्तरोत्तर कुण्ड बनाए। कोणसूत्र का परिमाण लेकर दो हाथ का कुण्ड बनाए। इसी प्रकार कोणसूत्र के परिमाण से सभी कुण्डों का परिमाण बढ़ाता जाय।

यह भी लिखा है कि शास्त्रोक्त विधानक्रम से नाग का गात्र और शिरोदेश छोड़कर कुण्ड का खनन करे। नाग के शिरोदेश में आघात कर हवन करने से साधक की मृत्यु होती है। उदर देश में करने से दरिद्रता और पुच्छस्थान में कुण्ड बनाने से दुःख होता है; किन्तु क्रोड़देश में कुण्ड बनाकर हवन करने से सर्वार्थसिद्धि होती है।

नागशिर-आदि-निर्णयः

यथा—

वास्तुप्रमाणेन तु गात्रकेण वमेन शेते खलु नित्यकालम् ।
त्रिभिस्तु मासैः परिवृत्य भूमौ तं वास्तुनागं प्रवदन्ति सिद्धाः ॥
भाद्रादिके वासवदिक्शिराः स्यान्मार्गादिकेषु त्रिषु याम्यमूर्द्धा ।
प्रत्यक्शिराः स्यात्खलु फाल्गुनादौ ज्येष्ठादिकौवेरशिराः स नागः ॥
यावान् कुण्डस्य विस्तारः खननं तावदिष्यते ।
खाताधिके भवेद्रोगो खातहीने धनक्षयः ॥
वक्रकुण्डे तु सन्तापो मरणं छिन्नमेखले ।
मेखलारहिते शोको ह्यधिके वित्तसंक्षयः ॥
भार्याविनाशकं प्रोक्तं कुण्डं योन्या विना कृतम् ।
अपत्यध्वंसनं प्रोक्तं कुण्डं कण्ठविवर्जितम् ॥
सात्त्विकी मेखला पूर्वा द्वितीया राजसी स्मृता ।
तृतीया तामसी प्रोक्ता मेखलानां विनिर्णयः ॥
कुण्डानां मेखलास्तिस्रो मुष्टिमात्रे तु ताः क्रमात् ।
उत्सेधायामतो ज्ञेया त्वेकार्द्धाङ्गुलिसम्मिता ॥
अरत्निमात्रकुण्डे तु तास्त्रिद्व्येकांगुलात्मिकाः ।
हस्तमात्रमिते कुण्डे वेदाग्निनयनांगुलाः ॥
कुण्डे द्विहस्ते ता ज्ञेया रसवेदगुणांगुलाः ।
चतुर्हस्ते तु ता ज्ञेया वसुतर्कयुगांगुलाः ॥

कुण्डे रसकरे तास्तु पंक्त्यष्टर्त्वंगुलाः क्रमात्।
वसुहस्तमिते कुण्डे भानुपंक्त्यष्टकांगुलाः ।।
दशहस्तमिते कुण्डे मनुभानुदशांगुलाः ।
विस्तारोत्सेधतो ज्ञेया मेखलाः सर्वतो बुधैः ।।
होतुरग्रे योनिरासामुपर्यश्वत्थपत्रवत् ।
मेखलानां भवेदन्तःपरितो नेमिरंगुला ।।
एकहस्तस्य कुण्डस्य वर्द्धयेत्ताः क्रमात्सुधीः ।
दशहस्तान्तमन्येषामर्द्धाङ्गुलवशात्पृथक् ।

एकहस्तस्य एकहस्तान्तस्य। नाभियोन्योरेकमानस्य दृष्टत्वात्।

नाग के शिरोभागादि का निर्णय—नाग वास्तु के आकार में सर्वदा बाँयें लेकर सोता रहता है। तीन-तीन महीने पर पार्श्व परिवर्तन करता है। सिद्धगण इसी को वास्तुनाग कहते हैं।

भादो-आश्विन-कार्तिक तीनों महीनों में नाग का शिर पूर्व में एवं अगहन-पूष-माघ तीन मासों में नाग का शिर दक्षिण में रहता है।

फाल्गुन-चैत्र वैशाख तीन महीनों में उसका शिर पश्चिम में और ज्येष्ठ-आषाढ़-सावन में उसका शिर उत्तर दिशा में रहता है।

कुण्ड का जितना विस्तार हो, उतनी ही उसकी गहराई होती है। गहराई अधिक होने से हवनकर्ता को रोग होता है। गहराई कम होने पर कर्ता का धन क्षय होता है। कुण्ड के टेढ़ा होने से साधक को सन्ताप एवं मेखला छिन्न होने से मृत्यु होती है।

मेखलाशून्य कुण्ड में हवन करने से शोक और मेखला के अधिक होने से धन का नाश होता है।

योनिरहित कुण्ड में हवन करने से पत्नीवियोग होता है। कण्ठरहित कुण्ड में हवन करने से सन्तान का क्षय होता है।

मेखला तीन प्रकार की होती है—सात्त्विकी, राजसी और तामसी। मेखला की उँचाई के तारतम्य से सात्त्विकादि का निर्णय होता है।

मुट्ठी भर के कुण्ड में सात्त्विकी मेखला की उँचाई दो अंगुल, राजसी मेखला की उँचाई एक अंगुल और तामसी मेखला की ऊँचाई आधी अंगुली के बराबर होती है।

वित्ता भर के कुण्ड की सात्त्विकी मेखला तीन अंगुल, राजसी मेखला दो अंगुल और तामसी मेखला की उँचाई एक अंगुल होती है।

प्रत्येक कुण्ड के निर्माण में सात्त्विकी आदि का विभेद स्थिर रखना होता है। एक

हाथ परिमित कुण्ड की मेखला क्रमशः चार, तीन और दो अंगुल ऊँची होती है।

दो हाथ परिमाण के कुण्ड की मेखला क्रमशः छः, चार, तीन अंगुल ऊँची होती हैं। चार हाथ के कुण्ड की मेखला की ऊँचाई आठ, छः, चार अंगुल होती है।

छः हाथ के कुण्ड की मेखलायें क्रमशः दस, आठ और छः अंगुल ऊँची होती हैं। आठ हाथ के कुण्ड की मेखलाओं की ऊँचाई क्रमशः बारह, दश और आठ अंगुल होती हैं। दस हाथ के कुण्ड की मेखलायें क्रमशः चौदह, बारह, दस अंगुल ऊँची होती हैं।

इसी परिमाण में सात्विकी आदि मेखला की ऊँचाई होती है। मेखला के विस्तार और उत्सेध के द्वारा सात्विकी आदि का निर्णय होता है।

होता के सम्मुख सभी मेखलाओं के ऊपर अश्वत्थपत्राकार योनि होती है। मेखला के मध्य में एक अंगुल की नेमि बनाए। एक मुट्ठी, एक वित्ता और एक हाथ परिमित कुण्ड की मेखला को क्रमशः बढ़ाए। दो हाथ से दस हाथ पर्यन्त अन्यान्य कुण्डों की मेखला को आधी अंगुलि परिमाण में बढ़ाये।

नाभि-योनि का परिमाण बराबर हो—ऐसा निर्देश शास्त्रों का है। इसके लिये कुण्डानुसार मेखला की प्रमाणवृद्धि अवश्यकरणीय है। अन्यथा नाभि-योनि का परिमाण एक रूप नहीं होगा।

गौतमीये—

प्रथमे मेखले योनिं कुण्डोष्ठीं होतुरग्रतः ।
कुर्यात् गजोष्ठवत्तान्तु कुण्डवित्सर्वलक्षणाम् ॥
मुष्ट्यरत्न्येकहस्तानां कुण्डानां योनिरीरिता ।
षट्चतुर्द्व्यंगुलायामविस्तारोन्नतिशालिनी ॥
एकांगुलन्तु योन्यग्रं कुर्यादीषदधोमुखम् ।
एकैकांगुलतो योनिं कुण्डेष्वन्येषु वर्द्धयेत् ।
यवद्वयप्रमाणेन योन्यग्रमपि वर्द्धयेत् ॥

गणेशविमर्शिण्याम्—

मेखलानां बहिःस्थानं स्थलमित्यभिधीयते ।
चतुरस्रस्थलारब्धं नालं मध्ये सरन्ध्रकम् ॥
स्थूलमूलन्तु सूक्ष्माग्रं तन्नालं स्यान्मनोहरम् ।
बाह्यस्थमेखलाबाह्यस्थलादारभ्य कारयेत् ॥

तथा—

स्थलादारभ्य नालं स्याद्योन्यां मध्ये सरन्ध्रकम् ।

सरन्ध्रकमित्युभयत्र सम्बध्यते। तदुक्तं गौतमीये—

स्थलादारभ्य नालं स्यात्सरन्ध्रं योनिमध्यतः ।
सूक्ष्माग्रं स्थलमूलञ्च सरन्ध्रं नालमिष्यते ।
योन्या मध्ये बिलं कुर्यात्तदाज्यग्राहिसंज्ञकम् ॥

मध्यतो मध्यपर्यन्तमित्यर्थः। तथा वसिष्ठे—

पृष्ठोन्नता गजोष्ठीव सच्छिद्रा मध्यमोन्नता ।

सरन्ध्रमिति मध्यमेखलायामित्यर्थः। तथा च—

नालमेखलयोर्मध्ये परिधेः स्थापनाय च ।
रन्ध्रं कुर्यात्तथा विद्वान् द्वितीयमेखलोपरि ॥

परिधिस्तु—

बाहुमात्राः परिधय ऋजवः सत्वचोऽव्रणाः ।
त्रयो भवन्त्यशीर्णाग्रा एकेषान्तु चतुर्दिशम् ॥
मृष्ट्यरत्न्येकहस्तानां नाभिरुत्सेकभावतः ।
नेत्रवेदांगुलोपेता कुण्डेष्वन्येषु वर्द्धयेत् ॥
यवद्वयक्रमेणैव नाभिं पृथगुदारधीः ।
योनिकुण्डे योनिमब्जकुण्डे नाभिञ्च वर्जयेत् ।
नाभिक्षेत्रं त्रिधा भित्वा मध्ये कुर्वीत कर्णिकाम् ।
बहिरंशद्वयेनाष्टौ पत्राणि परिकल्पयेत् ॥

गौतमीय तन्त्र में लिखा है कि पहले दो मेखलायें बनाए तब होता के सम्मुख कुण्ड के ओष्ठस्वरूप गजोष्ठ के समान सुलक्षणान्वित योनि बनाए।

मुट्ठी भर, वित्ता भर और एक हाथ के कुण्डों की योनियाँ क्रमशः षडंगुल, चतुरंगुल और द्व्यंगुल परिमाण में विस्तार और ऊँचाई से युक्त होनी चाहिये।

योनि का अग्रभाग एकांगुल करे। उसका अधोभाग कुछ वक्र होना चाहिये। अन्यान्य कुण्डों की योनियों को एक-एक अंगुल बड़ा करे। योनि का अग्रभाग दो यव के बराबर बढ़ाये।

गणेशविमर्शिनी ग्रन्थ में लिखा है कि मेखला के बहिःस्थान को स्थल कहते हैं। चतुरस्र स्थल से आरम्भ कर मध्य भाग में छिद्रयुक्त नाल बनाए। इस नाल का मूल देश स्थूल और अग्रभाग सूक्ष्म होने से सुन्दर लगता है। इसे बाह्यस्थ मेखला के बाह्य स्थान से आरम्भ करके बनाए।

तन्त्र में लिखा है कि मेखला के बहिःस्थ स्थान से आरम्भ करके योनिमध्य तक

रन्ध्रयुक्त नाल बनाए, नाल के मुखद्वय रन्ध्रसहित हैं, यह समझना चाहिये।

गौतमीय तन्त्र में लिखा है कि मेखला के बहि:स्थल से आरम्भ कर सरन्ध्र भाव से नाल लगाए। इस नाल का अग्रभाग सूक्ष्म और मूल देश स्थूल रक्खे। मूल और अग्र दोनों ही स्थानों में रन्ध्र रहे। योनि के मध्य देश तक आज्य ग्रहण के लिये गर्त-खनन करे।

वशिष्ठसंहिता में लिखा है कि मध्य मेखला में योनि का पृष्ठ देश उन्नत, गजोष्ठ के समान सच्छिद्र और मध्य में छिद्र होता है।

प्रमाण में लिखा है कि नाल और मेखला के मध्य में परिधि-स्थापन के लिए द्वितीय मेखला के ऊपरी भाग में रन्ध्र बनाए।

परिधि को बाहुमात्र परिमाण वाली, सरल और व्रणशून्य बनाए एवं त्वचासहित रक्खे। नाल, मेखला और परिधि—इन तीनों का अग्रभाग शीर्ष न हो, ऐसा भी मत है। प्रत्येक कुण्ड की चारो दिशाओं में मुट्ठी, वित्ता और हाथप्रमाण नाभि बनाए। यह नाभि उन्नत और विस्तृत होनी चाहिये। साधक अन्यान्य कुण्डों की नाभि तीन अथवा चार अंगुल बढ़ानी चाहिये।

पण्डित लोग दो यव के बराबर नाभि को उन्नत करते हैं। योनिकुण्ड में योनि और पद्मकुण्ड में नाभि बनाए। नाभिक्षेत्र को तीन भागों में विभक्त कर मध्य भाग में कर्णिका और बाहर दो अंशों में अष्टपत्र बनाए।

नवकुण्डपक्षे योनिनियममाह सिद्धान्तशेखरे—

इन्द्राग्नियमदिक्कुण्डे योनिः सौम्यमुखी स्थिता ।
योनिः पूर्वमुखान्येषु पूर्वेषामुत्तरा मता ॥
हस्तमात्रं स्थण्डिलं वा संक्षिप्ते होमकर्मणि ।
अंगुलोत्सेधसंयुक्तं चतुरस्रं समन्ततः ॥
आदाय दक्षिणे पाणौ स्रुवं त्रिमधुरः हविः ।
प्राङ्मुखो वह्निजायान्ते जुहुयान्न्युब्जपाणिना ॥
नमोऽन्ते न नमो दद्यात् स्वाहान्ते द्विठमेव च ।
पूजायामाहुतौ चैव सर्वत्रायं विधिः स्मृतः ॥

नमोऽन्त इति पौराणिकमन्त्रपरम्। तथा च ब्रह्मपुराणम्—

ओङ्कारादिसमायुक्तं नमस्कारान्तकीर्त्तितम् ।
स्वनाम सर्वसत्त्वानां मन्त्र इत्यभिधीयते ॥

यथा—इदं पाद्यं ॐ आदित्याय नमः। इदमर्घ्यं ॐ आदित्याय नमः इत्यादि।

द्रव्यादीनि समुल्लिख्य पश्चादुल्लेखयेत्सुरान्।

इत्यादिवचनात्। न तु ॐ आदित्याय नमः, एतत् पाद्यं सूर्याय नमः इत्यादि। तान्त्रिके नायं नियमः, अर्घ्यादौ वैषम्यं स्यात् ।

मन्त्रेणोङ्कारपूतेन स्वाहान्तेन विचक्षणः ।
स्वाहावसाने जुहुयात् ध्यायन् वै मन्त्रदेवताम् ।।

ओङ्कारपूतेनेत्यादि इदमपि वैदिकमन्त्रपरम्। अन्यथा मन्त्रान्तरप्रसङ्गः। तेन स्वाहान्तमन्त्रे स्वाहान्तरं न वक्तव्यम्। स्रुवस्य पञ्चांगुलं त्यक्त्वा शंखमुद्रया धारणम्। तदाह—

पञ्चांगुलं बहिस्त्यक्त्वा धारयेत् शङ्खमुद्रया । इति।

यत्र होमसंख्या नोक्ता तत्र च—

संख्याऽनुक्तौ शतं साष्टं साहस्रं वा जपादिषु ।
अनुक्ते तु हविर्द्रव्ये तिलाज्यं हविरुच्यते ।।

योनि—सिद्धान्तशेखर में नव कुण्डों की योनि के बारे में यह नियम बताया गया है कि पूर्व, अग्नि और दक्षिण दिग्वर्ती कुण्ड में उत्तराभिमुख योनि बनाए। पूर्व और ईशान कोण के मध्य में स्थित नव कुण्डों में भी उत्तरमुखी योनि बनाए। संक्षिप्त कार्य में एक हाथ का स्थण्डिल बनाकर हवन करे।

उस स्थण्डिल का विशेष नियम यह है कि एक अंगुल उत्सेध वाला चतुरस्र बनाकर दाहिने हाथ में स्रुव लेकर पूर्वमुख होकर त्रिमधुराक्त हवि से स्वाहान्त मन्त्र से हवन करे। होमसमय में न्युब्ज हस्त से आहुति दे। पूजा और हवन के समय नमोऽन्त में नमः और स्वाहान्त मन्त्र के अन्त में स्वाहा न जोड़े। नमोऽन्त मन्त्र के अन्त में नमः शब्द न जोड़े।

यह विधि पौराणिक मन्त्रों के बारे में समझनी चाहिये अर्थात् नमः शब्दान्त मन्त्र के अन्त में नमः शब्द न जोड़े। यही व्यवस्था है। ब्रह्मपुराण में लिखा है कि देवता के नाम के पहले ॐ और अन्त में नमः शब्द जोड़ने से वह उस देवता का चतुर्थ्यन्त मन्त्र बन जाता है। जब जिस द्रव्य को निवेदित करे तब पहले उस द्रव्य का नाम, तब ॐयुक्त देवता का चतुर्थ्यन्त नाम और अन्त में नमः शब्द का उच्चारण कर उस द्रव्य को निवेदित करना चाहिये। यथा—एतत् पाद्यं ॐ आदित्याय नमः।

इसी प्रकार इदमर्घ्यं ॐ आदित्याय नमः इत्यादि रूप में अर्चन करे; किन्तु ॐ आदित्याय नमः एतत् पाद्यं इत्यादि रूप से मन्त्र के बाद में द्रव्य का उल्लेख न करे।

स्रुवमूल में पाँच अंगुल छोड़कर शंखमुद्रा से स्रुव को पकड़कर होम करे। जहाँ जप और हवन की संख्या निश्चित न हो, वहाँ अष्टोत्तर शत या एक हजार आठ जप और हवन करे। जहाँ हवनद्रव्य का उल्लेख न हो, वहाँ तिल में घी मिलाकर हवन करे।

नित्यहोमः

तदुक्तं सोमभुजगावल्याम्—

नाजप्तः सिध्यते मन्त्रो नाहुतश्च फलप्रदः ।
नानिष्टो यच्छते कामान् तस्मात्त्रितयमर्चयेत् ॥
पूजया लभते पूजां जपात्सिद्धिर्न संशयः ।
विभूतिञ्चाग्निकार्येण सर्वसिद्धिञ्च विन्दति ॥

नीलतन्त्रेऽपि—

नित्यहोमं प्रवक्ष्यामि सर्वार्थं येन विन्दति ।
सपर्यां सम्यगापाद्य बलिपूर्वं चरेद्विधिम् ॥
ततो होमं तर्पणञ्च चरेत्साधकसत्तमः ।
बलिवैश्यादिकञ्चैव ब्राह्मणः समुपाचरेत् ॥
अर्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्य तिस्रो रेखाः समालिखेत् ।
विधिवदग्निमानीय क्रव्यादेभ्यो नमस्तथा ॥
मूलमन्त्रं समुच्चार्य कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा ।
भूमौ वा संस्तरेद्वह्निं व्याहृतित्रितयेन च ।
स्वाहान्तेन त्रिधा हुत्वा षडङ्गहवनं चरेत् ॥
ततो देवीं समावाह्य मूलेन षोडशाहुतिम् ।
हुत्वा स्तुत्वा नमस्कृत्य विसृजेदिन्दुमण्डले ॥

श्यामादौ विशेषः—

भैरवांश्च हुनेदष्टौ आज्यान्विततिलैः शुभैः ।
पूर्वादिदिक्क्रमेणैव ततो होमं समाचरेत् ॥

नित्य होमविधि—सोमभुजगावली ग्रन्थ में कहा गया है कि मन्त्र का जप न करने से मन्त्र की सिद्धि नहीं होती। हवन न करने से वह मन्त्र कोई फल नहीं देता और अपूजित मन्त्र का जप करने से कोई इच्छा पूरी नहीं होती। अतएव प्रयत्नपूर्वक पूजा, जप और हवन करे।

देवता की अर्चना करने से सर्वत्र सम्मान मिलता है। मन्त्र जप करने से साधक सिद्ध होता है। हवन करने से सभी प्रकार की सम्पत्ति मिलती है। सभी कार्यों में सिद्धि मिलती है।

नीलतन्त्र में सर्वसिद्धिप्रद नित्य होम की यह विधि है कि साधक विधिवत् देवता की पूजा करके बलिप्रदानपूर्वक हवन और तर्पण करे। ब्राह्मण प्रतिदिन बलिवैश्वदेव कर्म समाप्त कर हवन करे।

हवन के स्थान का प्रोक्षण पहले अर्घ्योदक से करे। फिर उस स्थान में पूर्वाग्र तीन रेखाओं को अंकित करे। तब विधिपूर्वक अग्नि लाकर ॐ क्रव्यादेभ्यो नमः से कुछ अग्नि छोड़ दे। तब मूल मन्त्र का उच्चारण कर कुण्ड, स्थण्डिल या भूमि पर अग्नि को स्थापित करे। तब ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः—इन तीन स्वाहा व्याहृतिमन्त्रों से तीन आहुतियाँ देकर देवता के षडंग मन्त्रों से छः आहुतियाँ प्रदान करे। तव देवता का आवाहन कर मूल मन्त्र से सोलह आहुतियाँ देकर संकल्प करे। संकल्प के बाद यथोक्त हवन करे। हवन के अन्त में स्तुतिपाठ और नमस्कार कर इन्दुमण्डल में देवता का विसर्जन करे।

श्यामादि देवताओं के हवन में पूर्वादि आठ दिशाओं में असितांगादि आठ भैरवों को घृतमिश्रित तिल से आठ आहुतियाँ प्रदान करे।

संक्षेपहोमप्रयोगः

कुण्डे वा स्थण्डिले वापि वीक्षणादिभिः संस्कृते। तथा च—

वीक्षणं मूलमन्त्रेण शरेण ताडनं मतम् ।
तेनैव प्रोक्षणं प्रोक्तं वर्मणाभ्युक्षणं मतम् ॥
प्रागग्रा उदगग्राश्च तिस्रो रेखाः समालिखेत् ।

ततो मूलमुच्चार्य ॐ कुण्डाय नमः इति सम्पूज्य प्रागग्रा उदगग्रास्तिस्रस्तिस्रो रेखाः कर्त्तव्याः। प्रागग्रेषु मुकुन्देशपुरन्दरान् प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य उदगग्रेषु ब्रह्मवैवस्वतेन्दून् पूजयेत्।

सुन्दरीपक्षे तु सर्वत्र षट्तारीप्रयोगः। षट्तारी च—ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः ब्रह्मणे नमः। एवं क्रमेण पूजयेत्। तथा ब्रह्मसंहितायां होमकाण्डे—

ऐशान्यां वेदिकां हस्तविस्तारोन्नतिशालिनीम् ।
कृत्वास्मिन् स्थापयेत्कुम्भं यथोक्तक्रमयोगतः ॥
ततः सम्पूजयेद्देवं यथाविध्युपचारकैः ।
ततो होमं प्रकुर्वीत देवतासन्निधानतः ॥

संक्षिप्त हवन-पद्धति—कुण्ड या स्थण्डिल बनाकर वीक्षणादि द्वारा उसका संस्कार करे। प्रमाण में कहा गया है कि वीक्षण में मूल मन्त्र का उच्चारण करके स्थण्डिलादि का दर्शन, फट् मन्त्र से ताड़न, मूल मन्त्र से प्रोक्षण और 'हुं' मन्त्र से अभ्युक्षण कर्म आते हैं। इसके बाद पूर्वाग्र और उत्तराग्र तीन-तीन रेखायें अंकित करे।

मूल मन्त्र का उच्चारण करके 'ॐ कुण्डाय नम' से कुण्ड की पूजा करे। पूर्वाग्र और उत्तराग्र तीन-तीन रेखायें अंकित करे। पूर्वाग्र तीन रेखाओं में दक्षिणादि क्रम से ॐ मुकन्दाय नमः, ॐ ईशानाय नमः, ॐ पुरन्दराय नमः से पूजन करे।

उत्तराग्र तीन रेखाओं में ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ वैवस्वताय नमः, ॐ इन्दवे नमः से पूजा करे। सुन्दरी-विषयक हवन में षट्तारी मन्त्र से पूजा करे—ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः मुकुन्दाय नमः इत्यादि।

ब्रह्मसंहिता में कहा गया है कि मण्डप के ईशान कोण में एक हाथ विस्तृत और एक हाथ ऊँची वेदी बनाकर उसके ऊपर विधिवत् कुम्भस्थापन करे। उसी कुम्भ में यथासम्भव उपचारों से देवता का अर्चन कर देवता के निकट हवन करे।

ततः कुण्डमध्ये षट्कोणवृत्त-त्रिकोणं तद्बहिरष्टदलपद्मं तद्बहिश्चतुरस्रं चतुर्द्वारसमेतं लिखित्वा तदुपरि मूलेन पुष्पाञ्जलीन् दद्यात् सुन्दरीपक्षे तु बालया। ततः सर्वाणि प्रणवेनाभ्युक्ष्य वह्नेर्योगपीठमर्चयेत्। तद्यथा—

कर्णिकोपर्याधारशक्त्यादीन् सम्पूज्याग्न्यादिकोणचतुष्केषु ॐ धर्माय नमः। एवं ज्ञानाय वैराग्याय ऐश्वर्याय। पूर्वादिदिक्षु अधर्माय अज्ञानाय अवैराग्याय अनैश्वर्याय। मध्ये ॐ अनन्ताय; एवं पद्माय अं अकर्मण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः, ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः, रं वह्निमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः।

ततः केशरेषु पूर्वादिमध्ये च ॐ पीतायै नमः। एवं श्वेतायै नमः, अरुणायै नमः, कृष्णायै धूम्रायै तीव्रायै स्फुलिङ्गिन्यै रुचिरायै ज्वालिन्यै। ततो रं वह्न्यासनाय नमः। ततः—

वागीश्वरीमृतुस्नातां नीलेन्दीवरलोचनाम् ।

वागीश्वरेण संयुक्ताम् इति ध्यात्वा ॐ ह्रीं वागीश्वराय नमः ॐ ह्रीं वागीश्वर्यै नमः इति पञ्चोपचारैः सम्पूज्य सूर्यकान्तादिसम्भूतं श्रोत्रियगेहजं वा वह्निमानयेत्। सुन्दरीपक्षे तु कामेश्वरं कामेश्वरीं पूजयेत्।

तब कुण्ड के मध्य में षट्कोण, उसके बाहर वृत्त त्रिकोण और उसके बाहर अष्टदल कमल अंकित करे। उसके बाहर चतुर्द्वारयुक्त चतुरस्र बनाकर मूल मन्त्र से पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। सुन्दरी-पक्ष में बालाबीज से पाँच पुष्पाञ्जलियाँ दे।

इसके बाद प्रणव का उच्चारण करके हवनसामग्री का प्रोक्षण करके वह्नि के योगपीठ की पूजा करे। कर्णिका के ऊपर आधारशक्ति आदि की पूजा कर अग्नि आदि चार कोणों में ॐ धर्माय नमः, ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः, ॐ ऐश्वर्याय नमः से पूजा करे।

पूर्वादि चारो दिशाओं में ॐ अधर्माय नमः, ॐ अज्ञानाय नमः, ॐ अवैराग्याय नमः, ॐ अनैश्वर्याय नमः से पूजा करे। मध्य में ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पद्माय नमः, अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः, उं सोममण्डलाय षोड़शकलात्मने नमः, रं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः से पूजा करके पद्म के केशरों में, पूर्वादि आठ दिशाओं

में और मध्य में ॐ पीतायै नमः, ॐ श्वेतायै नमः, ॐ अरुणायै नमः, ॐ कृष्णायै नमः, ॐ धूम्रायै नमः, ॐ तीव्रायै नमः, ॐ स्फुलिंगिन्यै नमः, ॐ रुचिरायै नमः, ॐ ज्वालिन्यै नमः से नव देवताओं की पूजा करे। तब रं वह्निपद्मासनाय नमः से पूजन करे।

तब ऋतुस्नाता, कमलनेत्रा, वागीश्वरसहिता वागीश्वरी देवी का ध्यान करे— वागीश्वरीमृतुस्नातां नीलेन्दीवरलोचनां वागीश्वेरणसंयुक्ताम्।

इसके बाद ॐ ह्रीं वागीश्वराय नमः, ॐ ह्रीं वागीश्वर्यै नमः से पञ्चोपचार पूजन करे। तब कान्तादि मणि से उत्पन्न या श्रोत्रिय गृह से अग्नि लाए। सुन्दरी-पक्ष में ॐ कामेश्वराय नमः, ॐ कामेश्वर्यै नमः से पूजन करे।

गौतमीये—

पाषाणभवमग्निञ्च यदि वाऽरुणिसम्भवम् ।
श्रोत्रियाणां गेहजञ्च वनस्थं वाथवा हरेत् ॥
निरग्निर्ब्राह्मणाल्लब्धो ह्यर्द्धलाभकरो भवेत् ।
क्षेत्रबन्धोश्चतुर्थांशं फलं दद्याद्धुताशनः ॥
वैश्याच्छूद्राच्च विफलं जायते होमकर्मणि ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वह्निमुक्तं समाहरेत् ॥

तन्त्रान्तरे—

द्विजातिभवनाद्वापि वह्निमानीय साधकः ।
वौषडन्तेन मूलेन मन्त्रितं तं विलोकयेत् ॥
अग्निमावाहयेदस्त्रमन्त्रेण तदनन्तरम् ।
हुं-फडन्तेन मूलेन क्रव्यादांशं परित्यजेत् ॥

ततः ॐ वह्नेर्योगपीठाय नमः। चतुर्दिक्षु ॐ वामायै नमः। एवं ज्येष्ठायै रौद्र्यै अम्बिकायै। ततो मूलमूच्चार्य अमुकदेवताकुण्डाय नमः इति कुण्डं सम्पूज्य तदधो वागीश्वरीं तत्तदेवतारूपाम् ऋतुमतीं ध्यात्वा यथोक्तं वह्निमानीय वीक्षणादिभिः संस्कृत्य रमिति तस्माद्वह्निमुद्धृत्य मूलमुच्चार्य हुं फट् क्रव्यादेभ्यः स्वाहा इत्यनेन क्रव्यादांशं परित्यज्य वह्निमन्त्रेण संरक्ष्य हुमित्यवगुण्ठ्य धेनुमुद्रयामृतीकृत्य बाहुभ्यां समुद्धृत्य कुण्डोपरि त्रिः परिभ्राम्य जानुस्पृष्टमहीतलः शिवबीजबुद्ध्या आत्मनोऽभिमुखं देव्या योनावेनं क्षिपेत्।

गौतमीय तन्त्र में लिखा है कि पत्थर से उत्पन्न, अरणी से उत्पन्न, वन से उत्पन्न या अग्निहोत्री ब्राह्मण के घर से आग लाकर उसमें हवन करे।

होमकार्य में साग्निक ब्राह्मण से आग ले। निरग्नि विप्र से आग लेकर हवन करने

से हवन का आधा फल होता है। क्षत्रिय के घर से आग लाकर हवन करने से चौथाई फल होता है। वेश्या या शूद्र के घर से आग लेकर हवन करने से वह निष्फल होता है। अतः प्रशस्त अग्नि से ही हवन करे।

तन्त्रान्तर में लिखा है कि ब्राह्मण के घर की अग्नि लाकर उसे मूलं वौषट् से अभिमन्त्रित करके देखे। फट् से वह्नि का आवाहन करे। मूलं हुं फट् क्रव्यादेभ्यो स्वाहा से क्रव्याद का अंशत्याग करे। तब वह्नेर्योगपीठाय नमः से पूजा कर चारो दिशाओं में ॐ वामायै नमः, ॐ ज्येष्ठायै नमः, ॐ रौद्र्यै नमः, ॐ अम्बिकायै नमः से पूजा करे। तब मूलं अमुकदेवताकुण्डाय नमः से पूज्य देवता के नामोल्लेखपूर्वक कुण्ड का अर्चन करे। स्थण्डिल हो तो अमुकदेवतास्थण्डिलाय नमः से पूजा करे।

उस कुण्ड के मध्य में उस देवतारूपिणी ऋतुमती वागीश्वरी देवी का ध्यान कर यथोक्त आग ले आये। तब वीक्षणादि से अग्निसंस्कार करके 'रं' मन्त्र से अग्नि को उठाकर मूलं हुं फट् क्रव्यादेभ्यः स्वाहा से क्रव्याद का अंश बाहर करे। फट् से अग्नि का संरक्षण करे। हुं से अवगुंठन करे और धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करे।

दोनों हाथों से अग्नि को उठाकर कुण्ड के ऊपर तीन बार घुमाकर घुटनों से भूमि का स्पर्श करते हुए उस अग्नि को शिवबीज समझते हुए अपने सामने स्थित देवी के योनिस्थान पर स्थापित करे।

ततो ह्रीं वह्निमूर्तये नमः इत्यभ्यर्च्य रं वह्निचैतन्याय नमः इति चैतन्यं संयोज्य ॐ चित्पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा ज्वालयेत्। ततः—

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम् ।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम् ॥

इत्युपतिष्ठेत्। ततोऽग्ने त्वममुकदेवतानामासि इति नाम कृत्वा ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा—अनेनार्घ्यादिभिः सम्पूज्य ॐ अग्नेर्हिरण्मयादिसप्तजिह्वाभ्यो नमः। ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः इत्यादि अग्निषडङ्गेभ्यो नमः। ॐ अग्नये जातवेदसे इत्याद्यष्टमूर्त्तिभ्यो नमः, तद्बाह्ये ॐ ब्राह्म्याद्यष्टशक्तिभ्यो नमः, तद्बहिः ॐ पद्माद्यष्टनिधिभ्यो नमः, तद्बाह्ये ॐ इन्द्रादिलोकपालेभ्यो नमः, तद्बाह्ये ॐ वज्राद्यस्त्रेभ्यो नमः। ततः प्रादेशमात्रं कुशपत्रद्वयं घृतमध्ये निक्षिप्य सव्यापसव्यमध्यभागेषु इडां पिङ्गलां सुषुम्नां ध्यात्वा होमं कुर्यात्। स्रुवेण दक्षिणभागादाज्यं गृहीत्वा ॐ अग्नये स्वाहेति अग्नेर्दक्षिणनेत्रे जुहुयात्। तथा वामभागादाज्यं गृहीत्वा ॐ सोमाय स्वाहा इति वामनेत्रे जुहुयात्। ततो मध्यभागादाज्यं गृहीत्वा ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहेत्यग्नेर्ललाटनेत्रे जुहुयात्। पुनर्दक्षिणतः ॐ नमः इति घृतं गृहीत्वा ॐ अग्नये स्विष्टिकृते स्वाहेति अग्निमुखे।

इसके बाद 'ह्रीं वह्निमूर्तये नमः' से पूजन और 'रं वह्निचैतन्याय नमः' से वह्नि में चैतन्य का संयोजन करे। ॐ चित्पिंगल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा से प्रज्वलित करे। तब निम्न मन्त्र से अग्नि का उपस्थापन करे—

ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम्।।

इसके बाद ॐ अग्ने! त्वममुकदेवतानामाऽसि से अग्नि का नामकरण करे। ॐ वैश्वानर जातवेद! इहावह लोहिताक्ष! सर्वकर्माणि साधय स्वाहा से अर्घ्यादि उपचारों से उनका पूजन करे।

तब निम्न मन्त्रों से पूजा करे—ॐ अग्निर्हिरणमयादिसप्तजिह्वाभ्यो नमः, ॐ सहस्रार्चिष हृदयाय नमः इत्यादि अग्निषडङ्गेभ्यो नमः, ॐ अग्नये जातवेदसे इत्याद्यष्टमूर्तिभ्यो नमः। तब अग्नि के बाहर ॐ ब्राह्म्याद्यष्टशक्तिभ्यो नमः, ॐ पद्माद्यष्टनिधिभ्यो नमः, ॐ इन्द्रादिलोकपालेभ्यो नमः, ॐ वज्राद्यस्त्रेभ्यो नमः से क्रमशः पूजन करे।

इसके बाद प्रादेश बराबर के दो कुशपत्रों को घी में डालकर इडा-पिंगला और सुषुम्ना का ध्यान करते हुए आज्य पात्र के वाम और दक्षिण भाग से आज्य लेकर हवन करे।

पहले स्रुव द्वारा आज्यस्थाली के दक्षिण भाग से आज्य लेकर ॐ अग्नये स्वाहा से अग्नि के दक्षिण नेत्र में हवन करे। तब वाम भाग से घी लेकर ॐ सोमाय स्वाहा से अग्नि के वाम नेत्र में हवन करे। तब मध्य भाग से घृत लेकर ॐ अग्निषोमाभ्यां स्वाहा से अग्नि के तीसरे नेत्र में हवन करे। पुनः दक्षिण भाग से ॐ नमः से घी लेकर ॐ अग्नये स्विष्टिकृते स्वाहा से अग्नि के मुख में आहुति डाले।

ततो महाव्याहृतिहोमः—ॐ भूः स्वाहा ॐ भुवः स्वाहा ॐ स्वः स्वाहा। ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहेत्यनेन त्रिवारं जुहुयात्। ततोऽग्नौ मूलेन पीठपूर्वकं देवतां सम्पूज्य तन्मुखे घृतेन मूलमन्त्रेण पञ्चविंशतिवारं जुहुयात्। आत्मना सह वह्निदेवतयोरैक्यं विभाव्य मूलमन्त्रैनैकादशाहुतीर्जुहुयात्। ततो मूलमन्त्रस्याङ्गदेवताभ्यः स्वाहा। एवं आवरणदेवताभ्यः स्वाहा। शक्तश्चेत् प्रत्येकमेकैकाहुतिं जुहुयात्।

ततः सङ्कल्पं विधाय तत्तत्कल्पोक्तद्रव्येण होमं कुर्यात्। ततो मूलमन्त्रेण पूर्णाहुतिं दत्त्वा संहारमुद्रया स्वेष्टदेवतां हृदये समानीय क्षमस्वेति विसृज्य दक्षिणां दत्त्वा अच्छिद्रावधारणं कुर्यात्।

इति संक्षेपहोमविधिः

●

इसके बाद महाव्याहृति हवन करे—ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा। इसके बाद इस मन्त्र से तीन आहुतियाँ डाले—ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा। तब अग्नि में मूल मन्त्र से पीठदेवतासहित मूल देवता की अर्चना कर देवता के मुख में आज्य से मूल मन्त्र द्वारा पच्चीस आहुतियाँ दे।

तब अग्नि और देवता के साथ अपने ऐक्य की भावना करके मूल मन्त्र से ग्यारह आहुतियाँ डाले। तब ॐ मूलमत्रस्यांगदेवताभ्यः स्वाहा से हवन करे। समर्थ हो तो अंगदेवताओं में से प्रत्येक के नाम से एक-एक आहुति दे। तब संकल्प कर यथोक्त सामग्री से हवन करे।

अन्त में मूल मन्त्र से पूर्णाहुति देकर संहारमुद्रा से अभीष्ट देवता को अपने हृदय में लाकर 'क्षमस्व' मन्त्र से विसर्जन करे। तब दक्षिणा देकर अच्छिद्रावधारण करे।

बृहद्धोमपद्धतिः

आचार्योऽलंकृतो यागमण्डपद्वारमागत्य सामान्यार्घ्यं विधाय द्वारपूजां कृत्वा गृहं प्रविश्य तत्तत्कल्पोक्तदेवतां सम्पूज्य ऐशान्यां दिशि हस्तप्रमाणां वेदिकां विधाय तदुपरि घटं संस्थाप्य यथाशक्ति सम्पूज्य वीक्षणादिभिः कुण्डं संस्कुर्यात्। एतदुक्तं ब्रह्मसंहितायां होमकाण्डे—

ऐशान्यां वेदिकां हस्तविस्तारोन्नतिशालिनीम् ।
कृत्वास्मिन् स्थापयेत्कुम्भं यथोक्तक्रमयोगतः ॥
तत्र सम्पूजयेद्देवं यथाविध्युपचारकैः ।
ततो होमं प्रकुर्वीत देवतासन्निधानतः ॥
वीक्षणं मूलमन्त्रेण शरेण ताडनं मतम् ।
तेनैव प्रोक्षणं दर्भैर्वर्मणाभ्युक्षणं मतम् ।
अस्त्रेण रक्षणं कृत्वा ततः संस्कारमारभेत् ॥

ततो मूलमुच्चार्य ॐ कुण्डाय नमः इति कुण्डं सम्पूजयेत्। तारादौ तु तत्तद्देवतानामोच्चार्य कुण्डाय नमः इति वदेत्। ततः कुण्डमध्ये प्रागग्रा उदगग्रास्तिस्रस्तिस्रो रेखाः विलिखेत्।

ततः संक्षेपहोमपद्धत्युक्तक्रमेण सर्वं करणीयम्। तन्त्रे—

द्विजातिभवनाद्वापि वह्निमानीय साधकः ।
वौषडन्तेन मूलेन मन्त्रितं तं विलोकयेत् ॥
अग्निमावाहयेदस्त्रमन्त्रेण तदनन्तरम् ।
हुंफडन्तेन मूलेन क्रव्यादांशं परित्यजेत् ॥

ततोऽग्निं वीक्षणादिभिः संस्कृत्य औदर्यवैन्दवाग्निभ्यां भौमस्य वह्नेरैक्यं विभाव्य रं वह्निचैतन्यं कल्पयामीति पावके चैतन्यं विधाय ओंकारेणाष्टोत्तर-शतमभिमन्त्र्य धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य फडिति सम्प्रोक्ष्य हुमित्यवगुण्ठ्य रं वह्निमूर्त्तये नमः इति गन्धपुष्पादिभिः सम्पूज्य कुण्डस्योपरि त्रिः परिभ्राम्य प्रणवोच्चारणपूर्वकं जानुस्पृष्टमहीतलः शिवबीजबुद्ध्या आत्मनोऽभिमुखं देव्या योनावेनं क्षिपेत्। ततो वागीश्वरवागीश्वरीभ्यां आचमनीयादिकं दत्त्वा—

तथा गर्भे धृतां ध्यायेद्वह्निरूपान्तदेवताम् ।
पश्चाद्गर्भस्य रक्षार्थं प्रदद्याद्दर्भकङ्कणम् ।।

चित्पिङ्गल हन हन पच पच दह दह सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा इति मन्त्रेण वह्निं ज्वालयेत्। ततो बद्धाञ्जलिः सन्—

ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम् ।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम् ।।

इत्यनेन वह्निमुपतिष्ठेत्।

बृहत् हवनपद्धति—यज्ञीय वस्त्राभूषण से अलंकृत होकर आचार्य मण्डप के द्वार-देश में जाकर सामान्यार्घ्य-स्थापन करे। द्वारदेवताओं का पूजन कर मण्डप में प्रवेश करे।

मण्डप के ईशान कोण में एक हाथ बराबर उँची और विस्तृत वेदी बना कर उस पर कलश-स्थापन कर मूल देवता की यथाशक्ति पूजा करे। वीक्षणादि द्वारा कुण्ड का संस्कार करे।

ब्रह्मसंहिता में लिखा है कि एक हाथ ऊँची और विस्तृत वेदी बनाकर उसके ऊपर कलश स्थापित करे। पूजापद्धति से यथासम्भव उपचारों से मूल देवता की अर्चना कर उसी देवता की सन्निधि में हवन करे।

मूल मन्त्र से वीक्षण, फट् से ताड़न और प्रोक्षण, हुं से दर्भ द्वारा अभ्युक्षण तथा फट् से संरक्षण करे। यही कुण्ड का संस्कार है। तब मूल मन्त्र ॐ कुण्डाय नमः से कुण्ड की पूजा करे।

तारा आदि देवता के हवनकाल में अमुकदेवताकुण्डाय नमः से कुण्ड की पूजा करे। तब कुण्ड के मध्य में पूर्वाग्र और उत्तराग्र तीन-तीन रेखाएँ अंकित करे। तब संक्षिप्त हवन-पद्धति में लिखित विधि से सभी कार्य करे। विप्र के घर की अग्नि लाकर मूलं वौषट् से अभिमन्त्रित कर उसे देखे। फट् मन्त्र से अग्नि का आवाहन कर मूलं हुं फट् से क्रव्यादांश का परित्याग करे।

तब वीक्षणादि द्वारा अग्नि का संस्कार कर जठराग्नि और सहस्रार कमल के मध्यगत

बिन्दु में स्थित वैन्दवाग्नि के साथ भौमाग्नि की ऐक्य भावना करते हुए 'रं वह्निचैतन्यं कल्पयामि' से अग्नि का चैतन्य सम्पादित करे। तब अग्नि को 'ॐ' से १०८ बार अभिमन्त्रित कर धेनुमुद्रा से अमृतीकरण, फट् से प्रोक्षण एवं हुं से अवगुण्ठन करे।

रं वह्निमूर्तये नमः से गन्ध-पुष्प से पूजन करे। तब कुण्ड के ऊपर दक्षिणावर्त तीन बार अग्नि का परिभ्रमण कराकर ॐ का उच्चारण करते हुए जानु से पृथ्वी का स्पर्श कर उसे शिवबीज समझते हुए आत्माभिमुखी देवी की योनि में अग्नि को स्थापित करे।

तदनन्तर वागीश्वर-वागीश्वरी को आचमनीयादि देकर देवता को वागीश्वरी के गर्भ में स्थित अग्निरूप का ध्यान करे। तब गर्भरक्षा के लिये दर्भकंकण प्रदान करे। तब चित्पिंगल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा से अग्नि को प्रज्वलित करे। हाथ जोड़कर अग्नि की वन्दना निम्न मन्त्र से करे—

ॐ अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम्।।

ततो स्वदेहे वह्नेर्जिह्वान्यासं कुर्यात्। तद्यथा—लिङ्गे सरयूं हिरण्मयायै नमः। पायौ षरयूं कनकायै नमः। मूर्ध्नि शरयूं रक्तायै नमः। वक्त्रे वरयूं कृष्णायै नमः। घ्राणे लरयूं सुप्रभायै नमः। नेत्रे ररयूं बहुरूपायै नमः। सर्वगात्रे यरयूं अतिरक्तायै नमः। एताः सात्त्विकयागकर्मणि।

काम्यकर्मणि तु उक्तबीजेन सह पद्मरागा सुवर्णा भद्रलोहिता रोहिता श्वेता धूमिनी करालिका एता राजस्यः। क्रूरकूर्मणि तु पूर्वबीजेन सह विश्वमूर्त्तिः स्फुलिङ्गिनी धूम्रवर्णा मनोजवा लोहिता कराला काली एतास्तामस्यः। न्यासन्तु बीजयोगेन पूर्ववत्कर्मभेदेन सर्वत्र बोद्धव्यः। तथा च शारदायाम्—

लिङ्गपायुशिरोवक्त्रघ्राणनेत्रेषु सर्वतः ।
वह्न्यर्घीशसंयुक्ताः सादियान्ताः सविन्दवः ।
वह्निमन्त्राः समुद्दिष्टा जिह्वानां सप्तदेशिकैः ।।

ततः कराङ्गन्यासौ यथा—सहस्रार्चिषे अंगुष्ठाभ्यां नमः, स्वस्तिपूर्णाय तर्जनीभ्यां स्वाहा, उत्तिष्ठपुरुषाय मध्यमाभ्यां वषट्, धूमव्यापिने अनामिकाभ्यां हुं, सप्तजिह्वाय कनिष्ठाभ्यां वौषट्, धनुर्द्धराय करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः इत्यादि।

ततो मूर्त्तिन्यासः यथा—मूर्ध्नि ॐ अग्नये जातवेदसे नमः, दक्षांसे ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय नमः, दक्षपार्श्वे ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः, दक्षकट्यां ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः, लिङ्गे ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः, वामकट्यां

ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः, वामपार्श्वे ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः, वामांसे ॐ अग्नये देवमुखाय नमः। सर्वत्र आदौ प्रणवः। तथा च—

मूर्त्तीरष्टौ ततो न्यस्येद्देशिको जातवेदसः ।
मूर्द्धांशपार्श्वकट्यन्धुकटिपार्श्वांसकेषु च ॥
जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहनसंज्ञकः ।
अश्वोदरजसंज्ञोऽन्य पुनर्वैश्वानराह्वयः ॥
कौमारतेजाः स्याद्विश्वमुखो देवमुखः स्मृतः ।
ताराद्यग्निपदाद्याः स्युर्नत्यन्ता वह्निमूर्त्तयः ॥

इसके बाद हवनकर्ता अपने शरीर में अग्नि की सप्तजिह्वाओं का न्यास करे—
लिंगे सरयूं हिरण्मयायै नमः। पायौ षरयूं कनकायै नमः।
मूर्ध्नि शरयूं रक्तायै नमः। वक्त्रे वरयूं कृष्णायै नमः।
घ्राणे लरयूं सुप्रभायै नमः। नेत्रे ररयूं बहुरूपायै नमः।
सर्वगात्रे यरयूं अतिरक्तायै नमः।

सात्त्विक यागकर्म में ही उक्त हिरण्मयादि सप्तजिह्वा न्यास करे। ये सभी सात्त्विक जिह्वायें हैं। काम्य कर्म में अग्नि की राजसिक जिह्वाओं का न्यास करे—
लिङ्गे सरयूं पद्मरागायै नमः। पायौ षरयूं सुवर्णायै नमः।
मस्तके शरयूं भद्रलोहितायै नमः। वक्त्रे वरयूं रोहितायै नमः।
नासिकायां लरयूं श्वेतायै नमः। नेत्रे ररयूं धूमिन्यै नमः।
सर्वगात्रे यरयूं करालिकायै नमः।

मारणादि तामसिक क्रूर कर्म में इस प्रकार न्यास करे—
लिंगे सरयूं विश्वमूर्तये नमः। पायौ षरयूं स्फुलिंगिन्यै नमः।
मस्तके शरयूं धूम्रवर्णायै नमः। वक्त्रे वरयूं मनोजवायै नमः।
नासिकायां लरयूं लोहितायै नम। नेत्रे ररयूं करालिन्यै नमः।
सर्वगात्रे यरयूं काल्यै नमः।

यह विवरण शारदातिलक में है।

करन्यास—
सहस्रार्चिषे अंगुष्ठाभ्यां नमः। स्वस्तिपूर्णाय तर्जनीभ्यां स्वाहा।
उत्तिष्ठ पुरुषाय मध्यमाभ्यां वषट्। धूम्रव्यापिने अनामिकाभ्यां हुं।
सप्तजिह्वायै कनिष्ठाभ्यां वौषट्। धनुर्धराय करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

हृदयादि न्यास—
सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः। स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा।

उत्तिष्ठ पुरुषाय शिखायै वषट्। धूम्रव्यापिने कवचाय हुं।
सप्तजिह्वायै नेत्रत्रयाय वौषट्। धनुर्धराय अस्त्राय फट्।

मूर्तिन्यास—
मूर्ध्नि ॐ अग्नये जातवेदसे नमः।
दक्षांसे अग्नये सप्तजिह्वाय नमः।
दक्षपार्श्वे ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः।
दक्षकट्यां ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः।
लिंगे ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः।
वामकट्यां ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः।
वामपार्श्वे ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः।
वामांसे ॐ अग्नये देवमुखाय नमः।

इस न्यास के विषय में तन्त्र में लिखा है कि साधक हवनकाल में अग्नि का अष्टमूर्ति न्यास करे।

ततो रं वह्न्यासनाय नमः इति वह्नेरासनं कल्पयित्वा मूर्तिं तत्र विचिन्तयेत्—

इष्टं शक्तिं स्वस्तिकाभीतिमुच्चैर्दीर्घैर्दोर्भिर्धारयन्तं जवाभम् ।
होमाकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं ध्यायेद्वह्निं बद्धमौलिं जटाभिः ॥

ततो मेखलानामुपरि बालया विशुद्धैस्तोयैः परिषिच्य मेखलायां गर्भशून्यैर्दर्भैरग्रेण मूलमाच्छादयन् त्रिस्त्रिः परिवेष्टयेत्। ततः प्राचीवर्ज्यं दिक्षु परिधीन् विनिक्षिप्य तत्र प्रादक्षिण्येन ब्रह्मादिदेवताः पूज्याः। पुनर्वह्निं ध्यात्वा तत्र पीठे आवाह्यानेन मन्त्रेण गन्धादिभिः पूजयेत्। ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा इदं पाद्यं अग्नये नमः इत्यादिक्रमेण। मेखलायां वामां ज्येष्ठां रौद्रीं अम्बिकाञ्च पूजयेत्। मध्ये षट्कोणे सरयूं हिरणमयायै नमः, षरयूं कनकायै नमः, शरयूं रक्तायै नमः, वरयूं कृष्णायै नमः, लरयूं सुप्रभायै नमः, ररयूं बहुरूपायै नमः यरयूं अतिरक्तायै नमः। एतासामधिष्ठातृदेवतास्तन्त्रान्तरे—

अमर्त्त्यपितृगन्धर्वयक्षनागपिशाचकाः ।
राक्षसः सप्तजिह्वानामीरिता अधिदेवताः ॥

एवं काम्ये सरयूं पद्मरागायै नमः इत्यादि। क्रूरे सरयूं विश्वमूर्त्तये नमः इत्यादि।

तब रं वह्न्यासनाय नमः से अग्नि के आसन की कल्पना करके उस पर अग्निमूर्ति का ध्यान करे—

इष्टं शक्तिं स्वस्तिकाभीतिमुच्चैर्दीर्घैर्दोर्भिर्धारयन्तं जवाभम्।
हेमाकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं ध्यायेद् वह्निं बद्धमौलिं जटाभिः।।

अग्निदेव के चार हाथ हैं। चारो हाथों में वर, शक्ति, स्वस्तिक और अभय मुद्रायें हैं। अड़हुलपुष्प के समान वर्ण है। स्वर्णालंकारों से भूषित हैं। पद्म के ऊपर आसीन हैं। लोचन तीन हैं। मस्तक पर जटामौलि बद्ध है।

इसके बाद शुद्ध जल से सभी मेखलाओं का अभिषेक ऐं क्लीं सौः से करते हुए मध्यस्थ मेखला के कुछ गर्भशून्य कुश लेकर उनके अग्रभाग से कुश के मूल देश को आच्छादित कर चारो दिशाओं में तीन-तीन बार परिस्तरण करे। तब पूर्वदिशा को छोड़कर अन्य दिशाओं में परिधि के किनारे प्रदक्षिणक्रम से ब्रह्मादि देवताओं की पूजा करे।

पुनः अग्नि का ध्यान कर पीठ में उनका आवाहन करे। गन्धादि द्वारा इस मन्त्र से पूजन करे—ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा इदं पाद्यं अग्नये नमः।

इसी क्रम से अर्घ्य, आचमनीय आदि प्रदान करे। मेखला में ॐ वामायै नमः इत्यादि क्रम से ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका की पूजा करे। मध्य में और षट्कोण में निम्न मन्त्रों से पूजा करे—

सरयूं हिरण्मयायै नमः। षरयूं कनकायै नमः। शरयूं रक्तायै नमः।
वरयूं कृष्णायै नमः। लरयूं सुप्रभायै नमः। ररयूं बहुरूपायै नमः।
यरयूं अतिरिक्तायै नमः।

तन्त्रान्तर में कहा है कि अग्नि की सप्तजिह्वाओं के अधिदेवता क्रमशः अमर्त्य, पितृपुरुष, गन्धर्व, यक्ष, नाग, पिशाच और राक्षस हैं। काम्य कर्म में सरयूं पद्मरागायै नमः इत्यादि रूप से और क्रूर कर्म में सरयूं विश्वमूर्तये नमः इत्यादि रूप से पूजा करे।

यथा गणेशविमर्शिण्याम्—

हिरण्या सप्तहेमाभा शूलपाणेर्दिशि स्थिता ।
वैदूर्यवर्णा कनका प्राच्यां दिशि समाश्रिता ।।
तरुणादित्यसङ्काशा रक्ता जिह्वाग्निसंस्थिता ।
कृष्णानीलाभ्रसङ्काशा नैर्ऋत्यां दिशि संस्थिता ।।
सुप्रभा पद्मरागाभा वारुण्यां दिशि संस्थिता ।
अतिरक्ता जवाभा सा वायव्या दिशि संस्थिता ।
बहुरूपा यथाख्याता दक्षिणोत्तरसंस्थिता ।।

ततः केशरेषु अग्न्यादिकोणे मध्ये दिक्षु च ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय: नमः, ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, ॐ उत्तिष्ठ पुरुषाय शिखायै वषट्, ॐ धूम्रव्यापिने कवचाय हुं, ॐ सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ धनुर्द्धराय अस्त्राय फट्। ततः पूर्वादिदलेषु ॐ अग्नये जातवेदसे नमः, ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय नमः,

ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः, ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः, ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः, ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः, ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः, ॐ अग्नये देवमुखाय नमः। इति वह्निमूर्त्तीः शक्तिस्वस्तिकधारिणीः सम्पूज्य लोकपालान् स्वस्वदिक्षु पूजयेत्।

ततो हस्ताभ्यां स्रुक्स्रुवौ गृहीत्वा अधोमुखौ कृत्वा वह्नौ त्रिवारं प्रतप्य दर्भानादाय यथाक्रमं तदग्रमूलमध्यानि शोधयित्वा दक्षिणहस्तेन सम्प्रोक्ष्यः पुनः प्रतप्य दर्भानग्नौ प्रक्षिप्य आत्मनो दक्षिणभागे कुशान्तरे स्थापयेत्।

गणेशविमर्शिनी तन्त्र में लिखा है कि अग्नि की हिरण्या नामक जिह्वा की आभा तप्त काञ्चन के समान है। अग्नि के ईशान कोण में स्थिति है। कनका नामक जीभ का वर्ण वैडूर्य के समान है। स्थिति पूर्व दिशा में है। रक्ता की आभा तरुण दिव्य के समान है। स्थिति अग्निकोण में है। कृष्णा का वर्ण नीला है। स्थिति नैर्ऋत्य कोण में है। सुप्रभा की आभा पद्मराग मणि के समान है। स्थिति पश्चिम दिशा में है। अतिरक्ता की आभा अड़हुल-फूल के समान है। स्थिति वायु कोण में है। बहुरूपा बहुरूपिणी है और उसकी स्थिति उत्तर दिशा में है।

तब केशर के अग्न्यादि कोणों, मध्य और दिशाओं में षडंग पूजा करे—
ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः। ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा।
ॐ उत्तिष्ठ पुरुषाय शिखायै वषट्। ॐ धूम्रव्यापिने कवचाय हुं।
ॐ सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ धनुर्धराय अस्त्राय फट्।

तब पूर्वादि दलों में अग्नि की शक्तिधारिणी आठ मूर्तियों की पूजा करे—
ॐ अग्नये जातवेदसे नमः। ॐ अग्नये सप्तजिह्वायै नमः।
ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः। ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः।
ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः। ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः।
ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः। ॐ अग्नये देवमुखाय नमः।

तब पूर्वादि दिशाओं में दश दिक्पालों की पूजा करे। इसके बाद दोनों हाथों में स्रुक् और स्रुव लेकर अधोमुख कर अग्नि के ऊपर तीन बार तपाये। तब स्रुक् और स्रुव के अग्र, मध्य और मूल भाग का मार्जन कुश से करे। दाहिने हाथ से प्रोक्षण करे। पुनः अग्नि पर तप्त करके अपनी दाहिनी ओर कुशास्तरण पर उन्हें स्थापित करे।

तत आज्यस्थालीमात्मसम्मुखमानीय अस्त्रजप्तेन वारिणा तां संशोध्य तस्यामाज्यं निक्षिप्य वीक्षणादिभिस्तत्तत् संस्कुर्यात्।

ततो वायव्येऽङ्गारमुद्धृत्य तेषु नमः इति मन्त्रेणाज्यस्थालीं निवेशयेत्। ततो

दर्भयुग्मं सन्दीप्याज्ये क्षिप्त्वा अनेन निक्षिपेत् । नमः इति मन्त्रेण दीप्तदर्भयुग्मेनाज्यं नीराज्यं तद्दर्भयुग्मं अग्नौ विसर्जयेत्।

ततः फडिति मन्त्रेण घृते प्रज्वलितान् दर्भान् प्रदर्श्य तानग्नौ क्षिपेत्। ततो घृतं गृहीत्वा पुनरङ्गारं वह्नौ संयोज्य जलं स्पृष्ट्वा दक्षिणहस्तोपरिभावेनाधोमुखेनांगुष्ठोपकनिष्ठाभ्यां प्रादेशसम्मितौ दर्भौ धृत्वा अस्त्रेण घृतं पवित्रीकृत्य नमः इति मन्त्रेण तत्कुशाभ्यां आत्मसम्मुखे घृतसम्प्लवं कुर्यात्।

ततः प्रादेशमात्रं सग्रन्थिदर्भयुग्मं घृतान्तरे क्षिप्त्वा द्वौ भागौ कृत्वा शुक्लकृष्णपक्षौ स्मरेत्। ततो वामे इडानाडीं दक्षिणे पिङ्गलां मध्ये सुषुम्नां ध्यात्वा होमं कुर्यात्।

तत्पश्चात् आज्य स्थाली को अपने सामने लाकर फट् मन्त्र से मन्त्रित जल से उसे धोकर उसमें आज्य डालकर वीक्षणादि से उसका संस्कार करे। इसके बाद अग्नि के वायु कोण से अंगार उठाकर उसके ऊपर नमः मन्त्र से आज्यस्थाली को स्थापित करे। फिर दो कुशों को जलाकर उन जलते हुए कुशों को आज्य के मध्य में डाल दे। उन्हीं दोनों कुशों से घी लेकर नमः मन्त्र से नीराजन कर उन प्रदीप्त दोनों दर्भों को भी अग्नि के मध्य छोड़ दे।

घृत में प्रज्वलित दर्भों को दिखाकर उस दर्भराशि को अग्नि में विसर्जित कर दे। तब घी को लेकर पुनः उक्त अंगार को अग्नि में डाल दे।

जल का स्पर्श कर दाँयें हाथ के ऊपर अधोमुख बाँयें हाथ को रखकर दाँयें हाथ के अंगुष्ठ और अनामिका से प्रादेश बराबर दो कुशपत्र लेकर फट् से घी का पवित्रीकरण कर नमः से उन कुशों द्वारा अपने सामने घी को सम्प्लावित करे।

तब प्रादेशमात्र ग्रन्थियुक्त दो दर्भ घी में छोड़ दे। उस घी को दो भागों में विभक्त कर उनमें से एक भाग को शुक्ल पक्ष और दूसरे को कृष्ण पक्ष मान ले। उस घी के बाँयीं ओर इड़ा का और दाँयीं ओर पिङ्गला का तथा मध्य में सुषुम्ना नाड़ी का ध्यान करके हवन करे।

तद्यथा—नमः इति मन्त्रेण स्रुवेण दक्षिणभागादाज्यमादाय अग्नेर्दक्षिणलोचने ॐ अग्नये स्वाहा इति जुहुयात्। तद्वद्वामतः आज्यमादाय ॐ सोमाय स्वाहा इति अग्नेर्वामलोचने जुहुयात्। तन्मध्यभागादाज्यमादाय अग्नेर्भाललोचने ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा इति जुहुयात् ।

ततो नमः इति मन्त्रेण स्रुवेणाज्यं दक्षिणभागादादाय वह्निमुखे ॐ अग्नये स्विष्टिकृते स्वाहा इति जुहुयात्। सर्वत्राहुतिसम्पातः पात्रान्तरे।

ततो महाव्याहृतिहोमः—ॐ भूः स्वाहा ॐ भुवः स्वाहा ॐ स्वः स्वाहा।

ततो वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा इत्यनेन त्रिवारं हुत्वा अग्नेर्गर्भाधानादिक्रियाः सम्पादयेत्। तद्यथा—

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं जातकर्म नामकरणं निष्क्रमणं अन्नप्राशनं चूडाकरणम् उपनयनं महाव्रतम् उपनिषत्स्नानं गोदानं उद्वाहाख्यम्। क्रूरकर्मणि मारणान्तम्। तथा च—

शुभेषु स्युर्विवाहान्ता मृत्व्यन्तो क्रूरकर्मसु ।

नमः मन्त्र से स्रुव द्वारा आज्य स्थाली के दाँयें भाग से घी लेकर ॐ अग्नये स्वाहा से अग्नि के दाँयें नेत्र में आहुति दे। बाँयें भाग से घी लेकर ॐ सोमाय स्वाहा से बाँयें नेत्र में आहुति दे। मध्य से घी लेकर ॐ अग्निषोमाभ्यां स्वाहा से तीसरे नेत्र में आहुति दे। तब नमः से स्रुव द्वारा दाँयें भाग से घी लेकर 'ॐ अग्नये स्विष्टिकृते स्वाहा' से अग्नि के मुख में आहुति दे। हवन के समय आहुतिशेष को एक पात्र में रक्खे।

इसके बाद ॐ भूः स्वाहा। ॐ भुवः स्वाहा। ॐ स्वः स्वाहा से महाव्याहृति हवन करे। तब ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय से तीन आहुतियाँ देकर अग्नि का गर्भाधानादि संस्कार करे।

गर्भधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकारण, उपनयन, महाव्रत = वेदपाठ, उपनिषद स्नान अर्थात् वेदसमाप्ति के अन्त में स्नान (समावर्तन), गोदान और विवाह—इन सब संस्कारों को करे। क्रूर कर्म में मारण संस्कार तक के संस्कार करे।

तत्र क्रमः—ॐ अग्नेर्गर्भाधानं सम्पादयामि स्वाहा। इति प्रतिकर्माणि क्रमेणाज्याहुतीर्जुहुयात्। सुन्दरीपक्षे तु ॐ अग्नेर्गर्भाधानं कल्पयामि ऐं नमः त्रे इत्येकैकाहुतिं दद्यात् इति कल्पसूत्रे प्रतिपादितम्। नामकरणे तु—

मूलदेवीं समभ्यर्च्य तन्नामकरणाय च ।
हुनेत्पञ्चमबाणेन आहुतीनां त्रयं तथा ।
कामाग्निस्तवं हुताशनेति नाम कुर्यादनन्तरम् ।।

ततो वह्नौ पितरौ (वागीश्वरवागीशश्वर्यौ) सम्पूज्यात्मनि योजयित्वा मूलाग्रमध्येषु घृतप्लुताः समिधः पञ्च मनसा ध्यात्वा जुहुयात्।

ततो वह्नौ पूर्वोक्तजिह्वाङ्गमूर्त्तीनाम् एकैकाहुतिं दत्त्वा स्रुवेण चतुर्वारमाज्यमादाय स्रुचि निधाय स्रुवेण तां पिधाय उत्तिष्ठन् ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा। वौषडित्यनेन जुहुयात्।

उक्त संस्कारों की विधि यह है कि ॐ अग्नेर्गर्भाधानं सम्पादयामि स्वाहा—इसी

प्रकार सभी कर्मों में नामोल्लेख कर क्रमशः एक-एक आहुति घी की दे।

सुन्दरी विद्या के सम्बन्ध में ॐ अग्नेर्गर्भाधानं सम्पादयामि ऐं नमः के समान अग्नि के गर्भाधानादि संस्कार के लिये एक-एक आहुति प्रदान करे, ऐसा कल्पसूत्र में प्रतिपादित किया गया है।

नामकरण के समय मूल देवता की पूजा कर नामकरण के लिये ह्रीं ह्रीं इस पंचम वाण मन्त्र से तीन आहुतियाँ दे। तब हुताशनः त्वं कामाग्निः कहकर नामकरण करे। तब वह्नि के माता-पिता वागीश्वरी और वागीश्वर की पूजा करे। तब आत्मा से उनका संयोजन कर मूल, अग्र, मध्य देश को घृतप्लुत कर मन ही मन देवता का ध्यान करते हुए पञ्च समिधाओं से हवन करे।

तब अग्नि की पूर्वोक्त सप्त जिह्वाओं, षडंगों और अष्टमूर्तियों में से प्रत्येक को एक-एक आहुति देकर स्रुव द्वारा चार बार आज्य लेकर स्रुच में स्थापित करे। स्रुव द्वारा उसका आच्छादन कर खड़े होकर ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा वौषट् से हवन करे।

ततो विघ्नेश्वरमन्त्रेण दशाहुतीर्जुहुयात्। तद्यथा—ॐ स्वाहा, ॐ श्रीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा।

तथा च प्रपञ्चसारे—

ताराद्यैर्दशभिर्देवि पूर्वपूर्वसमन्वितैः ।
मनुना गाणपत्येन हुनेत्पूर्वं दशाहुतीः ॥

ततो देवतायाः पीठं वह्नौ समभ्यर्च्य वह्निरूपां तां विचिन्त्य पञ्चोपचारादिभिः पूजयेत्।

सुन्दरीपक्षे तु षडाननमन्त्रेण अङ्गमन्त्रेण च सम्पूज्य ॐ ह्रीं श्रीं समस्तप्रकट-गुप्तगुप्ततरसम्प्रदायकुलकौलिनिगर्भरहस्यातिरहस्यपरमातिरहस्ययोगिनीचक्र-श्रीपादुकां पूजयामीति विशेषः।

तारादौ तु ब्राह्म्यादि-लक्ष्म्यादि-इन्द्रादि-वज्रादींश्च पूजयेत् इति विशेषः।

तब विघ्नेश्वर मन्त्र से दश आहुतियाँ दे—१. ॐ स्वाहा, २. ॐ श्रीं स्वाहा, ३. ॐ श्रीं ह्रीं स्वाहा, ४. ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा, ५. ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं स्वाहा, ६.

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं स्वाहा, ७. ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये स्वाहा, ८. ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद स्वाहा, ९. ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं स्वाहा, १०. ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौ गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा।

ऐसा प्रपञ्चसार में लिखा है। अग्नि में मूल देवता के पीठदेवताओं का पूजन कर देवता का अग्निस्वरूप ध्यान कर उनका पूजन यथाशक्ति पञ्चोपचारादि से करे।

सुन्दरी के हवन में षडानन मन्त्र और अंगमन्त्र से पूजा कर ॐ ह्रीं श्रीं समस्तप्रकटगुप्तगुप्ततरसम्प्रदायकुलकौलिनीगर्भरहस्यातिरहस्यपरमातिरहस्ययोगिनीचक्रश्रीपादुकां पूजयामि से पूजन करे।

तारादि देवताओं के हवन में विशेष यह है कि ब्राह्मी आदि अष्ट शक्तियों, लक्ष्मी आदि देवियों, इन्द्रादि लोकपालों और वज्रादि आयुधों की पूजा करे।

ततो वह्निमुखे मूलमन्त्रेण घृतेन पञ्चविंशाहुतीर्जुहुयात्। ततो वह्निदेवतयोरात्मना सह ऐक्यं विभाव्य मूलेनाज्येन एकादशाहुतीर्जुहुयात्। ततस्तत्तद्देवताया आवरणदेवतानां प्रत्येकैकाहुतीर्जुहुयात्। ततः सङ्कल्पिततत्तत्कल्पोक्तविहितद्रव्यैर्होमं कुर्यात्। तद्यथा—

बहुरूपाख्यजिह्वायां जुहुयात्सर्वकर्मणि ।
यतः समस्तसिद्धीनां सावित्री बहुरूपिका ।। इति।

यामले—

कुण्डमध्ये हिरण्याख्या वश्याकर्षणकर्मणि ।
कनकाख्या स्तम्भनादौ रक्ताख्या द्वेषणे तथा ।।
कृष्णाख्या मारणे शस्ता सुप्रभा शान्तिकर्मणि ।
उच्चाटनेऽतिरक्ताख्या बहुरूपा सुसिद्धिदा ।।

ॐ भूरग्नये पृथिव्यै महते च स्वाहा। ॐ भुवो वायवे अन्तरीक्षाय च दिवे महते च स्वाहा। ॐ स्वश्चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यो दिग्भ्यो महते च स्वाहा। ॐ भूर्भुवः स्वश्चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यो दिग्भ्यो महते च स्वाहा।

तब अग्नि के मुख में मूल मन्त्र से आज्य की पच्चीस आहुतियाँ देकर अग्नि और देवता के साथ अपने ऐक्य की भावना कर मूल मन्त्र से आज्य द्वारा ग्यारह आहुतियाँ दे। आवरणदेवताओं में से प्रत्येक को एक-एक आहुति दे।

तदनन्तर संकल्प के बाद कल्प में कथित विहित द्रव्यों से हवन करे। प्रमाण में लिखा है कि सब कर्मों में अग्नि की बहुरूपा नामक जिह्वा के लिये हवन करे; क्योंकि

यह जिह्वा सर्वसिद्धिदात्री है।

यामल में लिखा है कि वशीकरण और आकर्षण कार्यों में हिरण्या, स्तम्भन में कनका, विद्वेषण में रक्ता, मारण में कृष्णा, शान्ति में सुप्रभा और उच्चाटन में अतिरक्ता जिह्वा में आहुति दे। बहुरूपा जिह्वा सर्वसिद्धिप्रदायिनी है।

तब निम्न मन्त्रों से चार आहुतियाँ दे—ॐ भूरग्नये पृथिव्यै महते स्वाहा, ॐ भुवो वायवे अन्तरीक्षाय च दिवे महते च स्वाहा, ॐ स्वश्चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यो दिग्भ्यो महते च स्वाहा एवं ॐ भुर्भुवः स्वः चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यो दिग्भ्यो महते स्वाहा।

काम्यहोमे अंगुलिनियमस्तु—

तर्जन्यंगुष्ठयोगात्तु शान्त्यर्थं जुहुयान्नरः ।
दाहज्वराभिचाराणामनामांगुष्ठमुद्रया ।
विद्वेषोच्चाटने चैव मारणे च प्रशस्यते ।।
प्रदेशिनीमध्यमाभ्यां वधोपशमनं भवेत् ।
वपुर्मेधा तथा कान्तिर्नीतिपुष्ट्यादिके तथा ।।
आकर्षणानि सर्वाणि दूरादर्थगतानि च ।
तर्जन्यनामिकायोगात्सद्य एव भवन्ति हि ।।
मोहनं वश्यकामञ्च प्रीतिसंवर्द्धनन्तथा ।
प्रदेशिनी कनिष्ठाभ्यां सर्वमेतत्प्रसिध्यति ।।
मोहनाकर्षणञ्चैव क्षोभणोच्चाटनं तथा ।
कनिष्ठामध्यमांगुष्ठसंयोगेन तु लीलया ।।
विधियुक्तेन होमेन तथा द्रव्यानुयोगतः ।
सर्वे मन्त्राः प्रसिध्यन्ति मुद्रामन्त्रप्रयोगतः ।।

काम्य होम में होमार्थ अंगुलि-नियम—काम्य और अभिचार आदि कर्मों में जिन-जिन अंगुलियों के योग से हवन करना चाहिये, उसका विवरण इस प्रकार का है—शान्ति कर्म में अंगुष्ठ और तर्जनी के योग से एवं दाह-ज्वरादि अभिचार क्रिया में अंगुष्ठ-अनामा के योग से आहुति दे।

विद्वेषण-उच्चाटन और मारण क्रिया में अनामा तथा अंगुष्ठ के योग से हवन करे। तर्जनी और मध्यमा के योग से हवन करने से मृत्यु का निवारण होता है।

देहपुष्टि, मेधा और कान्तिवृद्धि, नीतिलाभ, पुष्टि-साधना तथा समस्त आकर्षण क्रियाओं में तर्जनी और अनामा के योग से हवन करने से सद्यः फल मिलता है।

मोहन, वशीकरण और प्रीतिवर्द्धक क्रियाओं में तर्जनी और अनामा के योग से हवन

करने पर तुरन्त फल मिलता है। मोहन, वशीकरण और प्रीतिवर्द्धक क्रिया में तर्जनी-कनिष्ठा के योग से हवन करे।

मोहन-आकर्षण-क्षोभण और उच्चाटन में कनिष्ठा-मध्यमा और अंगुष्ठ के योग से हवन करे। विहित द्रव्य द्वारा मुद्रा और मन्त्रप्रयोगपूर्वक सविधि हवन करने से सभी मन्त्र सिद्ध होते हैं।

ततो होमद्रव्याणि स्रुवेण स्रुचि निधाय, तेनाच्छाद्य, तौ नाभौ (नाभिसमीपे) संस्थाप्य, इतः पूर्वमित्यादिमन्त्रेण मूलमन्त्रेण च पूर्णाहुतिं दत्त्वा संहारमुद्रया आत्मन्युद्वास्य पुनर्व्याहृतिभिर्हुत्त्वा, अग्नेर्जिह्वाङ्गमूर्त्तीनामेकैकाहुतिं दद्यात्।

ततः पूर्ववन्मेखलोपरि अद्भिः परिषिच्यात्मनि संहारमुद्रया पावकं योजयित्वा परिधीन् सपरिस्तरान् अग्नौ क्षिपेत्। विशेषस्तु नैमित्तिके कर्मणि एतान् दहेत्। नित्ये कर्मणि न दहेत्। तथा च शारदायाम्—

नैमित्तिके दहेन्मन्त्री नित्ये न तु दहेदिमान् ।

ततो दक्षिणां दद्यात्। तथा च ज्ञानमालायाम्—

सुवर्णमयुते दद्याल्लक्ष्ये दशसुवर्णकम् ।
दक्षिणा तु प्रदातव्या यथा होमे तथा जपे ।
अलाभे दक्षिणा ज्ञेया गुरुसन्तोषकारिणी ॥ इति।

यदि दीक्षाङ्गहोमस्तदा देवताया आवरणदेवतायाश्च होमानन्तरम्। आज्यान्वितैस्तिलैः कल्पविहितैर्द्रव्यैर्वा देवताया अष्टोत्तरसहस्रं शतं वा जुहुयात्।

स्रुव द्वारा हवनद्रव्य स्रुक में स्थापित कर उसे घी से आच्छादित कर नाभि के समीप रख पूर्वोक्त क्रम से इतः पूर्वं इत्यादि मन्त्र से पूर्णाहुति दे। तब संहारमुद्रा से देवता को अपनी आत्मा में संस्थापित कर पुनः महाव्याहृति होम और अग्नि की सप्त जिह्वाओं, षडंगों तथा अष्टमूर्तियों में से प्रत्येक को एक-एक आहुति दे।

इसके बाद कुण्ड की मेखला के ऊपर जल से अर्चन करे। संहारमुद्रा से आत्मा का अग्नि से सम्मिलन कराकर परिस्तरणादि सहित सभी परिधि द्रव्य अग्नि में डाल दे।

शारदातिलक में लिखा है कि काम्य कर्म में ही परिस्तरण का निक्षेप करे। नित्य कर्म में उसका निक्षेप न करे।

तब आचार्य को दक्षिणा दे। ज्ञानमाला में लिखा है कि दश हजार हवन में सोना १० ग्राम एवं लक्ष होम में १०० ग्राम सोना दक्षिणा में दे। होम और जप की दक्षिणा का नियम एक समान समझे। सुवर्ण की दक्षिणा देने में असमर्थ हो तो जिस प्रकार गुरुदेव सन्तुष्ट हों, उसी प्रकार दक्षिणा दे।

जब दीक्षाकार्य के अंगरूप हवन करना हो तव आवरणदेवताओं के हवन के बाद आज्यान्वित तिल या सतत् कल्पोक्त द्रव्य द्वारा मूल देवता का एक सौ आठ या एक हजार आठ हवन करे।

ततः सुधौतदन्ताढ्यं शिष्यं स्नातं कुण्डान्तिकमानीय दिव्यदृष्ट्या तं विलोक्य तच्चैतन्यं गुरुरात्मनि संयोज्य अध्वविशोधनं कुर्यात्। तद्यथा—कुशगुच्छेन शिष्यस्य पादं स्पृशन् ॐ शोधयामि कलाध्वनिं स्वाहेति आज्यान्वितैस्तिलैरष्टाहुतीर्जुहुयात्। एवमन्धुं (पायुं) स्पृष्ट्वा ॐ शोधयामि तत्त्वाध्वानं स्वाहा। नाभिं स्पृष्ट्वा ॐ शोधयामि भुवनाध्वानं स्वाहा। हृदयं स्पृष्ट्वा ॐ शोधयामि वर्णाध्वानं स्वाहा। भालं स्पृष्ट्वा ॐ शोधयामि पदाध्वानं स्वाहा। मूर्द्धानं स्पृष्ट्वा ॐ शोधयामि मन्त्राध्वानं स्वाहा। सर्वाष्टाहुतीर्जुहुयात्। एवं क्रमेण तत् परशिवे संहृत्य, पुनः सृष्टिवर्त्मना तत्तदाहुतिभिः क्रमेण जनयेत्।

तद्यथा—मन्त्राध्वनं पदाध्वा पदाध्वनो वर्णाध्वा वर्णाध्वनो भुवनाध्वा भुवनाध्वनस्तत्त्वाध्वा तत्त्वाध्वनः कलाध्वा। एवं क्रमेण जुहुयात्। ततो दिव्यदृष्ट्या तं शिष्यं विलोकयन् आत्मस्थितं तच्चैतन्यं शिष्ये नियोजयेत्। ततः स्रुचा पूर्णाहुतिदानादि कर्म समाप्य, पूर्वोक्तक्रमेण दीक्षां कारयेत्।

इति बृहद्धोमपद्धतिः

●

तब दन्तधावन कर सुस्नात शिष्य को कुण्ड के निकट लाकर उसे दिव्य दृष्टि द्वारा देखते हुए गुरुदेव उसके चैतन्य को आत्मा से जोड़कर अध्वविशोधन करे।

कुशगुच्छ से शिष्य के पैरों का स्पर्श करते हुए १. ॐ शोधयामि कलाध्वानं स्वाहा से सतिल घी द्वारा आठ आहुतियाँ दे।

इसी प्रकार गुह्य, नाभि, हृदय, ललाट, मस्तक का स्पर्श कर क्रमशः निम्न मन्त्रों में से प्रत्येक से आठ-आठ आहुतियाँ दे—

२. ॐ शोधयामि तत्त्वाध्वानं स्वाहा। ३. ॐ शोधयामि भुवनाध्वानं स्वाहा। ४. ॐ शोधयामि वर्णाध्वानं स्वाहा। ५. ॐ शोधयामि पदाध्वानं स्वाहा। ६. ॐ शोधयामि मन्त्राध्वानं स्वाहा।

इस प्रकार हवन करने के बाद शिष्य को परमशिव में स्थापित करके पुनः सृष्टिपथ द्वारा विपरीतक्रम से हवन करे। तब शिष्य का उत्पादन करे।

विपरीतक्रम यह है कि मन्त्राध्वा के बाद पदाध्वा, वर्णाध्वा, भुवनाध्वा, तत्त्वाध्वा और कलाध्वा का हवन करे। अर्थात् ॐ शोधयामि मन्त्राध्वानं स्वाहा इत्यादि क्रम से

आहुति दे। तब दिव्य दृष्टि से शिष्य को देखकर शिष्य में आत्मचैतन्य स्थापित करे। तब स्रुक् द्वारा पूर्णाहुति-दानादि क्रिया समाप्त कर दीक्षाप्रकरणोक्त नियमानुसार दीक्षा दे।

होमद्रव्याणां परिमाणम्

कर्षमात्रं घृतं होमे शुक्तिमात्रं पयः स्मृतम् ।
उक्तानि पञ्चगव्यानि तत्समानि मनीषिभिः ।।
तत्समं मधुदुग्धान्नमक्षमात्रमुदाहृतम् ।
दधि प्रसृतिमात्रं स्याल्लाजाः स्युर्मुष्टिसम्मिताः ।।
पृथुकास्तत्प्रमाणाः स्युः शक्तयोऽपि तथोदिताः ।
गुडं पलार्द्धमानं स्यात् शर्करापि तथा स्मृता ।।
ग्रासार्द्धं चरुमानं स्यादिक्षुः पर्वावधिः स्मृतः ।
एकैकं पत्रपुष्पाणि तथापूपानि कल्पयेत् ।।
कदलीफलनारङ्गं फलान्येकैकशो विदुः ।
मातुलुङ्गं चतुःखण्डं पनसं दशधा कृतम् ।।
अष्टधा नारिकेलानि खण्डितानि विदुर्बुधाः ।
त्रिधा कृतं फलं बिल्वं कपित्थं खण्डितं द्विधा ।
उर्वारुकफलं होमे कथितं खण्डितं त्रिधा ।।
फलान्यन्यान्यखण्डानि समिधः स्युर्दशांगुलाः ।
दूर्वात्रयं समुद्दिष्टं गुडूची चतुरंगुला ।।
व्रीहयो मुष्टिमात्राः स्युर्मुद्गा माषा यवा अपि ।
तण्डुलाः स्युस्तदर्द्धांशाः कोद्रवा मुष्टिसम्मिताः ।।
गोधूमा रक्तकमला विहिता मुष्टिमानतः ।
तिलाश्चुल्लुकमात्राः स्युः सर्षपास्तत्प्रमाणतः ।।
शुक्तिप्रमाणं लवणं मरिचान्यपि विंशतिः ।
[1]पुरं वदरमानं स्याद्रामठं[2] तत्समं स्मृतम् ।।
चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुंकुमानि च ।
तिन्तिडीबीजमानानि समुद्दिष्टानि देशिकैः ।।

हवनद्रव्य का परिमाण—घृत होम में प्रत्येक आहुति में दो तोले = २० ग्राम घी, दूध हवन में चार तोले = ४० ग्राम दूध होना चाहिये। पञ्चगव्य हवन में ४० ग्राम पञ्चगव्य, मधुहवन में २० ग्राम मधु, दुग्धान्न हवन में २० ग्राम दुग्धान्न, दधिहोम में चुल्लू भर दही लेकर हवन करे। लावा, चूड़ा और सत्तू के हवन में एक-एक मुट्ठी की

---

[1] 'पुरं' गुग्गुलमित्यर्थः। [2] 'रामठं' हिङ्गुमिति भावः।

आहुति दे। गुड़ और शक्कर हवन में २० ग्राम, चरु होम में आधा ग्रास, ईख हवन में एक-एक पर्व, पत्र-पुष्प या पिष्टक हवन में एक-एक से आहुति दे। केला, नारंगी होम में एक-एक से आहुति दे। मातुलुंग हवन में चौथाई भाग से, कटहल हवन में दशवें भाग से आहुति दे।

नारिकेल हवन में आठवें भाग से, वेल हवन में तीसरे भाग से, कपित्थ हवन में आधा से, उर्वारुक हवन में तीसरे भाग से और अन्यान्य फलों के होम में एक-एक फल से आहुति दे।

समिध होम में दशांगुल बराबर समिधा से, दूर्वा होम में तीन दूबों से, गुडूची हवन में चार अंगुल बराबर खण्ड से और धान्य, मूँग यव के हवन में एक-एक मुट्ठी से आहुति देनी चाहिए। तण्डुल हवन में आधी मुट्ठी भर, कोदो-गेहूँ-रक्तशालि होम में एक मुट्ठी से, तिल और सरसों में गण्डूष के बराबर, नमक हवन में दो तोले = २० ग्राम, मरिच हवन में २० मरिच, गुग्गुल हवन में और हिंग होम में बेर के बराबर, चन्दन-अगर-कपूर-कस्तूरी और कुंकुम हवन में इमली के बीज के बराबर लेकर आहुति डाले।

वैश्वानरं स्थितं ध्यायेत्समिद्धोमेषु देशिकः ।
शयानमाज्यहोमेषु निषण्णं शेषवस्तुषु ।।
अस्यान्तर्जुहुयाद्वह्नेर्विपश्चित्सर्वकर्मसु ।
कर्णहोमे भवेद्व्याधिर्नेत्रेऽन्यत्वं समीरितम् ।
नासिकायां मनःपीडा मस्तके धनसंक्षयः ।।
यतः काष्ठं ततः श्रोत्रं यतो धूमोऽत्र नासिका ।
यत्राल्पज्वलनं नेत्रं यतोऽङ्गारस्ततः शिरः ।
यत्र प्रज्वलिता ज्वाला सा जिह्वा जातवेदसः ।।
स्वर्णसिन्दूरबालार्ककुङ्कुमक्षौद्रसन्निभः ।
सुवर्णरितसो वर्णः शोभनः परिकीर्त्तितः ।।
भेरीवारिदहस्तीन्द्रनिनादोऽग्निः शुभावहः ।
नाशचम्पकपुन्नागपाटलायूथिकानिभः ।।
पद्मेन्दीवरकह्लारसर्पिर्गुग्गुलुसन्निभः ।
पावकस्य शुभो गन्ध इत्युक्तस्तन्त्रवेदिभिः ।।
प्रदक्षिणास्त्यक्तकम्पाश्छत्राभाः शिखिनः शिखाः ।
सुखदा यजमानस्य राज्यस्यापि विशेषतः ।।
कुन्देन्दुधवलो धूमो वह्नेः प्रोक्तः शुभावहः ।
कृष्णः कृष्णगतेर्वर्णो यजमानं विनाशयेत् ।।

श्वेतो राज्यं निहन्त्याशु वायसस्वरसन्निभः ।
खरस्वरसमो वह्नेर्ध्वनिः सर्वविनाशकृत् ।
पूतिगन्धो हुतभुज्यो होतुर्दुःखप्रदो भवेत् ।।
छिन्ना वृत्ता शिखा कुर्यान्मृत्युं धनपरिक्षयम् ।
शुकपक्षनिभो धूमः पारावतसमप्रभः ।
हानिं तुरगजातीनां गवाञ्च कुरुतेऽचिरात् ।।
एवंविधेषु दोषेषु प्रायश्चित्ताय देशिकः ।
मूलेनाज्येन जुहुयात् पञ्चविंशतिमाहुतीः ।।

इति होमप्रकरणं समाप्तम्

●

समिधा से हवन करते समय अग्नि को खड़े हुए, आज्य हवन में लेटे हुये और अन्यान्य द्रव्यों के हवन में बैठा हुआ ध्यान करे।

सभी कार्यों में अग्नि के मुख में आहुति दे। कर्ण प्रदेश में आहुति देने से हवनकर्ता को व्याधि होती है। नेत्र में आहुति देने से अन्धापन, नाक में आहुति देने से मानसिक-कष्ट और मस्तक पर आहुति देने से धनक्षय होता है।

जिस भाग में काष्ठ हो, वही भाग अग्नि का कर्ण है। जिस भाग में धुआँ हो, वह नाक है। जिस भाग में कम ज्वाला हो, वह आँख है। जिस भाग में अंगार हो, वह मस्तक है। जिस भाग में समुज्वल शिखा हो, वही भाग अग्नि की जीभ है। जीभ में ही आहुति देनी चाहिये।

हवनकाल में अग्नि का वर्ण सुनहला, सिन्दूरी, बालार्क या कुंकुम के समान हो अथवा मधु के समान हो तो वह शुभ फलदायक होता है।

हवन के समय अग्नि का शब्द ढोल, मेघ या हाथी की चिग्घाड़ के समान गम्भीर हो तो शुभ होता है।

हवनकाल में अग्नि का गन्ध नागकेशर, चम्पा, पुन्नाग, गुलाब, जूही, कमल, इन्दीवर, कल्हार, घी या गुग्गुल की गन्ध के समान हो तो वह शुभ फलदायक होता है।

अग्निशिखा दक्षिणावर्त्त, कम्पविहीन और छत्राकृति होने से यजमान और देश का शुभ होता है।

हवनकाल में धुआँ कुन्दपुष्प और इन्दुवत् शुभ्र वर्ण हो तो शुभ होता है। कृष्णवर्ण का धुआँ हो तो यजमान का नाश होता है। अग्नि का वर्ण शुभ्र होने से राज्य नष्ट होता है। अग्नि में कौए या गदहे जैसा शब्द हो तो उस हवन से सर्वस्व नाश होता है।

अग्निशिखा छिन्न या वृत्ताकार हो तो यजमान की धनक्षय के साथ मृत्यु होती हैं। अग्नि का धुआँ सुग्गा या कबूतर के पंख-जैसा हो तो यजमान की पशु-सम्पत्ति का नाश होता है।

मूल मन्त्र से पच्चीस आहुतियाँ देने से उक्त दोषों की शान्ति होती है।

षट्कर्मलक्षणम्

शारदायाम्—

अथाभिधास्ये तन्त्रेस्मिन्सम्यक्षट्कर्मलक्षणम् ।
सर्वतन्त्रानुसारेण प्रयोगफलसिद्धिदम् ॥
शान्तिवश्यस्तम्भनानि विद्वेषोच्चाटने ततः ।
मारणान्तानि शंसन्ति षट्कर्माणि मनीषिणः ॥
रोगकृत्याग्रहादीनां निरासः शान्तिरीरिता ।
वश्यं जनानां सर्वेषां विधेयत्वमुदीरितम् ॥
प्रवृत्तिरोधः सर्वेषां स्तम्भनं तदुदीरितम् ।
स्निग्धानां द्वेषजननं मिथो विद्वेषणं मतम् ॥
उच्चाटनं स्वदेशादेर्भ्रंशनं परिकीर्त्तितम् ।
प्राणिनां प्राणहरणं मारणं तदुदाहृतम् ।
स्वदेवतादिक्कालादीन् ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत् ॥
रतिर्वाणी रमा ज्येष्ठा दुर्गा काली यथाक्रमम् ।
षट्कर्मदेवताः प्रोक्ताः कर्मादौ ताः प्रपूजयेत् ॥

काली भद्रकाली।

ईशचन्द्रेन्द्रनिर्ऋतिवायव्यग्नीनां दिशो मताः ।
सूर्योदयं समारभ्य घटिकादशकं क्रमात् ॥
ऋतवः स्युर्वसन्ताद्या अहोरात्रं दिने दिने ।
वसन्तग्रीष्मवर्षाख्यशरद्धेमन्तशैशिराः ॥

अत्र घटिका दण्डाः। यद्वा—

अर्द्धरात्रं शरत्काली हेमन्तश्च प्रभातकः ।
पूर्वाह्नो वै वसन्तः स्यान्मध्याह्नो ग्रीष्म एव च ।
प्रावृट्कालोऽपराह्नः स्यात्प्रदोषः शिशिरः स्मृतः ॥

अथवा—

ऊषायोगे च हेमन्तः प्रभाते शिशिरागमः ।
प्रहरार्द्धे वसन्तः स्याद् ग्रीष्मो मध्यन्दिनागमे ।

तुर्ययामे च वर्षाख्यः शरदस्तंगते रवौ ॥
हेमन्तः शान्तिके प्रोक्तो वसन्तो वश्यकर्मणि ।
शिशिरः स्तम्भने ज्ञेयो विद्वेषे ग्रीष्म ईरितः ।
प्रावृडुच्चाटने ज्ञेयः शरन्मारणकर्मणि ॥

षट्कर्म-लक्षण—शारदातिलक में कहा गया है कि षट्कर्म में यह छः कर्म आते हैं—१. शान्ति, २. वशीकरण, ३. स्तम्भन, ४. विद्वेषण, ५. उच्चाटन, ६. मारण।

जिस कर्म से रोग, कुकृत्या और ग्रहदोष दूर हो, उसे **शान्तिकर्म** कहते हैं। जिस कर्म से लोग वशीभूत हों, उसे **वशीकरण** कहते हैं। जिस कर्म से सबकी प्रवृत्ति अवरुद्ध हो, उसे **स्तम्भन** कहते हैं। परस्पर प्रेमियों में द्वेष उत्पन्न करने वाले कार्य का नाम **विद्वेषण** है। जिस कार्य से किसी को अपने देश-घर से निकाल दिया जाय, उसे **उच्चाटन** कहते हैं। जिस कार्य से प्राणियों का प्राण हरण हो अर्थात् मृत्यु हो, उसे **मारण** कहते हैं।

इन सभी कर्मों के देवता, दिशा और कालादि को जानकर ही इन कर्मों को करना चाहिये।

शान्तिकार्य की देवी रति, वशीकरण की वाणी, स्तम्भन की रमा, विद्वेषण की ज्येष्ठा, उच्चाटन की दुर्गा और मारण की देवी काली हैं। प्रत्येक कर्म के पहले देवताओं की पूजा करे। यहाँ काली से भद्रकाली का आशय है।

शान्तिकार्य में ईशान कोण, वशीकरण में उत्तर, स्तम्भन में पूर्व, विद्वेषण में नैर्ऋत्य, उच्चाटन में वायुकोण और मारण में अग्निकोण प्रशस्त है। अहोरात्र में क्रम-परम्परा से छः ऋतुओं का उदय होता है। सूर्योदय से लेकर ४ घंटों तक वसन्त ऋतु, दूसरे ४ घंटों तक ग्रीष्म ऋतु, तीसरे ४ घंटों तक वर्षा, चौथे ४ घंटों तक शरद, पाँचवें ४ घंटों तक हेमन्त और छठे ४ घंटों तक शिशिर ऋतु रहती है।

मतान्तर से आधी रात में शरत, प्रभात में हेमन्त, पूर्वाह्न में वसन्त, मध्याह्न में ग्रीष्म, अपराह्न में वर्षा और प्रदोषकाल में शिशिर ऋतु होती है अथवा उषाकाल में हेमन्त, प्रभात में शिशिर, प्रहरार्द्ध में वसन्त, मध्याह्न में ग्रीष्म, चतुर्थ याम में वर्षा और सूर्यास्त के समय शरद ऋतु होती है।

शान्तिकर्म में हेमन्त, वशीकरण में वसन्त, स्तम्भन में शिशिर, विद्वेषण में ग्रीष्म, उच्चाटन में वर्षा और मारणकार्य में शरद ऋतु प्रशस्त होती है।

तिथिनियमः

पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा ।
बुधेज्यवारसंयुक्ता विज्ञेया शान्तिकर्मणि ॥

गुरुचन्द्रयुता षष्ठी चतुर्थी च त्रयोदशी ।
नवमी पौष्टिके शस्ता चाष्टमी नवमी तथा ॥
दशम्येकादशी चैव भानुशुक्रदिनान्विता ।
आकर्षणे त्वमावस्या नवमी प्रतिपत्तथा ।
पौर्णमासी मन्दभानौ विज्ञेया द्वेषकर्मणि ॥
कृष्णा चतुर्दशी तद्वदष्टमी मन्दवारकाः ।
उच्चाटने तिथिः शस्ता प्रदोषे च विशेषतः ॥
चतुर्दश्यष्टमी कृष्णा अमावस्या तथैव च ।
मन्दभौमदिनोपेता शस्ता मारणकर्मणि ॥
बुधचन्द्रदिनोपेता पञ्चमी दशमी सिता ।
पौर्णमासी तु विज्ञेया तिथिः स्तम्भनकर्मणि ॥
शुभग्रहोदये कुर्यात् शुभानि च शुभोदये ।
रौद्रकर्मणि रिक्तार्के मृत्युयोगे च मारणम् ॥

तिथिनियम—बुध और गुरुवार में पञ्चमी, द्वितीया, तृतीया और सप्तमी तिथि में शान्तिकार्य प्रशस्त है। गुरुवार और सोमवार में षष्ठी, चतुर्थी, चतुर्दशी पुष्टिकर्म में विहित है। रवि और शुक्रवार में अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी आकर्षण में प्रशस्त है। शनि और रविवार में अमावस्या, नवमी, प्रतिपदा और पूर्णिमा विद्वेषणकार्य में प्रशस्त है। सोमवार और बुधवार में शुक्ल पक्ष की पञ्चमी, दशमी तथा पूर्णिमा तिथियाँ हों तो स्तम्भन कार्य करना चाहिये।

शुभ ग्रह के उदय में शान्ति आदि शुभ कर्म एवं अशुभ ग्रह के उदय में विद्वेषण आदि अशुभ कार्यों का अनुष्ठान करे। रिक्ता तिथि में, रविवार में, मृत्युयोग में मारण कार्य करना चाहिये।

चामुण्डातन्त्रे—

जपेत्पूर्वमुखो वश्ये दक्षिणश्चाभिचारके ।
पश्चिमे स्तम्भनं विद्यादुत्तरे शान्तिकं भवेत् ॥
आकर्षणमथाग्नेये नैर्ऋते मारणं तथा ।
उच्चाटनन्तु वायव्ये ऐशान्यां मोक्षदायकम् ।
तथाभिचारे कार्या च दक्षिणप्लवना मही ॥
वसनं लोहितं प्रोक्तं ऊष्णीषं लोहितं स्मृतम् ।
भूषणं लौहद्रव्येण वामेन पूजनादिकम् ॥
नरस्नायुविशेषेण मारणे रज्जुरीरिता ।

मृतस्य युद्धशून्यस्य दन्तेन गर्दभस्य वा ॥
कृत्वाक्षमालां जप्तव्यं शत्रूणां वधमिच्छता ।
भग्नेभदन्तमणिभिर्जपेदाकर्षकर्मणि ॥
साध्यकेशसूत्रप्रोतैस्तुरङ्गदशनोद्भवैः ।
अक्षमालां समालोक्य विद्वेषोच्चाटने जपेत् ॥

चामुण्डातन्त्र में कहा गया है कि वशीकरण में पूर्वमुख, अभिचार में दक्षिणमुख, स्तम्भन में पश्चिममुख, शान्ति में उत्तरमुख, आकर्षण में आग्नेय मुख, मारण में नैर्ऋत्य मुख और उच्चाटन में वायव्य मुख होकर जप करे।

ईशान कोणाभिमुख होकर जप करने से मोक्ष मिलता है। मारण क्रिया में भूमि का ढ़लान दक्षिण दिशा में होना चाहिये।

मारण कार्य में वस्त्र और उष्णीश आदि सभी लाल रंग का रक्खे। लौहनिर्मित भूषणों से अलंकृत होकर बाँयें हाथ से पूजनादि करे।

मारणकार्य में मृत मनुष्य के स्नायु-विशेष से निर्मित रज्जु से युद्ध में मारे गये व्यक्ति के दाँतों या गदहे के दाँतों की जपमाला बनाकर जप करे।

आकर्षण में हाथी के भग्न दाँतों से बनी माला से जप करे। विद्वेषण तथा उच्चाटन में साध्य व्यक्ति के केश के सूत्र से गूँथी अश्वदन्त की माला से जप करे।

आसनादिकथनम्

पद्माख्यं स्वस्तिकं भूयो विकटं कुक्कुटं पुनः ।
वज्रं भद्रकमित्याहुरासनानि मनीषिणः ॥
पद्मासनन्तु संयोज्य जानूर्वोरन्तरे करौ ।
निवेश्य भूमौ संस्थाप्य व्योमस्थं कुक्कुटासनम् ॥

अन्यानि वक्तव्यानि—

षण्मुद्राः क्रमतो ज्ञेयाः पद्मपाशगदाह्वयाः ।
मूषलाशनिखड्गाख्याः शान्तिकादिषु कर्मसु ॥
जलं शान्तिविधौ शस्तं वश्ये वह्निरुदीरितः।
स्तम्भने पृथिवी शस्ता विद्वेषे व्योम कीर्त्तितम्।
उच्चाटने स्मृतो वायुर्भूयोऽग्निर्मारणे स्मृतः ॥
तत्तद्भूतोदये सम्यक्तत्तन्मण्डलसंयुतम् ।
तत्तत्कर्म विधातव्यं मन्त्रिणा निश्चितात्मना ॥
शीतांशुसलिलक्षौणीव्योमवायुहविर्भुजाम् ।

वर्णाः स्युर्मन्त्रबीजानि षट्कर्मसु यथाक्रमम् ॥
ग्रथनञ्च विदर्भञ्च सम्पुटो रोधनन्तथा ।
योगः पल्लव इत्येते विन्यासाः षट्सु कर्मसु ॥
मन्त्रेणान्तरितान् कुर्यान्नामवर्णान् यथाविधि ।
ग्रथनं तद्विजानीयात्प्रशस्तं शान्तिकर्मणि ॥
मन्त्रार्णद्वयमध्यस्थं साध्यनामाक्षरं लिखेत् ।
विदर्भ एष विज्ञेयो मन्त्रिभिर्वश्यकर्मणि ॥
आदावन्ते च मन्त्रः स्यान्नाम्नोऽसौ सम्पुटः स्मृतः ।
एष स्यात्स्तम्भने शस्त इत्युक्तो मन्त्रवेदिभिः ॥
नाम्न आद्यन्तमध्येषु मन्त्रः स्याद्रोधनं मतम् ।
विद्वेषणविधानेषु प्रशस्तमिदमुत्तमम् ॥
मन्त्रस्यान्ते भवेन्नाम योगः प्रोच्चाटने मतः ।
अन्ते नाम्नो भवेन्मन्त्रः पल्लवो मारणे मतः ॥
सितरक्तपीतमिश्रकृष्णधूम्राः प्रकीर्त्तिताः ।
वर्णतो मन्त्रसम्प्रोक्ता देवताः षट्सु कर्मसु ॥
मन्त्राणां लेखनद्रव्यं चन्दनं रोचनं निशा ।
गृहधूमश्चिताङ्गारो मारणेऽष्टविषाणि च ॥
श्येनाग्निलोणपित्तानि धुस्तूरकरसः शुभः ।
गृहधूमस्त्रिकटुकं विषाष्टकमुदीरितम् ॥
देवताकालमुद्रादीन् सम्यग् ज्ञात्वा विचक्षणः ।
षट्कर्माणि प्रयुञ्जीत यथोक्तफलसिद्धये ॥

षट्कर्म में आसन मुद्रातत्त्व—षट्कर्मानुष्ठान में पद्मासन, स्वस्तिकासन, विकटासन, कुक्कुटासन और भद्रासन कुल छः आसन प्रशस्त हैं।

पद्मासन लगाकर जानु और जाँघ के मध्य में दोनों हाथों को प्रविष्ट कर भूमि पर स्थापित कर देह को ऊपर उठाकर स्थिर रक्खे तो इससे कुक्कुटासन बनता है।

षट्कर्म में पद्म, पाश, गदा, मूसल, वज्र और खड्ग—ये छः मुद्राएँ प्रशस्त हैं। शान्ति में पद्ममुद्रा, वशीकरण में पाशमुद्रा, स्तम्भन में गदामुद्रा, विद्वेषण में मूसलमुद्रा, उच्चाटन में वज्रमुद्रा और मारण में खड्गमुद्रा विहित है।

जल, अग्नि, पृथिवी, आकाश और वायु—इन पाँच तत्त्वों के उदय की विवेचना करके शान्तिकादि षट्कर्म करे। शान्ति में जलतत्त्व, वशीकरण में अग्नि, स्तम्भन में पृथिवी, विद्वेषण में आकाश, उच्चाटन में वायु और मारण में अग्नितत्त्व प्रशस्त है।

पाँच तत्त्वों का उदय और पञ्चभूतों का मण्डल जानकर षट्कर्म करे।

चन्द्र ठं, जल वं, पृथ्वी लं, आकाश हं, वायु यं, अग्नि रं—ये छः बीज षट्कर्म में प्रशस्त हैं; इनसे बीजन्यास करे।

मन्त्रविन्यास में ग्रथन, विदर्भ, सम्पुट, रोधन, योग और पल्लव—ये छः प्रकार हैं। मन्त्रविन्याससहित कार्य-साधन करे।

साध्य व्यक्ति के नामाक्षरों को मन्त्र से पुटित कर उच्चारण करना ग्रथन है। मन्त्र का प्रथम वर्ण और साध्य नाम का प्रथम वर्ण, मन्त्र का दूसरा वर्ण और साध्य नाम का दूसरा वर्ण—इसी क्रम से उच्चारण करने से ग्रथन होता है। शान्तिकार्य में ग्रथन प्रशस्त है।

मन्त्र के दो वर्णों के बीच में साध्य का नामाक्षर लिखना विदर्भ कहलाता है। वशीकरण में विदर्भन्यास आवश्यक है।

साध्य के नाम के पहले और अन्त में मन्त्र लगाने सम्पुट विन्यास होता है। स्तम्भन में यह प्रशस्त है।

मन्त्र के अन्त में साध्य नाम जोड़ने से योगविन्यास होता है। यह उच्चाटन में प्रशस्त है।

साध्य नाम के अन्त में मन्त्र जोड़ने से पल्लवविन्यास होता है। यह मारण कार्य में प्रशस्त है।

षट्कर्म में मन्त्र और देवता के वर्ण छः बतलाये गये हैं—श्वेत, रक्त, पींत, मिश्र, कृष्ण और धूम्र।

शान्ति आदि षट्कर्मों में इन्हीं छः वर्ण वाले मन्त्र और देवता का ध्यान करना चाहिये।

मन्त्रलेखन सामग्री कर्म के अनुसार इस प्रकार की होती है। शान्ति में चन्दन, वश्य में गोरोचन, स्तम्भन में हल्दी, विद्वेषण में रसोईघर का धुआं, उच्चाटन में चितांगार और मारण में अष्टविध विष से मन्त्र लिखे।

आठ प्रकार के विष हैं—वाज की विष्टा, चितामूल, विट् लवण, धतूरे का रस, रसोई का धुआँ, मरिच, पीपल और सोंठ।

देवता, काल और मुद्रादि को जानकर षट्कर्म-साधन करने से यथोक्त फल प्राप्त होता है।

कुलार्णवे—

उच्चाटने वषट्प्रोक्तं हूं फडन्तश्च मारणे ।
स्तम्भने च नमः प्रोक्तं स्वाहा शान्तिकपौष्टिके ॥

होमतर्पणयोः स्वाहा न्यासपूजनयोर्नमः ।
मन्त्रान्ते योजयेन्मन्त्री जपकाले यथास्थिति ।।

अस्यार्थः—एतानि तत्तत्कर्माणि जपकाले मन्त्रान्ते योजयित्वा मन्त्रं जपेत्। होमादिषु नायं नियमः। इत्याह होमे नेति इति केचित्। तन्न।

अग्निकार्ये जपेत्स्वाहा नमः सर्वत्र चार्च्चने ।
शान्तिपुष्टिवशद्वेषाकर्षोच्चाटनमारणे ।
स्वाहा स्वधा वषट् हुञ्च वौषट् फट् योजयेत्क्रमात् ।
वश्याकर्षणसन्तापज्वरे स्वाहा प्रकीर्त्तिता ।।
क्रोधोपशमने शान्तौ प्रीतौ योज्यं नमो बुधैः ।
वौषट् सम्मोहनोद्दीप-पुष्टि-मृत्युञ्जयेषु च ।।
हुङ्कारं प्रीतिनाशे च मारणे च्छेदने तथा ।
उच्चाटने च विद्वेषे वौषट् पंगुकृतौ वषट् ।
मन्त्रोद्दीपनकार्येषु लाभालाभे वषट् स्मृतः ।।

इति विशेषवचनाद्धोमेऽप्ययं विधिः। शान्तिकादौ मन्त्रलिखने पात्रादिनियमस्तु तत्रैव—

शान्तिके राजतं ताम्रं भूर्जपत्रन्तु वश्यके ।
सर्वकार्येषु सौवर्णं क्रूरे स्यात्प्रेतकर्पटम् ।।
त्रिगन्धं शान्तिके प्रोक्तं पञ्चगव्यन्तु वश्यके ।
सर्वकार्येऽष्टगन्धः स्यात्क्रूरे चाष्टविषाणि च ।।
शान्तिके लेखनी दूर्वा वश्यादौ शिखिपुच्छिका ।
हेम्ना सर्वाणि कार्याणि क्रूरे स्यात्काकपुच्छिका ।।
गृहेषु शान्तिकर्म स्याद्वश्यञ्च चण्डिकागृहे ।
देवालये च सर्वाणि श्मशाने क्रूरकर्म च ।।

कुलार्णव के अनुसार उच्चाटन में मन्त्र के अन्त में वषट्, मारण में हुं फट्, स्तम्भन में नमः, शान्ति-पुष्टि में स्वाहा लगाना चाहिये। हवन-तर्पण में मन्त्र के अन्त में स्वाहा, न्यास एवं पूजा में नमः पद जोड़े।

इसके बारे में विशेष यह है कि केवल जप में मन्त्र के अन्त में वषट्-फट् जोड़े। हवनादि में यह नियम नहीं है।

मतान्तर से हवनादि में मन्त्र के अन्त में वषट्-फट् आदि के योग का विधान है; किन्तु यह सर्वतन्त्रसम्मत नहीं है। अग्निकार्य में स्वाहा और सभी प्रकार के पूजनों में नमः का प्रयोग करे।

शान्ति, पुष्टि, वशीकरण, विद्वेषण, आकर्षण, उच्चाटन और मारण कार्य में मन्त्र के अन्त में क्रमश: स्वाहा, स्वधा, वषट्, हूं और वौषट् का प्रयोग करे। वशीकरण और ज्वरसन्ताप में स्वाहा जोड़े। क्रोधप्रशमन, शान्ति और प्रीतिवर्द्धन में नम: जोड़े। सम्मोहन, उद्दीपन, पुष्टि और मारण में वौषट् जोड़े। प्रीतिनाश, मारण और छेदन कार्य में हूं जोड़े। उच्चाटन और विद्वेषण में वौषट् जोड़े।

मन्त्रोद्दीपनादि लाभालाभ कार्य में वषट् का प्रयोग करे। इस विशेष वचन के अनुसार शान्ति आदि षट्कर्मों के हवन में भी ये सब प्रयोग करने के योग्य हैं।

शान्ति में चाँदी या ताम्रपात्र में, वशीकरण में भोजपत्र पर मन्त्र लिखकर ग्रथनादि संस्कार करे। सोने के पात्र का व्यवहार सभी प्रकार के कार्यों में प्रशस्त है। मारणादि क्रूर कर्मों में प्रेत वस्त्र पर मन्त्र लिखे।

शान्ति में अगर, चन्दन और कुंकुम विहित है। वशीकरण में पञ्चगव्य, सभी कार्यों में अष्टगन्ध और मारण में अष्टविष का प्रयोग करे।

शान्तिकार्य में दूर्वा, वश्यादि में मोरपंख, सब कार्यों में सोने से निर्मित और क्रूर कर्म में काकपुच्छ से बनी लेखनी द्वारा मन्त्र लिखे।

अपने घर में बैठकर शान्तिकार्य, चंडीस्थान में वशीकरण, देवगृह में सर्वकार्य और श्मशान में क्रूर कर्म करे।

भूतानामुदय:

दण्डाकारा गतिर्भूमेः पुटयोरुभयोरपि ।
तोयस्य पावकस्योर्ध्वे गतिस्तिर्यक् नभस्ततः ।
गतिर्व्योम्नो भवेन्मध्ये भूतानामुदयः स्मृतः ॥
धरणेरुदये कुर्यात्स्तम्भनं वशमात्मवित् ।
शान्तिकं पौष्टिकं कर्म तोयस्य समये वसोः ॥
मारणादीनि मरुतो विपक्षोच्चाटनादिकम् ।
क्ष्वेडादिनाशने शस्तमुदये च विहायसः ॥

पञ्चतत्त्वों के उदय के लक्षण—पृथ्वी तत्त्व के उदय होने पर बाँई नासा के आगे दण्डाकार श्वास निकलती है। जलतत्त्व के उदय के समय दोनों नासाओं से श्वास दण्डाकार बहती है।

अग्नितत्त्व के उदय में श्वास की गति ऊपर की ओर होती है। वायुतत्त्व के उदय में श्वास की गति वक्र होती है। आकाशतत्त्व के उदय में श्वास नासिका के मध्य से होकर निकलती है। इसे भूतोदय कहते हैं।

तत्त्वों के उदय को जानकर कार्य करे। पृथ्वी तत्त्व के उदय में स्तम्भन-वशीकरण कर्म करे। जलतत्त्व के उदय में शान्ति और पुष्टि कर्म करे। अग्नि-तत्त्व के उदय में मारणादि क्रूर कर्म करे। वायुतत्त्व के उदय में उच्चाटनादि और आकाश तत्त्व के उदय में विषादि-नाशन कार्य करे।

भूतानां मण्डलानि

वृत्तं दिवस्तत्षड्विन्दुलाञ्छितं मातरिश्वनः ।
त्रिकोणं स्वस्तिकोपेतं वह्नेरर्द्धेन्दुसंयुतम् ॥
अम्भोजमम्भसो भूमेश्चतुरस्त्रं सवज्रकम् ।
तत्तद्भूतसमाभानि मण्डलानि विदुर्बुधाः ॥
वर्णैः स्वै रञ्जितान्याहुः स्वस्वनामावृतान्यपि ।
स्वच्छं वियन्मरुत्कृष्णो रक्तोऽग्निर्विशदं पयः ॥

पीता भूमिरित्यादि। प्रयोगान्तरं कुलार्णवे—

एकलक्षं जपेन्मन्त्रं ध्यानन्याससमन्वितः ।
प्रयोगदोषशान्त्यर्थमात्मरक्षार्थकारणम् ।
न चेत्फलञ्च नाप्नोति देवताशापमाप्नुयात् ॥

यत्तु—

न कुर्यान्मारणं कर्म कुर्याच्चेदयुतं जपेत् ।

तत्तु प्रायश्चित्तपरमिति।

पञ्चतत्त्वों के मण्डल—जिस तत्त्वोदय में जो कार्य विहित है, उसे उस तत्त्व का मण्डल बनाकर करे। छः बिन्दुओं से युक्त वृत्त वर्तुलाकार आकाश तत्त्व का मण्डल है। वायुतत्त्व में स्वस्तिकोपेत त्रिकोणाकार मण्डल होता है। अग्नितत्त्वोदय में अर्द्धचन्द्राकृति, जलतत्त्व में पद्माकार, पृथ्वीतत्व में सर्वाङ्ग चतुरस्र मण्डल बनाए। इन सभी मण्डलों को सम्बन्धित भूत की आभा के समान वर्ण से रंग ले। उनमें अपना नाम अंकित करे। आकाश का वर्ण श्वेत, वायु का क़ाला, अग्नि का लाल, जल का शुभ्र और भूमि का वर्ण पीला होता है।

कुलार्णव में लिखा है कि षट्कर्म-साधन करते समय प्रारम्भ में ध्यान और न्यास करके मन्त्र का एक लाख जप करे। ऐसा करने से प्रयोग के दोषों की शान्ति होती है। आत्मरक्षा होती है। पहले एक लाख जप न करने से कर्म निष्फल होता है और देवता शाप देते हैं। अन्यान्य तन्त्रों में जो दश हजार जप कहा गया है, वह प्रायश्चित्तपरक है। अर्थात् मारण कर्म कभी न करे। करे भी तो पूर्व प्रायश्चित्तस्वरूप दश हजार जप करे।

●

अथ स्तवकवचानि

वाराहीतन्त्रे—

प्रणवञ्चादिमे जप्त्वा स्तोत्रं वा संहितां पठेत् ।
अन्ते च प्रणवं दद्यादित्युवाचादिपुरुषः ।
एवं सर्वत्र विज्ञेयमन्यथा विफलं भवेत् ॥

स्तोत्र और कवच—वाराही तन्त्र में लिखा है कि किसी मन्त्र की साधना के पहले 'ॐ' का जप करे, तब स्तोत्र या संहिता का पाठ करे। अन्त में भी ॐकार का जप करे। यह आदि पुरुष महादेव का वचन है। इसी प्रकार का विधान सर्वत्र समझना चाहिये। ऐसा न करने से प्रयोग विफल होता है।

भुवनेश्वरीस्तोत्रम्

ईश्वर उवाच—

अथानन्दमयीं साक्षाच्छब्दब्रह्मस्वरूपिणीम् ।
ईडे सकलसम्पत्त्यै जगत्कारणमम्बिकाम् ॥१॥
आद्यामशेषजननीमरविन्दयोने-
र्विष्णोः शिवस्य च वपुः प्रतिपादयित्रीम् ।
सृष्टिस्थितिक्षयकरीं जगतां त्रयाणां
स्तुत्वा गिरं विमलयाम्यहमम्बिके त्वाम् ॥२॥

महादेव ने कहा कि अब मैं समस्त सम्पत्ति-लाभ के लिये साक्षात् शब्दब्रह्मरूपिणी, जगत् कारणरूपा, आनन्दमयी माता की स्तुति करता हूँ। हे माते! आप सबकी आदि हैं। आप सबकी जननी हैं। अधिक क्या कहा जाय? आपने ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर को बनाया है। आप ही तीनों जगत् की सृष्टि-स्थिति और लय करती हैं। मैं आपकी स्तुति करके अपनी वाणी को पवित्र करता हूँ ॥१-२॥

पृथ्व्या जलेन शिखिना मरुतां वरेण
होत्रेन्दुना दिनकरेण च मूर्तिभाजः ।
देवस्य मन्मथरिपोरपि शक्तिमत्तो
हेतुस्त्वमेव खलु पर्वतराजपुत्रि ॥३॥
त्रिस्रोतसः सकलदेवसमर्च्चिताया
वैशिष्ट्यकारणमवैमि तदेव मातः ।

त्वत्पादपङ्कजपरागपवित्रितासु
शम्भोर्जटासु नियतं परिवर्तनं यत् ॥४॥

हे पर्वतराजतनये! जो पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु-आकाश-यजमान-सोम और सूर्यरूपों में शोभायमान हैं, जिन्होंने दुर्जय कामदेव को भी पराजित कर दिया है, वे शिव भी आपकी शक्ति से ही शक्तिमान हुए हैं। हे जननि! शम्भु का जटाजूट आपके चरणकमलों के पराग से पवित्र हुआ है। उसी पवित्र जटाजूट में रहने के कारण ही तीन धाराओं वाली गंगा सभी लोकों में पूजित हैं। गंगा की विशेषता-प्राप्ति का कारण यही है।।३-४।।

आनन्दयेत्कुमुदिनीमधिपः कलानां
नान्यामिनः कमलिनीमथ नेतरां वा ।
एकस्य मोदनविधौ परमेक ईष्टे
त्वं तु प्रपञ्चमभिनन्दयसि स्वदृष्ट्या ॥५॥
आद्याप्यशेषजगतां नवयौवनासि
शैलाधिराजतनयाप्यतिकोमलासि ।
त्रय्याः प्रसूरपि यथा न समीक्षितासि
ध्येयासि गौरि मनसो न पथि स्थितासि ॥६॥

कलानिधि चन्द्रमा केवल कुमुदिनी को आनन्दित करते हैं, अन्य किसी का नहीं। सूर्योदय केवल कमल को आनन्दित करता है, अन्य किसी को नहीं। एक व्यक्ति एक ही व्यक्ति को आनन्द देने में समर्थ है; किन्तु हे मातः! आप अपने दृष्टिपात से सारे संसार को आनन्दित कर देती हैं। हे माते! आप अखिल विश्व की आदि, अत्यन्त प्राचीन होती हुई भी निरन्तर नवयौवना रहती हैं। कठोर गिरिराज की कन्या होकर भी अत्यन्त मृदुल हैं। आप वेदों की माता हैं; फिर भी वेद आपको नहीं देख पाते। हे गौरि ! आपका ध्यान करने को सभी व्याकुल रहते हैं; किन्तु आप किसी के भी मानसपटल पर नहीं आतीं। आपकी लीला विचित्र है।।५-६।।

आसाद्य जन्म मनुजेषु चिराद्दुरापं
तत्रापि पाटवमवाप्य निजेन्द्रियाणाम् ।
नाभ्यर्चयन्ति जगतां जनयित्रि ये त्वां
निःश्रेणिकाग्रमधिरुह्य पुनः पतन्ति ॥७॥
कर्पूरचूर्णहिमवारिविलोडितेन
ये चन्दनेन कुसुमैश्च सुजातगन्धैः ।
आराधयन्ति हि भवानि समुत्सुकास्त्वां
ते खल्वशेषभुवनादिभुवः प्रथन्ते ॥८॥

हे जगन्माते! बहुत दिनों से दुष्प्राप्य मानव-जन्म पाकर जो इन्द्रियों की शक्ति से सम्पन्न होकर भी दुर्भाग्यवश आपकी पूजा नहीं करते, वे अभागे ऊँचे सोपान पर पहुँच कर पुनः नीचे गिर जाते हैं। हे भवानि! जो कर्पूरचूर्णमिश्रित शीतल जलघर्षित चन्दन और सुगन्धित पुष्पों से अत्यन्त आग्रह के साथ आपकी आराधना करते हैं, वे अखिल विश्व पर आधिपत्य प्राप्त कर ख्याति प्राप्त करते हैं।।७-८।।

आविश्य मध्यपदवीं प्रथमे सरोजे
सुप्ताहिराजसदृशीं विरचय्य विश्वम् ।
विद्युल्लतावलयविभ्रममुद्वहन्ती
पद्मानि पञ्च विदलय्य खमश्नुवाना ।।९।।
तन्निर्गतामृतरसैः परिषिक्तगात्र-
मार्गेण तेन निलयं पुनरप्यवाप्ता ।
येषां हृदि स्फुरसि जातु न ते भवेयु-
र्मातर्महेश्वरकुटुम्बिनि गर्भभाजः ।।१०।।

हे माते! आप मूलाधार पद्म में सोयी हुई भुंजगिनी के समान कुण्डलिनी के रूप में विराजती हुई सुषुम्ना नाड़ी के मध्य पथ में प्रवेश कर विश्वरचना करती हैं। सौदामिनी के समान ऊर्ध्व स्थित पाँच पद्मों को भेदकर सहस्त्रार पद्म के मध्य में परमशिव से संलग्न होकर अनन्त मूर्ति में विराजमान रहती हैं। हे माते! हे महेश्वरकुटुम्बिनि! सहस्त्रार कमल के निर्मल अमृतरस में अपने शरीर को अभिषिक्त कर पुनः सुषुम्ना मार्ग से मूलाधार में आकर आप विलीन हो जाती हैं। इस रूप में आप जिसके हृदय में रहती हैं, उसे पुनः गर्भ की पीड़ा नहीं सहन करनी पड़ती अर्थात् उसका पुर्नजन्म नहीं होता।।९-१०।।

आलम्बिकुण्डलभरामभिरामवक्त्रा-
मापीवरस्तनतटीं तनुवृत्तमध्याम् ।
चिन्ताक्षसूत्रकलसां लिखिताढ्यहस्ता-
मावर्तयामि मनसा तव गौरि मूर्तिम् ।।११।।
आस्थाय योगमवजित्य च वैरिषट्क-
माबध्य चेन्द्रियगणं मनसि प्रसन्ने ।
पाशांकुशाभयवराढ्यकरां सुवक्त्रा-
मालोकयन्ति भुवनेश्वरि योगिनस्त्वाम् ।।१२।।

हे गौरि! आपकी केशराशि पीछे की ओर पैरों तक लटकती रहती है। आपका मुखमण्डल अतीव मनोहर है। पयोधर अति स्थूल हैं। कमर पतली और गोल है। चार हाथों में ज्ञानमुद्रा, जपमाला, कलश और पुस्तक है। आपके इस प्रकार के मधुर स्वरूप

का ध्यान मैं निरन्तर अपने हृदय में करता हूँ। हे भुवनेश्वरि! योगीजन आपका आश्रय लेकर कामादि छः शत्रुओं को जीतकर इन्द्रियों का दमन करते हुए प्रसन्न मन से आपका दर्शन करने में समर्थ होते हैं। आप पाश-अंकुश-वराभय हाथों में धारण किए हुए प्रफुल्ल मुख से उनकी दृष्टि के सामने विराजमान रहती हैं।।११-१२।।

उत्तप्तहाटकनिभा करिभिश्चतुर्भि-
रावर्जितामृतघटैरभिषिच्यमाना ।
हस्तद्वयेन नलिने रुचिरे वहन्ती
पद्मापि साभयवरा भवसि त्वमेव ।।१३।।
अष्टाभिरुग्रविविधायुधवाहिनीभि-
र्दोर्वल्लरीभिरधिरुह्य मृगाधिराजम् ।
दूर्वादलद्युतिरमर्त्यविपक्षपक्षा-
न्न्यक्कुर्वती त्वमसि देवि भवानि दुर्गा ।।१४।।

तपाये हुए सोने के समान जिनके शरीर की कान्ति है, चार दिशाओं में हाथी सुधापूर्ण कलशों से जिनका अभिषेक करते हैं, जिनके दो हाथों में मनोहर पद्म है और दो हाथों में जो वराभय मुद्रा धारण की हुई हैं, वह पद्ममूर्ति भी आप ही हैं।

हे भवानि! जिनकी आठ बाहुलताओं में विविध उग्र अस्त्र शोभित हैं। दूर्वादल के समान साँवली मूर्ति ग्रहण कर जो मृगराज पर सवार होकर दानवों का दलन करती हैं, आप वही दुर्गामूर्ति हैं।।१३-१४।।

आविर्निदाघजलशीकरशोभिवक्त्रां
गुञ्जाफलेन परिकल्पितहारयष्टिम् ।
पीतांशुकामसितकान्तिमनङ्गतन्द्रा-
माद्यां पुलिन्दतरुणीमसकृत्स्मरामि ।।१५।।
हंसैर्गतिक्वणितनूपुरदूरकृष्टैः
मूर्तैरिवाप्तवचनैरनुगम्यमानौ ।
पद्माविवोर्ध्वमुखरूढसुजातनालौ
श्रीकण्ठपत्नि शिरसा विदधे तवांघ्री ।।१६।।

जिनका मुखमण्डल स्वेद बिन्दुओं से सुन्दर है, जिनकी कमर में गुञ्जाफल का हार लटक रहा है, जो पत्तों से बना वस्त्र पहन कर रहती हैं, कामावेश से आलस्यपूर्ण श्याम कान्ति वाली आप ही पुलिन्द युवती मातंगीस्वरूपा हैं। आपको मैं सदा स्मरण करता हूँ। हे नीलकण्ठपत्नि! चलते समय नूपुरों की ध्वनि से आकृष्ट हंसश्रोणी मूर्तिमान आप्त-वाक्य के समान जिन चरणयुगलों का अनुगमन करती हैं, जिसका मनोहर नाल ऊर्ध्वमुख

होकर सुशोभित है। इस प्रकार के कमल के समान मनोहर आपके दोनों चरण-कमल मैं अपने मस्तक पर धारण करता हूँ।।१५-१६।।

द्वाभ्यां समीक्षितुमतृप्तिमतेव दृग्भ्या-
मुत्पाट्य भालनयनं वृषकेतनेन ।
सान्द्रानुरागतरलेन निरीक्ष्यमाणे
जङ्घे शुभे अपि भवानि तवानतोऽस्मि ॥१७॥
ऊरू स्मरामि जितहस्तिकरावलेपौ
स्थौल्येन मार्द्दवतया परिभूतरम्भौ ।
श्रोणीभरस्य सहनौ परिकल्प्य दत्तौ
स्तम्भाविवाम्बरवसा तव मध्यमेन ॥१८॥

हे भवानि! भगवान् वृषध्वज आपको दो नेत्रों से देखकर भी तृप्ति नहीं पा सके; इसीलिये ललाट में तीसरा नेत्र उत्पन्न कर प्रेम से विभोर होकर आपके जिन दो जानुओं का निरन्तर दर्शन करते हैं, मैं आपके उन्हीं दोनों जानुओं को प्रणाम करता हूँ। हे माते! हाथी के सूंड का गर्व जिनके सामने चूर-चूर हो जाता है, स्थूलता और कोमलता में केला भी जिनके सामने पराजित हो जाता है, आपके उन्हीं दोनों विशाल जंघाओं के दर्शन कर ऐसा प्रतीत होता है कि आपके मध्यवयस् यौवन ने विपुल नितम्ब-भार को सहने के लिये दो स्तम्भ बना रक्खे हैं।।१७-१८।।

श्रोण्यौ स्तनौ च युगपत्प्रथरिष्यतोच्चै-
र्बाल्यात्परेण वयसा परिहृष्टसारः ।
रोमावलीविलसितेन विभाव्य मूर्त्तिं
मध्यं तव स्फुरतु मे हृदयस्य मध्ये ॥१९॥
सख्यः स्मरस्य हरनेत्रहुताशभीरो-
र्लावण्यवारिभरितं नवयौवनेन ।
आपाद्य दत्तमिव पल्लवमप्रविष्टं
नाभिं कदापि तव देवि न विस्मरेयम् ॥२०॥

हे माते! आपका कटिभाग अति क्षीण है। यौवनकाल ने आपके नितम्बों और पयोधरों को विशाल करने के लिये आपके उस मध्यदेश से सारभाग निकाल लिया है। इसी से वह इतना क्षीण है कि इसमें विराजमान रोमों की पंक्ति से ही इसका आकार दिख पाता है। आपका यह क्षीण मध्यदेश मेरे हृदयमन्दिर में विराजमान है। हे देवि माँ! आपकी गहरी नाभि लावण्य जल से पूर्ण एक पल्लव है। कामदेव शिव की नेत्राग्नि से भयभीत रहते हैं। उसी कामदेव के मित्र यौवन ने मानो अपने मित्र की नेत्राग्निज्वाला को शान्त

करने के लिये इस पल्लव का निर्माण किया है। आपका यह मनोहर नाभिपल्लव मुझे कभी विस्मृत न हो।।१९-२०।।

ईशोऽपि गेहपिशुनं भसितं दधाने
काश्मीरकर्द्दममनुस्तनपङ्कजे ते ।
स्नातोत्थितस्य करिणः क्षणलक्ष्यफेनौ
सिन्दूरितौ स्मरयतः समदस्य कुम्भौ ।।२१।।
कण्ठातिरिक्तगलदुज्ज्वलकान्तिधारा-
शोभौ भुजौ निजरिपोर्मकरध्वजेन ।
कण्ठग्रहाय रचितौ किल दीर्घपाशौ
मातर्मम स्मृतिपथं न विलङ्घयेताम् ।।२२।।

हे जननि! आपके कुंकुमलिप्त और स्थान-स्थान पर शिव के अंगभस्म से लिप्त दोनों स्तनकमलों के दर्शन कर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो अभी-अभी स्नान कर उठे हुए मदमस्त हाथी के दो सिन्दूरयुक्त कुम्भ विराजमान हों। इन कुम्भों पर स्थान-स्थान पर नदी का शुभ्र फेन शोभित है। जिससे भस्म लिप्त स्तनों की सम्पूर्ण शोभा धारण किए हुए हैं। आपके स्तनों का भस्म शिव के आलिंगन को सुव्यक्त करता है।

हे माते! आपकी दोनों भुजायें उज्ज्वल कान्तिधारा जैसी शोभित हैं। यह कान्तिधारा कण्ठदेश में स्थान न पाकर कण्ठ से अलग होकर दोनों भुजाओं का आश्रय ली हुई है, जिससे दो भुजायें दो दीर्घ पाश के समान प्रतीत होती हैं। कामदेव ने अपने शत्रु महेश्वर के कण्ठ को बाँधने के लिये ही मानो इन दो पाशों की सृष्टि की है। हे माँ! आपके ये बाहुपाश मेरे स्मरणपथ से कभी ओझल न हों।।२१-२२।।

नात्यायतं रचितकम्बुविलासचौर्यं
भूषाभरेण विविधेन विराजमानम् ।
कण्ठं मनोहरगुणं गिरिराजकन्ये
सञ्चिन्त्य तृप्तिमुपयामि कदापि नाहम् ।।२३।।
अत्यायताक्षमभिजातललाटपट्टं
मन्दस्मितेन दरफुल्लकपोलरेखम् ।
बिम्बाधरं वदनमुन्नतदीर्घनासं
यस्ते स्मरत्यसकृदम्ब स एव जातः ।।२४।।

हे गिरिराजसुते! शंख के सौन्दर्य को जो हर लेता है, विविध आभूषणों से जो अलंकृत है, जो मनोहर गुण वाला है, आपके उस अनति दीर्घ ग्रीवा का निरन्तर ध्यान करते हुए भी मैं कभी तृप्त नहीं हो पाता।

हे माते! आपके जिस मुखमण्डल में सुदीर्घ दो नयन विराजमान हैं, जिसका ललाट-फलक अति मनोरम है, मन्द हास्य से जिसके ईषत् उत्फुल्ल गण्डदेश में रेखा दिखाई देती है, विम्ब के समान अधर और दीर्घ उन्नत नासिका जिसमें सुशोभित है, आपका यही मुखमण्डल जिसके स्मरणपथ में सदा विराजमान रहता है, उसी का जन्म सफल है।

आविस्तुषारकरलेखमनल्पगन्ध-
पुष्पोपरि भ्रमदलिव्रजनिर्विशेषम् ।
यश्चेतसा कलयते तव केशपाशं
तस्य स्वयं गलति देवि पुराणपाशः ॥२५॥
श्रुतिसुरचितपाकं धीमतां स्तोत्रमेतत्
पठति य इह मर्त्यो नित्यमार्द्रान्तरात्मा ।
स भवति पदमुच्चैः सम्पदं पादनम्र
क्षितिपमुकुटलक्ष्मीलक्षणानां चिराय ॥२६॥

इति भुवनेश्वरीस्तोत्रं समाप्तम्

हे देवि! आपके जिस केशपाश में चन्द्रकला प्रकाशमान है, जो अति सुगन्धित पुष्पों से विभूषित है, जिन पुष्पों के ऊपर भौरों का समूह बैठा हुआ आपकी चूड़ा से ऐसा मिल गया है कि ठीक से दिखाई नहीं देता, आपके ऐसे केशपाश को जो मन ही मन स्मरण करता है, उसके पूर्वजन्मार्जित कर्मपाश अपने-आप कट जाते हैं। धीमान् लोगों के कानों ने जिसके माधुर्य की परीक्षा कर ली है, ऐसे इस स्तव को जो व्यक्ति आर्द्रचित्त से सदा पाठ करता है, वह इस प्रकार अतुल ऐश्वर्य का स्वामी होता है कि राजाओं के समूह की मुकुटशोभा चिर दिनों तक उसके चरणों में अवनत रहती है।।२५-२६।।

●

भुवनेश्वरीकवचम्

श्रीदेव्युवाच—

भुवनेश्वर्याश्च देवेश या या विद्याः प्रकाशिताः ।
श्रुताश्चाधिगताः सर्वाः श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥१॥
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं यत्पुरोदितम् ।
कथयस्व महादेव मह्यं प्रीतिकरं परम् ॥२॥

पूर्वपीठिका—श्रीदेवी ने कहा—हे देवेश! भुवनेश्वरी की जिस विद्या को आपने प्रकाशित किया है, मैंने उसका श्रवण किया। अब मैं भुवनेश्वरी के त्रैलोक्यमंगल नामक कवच को सुनना चाहती हूँ।

हे महादेव! उस प्रीतिकर कवच का वर्णन आप करने की कृपा करें।।१-२।।

ईश्वर उवाच—

शृणु पार्वति वक्ष्यामि सावधानावधारय ।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं मन्त्रविग्रहम् ।।३।।
सिद्धविद्यामयं देवि सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ।
पठनाद्धारणान्मर्त्यस्त्रैलोक्यैश्वर्यभाग्भवेत् ।।४।।

ईश्वर ने कहा कि हे पार्वति! मैं उस कवच को सुनाता हूँ, आप सावधानीपूर्वक सुनिये। त्रैलोक्यमोहन कवच मन्त्रविग्रह है।

यह सिद्ध विद्यास्वरूप है, सभी ऐश्वर्यों को देने वाला है। इसके पाठ करने या धारण करने से मनुष्य तीनों लोकों के ऐश्वर्य को प्राप्त करता है।।३-४।।

त्रैलोक्यमङ्गलस्यास्य कवचस्य ऋषिः शिवः ।
छन्दो विराट् जगद्धात्री देवता भुवनेश्वरी ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।।५।।

विनियोग—त्रैलोक्यमंगल नामक इस कवच के ऋषि शिव हैं। विराट् छन्द है। जगत् को धारण करने वाली भुवनेश्वरी इसके देवता हैं। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के लिये इसका विनियोग किया जाता है।।५।।

ह्रीं बीजं मे शिरः पातु भुवनेशी ललाटकम् ।
ऐं पातु दक्षनेत्रं मे ह्रीं पातु वामलोचनम् ।।६।।
श्रीं पातु दक्षकर्णं मे त्रिवर्णात्मा महेश्वरी ।
वामकर्णं सदा पातु ऐं घ्राणं पातु सर्वदा ।।७।।

कवच—ह्रीं बीज मेरे शिर की रक्षा करे। भुवनेश्वरी ललाट की रक्षा करे। दाँयें नेत्र की रक्षा ऐं करे।

ह्रीं बाँयें नेत्र की रक्षा करे। दाँयें कान की रक्षा श्रीं करे। त्रिवर्ण ऐं ह्रीं श्रीं महेश्वरी मेरे बाँयें कान की रक्षा करे। नासिका की रक्षा सर्वदा ऐं करे।।६-७।।

ह्रीं पातु वदनं देवि ऐं पातु रसनां मम ।
वाक्पुटा च त्रिवर्णात्मा कण्ठं पातु परात्मिका ।।८।।
श्रीं स्कन्धौ पातु नित्यं ह्रीं भुजौ पातु सर्वदा ।
क्लीं करौ त्रिपुटेशानी त्रिपुरैश्वर्यदायिनी ।।९।।

ह्रीं मेरे मुख की रक्षा करे। ऐं मेरे जीभ की रक्षा करे। वाक्पुट की रक्षा ऐं ह्रीं श्रीं

करे। कण्ठ की रक्षा परात्मिका करे। कन्धों की रक्षा श्रीं करे। भुजाओं की रक्षा ह्रीं करे। क्लीं हाथों की रक्षा करे। त्रिपुटेशानी त्रिपुर ऐश्वर्यदायिनी करों की रक्षा करे।।८-९।।

आं पातु हृदयं ह्रीं मे मध्यदेशं सदावतु ।
क्रौं पातु नाभिदेशं मे त्र्यक्षरी भुवनेश्वरी ।।१०।।
सर्वं बीजं सदा पृष्ठं पातु सर्ववशंकरी ।
ह्रीं पातु गुह्यदेशं मे नमो भगवति कटिम् ।।११।।

हृदय की रक्षा श्रां करे। मध्य देश की रक्षा सदा ह्रीं करे। नाभिदेश की रक्षा त्र्यक्षरी भुवनेश्वरी क्रौं करे। सर्वबीज सर्ववशंकरी सदैव मेरी पीठ की रक्षा करे। गुह्य देश की रक्षा ह्रीं करे। कटि की रक्षा नमो भगवति करे।।१०-११।।

माहेश्वरी सदा पातु सक्थिनी जानुयुग्मकम् ।
अन्नपूर्णा सदा पातु स्वाहा पातु पदद्वयम् ।।१२।।
सप्तदशाक्षरी पायादन्नपूर्णाखिलं वपुः ।
तारं माया रमा कामः षोडशार्णास्ततः परम् ।।१३।।

माहेश्वरी सक्थिनी सदैव मेरे दोनों जानुओं की रक्षा करे। अन्नपूर्णा स्वाहा दोनों पाँवों की रक्षा करे। अन्नपूर्णा का सप्तदशाक्षरी मन्त्र 'ह्रीं नमो भगवति महेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा' मेरे सारे शरीर की रक्षा करे।।१२-१३।।

शिरःस्था सर्वदा पातु विंशत्यर्णात्मिका परा ।
तारं दुर्गे युगं रक्षणी स्वाहेति च दशाक्षरी ।।१४।।
जयदुर्गा घनश्यामा पातु मां सर्वतो मुदा ।
मायाबीजादिका चैषा दशार्णा च ततः परा ।।१५।।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवति महेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा—यह बीस वर्णात्मक मन्त्र मेरे शिर की रक्षा करे। ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा—यह दशाक्षरो जयदुर्गा घनश्यामा मुदित होकर सर्वत्र मेरी रक्षा करे।।१४-१५।।

उत्तप्तकाञ्चनाभासा जयदुर्गाऽनलेऽवतु ।
तारं ह्रीं दुं च दुर्गायै नमोऽष्टार्णात्मिका परा ।।१६।।
शङ्खचक्रधनुर्बाणधरा मां दक्षिणेऽवतु ।
महिषमर्दिनि स्वाहा वसुवर्णात्मिका परा ।।१७।।
नैर्ऋत्यां सर्वदा पातु महिषासुरनाशिनी ।

ह्रीं दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा—यह दशाक्षरी मन्त्र तप्त स्वर्ण के समान मेरी रक्षा अग्नि से करे। ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै नमः—यह शंख-चक्र-धनुष-वाण धारण करने वाली अष्टाक्षरी

मन्त्ररूपा मेरी रक्षा दक्षिण में करे। महिषमर्दिनी स्वाहा अष्टाक्षरी परा महिषासुरनाशिनी मेरी रक्षा नैर्ऋत्य में करे।।१६-१७।।

माया पद्मावती स्वाहा सप्तार्णा परिकीर्त्तिता ।।१८।।
पद्मावती पद्मसंस्था पश्चिमे मां सदाऽवतु ।
पाशांकुशपुटा मायेहि परमेश्वरि स्वाहा ।।१९।।
त्रयोदशार्णा ताराद्या साश्वारूढाऽनलेऽवतु ।

ह्रीं पद्मावती स्वाहा सप्तवर्ण पद्मासीन पद्मावतीरूपा मेरी रक्षा पश्चिम में करे। ॐ ह्रीं आं क्रों क्रों ह्रीं परमेश्वरी स्वाहा तेरह अक्षरों का मन्त्र अश्वारूढ़रूपा मेरी रक्षा अग्नि से करे।।१८-१९।।

सरस्वति पञ्चस्वरे नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ।।२०।।
स्वाहा वस्वक्षरी विद्या मामुत्तरे सदाऽवतु ।
तारं माया तु कवचं खे रक्षेत्सततं वधूः ।।२१।।
हूं क्षें ह्रीं फट् महाविद्या द्वादशार्णाखिलप्रदा ।
त्वरिताष्टाहिभिः पायाच्छिवकोणे सदा च माम् ।।२२।।

पञ्चस्वरों में सरस्वती नित्य-क्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा अष्टाक्षरी विद्या मेरी रक्षा सदैव उत्तर दिशा में करे। ॐ ह्रीं हुं खे च छे क्षः स्त्रीं हुं क्षें ह्रीं फट् द्वादशाक्षर त्वरिता महाविद्या मेरी रक्षा ईशान कोण में करे।।२०-२२।।

ऐं क्लीं सौः सततं बाला मूर्द्धदेशे ततोऽवतु ।
विन्द्वन्ता भैरवी बाला भूमौ मां सर्वदाऽवतु ।।२३।।

ऐं क्लीं सौः बाला विद्या मेरे मूर्द्धा की रक्षा सदैव करे। ऐं सौः क्लीं बाला भैरवी रक्षा सदैव भूतल पर करे।।२३।।

इति ते कथितं पुण्यं त्रैलोक्यं मङ्गलं परम् ।
सारात्सारतरं पुण्यं महाविद्यौघविग्रहम् ।।२४।।

फलश्रुति—इस प्रकार परम त्रैलोक्यमंगल कवच का वर्णन किया गया। यह कवच सारों का सार, पुण्यप्रदायक महाविद्यौघविग्रह है।।२४।।

अस्यापि पठनात्सद्यः कुबेरोऽपि धनेश्वरः ।
इन्द्राद्याः सकला देवा धारणात्पठनाद्यतः ।।२५।।
सर्वसिद्धीश्वराः सन्तः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ।
पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा मूलेनैव सकृत्पठेत् ।।२६।।

इस कवच के पाठ से कुबेर तुरन्त धनेश्वर हो गये। इन्द्रादि सभी देवता इसका पाठ

करके और इसे धारण करके सभी सिद्धियों के स्वामी हो गये। सभी ऐश्वर्यों को प्राप्त किया। मूल मन्त्र से आठ पुष्पाञ्जलियाँ देकर इसका पाठ करे।।२५-२६।।

संवत्सरकृतायास्तु पूजायाः फलमाप्नुयात्।
प्रीतिमन्योन्यतः कृत्वा कमला निश्चला गृहे ॥२७॥
वाणी च निवसेद्वक्त्रे सत्यं सत्यं न संशयः।
यो धारयति पुण्यात्मा त्रैलोक्यं मङ्गलाभिधम् ॥२८॥
कवचं परमं पुण्यं सोऽपि पुण्यवतां वरः।
सर्वैश्वर्ययुतो भूत्वा त्रैलोक्यविजयी भवेत् ॥२९॥

एक वर्ष तक ऐसा करने से इसका फल प्राप्त होता है। अन्योन्य मन से प्रीतिपूर्वक पाठ करने से घर में लक्ष्मी का स्थायी निवास होता है। साधक के मुख में सरस्वती का वास होता है। यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है। इस त्रैलोक्य-मंगल कवच को जो पुण्यात्मा धारण करता है, वह भी परम पुण्यात्मा होकर सभी ऐश्वर्यों से युक्त होकर तीनों लोकों में विजयी होता है।।२७-२९।।

पुरुषो दक्षिणे बाहौ नारी वामभुजे तथा।
बहुपुत्रवती भूयाद्वन्ध्यापि लभते सुतम्।
ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि नैव कृन्तन्ति तं जनम् ॥३०॥
एतत्कवचमज्ञात्वा यो भजेद् भुवनेश्वरीम्।
दारिद्र्यं परमं प्राप्य सोऽचिरान्मृत्युमाप्नुयात् ॥३१॥

इति श्रीरुद्रयामले देवीश्वरसंवादे त्रैलोक्यमङ्गलं
नाम भुवनेश्वरीकवचं समाप्तम्

पुरुष दाहिने हाथ में और नारी बाँयीं भुजा में इसे धारण करे। इसे धारण करने से बाँझ स्त्री को भी बहुत पुत्र प्राप्त होते हैं। इसे धारण करने वाले को ब्रह्मास्त्रादि शस्त्र भी कुछ हानि नहीं पहुँचा सकते। इस कवच को जाने विना जो भुवनेश्वरी की उपासना करता है, उसे बड़ी दरिद्रता होती है और थोड़े ही दिनों में उसकी मृत्यु हो जाती है।।३०-३१।।

●

अन्नपूर्णास्तोत्रम्

ॐ नमः कल्याणदे देवि नमः शङ्करवल्लभे।
नमो भक्तिप्रिये देवि ह्यन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥१॥
नमो मायागृहीताङ्गी नमः शङ्करवल्लभे।
माहेश्वरि नमस्तुभ्यमन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥२॥

हे कल्याणदायिनी देवि! आपको नमस्कार है। हे शंकरप्रियतमे! आपको नमस्कार है। हे भक्तिप्रिये देवि! आपको नमस्कार है। हे अन्नपूर्णे! आपको नमस्कार है। हे शंकर-प्रियतमे! आपका शरीर मायामय है, आपको नमस्कार है। हे माहेश्वरि! आपको नमस्कार है। हे अन्नपूर्णे! आपको नमस्कार है ।।१-२।।

अन्नपूर्णे हव्यवाहपत्नीरूपे हरप्रिये ।
कलाकाष्ठास्वरूपे च ह्यन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ।।३।।
उद्यद्भानुसहस्राभे नयनत्रयभूषिते ।
चन्द्रचूडे महादेवि ह्यन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ।।४।।

हे अन्नपूर्णे! आप अग्निदेव की पत्नीरूपा हैं। शिव की प्रिया हैं। कला-काष्ठाऽस्वरूपा हैं। हे अन्नपूर्णे! आपको नमस्कार है। हे महादेवि! आपकी कान्ति उदीयमान सहस्रों सूर्यों के समान है। आप तीन नेत्रों से अलंकृत हैं। आपकी चूड़ा पर चन्द्रमा सुशोभित है। हे अन्नपूर्णे! आपको नमस्कार है।।३-४।।

विचित्रवसने देवि त्वन्नदानरतेऽनघे ।
शिवनृत्यकृतामोदे ह्यन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ।।५।।
षट्कोणपद्ममध्यस्थे षडङ्गयुवतीमये ।
ब्रह्माण्यादिस्वरूपे च ह्यन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ।।६।।

हे देवि! आपका वस्त्र विलक्षण है। आप सदैव अन्नदान करती रहती हैं। हे निर्मले! आप महेश्वर का नृत्य देखती हुई आनन्दित होती हैं।

हे अन्नपूर्णे! आपको नमस्कार है। हे अन्नपूर्णे! आप षट्कोण पद्म के मध्य में निवास करती हैं। आप षडंग युवतियों से युक्त ब्रह्माणी आदि के रूप को धारण करती हैं। आपको नमस्कार है।।५-६।।

देवि चन्द्रकलापीठे सर्वसाम्राज्यदायिनि ।
सर्वानन्दकरे देवि ह्यन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ।।७।।
साधकाभीष्टदे देवि भवदुःखविनाशिनि ।
कुचभारनते देवि ह्यन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ।।८।।

हे देवि! आप चन्द्रभूषण को धारण की हुई हैं। आप सभी भक्तों को साम्राज्य-दान करती हैं। आप सबको आनन्द दिया करती हैं। हे अन्नपूर्णे! आपको नमस्कार है।

हे देवि! आप साधकों की मनोकामना पूर्ण करती हैं। हे संसार के दुःखों को दूर करने वाली देवि! पयोधरों के भार से आपका शरीर झुका हुआ है। हे अन्नपूर्णे! आपको नमस्कार है।।७-८।।

इन्द्राद्यर्चितपादाब्जे रुद्रादिरूपधारिणि ।
सर्वसम्प्रत्पदे देवि ह्यन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥९॥

हे देवि! इन्द्रप्रमुख देव गण आपके चरणकमलों की पूजा किया करते हैं। आप रुद्रादि रूपधारिणी हैं। आप सभी सम्पत्तिदायिनी हैं। हे अन्नपूर्णे! आपको नमस्कार है।।९।।

पूजाकाले पठेद्यस्तु स्तोत्रमेतत्समाहितः ।
तस्य गेहे स्थिरा लक्ष्मीर्जायते नात्र संशयः ॥१०॥
प्रातःकाले पठेद्यस्तु मन्त्रजापपुरःसरम् ।
तस्यैवान्नसमृद्धिः स्याद्वर्द्धमाना दिने दिने ॥११॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं न प्रकाश्यं कदाचन ।
प्रकाशात्सिद्धिहानिस्तद् गोपायेद्यत्नतः सुधीः ॥१२॥

इत्यन्नपूर्णास्तोत्रं समाप्तम्

जो मनुष्य पूजाकाल में एकाग्र मन से इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसके घर में लक्ष्मी का स्थिर निवास होता है। इसमें सन्देह नहीं है। प्रातःकाल में मन्त्रजप के बाद जो व्यक्ति इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसका अन्नभण्डार प्रतिदिन बढ़ता है। इस अन्नपूर्णा स्तोत्र को सभी के सामने प्रकट न करे; क्योंकि ऐसा करने वाले की हानि होती है। अतः प्रयत्नपूर्वक इसे गुप्त रक्खे।।१०-१२।।

●

अन्नपूर्णाकवचम्

श्रीदेव्युवाच—

कथिताश्चान्नपूर्णाया या या विद्याः सुदुर्लभाः ।
कृपया कथिताः सर्वाः श्रुताश्चाधिगता मया ॥१॥
साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि कवचं यत्पुरोदितम् ।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं मन्त्रविग्रहम् ॥२॥

पूर्वपीठिका—श्रीदेवी ने कहा कि हे देवेश ! आपने अन्नपूर्णा देवी के जिन-जिन मन्त्रों को कृपा कर बताया, उन सबों को मैंने सुना और समझ लिया। अब मैं पूर्वकथित मन्त्रमय त्रैलोक्यमंगल कवच को सुनना चाहती हूँ।।१-२।।

ईश्वर उवाच—

शृणु पार्वति वक्ष्यामि सावधानावधारय ।
(त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं ब्रह्मनामकम्) ।
ब्रह्मविद्यास्वरूपञ्च महदैश्वर्यदायकम् ।

पठनाद्धारणान्मर्त्यस्त्रैलोक्यैश्वर्यभाग्भवेत् ॥३॥

ईश्वर बोले कि हे पार्वति ! त्रैलोक्य मंगल नामक ब्रह्मविद्यारूप कवच को कहता हूँ, जो महान् ऐश्वर्य को देने वाला है। सावधान होकर सुनिये।

इस कवच को पढ़ने और धारण करने से मनुष्य तीनों लोकों के वैभव का अधिकारी हो जाता है।।३।।

त्रैलोक्यरक्षणस्यास्यकवचस्य ऋषिः शिवः ।
छन्दो विराडन्नपूर्णा देवता सर्वसिद्धिदः ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥४॥

विनियोग—त्रैलोक्य की रक्षा करने वाले इस कवच के ऋषि साक्षात् शिव हैं; छन्द विराट् है और समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाली देवी अन्नपूर्णा देवता हैं। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति हेतु इसका विनियोग किया जाता है।।४।।

ह्रीं नमो भगवत्यन्ते माहेश्वरि पदं ततः ॥५॥
अन्नपूर्णे ततः स्वाहा चैषा सप्तदशाक्षरी ।
पातु मामन्नपूर्णा सा या ख्याता भुवनत्रये ॥६॥

कवच—ह्रीं नमो भगवति महेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा—यह सप्तदशाक्षर मन्त्र अन्नपूर्णा का तीनों भुवनों में विख्यात है। वे मेरी रक्षा करें।।५-६।।

विमाया प्रणवाद्यैषा तथा सप्तदशाक्षरी ।
पात्वन्नपूर्णा सर्वाङ्गे रत्नकुम्भान्नपात्रदा ॥७॥

उक्त मन्त्र के ह्रीं को हटाकर प्रणव को जोड़ने से भी सत्रह अक्षरों का मन्त्र बनता है; जैसे—ॐ नमो भगवति महेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा। रत्नकुम्भ और अन्नपात्र का दान करने वाली ये अन्नपूर्णा मेरे सभी अंगों की रक्षा करें।।७।।

श्रींबीजाद्या तथैवैषा द्विरन्ध्रार्णा तथा मुखम् ।
प्रणवाद्या भ्रुवौ पातु कण्ठं वाग्बीजपूर्विका ॥८॥
कामबीजादिका चैषा हृदयं तु महेश्वरी ।
तारं श्रीं ह्रीं नमोऽन्ते च भगवतीपदं ततः ॥९॥
माहेश्वरीपदं चान्नपूर्णे स्वाहेति पातु मे ।
नाभिमेकार्णविंशार्णा पायान्माहेश्वरी सदा ॥१०॥

श्रीं ह्रीं नमो भगवति महेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा—यह अट्ठारह अक्षरों वाली देवी मेरे मुख की और ॐ ह्रीं नमो भगवति महेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा—इन अट्ठारह अक्षरों वाली

देवी मेरे भौंहों की रक्षा करे। ऐं ह्रीं नमो भगवति महेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा—इन अट्ठारह अक्षरों की देवी मेरे कण्ठ की रक्षा करे।

क्लीं ह्रीं नमो भगवति महेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा—इन अट्ठारह अक्षरों वाली देवी मेरे हृदय की रक्षा करे। ॐ श्रीं ह्रीं नमो भगवति महेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा—इन उन्नीस अक्षरों वाली देवी सदा मेरे नाभि की रक्षा करे।।८-१०।।

तारं माया रमा कामः षोडशार्णास्ततः परम् ।
शिरःस्था सर्वदा पातु विंशत्यर्णात्मिका परा ॥११॥
करौ पादौ सदा पातु रमा कामो ध्रुवस्तथा ।
ध्वजश्च सर्वदा पातु विंशत्यर्णात्मिका च या ॥१२॥

श्रीं ह्रीं क्लीं नमो महेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा—बीस अक्षरों वाली महेश्वरी अन्नपूर्णा मेरे शिर में स्थित रहकर सदैव रक्षा करे। श्रीं क्लीं ॐ ऐं नमो भगवति महेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा—बीस अक्षरों वाली देवी मेरे दोनों हाथों की और दोनों पैरों की रक्षा करे।।११-१२।।

अन्नपूर्णा महाविद्या ह्रीं पातु भुवनेश्वरी ।
शिरः श्रीं ह्रीं तथा क्लीं च त्रिपुटा पातु मे गुदम् ॥१३॥
षट्दीर्घभाजा बीजेन षडङ्गानि पुनन्तु माम् ।
इन्द्रो मां पातु पूर्वे च वह्निकोणेऽनलोऽवतु ॥१४॥

ह्रीं भुवनेश्वरी महाविद्या अन्नपूर्णा मेरी रक्षा करे। ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं चार वर्णमयी त्रिपुटादेवी मेरे गुह्य की रक्षा करे। अन्नपूर्णा के बीज ह्रीं में छः दीर्घ स्वरों का योग करने से बनने वाले छः अंग मन्त्र (ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं हः) मुझे पवित्र बनाये। श्रीं क्लीं ॐ मेरे दोनों हाथों की सदा रक्षा करे। दोनों पैरों की रक्षा करें। पूर्व में मेरी रक्षा इन्द्र करें। अग्निकोण में अग्निदेव मेरी रक्षा करे।।१३-१४।।

यमो मां दक्षिणे पातु नैर्ऋत्यां निर्ऋतिस्तथा ।
पश्चिमे वरुणः पातु वायव्यां पवनोऽवतु ॥१५॥
कुबेरश्चोत्तरे पातु ऐशान्यां शङ्करोऽवतु ।
ऊर्ध्वाधः पातु सततं ब्रह्मानन्तो यथाक्रमात् ॥१६॥
पान्तु वज्राद्यायुधानि दश दिक्षु यथाक्रमात् ।

दक्षिण दिशा में यमराज मेरी रक्षा करें। नैर्ऋत्य कोण में मेरी रक्षा निर्ऋति करें। वरुणदेव पश्चिम में रक्षा करें। वायुदेव वायव्य में रक्षा करे। उत्तर में कुबेर रक्षा करें। ईशानकोण में शिव मेरी रक्षा करें। ऊर्ध्व ओर अधोदेश में ब्रह्मा और अनन्त रक्षा करें। दशो दिशाओं में वज्रादि आयुध रक्षा करें।।१५-१६।।

इति ते कथितं पुण्यं त्रैलोक्यरक्षणं परम् ॥१७॥
यद्धृत्वा पठनाद्देवाः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च धारणात्पठनाद्यतः ॥१८॥
सृजत्यवति कल्पे-कल्पे पृथक्पृथक् ।
पुष्पाञ्जल्यष्टकं देव्यै मूलेनैव समर्पयेत् ॥१९॥
कवचस्यास्य पठनात्पूजायाः फलमाप्नुयात् ।
वाणी वक्त्रे वसेत्तस्य सत्यं सत्यं न संशयः ॥२०॥

फलश्रुति—हे देवि! त्रैलोक्यरक्षाकारक कवचश्रेष्ठ मैंने तुझे बताया। इस कवच को धारण और पाठ करके देवताओं ने समस्त ऐश्वर्य प्राप्त किया है।

ब्रह्मा-विष्णु-महेश इसी कवच को धारण करके इसके प्रभाव से प्रत्येक कल्प में विश्व की सृष्टि-स्थिति और संहार करते हैं।

हे देवि! मूल मन्त्र से आठ पुष्पांजलि देकर इस कवच का पाठ करे तो दस हजार युगों की पूजा का फल मिलता है। लक्ष्मी अपनी चञ्चलता छोड़कर पुत्र-पौत्रादि के जीवनकाल तक उसके घर में स्थिर होकर रहती हैं। उसके मुख में सरस्वती विराजती हैं। यह सर्वथा सत्य है, इसमें सन्देह नहीं है।।१७-२०।।

अष्टोत्तरशतं चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः ।
भूर्जे विलिख्य गुटिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ॥२१॥
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि पुण्यवतां वरः ।
ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि तद्गात्रं प्राप्य पार्वति ।
माल्यानि कुसुमान्येव सुखदानि भवन्ति हि ॥२२॥

इति भैरवतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे
अन्नपूर्णाकवचं समाप्तम्

इस कवच का पुरश्चरण एक सौ आठ पाठ करने से होता है। इस प्रकार पाठ करने के बाद कवच को धारण करना चाहिये। भोजपत्र पर कवच को लिखकर गुटिका बनाए और उसे स्वर्णजटित कराकर कण्ठ या दाँई भुजा में धारण करे तो उसे सब प्रकार की तपस्या का फल मिलता है।

हे पार्वति! उसके शरीर पर ब्रह्मास्त्र आदि शस्त्र लगते ही पुष्पमाला के समान हो जाते हैं; इसमें सन्देह नहीं है।।२१-२२।।

●

त्रिपुटास्तोत्रम्

वराभीतिहस्तं द्विबाहुं प्रसन्नं शिवं सुप्रसन्नं स्वशक्त्योपविष्टम् ।
प्रसन्नास्यविम्बं प्रकाशस्वरूपं शिरः पद्ममध्ये गुरुं भावयामि ॥१॥
बकं वह्निसंस्थं त्रिमूर्त्या प्रजुष्टं शशाङ्केन युक्तं तवाद्यं स्वबीजम् ।
सुवर्णप्रभं ये जपन्ति त्रिशक्ते श्रियं सौभगत्वं लभन्ते नरास्ते ॥२॥

मैं गुरुदेव का ध्यान सहस्रार कमल में करता हूँ। उनके दो हाथ हैं। एक हाथ में वरमुद्रा और दूसरे में अभयमुद्रा है। वे अपनी शक्तिसहित कल्याणकारी सुप्रसन्न मुद्रा में विराजमान हैं। उनका मुखमण्डल नित्य प्रसन्न तेज से युक्त है।

हे त्रिशक्तिरूपिणी त्रिपुटे! श + र + ई + अनुस्वार के योग से बना श्रीं आपका प्रथम बीज है। सुनहली कान्ति वाले इस बीज का जो जप करते हैं, वे लक्ष्मी-सौभाग्य को प्राप्त करते हैं।।१-२।।

नभोवायुमित्रं ततो वामनेत्रं सुधाधामविम्बं नियोज्यैकवक्त्रम् ।
द्वितीयं स्वबीजं सुरश्रेणिवन्द्यं त्वदीयं विभाव्य श्रियं प्राप्नुवन्ति ॥३॥
विरिञ्चिं क्षितिस्थं ततो वामनेत्रं विधुं नादयुक्तं दिनेशाभबीजम् ।
विभाव्यैव सम्मोहयन्ति त्रिलोकीं जपादीश्वरत्वं लभन्ते नरेन्द्राः ॥४॥

ह + र + ई + अनुस्वार को मिलाने से आपका दूसरा बीज ह्रीं बनता है। देवताओं द्वारा पूज्य आपके इस बीज का जप करने से लोग श्रीलाभ करते हैं। क + ल + ई + अनुस्वार = क्लीं बीज बनता है, जो आपका तीसरा बीज है।

सूर्य के समान तेजस्वी आपके इस बीज का जप करके लोग तीनों लोकों को मुग्ध करने में समर्थ हो जाते हैं। इसके जप से ईश्वरत्व की प्राप्ति होती है।।३-४।।

त्रयं सन्नियोज्य स्मरारि प्रिये ये त्रिसन्ध्यं जपन्ति त्वदङ्गं विभाव्य ।
न तेषां रिपुर्वाक्प्रयोगं करोति स्मरास्तेऽङ्गनानां गृहे श्रीस्तु तेषाम् ॥५॥
मुखे भारती गद्यपद्यप्रबन्धा न हिंसन्ति हिंस्राः सुरास्तान्नमन्ति ।
तदंघ्रिद्वयं भूषणं मूर्ध्नि राज्ञां करे सिद्धयो दुर्ग्रहास्तांस्त्यजन्ति ॥६॥

हे स्मरहरगृहिणि! जो लोग तुम्हारे इन तीनों बीजों को एकत्र कर श्रीं ह्रीं क्लीं का जप तीनों सन्ध्याओं में करते हैं, उनके शत्रु गूंगे हो जाते हैं। सभी रमणियों के सामने वे कामदेव के समान आकर्षक हो जाते हैं। उनके घर में लक्ष्मी निरन्तर विराजमान रहती हैं।

श्रीं ह्रीं क्लीं के उपासकों के मुख से गद्य-पद्यमयी वाणी धाराप्रवाह निकलने लगती है। हिंसक प्राणी उनके प्रति अपने हिंसक भाव को त्याग देते हैं। देवगण उनके सम्मुख

नतमस्तक होते हैं। राजा लोग उन्हें प्रणाम करते हैं। अष्ट सिद्धियाँ उनके हाथ में रहती हैं। दुष्ट ग्रहों का प्रभाव उन पर नहीं पड़ता।।५-६।।

वने पारिजातद्रुमाणां पृथिव्यां सुवर्णप्रभायां मणिव्यूहगेहे ।
स्मरेद्वेदिकायां लसद्रत्नसिंहासने पद्ममष्टारकं संविचिन्त्य ।।७।।
स्फुरत्कर्णिकायां परं योनियुग्मं तदन्तर्गतामुञ्चहेमप्रभां याम् ।
लसत्कुण्डलामिन्दुवक्त्रां त्रिनेत्रां स्फुरत्कम्बुकण्ठां सुवक्षोजनम्राम् ।।८।।

पारिजात वृक्षों के वन में स्वर्णमयी भूमि पर विविध मणिमण्डित एक गृह में शोभित रत्नसिंहासन में अष्टदल कमल का ध्यान करे। उस अष्टदल कमल की कर्णिका में दो त्रिकोणों के मध्य में तप्त स्वर्ण की कान्ति वाली देवीमूर्ति विराजमान है। उनके कानों में कुण्डल हैं। मुखमण्डल चन्द्रमा के समान सुन्दर है। तीन नेत्र हैं। शङ्ख के समान कमनीय उनकी ग्रीवा है। शरीर स्थूल स्तनों के भार से झुका हुआ है।।७-८।।

महारत्नवज्रोल्लसद्बाहुवृन्दैः सुपद्मद्वयं पाशकं कार्मुकञ्च ।
सुवर्णांकुशं पुष्पबाणान् दधानां बृहद्रत्नभूषां सुमध्यां सुकाञ्चीम् ।।९।।
तुलाकोटिरस्य स्फुरत्पादपद्मां किरीटाद्यलङ्कारयुक्तां प्रसन्नाम् ।
सिते चामरे दर्पणं तत्करण्डं समुद्गं सुकर्पूरपूर्णं धृताभिः ।।१०।।

उनकी सभी भुजायें महामूल्यवान रत्नों और हीरों से जटित अलंकारों से भूषित हैं। हाथों में दो उत्तम कमल, पाश, धनुष, सोने का अंकुश और पुष्पवाण है। वृहत् रत्नालंकार से मण्डित उनकी कमर अतीव पतली है। कटितट पर मनोहर काँची साड़ी है। चरणकमलों में दो नूपुर सुशोभित हैं। मस्तक पर मुकुट और अंगों में विविध प्रकार के आभूषण हैं। दो उज्ज्वल चँवर, दर्पण, उत्तम कर्पूरपूर्ण, ताम्बूलपेटी और सिन्दूर को लिए सेविकायें उनके अगल-बगल में विद्यमान हैं। प्रसन्नमुखी देवी आसीन हैं।।९-१०।।

त्रिलोकीविधात्रीं जगत्तापहर्त्रीं जगत्क्षोभकर्त्रीं जगल्लोकधात्रीम् ।
सदानन्दपूर्णां हकारार्द्धवर्णां त्रिविन्दुस्वरूपां त्रिशक्तिं भजामि ।।११।।
चिरं चिन्तयित्वा तदेतत्स्वरूपां पूरो यन्त्रमध्ये समावाह्य भक्त्या ।
स्वयम्भूप्रसूनादिभिः पूजयित्वा चतुर्वर्गसिद्धिं लभेत् पामरोऽपि ।।१२।।

जो तीनों लोकों की सृष्टि करती हैं, तीनों भुवनों का विनाश करती हैं, तीनों भुवनों को क्षुब्ध करती हैं और तीनों भुवनों के लोगों का पोषण करती हैं, सदैव आनन्द में मग्न रहती हैं तथा हकार के निम्नार्द्ध नादवर्ण जैसा जिनका स्वरूप है, जो त्रिबिन्दुस्वरूपिणी हैं; उन त्रिशक्तिमयी त्रिपुरा देवी की मैं आराधना करता हूँ।

एकाग्र चित्त से उन देवी के इसी रूप की मूर्ति का ध्यान करके सामने रक्खे यन्त्र

के ऊपर भक्तिपूर्वक उनका आवाहन करे। स्वयम्भू कुसुमादि से पूजा करे। इस पूजा से पापी व्यक्ति भी धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।।११-१२।।

श्रियं श्रीपतिं पार्वतीमीश्वरञ्च रतिं कामदेवं षडङ्गेन सार्द्धम् ।
स्वयोनौ तथा मन्त्रमुक्त्वा भवानीं क्रमात्पूजयित्वा नरेन्द्रो भवेत् सः ॥१३॥
निधी द्वौ च पार्श्वद्वये संविभाव्य प्रपूज्या महिष्यस्ततो लोकपालाः ।
तदस्त्राणि तत्तद्दलाग्रे प्रपूज्य भवस्याष्टसिद्धिं लभेन्मानवोऽपि ॥१४॥

योनि में मूल मन्त्र का उच्चारण करके षडंग देवताओं के साथ क्रमशः श्री, श्रीपति, पार्वती, ईश्वर, रति, कामदेव और भवानी की अर्चना करने से मनुष्य राजा होता है। यन्त्रपद्म के दोनों पार्श्वों में शंखनिधि और पद्मनिधि की पूजा करे। लोकपालों और उनकी पत्नियों की पूजा करे। पद्म के दलाग्रों में देवी के अस्त्रों की पूजा करे। ऐसी पूजा करने से मनुष्य भी महादेव की अष्ट सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है।।१३-१४।।

क्षितिस्त्वं विधात्री जगत्सृष्टिकर्त्री त्वमापोऽपि विष्णु जगत्पालिका च ।
त्वमग्निस्तु रुद्रौ जगत्क्षोभकर्त्री त्वमैश्वर्ययुक्ता जगद्वायुरूपा ॥१५॥
त्वमाद्या शिवे शम्भुकान्ते शरण्ये जगद्ब्रह्मरन्ध्रे सदारं भ्रमीषि ।
निराधारगम्या भवस्यैकपुण्या त्वमाकाशकल्पा भवानि प्रसीद ॥१६॥

हे जननि! आप क्षितिमयी ब्रह्ममूर्ति द्वारा जगत् की सृष्टि करती हैं, जलमयी विष्णु-मूर्ति द्वारा जगत् की रक्षा करती हैं और अग्निमयी रुद्रमूर्ति द्वारा जगत् का संहार करती हैं। आप ऐश्वर्यरूपिणी हैं। ब्रह्माण्ड की वायुरूपिणी हैं। हे शिवे! हे शम्भुमहिषि! आप सबकी रक्षिका आद्या शक्ति हैं। आप जगत् के सभी प्राणियों के ब्रह्मरन्ध्र में सदा भ्रमण करती रहती हैं। आप निराधार तेजोमयी मूर्ति में अधिष्ठान करती हैं। हे भवानि! आप गगनरूपिणी होकर भी एकमात्र शिव के पुण्य-फल से स्वरूपधारण करती हैं। आप हम पर प्रसन्न हों।।१५-१६।।

भवाम्भोधिमध्ये निपात्यैव सर्वं मुनीनाञ्च गर्वं सुखर्वं करोषि ।
अतस्तां न जाने चिदानन्दरूपे प्रकाशस्वरूपे भवानि प्रसीद ॥१७॥
जपित्वा तु भक्त्या जनो मन्दचेता जपन्नेकलक्षं कवित्वं करोति ।
विचिन्त्य स्वरूपं त्वदीयं त्रिलोक्यां लभेद्दुर्लभत्वं भवानि प्रसीद ॥१८॥

हे भवानि! आप सभी को भवसागर में निमग्न कर मुनियों के गर्व को भी चूर कर देती हैं। आप चिदानन्दरूपिणी प्रकाशमयी हैं। आपको पहचानने में मैं समर्थ नहीं हूँ। आप मुझ पर प्रसन्न होइये। हे भवानि! मन्द बुद्धि वाला व्यक्ति भी आपके मन्त्र का एक लाख जप करके कवित्व शक्ति पा जाता है और तीनों लोकों में दुर्लभ वस्तु भी उसे प्राप्त हो जाती है।।१७-१८।।

त्वमाधारशक्तिस्त्वमाधेयरूपा जगद्व्यापिका त्वं जगद्व्याप्यरूपा ।
अभावस्त्वमेका गुणातीतरूपा त्वमेवासि भावो भवानि प्रसीद ॥१९॥

हे भवानि! यद्यपि आप आधारशक्तिरूपिणी हैं तथापि आधेयरूपिणी भी आप ही हैं। आप जगद्व्यापिनी होकर भी जगत् की व्याप्यरूपिणी हैं। आप अभावरूपिणी होकर भी भावरूपिणी हैं। आप त्रिगुणातीता हैं। आप मुझ पर प्रसन्न हों।।१९।।

अणुस्त्वं विभुस्त्वं त्वमेवासि विश्वं स्तुतिः का भवत्या जगत्यां विभाति ।
तथापि त्वदीया गुणा मां दिशन्ति स्तुतिं कर्तुमेवं भवानि प्रसीद ॥२०॥

हे देवि! आप सूक्ष्मरूपिणी हैं। आप ही स्थूलरूपिणी विभुमूर्ति भी हैं। अधिक क्या कहा जाय, आप ही समस्त विश्वरूपिणी हैं।

हे भवानि! इस विश्व में आपकी स्तुति करने की शक्ति किसमें है? केवल आपकी गुणराशि मुझे आपका स्तवन करने को उत्तेजित कर रही है। मैं अक्षम होने पर भी आपकी स्तुति कर रहा हूँ। आप मुझ पर प्रसन्न हों।।२०।।

इदं स्तोत्रमत्यन्तगुह्यं नरा ये पठन्ति त्रिसन्ध्यं कुलान्ते जपित्वा ।
न तेषामसाध्यं त्रिलोकीजनानां लभन्ते स्वरूपं भवानि प्रसीद ॥२१॥

इति त्रिपुटास्तोत्रं समाप्तम्

हे भवानि! जो तीनों सन्ध्याओं में जप के अन्त में आपके इस अतिगोप्य स्तोत्र का पाठ करता है, उसके लिये इस त्रिलोक में कोई भी कार्य असाध्य नहीं रहता। वह सभी कार्य करने में समर्थ होता है। आपका वास्तविक स्वरूप उसे ज्ञात हो जाता है। आप मुझ पर प्रसन्न हों।।२१।।

●

त्रिपुटाकवचम्

श्रीदेव्युवाच—

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रार्थपारग ।
त्रिशक्तिरूपलक्ष्म्याश्च कवचं यत्प्रकाशितम् ।
सर्वार्थसाधनं नाम कथयस्व मयि प्रभो ॥१॥

पूर्वपीठिका—श्रीदेवी ने कहा कि हे भगवन्! आप सभी धर्म के ज्ञाता हैं। सभी शास्त्रों के मर्मज्ञ हैं।

हे प्रभो! आपने त्रिशक्तिरूपी लक्ष्मी के जिस सर्वार्थसाधन नामक कवच का उल्लेख किया है, उसे बताने की कृपा करें।।१।।

ईश्वर उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कवचं परमाद्भुतम् ।
सर्वार्थसाधनं नाम त्रैलोक्ये चातिदुर्लभम् ॥२॥
सर्वसिद्धिमयं देवि सर्वैश्वर्यप्रदायकम् ।
पठनाद्धारणान्मर्त्यस्त्रैलोक्यैश्वर्यभाग्भवेत् ॥३॥

ईश्वर बोले—हे देवि! सुनो। मैं अति विलक्षण सर्वार्थसाधन नामक कवच को कहता हूँ, जो तीनों लोकों में दुष्प्राप्य है।

हे देवि! यह सभी सिद्धियों से युक्त है। सभी प्रकार के वैभव को देने वाला है। इसके पाठ और धारण करने से मनुष्य तीनों लोकों का ऐश्वर्य प्राप्त कर लेता है।।२-३।।

सर्वार्थसाधनस्यास्य कवचस्य ऋषिः शिवः ।
छन्दो विराट् त्रिशक्तिः श्रीर्जगद्धात्री च देवता ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तित ॥४॥

विनियोग—इस सर्वार्थसाधन कवच के ऋषि शिव हैं, छन्द विराट् है, त्रिशक्ति श्री जगद्धात्री इसके देवता हैं। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिये इसका विनियोग किया जाता है।।४।।

श्रीं बीजं मे शिरः पातु लक्ष्मीरूपा ललाटकम् ।
ह्रीं पातु दक्षनेत्रं मे वामनेत्रं सुरेश्वरी ॥५॥
क्लीं पातु दक्षपार्श्वं मे वामं कामेश्वरी तथा ।
लक्ष्मीर्घ्राणं सदा पातु वदनं पातु केशवः ॥६॥

कवच स्तोत्र—श्रीं बीज मेरे शिर की और लक्ष्मी ललाट की रक्षा करें। ह्रीं मेरे दाँयें नेत्र की और सुरेश्वरी बाँयें नेत्र की रक्षा करें। क्लीं मेरे दाँयें पार्श्व की और कामेश्वरी बाँयें पार्श्व की रक्षा करें। लक्ष्मी सदा नासिका की रक्षा करें और केशव मुख की रक्षा करें।।५-६।।

गौरी तु रसनां पातु कण्ठं पातु महेश्वरः ।
स्कन्धदेशं रतिः पातु भुजौ तु मकरध्वजः ॥७॥
शंखनिधिः करौ पातु वक्षः पद्मनिधिस्तथा ।
ब्राह्मी कुक्षिं सदा पातु नाभिं पातु महेश्वरी ॥८॥

गौरी जीभ की और महेश्वर कण्ठ की रक्षा करें। कन्धों की रक्षा रति और दोनों भुजाओं की रक्षा कामदेव करें।

शंखनिधि दोनों हाथों की और पद्मनिधि वक्ष की रक्षा करें। ब्राह्मी कोख की और माहेश्वरी नाभि की रक्षा करें।।७-८।।

कौमारी पृष्ठदेशं मे गुह्यं रक्षतु वैष्णवी ।
वाराही सक्थिनी पातु ऐन्द्री पातु पदद्वयम् ॥९॥
भार्या रक्षतु चामुण्डा लक्ष्मीं रक्षतु पुत्रकान् ।
इन्द्रः पूर्वे सदा पातु आग्नेयामग्निदेवता ॥१०॥

कौमारी पीठ की और वैष्णवी गुह्य की रक्षा करें। वाराही दोनों ऊरुओं की और ऐन्द्री दोनों पैरों की रक्षा करें। चामुण्डा मेरी पत्नी की और महालक्ष्मी मेरे पुत्रों की रक्षा करें। इन्द्र सदैव पूर्व में और अग्नि आग्नेय कोण में रक्षा करें।।९-१०।।

याम्ये यमः सदा पातु नैर्ऋत्यां निर्ऋतिस्तथा ।
पश्चिमे वरुणः पातु वायव्यां वायुदेवता ॥११॥
सौम्ये सोमः सदा पातु ऐशान्यामीश्वरोऽवतु ।
ऊर्ध्वं प्रजापतिः पातु अधश्चानन्तदेवता ॥१२॥

दक्षिण में यमराज और नैर्ऋत्य में निर्ऋति सदा रक्षा करें। पश्चिम में वरुण और वायव्य में वायुदेव सदा रक्षा करें। उत्तर में चन्द्रमा और ईशान कोण में ईशान (सदाशिव) रक्षा करें। ऊर्ध्वदिशा में ब्रह्मा और नीचे अनन्त देव रक्षा करें।।११-१२।।

राजद्वारे श्मशाने च अरण्ये प्रान्तरे तथा ।
जले स्थले चान्तरीक्षे शत्रूणां निचये तथा ॥१३॥
एताभिः सहिता देवी त्रिबीजात्मा महेश्वरी ।
त्रिशक्तिश्च महालक्ष्मीः सर्वत्र मां सदावतु ॥१४॥

राजद्वार, श्मशान, वन-प्रान्तर जल-थल-अन्तरिक्ष में तथा शत्रुओं के बीच में उक्त सभी देवताओं के साथ त्रिबीजमयी महेश्वरी और त्रिशक्ति महालक्ष्मी सर्वदा सर्वत्र मेरी रक्षा करें।।१३-१४।।

इति ते कथितं देवि सारात्सारतरं परम् ।
सर्वार्थसाधनं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥१५॥
अस्यापि पठनात्सद्यः कुवेरोऽपि धनेश्वरः ।
इन्द्राद्याः सकला देवा धारणात् पठनाद्यतः ।
सर्वसिद्धीश्वराः सन्तः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ॥१६॥

फलश्रुति—हे देवि ! सारों का सार, परमतत्त्व से भी श्रेष्ठ यह सर्वार्थसाधन नामक विलक्षण कवच का वर्णन मैंने किया।

इस कवच के पाठ करके कुबेर तुरन्त धनेश्वर हो गये। इन्द्रादि देवताओं ने भी इसे धारण करने से और इसका पाठ करने से सभी सिद्धियों के स्वामी होकर सभी प्रकार का

ऐश्वर्य प्राप्त किया।।१५-१६।।

पुष्पाञ्जल्यष्टकं दद्यान्मूलेनैव पठेत्सकृत् ।
संवत्सरकृतायास्तु पूजायाः फलमाप्नुयात् ।।१७।।
प्रीतिमन्योन्यतः कृत्वा कमला निश्चला गृहे ।
वाणी च निवसेद्वक्त्रे सत्यं सत्यं न संशयः ।।१८।।

त्रिपुटा देवी के मूल मन्त्र से आठ पुष्पाञ्जलियाँ देकर इस कवच का एक बार पाठ करे। ऐसा करने से वर्ष भर पूजा करने का फल मिलता है।

इस प्रकार कवच का पाठ करने वालों के घर में लक्ष्मी और सरस्वती परस्पर प्रेम करती हुई स्थिर होकर रहती हैं। सरस्वती उसके मुख में निवास करती हैं। यह सर्वथा सत्य है, इसमें सन्देह नहीं है।।१७-१८।।

यो धारयति पुण्यात्मा सर्वार्थसाधनाभिधम् ।
कवचं परमं पुण्यं सोऽपि पुण्यवतां वरः ।
सर्वैश्वर्ययुतो भूत्वा त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।।१९।।
पुरुषो दक्षिणे बाहौ नारी वामभुजे तथा ।
बहुपुत्रवती भूत्वा बन्ध्यापि लभते सुतम् ।।२०।।

जो धर्मात्मा सर्वार्थसाधन नामक इस अति पवित्र कवच को धारण करता है, वह पुण्यवान लोगों में श्रेष्ठ माना जाता है। वह सभी प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त होकर तीनों लोकों में विजय प्राप्त करता है।

पुरुष इस कवच को दाँईं भुजा में धारण करे और स्त्री अपनी बाँईं भुजा में। बाँझ स्त्री भी इस कवच को धारण करने से बहुपुत्रवती होती है।।१९-२०।।

ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि नैव कृन्तन्ति तत्तनुम् ।
एतत्कवचमज्ञात्वा यो जपेत्परमेश्वरीम् ।
दारिद्र्यं परमं प्राप्य सोऽचिरान्मृत्युमाप्नुयात् ।।२१।।

इति रुद्रयामले त्रिशक्त्याः सर्वार्थसाधनं
नाम कवचं समाप्तम्

इस कवच को धारण करने वाले के शरीर को ब्रह्मास्त्र आदि शस्त्र भी हानि नहीं पहुँचा सकते। इस कवच को जाने विना जो परमेश्वरी के मन्त्र का जप करता है, वह अति दरिद्र हो जाता है और अल्प काल में ही उसकी मृत्यु हो जाती है।।२१।।

●

दुर्गाशतनामस्तोत्रम्

ईश्वर उवाच—

शतनाम प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने ।
अस्य प्रसादमात्रेण दुर्गा प्रीता भवेत् सती ॥१॥

शंकर जी ने पार्वती से कहा कि हे कमलानने ! अब मैं एक सौ आठ नामों का वर्णन करता हूँ, आप सुनिये। जिसके पाठ और श्रवण मात्र से परम साध्वी भगवती दुर्गा प्रसन्न होती हैं।।१।।

ॐ सती साध्वी भवप्रीता भवानि भवमोचिनी ।
आर्या दुर्गा जया आद्या त्रिनेत्रा शूलधारिणी ॥२॥
पिनाकधारिणी चित्रा चन्द्रघण्टा महातपाः ।
मनोबुद्धिरहङ्कारा चित्तरूपा चिता चितिः ॥३॥
सर्वमन्त्रमयी सत्या सत्यानन्दस्वरूपिणी ।
अनन्ता भाविनी भाव्या भव्याऽभव्या सदागतिः ॥४॥
शम्भुपत्नी देवमाता च चिन्ता रत्नप्रिया सदा ।
सर्वविद्या दक्षकन्या दक्षयज्ञविनाशिनी ॥५॥
अपर्णा चैकवर्णा च पाटला पाटलावती ।
पट्टाम्बरपरीधाना कलमञ्जीररञ्जिनी ॥६॥
अमेयविक्रमा क्रूरा सुन्दरी कुलसुन्दरी ।
वनदुर्गा च मातङ्गी मतङ्गमुनिपूजिता ॥७॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री कौमारी वैष्णवी तथा ।
चामुण्डा चैव वाराही लक्ष्मीश्च पुरुषाकृतिः ॥८॥
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया सत्या च वाक्प्रदा ।
बहुला बहुलप्रेमा सर्ववाहनवाहना ॥९॥
निशुम्भशुम्भहननी महिषासुरमर्दिनी ।
मधुकैटभहन्त्री च चण्डमुण्डविनाशिनी ॥१०॥
सर्वासुरविनाशा च सर्वदानवघातिनी ।
सर्वशास्त्रमयी विद्या सर्वास्त्रधारिणी तथा ॥११॥
अनेकशस्त्रहस्ता च अनेकास्त्रस्य धारिणी ।
कुमारी चैककन्या च कैशोरी युवती यतिः ॥१२॥
अप्रौढा चैव प्रौढा च वृद्धमाता बलप्रदा ।
महादेवी मुक्तकेशी घोररूपा महाफला ॥१३॥

अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्रिस्तपस्विनी ।
नारायणी भद्रकाली विष्णुमाया जलोदरी ॥१४॥
शिवदूती कराली च अनन्ता परमेश्वरी ।
कात्यायनी च सावित्री प्रत्यक्षा ब्रह्मवादिनी ॥१५॥

१. ॐ सती, २. साध्वी, ३. भवप्रीता, ४. भवानी, ५. भवमोचनी, ६. आर्या, ७. दुर्गा, ८. जया, ९. आद्या, १०. त्रिनेत्रा, ११. शूलधारिणी, १२. पिनाकधारिणी, १३. चित्रा, १४. चण्डघंटा, १५. महातपा, १६. मन:, १७. बुद्धि, १८. अहंकारा, १९. चित्तरूपा, २०. चिता, २१. चिति:, २२. सर्वमन्त्रमयी, २३. सत्ता, २४. सत्यानन्दस्वरूपिणी, २५. अनन्ता, २६. भाविनी, २७. भाव्या, २८. भव्या, २९. अभव्या, ३०. सदागति, ३१. शाम्भवी, ३२. देवमाता, ३३. चिन्ता, ३४. रत्नप्रिया, ३५. सर्वविद्या, ३६. दक्षकन्या, ३७. दक्षयज्ञविनाशिनी, ३८. अपर्णा, ३९. अनेकवर्णा, ४०. पाटला, ४१. पाटलावती, ४२. पट्टाम्बरपरीधाना, ४३. कलमंजीररंजिनी, ४४. अमेयविक्रमा, ४५. क्रूरा, ४६. सुन्दरी, ४७. सुरसुन्दरी, ४८. वनदुर्गा, ४९. मातंगी, ५०. मतंगमुनिपूजिता, ५१. ब्राह्मी, ५२. माहेश्वरी, ५३. ऐन्द्री, ५४. कौमारी, ५५. वैष्णवी, ५६. चामुण्डा, ५७. वाराही, ५८. लक्ष्मी, ५९. पुरुषाकृति, ६०. विमला, ६१. उत्कर्षिणी, ६२. ज्ञाना, ६३. क्रिया, ६४. नित्या, ६५. बुद्धिदा, ६६. बहुला, ६७. बहुलप्रेमा, ६८. सर्ववाहनवाहना, ६९. निशुम्भशुम्भहननी, ७०. महिषमर्दिनी, ७१. मधुकैटभहन्त्री, ७२. चण्डमुण्डविनाशिनी, ७३. सर्वासुरविनाशा, ७४. सर्वदानवघातिनी, ७५. सर्वशास्त्रमयी, ७६. सत्या, ७७. सर्वास्त्रधारिणी, ७८. अनेकशस्त्रहस्ता, ७९. अनेकास्त्रमयी, ८०. कुमारी, ८१. एककन्या, ८२. कैशोरी, ८३. युवती, ८४. यति, ८५. अप्रौढ़ा, ८६. प्रौढ़ा, ८७. वृद्धमाता, ८८. बलप्रदा, ८९. महोदरी,९०. मुक्तकेशी, ९१. घोररूपा, ९२. महाबली, ९३. अग्निज्वाला, ९४. रौद्रमुखी, ९५. कालरात्रि, ९६. तपस्विनी, ९७. नारायणी, ९८. भद्रकाली, ९९. विष्णुमाया, १००. जलोदरी, १०१. शिवदूती, १०२. कराली, १०३. अनन्ता, १०४. कामेश्वरी, १०५. कात्यायनी, १०६. सावित्री, १०७. प्रत्यक्षा, १०८. ब्रह्मवादिनी।।२-१५।।

य इदं प्रपठेन्नित्यं दुर्गानामशताष्टकम् ।
नासाध्यं विद्यते देवि त्रिषु लोकेषु पार्वति ॥१६॥
धनं धान्यं सुतं जायां ह्रयं हस्तिकमेव च ।
चतुरङ्गं तथा चान्ते लभेन्मुक्तिञ्च शाश्वतीम् ॥१७॥

देवि पार्वति! जो प्रतिदिन दुर्गा जी के इस अष्टोत्तर शतनाम का पाठ करता है, उसके लिये तीनों लोकों में कुछ भी असाध्य नहीं है। वह धन-धान्य, पुत्र, स्त्री, घोड़ा, हाथी, धर्मादि चार पुरुषार्थ तथा अन्त में सनातन मुक्ति प्राप्त कर लेता है।।१६-१७।।

कुमारीं पूजयित्वा तु ध्यात्वा देवीं सुरेश्वरीम् ।
पूजयेत्परया भक्त्या पठन्नामशताष्टकम् ॥१८॥
तस्या सिद्धिर्भवेद्देवि सर्वैः सुरवरैरपि ।
राजानो दासतां यान्ति राज्यश्रियमवाप्नुयात् ॥१९॥

कुमारी का पूजन और देवी सुरेश्वरी का ध्यान करके पराभक्ति के साथ उनका पूजन करे तब अष्टोत्तर शतनाम का पाठ आरम्भ करे।

हे देवि! जो ऐसा करता है, उसे सब श्रेष्ठ देवताओं से भी सिद्धि मिलती हैं। राजा उसके दास हो जाते हैं। वह राज्यलक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है।।१८-१९।।

गोरोचनालक्तककुङ्कुमेन सिन्दूरकर्पूरमधुत्रयेण ।
विलिख्य यन्त्रं विधिना विधिज्ञो भवेत्सदा धारयते पुरारिः ॥२०॥
भौमावास्यानिशाभागे चन्द्रे शतभिषां गते ।
विलिख्य प्रपठेत् स्तोत्रं स भवेत्सम्पदां प्रदम् ॥२१॥

इति विश्वसारतन्त्रे दुर्गानामस्तोत्रं समाप्तम्

गोरोचन-लाह-कुंकुम-सिन्दूर-कपूर-घी-चीनी और मधु को एकत्र करके इनसे विधिपूर्वक यन्त्र लिखकर जो विधिज्ञ पुरुष उस यन्त्र को धारण करता है, वह शिव के समान हो जाता है।

भौमवती अमावस्या की आधी रात में जब चन्द्रमा शतभिषा नक्षत्र में हों तब इस स्तोत्र को लिखकर जो इसका पाठ करता है, वह सम्पत्तिशाली होता है।।२०-२१।।

◆

श्रीदुर्गाकवचम्

ईश्वर उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वसिद्धिदम् ।
पठित्वा धारयित्वा च नरो मुच्येत सङ्कटात् ॥१॥
अज्ञात्वा कवचं देवि दुर्गामन्त्रञ्च यो जपेत् ।
स नाप्नोति फलं तस्य मृते च नरकं व्रजेत् ॥२॥
इदं गुह्यतमं देवि कवचं तव कथ्यते ।
गोपनीयं प्रयत्नेन सावधानावधारय ॥३॥

पूर्वपीठिका—शिवजी ने कहा कि हे देवि! अब मैं आपको सर्वसिद्धिप्रद कवच का श्रवण कराता हूँ। इसको पाठ करके और धारण करके मनुष्य सभी संकटों से छुटकारा पाता है।

इस कवच को जाने विना जो दुर्गामन्त्र का जप करता है, उसे कोई फल नहीं मिलता। उसे नरक में जाना पड़ता है।

हे देवि! इस गुह्यतम कवच को मैं कहता हूँ। इसे यत्नपूर्वक गुप्त रखकर धारण करो।।१-३।।

उमा देवी शिरः पातु ललाटं शूलधारिणी ।
चक्षुंषी खेचरी पातु कर्णौ चत्वरवासिनि ।।४।।
सुगन्धा नासिके पातु वदनं सर्वसाधिनी ।
जिह्वां च चण्डिका पातु ग्रीवां सौभद्रिका तथा ।।५।।

कवच—उमा देवी मेरे शिर की रक्षा करें। शूलधारिणी देवी मेरे ललाट की रक्षा करें। खेचरी देवी आँखों की और चत्वरवासिनी कानों की रक्षा करें।

सुगन्धा नाक की और सर्वसाधिनी मेरे मुख की रक्षा करें। जीभ की रक्षा चण्डिका और ग्रीवा की रक्षा सौभद्रिका करें।।४-५।।

अशोकवासिनी चैतौ द्वौ बाहू वज्रधारिणी ।
कण्ठं पातु महावाणी जगन्माता स्तनद्वयम् ।।६।।
हृदयं ललिता देवी उदरं सिंहवाहिनी ।
कटिं भगवती देवी द्वावूरू विन्ध्यवासिनी ।।७।।

अशोकवासिनी चित्त की और दोनों बाहुओं की रक्षा वज्रधारिणी करें। कण्ठ की रक्षा महावाणी और स्तनद्वय की रक्षा जगन्माता करें। ललिता हृदय की और सिंहवाहिनी उदर की रक्षा करें। भगवती देवी कमर की और दोनों ऊरुओं की रक्षा विन्ध्यवासिनी देवी करें।।६-७।।

महाबला च जंघे द्वे पादौ भूतलवासिनी ।
एवं स्थितासि देवि त्वं त्रैलोक्यरक्षणात्मिके ।
रक्ष मां सर्वगात्रेषु दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ।।८।।
इत्येतत् कवचं देवि महाविद्याफलप्रदम् ।

महाबला दोनों जाँघों की और भूतलवासिनी दोनों पैरों की रक्षा करें। तीनों लोकों की रक्षा करने वाली देवि! तुम मेरे सभी अंगों की रक्षा करो। दुर्गा देवी तुमको नमस्कार है। यह कवच महाविद्या का फलप्रदायक है।।८।।

यः पठेत्प्रातरुत्थाय सर्वतीर्थफलं लभेत् ।।९।।
यो न्यसेत्कवचं देहे तस्य विघ्नं न कुत्रचित् ।
भूतप्रेतपिशाचेभ्यो भयन्तस्य न विद्यते ।।१०।।

रणे राजकुले वापि सर्वत्र विजयी भवेत् ।
सर्वत्र पूजामाप्नोति देवीपुत्र इव क्षितौ ।।११।।

इति कुब्जिकातन्त्रे दुर्गाकवचं समाप्तम्

फलश्रुति—प्रात:काल उठकर जो इसका पाठ करता है, उसे सभी तीर्थों का फल प्राप्त होता है। जो इस कवच का न्यास अपने शरीर में करता है, उसे कहीं विघ्न नहीं होते हैं, भूत-प्रेत-पिशाचों का भय उसे नहीं होता। युद्ध में, राजदरबार में वह सर्वत्र विजयी होता है। संसार में देवीपुत्र के समान सर्वत्र उसकी पूजा होती है।।९-११।।

●

महिषमर्दिनीस्तोत्रम्

भैरव उवाच—

मच्चित्ते चरचण्डिचूर्णितदुराचारप्रचण्डासुरे
स्वैरं दारय भूरि दुर्द्दरदरद्रोहोर्मिमर्मापदः ।
तेनायं निरुपद्रुतो निरुपमश्रीपादपद्माटवी
प्राप्तानन्तरसार्णवे मम मनो हंसश्चिरं नन्दतु ।।१।।

भैरव ने कहा कि दुराचाररूपी प्रचण्ड असुर का नाश करने वाली हे चण्डि! मेरे चित्त में विहार करो। मेरे हृदय में स्थित काम-क्रोधादि षड् रिपुओं के दुर्निवार भयंकर आवेग को क्रमश: नष्ट कर दो। वैसा होने पर मेरा मनरूपी हंस उपद्रवरहित होकर तुम्हारे श्रीचरणकमलरूपी कानन में विद्यमान असीम आनन्दरससागर में चिरकाल तक क्रीड़ा करता रह सकेगा।।१।।

हित्वा चण्डि हिरण्यदारणपटुप्रोद्दामहस्ताङ्गुलि-
स्फायत्कप्रसुमेरुसोदरशटाटोपं नृसिंहं सुराः ।
मातस्त्वत्पशुपाशपेषणपटुश्रीपादसंसेविनं
सेवन्ते करिवैरिणं किमरिभिर्भीतिर्भवत्सेविनाम् ।।२।।

हे चण्डि! जिनके अति भयंकर हाथों की अंगुलियाँ हिरण्यकशिपु के पेट को फाड़ने में समर्थ हैं, जिनका पिङ्गल वर्ण का जटाजूट सुमेरुशिखर से विशाल और मनोहर है, उन्हीं नरसिंह को विदा कर देवगण गजासुरहन्ता महादेव की सेवा करने को उद्यत हुए। हे जननि! आपके सेवक होने के कारण ही उन महादेव की सेवा देवता करते हैं। जो लोग आपकी सेवा करते हैं, उन्हें कभी किसी शत्रु का भय नहीं होता।।२।।

चण्डि त्वद्विषयान्तराक्षरपदं श्रोत्रान्तरञ्चेद्गतं
तत्तत्त्वं पुरुषप्रकृत्यनुगतं ब्रह्मादिभिर्गीयते ।

तस्माद्देवि समस्तदैवतसुधासारैकधामस्फुरत्
श्रीमत्पादपयोजचुम्बनपरं मामद्य सम्भावय ।।३।।

हे चण्डि! आपकी स्तुति के शब्द कानों में प्रविष्ट होने पर ब्रह्मादि देवता उन्हें ही प्रकृति-पुरुषविषयक तत्त्वालोचना मानकर कीर्तन करते हैं। आपके गुणों का कीर्तन ही अद्वैत ब्रह्मतत्त्व का विवेचन है।

इसी से हे देवि! देवगण उसके लिये लालायित रहते हैं। उस अमृततत्त्व का एकमात्र आधार आपके श्रीचरणकमल हैं, उनका चुम्बन हम कर सकें, ऐसी ही दया आप हम पर करें।।३।।

मन्निन्दा यदि वास्तु ते कुलपथाचाराद्वरं मास्तु वा
कीर्त्तिः केशवकौशिकार्चनचरी नैवास्तु मत्सन्निधिः ।
मातर्ब्रह्महरिस्मरारि हुतभुग्दैत्यारिसेवास्पदं
श्रीमत्पादपयोजचिन्तनविधौ चित्तं सदैवास्तु नः ।।४।।

हे माते! आपके कुलाचार का पालन करने से यदि मेरी निन्दा हो तो भी मैं उसे श्रेष्ठ समझूँ। केशव-इन्द्रादि देवों की पूजा से जो कीर्ति मिलती है, वह मुझे तुच्छ ही प्रतीत हो। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, अग्नि, इन्द्रादि देवता सदा जिनकी सेवा करते हैं, आपके उन्हीं श्रीचरणों का ध्यान करने में मेरा चित्त सदैव मग्न रहे।।४।।

निर्दिष्टोऽस्मि यदि तदीयपदयुक्पूर्वापरीभावने
निर्दिष्टस्य तदा ममापि विरलं किं वास्तु सिद्धास्पदम्।
तस्माद्देवि कृपाभराञ्चिततरं श्रीपादपद्मद्वयं
मच्चित्तेऽक्षतसम्पदं प्रसरतु क्षेमङ्करि क्षम्यताम् ।।५।।

हे देवि! आपके दोनों चरणों के ध्यान में यदि सदा मग्न रह सकूँ तो सिद्ध पुरुषों के लिये दुर्लभ वस्तु को तुच्छ समझूँ। अतएव हे कल्याणि ! मुझे क्षमा करें। कृपाराशि से सुशोभित आपके श्रीचरणकमल मेरे चित्त में अक्षय सम्पत्ति प्रदान करें।।५।।

स्वात्मानं परिरभ्य भूतपतिरप्युन्मादमासादितः
स्फारं जीवनरक्षणे स च कृती नैवाभविष्यत् प्रभुः ।
दैवाद्विच्युतचन्द्रचन्दनरसप्रागल्भ्यगर्भस्रवन्
माध्वीपूर्णभवत्पदैककमलामोदेन नास्वादितः ।।६।।

हे देवि! आपका आलिंगन कर भूतनाथ भी उन्मत्त हो जाते हैं। अपने जीवन की रक्षा करने में भी वे समर्थ न होते, यदि संयोगवश चन्द्रमा और चन्दन के रस को भी लज्जित करने वाले सुधापूर्ण तुम्हारे चरणों का आनन्दलाभ उन्हें न होता।।६।।

हाहा मातरनादिमोहजलधिव्याहारसिद्धाखिल-
ब्रह्मानन्दरसाभिषेकविलसत्स्वान्तोदरे मादृशि ।
युष्माकं सुरवृन्दनिर्भरमनस्तापाभिभूतिक्षमः
श्रीमद्भक्तिरसातिदुर्द्दिनपरीवाहः सदा सर्पतु ।।७।।

हे माते! बड़े दु:ख की बात है कि मेरे जैसे लोग अनन्त मोहसागर को जानते हुए भी ब्रह्मानन्दरस को ग्रहण करने में समर्थ नहीं होते; क्योंकि हृदय में मोह की प्रबल भावना होने से ब्रह्मानन्द की अनुभूति ही नहीं हो पाती। आपकी भक्ति का आनन्द देवताओं के भी प्रगाढ़ मनस्ताप का निवारण करने में समर्थ है। उसी भक्तिरस की वर्षा कर मेरे हृदय में उसकी धारा बहा दें।।७।।

तत्पादस्फुरदंशुजालजठराच्चण्डांशुकोटिस्खलद्
ध्वान्तस्वान्तविसारिनिर्मलचिदानन्दत्रयं दैवतम् ।
सर्गं संसृजति स्थितिं वितनुते सृष्टिं पुनर्लुम्पति
प्रोद्भिन्नाञ्जननीलनीरदमहश्चित्ते सदैवास्तु नः ।।८।।

आपके चरणकमलों से निकलती हुई किरणमाला के मध्य से करोड़ों सूर्य जैसा तेज उदय होकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश त्रिदेवों के हृदय के अन्धकार को दूर कर देता है। उन्हें निर्मल चिदानन्द के रूप में विकसित कर देता है, जिससे आनन्दित होकर ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु उसका पालन करते हैं और महेश उसका संहार करते हैं, आपका वही श्रेष्ठ काजल जैसा चमकीला एवं नीले मेघ जैसा सुनील तेज सदा मेरे हृदय में रहे।।८।।

या शश्वन्महिषच्छलस्फुटमिलद्गर्जद्द्विधावत् स्खलद्
वक्त्रान्तः प्रसरत्तमस्तमशिरोदैत्यं समालम्बते ।
सा दुर्गा भयदुर्गदुर्गतिहरा लक्षान्तरत्रासिनी
दृष्यद्दैवतवैरिदारणपटुर्जीयाज्जयाह्लादिनी ।।९।।

महिष के वेश में पूञ्जीभूत अन्धकार जगन्माता से मिल कर गर्जन करता है, छिन्न-भिन्न होता है, लड़खड़ाते हुए मुख में प्रवेश करता है। उसी महिषासुर पर आक्रमण कर जो भय और कठिन दुर्दशा को दूर करती है, गर्वित देवशत्रुओं का नाश करने में जो दक्ष है, उस आनन्ददायिनी दुर्गा की जय हो।।९।।

नृत्यत् खेटकचामराञ्चलचलच्छक्राद्यखर्वावर-
स्फायत् सैन्यशिलीमुखोच्छलदनल्पाजिह्मताम्राम्बुधौ ।
झञ्झावातविसर्पिनर्त्तितशिरःसाटोपदुष्टासुर-
क्रट्यत्खण्डविखण्डताखिलशकुन्तक्षुत्पिपासोज्ज्वले ।।१०।।

जिनके हाथों में खेटक, चामर आदि अस्त्रसमूह सदा नाचते रहते हैं, उन्हीं अस्त्रों से दुर्दान्त दैत्यसेना के समूह छिन्न-भिन्न होते हैं। युद्धक्षेत्र में वाणों की नोक से रक्तप्रवाह निकल कर सागर के समान हो जाता है।

गर्वित दुष्ट दैत्यों के कटे हुए शिर आँधी के समान चारो दिशाओं में फेंके जाकर नाचने लगते हैं। मांसाहारी गिद्ध आदि पक्षी मांस खाने में असमर्थ होकर भूख-प्यास से व्याकुल होकर इधर-उधर भटकते हैं।।१०।।

चञ्चत्कप्रविरामकालकालतीव्रास्फालसम्पादकोन्-
माद्यन्माहिषतिर्यगानतशिरःशृङ्गान्तराले स्थले।
वस्वर्णैर्वपुपत्रमध्यकलितैर्बद्धा श्रुतीर्मातृभिः
सेव्ये चारुरणाङ्गने रणमुदा घूर्णायमानां स्मरेत् ॥११॥

उक्त युद्धक्षेत्र में मरणासन्न महिषासुर उन्मत होकर संघर्ष करते हुए घोर नाद करते-करते सिर झुकाकर तिरछी मुद्रा में सुन्दर भाव के साथ अपनी चञ्चल सींगों को हिलाता है और ब्राह्मी आदि मातायें सहमकर कानों को बन्द कर अष्टदल कमल के मध्य स्थित अष्टाक्षर देवीमन्त्र से भगवती की उपासना करती हैं।

उसी सुरम्य युद्धक्षेत्र में महिषमर्दिनी माता युद्ध के मद से मतवाली होकर आनन्दपूर्वक इधर-उधर घूम रही हैं। माँ के इस रूप का मैं ध्यान करता हूँ।।११।।

ऊर्ध्वाधः क्रमसव्यवामकरयोश्चक्रं दरं कर्तृकां
खेटं बाणधनुस्त्रिशूलभयहृन्मुद्रां दधानां शिवाम्।
श्यामां नीलघनोच्चकुन्तलचयप्रोन्नद्धजूटां स्खलद्
वीरास्फाललसत्करालवदनां घोराट्टहासोद्भटाम् ॥१२॥

जो दाहिने और बाँयें, उपर्युन्मुख तथा निम्नोन्मुख हाथों में क्रमशः चक्र, शंख, कर्तृका, खेटक, वाण, धनुष, त्रिशूल और अभयमुद्रा धारण की हुई हैं, जिनकी कान्ति श्यामल है; जो सजल नव मेघों के समान सुनील और विस्तृत केशराशि की जटा बाँधी हुई हैं, भयंकर मुख से भागते हुए वीरों को जो भयभीत कर रही हैं, भीषण अट्टाहास से जिनका रूप भयंकर है, उन भगवती शिवा का मैं ध्यान करता हूँ।।१२।।

एवं ये तव देवि मूर्त्तिमनघां ध्यायन्ति दुर्गादिभिः
शक्राद्यैरभिपूजितां परपुरक्षोभादिकं कुर्वते।
राज्यं शत्रुजयः सदर्थधीषणा काव्यामृतादर्शन-
स्तम्भोच्चाटनमारणादिकृतिनां तेषां स्वयं जायते ॥१३॥

हे देवि! आपके उस निर्मल स्वरूप की पूजा इन्द्रादि देवता करते हैं। जो लोग इस

स्वरूप का ध्यान सदा करते हैं, वे शत्रुनगरी को विक्षुब्ध करने में समर्थ होते हैं। उन्हें राज्यलाभ, शत्रुजय, उत्तम अर्थ, बुद्धि, काव्यरचनाशक्ति, अदर्शन, स्तम्भन, उच्चाटन और मारणादि सिद्धियाँ स्वत: हस्तगत हो जाती हैं।।१३।।

स्तोत्रं ते चरणारविन्दयुगलध्यानावधानान्मया
मन्त्रोद्धारकुलोपचारचरितं गूढोपदिष्टं यदि ।
ये शृण्वन्ति पठन्ति देवि तरसा श्रीमोक्षकामादय-
स्तेषां हस्तगता भवन्ति जगतां मातर्नमस्ते जयः ॥१४॥

इति महिषमर्दिनीस्तोत्रं समाप्तम्

हे माते! यदि मैंने एकाग्र चित्त से आपके चरणकमलों का ध्यान करते हुए कुलाचार नियमानुसार मन्त्रोद्धार कर इस गूढ़ोपदिष्ट स्तोत्र का प्रकाशन किया है तो हे देवि! जो इस स्तोत्र को पढ़ें या सुनें, उन्हें अर्थ-काम-मोक्ष आदि शीघ्र प्राप्त हो जायँ। हे जगदम्बे! आपकी जय हो।।१४।।

●

महिषमर्दिनीकवचम्

ईश्वर उवाच—

अथ वक्ष्ये महेशानि कवचं सर्वकामदम् ।
यस्य प्रसादमासाद्य भवेत्साक्षात्सदाशिवः ॥१॥
ॐकारं पूर्वमुच्चार्य मन्त्री मन्त्रस्य सिद्धये ।
प्रपठेत्कवचं नित्यं मन्त्रवर्णस्य सिद्धये ॥२॥

पूर्वपीठिका—ईश्वर ने कहा कि हे महेश्वरि! अब मैं सर्वकामद कवच कहता हूँ, जिसके पाठ धारण करने से साधक साक्षात् सदाशिव हो जाता है।

मन्त्राक्षरों और मन्त्रसिद्धि के लिये पहले ॐ का उच्चारण करके प्रतिदिन कवच का पाठ करना चाहिये।।१-२।।

महिषमर्द्दिन्याः कवचस्य भगवान्महाकालऋषिरनुष्टुप्छन्दः आद्याशक्तिर्देवता चतुर्वर्गफलप्राप्तये विनियोगः॥३॥

विनियोग—इस महिषमर्दिनी कवच के ऋषि महाकाल, छन्द अनुष्टुप्, देवता आद्या शक्ति और विनियोग चतुर्वर्ग की प्राप्ति के लिए होता है।।३।।

क्लीं पातु मस्तके देवी कामिनी कामदायिनी।
मकारः पातु मां देवी चक्षुर्युग्मे महेश्वरी ॥४॥

हिकारः पातु वदनं हिंगुलासुरनायिका ।
षकारः पातु मां श्वेता जिह्वायाञ्चापराजिता ॥५॥

कवच—क्लीं रूपिणी कामदायिनी कामिनी देवी मेरे मस्तक की रक्षा करें। 'म'-रूपिणी महेश्वरी देवी दोनों नेत्रों का रक्षा करें। 'हि'-रूपिणी सुरनायिका हिंगुला मुख की रक्षा करें। 'ष'रूपिणी श्वेता और अपराजिता जीभ की रक्षा करें।।४-५।।

षकारः पातु मां देवी मर्द्दिनी सुरनायिका ।
र्द्दिंकारः पातु मां देवी सावित्री कालनाशिनी ॥६॥
निकारः पातु मां नित्या हृदये बाहुपार्श्वयोः ।
नाभौ लिङ्गे गुदे कण्ठे कर्णयोः पृष्ठतस्तथा ।
शिखायां कवचे पादे मुखे जङ्घायुगे तथा ॥७॥

'ष'रूपिणी सुरनायिका मर्दिनी देवी मेरी रक्षा करें। 'र्द्दि'रूपिणी कालनाशिनी सावित्री मेरी रक्षा करें। नीरूपिणी नित्या हृदय, दो भुजाओं, पार्श्वों, नाभि, लिंग, गुदा, कण्ठ, दो कानों, पीठ, शिखा, कवच, दो पाँव, मुख और जंघाओं की रक्षा करें।।६-७।।

सर्वाङ्गे पातु मां स्वाहा सर्वशक्तिसमन्विता ।
कामाद्या पातु मां स्वाहा सर्वाङ्गे मर्द्दिनी शिरः ॥८॥
दशाक्षरी महाविद्या सर्वाङ्गे पातु मर्द्दिनी ।
मर्द्दिनी पातु सततं मर्द्दिनी रक्षयेत्सदा ॥९॥

सर्वशक्तिसंयुता स्वाहा मेरे सभी अंगों की रक्षा करें। क्लीं स्वाहा मेरे सर्वांग और मर्दिनी शिर की रक्षा करें। दशाक्षरी महाविद्या मर्दिनी सर्वांग की रक्षा करें। मर्दिनी सदा रक्षा करें, मर्दिनी निरन्तर रक्षा करें।।८-९।।

राजस्थाने तथा दुर्गे सिंहव्याघ्रभयादिषु ।
श्मशाने प्रान्तरे दुर्गे नौकायां वह्निमध्यतः ।
मर्द्दिनी पातु सततं मर्द्दिनी रक्षयेत्सदा ॥१०॥
दुर्गा पातु सदा देवी आर्या पातु सदा मम ।
प्रभा पातु महेशानि कनका सर्वदावतु ॥११॥

राजस्थान में, दुर्ग में, सिंह-व्याघ्रसंकट में, श्मशान में, कठिन प्रान्तर में, नौका में, आग के बीच में मर्दिनी सदैव रक्षा करें। दुर्गा देवी सदा रक्षा करें, सदा मेरी रक्षा आर्या करें। महेशानी प्रभा कनका सदा रक्षा करें।।१०-११।।

कृत्तिका पातु सततं अभया सर्वदावतु ।
प्रभा पातु महामाया माया पातु सदा मम ॥१२॥

प्रभा पातु महेशानि विमला पातु सर्वदा ।
नन्दिनी पातु सततं सुप्रभा सर्वदावतु ॥१३॥

कृत्तिका, अभया, महामाया, प्रभा, माया सदा मेरी रक्षा करें। महेशानी प्रभा रक्षा करें। विमला, नन्दिनी, सुप्रभा मेरी रक्षा सदैव करें।।१२-१३।।

विजया पातु सर्वत्र देव्यङ्गे नवशक्तयः ।
शक्तयः पान्तु सततं मुद्रां पान्तु सदा मम ॥१४॥
जया पातु सदा सूक्ष्मा विशुद्धा पातु सर्वदा ।
योगिन्यः पान्तु सततं खेचर्यः पान्तु सर्वदा ॥१५॥

विजया सर्वत्र रक्षा करें। देवी के शरीर में स्थित नौ शक्तियाँ मेरी रक्षा सदैव करें। मुद्रायें मेरी रक्षा करें। जया, सूक्ष्मा और विशुद्धा रक्षा करें। योगिनियाँ खेचरियाँ सदैव रक्षा करें।।१४-१५।।

डाकिन्यः पान्तु सततं सिद्धाः पान्तु सदा मम ।
सर्वत्र सर्वदा पातु देवी महिषमर्द्दिनी ॥१६॥
इति ते कथितं दिव्यं कवचं सर्वकामदम् ।
यत्र तत्र न वक्तव्यं गोपितव्यं प्रयत्नतः ॥१७॥

डाकिनियाँ सदैव रक्षा करें। सिद्ध मेरी रक्षा करें। सभी स्थानों में सदैव महिषमर्दिनी देवी रक्षा करें।

इस प्रकार सभी कामनाओं को देने वाला दिव्यकवच कहा गया। इसे जहाँ-तहाँ नहीं बताना चाहिये और प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये।।१६-१७।।

गोपितं सर्वतन्त्रेषु विश्वसारे प्रकीर्त्तितम् ।
सर्वत्र सुलभा विद्या कवचं दुर्लभं महत् ॥१८॥
शठाय भक्तिहीनाय निन्दकाय महेश्वरि ।
न्यूनाङ्गे अतिरिक्तांगे क्रूरे मिथ्याभिभाषणे ।
न स्तवं दर्शयेद्दिव्यं कवचं सुरदुर्लभम् ॥१९॥

फलश्रुति—यह कवच सभी तन्त्रों में गुप्त है। विश्वसारतन्त्र में उल्लिखित है। अन्य विद्यायें सभी स्थानों में सुलभ हैं, किन्तु यह कवच दुर्लभ है। हे महेश्वरि! शठ, भक्तिहीन, निन्दक, हीनांग, अधिकांग, क्रूर, मिथ्यावादी को यह देवदुर्लभ कवच और स्तोत्र नहीं बताना चाहिये।।१८-१९।।

यत्र तत्र न वक्तव्यं शङ्करेण च भाषितम् ।
दत्त्वा तेभ्यो महेशानि नश्यन्ति सिद्धयः क्रमात् ॥२०॥

मन्त्राः पराङ्मुखा यान्ति शापं दत्त्वा सुदारुणम् ।
अशुभञ्च भवेत्तस्य तस्माद्यत्नेन गोपयेत् ॥२१॥

शंकर ने कहा कि हे महेशानि! इसे जहाँ-तहाँ नहीं बताना चाहिये। अनधिकारी को बताने से सिद्धियाँ क्रमश: नष्ट हो जाती हैं। मन्त्र विरुद्ध होकर कठोर शाप देकर चले जाते हैं। अनधिकारी को बताने वाले की हानि होती है। अत: यत्नपूर्वक इसे गुप्त रखना चाहिये।।२०-२१।।

गोरोचनाकुङ्कुमेन भूर्जपत्रे महेश्वरि ।
लिखित्वा शुभयोगे च ब्रह्मेन्द्रे वैधृतौ तथा ॥२२॥
आयुष्मत् सिद्धियोगे वा ववे वा कौलवे तथा ।
वणिजे श्रवणायाञ्च रेवत्यां वा पुनर्वसौ ॥२३॥
उत्तरात्रययोगे हि तथा पूर्वात्रियेषु च ।
अश्विन्यां वा रोहिण्यां वा तृतीयानवमीतिथौ ॥२४॥
अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां षष्ठ्यां वा पञ्चमीतिथौ ।
कुह्वां वा पूर्णिमायां वा निशायां प्रान्तरे तथा ॥२५॥
एकलिंगे श्मशाने च शून्यागारे शिवालये ।
गुरुणा वैष्णवैर्वापि स्वयम्भूकुसुमैस्तथा ॥२६॥
शुक्लैर्वा रक्तकुसुमैश्चन्दनैः रक्तसंयुतैः ।
शवाङ्गारैश्चितावस्त्रे लिखित्वा धारयेत्पुनः ॥२७॥
तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्याच्छङ्करेण च भाषितम् ।
कुमारीं पूजयित्वा तु देवीसूक्तं निवेद्य च ॥२८॥

हे महेश्वरि! शुभयोग में, ब्रह्मयोग में, इन्द्रयोग में, वैधृतियोग में, आयुष्मान् योग में, सिद्धियोग में, वव-कौलव-वणिजकरण में, श्रवण-रेवती-पुनर्वसु-उत्तराफाल्गुनी- उत्तराषाढ़ा-उत्तरभाद्रपद-अश्विनी-रोहिणी नक्षत्रों में; तृतीया-नवमी-अष्टमी-चर्तुदशी-षष्ठी-पंचमी-अमावस्या-पूर्णिमा तिथियों में; रात में, प्रान्तर में, एकलिंगस्थान में, श्मशान में, शून्य गृह में या शिवमन्दिर में गुरु या वैष्णव द्वारा स्वयम्भू पुष्प, श्वेत या रक्त पुष्पमिश्रित चन्दन या शवांगार द्वारा चितावस्त्र में लिखकर जो इसे धारण करता है, उसे सभी प्रकार की सिद्धियाँ मिलती है—ऐसा शंकर का वचन है।

सामान्यत: गोरोचन और कुंकुम से भोजपत्र पर लिखकर इसे प्रयोग में लाना चाहिये। कुमारी का पूजन कर देवीसूक्त से प्रार्थना करे।।२२-२८।।

पठित्वा भोजयेद्विप्रान् प्रवरान् वेदपारगान् ।
आखेटकमुपाख्यानं कुर्याच्चैव दिनत्रयम् ।

तदा धरेन्महारक्षां कवचं सर्वकामदम् ।।२९।।
नाधयो व्याधयस्तस्य दुःखशोकभयं क्वचित् ।
वादी मूको भवेद्दृष्ट्वा राजा च सेवकायते ।।३०।।

फिर श्रेष्ठ वेदज्ञ विप्रों को भोजन कराए। तीन दिनों तक सत्कथा-पाठ-श्रवण में बिताए। तब सब कामनाओं को देने वाले इस महारक्षाकवच को धारण करे।

इस कवच को धारण करने वाले को आधि-व्याधि नहीं सताती। किसी प्रकार का दु:ख-शोक और भय उसे कभी नहीं होता। उसे देखकर वाद-विवाद करने वाला चुप हो जाता है। राजा-शासक उसके सेवक बन जाते हैं।।२९-३०।।

मासमेकं पठेद्यस्तु प्रत्यहं नियतः शुचिः ।
दिवा भवेद्धविष्याशी रात्रौ शक्तिपरायणः ।।३१।।
षट्सहस्रप्रमाणेन प्रत्यहं प्रजपेत्सदा ।
षण्मासैर्वा त्रिभिर्मासैः खेचरो भवति ध्रुवम् ।।३२।।

एक महीने तक प्रतिदिन पवित्र होकर नियमपूर्वक इसका पाठ करे। दिन में हविष्यान्न का भोजन करे। रात में शक्तिपरायण रहे। नित्य छ: हजार जप करे तो छ: महीने या तीन महीने में आकाशगमन की शक्ति मिलती है।।३१-३२।।

अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनवान् भवेत् ।
अरोगी बलवांश्चैव राजा च दासतामियात् ।।३३।।
रजस्वलाभगे नित्यं जपेद्विद्यां विशेषतः ।
य एवं कुरुते धीमान् स एव श्रीसदाशिवः ।।३४।।

इति विश्वसारतन्त्रे महिषमर्द्दिनीकवचं समाप्तम्

पुत्रहीन को पुत्र और निर्धन को धन प्राप्त होता है। वह निरोग होकर बलवान होता है। शासक उसकी सेवा करते हैं।

रजस्वला के सामने मन्त्र का जप जो बुद्धिमान विशेष रूप से करता है, वह सदा शिव के समान तेजस्वी और प्रतापी होता है।।३३-३४।।

●

लक्ष्मीस्तोत्रम्

ईश्वर उवाच—

त्रैलोक्यपूजिते देवि कमले विष्णुवल्लभे ।
यथा त्वमचला कृष्णे तथा भव मयि स्थिरा ।।१।।

ईश्वर ने कहा कि हे देवि कमले! आप त्रिलोकपूजिता विष्णुप्रिया हैं। आप जिस प्रकार विष्णु के समीप सुस्थिर होकर रहती हैं, उसी प्रकार मेरे घर में भी स्थिरतापूर्वक निवास करें।।१।।

ईश्वरी कमला चञ्चला लक्ष्मीश्चला भूतिर्हरिप्रिया ।
पद्मा पद्मालया सम्पदुच्चैः श्रीपद्मधारिणी ।।२।।
द्वादशैतानि नामानि लक्ष्मीं सम्पूज्य यः पठेत् ।
स्थिरा लक्ष्मीर्भवेत्तस्य पुत्रदारादिभिः सह ।।३।।

इति विश्वसारतन्त्रे लक्ष्मीस्तोत्रं समाप्तम्

जो व्यक्ति लक्ष्मी-पूजा करके १. ईश्वरी, २. कमला, ३. लक्ष्मी, ४. चला, ५. भूति, ६. हरिप्रिया, ७. पद्मा, ८. पद्मालया, ९. सम्पद्, १०. उच्चै, ११. श्री, १२. पद्मधारिणी—इन बारह नामों का पाठ करता है, उसके स्त्री-पुत्रादियुक्त घर में लक्ष्मी स्थिर होकर रहती हैं।।२-३।।

●

लक्ष्मीकवचम्

ईश्वर उवाच—

अथ वक्ष्ये महेशानि कवचं सर्वकामदम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण भवेत्साक्षात्सदाशिवः ।।१।।
नार्चनं तस्य देवेशि मन्त्रमात्रं जपेन्नरः ।
स भवेत्पार्वतीपुत्रः सर्वशास्त्रपुरस्कृतः ।।२।।
विद्यार्थिनां सदा सेव्या धनदात्री विशेषतः ।
विद्यार्थिभिस्सदा सेव्या कमला विष्णुवल्लभा ।।३।।

पूर्वपीठिका—ईश्वर ने कहा कि हे महेश्वरि ! अब मैं सभी कामनाओं को देने वाले कवच का वर्णन करता हूँ, जिसके ज्ञानमात्र से साधक साक्षात् सदाशिव हो जाता है। हे देवेशि ! कवचपाठी को अर्चन नहीं करना पड़ता। केवल मन्त्रजप करे तो सभी शास्त्र का ज्ञाता होकर वह पार्वतीपुत्र के समान पूज्य होता है। विद्यार्थियों को विशेष रूप से विष्णुप्रिया लक्ष्मी देवी की निरन्तर उपासना करनी चाहिये।।१-३।।

अस्याश्चतुरक्षरीविष्णुवनितायाः कवचस्य श्रीभगवान् शिव ऋषिरनुष्टुप्छन्दो वाग्भवी देवता वाग्भवं बीजं लज्जा शक्तिः रमा कीलकं कामबीजात्मकं कवचं मम सुकवित्वसुपाण्डित्यसर्वसिद्धिसमृद्धये विनियोगः।

विनियोग—ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं—चार अक्षर वाली लक्ष्मी के कवच के ऋषि शिव,

छन्द अनुष्टुप्, देवता वाग्भव बीज ऐं ह्रीं, शक्ति श्रीं, कीलक क्लीं और विनियोग श्रेष्ठ काव्यशक्ति, उत्तम विद्वत्ता और सभी प्रकार की सिद्धि-समृद्धि प्राप्त करने के लिये किया जाता है।

ऐंकारी मस्तके पातु वाग्भवी सर्वसिद्धिदा ।
ह्रीं पातु चक्षुषोर्मध्ये चक्षुर्युग्मे च शाङ्करी ।।४।।
जिह्वायां मुखवृत्ते च कर्णयोर्गण्डयोर्नसि ।
ओष्ठाधारे दन्तपंक्तौ तालुमूले हनौ पुनः ।।५।।

कवच—ऐंकाररूपिणी सर्वसिद्धिदात्री श्रीं वाग्भवी मेरे मस्तक की रक्षा करें। ह्रीं रूपिणी शांकरी मेरे दोनों नेत्रों के मध्य में और दोनों नेत्रों की रक्षा करें।

श्रीं रूपिणी विष्णुपत्नी लक्ष्मी मेरी जिह्वा की, मुखमण्डल की, दोनों कानों की, दोनों गालों की, नाक की, ओष्ठ और अधर की, दन्तपंक्ति की, तालुमूल की एवं ठुड्डी की रक्षा करें।।४-५।।

पातु मां विष्णुवनिता लक्ष्मीः श्रीवर्णरूपिणी ।
कर्णयुग्मे भुजद्वन्द्वे स्तनद्वन्द्वे च पार्वती ।।६।।
हृदये मणिबन्धे च ग्रीवायां पार्श्वयोर्द्वयोः ।
पृष्ठदेशे तथा गुह्ये वामे च दक्षिणे तथा ।।७।।
उपस्थे च नितम्बे च नाभौ जङ्घाद्वये पुनः ।
जानुचक्रे पदद्वन्द्वे घुटिकेऽङ्गुलिमूलके ।।८।।
स्वधा तु प्राणशक्त्यां वा सीमन्त्यां मस्तके तथा ।
सर्वांगे पातु कामेशी महादेवी समुन्नतिः ।।९।।

पार्वती मेरे दोनों कानों की, दोनों भुजाओं की, दोनों स्तनों की, हृदय की, मणिबन्धों को, ग्रीवा की, दोनों बगलों की, पीठ की, गुह्यस्थान की, दाँयें-बाँयें, उपस्थ एवं नितम्ब भाग की, नाभि की, दोनों जंघाओं की, घुटनों की, दोनों पैरों की, टखनों की, अंगुलियों के मूल की, सात धातुओं की, प्राणशक्ति-आत्मा-अण्डकोष एवं मस्तक की रक्षा करें। कामेश्वरी देवी समुन्नति मेरे सभी अंगों की रक्षा करें।।६-९।।

व्युष्टिः पातु महामाया उत्कृष्टिः सर्वदाऽवतु ।
ऋद्धिः पातु सदा देवि सर्वत्र शम्भुवल्लभा ।।१०।।
वाग्भवो सर्वदा पातु पातु मां हरगेहिनी ।
रमा पातु महादेवी पातु माया स्वराट् स्वयम् ।।११।।

महामाया व्युष्टि, उत्कृष्टि और ऋद्धि सदा मेरी रक्षा करें। वाग्भवी और हरगेहिनी सदा

मेरी रक्षा करें। रमा और माया देवी स्वयं मेरी रक्षा करें।।१०-११।।

सर्वांगे पातु मां लक्ष्मीर्विष्णुमाया सुरेश्वरी ।
विजया पातु भवने जया पातु सदा मम ।।१२।।
शिवदूती सदा पातु सुन्दरी पातु सर्वदा ।
भैरवी पातु सर्वत्र भेरुण्डा सर्वदाऽवतु ।।१३।।

सुरेश्वरी विष्णुमाया लक्ष्मी मेरे सभी अंगों की रक्षा करें। विजया घर में और जया सर्वत्र मेरी रक्षा करें। शिवदूती और सुन्दरी मेरी रक्षा करें। भैरवी सभी स्थानों में रक्षा करें। भेरुण्डा मेरी रक्षा सदैव करें ।।१२-१३।।

त्वरिता पातु मां नित्यमुग्रतारा सदाऽवतु ।
पातु मां कालिका नित्यं कालरात्रिः सदाऽवतु ।।१४।।
नवदुर्गा सदा पातु कामाख्या सर्वदाऽवतु ।
योगिन्यः सर्वदा पान्तु मुद्राः पान्तु सदा मम ।।१५।।

त्वरिता और उग्रतारा निरन्तर मेरी रक्षा करें। नित्य मेरी रक्षा कलिका करें। कालरात्रि सतत् मेरी रक्षा करें। वनदुर्गा और कामाख्या देवी बराबर मेरी रक्षा करें। योगिनियाँ नित्य रक्षा करें। मुद्रायें सदा-सर्वदा मेरी रक्षा करें।।१४-१५।।

मात्राः पान्तु सदा देव्यश्चक्रस्था योगिनीगणाः ।
सर्वत्र सर्वकार्येषु सर्वकर्मसु सर्वदा ।।१६।।
पातु मां देवदेवी च लक्ष्मीः सर्वसमृद्धिदा ।
इति ते कथितं दिव्यं कवचं सर्वसिद्धये ।।१७।।

मात्रायें और चक्रस्थित देवियाँ तथा योगिनीगण सभी स्थानों में और सभी कार्यों में मेरी रक्षा सदा करें। सभी प्रकार की समृद्धिदायिनी सुरदेवी लक्ष्मी मेरी रक्षा करें। इस प्रकार यह दिव्य कवच सभी सिद्धियों की प्राप्ति के लिये कहा गया है।।१६-१७।।

यत्र तत्र न वक्तव्यं यदीच्छेदात्मनो हितम् ।
शठाय भक्तिहीनाय निन्दकाय महेश्वरि ।।१८।।
न्यूनाङ्गे ह्यतिरिक्ताङ्गे दर्शयेन्न कदाचन ।
न स्तवं दर्शयेद्दिव्यं दर्शनाच्छिवहा भवेत् ।।१९।।

फलश्रुति—हे महेश्वरि! यदि साधक अपना भला चाहता हो तो इस कवच को इधर-उधर किसी ठग, अभक्त और निन्दक को न बतावे। कम या अधिक अंग वाले को इस कवच और दिव्य स्तोत्र को कभी न बताये। बताने से अपने कल्याण की हानि होती है।।१८-१९।।

कुलीनाय महेच्छाय दुर्गाभक्तिपराय च।
वैष्णवाय विशुद्धाय दद्यात्कवचमुत्तमम् ।।२०।।
निजशिष्याय शान्ताय धनिने ज्ञानिने तथा।
दद्यात्कवचमित्युक्तं सर्वतन्त्रसमन्वितम् ।।२१।।

अच्छे वंश में उत्पन्न, सदिच्छा वाले, दुर्गा-भक्ति में तत्पर और विशुद्ध वैष्णव को यह उत्तम कवच देना चाहिये। शान्त, धनी और ज्ञानी अपने शिष्य को यह कवच प्रदान करे—ऐसा सभी तन्त्रों का कथन है।।२०-२१।।

शनौ मङ्गलवारे च रक्तचन्दनकैस्तथा।
यावकेन लिखेन्मन्त्रं सर्वचक्रसमन्वितम् ।।२२।।
विलिखेत्कवचं दिव्यं स्वयम्भुकुसुमैः शुभैः।
स्वशुक्रैः परशुक्रैश्च नानागन्धसमन्वितैः ।।२३।।
गोरोचनाकुंकुमेन रक्तचन्दनकेन वा।
सुतिथौ सुभयोगे वा श्रवणायां रवेर्दिने ।।२४।।
अश्विन्यां कृत्तिकायां वा फल्गुन्यां वा मघासु च।
पूर्वभाद्रपदायोगे स्वात्यां मङ्गलवासरे ।।२५।।

शनि या मंगलवार को लाल चन्दन और आलता से सर्वतन्त्रसम्मत इस कवच को लिखे अथवा स्वयम्भू कुसुम, विविध गन्ध से युक्त स्वशुक्र, परशुक्र, गोरोचन, कुंकुम या रक्तचन्दन से उत्तम तिथि या योग में रवि या मंगल के दिन, श्रवण-अश्विनी-कृत्तिका-फाल्गुनी-मघा-पूर्वभाद्रपद या स्वाती नक्षत्र में इस कवच को लिखे।।२२-२५।।

विलिखेत्प्रपठेत्स्तोत्रं शुभयोगे सुरालये।
आयुष्मत्प्रीतियोगे च ब्रह्मयोगे विशेषतः ।।२६।।
इन्द्रयोगे शुभे योगे शुक्रयोगे तथैव च।
कौलवे बालवे चैव वणिजे चैव सत्तमः ।।२७।।

शुभ योग में देवालय में बैठकर स्तोत्र का पाठ करे। विशेषत: आयुष्मान्, प्रीति, ब्रह्म, इन्द्र, शुभ, शुक्र योग में, कौलव-वालव तथा वणिज करण में इस कवच को श्रेष्ठ साधक लिखे।।२६-२७।।

शून्यागारे श्मशाने वा विजने च विशेषतः।
कुमारीं पूजयित्वा च यजेद् देवीं सनातनीम् ।।२८।।
मत्स्यैर्मांसैः शाकपूपैः पूजयेत्परदेवताम्।
घृताद्यैः सोपकरणैः पुष्पधूपैर्विशेषतः ।।२९।।

ब्राह्मणान् भोजयित्वा च पूजयेत्परमेश्वरीम् ।
आखेटकमुपाख्यानं तत्र कुर्याद्दिनत्रयम् ॥३०॥

शून्य गृह या श्मशान में; विशेषतया किसी निर्जन स्थान में पहले कुमारी-पूजा करे। तब मत्स्य, मांस, पिष्टक द्वारा सनातनी देवी का पूजन करे। घृतादि युक्त सामग्री के साथ पिष्टक और सूप द्वारा ब्राह्मणों को भोजन कराकर परमेश्वरी का पूजन करना चाहिये। तब तीन दिनों तक आखेटक-उपाख्यान-कथा-वार्ता-सत्संगादि करे।।२८-३०।।

तदा कुर्यान्महारक्षां शङ्करेण प्रभाषितम् ।
मारणद्वेषणादीनि लभते नात्र संशयः ।
स भवेत्पार्वतीपुत्रः सर्वशास्त्रपुरस्कृतः ॥३१॥
गुरुर्देवो हरः साक्षात्पत्नी तस्य हरप्रिया ।
अभेदेन यजेद्यस्तु तस्य सिद्धिरदूरतः ॥३२॥

ऐसा करने से महा रक्षा होती है। ऐसा भगवान् शंकर ने कहा है। साधक को मारण-द्वेषण आदि की शक्ति प्राप्त होती है—इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। वह पार्वतीपुत्र के समान पूज्य होकर सभी शास्त्रों में पारंगत होता है।

गुरुदेव साक्षात् शिवस्वरूप हैं और उनकी पत्नी साक्षात् शिवप्रिया हैं। जो साधक गुरु और पत्नी को शिव और भवानी से अभिन्न मानकर उनकी आराधना करता है, उसे शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त होती है।।३१-३२।।

पठति य इह मर्त्यो नित्यमार्द्रान्तरात्मा
जपफलमनुमेवं लक्ष्यते यद्विशेषम् ।
स भवति पदमुच्चैः सम्पदापादनप्र-
क्षितिपमुकुटलक्ष्मीलक्षणानां चिराय ॥३३॥

इति विश्वसारतन्त्रे लक्ष्मीकवचं समाप्तम्

आर्द्रचित्त होकर प्रतिदिन इस कवच का पाठ करने से बहु यत्न द्वारा साध्य जप का फल मिल जाता है। साथ ही उस पाठकर्ता को अतुल ऐश्वर्य का लाभ होता है। यहाँ तक कि राजाओं के मुकुट भी उसके चरणों में सदा झुकते रहते हैं।।३३।।

●

सरस्वतीस्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच—

ह्रीं ह्रीं हृद्यैकबीजे शशिरुचिकमलाकल्पविस्पष्टशोभे
भव्ये भव्यानुकूले कुमतिवनदवे विश्ववन्द्यांघ्रिपद्मे ।

पद्मे पद्मोपविष्टे प्रणतजनमनोमोदसम्पादयित्रि
प्रोत्प्लुष्टाज्ञानकूटे हरिनिजदयिते देवि संसारसारे ।।१।।

हे देवि! 'ह्रीं ह्रीं' आपका हृदयप्रिय बीज है। आप चन्द्रकला के समान उज्ज्वल वर्ण वाली हैं। पद्मभूषणों से आप सुशोभित हैं। आप कल्याणमयी हैं। मंगलदायिनी हैं। कुबुद्धिरूपी कानन के लिये आप दावानल के समान हैं। सारा संसार आपके चरण-कमलों की वन्दना करता है।

हे कमले! आप कमल के आसन पर बैठकर विनम्र लोगों के मन को आनन्दित करती हैं। लोगों के अज्ञानसमूह को भस्म कर दीजिये। आप विष्णु की पत्नी हैं, आप ही संसार का सार हैं।।१।।

ऐं ऐं ऐं इष्टमन्त्रे कवलभवमुखाम्भोजभूतिस्वरूपे
रूपारूपप्रकाशे सकलगुणमये निर्गुणे निर्विकारे ।
न स्थूले नैव सूक्ष्मेऽप्यविदितविषये नापि विज्ञाततत्त्वे
विश्वे विश्वान्तराले सुरवरनमिते निष्कले नित्यशुद्धे ।।२।।

'ऐं ऐं ऐं' आपका प्रिय मन्त्र है। आप ब्रह्मा के मुखकमल की शोभा हैं। आप कभी रूप में तो कभी अरूप में प्रकाशित होती हैं। आप निर्गुण होकर भी सभी गुणों से युक्त हैं। आप निर्विकारा हैं।

आप न स्थूल हैं और न सूक्ष्म, आपके तत्त्व को जानने में कोई समर्थ नहीं है। आप विश्वरूपिणी होती हुई भी विश्व में विद्यमान हैं। आप निष्कला और नित्य शुद्ध हैं। सभी श्रेष्ठ देवता आपकी वन्दना करते हैं।।२।।

ह्रीं ह्रीं ह्रीं जापतुष्टे हिमरुचिमुकुटे वल्लकीव्यग्रहस्ते
मातर्मातर्नमस्ते दहदह जडतां देहि बुद्धिं प्रशस्ताम् ।
विद्ये वेदान्तगीते श्रुतिपरिपठिते मोक्षदे मुक्तिमार्गे
मार्गातीतप्रभावे भव मम वरदा शारदे शुभ्रहारे ।।३।।

'ह्रीं ह्रीं ह्रीं' के जप से आप प्रसन्न होती हैं। आपके मस्तक पर वर्फ के समान उज्ज्वल मुकुट है। अपने हाथ में वीणा लिए आप उसमें मग्न हैं। हे माँ ! मेरी जड़ता को आप सर्वथा भस्म कर दें। आपको प्रणाम है। आप मुझे श्रेष्ठ बुद्धि प्रदान करें। आप मुक्तिदायिनी हैं। आप ही मोक्ष का मार्ग बताती हैं। आपके प्रभाव को जानने का मार्ग बड़ा कठिन है। हे उज्ज्वलहारधारिणि शारदे! आप मुझे वर प्रदान करें।।३।।

ध्रीं ध्रीं ध्रीं धारणाख्ये धृतिमतिनुतिभिर्नामभिः कीर्तनीये
नित्येऽनित्ये निमित्ते मुनिगणनमिते नूतने वै पुराणे ।

पुण्ये पुण्यप्रभावे हरिहरनमिते वर्णशुद्धे सुवर्णे
मात्रे मात्रार्द्धतत्त्वे मतिमति मतिदे माधवप्रीतिनादे ॥४॥

आप सभी प्रकार की बुद्धिरूपिणी हैं। आप ही का नाम धारणा है। धृति, मति, स्तुतिस्वरूप 'ध्रीं ध्रीं ध्रीं' द्वारा आपका नाम-कीर्तन और गुणगान किया जाता है। आप नित्या हैं। आप सभी कार्यों का कारण हैं।

मुनिजन आपको सदा-सर्वदा प्रणाम करते हैं। आप नवीन होकर भी पुरातन हैं। आप पुण्यमयी हैं। आप ही से पुण्य प्रवाहित होता है। विष्णु और शंकर भी आपकी वन्दना करते हैं। आप नित्य पवित्र हैं। आपका वर्ण उज्ज्वल है। आप मात्रारूपिणी हैं और आप ही अर्द्धमात्रास्वरूपा हैं। आप संसार को तत्त्वज्ञान देती हैं। माधव की प्रीति के लिये आप सदा उनसे वार्त्ता करती रहती हैं।।४।।

ह्रीं क्ष्रीं ध्रीं ह्रीं स्वरूपे दहदह दुरितं पुस्तकव्यग्रहस्ते
सन्तुष्टाकारचित्ते स्मितमुखि सुभगे जम्भनिस्तम्भविद्ये ।
मोहे मुग्धप्रवाहे मम कुरु सुमतिं ध्वान्तविध्वंसनित्ये
गीर्गौर्वाग्भारती त्वं कविवृषरसनासिद्धिदा सिद्धविद्या ॥५॥

हे माँ ! 'ह्रीं क्ष्रीं ध्रीं ह्रीं'स्वरूपा आप हैं। आप समस्त पापों को सर्वथा भस्म कर देती हैं। हे सौभाग्यवति! आपके मुखमण्डल पर सदा मुस्कान रहती है। आपके मन में निरन्तर सन्तोष रहता है। आप हाथ में पुस्तक लिये उसमें लीन रहती हैं। मोह के ऊपर आपका पूरा प्रभाव है। मेरे मोहरूपी अन्धकार को आप दूर करें।

आप 'गी'रूपिणी हैं, गोरूपिणी है। वाग्रूपिणी पूजनीया भारती हैं। आप श्रेष्ठ कवियों की जिह्वा को सिद्धि प्रदान करती हैं। आप सिद्धविद्या हैं। मैं आपकी स्तुति करता हूँ। मेरी जिह्वा में निवास करें, कभी उसका त्याग न करें।।५।।

सौं सौं सौं शक्तिबीजे कमलभवमुखाम्भोजभूतस्वरूपे
रूपारूपप्रकाशे सकलगुणमये निर्गुणे निर्विकारे ।
न स्थूले नैव सूक्ष्मेऽप्यविदितविभवे जाप्यविज्ञानतत्त्वे
विश्वे विश्वान्तराले सुरगणनमिते निष्कले नित्यशुद्धे ॥६॥

'सौं सौं सौं'—यह आपका शक्तिबीज है। आप कमल से उत्पन्न हैं। आप कमलिनी-स्वरूपा हैं। रूपरहित होती हुई भी आप स्वरूपतः प्रकाशित हैं। समस्त गुणों से परिपूर्ण होती हुई भी आप निर्गुण, निर्विकार हैं। सूक्ष्म या स्थूल किसी भी रूप में आपको जाना नहीं जा सकता। एकमात्र जप द्वारा ही आप समस्त संसार में ज्ञातव्य हैं। आप निष्कल, नित्य शुद्ध हैं। देवगण सदा आपका नमन करते हैं।।६।।

स्तौमि त्वां त्वां च वन्दे भज मम रसनां मा कदाचित्त्यजेथाः
मा मे बुद्धिर्विरुद्धा भवतु न च मनो देवि मे यातु पापम् ।
मा मे दुःखं कदाचिद्विपदि च समयेऽप्यस्तु मे नाकुलत्वं
शास्त्रे वादे कवित्त्वे प्रसरतु मम धीर्मास्तु कुण्ठा कदाचित् ।।७।।

हे देवि! मेरी बुद्धि कभी विपरीत मार्ग पर न जाय। मेरा मन कभी पाप की ओर आकृष्ट न हो। मुझे कभी दुःख न हो। विपत्तिकाल में भी मुझे व्याकुलता न हो। शास्त्र में, तर्क-वितर्क में और काव्यरचना में मेरी बुद्धि आगे रहे; वह कभी कुण्ठित न हो।।७।।

इत्येतैः श्लोकमुख्यैः प्रतिदिनमुषसि स्तौति यो भक्तिनम्रो
वाणीं वाचस्पतेरप्यभिमतविभवो वाक्पटुर्नष्टपङ्कः ।
स स्यादिष्टार्थलाभी सुतमिव सततं पाति तं सा च देवी
सौभाग्यं तस्य लोके प्रसरति कविता विघ्नमस्तं प्रयाति ।।८।।

जो व्यक्ति प्रतिदिन वन्दना करता हुआ इन उत्तम श्लोकों से प्रातःकाल सरस्वती की स्तुति करता है, उसका पापरूपी कीचड़ धुल जाता है। वह वाणी-विदग्ध हो जाता है। वृहस्पति भी उसके बुद्धि-वैभव की प्रशंसा करते हैं। वह अपनी अभीष्ट कामना को प्राप्त करता है। वाग्देवी पुत्र के समान उसकी रक्षा करती हैं। विश्व में उसके सौभाग्य का विस्तार होता है। उसकी कवित्व शक्ति में जो भी विघ्न होते हैं, वे दूर हो जाते हैं।।८।।

ब्रह्मचारी व्रती मौनी त्रयोदश्यां निरामिषः ।
सारस्वतो नरः पाठात्स स्यादिष्टार्थलाभवान् ।।९।।

जो ब्रह्मचर्यपूर्वक शाकाहारी रहते हुए त्रयोदशी के दिन व्रत करता है और मौन रहकर इस सरस्वती स्तोत्र का पाठ करता है, वह अपने अभीष्ट को प्राप्त करता है।।९।।

पक्षद्वयेऽपि यो भक्त्या त्रयोदश्येकविंशतिम् ।
अविच्छेदं पठेद्धीमान् ध्यात्वा देवीं सरस्वतीम् ।।१०।।
शुक्लाम्बरधरां देवीं शुक्लाभरणभूषिताम् ।
वाञ्छितं फलमाप्नोति स लोके नात्र संशयः ।।११।।
इति ब्रह्मा स्वयं प्राह सरस्वत्याः स्तवं शुभम् ।
प्रयत्नेन पठेन्नित्यं सोऽमृतत्वं प्रयच्छति ।।१२।।

इति ब्रह्मपुराणे ब्रह्मणा कृतं सरस्वत्याः
स्तोत्रं सम्पूर्णम्

दोनों पक्षों की त्रयोदशी के दिन जो उज्ज्वल वस्त्र एवं आभूषणधारिणी सरस्वती का ध्यान कर लगातार इक्कीस बार इस स्तोत्र का पाठ करता है, वह इस लोक में अभीष्ट

फल प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं है। स्वयं ब्रह्मा ने इस कल्याणकारी स्तव को बताया है। प्रयत्नपूर्वक नित्य इसका पाठ करे तो इससे अमरत्व प्राप्त होता है।।१०-१२।।

●

गणेशस्तोत्रम्

ॐकारमाद्यं प्रवदन्ति सन्तो वाचः श्रुतीनामपि यं गृणन्ति ।
गजाननं देवगणानतांघ्रिं भजेऽहमर्द्धेन्दुकृतावतंसम् ॥१॥
पादारविन्दार्चनतत्पराणां संसारदावानलभङ्गदक्षम् ।
निरन्तरं निर्गतदानतोयैस्तं नौमि विघ्नेश्वरमम्बुजाभम् ॥२॥

सभी श्रुतिवाक्य और सिद्धवचन जिन्हें आद्य ॐकार कहते हैं, देवगण जिनके चरणों में झुके रहते हैं, जिनके मस्तक पर अर्द्धचन्द्र का आभूषण है; उन गजानन की मैं वन्दना करता हूँ। निरन्तर प्रवाहित होने वाले मदजल से जो अपने चरणकमलों की पूजा करने वाले भक्तों की संसाररूपी दावाग्नि को नष्ट करने में निपुण हैं, उन रक्तकमल के समान आभा वाले विघ्नेश्वर को मैं प्रणाम करता हूँ।।१-२।।

कृताङ्गरागं नवकुङ्कुमेन मत्तालिमालं मदपङ्कलग्नाम् ।
निवारयन्तं निजकर्णतालैः को विस्मरेत्पुत्रमनङ्गशत्रोः ॥३॥
शम्भोर्जटाजूटनिवासिगङ्गाजलं समानीय कराम्बुजेन ।
लीलाभिराराच्छिवमर्चयन्तं गजाननं भक्तियुता भजन्ति ॥४॥

जो नवीन कुंकुम से शरीर को लिप्त करते हैं, जो मद के पंक में फँसे मतवाले भौरों को अपने कानों के थपेड़ों से हटाते रहते हैं, उन कामदेवशत्रु शंकर के पुत्र गणेश को कौन भूल सकता है।

जो अपने करकमलों से महेश्वर के जटाजूट से गंगाजल को लेकर उसके द्वारा क्रीड़ा करने के बहाने वहीं विराजमान शंकर की पूजा करते हैं, उन गजानन की वन्दना सभी भक्तिपूर्वक करते हैं।।३-४।।

कुमारभुक्तौ पुनरात्महेतोः पयोधरौ पर्वतराजपुत्र्याः ।
प्रक्षालयन्तं करशीकरेण मौग्ध्येन तं नागमुखं भजामि ॥५॥
त्वया समुद्धूतगजास्यहस्ताद्ये शीकराः पुष्कररन्ध्रमुक्ताः ।
व्योमाङ्गने ते विचरन्ति ताराः कालात्मना मौक्तिकतुल्यभासः ॥६॥

जो कार्तिकेय द्वारा पान किये गये माता पार्वती के दोनों स्तनों को अपने पान के लिये अपनी सुन्दर सूंड के जल से प्रक्षालित करते हैं, उन गजानन को मैं प्रणाम करता हूँ। हे गजानन! आप सूंड उठाकर उसके छिद्र द्वारा ऊपर की ओर जो स्वच्छ जल-बिन्दु फेंकते

हैं, वे ही कालक्रम से मोतियों के समान प्रकाशमान होकर गगनांगण में तारों के रूप में घूमते हैं।।५-६।।

क्रीडारते वारिनिधौ गजास्ये वेलामतिक्रामति वारिपूरे ।
कल्पावसानं परिचिन्त्य देवाः कैलाशनाथं श्रुतिभिः स्तुवन्ति ।।७।।
नागानने नागकृतोत्तरीये क्रीडारते देवकुमारसंघैः ।
त्वयि क्षणं कालगतिं विहाय तौ प्रापतुः कन्दुकतामिवेन्दुः ।।८।।

समुद्र में गजानन के जलक्रीड़ा करने से सागर की जलराशि उछल कर तटों का उल्लंघन करने लगती हैं, जिससे देवगण महाप्रलय की चिन्ता में पड़कर कैलासपति भगवान् शंकर की स्तुति करने लगते हैं।

हे गजानन! आप नागोत्तरीय धारण कर देवकुमारों के साथ जब क्रीड़ा करते हैं तब सूर्य और चन्द्र क्षण भर के लिए अपनी कालगति छोड़ कर आपके लिये क्रीड़ा- कन्दुक बन जाते हैं।।७-८।।

मदोल्लसत्पञ्चमुखैरजस्रमध्यापयन्तं सकलागमार्थान् ।
देवानृषीन्भक्तजनैकमित्रं हेरम्बमर्क्कारुणमाश्रयामि ।।९।।
पादाम्बुजाभ्यामतिकोमलाभ्यां कृतार्थयन्तं कृपया धरित्रीम् ।
अकारणं कारणमाप्तवाचां तन्नागवक्त्रं न जहाति चेतः ।।१०।।

जो अपने मदमत्त पाँच मुखों से देवों और ऋषियों को निरन्तर सभी आगम शास्त्रों का अर्थ बताते रहते हैं; भक्तों के जो एकमात्र मित्र हैं; उन सूर्य जैसे रक्तवर्ण हेरम्ब की मैं शरण लेता हूँ।

जो अपने अत्यन्त कोमल कमलों के स्पर्श से दयापूर्वक पृथ्वी को धन्य करते हैं, जो विना कारण के ही अपनी सिद्ध वाणी द्वारा सभी कार्यों के कारण हैं; उन गजानन को चेतना कभी नहीं छोड़ती।।९-१०।।

येनार्पितं सत्यवतीसुताय पुराणमालिख्य विषाणकोट्या।
तं चन्द्रमौलेस्तनयं तपोभिराराध्यमानन्दघनं भजामि ।।११।।
पदं श्रुतीनामपदं स्तुतीनां लीलावतारं परमात्ममूर्तेः ।
नागात्मको वा पुरुषात्मको वेत्यभेद्यमाद्यं भज विघ्नराजम् ।।१२।।

जिन्होंने अपने विशाल दाँतों के अग्रभाग से पुराण लिखकर सत्यवती-पुत्र वेदव्यास को दिया, बहुत तपस्या से जिनकी उपासना की जाती है; उन आनन्दमय चन्द्रमौलि शंकर के पुत्र गजानन की मैं वन्दना करता हूँ।

जो श्रुति के पद होते हुए भी स्तुति के पद नहीं हैं,जो वेदप्रतिपाद्य नहीं हैं, जिनका

स्तवन पूर्ण रूप से नहीं किया जा सकता, जो परमात्ममूर्ति के लीलावतार हैं, जो गजमुख हैं या पुरुषमूर्ति हैं—यह समझ में नहीं आता; उन आदिविघ्नराज गजानन की मैं वन्दना करता हूँ।।११-१२।।

पाशांकुशौ भग्नरदं त्वभीष्टं करैर्दधानं कररन्ध्रमुक्तैः ।
मुक्ताफलाभैः पृथुशीकरौघैः सिञ्चन्तमङ्गं शिवयोर्भजामि ॥१३॥
अनेकमेकं गजमेकदन्तं चैतन्यरूपं जगदादिबीजम् ।
ब्रह्मेति यं वेदविदो वदन्ति तं शम्भुसूनुं सततं भजामि ॥१४॥

जो अपने चार हाथों में पाश, अंकुश, भग्न दाँत और वरमुद्रा से युक्त हैं; सूंड के छिद्र से निकलते हुए मोतियों जैसे स्थूल जलकणों से जो शिव और भवानी का अभिषेक कर रहे हैं; उन गजानन की मैं वन्दना करता हूँ।

जो एक होकर भी अनेक रूपों में शोभा पाते हैं, जो एकदन्त हैं, जो चैतन्यरूप हैं, जो जगत् के आदि बीज हैं, ब्रह्मज्ञानी जिन्हें ब्रह्म कहते हैं; उन्हीं शम्भुपुत्र गणेश की मैं वन्दना करता हूँ।।१३-१४।।

[१]स्वाङ्कस्थिताया निजवल्लभाया मुखाम्बुजालोकनलोलनेत्रम् ।
स्मेराननाब्जं मदवैभवेन रुद्धं भजे विश्वविमोहनं तम् ॥१५॥
ये पूर्वमाराध्य गजाननं त्वां सर्वाणि शास्त्राणि पठन्ति तेषाम् ।
त्वत्तो न चान्यत्प्रतिपाद्यमेतैस्तदास्ति चेत्सर्वमसत्यकल्पम् ॥१६॥

गोद में बैठी हुई अपनी प्रियतमा के मुखकमल के दर्शन करने में जिनके दोनों नेत्र मग्न हैं, जिसके मुखकमल पर सदा मधुर मुस्कान रहती है, मदभार से जो सदा विह्वल रहते हैं; उन संसारमोहक गणपति की मैं वन्दना करता हूँ।

हे गजानन! जो पहले आपकी पूजा करके समस्त शास्त्रों का अध्ययन करते हैं, उन्हें आपके अतिरिक्त अन्य कोई प्रतिपाद्य विषय नहीं मिलता। अन्य कोई द्रव्य सत्य प्रतीयमान होने पर भी असत्य ही सिद्ध होता है।।१५-१६।।

हिरण्यवर्णं जगदीशितारं कविं पुराणं रविमण्डलस्थम् ।
गजाननं यं प्रविशन्ति सन्तस्तत्कालयोगैस्तमहं प्रपद्ये ॥१७॥
वेदान्तगीतं पुरुषं भजेऽहमात्मानमानन्दघनं हृदिस्थम् ।
गजाननं यन्महसा जनानां विघ्नान्धकारो विलयं प्रयाति ॥१८॥

सोने के समान जिनके शरीर की शोभा है, जो जगदीश्वर और पुरातन कवि हैं, आदित्यमण्डल में जो विराजमान हैं, जिन्हें साधुजन गजानन कहते हैं; उन भगवान् गणेश

---

[१] 'स्वाङ्केस्थिताया' इति पाठान्तरम्।

को समयानुसार मैं प्राप्त करूँ। जिनके तेज से विघ्नरूपी अन्धकार का नाश हो जाता है, वेदान्त शास्त्र में जिन्हें आनन्दघन परमात्मा के नाम से जाना जाता है; हृदय में विराजमान उन्हीं गजानन की मैं वन्दना करता हूँ।।१७-१८।।

शम्भोः समालोक्य जटाकलापं शशाङ्कखण्डं निजपुष्करेण ।
स्वभग्नदन्तं प्रविचिन्त्य मौग्ध्यादाक्रष्टुकामः श्रियमातनोतु ॥१९॥
विघ्नार्गलानां विनिपातनार्थं यं नारिकेलैः कदलीफलाद्यैः ।
प्रभावयन्तो मदवारणास्यं प्रभुं सदाभीष्टमहं भजेयम् ॥२०॥

जो बालसुलभ अज्ञता से भगवान् शंकर के जटाजूट में स्थित चन्द्रखण्ड को अपना टूटा दाँत समझकर अपने सूंड के द्वारा खींचने की इच्छा करते हैं, वे भगवान् गणेश मेरे ऐश्वर्य की वृद्धि करें।

विघ्नरूपी अर्गला को हटाने के लिये जिन मत्त गजानन का ध्यान करते हुए नारियल और केला-फल से सभी लोग पूजन-अर्चन करते हैं; उन्हीं अभीष्ट फलदाता भगवान् गणेश की मैं वन्दना करता हूँ।।१९-२०।।

यज्ञैरनेकैर्बहुभिस्तपोभिराराध्यमाद्यं गजराजवक्त्रम् ।
स्तुत्यानया ये विधिवत्स्तुवन्ति ते सर्वलक्ष्मीनिधयो भवन्ति ॥२१॥

इति गणेशस्तवराजः समाप्तः

अनेक प्रकार के यज्ञों और बहुत से तप के द्वारा जिनकी उपासना की जाती है, उन्हीं आद्य गजमुख भगवान् गणेश की स्तुति जो इस स्तवराज से विधिपूर्वक करते हैं, वे भगवती लक्ष्मी के सभी प्रकार की सम्पत्तियों को प्राप्त करते हैं।।२१।।

●

हरिद्रागणेशकवचम्

ईश्वर उवाच—

शृणु वक्ष्यामि कवचं सर्वसिद्धिकरं प्रिये ।
पठित्वा पाठयित्वा च नरो मुच्येत सङ्कटात् ॥१॥

अज्ञात्वा कवचं देवि गणेशस्य मनुं जपेत् ।
सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि ॥२॥

पूर्वपीठिका—ईश्वर बोले—हे प्रिये! सुनो। सभी सिद्धियों को देने वाले कवच को मैं बतलाता हूँ। इस कवच को पढ़ने और धारण करने से मनुष्य सभी संकटों से छूट जाता है।

हे देवि! इस कवच को जाने विना जो श्रीगणेश के मन्त्र का जप करता है, उसे सौ करोड़ युगों में भी सिद्धि नहीं मिलती।।१-२।।

ॐ आमोदश्च शिरः पातु प्रमोदश्च शिखोपरि ।
सम्मोदो भ्रूयुगे पातु भ्रूमध्ये च गणाधिपः ।।३।।
गणाक्रीडो नेत्रयुग्मं नासायां गणनायकः ।
गणक्रीडान्वितः पातु वदने सर्वसिद्धये ।।४।।

कवच—आमोद मेरे शिर की और प्रमोद शिखा की रक्षा करें। सम्मोद दोनों भौंहों की और गणाधिप भ्रूमध्य की रक्षा करें।

गणाक्रीड़ दोनों आँखों की, गणनायक नाक की और गणक्रीड़ान्वित सभी सिद्धियों के लिये मेरे मुख की रक्षा करें।।३-४।।

जिह्वायां सुमुखः पातु ग्रीवायां दुर्मुखः सदा ।
विघ्नेशो हृदये पातु विघ्ननाशश्च वक्षसि ।।५।।
गणानां नायकः पातु बाहुयुग्मं सदा मम ।
विघ्नकर्ता च उदरे विघ्नकर्ता च लिङ्गके ।।६।।

सुमुख मेरे जिह्वा की एवं दुर्मुख मेरे गर्दन की रक्षा सदैव करें। विघ्नेश हृदय की और विघ्ननाश वक्ष की रक्षा करें। गणनायक मेरी दोनों भुजाओं की रक्षा करें। विघ्नकर्ता पेट की और विघ्नहर्ता लिंग की रक्षा करें।।५-६।।

गजवक्त्रः कटीदेशे एकदन्तो नितम्बके ।
लम्बोदरः सदा पातु गुह्यदेशे ममारुणः ।।७।।
व्यालयज्ञोपवीती मां पातु पादयुगे तथा ।
जापकः सर्वदा पातु जानुजङ्घे गणाधिपः ।।८।।
हारिद्रः सर्वदा पातु सर्वाङ्गे गणनायकः ।

गजवक्त्र कमर की, एकदन्त नितम्ब की और लाल वर्ण वाले लम्बोदर मेरे गुदा की रक्षा सदैव करें। नागयज्ञोपवीत धारण करने वाले जापक दोनों पैरों की रक्षा करें। दोनों जानुओं और जंघाओं की रक्षा गणाधिप करें। हरिद्र गणनायक सदैव मेरे शरीर की रक्षा करें।।७-८।।

य इदं प्रपठेन्नित्यं गणेशस्य महेश्वरि ।।९।।
कवचं सर्वसिद्धाख्यं सर्वविघ्नविनाशनम् ।
सर्वसिद्धिकरं साक्षात्सर्वपापविमोचनम् ।।१०।।

फलश्रुति—हे महेश्वरि! जो श्रीगणेश के इस सर्वसिद्ध नामक कवच का नित्य पाठ

करते हैं, उनके सभी विघ्नों का नाश होता है। उन्हें सभी सिद्धियाँ मिलती हैं और उनके सभी पापों का नाश हो जाता है।।९-१०।।

सर्वसम्पत्प्रदं साक्षात्सर्वपापविमोक्षणम् ।
सर्वसम्पत्प्रदं साक्षात्सर्वशत्रुक्षयङ्करम् ।।११।।
ग्रहपीडा ज्वरो रोगो ये चान्ये गुह्यकादयः ।
पठनाद्धारणादेव नाशमायान्ति तत्क्षणात् ।।१२।।

उन्हें सभी प्रकार की सम्पत्तियाँ मिलती हैं। उनके सभी शत्रुओं का नाश हो जाता है। इस कवच के सुनने मात्र से शीघ्र ही ग्रहदोष, ज्वरादि रोग और गुह्यक आदि अन्य सभी उपद्रव नष्ट हो जाते हैं।।११-१२।।

धनधान्यकरं देवि कवचं सुरपूजितम् ।
समं नास्ति महेशानि त्रैलोक्ये गणपस्य च ।।१३।।
हारिद्रस्य महेशानि कवचस्य च भूतले ।
किमन्यैरसदालापैर्यत्रायुर्व्ययतामियात् ।।१४।।

इति विश्वसारतन्त्रे हरिद्रागणेशकवचं समाप्तम्

हे देवि! देवताओं द्वारा पूजित यह कवच धन-धान्यप्रदायक है। हे महेशानि! तीनों लोकों में इस गणेशकवच के समान अन्य कुछ नहीं है।

हे महेशानि! इस हारिद्र कवच के अतिरिक्त अन्य असद् गायन से क्या लाभ; उलटे आयु का नाश होता है।।१३-१४।।

●

श्रीसूर्यकवचम्

श्रीसूर्य उवाच—

साम्ब साम्ब महाबाहो शृणु मे कवचं शुभम् ।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं परमाद्भुतम् ।।१।।
यज्ज्ञात्वा मन्त्रवित्सम्यक् फलमाप्नोति निश्चितम् ।
यद्धृत्वा च महादेवो गणानामधिपोऽभवत् ।।२।।

पूर्वपीठिका—श्रीसूर्य ने कहा कि हे शाम्ब! हे महाबली शाम्ब! मुझसे त्रैलोक्यमंगल नामक अतिविलक्षण कल्याणकारी कवच सुनो, जिसे जानकर मन्त्रज्ञ साधक निश्चित रूप से सुफल प्राप्त करता है और जिसे धारण कर महादेव गणों के स्वामी हुए हैं।।१-२।।

पठनाद्धारणाद्विष्णुः सर्वेषां पालकः सदा ।
एवमिन्द्रादयः सर्वे सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ।।३।।

इस कवच को पढ़ने और धारण करने से विष्णु सबों का पालन सदैव करते हैं। इसी प्रकार इन्द्रादि सभी देवों ने भी सब प्रकार का ईश्वरत्व प्राप्त किया है।।३।।

कवचस्य ऋषिर्ब्रह्मा छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
श्रीसूर्यो देवता चात्र सर्वदेवनमस्कृतः ।।४।।

विनियोग—इस कवच के ऋषि ब्रह्मा, छन्द अनुष्टुप् और देवता सर्वदेववन्दित श्रीसूर्य हैं। आरोग्य-यश-मोक्ष-प्राप्ति के लिये इसका विनियोग किया जाता है।।४।।

आरोग्ययशोमोक्षेषु विनयोगः प्रकीर्तितः ।
प्रणवो मे शिरः पातु घृणिर्मे पातु भालकम् ।।५।।
सूर्योऽव्यान्नयनद्वन्द्वमादित्यः कर्णयुग्मकम् ।
अष्टाक्षरो महामन्त्रः सर्वाभीष्टफलप्रदः ।।६।।

कवच—ॐ मेरे शिर की रक्षा करे। घृणि मेरे मस्तक की रक्षा करे। सूर्य दोनों नेत्रों की और आदित्य दोनों कानों की रक्षा करें। अष्टाक्षर मन्त्र ॐ घृणिः सूर्य आदित्यः सभी अभीष्ट फलप्रदायक है।।५-६।।

ह्रीं बीजं मे मुखं पातु हृदयं भुवनेश्वरी ।
चन्द्रबीजं विसर्गाढ्यं पातु मे गुह्यदेशकम् ।।७।।
त्र्यक्षरोऽसौ महामन्त्रः सर्वतन्त्रेषु गोपितः ।
शिवो वह्निसमायुक्तो वामाक्षिविन्दुभूषितः ।।८।।
एकाक्षरो महामन्त्रः श्रीसूर्यस्य प्रकीर्त्तितः ।
गुह्याद्गुह्यतरो मन्त्रो वाञ्छाचिन्तामणिः स्मृतः ।।९।।
शीर्षादिपादपर्यन्तं सदा पातु मनूत्तमः ।
इति ते कथितं दिव्यं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।।१०।।

ह्रीं बीज मेरे मुख की, भुवनेश्वरी हृदय की और सः मेरे गुह्यदेश की रक्षा करे। यह तीन अक्षरों का मन्त्र ह्रीं ह्रीं सः सभी मन्त्रों में गुप्त है।

शिव ह वह्नि र से संयुक्त होकर वामाक्षि ई और अनुस्वार से शोभित श्रीसूर्य का एकाक्षर मन्त्र ह्रीं प्रसिद्ध है; जो गुप्त से भी गुप्त है। चिन्ताओं को पूर्ण करने में चिन्तामणि के समान है। यह श्रेष्ठ मन्त्र शिर से लेकर पैरों तक की मेरी रक्षा करे। इस प्रकार तीनों लोकों में दुर्लभ यह दिव्य कवच मैंने तुझे बताया।।७-१०।।

श्रीप्रदं कान्तिदं नित्यं धनारोग्यविवर्धनम् ।
कुष्ठादिरोगशमनं महाव्याधिविनाशनम् ।।११।।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यमरोगी बलवान् भवेत् ।

फलश्रुति—यह नित्य श्री और कान्ति देता है। धन तथा आरोग्य की वृद्धि करता है। कुष्ठादि रोगों को नष्ट करता है। बड़ी से बड़ी व्याधि को अच्छा करता है। जो तीनों सन्ध्याओं में इसका पाठ करता है, वह सदा स्वस्थ और शक्तिमान रहता है।।११।।

बहुना किमिहोक्तेन यद्यन्मनसि वर्तते ।।१२।।
तत्तत्सर्वं भवत्येव कवचस्य च धारणात् ।
भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसा: ।।१३।।
ब्रह्मराक्षसवेताला नैव द्रष्टुमपि क्षमा: ।
दूरादेव पलायन्ते तस्य सङ्कीर्तनादपि ।।१४।।

यहाँ अधिक कहने का क्या प्रयोजन है। मन में जो इच्छा होती है, वह सभी इस कवच को धारण करने से अवश्य पूरी होती है। भूत-प्रेत-पिशाच-यक्ष-गन्धर्व-राक्षस-ब्रह्मराक्षस और वेताल तक इस कवच के धारण करने वाले की ओर देख भी नहीं सकते; अपितु इसका नाम लेने से ही दूर भाग जाते हैं।।१२-१४।।

भूर्जपत्रे समालिख्य रोचनागुरुकुंकुमै: ।
रविवारे च संक्रान्त्यां सप्तम्याञ्च विशेषत: ।।१५।।
धारयेत्साधकश्रेष्ठस्त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।
त्रिलोहमध्यगं कृत्वा धारयेद्दक्षिणे भुजे ।
शिखायामथवा कण्ठे सोऽपि सूर्यो न संशय: ।।१६।।

गोरोचन, अगर और कुंकुम से भोजपत्र पर इस कवच को लिखे। रविवार, संक्रान्ति में; विशेषकर सप्तमी तिथि में त्रिलोह—सोना, चाँदी, ताम्बा की ताबीज में दाहिनी भुजा में, शिखा में या कण्ठ में धारण करे। इससे श्रेष्ठ साधक सूर्य के समान तेजस्वी होकर तीनों लोकों में विजयी होता है।।१५-१६।।

इति ते कथितं साम्ब त्रैलोक्यमङ्गलाभिधम् ।
कवचं दुर्लभं लोके तव स्नेहात्प्रकाशितम् ।।१७।।
अज्ञात्वा कवचं दिव्यं यो जपेत्सूर्यमनूत्तमम् ।
सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि ।।१८।।

इति ब्रह्मयामले त्रैलोक्यमङ्गलं नाम सूर्यकवचं समाप्तम्

हे शाम्ब! यह त्रैलोक्यमंगल नामक यह कवच संसार में दुर्लभ है, जैसे तुम्हारे स्नेहवश मैंने तुझे बताया। इस दिव्य कवच को जाने विना जो सूर्य के मन्त्र का जप करता है, उसे सौ करोड़ युगों में भी सिद्धि नहीं मिलती।।१७-१८।।

●

श्रीविष्णुस्तवः

ॐ आदाय वेदान् सकलान् समुद्रान्निहत्य शङ्खं रिपुमत्युदग्रम् ।
दत्ताः पुरा येन पितामहाय विष्णुं तमाद्यं भज मत्स्यरूपम् ॥१॥

जिन्होंने अतीव भीषण शत्रु शंखासुर को मारकर समुद्र के भीतर से सभी वेदों का उद्धार किया और पितामह ब्रह्मा को प्रदान किया; उन्हीं मत्स्यरूपी आदिविष्णु की मैं वन्दना करता हूँ।।१।।

दिव्यामृतार्थं मथिते महाब्धौ देवासुरैर्वासुकिमन्दराद्यैः ।
भूमेर्महावेगविघूर्णितायास्तं कूर्ममाधारगतं स्मरामि ॥२॥

दिव्य अमृत को पाने के लिये सुर और असुर मिलकर वासुकि नाग और मन्दर पर्वत के द्वारा समुद्र का मन्थन करने लगे।

उस मन्थन के वेग से पृथ्वी विचलित होने लगी। उस समय जिन्होंने आधाररूप में पृथ्वी की रक्षा की, उन्हीं कूर्मरूपी भगवान् का मैं स्मरण करता हूँ।।२।।

समुद्रकाञ्ची सरिदुत्तरीया वसुन्धरा मेरुकिरीटभारा ।
दंष्ट्राग्रतो येन समुद्धृता भूस्तमादिकीलं शरणं प्रपद्ये ॥३॥

सागर जिनकी करधनी है, नदी जिसका उत्तरीय है, सुमेरु पर्वत जिसके मस्तक का मुकुट है, उस वसुमती पृथ्वी को जिन्होंने दाँत के अग्रभाग पर धारण किया था; उन्हीं प्रथम शूकररूपी विष्णु की मैं शरण लेता हूँ।।३।।

भक्तार्तिभङ्गक्षमया धिया यः स्तम्भान्तरालादुदितो नृसिंहः ।
रिपुं सुराणां निशितैर्नखाग्रैर्विदारयन्तं न च विस्मरामि ॥४॥

जिन्होंने भक्त प्रह्लाद के कष्ट का विनाश करने के लिये स्फटिक खम्भे से प्रकट होकर देवशत्रु हिरण्यकशिपु को तीखे नखों के अग्रभाग से फाड़ डाला था, उन्हीं नृसिंह भगवान् को मैं कभी भूलता नहीं हूँ।।४।।

चतुस्समुद्राभरणा धरित्री न्यासाय नालं चरणस्य यस्य ।
एकस्य नान्यस्य पदं सुराणां त्रिविक्रमं सर्वगतं नमामि ॥५॥

चारो समुद्र जिसके आभूषण हैं, उसी पृथ्वी पर जिनके पैर रखने के लिये स्थान नहीं बचा और देवभूमि स्वर्ग में भी जिनके दूसरे पग रखने के लिये स्थान नहीं मिला था; उन्हीं सर्वव्यापी त्रिविक्रम भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ।।५।।

त्रिःसप्तकृत्वो नृपतीन्निहत्य यस्तर्पणं रक्तमयं पितृभ्यः ।
चकार दोर्दण्डबलेन सम्यक् तमादिशूरं प्रणमामि रामम् ॥६॥

जिन्होंने अपनी भुजाओं की शक्ति से समस्त पृथ्वी पर अवस्थित क्षत्रियों के समूह का इक्कीस बार संहार किया, रक्तरूपी जल से जिन्होंने पितरों का तर्पण किया, समस्त पृथ्वी को अपनी भुजाओं के बल से जिन्होंने उपभोगयोग्य बनाया, उन्हीं आदि वीर परशुराम को मैं प्रणाम करता हूँ।।६।।

कुले रघूणां समवाप्य जन्म विधाय सेतुं जलधेर्जलान्तः ।
लङ्केश्वरं यः समयाञ्चकार सीतापतिं तं प्रणमामि भक्त्या ।।७।।

जिन्होंने रघुवंश में जन्म लेकर समुद्र में पुल बनाकर लंका के राजा का विनाश किया था, उन्हीं सीतानाथ श्री रामचन्द्र को मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ।।७।।

हलेन सर्वानसुरान्निकृष्य चकार चूर्णं मुसलप्रहारैः ।
यः कृष्णमासाद्य बलं बलीयान् भक्त्या भजे तं बलभद्ररामम् ।।८।।

कृष्ण के बल से बलवान होकर जिन्होंने हल से सभी असुरों को आकृष्ट कर मूसल के प्रहार से चूर-चूर कर दिया था, उन्हीं बलभद्र राम की मैं वन्दना करता हूँ।।८।।

पुरा सुराणामसुरान् विजेतुं सम्भावयञ्छीवरचिह्नवेशम् ।
चकार यः शास्त्रममोघकल्पं तं मूलभूतं प्रणतोऽस्मि बुद्धम् ।।९।।

पूर्वकाल में जिन्होंने असुरों को जीतने के लिये चीवर वेश धारण किया था, देवताओं के बीच अव्यर्थ शास्त्र का प्रचार किया था, उन्हीं मौलिक बुद्ध को मैं प्रणाम करता हूँ।।९।।

कल्पावसाने निखिलैः सुरैः स्वैः सङ्घट्टयामास निमेषमात्रात् ।
यस्तेजसा स्वेन ददाह भीमो विष्ण्वात्मकं तं तुरगं भजामः ।।१०।।

प्रलयकाल में तीखे खुरों के अग्रभाग से पल भर में जिन्होंने सारे संसार को नष्ट कर डाला था, अत्यन्त भीषण रूप धारण कर अपने तेज से ब्रह्माण्ड को जिसने भस्म कर दिया था; उन्हीं विष्णु के हयावतार की मैं वन्दना करता हूँ।।१०।।

शङ्खं सुचक्रं सुगदां सरोजं दोर्भिर्दधानं गरुडाधिरूढम् ।
श्रीवत्सचिह्नं जगदादिमूलं तमालनीलं हृदि विष्णुमीडे ।।११।।

जिन्होंने अपने चार हाथों में शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण कर रक्खा है, जो गरुड़ पर आरूढ़ हैं, जो श्रीवत्सचिह्न से शोभायमान हैं, जगत् के कारणस्वरूप हैं, तमालसदृश नील वर्ण वाले उन भगवान् विष्णु की मैं हृदय से स्तुति करता हूँ।।११।।

क्षीराम्बुधौ शेषविशेषकल्पे शयानमन्तःस्मितशोभिवक्त्रम् ।
उत्फुल्लनेत्राम्बुजमम्बुदाभमाद्यं श्रुतीनामसकृत्स्मरामि ।।१२।।

क्षीरसागर में शेषनाग की शय्या पर जो सोये हुए हैं, जिनके मुखमण्डल पर कुछ

मुस्कान है, जिनके दोनों नेत्र विकसित कमल जैसे सुन्दर हैं; उन्हीं घनश्याम वर्ण के आदि विष्णु को मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ।।१२।।

प्रीणयेदनया स्तुत्या जगन्नाथं जगन्मयम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणामाप्तये पुरुषोत्तमम् ।।१३।।

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति के लिये इस स्तुति के द्वारा जगद्व्यापी जगदीश्वरश्रेष्ठ पुरुष को प्रसन्न करना चाहिये।।१३।।

●

श्रीरामस्तोत्रम्

श्रीहनूमानुवाच—

तिरश्चामपि राजेति समवायं समीयुषाम् ।
यथा सुग्रीवमुख्यानां यस्तमुग्रं नमाम्यहम् ।।१।।
सकृदेव प्रपन्नाय विशिष्टामैरयाच्छ्रियम् ।
विभीषणायाब्धितटे यस्तं वीरं नमाम्यहम् ।।२।।

श्री हनुमान ने कहा कि जिस वानर जाति में सुग्रीवश्रेष्ठ हैं, उस वानर जाति के लिये भी जो राजारूप में प्रतिष्ठित हैं, उन्हीं उग्र स्वरूप वाले श्रीराम को मैं प्रणाम करता हूँ।

समुद्र के किनारे केवल एक बार आकर शरणागत होते ही विभीषण को जिन्होंने लंका का राजा बना दिया, उन्हीं वीर राम को मैं प्रणाम करता हूँ।।१-२।।

यो महान् पूजितो व्यापी महाब्धेः करुणामृतम् ।
स्तुतं जटायुना येन महाविष्णुं नमाम्यहम् ।।३।।
तेजसाप्यायिता यस्य ज्वलन्ति ज्वलनादयः ।
प्रकाशते स्वतन्त्रो यस्तं ज्वलन्तं नमाम्यहम् ।।४।।

जो महत्त्वशाली, सर्वव्यापी, सर्वजनपूजित और महासागर जैसे दयामृतनिधि हैं, जिनकी वन्दना जटायु ने की थी, उन्हीं महाविष्णु को मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके तेज से आप्यायित होकर अग्नि आदि ज्वलनशील तत्त्व जलते रहते हैं, जो स्वतन्त्र रूप से स्वयं प्रकाशमान रहते हैं, उन्हीं तेजस्वी राम को मैं प्रणाम करता हूँ।।३-४।।

सर्वतोमुखतो येन लीलया दर्शिता रणे ।
राक्षसेश्वरयोधानां तं वन्दे सर्वतोंमुखम् ।।५।।
नृभावं यः प्रपन्नानां हिनस्ति च तथा नृषु ।
सिंहः सत्त्वेष्विवोत्कृष्टस्तं नृसिंहं नमाम्यहम् ।।६।।

युद्ध में जिन्होंने राक्षसराज रावण के योद्धाओं को लीलापूर्वक चारो ओर एक साथ ही अपने मुख का दर्शन कराया था, उन सर्वतोमुखी राम की मैं वन्दना करता हूँ।

जिस प्रकार सिंह सभी जीवों में श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सभी मनुष्यों में प्रधान रामचन्द्र ने मनुष्यभाव वाले सभी जीवों को पराभूत किया था, उन नरकेसरी राम को मैं प्रणाम करता हूँ।।५-६।।

यस्माद्बिभ्यति वातार्कज्वलनेन्द्राः समृत्यवः ।
भियं तिनोति पापानां भीषणं तत् नमाम्यहम् ।।७।।
परस्य योग्यतापेक्षारहितो नित्यमङ्गलम् ।
ददात्येव निजौदार्याद्यस्तं भद्रं नमाम्यहम् ।।८।।

वायु, सूर्य, अग्नि, इन्द्र और यम जिनसे डरते हैं, जो सभी प्राणियों के भय को भगा देते हैं; उन्हीं भीषण राम को मैं प्रणाम करता हूँ।

योग्यता की अपेक्षा न करके अपनी उदारता से जो दूसरों का सर्वदा कल्याण करते हैं, उन मंगलमय राम को मैं प्रणाम करता हूँ।।७-८।।

यो मृत्युं निजदासानां मारयत्यखिलेष्टदः ।
तत्रोदाहृतयो बह्व्यो मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ।।९।।
यत्पादपद्मप्रणतो भवेदुत्तमपूरुषः ।
तमीशं सर्वदेवानां नमनीयं नमाम्यहम् ।।१०।।

सभी इच्छाओं को पूरा करते हुए जो अपने सेवकों की मृत्यु का निवारण करते हैं, जिनके सम्बन्ध में बहुत से उदाहरण उपलब्ध हैं, उन्हीं मृत्यु के भी काल श्रीराम को मैं प्रणाम करता हूँ।

जिनके चरणकमलों में झुका हुआ व्यक्ति उत्तम पुरुष बन जाता है, समस्त देवताओं के वन्दनीय उन्हीं ईश्वर राम को मैं प्रणाम करता हूँ।।९-१०।।

आत्मभागं समुत्क्षिप्य दास्येनैव रघूद्वहम् ।
भजेऽहं प्रत्यहं रामं ससीतं सहलक्ष्मणम् ।।११।।
नित्यं श्रीरामभद्रस्य किङ्करा यमकिङ्कराः ।
शिवमयो दिशस्तस्य सिद्धयस्तस्य दासिकाः ।।१२।।

अपने अहंभाव को त्याग कर मैं दास्यभाव से ही प्रतिदिन सीता और लक्ष्मण के सहित रघुकुलश्रेष्ठ श्रीराम की वन्दना करता हूँ। जो व्यक्ति सर्वदा श्रीरामभक्त है, यमदूत उसके सेवक हो जाते हैं, सारी दिशायें उसके लिए मंगलमयी हो जाती हैं और सभी सिद्धियाँ उसकी सेविका बन जाती हैं।।११-१२।।

इमं हनूमता प्रोक्तं मन्त्रराजात्मकं स्तवम् ।
पठेदनुदिनं यस्तु स रामे भक्तिमान् भवेत् ॥१३॥

इति श्रीहनूमत्कल्पे मन्त्रराजात्मकं श्रीरामस्तोत्रं समाप्तम्

हनुमान द्वारा कथित इस मन्त्रराजरूप स्तोत्र का पाठ जो व्यक्ति प्रतिदिन करता है, वह रामचन्द्र का भक्त बन जाता है।।१३।।

●

रामाष्टशतकं नाम स्तोत्रम्

वेदव्यास उवाच—

शृणु गाङ्गेय वक्ष्यामि रामस्याद्भुतकर्मणः ।
नामाष्टशतकं पुण्यं महापातकनाशनम् ।
नातः परतरं गुह्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥१॥
कैलासशिखरे रम्ये नानारत्नविभूषिते ।
एकाग्रप्रयतो भूत्वा विष्णुमाराध्य भक्तितः ॥२॥
उपविष्टस्ततो भोक्तुं पार्वतीं शङ्करोऽब्रवीत् ।
पार्वत्येहि मया सार्द्धं भोक्तुं भुवनवन्दिते ॥३॥

श्रीवेदव्यास ने कहा कि हे गंगापुत्र भीष्म ! विलक्षण कार्य करने वाले राम के एक सौ आठ नामों का स्तोत्र सुनो। यह महापाप का नाशक है। तीनों लोकों में इससे गुप्त अन्य विषय नहीं है।

विविध प्रकार के रत्नों से सुशोभित सुन्दर कैलास पर्वत की चोटी पर एकाग्र चित्त होकर भक्तिपूर्वक पूजा करके बैठे हुए शंकर ने पार्वती से प्रसाद ग्रहण करने के लिये इस प्रकार कहा—हे लोकपूजिते पार्वति! मेरे साथ प्रसाद भोजन के लिये आओ।।१-३।।

तमाह पार्वती देवी जप्त्वा नामसहस्रकम् ।
ततो भोक्ष्याम्यहं देव भुज्यतां भवता प्रभो ॥४॥
ततस्तां पार्वती प्राह प्रहसन् परमेश्वरः ।
धन्यासि कृतपुण्यासि विष्णुभक्तासि पार्वति ॥५॥

उनसे पार्वती ने कहा कि हे देव! सहस्रनाम जप के बाद ही मैं भोजन करूँगी, हे प्रभो! आप भोजन कर लें। तब हँसते हुए परमेश्वर ने उनसे कहा कि हे पार्वति! तुम धन्य हो, पुण्यवती हो, विष्णुभक्त हो।।४-५।।

दुर्लभा वैष्णवी भक्तिर्भागधेयं विनेश्वरि ।

रकारादीनि नामानि शृण्वतो मम पार्वति ॥६॥
मनः प्रसन्नतामेति रामनामाभिशङ्कया ।
रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥७॥

हे ईश्वरि! वैष्णवी भक्ति दुर्लभ है, भाग्य विना नहीं मिलती। हे पार्वति! रकारादि नामों को सुनने से मेरा मन प्रसन्न हो जाता है। अनन्त सत्यानन्द चिन्मय आत्मा में योगी लोग रमण करते हैं। इस प्रकार राम शब्द से, राम नाम से परब्रह्म को ही सम्बोधित करते हैं।।६-७।।

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।
सहस्रनाममध्ये तु रामनाम वरानने ।
रामेत्युक्त्वा महादेवि भुंक्ष्व सार्द्धं मयाधुना ॥८॥
ततो रामेति नामोक्त्वा सहभुक्त्वा च पार्वती ।
ततो भुक्त्वा महादेवी पतिना सह संस्थिता ॥९॥

मैं राम-राम-राम का उच्चारण करते-करते मनोरम राम में तन्मय हो जाता हूँ। हे वरानने! एक राम नाम ही सहस्र नामों के समान है। हे महादेवि! तुम राम कहकर इस समय मेरे साथ भोजन करो। पार्वती ने तब राम नाम का उच्चारण करके पति के साथ भोजन किया और उनके पास बैठ गईं।।८-९।।

पप्रच्छ श्रीमहादेवं प्रीतिप्रवणमानसा ।
सहस्रनामभिस्तुल्यं राम नाम त्वयोदितम् ॥१०॥
तस्यान्यान्यपि नामानि सन्ति चेद्रावणद्विषः ।
कथ्यतां मम देवेश तत्र मे प्रीतिरुत्तमा ॥११॥

इसके बाद प्रेमपूर्वक पार्वती ने महादेव से पूछा कि हे देवेश! आपने कहा कि राम नाम सहस्र नामों के समान है। उन रावणशत्रु राम के अन्य सभी जो नाम हैं, उन्हें बताइये। उन्हें सुनने की मेरी प्रबल इच्छा है।।१०-११।।

श्रीशङ्कर उवाच—

शृणु नामानि वक्ष्यामि रामचन्द्रस्य पार्वति ।
लौकिका वैदिकाः शब्दा ये केचित्सन्ति पार्वति ॥१२॥
नामानि रामभद्रस्य सहस्रन्तेषु चाधिकम् ।
तेषु चात्यन्तमुख्यं हि नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥१३॥

श्री शंकर बोले कि हे पार्वति! सुनो। रामचन्द्र के नामों को बतलाता हूँ। लौकिक

और वैदिक शब्दों के अनुसार रामचन्द्र के नाम बहुत प्रकार के हैं। उनमें सहस्रनाम सर्वोत्तम है। उन सहस्रनामों में भी एक सौ आठ नाम अति उत्तम हैं।।१२-१३।।

विष्णोरेकैकनामानि सर्ववेदाधिकं फलम् ।
तादृङ्नामसहस्रेषु राम नाम परं मतम् ।।१४।।
जपतः सर्ववेदांश्च सर्वमन्त्रांश्च पार्वति ।
तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं रामनाम्नैव लभ्यते ।।१५।।

विष्णु के एक नाम उच्चारण करने से सभी वेदों के पाठ से भी अधिक पुण्य प्राप्त होता है। हे पार्वति! जितने भी वेदमन्त्र हैं और अन्य प्रकार के जो सभी मन्त्र हैं, उनकी तुलना में एकमात्र राम नाम का जप करने से अधिक फल मिलता है। इसीलिये सहस्रनाम के मध्य में राम नाम ही सर्वश्रेष्ठ है।।१४-१५।।

अथ श्रीरामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रस्य ईश्वर-ऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीरामचन्द्रो देवता श्रीरामचन्द्रप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

विनियोग—श्री राम के अष्टोत्तर शतनाम स्तोत्र के ऋषि ईश्वर, छन्द अनुष्टुप्, देवता श्रीरामचन्द्र हैं और श्रीराम की प्रसन्नता के लिये इसका विनियोग होता है।

ॐ श्रीरामो रामभद्रश्च रामचन्द्रश्च शाश्वतः ।
राजीवलोचनः श्रीमान् राजेन्द्रो रघुपुङ्गवः ।।१६।।
जानकीवल्लभो जैत्रो जितामित्रो जनार्दनः ।
विश्वामित्रप्रियो दान्तः शरणत्राणतत्परः ।।१७।।
बालिप्रमथनो वाग्मी सत्यवाक्सत्यविक्रमः ।
सत्यव्रतो व्रतफलः सदा हनूमदाश्रयः ।।१८।।
कौशलेयः खरध्वंसी विराधवधपण्डितः ।
विभीषणपरित्राता दशग्रीवशिरोहरः ।।१९।।
सप्ततालप्रभेत्ता च हरकोदण्डखण्डनः ।
जामदग्न्यमहादर्पज्वलनस्ताडकान्तकः ।।२०।।
वेदान्तसारोऽमेयात्मा भववैद्यश्च भेषजः ।
दूषणत्रिशिरो हन्ता त्रिमूर्त्तिस्त्रिगुणस्त्रयी ।।२१।।
त्रिविक्रमस्त्रिलोकात्मा पुण्यचारीति कीर्तनः ।
त्रिलोकीरक्षको धन्वी दण्डकारण्यपुण्यकृत् ।।२२।।
अहल्यापावनश्चैव पितृभक्तो वरप्रदः ।
जितेन्द्रियो जितक्रोधो जितलाभो जगद्गुरुः ।।२३।।
ऋक्षवानरसङ्घाती चित्रकूटसमाश्रयः ।

जयन्तत्राणवरदः सुमित्रापुत्रसेवितः ॥२४॥
सर्वदेवाधिदेवश्च मृतबालकजीवनः ।
मायामारीचहन्ता च महाभोगो महाभुजः ॥२५॥
सर्वदेवस्तुतः सौम्यो ब्रह्मण्यो मुनिसंस्तुतः ।
महायोगी महोदारः सुग्रीवेप्सितराज्यदः ॥२६॥
सर्वपुण्याधिकफलस्तीर्थः सर्वाघनाशनः ।
आदिपुरुषो महापुरुषः परमः पुरुषस्तथा ॥२७॥
पुण्योदयो दयासारः पुराणः पुरुषोत्तमः ।
स्मितवक्त्रो मितभाषी पूर्णभाषी च राघवः ॥२८।
अनन्तगुणगम्भीरो धीरोदात्तगुणोत्तरः ।
मायामानुषचारित्रो महादेवाभिपूजितः ॥२९॥
सेतुकृज्जितवारीशः सर्वतीर्थमयो हरिः ।
श्यामाङ्गः सुन्दरः शूरः पीतवासा धनुर्द्धरः ॥३०॥
सर्वयज्ञाधिपो यज्ञो जरामरणवर्जितः ।
शिवलिङ्गप्रतिष्ठाता सर्वाघगणवर्जितः ॥३१॥
परमात्मा परं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः ।
परं ज्योतिः परं धाम पराकाष्ठा परात्परः ॥३२॥

१. श्रीराम, २. रामभद्र, ३. रामचन्द्र, ४. शाश्वत, ५. राजीवलोचन, ६. श्रीमान्, ७. राजेन्द्र, ८. रघुपुंगव, ९. जानकीवल्लभ, १०. जैत्र, ११. जितामृत, १२. जनार्दन, १३. विश्वामित्रप्रिय, १४. दान्त, १५. शरण्यत्राणतत्पर, १६. बालिप्रमथन, १७. वाग्मी, १८. सत्यवाक्, १९ सत्यविक्रम, २०. सत्यव्रत, २१. व्रतफल, २२. हनुमदाश्रय, २३. कौशलेय, २४. खरध्वंसी, २५. विराधवधपंडित, २६. विभीषणपरित्राता, २७. ग्रीवशिवोहर, २८. सप्ततालप्रभेत्ता, २९. हरकोदंडखंडन, ३०. जामदग्न्यमहादर्पदलन, ३१. ताड़कान्तक, ३२. वेदान्तसार, ३३. अमेयात्मा, ३४. भववैद्य, ३५. भेषज, ३६. दूषणत्रिशिरोहन्ता, ३७. त्रिमूर्ति, ३८. त्रिगुण, ३९. त्रयी, ४०. त्रिविक्रम, ४१. त्रिलोकात्मा, ४२. पुण्यचरितकीर्तन, ४३. त्रिलोकीरक्षक, ४४ धन्वी, ४५. दण्डकारण्यपुण्यकृत्, ४६. अहल्यापावन, ४७. पितृभक्त, ४८. वरप्रद, ४९. जितेन्द्रिय, ५०. जितक्रोध, ५१. जितलोभ, ५२. जगद्गुरु, ४३. ऋक्षवानरसंघाती, ५४. चित्रकूटसमाश्रय, ५५. जयन्तत्राणवरद, ५६. सुमित्रापुत्रसेवित, ५७. सर्वदेवाधिदेव, ५८. मृतबालकजीवन, ५९. मायामारीचहन्ता, ६०. महाभोग, ६१. महाभुज, ६२. सर्वदेवस्तुत, ६३. सौम्य, ६४. ब्राह्मण्य, ६५. मुनिसंस्तुत, ६६. महायोगी, ६७.

महोदार, ६८. सुग्रीवेप्सितराज्यद, ६९. सर्वपुण्याधिकफल, ७०. तीर्थ, ७१. सर्वौघनाशन, ७२. आदिपुरुष, ७३. महामृत्युञ्जय, ७४. परमपुरुष, ७५. पुण्योदय, ७६. दयासार, ७७. पुराण, ७८. पुरुषोत्तम, ७९. स्मितवक्त्र, ८०. मितभाषी, ८१. पूर्णभाषी, ८२. राघव, ८३. अनन्तगुणगम्भीर, ८४. धीरोदात्तगुणोत्तर, ८५. मायामानुष, ८६. महादेवाभिपूजित, ८७. सेतुकृत, ८८. जितवारीश, ८९. सर्वतीर्थमय, ९०. हरि, ९१. श्यामांग, ९२. सुन्दर, ९३. शूर, ९४. पीतवासा, ९५. धनुर्धर, ९६. सर्वयज्ञाधिप, ९७. यज्ञ, ९८. जरामरणवर्जित, ९९. शिवलिंगप्रतिष्ठाता, १००. सर्वौघगणवर्जित, १०१. परमात्मा, १०२. परब्रह्म, १०३. सच्चिदानन्दविग्रह, १०४. परज्योति, १०५. परधाम, १०६. पराकाष्ठा, १०७. परात्पर, १०८. परेश, १०९. पारग, ११०. पार, १११. सर्वदेवात्मक, ११२. शिव।।१६-३२।।

परेशः पारगः पारः सर्वदेवात्मकः शिवः ।
इत्येतद्रामभद्रस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।।३३।।
गुह्याद् गुह्यतरं देवि तव प्रीत्या प्रकीर्त्तितम् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि भक्तियुक्तेन चेतसा ।
स सर्वैर्मुच्यते पापैः कल्पकोटिशतोद्भवैः ।।३४।।

यही श्रीराम का अष्टोत्तर शतनाम है। हे देवि! यह अत्यन्त ही गोपनीय है; केवल तुम्हारे स्नेह के कारण मैंने इसे कहा है। भक्तियुक्त चित्त से जो कोई भी इसका पाठ या श्रवण करता है, वह करोड़ों कल्पों के समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।।३३-३४।।

जलानि स्थलतां यान्ति शत्रवो यान्ति मित्रताम् ।
राजानो दासतां यान्ति वह्नयो यान्ति सौम्यताम् ।।३५।।
आनुकूल्यञ्च भूतानि स्थैर्यं यान्ति चलां श्रियः।
अणुग्रहे ग्रहा यान्ति नाशमायान्त्युपद्रवाः ।।३६।।

हे पर्वतपुत्रि! जो भक्तिपूर्वक इसका पाठ करते हैं, उनके लिये जल भी स्थल हो जाते हैं, शत्रु मित्र हो जाते हैं, राजा लोग उसके दास के समान हो जाते हैं, अग्नि शीतल हो जाती है, समस्त भूत उसके अनुकूल हो जाते हैं, चञ्चला लक्ष्मी स्थिर हो जाती है, समस्त ग्रह विलीन हो जाते हैं एवं सभी उपद्रव शान्त हो जाते हैं।।३५-३६।।

पठतो भक्तिभावेन जनस्य गिरिसम्भवे ।
यः पठेत्परया भक्त्या तस्य वश्यं जगत्त्रयम् ।
यद्यत्कामयते चित्ते तत्तदाप्नोति कीर्तनात् ।।३७।।
यः पठेद्रामचन्द्रस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।
ज्ञानेनापि च कुर्वाणो न स पापेन लिप्यते ।।३८।।

जो भक्तिपूर्वक इसका पाठ करता है, वह अपने मन में जो-जो कामना करता है, उसको स्मरणमात्र से ही प्राप्त कर लेता है। जो रामचन्द्र के इस अष्टोत्तर शतनाम का पाठ करता है, वह जान-बूझकर भी पाप करने पर उससे लिप्त नहीं होता।।३७-३८।।

सर्ववेदेषु तीर्थेषु दानेषु च तपःसु च ।
तत्फलं कोटिगुणितं स्तवेनानेन लभ्यते ।।३९।।
पुण्यकालेषु सर्वेषु पठन्नानन्त्यमश्नुते ।
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
वैकुण्ठे वासमाप्नोति दशपूर्वैर्दशापरैः ।।४०।।
रामं दूर्वादलश्यामं पद्माक्षं पीतवाससम् ।
स्तुवन्ति नामभिर्दिव्यैर्न ते संसारिणो नराः ।।४१।।

समस्त वेदों, तीर्थों, दानों और तपस्याओं को करने से जो फल प्राप्त होता है, उससे करोड़ों गुणा अधिक फल इस स्तोत्र के पाठमात्र से प्राप्त हो जाता है। समस्त पुण्यकालों में इसका पाठ करने से अनन्त गुणा फल प्राप्त होता है। दूर्वादल के समान श्याम वाले, कमलनयन पीत वस्त्रधारी राम का इन दिव्य नामों से जो संसारी पुरुष करते हैं, वे अपनी पीछे एवं आगे की दस पीढ़ियों के साथ करोड़ों कल्पों तक वैकुण्ठ में निवास करता है।।३९-४१।।

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ।।४२।।
इमं मन्त्रं महेशानि जपन्नेव दिवानिशम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।।४३।।

हे महेशानि! 'रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे। रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः' इस मन्त्र का दिन-रात जप करने वाले समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णु का सायुज्य प्राप्त करते हैं।।४२-४३।।

इत्येतद्रामचन्द्रस्य माहात्म्यं वेदसम्मतम् ।
कथितं तव गाङ्गेय यतस्त्वं वैष्णवोत्तमः ।।४४।।
वन्दामहे महेशानं हरकोदण्डखण्डनम् ।
जानकीहृदयानन्दचन्दनं रघुनन्दनम् ।।४५।।

इति पद्मपुराणे पार्वतीश्वरसंवादे
श्रीरामचन्द्रस्तवराजः समाप्तः

हे गंगापुत्र! इस प्रकार रामचन्द्र के वेदसम्मत माहात्म्य को मैंने तुमसे कहा, क्योंकि

तुम वैष्णवों में सर्वश्रेष्ठ हो। महेश के धनुष का भंग करने वाले, जानकी के हृदय को आह्लादित करने वाले रघुनन्दन की वन्दना करता हूँ।।४४-४५।।

●

श्रीरामकवचम्[1]

ध्यायेदाजानुबाहुं धृतशरधनुषं बद्धपद्मासनस्थं
पीतं वासो वसानं नवकमलदलस्पर्धिनेत्रं प्रसन्नम् ।
वामाङ्कारूढसीतामुखकमलमिलल्लोचनं नीरदाभं
नानालङ्कारदीप्तं दधतमुरुजटामण्डलं रामचन्द्रम् ॥१॥
चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् ॥२॥

पूर्वपीठिका—जानुपर्यन्त लम्बी बाँहों वाले, धनुष-बाण धारण करने वाले, पद्मासन में अवस्थित, पीत वस्त्र धारण करने वाले, नूतन कमलपत्रों से स्पर्धा करते हुये नेत्रों वाले, अत्यन्त प्रसन्न, किञ्चित् विकसित मुखकमल और हर्षित आँखों वाली सीता जिनके वामभाग में अवस्थित हैं, अनेक आभूषणों से उद्दीप्त, जटाजूटों को धारण करने वाले श्रीरामचन्द्र का ध्यान करता हूँ। श्रीरघुनाथ का चरित्र सैकड़ों करोड़ योजन विस्तृत है। इनके नाम का एक-एक अक्षर मनुष्यों के घोर पातकों का नाश करने वाला है।।१-२।।

ध्यात्वा नीलोत्पलश्यामं रामं राजीवलोचनम् ।
जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमण्डितम् ॥३॥
सासितूणधनुर्बाणपाणिं नक्तञ्चरान्तकम् ।
स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम् ॥४॥

इस रामरक्षास्तोत्र का पाठ नीलकमल के समान श्याम वर्ण वाले, कमलसदृश नेत्र वाले, सीता, और लक्ष्मण से समन्वित, जटा-मुकुट से भूषित राम का इस प्रकार ध्यान करते हुये करना चाहिए—वे तलवार, तूणीर, धनुष एवं बाण धारण करने वाले हैं, राक्षसों का विनाश करने वाले हैं, अपनी लीला से जगत् की रक्षा करने के लिये आविर्भूत हुये हैं, अजन्मा हैं एवं सर्वव्यापक हैं। वे पापों का विनाश करने वाले एवं सभी कामनाओं को देने वाले हैं।।३-४।।

अस्य श्रीरामरक्षास्तोत्रमन्त्रस्य बुधकौशिक ऋषिः, श्रीसीतारामचन्द्रो देवता, अनुष्टुप् छन्दः, सीता शक्तिः, श्रीमद्धनुमान् कीलकम्, श्रीसीतारामचन्द्रप्रीत्यर्थे रामरक्षास्तोत्रजपे विनियोगः।

---

[1] समुपलब्धान्यसंस्करणे स्तोत्रमिदमशुद्धं भ्रामकं खण्डितञ्च वर्तते।

विनियोग—इस रामरक्षास्तोत्ररूपी मन्त्र के ऋषि बुधकौशिक, श्रीसीतारामचन्द्र देवता, छन्द अनुष्टप्, शक्ति सीता एवं कीलक हनुमान हैं। साथ ही श्रीसीतारामचन्द्र की प्रसन्नता के लिये इस रामरक्षास्तोत्र का विनियोग किया जाता है।

रामरक्षां पठेत्प्राज्ञः पापघ्नीं सर्वकामदाम् ।
शिरो मे राघवः पातु भालं दशरथात्मजः ।।५।।
कौशल्येयो दृशौ पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुती ।
घ्राणं पातु मखत्राता मुखं सौमित्रिवत्सलः ।।६।।

मेरे शिर की रक्षा राघव करें, ललाट की रक्षा दशरथपुत्र करें, कौशल्यापुत्र मेरे नेत्रों की रक्षा करें एवं विश्वामित्रप्रिय मेरे कानों की रक्षा करें। मेरे नाक की रक्षा यज्ञरक्षक श्रीराम करें एवं सौमित्रिवत्सल मेरे मुख की रक्षा करें।।५-६।।

जिह्वां विद्यानिधिः पातु कण्ठं भरतवन्दितः ।
स्कन्धौ दिव्यायुधः पातु भुजौ भग्नेशकार्मुकः ।।७।।
करौ सीतापतिः पातु हृदयं जामदग्न्यजित् ।
मध्यं पातु खरध्वंसी नाभिं जाम्बवदाश्रयः ।।८।।

विद्यानिधि मेरी जिह्वा की रक्षा करें एवं मेरे कण्ठ की रक्षा भरतवन्दित करें। मेरे कन्धों की रक्षा उनके दिव्य आयुध करें तथा मेरी भुजाओं की रक्षा शिवधनुष को भङ्ग करने वाले करें। सीतापति मेरे हाथों की रक्षा करें एवं परशुराम को पराजित करने वाले मेरे हृदय की रक्षा करें। खर नामक राक्षस का संहार करने वाले मेरे शरीर के मध्य भाग की रक्षा करें तथा जाम्बवान् के आश्रय मेरी नाभि की रक्षा करें।।७-८।।

सुग्रीवेशः कटी पातु सक्थिनी हनूमत्प्रभुः ।
ऊरू रघूत्तमः पातु रक्षःकुलविनाशकृत् ।।९।।
जानुनी सेतुकृत्पातु जङ्घे दशमुखान्तकः ।
पादौ विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिलं वपुः ।।१०।।

सुग्रीव के स्वामी मेरे कटिप्रदेश की रक्षा करें तथा सक्थियों की रक्षा हनुमत्प्रभु करें। मेरे ऊरुओं की रक्षा राक्षसों के कुलों का विनाश करने वाले रघूत्तम करें। मेरी घुटनों की रक्षा समुद्र पर सेतु का निर्माण करने वाले करें एवं जांघों की रक्षा दशमुख का वध करने वाले करें। विभीषण को श्री प्रदान करने वाले मेरे पैरों की रक्षा करें एवं मेरे सम्पूर्ण शरीर की रक्षा श्रीराम करें।।९-१०।।

एतां रामबलोपेतां रक्षां यः सुकृती पठेत् ।
स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत् ।।११।।

पातालभूतलव्योमचारिणश्छद्मचारिणः ।
न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः ॥१२॥

फलश्रुति—राम के बल से समन्वित इस रक्षाकवच का जो पुण्यात्मा पाठ करता है, वह चिरायु, सुखी, पुत्रसम्पन्न, सर्वत्र जय प्राप्त करने वाला एवं विनयसम्पन्न होता है। जो इस राम नाम से रक्षित रहता है, उसे पाताल में निवास करने वाले, भूतल पर विचरण करने वाले एवं आकाश में सञ्चरण करने वाले कपटाचरण करने वाले देखने में भी समर्थ नहीं हो पाते हैं।।११-१२।।

रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन् ।
नरो न लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिञ्च विन्दति ॥१३॥

राम, रामभद्र अथवा रामचन्द्र—इस प्रकार रामनाम का स्मरण करने वाला प्राणी कभी भी पापों से लिप्त नहीं होता। भुक्ति एवं मुक्ति उसे अवश्य ही प्राप्त होती है।।१३।।

जगज्जैत्रैकमन्त्रेण रामनाम्नाभिरक्षितम् ।
यः कण्ठे धारयेत्तस्य करस्थाः सर्वसिद्धयः ॥१४॥
वज्रपञ्जरनामेदं यो रामकवचं पठेत् ।
अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते जयमङ्गलम् ॥१५॥

समस्त संसार को विजित करने वाले एकमात्र मन्त्रस्वरूप 'राम' नाम द्वारा अभिरक्षित कवच को जो अपने कण्ठ में धारण करता है, उसे सभी सिद्धियाँ हस्तामलकवत् प्राप्त होती हैं। 'वज्रपञ्जर' नामक इस कवच का जो पाठ करता है, उसकी सर्वत्र अव्याहत गति होती है एवं उसकी सर्वत्र जय होती है तथा उसका कल्याण होता है।।१४-१५।।

आदिष्टवान् यथा स्वप्ने रामरक्षामिमां हरः ।
तथा लिखितवान् प्रातः प्रबुद्धो बुधकौशिकः ॥१६॥
आरामः कल्पवृक्षाणां विरामः सकलापदाम् ।
अभिरामस्त्रिलोकानां रामः श्रीमान्स नः प्रभुः ॥१७॥

बुधकौशिक ऋषि को स्वप्नावस्था में जिस प्रकार भगवान् शंकर ने इस रामरक्षा स्तोत्र का उपदेश किया, उसे उसी प्रकार प्रातःकाल जागने पर ऋषि ने लिखा है। यह रामरक्षा स्तोत्र कल्पवृक्षों के बगीचे के समान है, समस्त आपत्तियों की समाप्ति के समान है एवं तीनों लोकों को आनन्द प्रदान करने वाला है। इसके द्वारा जिनकी स्तुति की गई है, वे श्रीराम ही हमारे प्रभु हैं।।१६-१७।।

तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ ।
पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ ॥१८॥

फलमूलाशिनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ ।
पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१९॥
शरण्यौ सर्वसत्त्वानां श्रेष्ठौ सर्वधनुष्मताम् ।
रक्षःकुलनिहन्तारौ त्रायेतां नो रघूत्तमौ ॥२०॥

दशरथ के ये दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण दोनों भाई युवा हैं, रूपसम्पन्न हैं, सुकोमल हैं, अति शक्तिशाली हैं, कमल की पंखुड़ियों के समान विशाल नेत्र वाले हैं, रेशमी वस्त्र और काले मृगचर्म पहने हुए हैं, फल-मूल का आहार करने वाले, दान्त, तपस्वी, जितेन्द्रिय एवं ब्रह्मचारी हैं, सभी धनुर्धारियों में श्रेष्ठ हैं, सभी जीवों के शरणदाता हैं, राक्षसों के वंशनाशक हैं। ये दोनों श्रेष्ठ रघुवंशी हमारी रक्षा करें।।१८-२०।।

आत्तसज्यधनुषाविषुस्पृशा-
वक्षयाशुगनिषङ्गसङ्गिनौ ।
रक्षणाय मम रामलक्ष्मणा-
वग्रतः पथि सदैव गच्छताम् ॥२१॥
सनद्धः कवची खड्गी चापबाणधरो युवा ।
गच्छन्मनोरथोऽस्माकं रामः पातु सलक्ष्मणः ॥२२॥

हाथों में ज्यायुक्त धनुष और वाण, कन्धे पर वाणों से भरा अक्षय तूणीर धारण किये हुए राम और लक्ष्मण सर्वदा मेरी रक्षा के लिए मेरे सम्मुख मार्ग पर विचरण करें।

शरीर पर कवच बाँधे, खड्ग और धनुष-वाण लिए सुसज्जित राम लक्ष्मण के साथ मनोकामना पूर्ण करते हुए मेरी रक्षा करें।।२१-२२।।

रामो दाशरथिः शूरो लक्ष्मणानुचरो बली ।
काकुत्स्थः पुरुषः पूर्णः कौशल्येयो रघूत्तमः ॥२३॥
वेदान्तवेद्यो यज्ञेशः पुराणपुरुषोत्तमः ।
जानकीवल्लभः श्रीमानप्रमेयपराक्रमः ॥२४॥
इत्येतानि जपन्नित्यं मद्भक्तः श्रद्धयान्वितः ।
अश्वमेधायुतं पुण्यं सम्प्राप्नोति न संशयः ॥२५॥

राम, दाशरथि, शूरवीर, लक्ष्मणसदृश बलवान अनुचर वाले, काकुत्स्थ, पूर्ण पुरुष, कौशल्यापुत्र, रघुकुलभूषण, वेदान्तवेद्य, यज्ञों के रक्षक, पुराणपुरुषोत्तम, जानकी के आनन्ददाता, श्रीमान्, अप्रमेय पराक्रमी—इन सभी का नित्य निरन्तर जप करने वाला श्रद्धा से परिपूर्ण मेरा भक्त करोड़ों अश्वमेध यज्ञ के समान पुण्य को प्राप्त करता है। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।।२३-२५।।

रामं दूर्वादलश्यामं पद्माक्षं पीतवाससम् ।
स्तुवन्ति नामभिर्द्रव्यैर्न ते संसारिणो नराः ॥२६॥
रामं लक्ष्मणपूर्वजं रघुवरं सीतापतिं सुन्दरं
काकुत्स्थं करुणार्णवं गुणनिधिं विप्रप्रियं धार्मिकम् ।
राजेन्द्रं सत्यसन्धं दशरथतनयं श्यामलं शान्तमूर्त्तिं
वन्दे लोकाभिरामं रघुकुलतिलकं राघवं रावणारिम् ॥२७॥

दूर्वादल के सदृश श्याम वर्ण वाले, कमलसदृश नयनों वाले, पीत वस्त्रधारी श्रीराम की जो संसारीजन इन नामों से स्तुति करते हैं, वे पुन: संसार में संसरण नहीं करते। लक्ष्मण के बड़े भाई श्रीराम, रघुकुलश्रेष्ठ सीता के पति, सुन्दर रूपसम्पन्न, काकुत्स्थ, करुणा के समुद्र, गुणों के भाण्डार, ब्राह्मणों के प्रिय, धर्मधुरीण, राजाओं में इन्द्रसदृश, सत्यरक्षक, दशरथपुत्र, श्याम वर्ण वाले, शान्त स्वरूप वाले, लोकों को आनान्दित करने वाले, रघुकुलतिलक, रावण के शत्रु राघव की मैं वन्दना हूँ।।२६-२७।।

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥२८॥
श्रीराम राम रघुनन्दन राम राम
श्रीराम राम भरताग्रज राम राम ।
श्रीराम राम रणकर्कश राम राम
श्रीराम राम शरणं भव राम राम ॥२९॥
श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि
श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि ।
श्रीरामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि
श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥३०॥

राम के लिये, रामभद्र के लिये, रामचन्द्र के लिये, विधाता के लिये, रघुनाथ के लिये, अपने प्रभु के लिये एवं सीतापति के लिये नमस्कार है। श्रीराम, राम, रघुनन्दन राम, भरत के बड़े भाई राम, रणकर्कश राम, संसार के तारक राम ही मेरी शरण हैं। श्रीरामचन्द्र के चरणों का ही मैं मन से स्मरण करता हूँ, वाणी से गुणगान करता हूँ, शिर से नमन करता हूँ और उन्हीं चरणकमलों की शरणागति चाहता हूँ।।२८-३०।।

माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः
स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः ।
सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालु-
र्नान्यं जाने नैव जाने न जाने ॥३१॥

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे तु जनकात्मजा ।
पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥३२॥

राम ही मेरे माता-पिता हैं, राम ही मेरे स्वामी हैं और रामचन्द्र ही मेरे सखा हैं। मेरे सर्वस्व श्रीरामचन्द्र ही हैं। उन दयालु श्रीराम के अतिरिक्त कन्य किसी को मैं नहीं जानता हूँ, नहीं जानता हूँ। जिसके दक्षिण भाग में लक्ष्मण एवं वाम भाग में सीता तथा सामने वीर हनुमान विराजमान हैं, उन रघुनन्दन की मैं वन्दना करता हूँ।।३१-३२।।

लोकाभिरामं रणरङ्गधीरं राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम् ।
कारुण्यरूपं करुणाकरं तं श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये ॥३३॥

समस्त संसार में रमण करने वाले, रण में धैर्य धारण करने वाले,कमलनयन, रघुकुल के स्वामी, करुणामूर्ति, करुणा करने वाले श्रीराम की शरण में मैं शरणागत होता हूँ।।३३।।

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥३४॥

मन के समान गति वाले, वानरसमूह में मुख्य, जितेन्द्रिय, अतिशय बुद्धिमान, वायुपुत्र, वायु-सदृश गति वाले श्रीराम के दूत हनुमान की मैं शरण चाहता हूँ।।३४।।

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥३५॥

'राम-राम' इन मधुर अक्षरों का कूजन करते हुये कविताशाखा पर आरूढ़ वाल्मीकिरूपी काकिल की मैं वन्दना करता हूँ।।३५।।

आपदामपहन्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
[1]लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥३६॥

समस्त आपत्तियों का हरण करने वाले एवं सभी सम्पत्तियों को देने वाले, समस्त लोकों में मनोहर श्रीराम को मैं बार-बार नमन करता हूँ।।३६।।

भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम् ।
तर्जनं यमदूतानां राम रामेति गर्जनम् ॥३७॥

संसार के समस्त बीजों का भर्जन करने वाले, समस्त सुख-सम्पत्तियों को देने वाले, यमराज के दूतों को दूर भगाने वाले 'राम-राम' का गर्जन करने वाले धन्य हैं।।३७।।

रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे
रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः ।

---

१. 'गुणाभिरामं' इति पाठान्तरम्।

रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोस्म्यहं
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम मामुद्धर ॥३८॥

राजाओं के मुकुट श्रीराम की सदा जय हो, रमा के ईश राम का मैं भजन करता हूँ, राम के द्वारा निशाचरगण का संहार किया गया है, उन श्रीराम के लिये मेरा नमस्कार हैं। दूसरों के हित करने में राम से अतिरिक्त कोई भी समर्थ नहीं है, उन श्रीराम का ही मैं दास हूँ। उन राम में ही मेरा चित्त हमेशा जगा रहे। हे राम! आप मरा उद्धार करें।।३८।।

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने ॥३९॥

इति श्रीबुधकौशिकप्रणीतं वज्रपञ्जरं नाम
श्रीरामकवचं समाप्तम्

हे वरानने! 'राम-राम-राम' रमा अर्थात् लक्ष्मी में रमण करने वाले, मन को प्रिय लगने वाले राम का नाम स्वयं ही सहस्रनाम के समान है।।३९।।

●

श्रीकृष्णस्तोत्रम्

प्रसीद भगवन् मह्यमज्ञानात्कुण्ठितात्मने ।
तवांघ्रिपङ्कजरजोरागिणीं भक्तिमुत्तमाम् ॥१॥
अज प्रसीद भगवन्नमितद्युतिपञ्जर ।
अप्रमेय प्रसीदास्मद् दुःखहन् पुरुषोत्तम ॥२॥

हे भगवन्! प्रसन्न हों। मेरी आत्मा अज्ञान से भ्रमित है। उसे आपके चरणकमलों के पराग में आसक्त श्रेठ भक्ति प्राप्त है। हे अनादि भगवन्! आप असीम तेजःपुञ्जस्वरूप हैं, प्रसन्न होइये। मेरे दुःखों को नष्ट करने वाले अनुपम पुरुषश्रेष्ठ प्रसन्न हों।।१-२।।

स्वसंवेद्य प्रसीदास्मदानन्दात्मन्ननामय ।
अचिन्त्यसार विश्वात्मन् प्रसीद परमेश्वर ॥३॥
प्रसीद तुङ्गतुङ्गानां प्रसीद शिवशोभन ।
प्रसीद गुणगम्भीर गम्भीराणां महाद्युते ॥४॥

हे परमेश्वर! आप ही स्वयं को जानने वाले आनन्दमय आत्मा हैं। आप निर्विकार हैं। आपकी भक्ति अचिन्तनीय है। आप विश्वरूप हैं। मुझ पर प्रसन्न होइये।

आप उन्नतों से भी उन्नत हैं। आप कल्याणकारी शोभा से युक्त हैं। आप गम्भीर गुणवानों से भी गुणगम्भीर हैं। हे तेजस्वी! मुझ पर प्रसन्न हों।।३-४।।

प्रसीदाव्यक्तविस्तीर्ण दिस्तीर्णानामगोचर ।
प्रसीदार्द्रार्द्रजातीनां प्रसीदान्तान्तयायिनाम् ॥५॥
गुरोर्गरीयान् सर्वेश प्रसीदानन्तदेहिनाम् ।
जय माधव मायात्मन् जय शाश्वत शङ्खभृत् ॥६॥

आप विश्वरूप में व्याप्त हैं, फिर भी अदृश्य हैं। विश्वव्यापक तत्त्वों के लिये भी आप अदृश्य हैं। दुःखों से व्याकुल प्राणियों पर आप प्रसन्न हों। अछूतों से भी अधम लोगों पर आप प्रसन्न हों।

हे परमेश्वर! आप श्रेष्ठों में भी श्रेष्ठ हैं। आप असंख्य शरीरधारी हैं, प्रसन्न हों। हे माधव! आप मायामय हैं, आपकी जय हो। हे शंखधर! आप नित्य हैं, आपकी जय हो।।५-६।।

जय शङ्खधर श्रीमन् जय नन्दकनन्दन ।
जय चक्रगदापाणे जय देव जनार्दन ॥७॥
जय रत्नवराबद्धकिरीटाक्रान्तमस्तक ।
जय पक्षिपतिच्छायानिरुद्धार्ककरारुण ॥८॥

आप श्रीमान् शंखधर हैं, आपकी जय हो। हे नन्दनन्दन! आपकी जय हो। हे चक्रगदाधारी! आपकी जय हो। हे देव जनार्दन! आपकी जय हो। आपके शिर पर श्रेष्ठ रत्नजटित मुकुट है, आपकी जय हो। गरुड़ के पंखों की छाया से आपके शरीर पर सूर्य की किरणें नहीं पहुँच पातीं। हे लोहितवर्ण! आपकी जय हो।।७-८।।

नमस्ते नरकाराते नमस्ते मधुसूदन ।
नमस्ते ललितापाङ्ग नमस्ते नरकान्तक ॥९॥
नमः पापहरेशान नमः सर्वभयापह ।
नमः सम्भृतसर्वात्मन् नमः सम्भृतकौस्तुभ ॥१०॥

हे नरकासुरशत्रो! आपको नमस्कार है। हे मधुनाशक! आपको नमस्कार है। हे चारुनेत्र! आपको नमस्कार है। हे नरकासुरनाशक! आपको नमस्कार है। हे पापनाशक ईश्वर! आपको नमस्कार है। हे सर्वभयनाशक! आपको नमस्कार है। हे विश्वम्भर! आपको नमस्कार है। हे कौस्तुभधारी! आपको नमस्कार है।।९-१०।।

नमस्ते नयनातीत नमस्ते भयहारक ।
नमो विभिन्नवेशाय नमः श्रुतिपथातिग ॥११॥
नमस्त्रिमूर्तिभेदेन स्वर्गस्थित्यन्तहेतवे ।
विष्णवे त्रिदशारातिजिष्णवे परमात्मने ॥१२॥

हे भयनाशक! आप दृष्टि से परे हैं। आपको नमस्कार है। आप विविध वेषधारी हैं। आप श्रवणातीत हैं, आपको नमस्कार है।

आप परमात्मा हैं; फिर भी तीन रूपों से सृष्टि-स्थिति और संहार करते हैं। विष्णुरूप से आप देवताओं के शत्रुओं को पराजित करते हैं, आपको नमस्कार है।।११-१२।।

चक्रभिन्नारिचक्राय चक्रिणे चक्रबन्धवे ।
विश्वाय विश्ववन्द्याय विश्वभूतानुवर्तिने ।।१३।।
नमोऽस्तु योगिध्येयाय नमोऽस्त्वध्यात्मरूपिणे ।
भक्तिप्रियाय भक्तानां नमस्ते मुक्तिदायिने ।।१४।।

आप सुदर्शन चक्र से शत्रुओं के व्यूह का नाश करते हैं। आप चक्रधारी हैं। आप चक्रबन्धु हैं। आप विश्वरूप हैं और विश्ववन्द्य हैं। विश्व के सभी प्राणी आपके अनुयायी हैं। योगीजन आपका ध्यान करते हैं, आपको नमस्कार है। आप अध्यात्मरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप भक्तों को भक्ति और मुक्ति देते हैं, आपको प्रणाम है।।१३-१४।।

पूजनं हवनं चेष्टा ध्यानं पश्चान्नमस्क्रिया ।
देवेश कर्म सर्वं मे भवेदाराधनं तव ।।१५।।
इति हवनजपार्चाभेदतो विष्णुपूजा
निरतहृदयकर्मा यस्तु मन्त्री चिराय ।
स खलु सकलकामान् प्राप्य कृष्णान्तरात्मा
जननमृतिविमुक्तामुत्तमां मुक्तिमेति ।।१६।।

हे देवेश! पूजा, हवन, चेष्टा, ध्यान और प्रणाम मेरे सभी कर्म आपकी उपासना-रूपमय हों।

इस प्रकार हवन-जप-पूजा आदि सभी कर्मों को हृदय से विष्णुपूजा मानते हुए जो मन्त्रसाधक सदा चिन्तन करता है, वह सभी कामनाओं को पाकर अपनी आत्मा से कृष्णरूप हो जाता है। वह जन्म-मृत्यु से छूटकर श्रेष्ठ मोक्ष प्राप्त करता है।।१५-१६।।

गोगोपगोपिकावीतं गोपालं गोषु गोप्रदम् ।
गोपैरीड्यं गोसहस्रैर्नौमि गोकुलनायकम् ।।१७।।
प्रीणयेदनया स्तुत्या जगन्नाथं जगन्मयम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणामाप्तये पुरुषोत्तमम् ।।१८।।

इति कृष्णस्तोत्रं समाप्तम्

जो गोप-गोपी और गोगण से वेष्टित होकर गोपालन करते हैं, जो पृथ्वी को रश्मि प्रदान करते हैं, गोपवृन्द जिन्हें सहस्रों वाक्यों से स्तुति कर प्रसन्न करते हैं; उन्हीं

गोकुलनायक को मैं नमस्कार करता हूँ। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष पाने के लिये जगद्व्यापी पुरुषोत्तम जगन्नाथ को इस स्तोत्र से प्रसन्न करना चाहिये।।१७-१८।।

●

गोपालस्तोत्रम्

नारद उवाच—

नवीननीरदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम् ।
वल्लवीनन्दनं वन्दे कृष्णं गोपालरूपिणम् ।।१।।
स्फुरद्बर्हदलोद्बद्धनीलकुञ्चितमूर्द्धजम् ।
कदम्बकुसुमोद्बद्धवनमालाविभूषितम् ।।२।।

नारद जी ने कहा कि नीलकमल जैसी आपकी आँखें हैं; जिन्हें देखकर गोपियाँ आनन्दित हो उठती हैं। उन्हीं नवमेघसदृश कृष्ण वर्ण एवं ग्वाले के समान वेश वाले भगवान् कृष्ण की मैं वन्दना करता हूँ।

घुंघुराले नीले केश ऊपर उठाकर मोरपंख से बंधे हुए हैं। मोरपंख का अगला भाग हिल रहा है तथा गले में कदम्बपुष्पों से बनी वनमाला शोभित है।।१-२।।

गण्डमण्डलसंसर्गिचलत्काञ्चनकुण्डलम् ।
स्थूलमुक्ताफलोदारहारद्योतितवक्षसम् ।।३।।
हेमाङ्गदतुलाकोटिकिरीटोज्वलविग्रहम् ।
मन्दमारुतसंक्षोभवल्गिताम्बरसञ्चयम् ।।४।।

कानों में सोने के कुण्डल गालों को स्पर्श करते हुए झूल रहे हैं। छाती पर बड़ी-बड़ी मोतियों का हार चमक रहा है। हाथों में सोने के कंगन, पैरों में घुंघरु और मस्तक पर मुकुट धारण करके उज्ज्वल वेश में विराजमान हैं। वस्त्र मन्द पवन के झोकों से हिल रहे हैं।।३-४।।

रुचिरौष्ठपुटन्यस्तवंशीमधुरनिःस्वनैः ।
लसद्गोपालिकाचेतो मोहयन्तं मुहुर्मुहुः ।।५।।
वल्लवीवदनाम्भोजमधुपानमधुव्रतम् ।
क्षोभयन्तं मनस्तासां सस्मेरापाङ्गवीक्षणैः ।।६।।

अपने मनोहर अधर पर रखी वाँसुरी से मधुर ध्वनि करते हुए गोपियों के प्रसन्न हृदयों को बारम्बार मुग्ध कर रहे हैं। गोपियों के मुखकमलों के पराग पीने में भौरों के समान हैं। मुस्कान के साथ कटाक्षपूर्वक देखते हुए गोपियों के मन को उत्कंठित कर रहे हैं।।५-६।।

यौवनोद्भिन्नदेहाभिः संसक्ताभिः परस्परम् ।
विचित्राम्बरभूषाभिर्गोपनारीभिरावृत्तम् ॥७॥
प्रभिन्नाञ्जनकालिन्दीजलकेलिकलोत्सुकम् ।
योधयन्तं क्वचिद्गोपान् व्याहरन्तं गवां गणम् ॥८॥

यौवन से प्रस्फुटित शरीर वाली, रंग-विरंगे वस्त्रों और आभूषणों से सज्जित गोपियों से आच्छादित भगवान् श्रीकृष्ण कभी काजल-जैसे नीले यमुना में जलक्रीड़ा करते हैं, कभी ग्वालों को लड़ने की शिक्षा देते हैं और कभी गायों के सेवकों को कथा-वार्ता सुनाते हैं।।७-८।।

कालिन्दीजलसंसर्गिशीतलानिलसेविते ।
कदम्बपादपच्छाये स्थितं वृन्दावने क्वचित् ॥९॥
रत्नभूधरसंलग्नरत्नासनपरिग्रहम् ।
कल्पपादपमध्यस्थहेममण्डपिकागतम् ॥१०॥

कभी वृन्दावन में कदम्बवृक्ष की छाया में बैठकर यमुना के जलविन्दु से युक्त ठंढी हवा का सेवन करते हैं। कल्पवृक्ष के बीच स्वर्णमण्डप में रत्नपर्वत से सटे रत्नासन पर विराजमान हैं।।९-१०।।

वसन्तकुसुमामोदसुरभीकृतदिङ्मुखे ।
गोवर्द्धनगिरौ रम्ये स्थितं रासरसोत्सुकम् ॥११॥
सव्यहस्ततलन्यस्तगिरिवर्यातपत्रकम् ।
खण्डिताखण्डतोन्मुक्तमुक्तासारघनाघनम् ॥१२॥
वेणुवाद्यमहोल्लासकृतहुङ्कारनिःस्वनैः ।

वसन्त ऋतु के पुष्पों की सुगन्ध से चारो दिशायें सुगन्धित हैं। इस प्रकार के रमणीय गोवर्धन पर्वत पर रासलीला के लिये उत्सुक हैं। अपनी बाँई हथेली पर छाते के समान गोवर्धन पर्वत को धारण करके इन्द्र की प्रबल मूसलाधार वर्षा को जिन्होंने शान्त कर दिया है।।११-१२।।

सवत्सैरुन्मुखैः शश्वद् गोकुलैरभिवीक्षितम् ॥१३॥
कृष्णमेवानुगायद्भिस्तच्चेष्टावशवर्तिभिः ।
दण्डपाशोद्यतकरैर्गोपालैरुपशोभितम् ॥१४॥

बछड़ों के साथ गौवें मधुर वंशीध्वनि को सुनकर उल्लसित हो उठती हैं। हुंकार ध्वनी करती हुई अपने मुख ऊपर उठाकर उन्हें निरन्तर देखा करती हैं।

अपने हाथों में डंडा और रस्सी लिए ग्वालों का समूह कृष्ण के साथ उन्हीं की नकल

कर गाता हुआ उनकी शोभा बढ़ा रहा है।।१३-१४।।

नारदाद्यैर्मुनिश्रेष्ठैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ।
प्रीतिसुस्निग्धया वाचा स्तूयमानं परात्परम् ॥१५॥

वेद और वेदांगों के पारंगत नारद आदि श्रेष्ठ मुनिगण भक्तिरस से परिपूर्ण मधुर वाणी से उस परात्पर कृष्ण की स्तुति कर रहे हैं।।१५।।

य एवं चिन्तयेद्देवं भक्त्या संस्तौति मानवः ।
त्रिसन्ध्यं तस्य तुष्टोऽसौ ददाति वरमीप्सितम् ॥१६॥
राजवल्लभतामेति भवेत् सर्वजनप्रियः ।
अचलां श्रियमाप्नोति स वाग्मी जायते ध्रुवम् ॥१७॥

इति गौतमीय तन्त्रे श्रीगोपालस्तोत्रं समाप्तम्

जो मनुष्य इस प्रकार भगवान् कृष्ण का ध्यान करता हुआ तीनों सन्ध्याओं में भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करता है, उसपर प्रसन्न होकर गोपाल उसे अभीष्ट वर प्रदान करते हैं। वह शासकों का प्रिय होकर सबका प्रियपात्र बनता है। लक्ष्मी को प्राप्त करता है। वह श्रेष्ठ वक्ता होता है। इसमें सन्देह नहीं है ।।१६-१७।।

◆

श्रीकृष्णकवचम्

पुलस्त्य उवाच—

भगवन्सर्वधर्मज्ञ कवचं यत्प्रकाशितम् ।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कृपया कथय प्रभो ॥१॥

पूर्वपीठिका—पुलस्त्य ने कहा—हे भगवन्! आप सभी धर्मों के ज्ञाता हैं। आपने त्रैलोक्य मंगल नामक जो कवच प्रकाशित किया है, कृपया उसे मुझे बताइये।।१।।

सनत्कुमार उवाच—

शृणु विप्रेन्द्र वक्ष्यामि कवचं परमाद्भुतम् ।
नारायणेन कथितं कृपया ब्रह्मणे पुरा ॥२॥
ब्रह्मणा कथितं मह्यं परं स्नेहाद्वदामि ते ।
अतिगुह्यतरं तत्त्वं ब्रह्ममन्त्रौघविग्रहम् ॥३॥

सनत्कुमार ने कहा—हे विप्रेन्द्र! उस अति विलक्षण कवच को सुनिये। प्राचीन काल में नारायण ने कृपापूर्वक इसे ब्रह्मा को बताया था। ब्रह्मा ने मुझे बताया, उसी को स्नेहवश तुम्हें बता रहा हूँ। यह अत्यन्त गुप्त तत्त्व है और ब्रह्ममन्त्रसमूहस्वरूप है।।२-३।।

यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा सृष्टिं वितनुते ध्रुवम् ।
यद्धृत्वा पठनात्पाति महालक्ष्मीर्जगत्त्रयम् ॥४॥
पठनाद्धारणाच्छम्भुः संहर्ता सर्वतत्त्ववित् ।
त्रैलोक्यजननी दुर्गा महिषादिमहासुरान् ॥५॥
वरदृप्तान् जघानैव पठनाद्धारणाद्यतः ।
एवमिन्द्रादयः सर्वे सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ॥६॥

इस त्रैलोक्यमंगल कवच को धारण एवं पाठ कर ही ब्रह्मा सृष्टि का विस्तार करने में समर्थ होते हैं तथा महालक्ष्मी जगत् का पालन करती हैं। इसका पाठ और धारण करके सब तत्त्वों के ज्ञाता शम्भु जगत् का संहार करते हैं।

तीनों लोकों की माता दुर्गा ने इसी को पाठ-धारण करके वरप्राप्ति से घमंडी महिष आदि घोर राक्षसों को मार डाला था, जिससे कि इन्द्रादि समस्त देवों ने सकल ऐश्वर्य प्राप्त किया था।।४-६।।

इदं कवचमत्यन्तं गुप्तं कुत्रापि नो वदेत् ।
शिष्याय भक्तियुक्ताय साधकाय प्रकाशयेत् ॥७॥
शठाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ।
त्रैलोक्यमङ्गलस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः ॥८॥

यह कवच अति गुह्य है। किसी को भी इसे नहीं बताना चाहिये। केवल भक्तियुक्त साधक शिष्य को ही बताना चाहिये। शठ अथवा दूसरे के शिष्यों को इसे प्रदान करने से इसका ज्ञाता मृत्यु को प्राप्त करता है।।७-८।।

ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो नारायणः स्वयम् ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥९॥

विनियोग—इस त्रैलोक्यमंगल कवच के ऋषि प्रजापति, छन्द गायत्री, देवता स्वयं नारायण और विनियोग का हेतु धर्मार्थकाममोक्ष है।।९।।

प्रणवो मे शिरः पातु नमो नारायणाय च ।
भालं मे नेत्रयुगलमष्टार्णो भुक्तिमुक्तिदः ॥१०॥
क्लीं पायाच्छ्रोत्रयुग्मं चैकाक्षरसर्वमोहनः ।
क्लीं कृष्णाय सदा घ्राणं गोविन्दायेति जिह्विकाम् ॥११॥
गोपीजनपदं वल्लभाय स्वाहाऽऽननं मम ।
अष्टादशाक्षरो महामन्त्रः कण्ठं पातु दशाक्षरः ॥१२॥

कवच—ॐ मेरे शिर की रक्षा करे। नमो नारायणाय मस्तक की रक्षा करे।

भोगमोक्षदाता अष्टाक्षर ॐ नमो नारायणाय दोनों नेत्रों की रक्षा करे।

सबको मुग्ध करने वाला क्लीं दोनों कानों की रक्षा करे। क्लीं कृष्णाय नाक की, गोविन्दाय जीभ की, गोपीजनवल्ल्भाय स्वाहा मुख की तथा आठ और दस कुल अट्ठारह अक्षरों का महामन्त्र—क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा मेरे कण्ठ की रक्षा करे।।१०-१२।।

गोपीजनपदं वल्लभाय स्वाहा भुजद्वयम् ।
क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गाय नमः स्कन्धौ दशाक्षरः ॥१३॥
क्लीं कृष्णः क्लीं करौ पायात् क्लीं कृष्णायाङ्गजोऽवतु ।
हृदयं भुवनेशानी क्लीं कृष्णाय स्तनौ मम ॥१४॥

गोपीजनवल्लभाय स्वाहा दोनों भुजाओं की, दशाक्षर क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलांगाय नमः मेरे दोनों कन्धों की रक्षा करे। क्लीं कृष्ण क्लीं दोनों हाथों की रक्षा करे। क्लीं कृष्णाय क्लीं हृदय की, ह्रीं क्लीं कृष्णाय क्लीं मेरे दोनों स्तनों की रक्षा करे।।१३-१४।।

गोपालायाग्निजायान्तं कुक्षियुग्मं सदाऽवतु ।
क्लीं कृष्णाय सदा पातु पार्श्वयुग्मं मनूत्तमः ॥१५॥
कृष्णगोविन्दकौ पातु स्मेराद्यो ङेयुतो मनुः ।
अष्टाक्षरः पातु नाभिं कृष्णेति द्व्यक्षरोऽवतु ॥१६॥
पृष्ठं क्लीं कृष्णकङ्कालं क्लीं कृष्णाय द्विठान्तकः ।

गोपालाय स्वाहा दोनों कोखों की और क्लीं कृष्णाय दोनों पार्श्वों की रक्षा करे। क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय यह आठ वर्णों का मन्त्र मेरी नाभि की रक्षा करे।

दो वर्ण का मन्त्र कृष्ण मेरी पीठ की रक्षा करे। क्लीं कृष्ण मेरे अस्थिपंजर की रक्षा करे।।१५-१६।।

सक्थिनी सततं पातु श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णठद्वयम् ॥१७॥
ऊरू सप्ताक्षरः पायात्त्रयोदशाक्षरोऽवतु ।
श्रीं ह्रीं क्लीं पदतो गोपीजनवल्लभपदं ततः ॥१८॥
भाय स्वाहेति पायुं वै क्लीं ह्रीं श्रीं स दशार्णकः ।
जानुनी च सदा पातु ह्रीं श्रीं क्लीं च दशाक्षरः ॥१९॥

क्लीं कृष्णाय स्वाहा मेरे दोनों सक्थियों की एवं सप्ताक्षर श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्ण स्वाहा मेरे दोनों ऊरुओं की रक्षा करे। तेरह अक्षरों का मन्त्र श्रीं ह्रीं क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा मेरे गुदा की रक्षा करे। क्लीं ह्रीं श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा मेरे दोनों घुटनों की रक्षा करे।।१७-१९।।

त्रयोदशाक्षरः पातु जङ्घे चक्राद्युदायुधः ।
अष्टादशाक्षरो ह्रीं-श्रीं-पूर्वको विंशदर्णकः ॥२०॥
सर्वाङ्गं मे सदा पातु द्वारकानायको बली ।
नमो भगवते पश्चाद्वासुदेवाय तत्परम् ॥२१॥
ताराद्यो द्वादशार्णोऽयं प्राच्यां मां सर्वदाऽवतु ।

ह्रीं श्रीं क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा तेरह अक्षरों का मन्त्र चक्रादि अस्त्रधारी कृष्ण के समान मेरी दोनों जांघों की रक्षा करे। अट्ठारह अक्षरों के पूर्व ह्रीं श्रीं जुड़कर बना बीस अक्षरों का मन्त्र ह्रीं श्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा बलवान द्वारकाधीश के समान मेरे सर्वांगों की रक्षा करे। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय द्वादशाक्षर मन्त्र पूर्व दिशा में मेरी रक्षा सब प्रकार से करे।।२०-२१।।

श्रींह्रींक्लीं च दशार्णस्तु क्लींह्रींश्रीं षोडशार्णकः ॥२२॥
गदाद्युदायुधो विष्णुर्मामग्नेर्दिशि रक्षतु ।
ह्रीं श्रीं दशाक्षरो मन्त्रो दक्षिणे मां सदाऽवतु ॥२३॥
तारो नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय च ।
स्वाहेति षोडशार्णोऽयं नैर्ऋत्यां दिशि रक्षतु ॥२४॥

श्रीं ह्रीं क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा क्लीं ह्रीं श्रीं षोड़शाक्षर मन्त्र गदा-चक्रधारी विष्णु के समान अग्निकोण में मेरी रक्षा करे। ह्रीं श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा मेरी रक्षा दक्षिण में करे। ॐ नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय स्वाहा—यह सोलह अक्षरों का मन्त्र नैर्ऋत्य दिशा में रक्षा करे।।२२-२४।।

क्लीं हृषीकपदेशाय नमो मां वरुणोऽवतु ।
अष्टादशार्णः कामान्तो वायव्ये मां सदाऽवतु ॥२५॥
श्रीं मायाकामकृष्णाय गोविन्दाय द्विठो मनुः ।
द्वादशार्णात्मको विष्णुरुत्तरे मां सदाऽवतु ॥२६॥

क्लीं हृषीकेशाय नमः पश्चिम में मेरी रक्षा करे। क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा मेरी रक्षा वायव्य कोण में करे। श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय स्वाहा द्वादशाक्षर मन्त्र विष्णु के समान मेरी रक्षा उत्तर में करे।।२५-२६।।

वाग्भवं कामकृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय ततः परम् ।
श्रीं गोपीजनवल्लभान्ते भाय स्वाहा करौ ततः ॥२७॥
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो मामैशान्ये सदाऽवतु ।
कालियस्य फणामध्ये दिव्यं नृत्यं करोति तम् ॥२८॥

ऐं क्लीं कृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय श्रीगोपीजनवल्लभाय स्वाहा सौ:—यह बाईस अक्षरों का मन्त्र मेरी रक्षा ईशान कोण में करे।

कालिय नाग के फणों के मध्य में खड़े होकर जो दिव्य नृत्य करते हैं, उन देवकीपुत्र नटराज विष्णु को मैं प्रणाम करता हूँ।।२७-२८।।

नमामि देवकीपुत्रं नृत्यराजानमच्युतम् ।
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रोऽप्यधो मां सर्वदाऽवतु ।।२९।।
कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि ।
तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयादेषा मां पातु चोर्ध्वतः ।।३०।।

बत्तीस अक्षरों का निम्न श्लोकात्मक मन्त्र मेरी रक्षा अधोदिशा में करे—

नमामि देवकीपुत्रं नृत्यराजानमच्युतम्।
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रोऽप्यधो मां सर्वदाऽवतु।।

यह कृष्ण गायत्री मेरी रक्षा ऊर्ध्व देश में करे—कामदेवाय विद्महे पुष्पवाणाय धीमहि तन्नोऽनंग: प्रचोदयात्।।२९-३०।।

इति ते कथितं विप्र ब्रह्ममन्त्रौघविग्रहम् ।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम् ।।३१।।
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं नारायणमुखाच्छ्रुतम् ।
तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ।।३२।।

हे विप्र ! ब्रह्ममन्त्रसमूह ही जिसका स्वरूप है, उसी त्रैलोक्यमंगल नामक कवच को मैंने तुमसे कहा है। इस कवच को ब्रह्मा ने नारायण से सुना और ब्रह्मा से मैंने सुना। तुम्हारे स्नेह से मैंने तुझे बताया। इसे हर किसी को नहीं बताना चाहिये।।३१-३२।।

गुरुं प्रणम्य विधिवत्कवचं प्रपठेत्ततः ।
सकृद् द्विस्त्रिर्यथाज्ञानं स हि सर्वतपोमयः ।।३३।।
मन्त्रेषु सकलेष्वेव देशिको नात्र संशयः ।
शतमष्टोत्तरं चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः ।।३४।।

फलश्रुति—गुरु को प्रणाम करके विधिपूर्वक कवच का एक-दो-तीन बार पाठ करे। ऐसा करने वाला सभी तपस्याओं का फल प्राप्त करता है। वह साधक सभी मन्त्रों में पारंगत हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है। १०८ पाठ से इस कवच का पुरश्चरण होता है।।३३-३४।।

हवनादिदशांशेन कृत्वा तत्साधयेद् ध्रुवम् ।
यदि स्यात्सिद्धकवचो विष्णुरेव भवेत्स्वयम् ।।३५।।

मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य पुरश्चर्याविधानतः ।
स्पर्धामुद्धूय सततं लक्ष्मीर्वाणी वसेत्ततः ॥३६॥

नियमानुसार दशांश हवनादि कर कवच को सिद्ध करे। सिद्ध होने पर साधक साक्षात् विष्णु के समान हो जाता है। पुरश्चरण करने से साधक को मन्त्रसिद्धि मिलती है। लक्ष्मी और सरस्वती परस्पर द्वेष भूलकर उसके घर में निरन्तर रहती हैं।।३५-३६।।

पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा मूलेनैव पठेत्सकृत् ।
दशवर्षसहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥३७॥
भूर्जे विलिख्य गुलिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः ॥३८॥

मूल मन्त्र से आठ पुष्पाञ्जलियाँ देकर एक बार इस कवच का पाठ करे। इससे दश हजार वर्षों की पूजा का फल मिलता है। भोजपत्र पर इस कवच को लिखकर सोने के ताबीज में भरकर कण्ठ या दाँईं भुजा में धारण करे तो वह साक्षात् विष्णु हो जाता है।।३७-३८।।

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
महादानानि यान्यैव प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा ॥३९॥
कलां नार्हन्ति तान्येव सकृदुच्चारणात्ततः ।
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥४०॥

इस कवच का एक बार पाठ करने से जो फल होता है, उसके सोलहवें अंश के बराबर भी फल हजार अश्वमेध, सौ वाजपेय यज्ञ, महादान और सारी पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने से भी प्राप्त नहीं होता। इस कवच के प्रसाद से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है।।३९-४०।।

त्रैलोक्यं क्षोभयत्येव त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।
इदं कवचमज्ञात्वा यजेद्यः पुरुषोत्तमम् ॥४१॥
शतलक्षं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रस्तस्य सिद्ध्यति ॥४२॥

इति सनत्कुमारतन्त्रे त्रैलोक्यमङ्गलं नाम
श्रीकृष्णकवचं समाप्तम्

वह तीनों लोकों को क्षुब्ध कर उन पर विजय प्राप्त करता है। इस कवच को जाने विना जो पुरुषोत्तम विष्णु की उपासना करता है, वह सौ लाख जपने पर भी मन्त्र को सिद्ध नहीं कर पाता।।४१-४२।।

●

नृसिंहकवचम्

नारद उवाच—

इन्द्रादिदेववृन्देश इड्येश्वर जगत्पते ।
महाविष्णोर्नृसिंहाय कवचं ब्रूहि मे प्रभो ।
यस्य प्रपठनाद्विद्वांस्त्रैलोक्यविजयी भवेत् ॥१॥

पूर्वपीठिका—नारद ने कहा—इन्द्रादि देववृन्द के ईश्वर इड्येश्वर जगत्पति महाविष्णु नृसिंह के कवच को हे प्रभो! बताइये, जिसका पाठ करके विद्वान् त्रिलोकविजयी होता है।।१।।

ब्रह्मोवाच—

शृणु नारद वक्ष्यामि पुत्रश्रेष्ठ तपोधन ।
कवचं नरसिंहस्य त्रैलोक्यविजयाभिधम् ॥२॥
यस्य प्रपठनाद्वाग्मी त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।
स्रष्टाहं जगतां वत्स पठनाद्धारणाद्यतः ॥३॥

ब्रह्मा ने कहा—हे पुत्रश्रेष्ठ तपोधन नारद! त्रैलोक्यविजय नामक नृसिंह के कवच को सुनाता हूँ, जिसके पाठ से साधक त्रिलोकविजयी वाग्मी हो जाता है। इसी कवच के पाठ से तथा इसे धारण करके मैं जगत् का स्रष्टा हूँ।।२-३।।

लक्ष्मीर्ज्जगत्त्रयं पाति संहर्ता च महेश्वरः ।
पठनाद्धारणाद्देवा बभूवुश्च दिगीश्वराः ॥४॥
ब्रह्ममन्त्रमयं वक्ष्ये भ्रान्तादिविनिवारकम् ।
यस्य प्रसादाद् दुर्वासास्त्रैलोक्यविजयी भवेत् ॥५॥
पठनाद्धारणाद्यस्य शास्ता च क्रोधभैरवः ।

इसी कवच के पाठ और धारण से लक्ष्मी तीनों लोकों का पालन करती हैं, महेश्वर संहार करते हैं और इन्द्रादि दिगीश्वर हैं।

यह कवच ब्रह्ममन्त्रमय है और भ्रान्तियों का विनाशक है। इसी के प्रसाद से दुर्वासा त्रैलोक्यविजयी हो गये। इसी के पाठ और धारण से क्रोधभैरव शास्ता हुए।।४-५।।

त्रैलोक्यविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः ।
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री नृसिंहो देवता विभुः ॥६॥

विनियोग—इस त्रैलोक्यविजय नामक नृसिंहकवच के ऋषि प्रजापति, छन्द गायत्री और सर्वेश्वर नृसिंह देवता हैं।।६।।

क्ष्रौं बीजं मे शिरः पातु चन्द्रवर्णो महामनुः ॥७॥

ॐ उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युर्मृत्युं नमाम्यहम् ॥८॥
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो मन्त्रराजः सुरद्रुमः ।
कण्ठं पातु ध्रुवं क्ष्रौं हृद्भगवते चक्षुषी मम ॥९॥

कवच—क्ष्रौं बीज मेरे शिर की रक्षा करे। चन्द्रप्रभा से युक्त बत्तीस अक्षरों निम्न का महामन्त्र, जो कि कल्पद्रुम सदृश है, मेरे कण्ठ की रक्षा करे—

ॐ उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युर्मृत्युं नमाम्यहम्।।

क्ष्रौं नमो भगवते मेरे आँखों की रक्षा करे।।७-९।।

नरसिंहाय च ज्वालामालिने पातु कर्णकम् ।
दीप्तदंष्ट्राय च तथाग्निनेत्राय च नासिकाम् ॥१०॥
सर्वरक्षोघ्नाय च तथा सर्वभूतहिताय च ।
सर्वज्वरविनाशाय दहदह पदद्वयम् ॥११॥
रक्षरक्ष वर्ममन्त्रः स्वाहा पातु मुखं मम ।
तारादिरामचन्द्राय नमः पातु हृदं मम ॥१२॥

नरसिंहाय ज्वालामालिने मेरे कानों की रक्षा करे। दीप्तदंष्ट्राय अग्निनेत्राय मेरे नाक की रक्षा करे। सर्वरक्षोघ्नाय च तथा सर्वभूतहिताय च।

सर्वज्वरविनाशाय दह दह रक्ष रक्ष हुं स्वाहा मेरे मुख की रक्षा करे। ॐ रामचन्द्राय नमः मेरे हृदय की रक्षा करे।।१०-१२।।

क्लीं पायात्पार्श्वयुग्मं च तारो नमः पदं ततः ।
नारायणाय नाभिं च आं ह्रीं क्रौं क्ष्रौं च हुं फट् ॥१३॥
षडक्षरः कटिं पातु ॐ नमो भगवते पदम् ।
वासुदेवाय च पृष्ठं क्लीं कृष्णाय ऊरुद्वयम् ॥१४॥

दोनों पार्श्वों की रक्षा क्लीं करे। ॐ नमो नारायणाय नाभि की रक्षा करे। आं ह्रीं क्रौं क्ष्रौं हुं फट् षडक्षर मन्त्र मेरे कमर की रक्षा करे। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय मेरे पीठ की रक्षा करे। क्लीं कृष्णाय दोनों ऊरुओं की रक्षा करे।।१३-१४।।

क्लीं कृष्णाय सदा पातु जानुनी च मनूत्तमः ।
क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गाय नमः पायात्पदद्वयम् ॥१५॥
क्ष्रौं नृसिंहाय क्ष्रौं च सर्वाङ्गे मे सदावऽतु ।
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम् ॥१६॥

क्लीं कृष्णाय सदा मेरे घुटनों की रक्षा करे। मन्त्रोत्तम क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलांगाय नम: दोनों पैरों की रक्षा करे। क्ष्रौं नृसिंहाय क्ष्रौं सर्वांगों की रक्षा करे। हे वत्स! यही सर्वमन्त्रौघविग्रह कवच है।।१५-१६।।

तव स्नेहान्मया ख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ।
गुरुपूजां विधायाथ गृह्णीयात्कवचं ततः ॥१७॥
सर्वपुण्ययुतो भूत्वा सर्वसिद्धियुतो भवेत् ।
शतमष्टोत्तरं चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः ॥१८॥

इसे तेरे स्नेहवश मैंने कहा है। इस प्रसिद्ध कवच को दूसरों को नहीं बताना चाहिये। गुरुपूजन करके इस कवच को ग्रहण करे। इससे साधक सभी पुण्यों से युक्त होकर सभी सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। एक सौ आठ पाठ से इसका पुरश्चरण होता है।।१७-१८।।

हवनादीन् दशांशेन कृत्वा साधकसत्तमः ।
ततस्तु सिद्धकवचः पुण्यात्मा मदनोपमः ॥१९॥
स्पर्द्धामुद्धूय भवने लक्ष्मीर्वाणी वसेत्ततः ।
पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा मूलेनैव पठेत्सकृत् ॥२०॥

दशांश हवन करना चाहिये। इस प्रकार कवच सिद्ध होने पर पुण्यात्मा साधक कामदेव के समान हो जाता है। परस्पर वैर भूल कर लक्ष्मी और सरस्वती उससे घर में निवास करती है। आठ पुष्पाञ्जलियाँ देकर कवच का पाठ करना चाहिये।।१९-२०।।

अपि वर्षसहस्राणां पूजायां फलमाप्नुयात् ।
भूर्जे विलिख्य गुटिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ॥२१॥
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ नरसिंहो भवेत्स्वयम् ।
योषिद्वामभुजे चैव पुरुषो दक्षिणे करे ॥२२॥

फलश्रुति—इसके एक पाठ से हजार वर्षों की पूजा का फल प्राप्त होता है। इस कवच को भोजपत्र पर लिखकर सोने की ताबीज में भरकर कण्ठ या दाँई बाँह में धारण करे तो साधक स्वयं नरसिंह हो जाता है। स्त्रियाँ बाँयें हाथ में और पुरुष दाहिने हाथ में कवच को धारण करें।।२१-२२।।

बिभृयात्कवचं पुण्यं सर्वसिद्धियुतो भवेत् ।
काकवन्ध्या च या नारी मृतवत्सा च या भवेत् ॥२३॥
जन्मवन्ध्या नष्टपुत्रा बहुपुत्रवती भवेत् ।
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥२४॥

इस कवच को धारण करने से साधक पुण्यवान होकर सभी सिद्धियों से युक्त होता

है। काकवन्ध्या, मृतवत्सा, जन्मवन्ध्या, नष्टपुत्र नारियाँ बहुपुत्रवती होती हैं। इसके प्रभाव से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है।।२३-२४।।

त्रैलोक्यं क्षोभयत्येवं त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।
भूतप्रेतपिशाचाश्च राक्षसा दानवाश्च ये ।।२५।।
तं दृष्ट्वा प्रपलायन्ते देशाद्देशान्तरं ध्रुवम् ।
यस्मिन्गृहे च कवचं ग्रामे वा यदि तिष्ठति ।
तद्देशं तु परित्यज्य प्रयान्ति ह्यतिदूरतः ।।२६।।

इति ब्रह्मसंहितायां त्रैलोक्यमंगलं नाम
नृसिंहकवचं समाप्तम्

वह तीनों लोकों को क्षुब्ध करने की क्षमता प्राप्त करता है। तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करता है। भूत-प्रेत-पिशाच-राक्षस-दानव उसे देखते ही दूर भाग जाते हैं। जिस घर में या ग्राम में यह कवच रहता है, उसका त्याग करके भूत-प्रेत-पिशाचादि दूर भाग जाते हैं।।२५-२६।।

●

शिवस्तोत्रम्

धरापोऽग्निमरुद्व्योममखेशेन्द्वर्कमूर्तये ।
सर्वभूतान्तरस्थाय शङ्कराय नमो नमः ।।१।।
श्रुत्यन्तःकृतवासाय श्रुतये श्रुतिजन्मने ।
अतीन्द्रियाय महसे शाश्वताय नमो नमः ।।२।।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, यजमान, चन्द्र, सूर्य—इन आठ एवं सभी प्राणियों के हृदय में जो विद्यमान हैं, उन्हीं शंकर को बारम्बार प्रणाम है।

वेद में जिनका निवास है, जो साक्षात् वेद हैं, जिनके जन्म का विवरण केवल श्रुति में ही दिखायी देता है अर्थात् अन्य किसी में प्रत्यक्ष नहीं होता है, जो इन्द्रियों से अदृश्य, नित्य तेजस्वरूप हैं, उन्हीं शंकर को बारम्बार प्रणाम है।।१-२।।

स्थूलसूक्ष्मविभागाभ्यामनिर्देश्याय शम्भवे ।
भवाय भवसम्भूतदुःखहन्त्रे नमोऽस्तु ते ।।३।।
तर्कमार्गातिभूताय तपसां फलदायिने ।
चतुर्वर्गवदान्याय सर्वज्ञाय नमो नमः ।।४।।

जिन्हें स्थूल या सूक्ष्म रूपों में विभक्त करके निरूपित करना सम्भव नहीं है, जिनसे मंगललाभ होता है, सारा प्रपञ्च जिनसे निकला है, इसी से जिन्हें भव कहा जाता है, जो

संसार के दुःखों को दूर करते हैं, उन्हीं शंकर को प्रणाम है।

जो तर्कमार्ग के आदि हैं अर्थात् जिन्हें तर्क-वितर्क से प्राप्त नहीं किया जा सकता, जो तपस्या का फल देते हैं, लोगों को चतुर्वर्ग देते हैं, उन्हीं सर्वज्ञ शिव को बारम्बार प्रणाम है।।३-४।।

आदिमध्यान्तशून्याय निरस्ताशेषभीतये ।
योगिध्येयाय महते निर्गुणाय नमो नमः ॥५॥
विश्वात्मनेऽविचिन्त्याय विलसच्चन्द्रमौलये ।
कन्दर्पदर्पनाशाय कालहन्त्रे नमोऽस्तु ते ॥६॥

जो आदि, मध्य और अन्तरहित हैं, जो समस्त भयों को दूर करते हैं, जिनका ध्यान योगीजन करते हैं, जो तीनों गुणों से परे हैं, उन्हीं महापुरुष शंकर को बारम्बर प्रणाम है।

जो सभी प्राणियों की आत्मा हैं, जिन्हें ध्यान द्वारा पाना कठिन है, जिनके मस्तक पर चन्द्रमा मुकुट के समान सुशोभित है, जिन्होंने कामदेव के गर्व को चूर-चूर कर दिया है, उन्हीं मृत्युंजय शिव को प्रणाम है।।५-६।।

विषाशनाय विहरद्वृषस्कन्धमुपेयुषे ।
सरिद्दामसमाबद्धकपर्दाय नमो नमः ॥७॥
शुद्धाय शुद्धभावाय शुद्धानामन्तरात्मने ।
पुरान्तकाय पूर्णाय पुण्यनाम्ने नमो नमः ॥८॥

अमृतमन्थन के समय निकले विष का भक्षण करके जिन्होंने विश्व की रक्षा की, जो वृष के कन्धे पर बैठकर विहार करते हैं, जिनके जटाजूट में गंगा विराजमान हैं, उन्हीं शंकर को बारम्बार प्रणाम है।

जो शुद्ध परमात्मा हैं, जिनका भाव शुद्ध है, जो निष्पाप लोगों की अन्तरात्मा में विद्यमान हैं, जिन्होंने त्रिपुरासुर का नाश किया; उन्हीं पुण्य नाम वाले पूर्णब्रह्म शंकर को बारम्बार प्रणाम है।।७-८।।

भक्ताय निजभक्तानां भुक्तिमुक्तिप्रदायिने ।
विवाससेऽधिवासाय विश्वशास्त्रे नमो नमः ॥९॥
त्रिमूर्त्तिमूलभूताय त्रिनेत्राय नमो नमः ।
त्रिधाम्ना धामरूपाय जन्मघ्नाय नमो नमः ॥१०॥

जो अपने भक्तों के प्रति प्रसन्न रहते हैं, जो भोग और मोक्ष प्रदान करते हैं, जो दिगम्बर हैं, जिनका निवासस्थान निश्चित नहीं है, उन्हीं विश्वशासक शंकर को बारम्बार प्रणाम है।

जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश त्रिमूर्ति के मूल कारण हैं, जिनके तीन नेत्र हैं, जिनसे लोगों का मंगल होता है। स्वर्ग, मर्त्य, पाताल लोकों के जो आश्रय हैं, जो त्रिभुवनमय हैं, जो मोक्ष देकर पुनर्जन्म का निवारण करते हैं; उन्हीं शंकर को बारम्बार प्रणाम है।।९-१०।।

देवासुरशिरोरत्नकिरणारुणितांघ्रये ।
कान्ताय निजकान्तायै दत्तार्द्धाय नमो नमः ।।११।।
स्तोत्रेणानेन पूजायां प्रीणयेज्जगतः पतिम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं भक्त्या सर्वज्ञं परमेश्वरम् ।।१२।।
तस्यासाध्यं त्रिभुवने न किञ्चिदपि वर्त्तते ।
ऐहकं किं फलं तत्र मुक्तिरेव करे स्थिता ।।१३।।

इति शिवस्तोत्रं समाप्तम्

जिनके दोनों चरण देवों और दैत्यों के शिरोरत्नों की किरणों से रंजित हैं, अपनी पत्नी को जिन्होंने अपना आधा शरीर दे दिया; उन्हीं सुन्दर स्वरूप वाले शंकर को बारम्बार प्रणाम है।

जो मनुष्य पूजा के समय भुक्ति-मुक्तिदायक सर्वज्ञ जगत्पति परमेश्वर को इस स्तोत्रपाठ से प्रसन्न करते हैं, उन्हें इस त्रिलोकी में कोई कार्य असाध्य नहीं रहता। सांसारिक फल उनके लिये तुच्छ हो जाते हैं। मोक्ष उनके हाथों में रहता है।।११-१३।।

●

शिवकवचम्

श्रीदेव्युवाच—

भगवन् देवदेवेश सर्वाम्नायप्रपूजित ।
सर्वं मे कथितं देव कवचं न प्रकाशितम् ।।१।।
प्रासादाख्यस्य मन्त्रस्य कवचं मे प्रकाशय ।
सर्वरक्षाकरं देव यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ।।२।।

पूर्वपीठिका—श्रीदेवी ने कहा कि हे भगवन्! देवदेवेश! सभी आम्नायों में पूजित! आपने मुझसे सब कुछ कहा; किन्तु कवच को प्रकट नहीं किया। यदि मुझसे आपको स्नेह है तो प्रासाद 'ह्रौं' नामक मन्त्र के सर्वरक्षाकारक कवच मुझे बताइये।।१-२।।

श्रीभगवानुवाच—

प्रासादमन्त्रकवचस्य वामदेवऋषिः स्मृतः ।
पंक्तिश्छन्दश्च देवेशि सदाशिवोऽत्र देवता ।
साधकाभीष्टसिद्धौ च विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।।३।।

विनियोग—श्री भगवान् ने कहा कि हे देवेशि! इस प्रासादमन्त्र कवच के ऋषि वामदेव, छन्द पंक्ति एवं देवता सदाशिव है तथा साधक के अभीष्ट-साधन हेतु इसका विनियोग किया जाता है।।३।।

ॐ शिरो मे सर्वदा पातु प्रासादाख्यः सदाशिवः ॥४॥
षडक्षरस्वरूपो मे वदनन्तु महेश्वरः ।
अष्टाक्षरः शक्तिरुद्धश्चक्षुषी मे सदावतु ॥५॥
पञ्चाक्षरात्मा भगवान् भुजौ मे परिरक्षतु ।
मृत्युञ्जयस्त्रिबीजात्मा आयु रक्षतु मे सदा ॥६॥

प्रासाद ह्रौं नामक सदाशिव मेरे शिर की और ॐ नमः शिवाय षडक्षर मेरे मुख की रक्षा करे। ह्रीं ॐ नमः शिवाय ह्रीं मेरे दोनों नेत्रों की रक्षा करे। नमः शिवायरूपी भगवान् दोनों भुजाओं की रक्षा करें। ॐ जूं सः त्रिबीजरूपी मृत्युंजय मेरी आयु की रक्षा करे।।४-६।।

वटमूलसमासीनो दक्षिणामूर्तिरव्ययः ।
सदा मां सर्वतः पातु षट्त्रिंशार्णस्वरूपधृक् ॥७॥
द्वाविंशार्णात्मको रुद्रः कुक्षिं मे परिरक्षतु ।
त्रिवर्णात्मा नीलकण्ठः कण्ठं रक्षतु सर्वदा ॥८॥

वटवृक्ष के नीचे बैंठे अव्यय दक्षिणामूर्ति जो छत्तीस अक्षर मन्त्रस्वरूप हैं, सब ओर से मेरी सर्वदा रक्षा करें। दक्षिणामूर्ति के छत्तीस अक्षरों का मन्त्र है—ॐ ह्रीं दक्षिणामूर्तये तुभ्यं वटमूलनिवासिने ध्यानैकनिरतांगाय नमो रुद्राय शम्भवे ह्रीं ॐ।

बाईस अक्षरों का दक्षिणामूर्ति मन्त्र—ॐ नमो भगवते दक्षिणामूर्तये मह्यं मेधां प्रयच्छ स्वाहा मेरी कुक्षि की रक्षा करे। त्रिवर्णात्मक प्रों ह्रीं ठः नीलकण्ठ सर्वदा मेरे कण्ठ की रक्षा करे।।७-८।।

चिन्तामणिर्बीजरूपो अर्द्धनारीश्वरो हरः ।
सदा रक्षतु मे गुह्यं सर्वसम्पत्प्रदायकः ॥९॥
एकाक्षरस्वरूपात्मा कूटरूपी महेश्वरः ।
मार्तण्डभैरवो नित्यं पादौ मे परिरक्षतु ॥१०॥

चिन्तामणि बीजस्वरूप अर्द्धनारीश्वर भगवान् महादेव सदा मेरे गुह्यदेश की रक्षा करें। सभी सम्पत्तियों को देने वाले ॐ रूपी एकाक्षर स्वरूप वाले महेश्वर मार्तण्डभैरव मेरे दोनों पैरों की रक्षा नित्य करें।।९-१०।।

तुम्बुराख्यो महाबीजस्वरूपस्त्रिपुरान्तकः ।
सदा मां रणभूमौ च रक्षतु त्रिदशाधिपः ॥११॥

ऊद्ध्र्वमूर्द्धानमीशानो मम रक्षतु सर्वदा ।
दक्षिणस्यां तत्पुरुषोऽव्यान्मे गिरिविनायकः ।।१२।।

तुम्बरु नामक महाबीज क्षरूपी सुराधिपति त्रिपुरान्तक युद्धक्षेत्र में सदैव मेरी रक्षा करें। त्रिदशाधिप ईशान मेरे ऊर्ध्व मस्तक की रक्षा सर्वदा करें। दक्षिण में गिरिविनायक तत्पुरुष मेरी रक्षा करें।।११-१२।।

अघोराख्यो महादेवः पूर्वस्यां परिरक्षतु ।
महादेवः पश्चिमस्यां सदा मे परिरक्षतु ।
उत्तरस्यां सदा पातु सद्योजातस्वरूपधृक् ।।१३।।

अघोर नामक महादेव पूर्व में रक्षा करें। वामदेव पश्चिम में रक्षा करें। सद्योजात उत्तर में मेरी रक्षा करें।।१३।।

इत्थं रक्षाकरं देवि कवचं देवदुर्लभम् ।
प्रातःकाले पठेद्यस्तु सोऽभीष्टं फलमाप्नुयात् ।।१४।।
पूजाकाले पठेद्यस्तु कवचं साधकोत्तमः ।
कीर्तिश्रीकान्तिमेधायुर्वृद्धितो भवति ध्रुवम् ।।१५।।

फलश्रुति—हे देवि! इस रक्षाकारक देवदुर्लभ कवच का पाठ जो प्रातःकाल करता है, वह अभीष्ट फल को प्राप्त करता है।

जो उत्तम साधक पूजा के समय इस कवच का पाठ करता है, उसकी कीर्ति, श्री, कान्ति, मेधा और आयु की वृद्धि निश्चित रूप से होती है।।१४-१५।।

कण्ठे यो धारयेदेतत्कवचं मत्स्वरूपकम् ।
युद्धे विजयमाप्नोति द्यूते वादे च साधकः ।।१६।।
कवचं धारयेद्यस्तु साधको दक्षिणे भुजे ।
देवा मनुष्या गन्धर्वा वश्यास्तस्य न संशयः ।।१७।।

मेरे स्वरूप वाले इस कवच को जो कण्ठ में धारण करता है, वह साधक युद्धक्षेत्र में, द्यूतक्रीड़ा में और वाद-विवाद में विजयी होता है। जो साधक इस कवच को दाहिनी भुजा में धारण करता है, उसके वश में सभी मनुष्य, देवता और गन्धर्व हो जाते हैं; इसमें सन्देह नहीं है।।१६-१७।।

कवचं शिरसा यस्तु धारयेद्यतमानसः ।
करस्थास्तस्य देवेशि अणिमाद्यष्टसिद्धयः ।।१८।।
भूर्जपत्रे त्विमां विद्यां शुक्लपट्टेन वेष्टिताम् ।
रजतोदरसंविष्टां कृत्वा च धारयेत्सुधीः ।।१९।।

सम्प्राप्य महतीं लक्ष्मीमन्ते मद्देहरूपधृक् ।
यस्मै कस्मै न दातव्यं न प्रकाश्यं कदाचन ॥२०॥

जो इस कवच को संयत मन से अपने शिर पर धारण करता है, हे देवेशि ! अणिमा आदि आठो सिद्धियाँ उसके हाथ में आ जाती हैं।

बुद्धिमान व्यक्ति भोजपत्र पर इस कवच को लिखकर श्वेत पट्टवस्त्र में लपेटे और चाँदी के ताबीज में भरकर धारण करे। इस कवच को धारण करने वाला महती लक्ष्मी से सम्पन्न होकर अन्त में मेरे जैसा शरीर और रूप प्राप्त करता है। इस कवच को जिस किसी को नहीं देना चाहिये। इसे कभी प्रकट न करे।।१८-२०।।

शिष्याय भक्तियुक्ताय साधकाय प्रकाशयेत् ।
अन्यथा सिद्धिहानिः स्यात् सत्यमेतन्मनोरमे ॥२१॥
तव स्नेहान् महादेवि कथितं कवचं शुभम् ।
न देयं कस्यचित् भद्रे यदीच्छेदात्मनो हितम् ॥२२॥

भक्तियुक्त शिष्य साधक को ही यह कवच बतलाये; अन्यथा हे मनोरमे! सिद्धि नष्ट हो जाती है, यह सत्य है। हे महादेवि! तुम्हारे स्नेहवश इस कल्याणकारी कवच को मैंने कहा है। यदि अपने हित की कामना हो तो इसे किसी को न दें।।२१-२२।।

योऽर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैः कवचं मन्मुखोदितम् ।
तेनार्चिता महादेवि सर्वे देवा न संशयः ॥२३॥

इति भैरवतन्त्रे श्रीसदाशिवकवचं समाप्तम्

जो व्यक्ति मेरे मुख से निकले इस कवच का पूजन गन्ध-पुष्पादि से करता है, उसके द्वारा हे महादेवि! उस पूजक को सभी देवताओं की पूजा का फल मिल जाता है। इसमें सन्देह नहीं है।।२३।।

●

वटुकभैरवस्तोत्रम्

कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुम् ।
शङ्करं परिपप्रच्छ पार्वती परमेश्वरम् ॥१॥

श्रीपार्वत्युवाच—

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रागमादिषु ।
आपदुद्धारणं मन्त्रं सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम् ॥२॥

कैलासशिखर पर विराजमान देवदेव जगद्गुरु शंकर परमेश्वर से पार्वती ने पूछा—

भगवन्! आप सभी शास्त्र-आगमादि के सभी धर्मों के ज्ञाता हैं। मनुष्यों के लिये आपदुद्धारण मन्त्र सर्वसिद्धिदायक है।।१-२।।

सर्वेषाञ्चैव भूतानां हितार्थं वाञ्छितं मया ।
विशेषतस्तु राज्ञां वै शान्तिपुष्टिप्रसाधनम् ।।३।।
अङ्गन्यास - करन्यास - बीजन्याससमन्वितम् ।
वक्तुमर्हसि देवेश मम हर्षविवर्द्धनम् ।।४।।

सभी भूतों के हित की कामना से उसे जानने की मेरी इच्छा है। विशेषतः राजाओं के लिये यह शान्ति-पुष्टि का साधन है। अंगन्यास, करन्यास, बीजन्यास से समन्वित इसका वर्णन कीजिये। यह मेरे लिये हर्षप्रदायक होगा।।३-४।।

श्रीभगवानुवाच—

शृणु देवि महामन्त्रमापदुद्धारहेतुकम् ।
सर्वदुःखप्रशमनं सर्वशत्रुनिवर्हणम् ।।५।।
अपस्मारादिरोगाणां ज्वरादीनां विशेषतः ।
नाशनं स्मृतिमात्रेण मन्त्रराजमिमं प्रिये ।।६।।

श्री महादेव ने कहा कि हे देवि! आपदुद्धार के हेतु महामन्त्र को सुनिये। यह सभी दुःखों का प्रशामक और शत्रुओं का विनाशक है। इस मन्त्रराज के स्मरणमात्र से मिरगी आदि रोग, ज्वरादि विशेषकर विनष्ट हो जाते हैं ।।५-६।।

ग्रहराजभयानाञ्च नाशनं सुखवर्द्धनम् ।
स्नेहाद्वक्ष्यामि ते मन्त्रं सर्वसारमिदं प्रिये ।।७।।
सर्वकामार्थदं मन्त्रं राज्यभोगप्रदं नृणाम् ।
आपदुद्धारणं मन्त्रं वक्ष्यामीति विशेषतः ।।८।।

ग्रहों की भीतियों का नाश होकर सुख की वृद्धि होती है। तुम्हारे स्नेहवश सर्वसार इस मन्त्र को बतलाता हूँ। मनुष्यों को इस मन्त्र से सभी काम और अर्थ, राज्य और भोग प्राप्त होता है। अब आपदुद्धार मन्त्र को विशेष रूप से कहता हूँ।।७-८।।

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य देवीप्रणवमुद्धरेत् ।
वटुकायेति वै पश्चादापदुद्धरणाय च ।।९।।
कुरुद्वयं ततः पश्चाद्वटुकाय पुनः क्षिपेत् ।
देवीप्रणवमुद्धृत्य मन्त्रोद्धारमिमं प्रिये ।।१०।।
मन्त्रोद्धारमिमं देवि त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम् ।
अप्रकाश्यमिमं मन्त्रं सर्वशक्तिसमन्वितम् ।।११।।

पहले प्रणव ॐ, तब देवीप्रणव ह्रीं, तब वटुकाय, तव आपदुद्धरणाय, तब कुरु कुरु, तब वटुकाय, तब ह्रीं से मन्त्र बनता है, वह है—ॐ ह्रीं वटुकाय आपदुद्धरणं कुरु कुरु वटुकाय ह्रीं।

इक्कीस अक्षरों का यह मन्त्र है। यह मन्त्रोद्धार त्रैलोक्यदुर्लभ है। सर्वशक्तिसमन्वित यह मन्त्र अप्रकाश्य है।।९-११।।

स्मरणादेव मन्त्रस्य भूतप्रेतपिशाचका: ।
विद्रवन्ति भयार्ता वै कलौ रुद्रादिव प्रजा: ।।१२।।
पठेद्वा पाठयेद्वापि पूजयेद्वापि पुस्तकम् ।
नाग्निचौरभयं वापि ग्रहराजभयं तथा ।।१३।।

इस मन्त्र के स्मरणमात्र से भूत-प्रेत-पिशाच भयभीत होकर भाग जाते हैं। कलियुग में यह मन्त्र मनुष्यों के लिये रुद्र के समान है।

साधक यदि स्वयं पाठ करे या दूसरे से पाठ करावे या पुस्तक की पूजा करे तो उसे अग्निभय, चोरों का भय या ग्रहराज का भय नहीं होता है।।१२-१३।।

न च मारीभयस्तस्य सर्वत्र सुखवान् भवेत् ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं पुत्रपौत्रादिसम्पद: ।
भवन्ति सततं तस्य पुस्तकस्यापि पूजनात् ।।१४।।

महामारीभय एवं सभी प्रकार की भीतियों से उसे छुटकारा मिलता है एवं सुख प्राप्त होता है। पुस्तक के पूजन से ही आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, पुत्र, पौत्र, सम्पत्ति उसे सदैव प्राप्त होते हैं।।१४।।

श्रीपार्वत्युवाच—

य एष भैरवो नाम आपदुद्धारको मत: ।
त्वया च कथितो देव भैरव: कल्प उत्तम: ।।१५।।
तस्य नामसहस्राणि अयुतान्यर्बुदानि च ।
सारमुद्धृत्य तेषां वै नामाष्टशतकं वद ।।१६।।

श्री पार्वती ने कहा—यह आपदुद्धार भैरव का मत है। आपने उत्तम भैरवकल्प का वर्णन पहले किया है। उसके नाम, एक हजार, दश हजार और अरबों की संख्या में हैं। सबों के सारस्वरूप आप एक सौ आठ नामों को बतलाइये।।१५-१६।।

श्रीभगवानुवाच—

यस्तु सङ्कीर्तयेदेतत्सर्वदुष्टनिवर्हणम् ।
सर्वान् कामनवाप्नोति साधक: सिद्धिमेव च ।।१७।।

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि भैरवस्य महात्मनः ।
आपदुद्धारकस्येह नामाष्टशतमुत्तमम् ।।१८।।
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वापद्विनिवारकम् ।
सर्वकामार्थदं देवि साधकानां सुखावहम् ।।१९।।

श्री महादेव ने कहा—जिसके संकीर्तन से सभी दुष्ट ग्रहों की शान्ति होती है, साधकों की सभी इच्छाएँ पूरी होती हैं, सभी सिद्धियाँ मिलती हैं, उन महात्मन् आपदुद्धारक भैरव के उत्तम एक सौ आठ नामों को मैं बतलाता हूँ, आप सुनिये।

ये नाम सभी पापों के विनाशक, पुण्यप्रदायक, सभी आपदाओं के निवारक, सभी कामार्थप्रदायक एवं साधकों के लिये सुखदायक हैं।।१७-१९।।

देहाङ्गन्यासनञ्चैव पूर्वं कुर्यात्समाहितः ।
भैरवं मूर्ध्नि विन्यस्य ललाटे भीमदर्शनम् ।।२०।।
अक्ष्णोर्भूताश्रयं न्यस्य वदने तीक्ष्णदर्शनम् ।
क्षेत्रपं कर्णयोर्मध्ये क्षेत्रपालं हृदि न्यसेत् ।।२१।।
क्षेत्राख्यं नाभिदेशे तु कट्यां सर्वौघनाशनम् ।
त्रिनेत्रमूर्वोर्विन्यस्य जङ्घयो रक्तपाणिकम् ।
पादयोर्देवदेवेशं सर्वाङ्गे वटुकं न्यसेत् ।।२२।।

एवं न्यासविधिं कृत्वा तदनन्तरमुत्तमम् ।
पठेदेकमनाः स्तोत्रं नामाष्टशतसंज्ञकम् ।।२३।।

इन नामों के पाठ के पहले अंगन्यास, करन्यास करना चाहिये। मूर्धा में भैरव का न्यास, ललाट में भीमदर्शन का, आँखों में भूताश्रय का, मुख में तीक्ष्ण दर्शन का, कानों में क्षेत्रप का, हृदय में क्षेत्रपाल का न्यास करे। क्षेत्राख्य का नाभि में, सर्वौघनाशन का कटि में, त्रिनेत्र का ऊरुओं में, रक्तपाणि का जाँघों में, पैरों में देवदेवेश का और सभी अंगों में वटुक का न्यास करे।

इस प्रकार न्यास करके समाहित मन से अष्टोत्तर शतनाम का पाठ करे।।२०-२३।।

नामाष्टशतकस्यापि छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
बृहदारण्यको नाम ऋषिश्च परिकीर्त्तितः ।।२४।।
देवता कथिता चैतत्सद्भिर्वटुकभैरवः ।
सर्वकामार्थसिद्ध्यर्थे विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।।२५।।

विनियोग—इस अष्टोत्तर शतनाम का छन्द अनुष्टप्, ऋषि बृहदारण्यक और देवता वटुकभैरव हैं। सर्वकामार्थसिद्ध्यर्थ इसका विनियोग किया जाता है।।२३-२५।।

भैरवो भूतनाथश्च भूतात्मा भूतभावनः ।
क्षेत्रदः क्षेत्रपालश्च क्षेत्रज्ञः क्षत्रियो विराट् ।।२६।।
श्मशानवासी मांसाशी खर्पराशी मखान्तकृत् ।
रक्तपः प्राणपः सिद्धः सिद्धिदः सिद्धसेवितः ।।२७।।
करालः कालशमनः कलाकाष्ठातनुः कविः ।
त्रिनेत्रो बहुनेत्रश्च तथा पिङ्गललोचनः ।।२८।।
शूलपाणिः खड्गपाणिः कङ्काली धूम्रलोचनः ।
अभीरुर्भैरवो भीमो भूतपो योगिनीपतिः ।।२९।।
धनदो धनहारी च धनदः प्रतिमानवान् ।
नागहारो नागकेशो व्योमकेशः कपालभृत् ।।३०।।
कालः कपालमाली च कमनीयः कलानिधिः ।
त्रिलोचनो ज्वलन्नेत्रस्त्रिशिखी च त्रिलोकपात् ।।३१।।
त्रिवृत्तनयनो डिम्भः शान्तः शान्तजनप्रियः ।
वटुको वटुकेशश्च खट्वाङ्गवरधारकः ।।३२।।
भूताध्यक्षः पशुपतिर्भिक्षुकः परिचारकः ।
धूर्तो दिगम्बरः शौरिर्हरिणः पाण्डुलोचनः ।।३३।।
प्रशान्तः शान्तिदः शुद्धः शङ्करः प्रियबान्धवः ।
अष्टमूर्त्तिर्निधीशश्च ज्ञानचक्षुस्तमोमयः ।।३४।।
अष्टाधारः सर्पयुक्तः शशी विषधरः शिवः ।
भूधरो भूधराधीशो भूपतिर्भूधरात्मकः ।।३५।।
कङ्कालधारी मुण्डी च नागयज्ञोपवीतवान् ।
जृम्भणो मोहनः स्तम्भी मारणः क्षोभणस्तथा ।।३६।।
शुद्धनीलाञ्जनप्रख्यदेहो मुण्डविभूषितः ।
बालभुग्बलिभूतात्मा कामी कामपराक्रमः ।।३७।।
सर्वापत्तारको दुर्गो दुष्टभूतनिषेवितः ।
काली कलानिधिः कान्तः कामिनीवशकृद्वशी ।
सर्वसिद्धिप्रदो वैद्यः प्रभविष्णुः प्रभाववान् ।
अष्टोत्तरशतं नाम भैरवस्य महात्मनः ।।३८।।

भैरव के अष्टेत्तर शत नाम—१. भैरव, २. भूतनाथ, ३. भूतात्मन्, ४. भूतभावन, ५. क्षेत्रज्ञ, ६. क्षेत्रपाल, ७. क्षेत्रद, ८. क्षत्रिय, ९. विराज, १०. श्मशानवासी, ११. मांसाशी, १२. खर्पराशी, १३. स्मरान्तक, १४. रक्तप, १५. पानप, १६. सिद्ध,

१७. सिद्धिद, १८. सिद्धसेवित, १९. कंकाल, २०. कालशमन, २१. कलाकाष्ठा, २२. कवि, २३. त्रिनेत्र, २४. बहुनेत्र, २५. पिंगललोचन, २६. शूलपाणि, २७. खड्गपाणि, २८. कंकाली, २९. धूम्रलोचन, ३०. अभीर, ३१. भैरवीनाथ, ३२. भूतप, ३३. योगिनीपति, ३४. धनद, ३५. अघहारी, ३६. धनवत्, ३७. प्रतिमान्, ३८. नागहार, ३९. नागपाश, ४०. व्योमकेश, ४१. कपालभृत्, ४२. काल, ४३. कपालमाली, ४४. कमनीय, ४५. कलानिधि, ४६. त्रिलोचन, ४७. ज्वलन्नेत्र, ४८. त्रिशिख, ४९. त्रिलोकप, ५०. त्रिनेत्रतनय, ५१. डिम्भशान्त, ५२. शान्तजनप्रिय, ५३. वटुक, ५४. बहुवेष, ५५. खट्वांगधारी, ५६. भूताध्यक्ष, ५७. पशुपति, ५८. भिक्षुक, ५९. परिचारक, ६०. धूर्त, ६१. दिगम्बर, ६२. शूर, ६३. हरिण, ६४. पाण्डुलोचन, ६५. प्रशान्त, ६६. शान्तिद, ६७. शुद्ध, ६८. शंकरप्रियबान्धव, ६९. अष्टमूर्ति, ७०. निधीश, ७१. ज्ञानचक्षु, ७२. तपोमय, ७३. अष्टाधार, ७४. षडाधार, ७५. सर्पयुक्त, ७६. शिखीसखा, ७७. भूधर, ७८. भूधराधीश, ७९. भूतप, ८०. भूधरात्मज, ८१. कंकालधारी, ८२. मुण्डी, ८३. आन्त्रयज्ञोपवीती, ८४. जृम्भण, ८५. मोहन, ८६. स्तम्भिन, ८७. मारण, ८८. क्षोभण, ८९. शुद्धनीलांजनप्रख्य, ९०. दैत्यघ्न, ९१. मुण्डभूषित, ९२. बलिभुक्, ९३. बलिभुङ्नाथ, ९४. बाल, ९५. अबालपराक्रम, ९६. सर्वापत्तारण, ९७. दुर्गा, ९८. दुष्टभूतनिषेवित, ९९. कामी, १००. कलानिधिकान्त, १०१. कामिनीवशकृत्, १०२ वशिन्, १०३. जगद् रक्षाकर, १०४. अनन्त, १०५. मायामन्त्र-औषधिमय, १०६. सर्वसिद्धिप्रद, १०७. वैद्य, १०८. प्रभविष्णु। यही भैरव के एक सौ आठ नाम हैं।।२६-३८।।

मया ते कथितं देवि रहस्यं सर्वकामदम् ।
य इदं पठति स्तोत्रं नामाष्टशतमुत्तमम् ।।३९।।
न तस्य दुरितं किञ्चिन्न रोगेभ्यो भयं तथा ।
न शत्रुभ्यो भयं किञ्चित्प्राप्नोति मानवः क्वचित् ।।४०।।

हे देवि! इस प्रकार महात्मन् भैरव के एक सौ आठ नामों का कथन मैंने किया। ये नाम रहस्यपूर्ण और सर्वकामप्रदायक हैं।

जो इस उत्तम १०८ नामस्तोत्र का पाठ करता है, उसे कुछ भी दुर्लभ नहीं होता। रोगों का भय उसे नहीं होता। उसे शत्रुओं का भय नहीं होता। उसे कुछ भी दुर्लभ नहीं होता।।३९-४०।।

पातकानां भयं नैव पठेत् स्तोत्रमनन्यधीः ।
मारीभये राजभये तथा चौराग्निजे भये ।।४१।।
औत्पातिके महाघोरे तथा दुःस्वप्नजे भये ।

बन्धने च महाघोरे पठेत्स्तोत्रं समाहितः ॥४२॥

अनन्य मन-बुद्धि से जो इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसे पापों का भय नहीं होता। महामारी-भय, राजभय और अग्निभय, महा घोर उत्पात, दुःस्वप्न से भय, महाघोर बन्धन में इस स्तोत्र का पाठ समाहित मन से करे।।४१-४२।।

सर्वे प्रशमनं यान्ति भयाद्भैरवकीर्तनात् ।
एकादशसहस्रन्तु पुरश्चरणमिष्यते ॥४३॥
त्रिसन्ध्यं यः पठेद्देवि संवत्सरमतन्द्रितः ।
स सिद्धिं प्राप्नुयादिष्टां दुर्लभामपि मानुषः ॥४४॥

भैरव के नामकीर्तन से सभी भयों का प्रशमन हो जाता है। इसका पुरश्चरण ग्यारह हजार पाठ से होता है। एक वर्ष तक निरालस्य होकर तीनों सन्ध्याओं में पाठ करे। इससे मनुष्य दुर्लभ इष्ट मनोकामना को प्राप्त कर लेता है।।४३-४४।।

षण्मासान्भूमिकामस्तु स जप्त्वा लभते महीम् ।
राजा शत्रुविनाशाय जपेन्मासाष्टकं पुनः ॥४५॥
रात्रौ वारत्रयञ्चैव नाशयत्येव शात्रवान् ।
जपेन्मासत्रयं रात्रौ राजानं वशमानयेत् ॥४६॥

छः महीने तक यदि भूमिकामी इसका पाठ करे तो उसे भूमि प्राप्त हो जाती है। शत्रुविनाश के लिये राजा आठ महीनों तक पाठ करे। रात में तीन बार पाठ करने से शत्रुओं का नाश होता है। तीन महीनों तक रात में पाठ करने से राजा वशीभूत होता है।।४५-४६।।

धनार्थी च सुतार्थी च दारार्थी यस्तु मानवः ।
पठेद्वारत्रयं यद्वा वारमेकं तथा निशि ।
धनं पुत्रांस्तथा दारान् प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥४७॥
भीतो भयात्प्रमुच्येत देवि सत्यं न संशयः ।
यान्यान् समीहते कामांस्तांस्तान् प्राप्नोति नित्यशः ॥४८॥

जिस मनुष्य को पुत्र, पत्नी, धन की इच्छा हो, वह इस स्तोत्र का रात में तीन पाठ या एक पाठ करे।

इससे धन-पुत्र-पत्नी की प्राप्ति होने में किसी प्रकार का संशय नहीं है। भयाक्रान्त भय से मुक्त हो जाता है। यह सत्य है, इसमें संशय नहीं है। अन्य कामनाओं की प्राप्ति नित्य होती है।।४७-४८।।

अप्रकाश्यमिदं गुह्यं न देयं यस्य कस्यचित् ।
सुकुलीनाय शान्ताय ऋजवे दम्भवर्जिते ॥४९॥

दद्यात्स्तोत्रमिदं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ।
ध्यानं वक्ष्यामि देवस्य यथा ध्यात्वा पठेन्नरः ॥५०॥

यह स्तोत्र प्रकाश्य नहीं है, अतः इसे जिस किसी को इसे नहीं देना चाहिये। कुलीन, शान्त, सरल, दम्भवर्जित साधक को ही यह स्तोत्र बतलाना चाहिये।

यह पुण्यदायक और सर्वकामफलप्रदायक है। अब मैं ध्यान का वर्णन करता हूँ। ध्यान करके ही इसका पाठ करना चाहिए।।४९-५०।।

शुद्धस्फटिकसङ्काशं सहस्रादित्यवर्चसम् ।
अष्टबाहुं त्रिनयनं चतुर्बाहुं द्विबाहुकम् ।
भुजङ्गमेखलं देवमग्निवर्णं शिरोरुहम् ॥५१॥

वटुकभैरव शुद्ध स्फटिक के समान हजार सूर्यों के समान तेज से युक्त हैं। ये अष्टबाहु, त्रिनयन, चतुर्बाहु और दो भुजाओं वाले हैं। कमर में भुजंगमेखला है। अग्नि वर्ण का शिरोरुह है।।५१।।

दिगम्बरं कुमारीशं वटुकाख्यं महाबलम् ।
खट्वाङ्गमसिपाशञ्च शूलञ्चैव तथा पुनः ॥५२॥
डमरुञ्च कपालञ्च वरदं भुजगन्तथा ।
नीलजीमूतसङ्काशं नीलाञ्जनसमप्रभम् ॥५३॥

ये दिगम्बर, कुमार, ईश, महाबली वटुक हैं, इनके हाथों में खट्वांग, तलवार, पाश, शूल, डमरु, कपाल, वरमुद्रा एवं भुजंग हैं। नीलजीमूत के सदृश नीलांजन के समान प्रभा है।।५२-५३।।

दंष्ट्राकरालवदनं नूपुराङ्गदसङ्कुलम् ।
आत्मवर्णसमोपतं सारमेयसमन्वितम् ॥५४॥
ध्यात्वा जपेत्सुसंहृष्टः सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥५५॥

इनके विकराल मुख में दाँत भयंकर हैं। पैरों में नूपुर एवं हाथों में अंगद है। आत्मवर्णसमोपेत सार से ये समन्वित हैं।

इस प्रकार का ध्यान करके स्तोत्र का पाठ मुदित मन से करने से सभी मनोरथ पूरे होते हैं।।५४-५५।।

ॐ करकलितकपालः कुण्डली दण्डपाणि-
स्तरुणतिमिरनीलो व्यालयज्ञोपवीती ।
ॠतुसमयसपर्याविघ्नविच्छेदहर्त्ता
जयति वटुकनाथः सिद्धिदः साधकानाम् ॥५६॥

इनका दूसरा ध्यान इस प्रकार है—इनके हाथ में कपाल है, कुण्डली है, डण्डा है। ये तरुण हैं। अन्धकार के समान नीला इनका वर्ण है। इनका यज्ञोपवीत सर्प का है। यज्ञ के समय विघ्नों का नाश देते हैं। ऐसे वटुक नाथ की जय हो। ये साधकों को सिद्धि प्रदान करने वाले हैं।।५६।।

एतच्छ्रुत्वा ततो देवी नामाष्टशतमुत्तमम् ।
भैरवाय प्रहृष्टाभूत् स्वयञ्चैव महेश्वरी ।।५७।।

इति विश्वसारे आपदुद्धारकल्पे वटुक-
भैरवस्तवराजः समाप्तः

इस प्रकार वटुकभैरव के अत्यन्त उत्तम एक सौ आठ नामों को सुनकर महेश्वरी प्रसन्न हुईं एवं भैरव को भी इसे सनुकर प्रसन्नता हुई।।५६-५७।।

●

भैरवीस्तोत्रम्

स्तुत्यानया त्वां त्रिपुरे स्तोष्येऽभीष्टफलाप्तये ।
यया व्रजन्ति तां लक्ष्मीं मनुजाः सुरपूजिताम् ।।१।।
ब्रह्मादयः श्रुतिशतैरपि सूक्ष्मरूपां
जानन्ति नैव जगदादिमनादिमूर्तिम् ।
तस्माद्वयं कुचलतां नवकुङ्कुमाभां
स्थूलां स्तुमः सकलवाङ्मयमातृभूताम् ।।२।।

हे त्रिपुरे! मैं मनोवाञ्छित फल पाने के लिये इस स्तोत्र से तुम्हारी स्तुति करता हूँ, जिससे मनुष्य उन देवपूजित लक्ष्मी को प्राप्त करते हैं। ब्रह्मादि देवता सैकड़ों श्रुतियों से भी जगत् की आदि-अनादि सूक्ष्मरूपिणी आपके स्वरूप को नहीं जान पाते। इसलिये हम समस्त वाक् प्रपञ्च की अधिष्ठात्री स्थूलरूपा आपकी मातृमूर्ति की वन्दना करते हैं। आपकी आभा नवीन कुंकुम के समान है। आप स्तनभार से झुकी हुई हैं।।१-२।।

सद्यः समुद्यतसहस्रदिवाकराभां
विद्याक्षसूत्रवरदाभयचिह्नहस्ताम् ।
नेत्रोत्पलैस्त्रिभिरलंकृतवक्त्रपद्मां
त्वां तारहाररुचिरां त्रिपुरे भजामः ।।३।।

हे त्रिपुरे! नवोदित हजार सूर्यों के समान आपकी आभा है। आपके चार हाथों में पुस्तक, अक्षमाला, वर और अभयमुद्रा है। आपका मुखकमल तीन कमलनयनों से सुशोभित है। गले में सुन्दर हार है। आपके इस स्वरूप की मैं वन्दना करता हूँ।।३।।

सिन्दूरपूररुचिरं कुचभारनम्रं
जन्मान्तरेषु कृतपुण्यफलैकगम्यम् ।
अन्योन्यभेदकलहाकुलमानसास्ते
जानन्ति किं जडधियस्तव रूपमम्ब ॥४॥

हे मातः! सिन्दूरराशि के समान रक्त वर्ण का आपका शरीर कुचों के भार से सर्वदा झुका रहता है। पूर्व जन्म में जिन्होंने पुण्य का सञ्चय किया है, वे ही तुम्हारे इस स्वरूप को जान पाते हैं। जो लोग भेदभाव में रहकर अपना समय वाद-विवाद में व्यतीत करते हैं, वे जड़बुद्धि तुम्हारे इस रूप को कैसे जान सकते हैं।।४।।

स्थूलां वदन्ति मुनयः श्रुतयो गृणन्ति
सूक्ष्मां वदन्ति वचसामधिवासमन्ये ।
त्वां मूलमाहुरपरे जगतां भवानि
मन्यामहे वयमपारकृपाम्बुराशिम् ॥५॥

हे भवानि! मुनियों के मतानुसार तुम स्थूलरूपा हो। वेदों में तुम्हें सूक्ष्मरूपा बताकर तुम्हारा स्तवन किया गया है। तुम्हें वाक् प्रपञ्च का आधार बताकर अन्य लोगों ने तुम्हारा कीर्तन किया है। कुछ लोगों ने तुम्हें जगत् का मूल कारण बताया है। मैं तो तुम्हें अपार कृपा का सागर मानता हूँ।।५।।

चन्द्रावतंसकलितां शरदिन्दुशुभ्रां
पञ्चाशदक्षरमयीं हृदि भावयन्ति ।
त्वां पुस्तकं जपवटीममृताम्बुकुम्भं
व्याख्यां च हस्तकमलैर्दधतीं त्रिनेत्राम् ॥६॥

मस्तक पर चन्द्रमा का आभूषण, शरद कालीन चन्द्रमा के समान उज्ज्वल वर्ण, पचास मातृकावर्ण का स्वरूप, चारो हाथों में पुस्तक, जपमाला, सुधापूर्ण कलश और व्याख्यामुद्रा है। तुम्हारी ऐसी त्रिनेत्रा मूर्ति को मैं अपने हृदय में देखता हूँ।।६।।

शम्भुस्त्वमद्रितनया कलितार्द्धभागो
विष्णुस्त्वमम्ब कमलापरिरब्धदेहः ।
पद्मोद्भवस्त्वमपि वागधिवासभूमि-
स्तेषां क्रियाश्च जगति त्रिपुरे त्वमेव ॥७॥

हे त्रिपुरे! तुम्हीं अर्द्धनारीश्वर शम्भु हो। तुम्हीं कमलासहित विष्णु हो। तुम्हीं सरस्वतीसहित कमल से उत्पन्न ब्रह्मा हो। उन सबों के सृष्टि-स्थिति-संहारकार्यों को करने वाली भी तुम्हीं हो।।७।।

आश्रित्य वागभिभवांश्चतुरः परादीन्
भावान् पदेषु विहितान् समुदीरयन्तीम् ।
कण्ठादिभिश्च करणैः परदेवतां त्वां
सच्चिन्मयीं हृदि कदापि न विस्मरामि ॥८॥
आकुञ्च्य वायुमवजित्य च वैरिषट्क-
मालोक्य निश्चलधिया निजनासिकाग्रम् ।
ध्यायन्ति मूर्ध्नि कलितेन्दुकलावतंसं
त्वद्रूपमम्ब कृतिनस्तरुणार्कमित्रम् ॥९॥

हे जननि! तुम्हीं सच्चिन्मयी परदेवता हो। तुम्हीं परा-पश्यन्ती-मध्यमा और वैखरी रूपों में रहती हो। तुम्हारे इस रूप को मैं कभी भूल नहीं पाता।

जो कर्मदक्ष साधक हैं, वे ही कामादि षड् रिपुओं को जीतकर प्राणायाम करते हुए एकाग्र मन से अपने नासिकाग्र पर दृष्टिपातपूर्वक बालसूर्य के समान रक्तवर्ण तुम्हारी चन्द्रशेखरा मूर्ति का ध्यान करते हैं।।८-९।।

त्वं प्राप्य मन्थरिपोर्वपुरर्द्धभागं
सृष्टिं करोषि जगतामिति वेदवादः ।
सत्यं तदद्रितनये जगदेकमात-
र्नो चेदशेषजगतः स्थितिरेव न स्यात् ॥१०॥

हे गिरिनन्दिनि! तुमने कामारि शंकर के देहार्द्ध पर अधिकार करके जगत् की सृष्टि की है, यही वेदवाक्य है, यही प्रकृत सत्य है।

अन्यथा यह सारा जगत् अपनी स्थिति को ही नहीं पा सकता। अत: तुम्हीं जगत् की एकमात्र माता हो।।१०।।

पूजां विधाय कुसुमैः सुरपादपानां
पीठे तवाम्ब कनकाचलगह्वरेषु ।
गायन्ति सिद्धवनिताः सह किन्नरीभि-
रास्वादितासवरसारुणनेत्रपद्माः ॥११॥

हे माते! सिद्ध रमणियों, किन्नरियों के साथ आसव रसपान से नेत्रकमलों को आरक्त कर सुमेरु गिरि की गुफा के मध्य में पीठ पर कल्पवृक्ष के पुष्पों से आपकी पूजा कर आपका गुणगान कर रही हैं।।११।।

विद्युद्विलासवपुषः श्रियमुद्वहन्तीं
यान्तीं स्ववासभवनाच्छिवराजधानीम् ।

सौषुम्नवर्त्मकमलानि विकासयन्तीं
देवीं भजे हृदि परामृतसिक्तगात्रीम् ॥१२॥

तड़िल्लता की आभा वाली कुण्डलिनी की श्री को धारण कर अपने निवासगृह मूलाधार से शिव की राजधानी सहस्रार में जाती हुई सुषुम्नापथ के कमलों को प्रफुल्लित कर देती हो और परामृत से अपने शरीर को अभिषिक्त करती हो। तुम्हारे इस रूप की वन्दना मैं अपने हृदय में करता हूँ।।१२।।

आनन्दजन्मभवनं भवनं श्रुतीनां
चैतन्यमात्रतनुमम्ब तवाश्रयामि।
ब्रह्मेशविष्णुभिरुपासितपादपद्मां
सौभाग्यजन्मवसतिं त्रिपुरे यथावत् ॥१३॥

हे माते! चैतन्यमात्र ही तुम्हारा शरीर है। तुम्हारी वह देह आनन्द की जन्मभूमि, वेदों का भंडार और सौभाग्य की जन्मस्थली है। इसीलिये ब्रह्मा, विष्णु और महेश तुम्हारे चरणकमलों की उपासना करते हैं। हे त्रिपुरे! तुम्हारे उसी रूप का मैं आश्रय लेता हूँ।।१३।।

शब्दार्थभावि भुवनं सृजतीन्दुरूपा
या तद्बिभर्ति पुनरर्कतनुं स्वशक्त्या।
वह्न्यात्मिका हरति तत्सकलं युगान्ते
तां शारदां मनसि जातु न विस्मरामि ॥१४॥

जो इन्दुरूप से शब्द-अर्थरूप सारे विश्व की सृष्टि, सूर्यरूप से पालन और अग्निरूप से संहार करती है, उस शारदा मूर्ति को मेरा मन कभी न भूले।।१४।।

नारायणीति नरकार्णवतारिणीति
गौरीति खेदशमनीति सरस्वतीति।
ज्ञानप्रदेति नयनत्रयभूषितेति
त्वामद्रिराजतनये बहुधा भजन्ति ॥१५॥

हे गिरिनन्दिनि! कोई नारायणी रूप में, कोई नरकार्णवतारिणी रूप में, कोई गौरी रूप में, कोई दुःखशमनी रूप में, कोई ज्ञानदात्री सरस्वती रूप में, कोई त्रिलोचना रूप में— इस प्रकार के बहुत रूपों में तुम्हारी आराधना करते हैं।।१५।।

ये स्तुवन्ति जगन्मातः श्लोकैर्द्वादशभिः क्रमात्।
त्वामनुप्राप्य वाक्सिद्धिं प्राप्नुयुस्ते नराः श्रियम् ॥१६॥

इति भैरवीतन्त्रे भैरवीस्तवराजः समाप्तः

हे जगन्माते! जो इन बारह श्लोकों से तुम्हारी स्तुति करते हैं, वे वाक् सिद्धि को पाकर परम गति मोक्ष को प्राप्त करते हैं।।१६।।

●

भैरवीकवचम्

श्रीदेव्युवाच—

भैरव्याः सकला विद्याः श्रुताश्चाधिगता मया ।
साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि कवचं यत्पुरोदितम् ।।१।।
त्रैलोक्यविजयं नाम शस्त्रास्त्रविनिवारकम् ।
त्वत्तः परतरो नाथ कः कृपां कर्तुमर्हति ।।२।।

पूर्वपीठिका—श्रीदेवी ने कहा कि हे नाथ! मैं भैरवी देवी की सभी विद्याओं को पहले सुन और समझ चुकी हूँ।

अब मैं पूर्वकथित कवच को सुनना चाहती हूँ। हे नाथ! यह त्रैलोक्यविजय नामक कवच शस्त्रास्त्रों का निवारण करता है। आपसे अधिक श्रेष्ठ कौन है, जो कृपा कर यह बतला सकता है।।१-२।।

ईश्वर उवाच—

शृणु पार्वति वक्ष्यामि सुन्दरि प्राणवल्लभे ।
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं मन्त्रविग्रहम् ।।३।।
पठित्वा धारयित्वेदं त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।
जघान सकलान् दैत्यान् यद्धृत्वा मधुसूदनः ।।४।।
ब्रह्मा सृष्टिं वितनुते यद्धृत्वाभीष्टदायकः ।
धनाधिपः कुबेरोऽपि वासवस्त्रिदशेश्वरः ।।५।।

ईश्वर ने कहा कि हे पार्वति! प्राणप्रिये! सुन्दरि! सुनो। मैं त्रैलोक्यविजय नामक कवच को कहता हूँ। इसके पाठ और धारण करने से साधक तीनों लोकों में विजयी होता है।

इस कवच को धारण करके मधुनाशक विष्णु ने सभी दैत्यों को मार डाला था। इस अभीष्टप्रद कवच को धारण कर ब्रह्मा सृष्टि करते हैं। इसी कवच के प्रभाव से कुवेर धनेश हैं। इन्द्र देवताओं के स्वामी हैं।।३-५।।

यस्य प्रसादादीशोऽहं त्रैलोक्यविजयी विभुः ।
न देयं परशिष्येभ्योऽसाधकेभ्यः कदाचन ।।६।।
पुत्रेभ्यः किमुतान्येभ्यो दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ।

तीनों लोकों को जीतने वाला मैं प्रभु ईश्वर हूँ। दूसरे के शिष्यों को, साधना न करने वालों को और यदि अपना पुत्र भी साधक नहीं है तो उसे भी यह कवच कदापि नहीं देना चाहिये। अनधिकारी को इसे देने से दाता की मृत्यु होती है।।६।।

भैरव्याः कवचस्यास्य ऋषिर्दक्षिणामूर्तिरिव च ॥७॥
विराट् छन्दो जगद्धात्री देवता बालभैरवी ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥८॥

विनियोग—इस भैरवी कवच के ऋषि दक्षिणामूर्ति, छन्द विराट् और देवता जगद्धात्री बाला भैरवी हैं। चतुर्वर्ग-सिद्धि के लिये इसका विनियोग होता है।।७-८।।

अधरो विन्दुमानाद्यः कामः शक्तीशशीयुतः ।
भृगुर्मनुस्वरयुतः सर्गो बीजत्रयात्मकः ॥९॥
बालैषा मे शिरः पातु विन्दुनादयुतापि सा ।
भालं पातु कुमारी च सर्गहीना कुमारिका ॥१०॥
दृशौ पातु च वाग्बीजं कर्णयुग्मं सदावतु ।
कामबीजं सदा पातु घ्राणयुग्मं सदावतु ॥११॥

कवच—अधर ऐ, उसमें अनुस्वार जोड़ने से पहला बीज ऐं बनता है। काम क में शक्र ल जोड़कर उसमें ई और राशिबिन्दु जोड़ने से दूसरा बीज क्लीं बनता है। भृगु स में मनु स्वर औ और विसर्ग जोड़ने से तीसरा बीज सौः होता है। इस प्रकार तीन बीजों वाला बालामन्त्र ऐं क्लीं सौः मेरे शिर की रक्षा करे। बिन्दु-नाद से युक्त और विसर्ग से रहित वह कुमारी ऐं क्लीं सौः मेरे मस्तक तथा दोनों नेत्रों की और वाग्बीज ऐं दोनों कानों की रक्षा करे। कामबीज क्लीं सर्वदा मेरे दोनों नथुनों की रक्षा करे।।९-११।।

सरस्वतीप्रदा बाला जिह्वां पातु शुचिप्रभा ।
हसैं कण्ठं हसकलरीं स्कन्धौ पातु हसौर्भुजौ ॥१२॥
पञ्चमी भैरवी पातु करौ हसरैं सदावतु ।
हृदयं हसकलरीं वक्षः पातु हसरोः स्तनौ ॥१३॥

ज्ञानदायिनी सरस्वती पवित्र प्रकाशवती सर्वदा मेरी जीभ की रक्षा करे। हसैं कण्ठ की हसकलरीं दोनों कन्धों की और हसौः दोनों भुजाओं की रक्षा करे। पञ्चमी भैरवी हस्रैं मेरे दोनों हाथों की रक्षा सर्वदा करे। हृदय की रक्षा हसकलरीं, वक्ष और दोनों स्तनों की रक्षा हस्रौः करे।।१२-१३।।

पातु मां भैरवी देवी चैतन्यरूपिणी मम ।
हस्रैं पातु सदा पार्श्वयुग्मं हसकलरीं सदा ॥१४॥

कुक्षिं पातु हसौर्मध्यं भैरवी भुवि दुर्लभा ।
ऐं ईं ॐ मे मध्यदेशं बीजविद्या सदावतु ॥१५॥

चैतन्यस्वरूपा भैरवी इस प्रकार मेरी रक्षा करें। हस्रैं मेरे दोनों पार्श्वों की रक्षा सर्वदा करे। हसकलरीं कुक्षि की और हसौः कमर की रक्षा करे। पृथ्वी पर भैरवी को प्राप्त करना कठिन है। बीजविद्या ऐं ईं ॐ मेरे मध्य शरीर की सदैव रक्षा करे।।१४-१५।।

हसैं पृष्ठं सदा पातु नाभिं हसकलरीं तथा ।
पातु हसौः कटीदेशं षट्कूटा भैरवी मम ॥१६॥
हसरैं सक्थिनीं पातु हसकलरीं सदावतु ।
गुह्यदेशं हसौः पातु जानुनी भैरवी मम ॥१७॥
सम्पत्प्रदा सदा पातु हसैं जंघे हसरीं पदम् ।
पातु हसौः सर्वदेहं भैरवी सर्वदावतु ॥१८॥

हसैः पीठ की और हसकलरीं नाभि की रक्षा करे। हसौः कटि की रक्षा करे। षट्कूटा भैरवी इस प्रकार मेरी रक्षा करे। हसरैं दोनों ऊरुओं की, हसकलरीं गुह्य देश की और हसौः मेरे दोनों जानुओं की रक्षा करे। सम्पत् प्रदा भैरवी इस प्रकार मेरी रक्षा करे।

हसैं दोनों जांघों की और हसरीं पैरों की रक्षा करे। हसौः सारे शरीर की रक्षा करे। इस प्रकार भैरवी मेरी रक्षा सर्वदा करे।।१६-१८।।

हसैं मामवतु प्राच्यां हसकलरीं पावकेऽवतु ।
हसौः मे दक्षिणे पातु भैरवी चक्रमास्थिता ॥१९॥
ह्रीं क्लीं ब्लूं मां सदा पातु नैर्ऋत्यां चक्रभैरवी ।
हसैं हसकलह्रीं हसरौः पश्चिमे पातु भैरवी ॥२०॥
क्रीं क्रीं क्रीं पातु वायव्यां हूं हूं पातु सदोत्तरे ।

हसैं मेरी रक्षा पूर्व दिशा में और हसकलरीं आग्नेय कोण में रक्षा करे। हसौः दक्षिण दिशा में रक्षा करे। भैरवी चक्र में अधिष्ठिता भैरवी मेरी रक्षा करे। ह्रीं क्लीं ब्लूं चक्रभैरवी सर्वदा नैर्ऋत्य कोण में मेरी रक्षा करे।

हसैं हसकलह्रीं हस्रौः भैरवी मेरी रक्षा पश्चिम दिशा में; क्रीं क्रीं क्रीं वायव्य कोण में और हूं हूं मेरी रक्षा उत्तर दिशा में करे।।१९-२०।।

ह्रीं ह्रीं पातु सदैशान्ये दक्षिणे कालिकेऽवतु ॥२१॥
ऊर्ध्वं प्रागुक्तबीजानि रक्षन्तु मामधःस्थले ।
दिग्विदिक्षु स्वाहा कालिका खड्गधारिणी ॥२२॥
ॐ ह्रीं स्त्रीं फट् सा तारा सर्वत्र मां सदावतु ।

संग्रामे कानने दुर्गे तोये तरङ्गदुस्तरे ।
खड्गकर्तृधरा सोग्रा सदा मां परिरक्षतु ॥२३॥
इति ते कथितं देवि सारात्सारतरं महत् ।
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥२४॥

ह्रीं ह्रीं सर्वदा ईशान कोण में मेरी रक्षा करे और दक्षिणे कालिके ऊर्ध्व दिशा में रक्षा करे। सभी बीज मेरी रक्षा अधोदिशा में करें। दिशा-विदिशाओं में खड्गधारिणी कालिका-रूपा स्वाहा मेरी रक्षा करे। ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट् स्वरूपा तारा मेरी रक्षा सर्वदा सर्वत्र करे।

युद्ध में, वन में, दुर्ग में, लहरों के कारणहन्ता जल में, खड्ग और कैंचीधारिणी उग्रतारा सर्वदा मेरी रक्षा करें।

हे देवि! यह तत्त्व से भी अधिक बड़े तत्त्व वाला अति विलक्षण त्रैलोक्यविजय नामक कवच मैंने तुझसे कहा।।२१-२४।।

यः पठेत्प्रयतो भूत्वा पूजायाः फलमाप्नुयात् ।
स्पर्द्धामुद्धूय भवने लक्ष्मीर्वाणी वसेत्ततः ॥२५॥

फलश्रुति—जो शुद्ध भाव से इसका पाठ करेगा, वह पूजा का फल प्राप्त करेगा। लक्ष्मी और सरस्वती परस्पर स्पर्द्धा त्याग कर उसके घर में निवास करेंगी।।२५।।

यः शत्रुभीतो रणकातरो वा भीतो वने वा सलिलालये वा
वादे सभायां प्रतिवादिनो वा राज्ञः प्रकोपाद्ग्रहसंकुलाद्वा ।
प्रचण्डवाताच्छमनाच्च भीतो गुरोः प्रकोपादपि कृच्छ्रसाध्यात्
अभ्यर्च्य देवीं प्रपठेत्त्रिसन्ध्यं स स्यान्महेशप्रतिमो जयी च ॥२६॥

जो शत्रुओं से भयभीत हो, जो युद्धभय से भीत हो या वन अथवा सागर से डर रहा हो। सभा में प्रतिवादियों के वाद-विवाद से, राजा के क्रोध या प्रबल प्रतिकूलता से या प्रबल तूफान से या शयन से डरा हुआ हो, गुरु के अलंघ्य क्रोध से डरा हो, वह देवी की पूजा करके इस कवच का पाठ तीनों सन्ध्याओं में करे। ऐसा करने वह सभी भयों से मुक्त होकर विजयी होता है और भगवान् शंकर के समान तेजस्वी होता है।।२६।।

त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं मन्मुखोदितम् ।
विलिख्य भूर्जे गुलिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ॥२७॥
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ त्रैलोक्यविजयी भवेत्।
तद्गात्रं प्राप्य शस्त्राणि भवन्ति कुसुमानि च ॥२८॥
लक्ष्मीः सरस्वती तस्य निवसेद्भवने सुखे ।
एतत्कवचमज्ञात्वा यो जपेद्भैरवीं पराम् ॥२९॥

बालां वा प्रजपेद्विद्यां दरिद्रो मृत्युमाप्नुयात् ॥३०॥

इति श्रीरुद्रयामले देवीश्वरसंवादे त्रैलोक्यविजयं
नाम भैरवीकवचं समाप्तम्

मेरे मुख से कथित इस त्रैलोक्यविजय नामक कवच को भोजपत्र पर लिखकर गुटिका बनाकर सोने की ताबीज में भरकर यदि कण्ठ अथवा दाँईं भुजा में धारण करे तो तीनों लोकों में विजयी होता है। उसके शरीर में लगने वाले शस्त्र फूल बन जाते हैं। उसके घर में लक्ष्मी और सरस्वती सुखपूर्वक रहती हैं।

इस कवच को जाने विना जो परम भैरवी या बाला के मन्त्र का जप करता है, वह दरिद्र होकर मृत्यु को प्राप्त करता है।।२७-३०।।

●

श्रीविद्यास्तोत्रम्

कल्याणवृष्टिभिरिवामृतपूरिताभि-
र्लक्ष्मी स्वयं वरणमङ्गलदीपिकाभिः ।
सेवाभिरम्ब तव पादसरोजमूले
नाकारि किं मनसि भक्तिमतां जनानाम् ॥१॥
एतावदेव जननि स्पृहणीयमास्ते
त्वद्वन्दनेषु सलिलस्थसरोजनेत्रे ।
सान्निध्यमुद्यदरुणाम्बुजसोदरस्य
त्वद्विग्रहस्य सुधया परयाप्लुतस्य ॥२॥
ईषत्प्रभावकलुषाः कति नाम सन्ति
ब्रह्मादयः प्रतिदिनं प्रलयाभिभूताः ।
एकः स एव जननि स्थिरसिद्धिरास्ते
यः पादयोस्तव सकृत्प्रणतिं करोति ॥३॥

अमृतमयी कल्याणवृष्टि करने वाली लक्ष्मी स्वयं मंगलदीप लेकर तेरे पदकमल की सेवा में मग्न हैं, तब भक्तजनों की कौन-सी इच्छा पूरी नहीं हो सकती?

तुम्हारे कमल-नयनों की वन्दना करने के लिये देवताओं में स्पृहा रहती है। सुधा से परिप्लुत आपके श्रीविग्रह के सान्निध्य के लिये लाल कमल भी लालायित रहते हैं। कुछ कलुष-प्रभावयुक्त कई नाम हैं।

ब्रह्मादि देव प्रतिदिन प्रलयाभिभूत होते हैं। हे जननि! एक आप ही के चरणों की वन्दना करने वाले स्थिर रहते हैं।।१-३।।

लब्ध्वा सकृत्त्रिपुरसुन्दरि तावकीनं
कारुण्यकन्दलितकान्तिभवं कटाक्षम् ।
कन्दर्पभावसुभगास्त्वयि भक्तिभाजः
सम्मोहयन्ति तरुणीर्भुवनत्रयेऽपि ।।४।।
ह्लींकारमेव तव नाम गृणन्ति देवा
मातस्त्रिकोणनिलये त्रिपुरे त्रिनेत्रे ।
त्वत्संस्मृतौ वमभटाभिभवं विहाय
दीव्यन्ति नन्दनवने सह लोकपालैः ।।५।।

हे त्रिपुरसुन्दरि! आपके कारुण्य-कन्दलित कान्तियुक्त कटाक्ष से क्या प्राप्त नहीं होता? तुम्हारे भक्त कामदेव के समान तीनों लोकों की तरुणियों को सम्मोहित करते हैं।

हे त्रिकोणनिलये! त्रिनेत्रे त्रिपुरे! सभी देवता आपके ह्लींकार बीज का गायन करते हैं। तुम्हारे स्मरण से संसार के मोह को त्याग कर नन्दनवन में लोकपालों के साथ तुम्हारे भक्त विहार करते हैं।।४-५।।

हन्तुं पुरामधिगलं परिपूर्णमानः
क्रूरः कथं न भविता गरलस्य वेगः ।
नाश्वासनाय यदि मातरिदं तवार्द्धं
देहस्य शश्वदमृताप्लुतशीतलस्य ।।६।।

हे माते! शंकर के अर्द्धांग में अमृतपरिप्लुत तुम्हारे शरीर का अवलम्ब यदि नहीं रहता तो वे क्रूर गरल के वेग को कैसे शान्त कर पाते?।।६।।

सर्वज्ञतां सदसि वाक्पटुतां प्रसूते
देवि त्वदङ्घ्रिसरसीरुहयोः प्रणामः ।
किञ्च स्फुरन्मुकुटमुज्ज्वलमातपत्रं
द्वे चामरे च महतीं वसुधां ददाति ।।७।।
कल्पद्रुमैरभिमतप्रतिपादनेषु
कारुण्यवारिधिभिरम्ब भवत्कटाक्षैः ।
आलोकय त्रिपुरसुन्दरि मामनाथं
त्वय्येव भक्तिभरितं त्वयि बद्धदृष्टिम् ।।८।।

हे देवि! तुम्हारे पदकमलों को प्रणाम करने से सर्वज्ञता और वाक्पटुता प्राप्त होती है। उज्ज्वल मुकुट और दो चामर पृथ्वी देती है। हे माते! आपके कारुण्यवारिधि कटाक्ष से कल्पवृक्ष के समान मनोकामनायें पूर्ण होती हैं।

हे त्रिपुरसुन्दरि! मेरी भक्तिपूर्ण दृष्टि आप ही की ओर लगी हुई हैं; अत: आप मुझ पर अपना कृपाकटाक्ष कीजिये।।७-८।।

हन्तेतरेष्वपि निधाय मनांसि चान्ये
भक्तिं वहन्ति किल पामरदैवतेषु।
त्वामेव देवि मनसाहमनुस्मरामि
त्वामेव नौमि शरणं जननि त्वमेव ॥९॥
लक्षेषु सत्स्वपि तवाक्षिविलोकनाना
मालोकय त्रिपुरसुन्दरि मां कथञ्चित्।
नूनं मया च सदृशं करुणैकपात्रं
जातो जनिष्यति जनो न च जायते वा ॥१०॥

अन्य देवताओं की भक्ति का त्याग करके मैं केवल आप ही का स्मरण करता हूँ, तुम्हीं को प्रणाम करता हूँ और तुम्हारी ही शरण में हूँ।

तुम्हारी आँखों के सामने लाखों भक्त हैं; किन्तु मेरी ओर भी त्रिपुरसुन्दरि! एक बार देखिये; क्योंकि मेरे समान करुणा का पात्र न कोई हुआ है, न है और न होगा।।९-१०।।

ह्रीं ह्रीमिति प्रतिदिनं जपतां तवाख्यां
किं नाम दुर्लभमिह त्रिपुराधिवासे।
मालाकिरीटमदवारणमाननीयां-
स्तान् सेवते मधुमती स्वयमेव लक्ष्मीः ॥११॥

प्रतिदिन तेरे नाम ह्रीं-ह्रीं का मैं जप करता हूँ। इस नाम के जप से त्रिलोक में क्या दुर्लभ है? मालाकिरीटमदवारणा माननीया आपकी सेवा स्वयं मधुमती लक्ष्मी करती हैं।।११।।

सम्पत्कराणि सकलेन्द्रियनन्दनानि
साम्राज्यदानकुशलानि सरोरुहाक्षि।
त्वद्वन्दनानि दुरिताहरणोद्यतानि
मामेव मातरनिशं कलयन्तु नान्यम् ॥१२॥

आप सम्पत्तियों को देने वाली, सभी इन्द्रियों को आनन्दित करने वाली, साम्राज्यदान में निपुण दक्ष हैं। आप कमलनयनी हैं।

तुम अपने भक्तों के कष्टों को दूर करने को उद्यत रहती हो। हे माते! मेरे कष्टों को भी दूर करो।।१२।।

कल्पोपसंहरणकल्पितताण्डवस्य
देवस्य खण्डपरशोः परभैरवस्य।

पाशांकुशैक्षवशरासनपुष्पबाणा
सा साक्षिणी विजयते तव मूर्तिरिका ॥१३॥
लग्नं सदा भवतु मातरिदं
त्वदीयं तेजःपरं बहुलकुङ्कमपङ्कशोणम् ।
भास्वत्किरीटममृतांशकलावतंसं
रूपं त्रिकोणमुदितं परमामृताक्तम् ॥१४॥

कल्पान्त करने के लिये खण्ड-परशुधारी परम भैरव के ताण्डव नृत्य की साक्षी तुम्हीं अकेली रहती हो। ऐसी स्थिति में तुम्हारे हाथों में पाश, अंकुश, ईख, धनु और पुष्पवाण रहते हैं।

हे माते! तुम्हारा तेजबहुल कुंकुम पंक के समान सर्वदा लगा रहता है। सुधांशुकलावतंस किरीटयुक्त आपका रूप परमामृताक्त होकर त्रिकोण में प्रसन्न भासित है।

ह्रींकारत्रयसम्पुटेन महता मन्त्रेण सन्दीपितं
स्तोत्रं यः प्रतिवासरं तव पुरो मातर्जपेन्मन्त्रवित् ।
तस्य क्षौणिभुजो भवन्ति वशगा लक्ष्मीश्चिरस्थायिनी
वाणी निर्मलसूक्तिभारभरिता जागर्ति दीर्घं यशः ॥१५॥

इति श्रीविद्यास्तोत्रं समाप्तम्

ह्रींकारत्रय सम्पुटित प्रदीप्त महान् मन्त्रस्तोत्र का पाठ जो प्रतिदिन मन्त्रजपसहित आपके सम्मुख करता है, उसके वश में चिरस्थायिनी लक्ष्मी होती है। उसकी वाणी निर्मल सूक्तिपूर्ण होती है। उसे बड़ी कीर्ति मिलती है।।१५।।

●

किङ्किणीस्तोत्रम्

किं किं दुःखं सकलजननि क्षीयते न स्मृतायां
का का कीर्तिः कुलकमलिनि प्राप्यते नार्चितायाम् ।
किं किं सौख्यं सुरवरनुते प्राप्यते न स्तुतायां
कं कं योगं त्वयि न तनुते चित्तमालम्बितायाम् ॥१॥

हे माते! आपके स्मरण से किन-किन दुःखों का अन्त नहीं होता? हे कुलकमलिनि! आपके अर्चन से क्या-क्या प्राप्त नहीं होते।

हे देववन्दिते! तुम्हारी स्तुति से क्या-क्या सुख नहीं मिलते? तुझमें चित्त एकाग्र करने से कौन-कौन योग सिद्ध नहीं होते?।।१।।

स्मृता भवभयं हंसि पूजितासि शुभङ्करि ।
स्तुता त्वं वाञ्छितं देवि ददासि करुणाकरे ॥२॥
परमानन्दबोधाब्धिरूपे तेज:स्वरूपिणि ।
देववृन्दशिरोरत्ननिघृष्टचरणाम्बुजे ।
चिद्विश्रान्तिमहासत्तामात्रे मात्रे नमोऽस्तु ते ॥३॥

तुम्हारे स्मरण से भवभीतियों का नाश होता है। पूजन से सभी प्रकार के कल्याण होते हैं। हे करुणासिन्धु! स्तुति करने पर तुम वाञ्छित पदार्थ देती हो। आप तेजस्वरूपिणी परमानन्दबोधसागर हैं। आपके चरणकमल देवताओं के शिरोरत्न से घर्षित रहते हैं। आप चित्तविश्रान्ति महासत्तामात्र हैं; अत: मेरा नमस्कार है।।२-३।।

सृष्टिस्थित्युपसंहारहेतुभूते सनातनि ।
गुणत्रयात्मिकासि त्वं जगत: करणेच्छया ॥४॥
अनुग्रहाय भूतानां गृहीतदिव्यविग्रहे ।
भक्तस्य मे नित्यपूजायुक्तस्य परमेश्वरि ॥५॥

हे सनातनि! आप सृष्टि-स्थिति-संहार के कारण हैं। जगत् की सृष्टि के लिये तुम त्रिगुणात्मिका रूप धारण करती हो एवं अनुग्रह के लिये पाँचभौतिक दिव्य विग्रह धारण करती हो। हे परमेश्वरि! नित्य पूजातत्पर भक्तों पर तुम अनुग्रह करती हो।।४-५।।

ऐहिकामुष्मिकीं सिद्धिं देहि त्रिदशवन्दिते ।
तापत्रयपरिम्लानभाजनं त्राहि मां शिवे ॥६॥

हे देववन्दिते! तुम लौकिक और पारलौकिक सिद्धियाँ देती हो। मैं तीनों तापों से परिम्लान हो गया हूँ, मेरा कल्याण करो।।६।।

नान्यं वदामि न शृणोमि न चिन्तयामि
नान्यं स्मरामि न भजामि न चाश्रयामि ।
त्यक्त्वा त्वदीय चरणाम्बुजमादरेण
मां त्राहि देवि कृपया मयि देहि सिद्धिम् ॥७॥

मैं अन्य कुछ नहीं कहता, न अन्य कुछ सुनता हूँ, न अन्य चिन्तन करता हूँ, न अन्य का स्मरण करता हूँ, न अन्य का भजन करता हूँ, न अन्य का आश्रय लेता हूँ, केवल आपके चरणकमलों का ध्यान करता हूँ। हे माँ! मेरा कल्याण कीजिये। कृपया मुझे सिद्धि दीजिये।।७।।

अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा वैकल्यात् साधनस्य च ।
यन्न्यूनमतिरिक्तं वा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥८॥

द्रव्यहीनं क्रियाहीनं श्रद्धामन्त्रविवर्जितम् ।
तत्सर्वं कृपया देवि क्षमस्व त्वं दयानिधे ॥९॥

अज्ञानवश, प्रमादवश, साधन के वैकल्य से जो भी कम या अधिक हुआ हो, सबको हे माते! आप क्षमा करें। मैं द्रव्यहीन, क्रियाहीन, श्रद्धा और मन्त्रविवर्जित हूँ। हे दया-सिन्धु! आप कृपाकर सबके लिये मुझे क्षमा करे।।८-९।।

यन्मया क्रियते कर्म तन्महत्स्वल्पमेव वा ।
तत्सर्वञ्च जगद्धात्रि क्षन्तव्यमयमञ्जलिः ॥१०॥

इति किङ्किणीस्तोत्रं समाप्तम्

मुझसे जो भी अल्प या महत् कर्म हुआ हो, उन सबों को हे माते! इस पुष्पाञ्जलि के साथ क्षमा कीजिये।।१०।।

●

श्रीविद्याकवचम्

देव्युवाच—

देवदेव महादेव भक्तानां प्रीतिवर्द्धन ।
सूचितं यन्महादेव्याः कवचं कथयस्व मे ॥१॥

पूर्वपीठिका—देवी ने कहा—हे देवों के देव महादेव! आप भक्तों की प्रीति को बढ़ाते हैं।

महात्रिपुरसुन्दरी के जिस कवच के बारे में पहले सूचित किया था, उस कवच का वर्णन कीजिये।।१।।

श्रीमहादेव उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कवचं मन्त्रविग्रहम् ।
अप्रकाश्यं परं गुह्यं सकलाभीष्टसिद्धिदम् ॥२॥

श्री महादेव ने कहा—हे देवि! सुनो। मैं उस कवच का वर्णन करता हूँ, जो मन्त्र-विग्रह, अप्रकाश्य, परम गुप्त और सकलाभीष्टप्रदायक है।।२।।

कवचस्य ऋषिर्देवि दक्षिणामूर्तिरव्ययः ।
छन्दः पंक्तिः समुद्दिष्टं देवी त्रिपुरसुन्दरी ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां विनियोगश्च साधने ॥३॥
वाग्भवं कामराजश्च शक्तिबीजं सुरेश्वरि ।

विनियोग—इस कवच के ऋषि दक्षिणामूर्ति, छन्द पंक्ति, देवी त्रिपुरसुन्दरी हैं और

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के साधन हेतु इसका विनियोग होता है। ऐं क्लीं सौ: इसके बीज हैं।।३।।

वाग्भवः पातु शीर्षे मां कामराजस्तथा हृदि ।।४।।

कवच—मेरे शिर की रक्षा वाग्भव ऐं करे। हृदय की रक्षा कामराज क्लीं करे।।४।।

शक्तिबीजं सदा पातु नाभौ गुह्ये च पादयोः ।
ऐं क्लीं सौर्वदने पातु बाला मां सर्वसिद्धये ।।५।।
हसैं हसकलरीं हसौः पातु भैरवी कण्ठदेशतः ।
सुन्दरी नाभिदेशेऽव्याच्छीर्षे कामकला सदा ।।६।।

शक्तिबीज सौ: सर्वदा मेरी नाभि, गुह्य, पैरों की रक्षा करे। सभी सिद्धियों के लिये ऐं क्लीं सौ: मेरे मुख की रक्षा करे। हसैं हसकलरीं हसौ: रूपा भैरवी मेरे कण्ठदेश की रक्षा करे। सुन्दरी नाभिदेश की और कामकला मेरे शिर की रक्षा करे।।५-६।।

भ्रूनासयोरन्तराले महात्रिपुरसुन्दरी ।
ललाटे सुभगा पातु भगा मां कण्ठदेशतः ।।७।।
भगोदया तु हृदये उदरे भगसर्पिणी ।
भगमाला नाभिदेशे लिङ्गे पातु मनोभवा ।।८।।

महात्रिपुरसुन्दरी भ्रू-नासा अन्तराल की रक्षा करे। ललाट की रक्षा सुभगा करे। भगा मेरे कण्ठदेश की रक्षा करे। भगोदया हृदय की और भगसर्पिणी उदर की रक्षा करे। भगमाला नाभिदेश की और मनोभवा लिंग की रक्षा करे।।७-८।।

गुह्ये पातु महादेवी राजराजेश्वरी शिवा ।
चैतन्यरूपिणी पातु पादयोर्जगदम्बिका ।।९।।
नारायणी सर्वगात्रे सर्वकार्ये शुभङ्करी ।

महादेवी राजराजेश्वरी मेरे गुह्य देश की रक्षा करे। चैतन्यरूपिणी जगदम्बिका मेरे पैरों की रक्षा करे। नारायणी मेरे सभी अंगों की रक्षा करे और शुभंकरी सभी कार्यों में मेरी रक्षा करे।।९।।

ब्रह्माणी पातु मां पूर्वे दक्षिणे वैष्णवी तथा ।।१०।।
पश्चिमे पातु वाराही उत्तरे तु महेश्वरी ।
आग्नेय्यां पातु कौमारी महालक्ष्मीश्च नैर्ऋते ।।११।।
वायव्यां पातु चामुण्डा इन्द्राणी पातु ईशके ।
जले पातु महामाया पृथिव्यां सर्वमङ्गला ।
आकाशे पातु वरदा सर्वत्र भुवनेश्वरी ।।१२।।

पूरब में मेरी रक्षा ब्राह्मी और दक्षिण में वैष्णवी रक्षा करे। पश्चिम में मेरी रक्षा वाराही और उत्तर में माहेश्वरी रक्षा करे। आग्नेय में कौमारी और नैर्ऋत्य में महालक्ष्मी रक्षा करे। वायव्य में चामुण्डा और ईशान में मेरी रक्षा इन्द्राणी करे। जल में महामाया और थल में सर्वमंगला मेरी रक्षा करे। आकाश में वरदा और सर्वत्र मेरी रक्षा भुवनेश्वरी करे।।१०-१२।।

इदन्तु कवचं देव्या देवानामपि दुर्लभम् ।
पठेत्प्रातः समुत्थाय शुचिः प्रयतमानसः ।।१३।।
नाधयो व्याधयस्तस्य न भयञ्च क्वचिद्भवेत् ।
न च मारीभयं तस्य पातकानां भयं तथा ।।१४।।

हे देवि! यह कवच देवताओं को भी दुर्लभ है। प्रात:काल उठकर पवित्र और प्रयत मानस होकर जो इसका पाठ करता है, उसे आधि-व्याधि नहीं होती और न ही किसी प्रकार का भय होता है। उसे महामारी का भय और पापों का भय नहीं होता।।१३-१४।।

न दारिद्र्यवशं गच्छेत्तिष्ठेन्मृत्युवशे न च ।
गच्छेच्छिवपुरं देवि सत्यं सत्यं वदामि ते ।।१५।।
इदं कवचमज्ञात्वा श्रीविद्यां यो जपेत्प्रिये ।
स नाप्नोति फलं तस्य प्राप्नुयाच्छस्त्रघातनम् ।।१६।।

इति सिद्धयामले श्रीविद्याकवचं समाप्तम्

न उसे दरिद्रता होती है और न उसे मृत्यु का भय होता है। अन्त में वह शिवलोक प्राप्त करता है। यह सच-सच मैं कहता हूँ। इस कवच के जाने विना जो श्रीविद्या का जप करता है, उसका फल उसे नहीं मिलता; उलटे शस्त्राघात होता है।।१५-१६।।

●

महात्रिपुरसुन्दरीकवचम्

देव्युवाच—

भगवन् देवदेवेश लोकानुग्रहकारक ।
त्वत्प्रसादान्महादेव श्रुता मन्त्रांस्त्वनेकधा ।।१।।
साधनं विविधं देव कीलकोद्धारणं तथा ।
शापादिदूषणोद्धारः श्रुतस्त्वत्तो मया प्रभो ।।२।।
राजराजेश्वरीदेव्याः कवचं सूचितं मयि ।
श्रोतुमिच्छामि त्वत्तस्तत्कथयस्व मयि प्रभो ।।३।।

पूर्वपीठिका—श्रीदेवी ने कहा—हे लोकानुग्रहकारक देवदेवेश! आपकी कृपा से

अनेक प्रकार के मन्त्रों को मैंने सुना। विविध प्रकार के साधन-कीलक-उद्धार-शापादि-दूषणोद्धार का वर्णन को भी आपसे मैंने सुना। अब पूर्वसूचित राजराजेश्वरी कवच सुनने की इच्छा है। हे प्रभो! उसे सुनाइये।।१-३।।

ईश्वर उवाच—

लक्षवारसहस्राणि वारितासि पुनः पुनः ।
स्त्रीस्वभावात्पुनर्देवि पृच्छसि त्वं मयि प्रिये ।।४।।
अत्यन्तगुह्यं कवचं सर्वकामफलप्रदम् ।
प्रीतये तव देवेशि कथयामि शृणुष्व तत् ।।५।।

श्री महादेव ने कहा कि हजार लाख बार मना करने पर भी तुम बार-बार पूछती हो। यह स्त्रीस्वभाववश ही तुम ऐसा करती हो।

यह कवच अत्यन्त गुप्त है। सर्वकामफलप्रदायक है। तुम्हारे स्नेह से विवश होकर मैं कहता हूँ, सुनो।।४-५।।

अस्य राजराजेश्वरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीषोडशीविद्याकवचस्य महादेवऋषिः प्रस्तारपङ्क्तिच्छन्दो राजराजेश्वरी-महात्रिपुरसुन्दरी देवता पुरुषार्थसाधने विनियोगः।

विनियोग—इस राजराजेश्वरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी षोडशी विद्या नामक कवच के ऋषि महादेव हैं, छन्द प्रस्तार पंक्ति है, राजराजेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी इसके देवता हैं और पुरुषार्थचतुष्टय अर्थात् धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के साधन हेतु इसका विनियोग किया जाता है।

पूर्वे मां भैरवी पातु बाला मां पातु दक्षिणे ।
मालिनी पश्चिमे पातु त्रासिनी तूत्तरेऽवतु ।।६।।
ऊर्ध्वं पातु महादेवी महात्रिपुरसुन्दरी ।
अधस्तात्पातु देवेशी पातालतलवासिनी ।।७।।
आधारे वाग्भवः पातु कामराजन्तथा हृदि ।
डामरः पातु मां नित्यं मस्तके सर्वकामदः ।।८।।

कवच—पूर्व में रक्षा भैरवी और दक्षिण में बाला करे। पश्चिम में मालिनी और उत्तर में मेरी रक्षा त्रासिनी करे। ऊपर में मेरी रक्षा महात्रिपुरसुन्दरी करे। नीचे मेरी रक्षा देवेशी पातालतलवासिनी करे। मूलाधार में मेरी रक्षा वाग्भव बीज ऐं करे। हृदय की रक्षा कामराज क्लीं करे। मेरे मस्तक की नित्य रक्षा डामर करे, जो सर्वकामप्रद है।।६-८।।

ब्रह्मरन्ध्रे सर्वगात्रे छिद्रस्थाने च सर्वदा ।
महाविद्या भगवती पातु मां परमेश्वरी ।।९।।

ऐं क्लीं ललाटे मां पायात् ह्रीं ब्लूं सः पातु नेत्रयोः ।
नासायां कर्णयोश्चैव द्रां द्रैं द्रां द्रीं चिबुके तथा ।
सौः पातु च गले सह्रीं हृदये नाभिदेशके ॥१०॥
कलह्रीं क्लीं स्त्रीं गुह्यदेशे सह्रीञ्च पातु पादयोः ।
सहह्रीं मां सर्वतः पातु सक्लीं पातु च सन्धिषु ॥११॥

महाविद्या भगवती परमेश्वरी मेरे ब्रह्मरन्ध्र और शरीर के सभी छिद्रस्थानों की रक्षा करे। मेरे ललाट की रक्षा ऐं क्लीं और नेत्रों की रक्षा ह्रीं ब्लूं सः करे। नासाछिद्रों और कानों की रक्षा द्रां द्रौं द्रां द्रीं करे। ठुड्डी की रक्षा सौः करे और यही गले की भी रक्षा करे। हृदय और नाभिदेश की रक्षा सह्रीं करे। कलह्रीं क्लीं स्त्रीं मेरे गुह्यदेश की रक्षा करे। पैरों की रक्षा सह्रीं करे। सभी ओर से मेरी रक्षा सह ह्रीं करे। मेरे सभी सन्धियों की रक्षा सक्लीं करे।।९-११।।

जले स्थले तथाकाशे दिक्षु राजगृहे तथा ।
हूं क्षे मां त्वरिता पातु सह्रीं सक्लीं मनोभवा ॥१२॥
हंसः पायान्महादेवी परं निष्कलदेवता ।
विजया मङ्गला दूती कल्याणी भगमालिनी ।
ज्वाला च मालिनी नित्या सर्वदा पातु मां शिवा ॥१३॥

जल में, थल में, आकाश में, दिशाओं में, राजदरबार में, मेरी रक्षा हूं क्षे त्वरिता करे। सह्रीं सक्लीं मनोभवा हसः निष्कल देवता महादेवी शेष स्थानों की रक्षा करे। विजया, मंगला, शिवदूती, भगमालिनी, ज्वालामालिनी, नित्या, शिवा सर्वदा मेरी रक्षा करें।।१२-१३।।

इत्येवं कवचं देवि देवानामपि दुर्लभम् ।
तव प्रीत्या मया ख्यातं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥१४॥
इदं रहस्यं परमं गुह्याद् गुह्यतरं प्रिये ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं भोगमोक्षप्रदं शिवम् ॥१५॥
दुःस्वप्ननाशनं पुंसां नरनारीवशङ्करम् ।
आकर्षणकरं देवि स्तम्भोच्चाटकरं शिवे ॥१६॥

हे देवि! यह कवच देवताओं को भी दुर्लभ है। तुम्हारे स्नेहवश इसे मैंने कहा है। यत्नपूर्वक इसे गोपनीय रखना चाहिये।

यह रहस्य परम गुप्त से भी गुप्त है। धन, यश, आयु, भोग, मोक्ष, कल्याणप्रदायक है। यह आकर्षणकारक, नर-नारीवशंकर है। यह आकर्षणकारक, स्तम्भनकारक उच्चाटन-कारक है।।१४-१६।।

इदं कवचमज्ञात्वा राजराजेश्वरीं शिवाम् ।
योऽर्चयेद्योगिनीवृन्दैः स भक्ष्यो नात्र संशयः ॥१७॥
न तस्य मन्त्रसिद्धिः स्यात्कदाचिदपि शङ्करि ।
इहलोके च द्रारिद्र्यं रोगदु:खभयानि च ॥१८॥
परत्र नरकं गत्वा पशुयोनिमवाप्नुयात् ।
तस्मादेतत्सदाभ्यस्येदधिकारी भवेत्ततः ॥१९॥

इस कवच को जाने विना राजराजेश्वरी शिवा का जो अर्चन करता है, वह योगिनियों का आहार हो जाता है; इसमें संशय नहीं है। उसको मन्त्रसिद्धि कदापि नहीं मिलती। इस लोक में दरिद्रता, रोग, दु:ख का भय होता है। परलोक में नरकवास और बाद में पशुयोनि प्राप्त होती है। अत: अधिकारी होने के लिये इसका अभ्यास सदैव करना चाहिये।।१७-१९।।

मद्वक्त्रनिर्गतमिदं कवचं सुपुण्यं
पूजाविधेश्च पुरतो विधिना पठेद्यः ।
सौभाग्यभोगललितानि शुभनि भुक्त्वा
देव्याः पदं भजति तत्पुनरन्तकाले ॥२०॥

इति कुलानन्दसंहितायां त्रिपुरसुन्दरी
षोडशीविद्याकवचं समाप्तम्

मेरे मुख से नि:सृत इस पुण्यप्रद कवच का पाठ विधिवत् पूजा करने के बाद यदि कोई करता है तो उसे सौभाग्यललित भोगकल्याण प्राप्त होता है और अन्तकाल में देवीपद को भजते हुए वह देवीलोक को प्राप्त करता है।।२०।।

●

प्रचण्डचण्डिकास्तोत्रम्

नाभौ शुद्धसरोजरक्तविलसद्बन्धूकपुष्पारुणं
भास्वद्भास्करमण्डलं तदुदरे तद्योनिचक्रं महत् ।
तन्मध्ये विपरीतमैथुनरतप्रद्युम्नतत्कामिनी-
पृष्ठस्थां तरुणार्ककोटिविलसत्तेजःस्वरूपां शिवाम् ॥१॥

नाभि में शुद्ध लाल कमल और बन्धूकपुष्प के समान अरुण सूर्यमण्डल है। उसमें योनिचक्र भास्वर है। उसके मध्य में विपरीत मैथुनासक्त रति और कामदेव की पीठ पर कोटि तरुण सूर्यतेजस्वरूपा शिवा विराजमान हैं।।१।।

वामे छिन्नशिरोधरां तदितरे पाणौ महत्कर्तृकां
प्रत्यालीढपदां दिगन्तवसनामुन्मुक्तकेशव्रजाम् ।

छिन्नात्मीयशिरःसमुल्लसदसृग्धारां पिबन्तीं परां
बालादित्यसमप्रकाशविलसन्नेत्रत्रयोद्भासिनीम् ॥२॥

उनके बाँयें हाथ में अपना छिन्न शिर है और दाँयें हाथ में कैंची है। पैर प्रत्यालीढ हैं। निर्वस्त्र दिगम्बरा हैं। खुले केश हैं।

अपने शिर के कटने से निरन्तर निकल रही रक्तधार का समुल्लसित होकर वे पान कर रही हैं। उनके तीनों नयनों से बालादित्य के समान प्रकाश निकल रहा है, जिससे वे उद्भासित हो रही हैं।।२।।

वामादन्यत्र नालं बहुबहुलगलद्रक्तधाराभिरुच्चैः
पायन्तीमस्तिभूषां करकमललसत्कर्तृकामुग्ररूपाम् ।
रक्तामारक्तकेशीमपगतवसनां वर्णिनीमात्मशक्तिं
प्रत्यालीढोरुपादामरुणितनयनां योगिनीं योगनिद्राम् ॥३॥

उनके बाँयें भाग में आत्मशक्ति योगनिद्रा योगिनी हैं। उनके नेत्र लाल हैं। प्रत्यालीढ पद हैं। केश लाल हैं, ये भी निर्वस्त्र हैं।

इनके वस्त्र अस्थियों से निर्मित वस्त्र हैं, करकमल में कैंची है। कामुग्ररूपा ये भी एक रक्तधार का पान कर रही हैं।।३।।

दिग्वस्त्रां मुक्तकेशीं प्रलयघनघटाघोररूपां प्रचण्डां
दंष्ट्रादुष्प्रेक्ष्यवक्त्रोदरविवरलसल्लोलजिह्वाग्रभासाम् ।
विद्युल्लोलाक्षियुग्मां हृदयतटलसद्भोगिभीमां सुमूर्तिं
सद्यश्छिन्नात्मकण्ठप्रगलितरुधिरैर्डाकिनीं वर्द्धयन्तीम् ॥४॥

उनके दाँयें भाग में डाकिनी हैं। ये भी नंगी हैं। बाल खुले हुए हैं। प्रलयघनघंटा के समान इनका रूप है। दाँत प्रचण्ड हैं। दुष्प्रेक्ष्य मुख हैं। उदर विवर के समान है। लपलपाता जिह्वाग्र है। दोनों आखें बिजली के समान चमकती हैं। हृदयतल भीषण रूप के हैं। सुन्दर मूर्ति है। तुरन्त कटे शिर के कारण कण्ठ से निकलती रक्तधार का पान कर रही हैं।।४।।

ब्रह्मेशानाच्युताद्यैः शिरसि विनिहितामन्दपादारविन्दै-
रात्मज्ञैर्योगिमुख्यैः प्रतिदिनमनिशं चिन्तिताचिन्त्यरूपाम् ।
संसारे सारभूतां त्रिभुवनजननीं छिन्नमस्तां प्रशस्ता-
मिष्टां तामिष्टदात्रीं कलिकलुषहरां चेतसा चिन्तयामि ॥५॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश और आत्मज्ञ योगीमुख्य इनके अचिन्त्य चरणकमलों का ध्यान करते हैं।

संसार की सारभूता त्रिभुवनजननी छिन्नमस्ता प्रशस्त इष्टों के इष्ट की दात्री कलिकलुषहरा का चिन्तन मैं चित्त में करता हूँ।।५।।

उत्पत्तिस्थितिसंहृतीर्घटयितुं धत्ते त्रिरूपां तनुं
त्रैगुण्याज्जगतो यदीयविकृतिर्ब्रह्माच्युतः शूलभृत् ।
तामाद्यां प्रकृतिं स्मरामि मनसा सर्वार्थसंसिद्धये
यस्याः स्मेरपदारविन्दयुगले लाभं भजन्तेऽमराः ।।६।।

उत्पत्ति-स्थिति-संहार करने वाली तीन रूपों में त्रिगुणात्मक जगत् में विकृति होने पर ब्रह्मा अच्युत को भी ये शूल से दण्डित करती हैं।

उस आदि प्रकृति का स्मरण मन से मैं सर्वार्थसिद्धि के लिये करता हूँ। इनके चरणकमलयुगल को लाभ के लिये देवता भी भजते हैं।।६।।

अलिपिशितपरस्त्री योगपूजापरोऽहं
बहुविधजनभावारम्भसम्भावितोऽहम् ।
पशुजनविरतोऽहं भैरवीसंस्थितोऽहं
गुरुचरणपरोऽहं भैरवोऽहं शिवोऽहम् ।।७।।

अलिपिशित परस्त्री-योगपूजापरायण मैं हूँ। बहुजनभावारम्भसम्भावित मेरा भाव है, पशुजन से मैं दूर हूँ। भैरवी में संस्थित हूँ। मैं गुरुचरणपरायण हूँ। मैं भैरव हूँ, मैं शिव हूँ।।७।।

इदं स्तोत्रं महापुण्यं ब्रह्मणा भाषितं पुरा ।
सर्वसिद्धिप्रदं साक्षान्महापातकनाशनम् ।।८।।
यः पठेत्प्रातरुत्थाय देव्याः सन्निहितोऽपि वा ।
तस्य सिद्धिर्भवेद्देवि वाञ्छितार्थप्रदायिनी ।।९।।
धनं धान्यं सुतं जायां हयं हस्तिनमेव च ।
वसुन्धरां महाविद्यामष्टौ सिद्धीर्भवेद् ध्रुवम् ।।१०।।

यह स्तोत्र पूर्वकाल में ब्रह्मा के द्वारा कथित है। महापुण्यप्रद सर्वसिद्धिप्रद साक्षात् महापापविनाशक है।

सबेरे उठकर जो देवी-सन्निहित होकर इसका पाठ करता है, उसको वाञ्छित फल देने वाली देवी सिद्ध होती हैं। धन, धान्य, पुत्र, पत्नी, हाथी, घोड़ा, भूमि, महाविद्या, अष्टसिद्धियाँ साधक को प्राप्त होती हैं; यह निश्चित है।।८-१०।।

वैयाघ्राजिनरञ्जितस्वजघने रम्ये प्रलम्बोदरे
खर्वेऽनिर्वचनीयपर्वसुभगे मुण्डावलीमण्डिते ।

कर्त्री कुन्दरुचिं विचित्रललितां ज्ञानं दधाने पदे
मातर्भक्तजनानुकम्पिनि महामायेऽस्तु तुभ्यं नमः ॥११॥

इति प्रचण्डचण्डिकास्तोत्रं समाप्तम्

वाघम्बर से रंजित जघन, रम्य लम्बोदर, नाटी, अनिर्वचनीय सुभगपर्व, मुण्डावलि-मण्डित कैंची, विचित्र कन्दरुचि, ललिता ज्ञान देने वाले पैर, भक्तजनों पर अनुकम्पा करने वाली महामाया आपको मेरा प्रणाम समर्पित है।।११।।

●

प्रचण्डचण्डिकाकवचम्

देव्युवाच—

कथिता च्छिन्नमस्ताया या या विद्याः सुगोपिताः ।
त्वया नाथेन जीवेश श्रुताश्चाधिगता मया ॥१॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कवचं पूर्वसूचितम् ।
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं कथ्यतां प्रभो ॥२॥

पूर्वपीठिका—श्रीदेवी ने कहा कि हे नाथ! जीवों के स्वामी! आपने छिन्नमस्ता की जिन-जिन गुप्त विद्याओं को बताया, उन्हें मैंने सुना और अधिगत कर लिया।

अब मैं पूर्वसूचित इनके त्रैलोक्यविजय नामक कवच को सुनना चाहती हूँ। हे प्रभु! आप कृपया सुनाइये।।१-२।।

भैरव उवाच—

शृणु वक्ष्यामि देवेशि सर्वदेवनमस्कृते ।
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं सर्वमोहनम् ॥३॥
सर्वविद्यामयं साक्षात्सुरासुरजयप्रदम् ।
धारणात्पठनादीशस्त्रैलोक्यविजयी विभुः ॥४॥
ब्रह्मा नारायणो रुद्रो धारणात्पठनाद्यतः ।
कर्ता पाता च संहर्ता भुवनानां सुरेश्वरि ॥५॥
न देयं परशिष्येभ्यो ह्यभक्तेभ्योऽपि विशेषतः ।
देयं शिष्याय भक्ताय प्राणेभ्योऽप्यधिकाय च ॥६॥

भैरव ने कहा कि हे देवि! सर्वदेववन्दिते! सर्वमोहन त्रैलोक्यविजय नामक कवच कहता हूँ। यह कवच सर्वविद्यामय साक्षात् सुरासुर-विजयप्रद है। इसके पाठ करने और धारण करने से तीनों लोकों पर विजय प्राप्त होती है। हे सुरेश्वरि! ब्रह्मा, विष्णु, महेश इसी का पाठ करके और धारण करके लोकों के कर्त्ता, पालनकर्त्ता और संहारकर्त्ता हैं,

दूसरे के भक्त, शिष्यों को इसे नहीं देना चाहिये। अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय भक्त को ही देना चाहिये।।३-६।।

देव्याश्च च्छिन्नमस्तायाः कवचस्य च भैरवः ।
ऋषिर्विराट् छन्दस्तु देवता च्छिन्नमस्तका ।।७।।

विनियोग—छिन्नमस्ता देवी की इस कवच के ऋषि भैरव, छन्द विराट् एवं देवता छिन्नमस्तका हैं। त्रैलोक्य-विजय एवं मुक्ति हेतु इसका विनियोग कहा गया है।।७।।

त्रैलोक्यविजये मुक्तौ विनियोगः प्रकीर्तितः ।
हूंकारो मे शिरः पातु छिन्नमस्ता बलप्रभा ।।८।।
ह्रां हूं ऐं त्र्यक्षरी पातु भालं वक्त्रं दिगम्बरी ।
श्रीं ह्रीं हूं ऐं दृशौ पातु मुण्डकर्त्रींधरापि सा ।।९।।
सा विद्या प्रणवाद्यन्ता श्रुतियुग्मं सदाऽवतु ।
वज्रवैरोचनीये हुं फट् स्वाहा च ध्रुवादिका ।।१०।।
घ्राणं पातु छिन्नमस्ता मुण्डकर्तृविधारिणी ।
श्रीमायाकूर्चवाग्बीजैर्वज्रवैरोचनीये हूं ।।११।।
हूं फट् स्वाहा महाविद्या षोडशी ब्रह्मरूपिणी ।
स्वपार्श्वे वर्णिनी चासृग्धारां पाययन्ती मुदा ।।१२।।

कवच—हुंकार छिन्नमस्ता बलप्रभा मेरे शिर की रक्षा करे। ह्रां ह्रीं ऐं त्र्यक्षरी दिगम्बरी मेरे ललाट और मुख की रक्षा करे।

मुण्डकर्त्रींधरा श्रीं ह्रीं हूं ऐं मेरे नेत्रों की रक्षा करे। प्रणवाद्या विद्या ॐ वज्रवैरोचनीये हूं फट् स्वाहा मेरे दोनों कानों की रक्षा करे।

श्रीं ह्रीं हुं ऐं वज्रवैरोचनीये हूं हूं फट् स्वाहा षोडशाक्षरी ब्रह्मरूपिणी महाविद्या जो अपने पार्श्ववर्तिनी वर्णिनी को रक्तधार पिला रही है, वह प्रसन्नतापूर्वक अपनी शक्तिसहित सर्वदा मेरे मुख की रक्षा करे।।८-१२।।

वदनं सर्वदा पातु छिन्नमस्ता स्वशक्तिका ।
मुण्डकर्तृधरा रक्ता साधकाभीष्टदायिनी ।।१३।।
वर्णिनी डाकिनीयुक्ता सापि मामभितोऽवतु ।
रमाद्या पातु जिह्वां च लज्जाद्या पातु कण्ठकम् ।।१४।।
कूर्चाद्या हृदयं पातु वागाद्या स्तनयुग्मकम् ।
रमया पुटिता विद्या पार्श्वौ पातु सुरेश्वरी ।।१५।।

मायया पुटिता पातु नाभिदेशे दिगम्बरी ।
कूर्चेन पुटिता देवी पृष्ठदेशे सदावतु ।।१६।।

मुण्ड, कैंची धारण करने वाली, रक्तवर्णा, साधकों को अभीष्ट देने वाली वर्णिनी और डाकिनी से युक्त छिन्नमस्ता मुझे भयों से रक्षा करे। श्रीं ह्रीं हूं ऐं वज्रवैरोचनीये हूं हूं फट् स्वाहा मेरी जीभ की रक्षा करे। ह्रीं श्रीं हूं ऐं वज्रवैराचनीये हूं हूं फट् स्वाहा मेरे कण्ठ की रक्षा करे।

हूं ह्रीं श्रीं ऐं वज्रवैरोचनीये हूं हूं फट् स्वाहा मेरे हृदय की रक्षा करे। ऐं हूं ह्रीं श्रीं वज्रवैरोचनीये हूं हूं फट् स्वाहा मेरे दोनों स्तनों की रक्षा करे। श्रीं ह्रीं हूं ऐं वज्रवैरोचनीये हूं हूं फट् स्वाहा श्रीं सुरेश्वरी मेरे दोनों पार्श्वों की रक्षा करे।

ह्रीं श्रीं हूं ऐं वज्रवैरोचनीये हूं हूं फट् स्वाहा ह्रीं दिगम्बरी मेरे नाभिदेश की रक्षा करे। हूं ह्रीं श्रीं ऐं वज्रवैरोचनीये हूं हूं फट् स्वाहा हूं मेरे पीठ की रक्षा सर्वदा करे।।१३-१६।।

वाग्बीजपुटिता चैषा मध्यं पातु सशक्तिका ।
ईश्वरी कूर्चवाग्बीजैर्वज्रवैरोचनीये हूं ।।१७।।
हूं फट् स्वाहा महाविद्या कोटिसूर्यसमप्रभा ।
छिन्नमस्ता सदा पायादूरुयुग्मं सशक्तिका ।।१८।।
ह्रीं हूं वर्णिनी जानुं श्रीं ह्रीं हूं च डाकिनी पदम् ।
सर्वविद्यास्थिता नित्या सर्वाङ्गं मे सदावतु ।।१९।।
प्राच्यां पायादेकलिङ्गा योगिनी पावकेऽवतु ।
डाकिनी दक्षिणे पातु श्रीमहाभैरवी च माम् ।।२०।।
नैर्ऋत्यां सततं पातु भैरवी पश्चिमेऽवतु ।
इन्द्राक्षी पातु वायव्येऽसितांगी चोत्तरे तथा ।।२१।।
संहारिणी सदा पातु शिवकोणे सकर्तृकाः ।
इत्यष्टशक्तयः पान्तु दिग्विदिक्षु सकर्तृकाः ।।२२।।

ऐं हूं ह्रीं श्रीं वज्रवैरोचनीये हूं हूं फट् स्वाहा ऐं अपनी शक्तियों सहित मेरे कटिदेश की रक्षा करे। हूं ऐं वज्रवैरोचनीये हूं हूं फट् स्वाहा महाविद्या ईश्वरी कोटि सूर्य के समान प्रभा वाली छिन्नमस्ता सर्वदा मेरे दोनों ऊरुओं की रक्षा करे। ह्रीं हूं वर्णिनी दोनों जानुओं की रक्षा करे। श्रीं ह्रीं हूं डाकिनी मेरे पैरों की रक्षा करे।

सर्वविद्यास्थिता नित्या सर्वदा मेरे सभी अंगों की रक्षा करे। पूर्व में एकलिंगा और अग्निकोण में योगिनी रक्षा करे। दक्षिण में मेरी रक्षा डाकिनी करे।

श्रीमहाभैरवी मेरी रक्षा नैर्ऋत्य में करे। पश्चिम में मेरी रक्षा भैरवी करे। वायव्य में मेरी

रक्षा इन्द्राक्षी करे और उत्तर में मेरी रक्षा असितांगी करे। ईशान में संहारिणी कैंची-सहित मेरी रक्षा करे। इस प्रकार आठ शक्तियाँ कैंची-धारिणी मेरी रक्षा सर्वदा दिशा और विदिशाओं में करें।।१७-२२।।

क्रीं क्रीं क्रीं पातु मां पूर्वे हूं हूं मां पातु पावके ।
ह्रीं ह्रीं मां दक्षिणे पातु दक्षिणे कालिकेऽवतु ।।२३।।
क्रीं क्रीं क्रीं चैव नैर्ऋत्यां हूं हूं च मां पश्चिमेऽवतु ।
हूं हूं पातु मरुत्कोणे स्वाहा पातु सदोत्तरे ।।२४।।
महाकाली खड्गहस्ता शिवकोणे सदावतु ।
तारो माया वधूः कूर्चं फट्कारोऽयं महामनुः।।२५।।
खड्गकर्तृधरा तारा चोर्ध्वदेशं सदावतु ।
ह्रीं स्त्रीं हूं फट् च पाताले पातु चैकजटा सती ।
तारा तु सहिता खेऽस्मान्महानीलसरवती ।।२६।।

क्रीं क्रीं क्रीं मेरी रक्षा पूर्व में करे। हूं हूं मेरी रक्षा अग्निकोण में करे। ह्रीं ह्रीं मेरी रक्षा दक्षिण में करे। क्रीं क्रीं क्रीं मेरी रक्षा नैर्ऋत्य में करे। हूं हूं मेरी रक्षा पश्चिम में करे। हूं हूं मेरी रक्षा वायव्य में करे। स्वाहा सर्वदा उत्तर में रक्षा करे। खड्गहस्ता महाकाली मेरी रक्षा ईशान में करे। महामन्त्र ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट् रूपा खड्ग-कैंचीधारिणी तारा मेरी रक्षा सर्वदा ऊर्ध्वदेश में करे। ह्रीं स्त्रीं हूं फट् एकजटा मेरी रक्षा पाताल में करे। नील सरस्वती के साथ तारा मेरी रक्षा आकाश में करे।।२३-२६।।

इति ते कथितं देव्याः कवचं मन्त्रविग्रहम् ।
यद्धृत्वा पठनाद्भीमः क्रोधाख्यो भैरवः स्मृतः ।।२७।।
सुरासुरमुनीन्द्राणां कर्ता हर्ता भवेत्स्वयम् ।
यस्याज्ञया मधुमती याति सा साधकान्तिकम् ।।२८।।
भूतिन्याद्याश्च डाकिन्यो यक्षिण्याद्याश्च खेचराः ।
आज्ञां गृह्णन्ति तास्तस्य कवचस्य प्रसादतः ।।२९।।

फलश्रुति—हे देवि! इस मन्त्रविग्रह कवच का वर्णन किया गया। इसी का पाठ करके एवं धारण करके भीम क्रोधभैरव के समान हो जाते हैं। इसके पाठ और धारण करने से सुर-असुर-मुनीन्द्रों का कर्त्ता-हर्त्ता स्वयं साधक हो जाता है। मधुमती उसकी आज्ञा का पालन करती हैं। साधक कान्तियुक्त होता है। भूतिनी, डाकिनी, यक्षिणी आदि खेचरी शक्तियाँ इस कवच के प्रभाव से उसकी आज्ञा का पालन करती हैं।।२७-२९।।

एतदेव परं ब्रह्मकवचं मन्मुखोदितम् ।
देवीमभ्यर्च्य गन्धाद्यैर्मूलेनैव पठेत्सकृत् ।।३०।।

संवत्सरकृतायास्तु पूजायाः फलमाप्नुयात् ।
भूर्जे विलिखितञ्चैतद् गुटिकां काञ्चनस्थिताम् ॥३१॥
धारयेद्दक्षिणे बाहौ कण्ठे वा यदि वाग्यतः ।
सर्वैश्वर्युतो भूत्वा त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥३२॥

मेरे मुख से निःसृत इस परब्रह्म कवच का पाठ देवी का अर्चन मूल मन्त्र से एवं गन्धादि से करने के बाद करे। इसके पाठ से वर्ष भर की पूजा का फल प्राप्त होता है। इसे भोजपत्र पर लिखकर गुटिका बनाकर सोने की तावीज में भरकर दक्षिण हाथ में या कण्ठ में धारण करने से वाणी और ऐश्वर्य से युक्त होकर तीनों लोकों को अपने वश में साधक कर सकता है।।३०-३२।।

तस्य गेहे वसेल्लक्ष्मीर्वाणी च वदनाम्बुजे ।
ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि तद्गात्रे यान्ति सौम्यताम् ॥३३॥
इदं कवचमज्ञात्वा यो भजेच्छिन्नमस्तकाम् ।
सोऽपि शस्त्रप्रहारेण मृत्युमाप्नोति सत्वरम् ॥३४॥

इति भैरवतन्त्रे छिन्नमस्ताकवचं समाप्तम्

उसके घर में लक्ष्मी का वास होता है और मुखकमल में सरस्वती का वास होता है। ब्रह्मास्त्रादि शस्त्र उसके गात्र के समीप सौम्य हो जाते हैं। इस कवच को जाने विना जो छिन्नमस्ता का भजन करता है, उसकी मृत्यु शस्त्रप्रहार से हो जाती है।।३३-३४।।

●

श्यामास्तोत्रम्

कर्पूरं मध्यमान्त्यस्वरपरिरहितं सेन्दुवामाक्षियुक्तं
बीजं ते मातरेतत्त्रिपुरहरवधूः त्रिःकृतं ये जपन्ति ।
तेषां गद्यानि पद्यानि च मुखकुहरादुल्लसन्त्येव वाचः
स्वच्छन्दं ध्वान्तधाराधररुचिरुचिरे सर्वसिद्धिं गतानाम् ॥१॥

हे त्रिपुरहरवधू माते! कर्पूर शब्द के प्रथमाक्षर 'क' के साथ र, ई और बिन्दु लगाकर क्रीं क्रीं क्रीं का जप जो करते हैं, उनके मुख से गद्य-पद्यमय स्वच्छन्द प्रवाह बहता है। हे श्याम मेघछवि वाली! उनको सभी सिद्धियाँ मिल जाती हैं।।१।।

ईशानः सेन्दुवामश्रवणपरिगतो बीजमन्यन्महेशि
द्वन्द्वचेता मन्दचेता यदि जपति जनो वारमेकं कदाचित् ।
जित्वा वाचामधीशं धनदमपि चिरं मोहयन्त्यन्नम्बुजाक्षी
वृन्दं चन्द्रार्द्धचूडे प्रभवति स महाघोररावावतंसे ॥२॥

हे शवाभरणे! हे चन्द्रार्द्धचूड़े महेशि! ह्रीं ह्रीं बीजद्वय का जप यदि मन्दबुद्धि एक बार भी करता है तो वह बृहस्पति को भी परास्त करके कुवेर के समान धनी और कमलनयनी स्त्रियों के समूह को चिर काल तक मोहित रखकर उनका स्वामी होता है।।२।।

ईशो वैश्वानरस्थः शशिधरविलसद्वामनेत्रेण युक्तो
बीजं ते द्वन्द्वमन्यद्विगलितचिकुरे कालिके ये जपन्ति ।
द्वेष्टारं घ्नन्ति ते च त्रिभुवनमपि ते वश्यभावं नयन्ति
सृक्कद्वन्द्वास्रधाराद्वयधरवदने दक्षिणे कालिकेति ॥३॥

हे विगलितचिकुरे कालिके! जो ह्रीं ह्रीं बीजद्वय का जप एकाग्र मन से करते हैं, उनके शत्रुओं का नाश हो जाता है।

वे तीनों लोकों के अभीष्ट को प्राप्त करते हैं। हे रुधिर-शोभितमुखकमले! वे संसार के सभी वैभव को प्राप्त कर लेते हैं।।३।।

ऊर्ध्वे वामे कृपाणं करकमलतले छिन्नमुण्डं तथाधः
सव्येऽभीतिं वरं च त्रिजगदघहरे दक्षिणे कालिके च ।
जप्त्वैतन्नाम ये वा तव मनुविभवं धारयन्त्येतदम्ब
तेषामष्टौ करस्थाः प्रकटितवदने सिद्धयस्त्र्यम्बकस्य ॥४॥

बाँयें करकमलों में मुण्ड और कृपाण, दाँयें हाथों में पाश और अभयमुद्रा वाली पापविनाशिनी तुम्हारा जो ध्यान करते हैं और दक्षिणकालिके का जप करते हैं, उन्हें शिव की सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। हे प्रकटितवदने! वे अभिराम हो जाते हैं।।४।।

वर्गाद्यं वह्निसंस्थं विधुरतिवलितं तत्त्रयं कूर्चयुग्मं
लज्जाद्वन्द्वं च पश्चात्स्मितमुखि त्वदधष्टद्वयं योजयित्वा ।
मातर्ये ये जपन्ति स्मरहरमहिले भावयन्तः स्वरूपं
ते लक्ष्मीलास्यलीलाकमलदलदृशः कामरूपा भवन्ति ॥५॥

हे मन्दस्मितमुखि! हे स्मरहरमहिले! जो क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा का जप नित्य करते हैं और तुम्हारा ध्यान करते हैं, वे धनवान, रूपवान और श्रीमान् हो जाते हैं।

हे स्मरहरमहिले! क्रीं क्रीं क्रीं हूं हू ह्रीं ह्रीं स्वाहा का जप जो करते हैं और ध्यान करते हैं, वे अति धनवान होकर कमलनेत्र कामरूप हो जाते हैं।।५।।

प्रत्येकं वा द्वयं वा त्रयमपि च परं बीजमत्यन्तगुह्यं
त्वन्नाम्ना योजयित्वा सकलमपि सदा भावयन्तो जपन्ति ।
तेषां नेत्रारविन्दे विहरति कमलावक्त्रशुभ्रांशुबिम्बे
वाग्देवी दिव्यमुण्डस्रगतिशयलसत्कण्ठपीनस्तनाढ्ये ॥६॥

हे मुण्डमालाधारिणि! हे पीनस्तनी! जो केवल 'क्रीं' या क्रीं क्रीं क्रीं या क्रीं क्रीं एक, तीन या दो अत्यन्त गुह्य बीजों का जप तेरे नाम दक्षिणकालिके के साथ जोड़कर ध्यानपूर्वक करते हैं, उनके कमलनयनों में चन्द्रमुखी कमला विहार करती हैं और मुख में सरस्वती का निवास होता है।।६।।

गतासूनां बाहुप्रकरकृतकाञ्चीपरिलसन्
नितम्बां दिग्वस्त्रां त्रिभुवनविधात्रीं त्रिनयनाम्।
श्मशानस्थे तल्पे शवहृदि महाकालसुरत-
प्रयुक्तां त्वां ध्यायञ्जननि जडचेता अपि कविः ॥७॥

हे जननि! आपका नितम्ब मृतकों के बाहुवृन्द के वस्त्र से शोभित है। आप निर्वस्त्र दिगम्बरी हैं। तीनों लोकों की सृष्टि करने वाली हैं। आप त्रिलोचना हैं। शिवशवहृदय पर श्मशान में महाकाल से सुरत में आसक्त रहती हैं। ऐसा ध्यान करने से मूर्ख भी कवि हो जाता है।।७।।

शिवाभिर्घोराभिः शवनिवहमुण्डास्थिनिकरैः
परं सङ्कीर्णायां प्रकटितचितायां हरवधूम्।
प्रविष्टां सन्तुष्टामुपरि सुरतेनातियुवतीं
सदा त्वां ध्यायन्ति क्वचिदपि न तेषां परिभवः ॥८॥

घोर शिवा योगिनियों और शवमुण्डास्थि राशि से परिपूर्ण ज्वलित चिताभूमि पर अतिशय यौवनमद से आघूर्ण विपरीत रति से प्रसन्न होने वाली तुम्हारा ध्यान करके जो जप करते हैं, उनका पराभव कभी नहीं होता।।८।।

वदामस्ते किं वा जननि वयमुच्चैर्ज्जडधियो
न धाता नापीशो हरिरपि न ते वेत्ति परमम्।
तथापि त्वद्भक्तिर्मुखरयति चास्माकमसिते
तदेतत्क्षन्तव्यं न खलु पशुरोषः समुचितः ॥९॥

हे जननि! हम जड़मति तुम्हारे महान् तत्त्व को कैसे कह सकते हैं? जबकि ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी इसके बारे में हैरान रहते हैं। तथापि तुम्हारी भक्ति हमें तुम्हारा वर्णन करने के लिये विवश करती है। अतः मेरे इस दोष के लिये मुझे क्षमा कीजिये; क्योंकि पशु पर रोष कदापि उचित नहीं है।।९।।

समन्तादापीनस्तनजघनधृग्यौवनवती रतासक्तो
नक्तं यदि जपति भक्तस्तव मनुम्।
विवासास्त्वां ध्यायन् गलितचिकुरस्तस्य वशगाः
समस्ताः सिद्धौघा भुवि चिरतरं जीवति कविः ॥१०॥

जो वीरभाव का साधक तुम्हारे पुष्ट जघन, कुच, यौवनमद से पूर्ण नेत्र, दिगम्बर स्वरूप का ध्यान करता हुआ मुक्तकेश मैथुनरत होकर रात में तुम्हारे मन्त्र का जप करता है, उसके वश में सिद्धों का संघ हो जाता है। वह कवि होकर दीर्घजीवी होता है।।१०।।

समाः सुस्थीभूतां जपति विपरीतां यदि सदा
विचिन्त्य त्वां ध्यायन्नतिशयमहाकालसुरताम् ।
तदा तस्य क्षोणीतलविहरमाणस्य विदुषः
कराम्भोजे वश्या हरिहरवधूसिद्धिनिवहाः ।।११।।

महाकाल के संग निरन्तर रतिविपरीतानन्दविलग्न का ध्यान करके तेरे मन्त्रराज का जो जप करते हैं, वे साधक इस भूतल पर स्वच्छन्द विहार करते हैं। उनको सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। वे आनन्दपूर्वक रहते हैं।।११।।

प्रसूते संसारे जननि भवति पालयति च
समस्तं क्षित्यादि प्रलयसमये संहरति च ।
ततस्त्वं धातापि त्रिभुवनपतिः श्रीपतिरहो
महेशोऽपि प्रायः सकलमपि किं स्तौमि भवतीम् ।।१२।।

हे जननि! तुम्हीं इस संसार की रचना करती हो और भली-भाँति इसका पालन करती हो। पुनः तुम्हीं क्षिति से शिव तक के छत्तीस तत्त्वों का प्रलयकाल में संहार करती हो, ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी जब तुम्हारे गुणों के गायन करने में असमर्थ हैं तब मैं असमर्थ अल्पज्ञ कैसे तुम्हारा स्तवन कर सकता हूँ।।१२।।

अनेके सेवन्ते हरगृहिणी गीर्वाणनिवहा
विमूढान्ते मातः किमपि नहि जानन्ति परमम् ।
समाराध्यामाद्यां हरिहरविरञ्च्यादिविबुधैः
प्रपन्नोऽस्मि स्वैरं रतिरसमहानन्दनिरताम् ।।१३।।

बहुत मनुष्य तुमसे अधिक देवताओं को मानकर उनकी उपासना करते हैं। हे माते! वे मूढ़बुद्धि हैं, उन्हें परमतत्त्व का ज्ञान नहीं है।

ब्रह्मा-विष्णु-महेश की आराध्या रति इस महानन्द में लीन आद्या के चरणों का आश्रय ही मैं रखता हूँ।।१३।।

धरित्री कीलालं शुचिरपि समीरोऽपि गगनं
त्वमेका कल्याणी गिरिशरमणी कालि सकलम् ।
स्तुतिः का ते मातस्तव करुणया मामगतिकं
प्रसन्ना त्वं भूया भवमनु न भूयान्मम मनुः ।।१४।।

तुम्हीं पृथ्वी-जल-पावक-पवन और आकाश हो। हे शिवसुन्दरी कल्याणी कालिके! सारा संसार तुम्हारा लीलाविलास है।

हे माँ! तुम्हें नमस्कार मैं क्या करूँ? मुझ अकिंचन पर विशाल करुणा कीजिये। प्रसन्न होकर मेरे जन्म-मरण के जाल को नष्ट कीजिये।।१४।।

श्मशानस्थः स्वस्थो गलितचिकुरो दिक्पटधरः
सहस्रं त्वर्काणां निजगलितवीर्येण कुसुमम्।
जपंस्त्वत्प्रत्येकं मनुमपि तव ध्याननिरतो
महाकालि स्वैरं स भवति धरित्रीपरिवृढः ॥१५॥

ध्यान और मन्त्रजप के बाद जो एक हजार मन्दारपुष्पों को अपने वीर्य से मिश्रित करके एक-एक फूल से एक हजार हवन चिताभूमि में बिखरे बाल, नग्न, स्वस्थ चित्त होकर करता है, वह बिना अपेक्षा के धरामण्डल का एकमात्र अधिनायक हो जाता है।।१५।।

गृहे सम्मार्ज्जन्या परिगलितवीर्यं हि कुसुमं
समूलं मध्याह्ने वितरति चितायां कुजदिने।
समुच्चार्य प्रेम्णा मनुमपि सकृत्कालि सततं
गजारूढो याति क्षितिपरिवृढः सत्कविवरः ॥१६॥

चाण्डालिनी ग्रह के केशराशि में अपना वीर्य मिलाकर मंगलवार की आधी रात में जो चिता की अग्नि में हवन मन्त्रजप के साथ करता है, वह हाथी पर सवार होकर सर्वदा विचरण करता है। वह भूपति होता है और कविश्रेष्ठ होता है।।१६।।

स्वपुष्पैराकीर्णं कुसुमधनुषो मन्दिरमहो-
पुरो ध्यायं ध्यायं यदि जपति भक्तस्तव मनुम्।
स गन्धर्वश्रेणीपतिरिव कवित्वामृतनदी-
नदेनः पर्यन्ते परमपदलीनः प्रभवति ॥१७॥

रजस्वला स्त्री की योनि को पुष्पाञ्जलि देकर अपने सामने उसे देखते हुए तेरा भक्त यदि मन्त्रजप करता है तो वह गन्धर्वों के समूह का स्वामी हो जाता है। वह कविताmृतसरितापारावार हो जाता है। अन्त काल में वह परम पद में लीन हो जाता है।।१७।।

त्रिपञ्चारे पीठे शवशिवहृदि स्मेरवदनां
महाकालेनोच्चैर्मदनरसलावण्यनिरताम्।
समासक्तो नक्तं स्वयमपि रतानन्दनिरतो
जनो यस्त्वां ध्यायेदपि जननि स स्यात्स्मरहरः ॥१८॥

हे माते! पञ्च त्रिकोणपीठ पर शिवशवहृदय के ऊपर आसीन मन्द मुस्कानमुखी,

महाकाल के साथ प्रौढ़ मैथुन में आनन्दित तुम्हारा ध्यान करते हुए स्वयं मैथुनानन्द में निरत जो मन्त्र जपता है, वह शंकर के समान काम का विनाशक हो जाता है।।१८।।

सलोमास्थि स्वैरं पललमपि मार्ज्जारमपि ते
परं चौष्ट्रं मैषं नरमहिषयोच्छागमपि वा।
बलिं ते पूजायामपि वितरतां मर्त्यवसतां
सतां सिद्धिः सर्वा प्रतिपदमपूर्वा प्रभवति ॥१९॥
वशी लक्षं मन्त्रं प्रजपति हविष्याशनरतो
दिवा मातर्युष्मच्चरणयुगलध्याननिपुणः।
परं नक्तं नग्नो विधुवनविनोदेन च मनुं
जपेल्लक्षं सम्यक्स्मरहरसमानः क्षितितले ॥२०॥

हे माते! भैंसा, उँट, मार्जार, भेड़ा, मनुष्य और बकरे के लोमास्थिसहित मांस की बलि पूजन में तुम्हारे लिये जो देते हैं, उसे सभी सिद्धियाँ मिल जाती हैं और उनकी सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। हविष्यान्न का भोजन, इन्द्रियजित होकर जो हृदय में ध्यान करता है, तेरे दोनों चरणकमलों के सामने एक लाख मन्त्र जपता है और रात में नंगे होकर मैथुन करते हुए तुम्हारे मन्त्र का जप एक लाख करता है, वह शंकर के समान नमनीय हो जाता है।।१९-२०।।

इदं स्तोत्रं मातस्तव मनुसमुद्धारणजनुः
स्वरूपाख्यं पादाम्बुजयुगलपूजाविधियुतम्।
निशार्द्धे वा पूजासमय अथवा यस्तु पठति
प्रलापस्तस्यापि प्रसरति कवित्वामृतरसः ॥२१॥

हे माते! तुम्हारा यह स्तोत्र मन्त्रोद्धार का प्रकार दिखाता है। तुम्हारे चरणयुगल की पूजाविधि और तुम्हारे स्वरूप को बतलाता है। आधी रात में अर्चन के बाद जो इसका पाठ करता है, उसकी साधारण वाणी से काव्यरससुधा का प्रवाह बहता है।।२१।।

कुरङ्गाक्षीवृन्दस्तमनुसरति प्रेमतरलं
वशस्तस्य क्षौणीपतिरपि कुबेरप्रतिनिधिः।
रिपुः कारागारं कलयति च तत्केलिकलया
चिरं जीवन्मुक्तः स भवति सुभक्तः प्रतिजनुः ॥२२॥

इति महाकालविरचितं श्यामास्तोत्रं समाप्तम्

उसके प्रेम में विवश होकर मृगनयनी बालाएँ उसके पास स्वयं जाती हैं। वह कुवेर का प्रतिनिधि होता है। उसके वश में राजा होते हैं। शत्रु कारागार में बन्द हो जाते हैं।

वह केलिकला से युक्त होता है। चिरञ्जीवी होता है। वह वीर भक्त होता है। उसे जन्म-मृत्यु से मुक्ति मिलती है। वह मोक्ष प्राप्त करता है।।२२।।

●

श्यामाकवचम्

भैरव्युवाच—

कालीपूजा श्रुता नाथ भावाश्च विविधाः प्रभो ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कवचं पूर्वसूचितम् ।।१।।
त्वमेव स्रष्टा पाता च संहर्ता च त्वमेव हि ।
त्वमेव शरणं नाथ· पाहि मां दुःखसङ्कटात् ।।२।।

पूर्वपीठिका—भैरवी ने कहा कि हे नाथ! मैंने काली-पूजा और विविध भावों को सुना। अब मैं पूर्वसूचित इनके कवच को सुनना चाहती हूँ। आप ही स्रष्टा, पालक और संहारकर्ता हैं। हे नाथ! मैं आपकी शरण में हूँ। मुझे संकट से उबारिये।।१-२।।

भैरव उवाच—

रहस्यं शृणु वक्ष्यामि भैरवी प्राणवल्लभे ।
श्रीजगन्मङ्गलं नाम कवचं मन्त्रविग्रहम् ।।३।।
पठित्वा धारयित्वा च त्रैलोक्यं मोहयेत्क्षणात् ।
नारायणोऽपि यद्धृत्वा नारी भूत्वा महेश्वरम् ।।४।।

भैरव ने कहा कि हे प्राणप्रिये भैरवि! मैं रहस्य को कहता हूँ, आप सुनिये। श्रीजगन्मंगल नामक कवच मन्त्रविग्रह है। इसके पाठ से एवं धारण से क्षणमात्र में ही तीनों लोक मोहित हो जाते हैं। स्वयं नारायण ने भी इसी को धारण करके मोहिनी का रूप धारण किया था।।३-४।।

योगेशं क्षोभमनयद्यद्धृत्वा च रघूत्तमः ।
वरदृप्तान् जघानैव रावणादिनिशाचरान् ।।५।।
यस्य प्रसादादीशोऽपि त्रैलोक्यविजयी विभुः ।
धनाधिपः कुबेरोऽपि सुरेशोऽभूच्छचीपतिः ।।६।।
एवं हि सकला देवाः सर्वसिद्धीश्वराः प्रिये ।।७।।

योगेश्वर ने महेश्वर को क्षुब्ध किया था। राघवेन्द्र ने वरदृप्त रावण का और निशाचरों का वध इसी को धारण करके किया था। इसी के प्रभाव से ईश्वर भी त्रिलोकविजयी हुए। इसी को धारण करके कुवेर धनाधीश हुए और शचीपति इन्द्र इसी के प्रभाव से सुरेश्वर हो गये। इसी के प्रभाव से सभी देवता सब सिद्धियों के स्वामी हैं।।५-६।।

श्रीजगन्मङ्गलस्यापि कवचस्य ऋषिः शिवः।
छन्दोऽनुष्टुब्देवता कालिका दक्षिणेरिता ॥८॥
जगतां मोहने दुष्टविजये भुक्तिमुक्तिषु।
योषिदाकर्षणे चैव विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥९॥

विनियोग—देवी श्यामा के इस जगन्मङ्गल नामक कवच के ऋषि साक्षात् शिव, छन्द अनुष्टप् और देवता दक्षिणकालिका हैं। जगत् के सम्मोहन, दुष्टों पर विजय, भोग-मोक्ष की प्राप्ति एवं योषिदाकर्षण हेतु इसका विनियोग कहा गया है।।८-९।।

ॐ शिरो मे कालिका पातु क्रीङ्कारैकाक्षरी परा।
क्रीं क्रीं क्रीं मे ललाटं च कालिका खड्गधारिणी ॥१०॥
हूं हूं पातु नेत्रयुग्मं ह्रीं ह्रीं पातु श्रुती मम।
दक्षिणे कालिका पातु घ्राणयुग्मं महेश्वरि ॥११॥

कवच—मेरे शिर को रक्षा एकाक्षरी 'क्रीं' परा कालिका करे। क्रीं क्रीं क्रीं कालिका खड्गधारिणी मेरे ललाट की रक्षा करे। मेरे दोनों नेत्रों की रक्षा हूं हूं करे। दोनों कानों की रक्षा ह्रीं ह्रीं करे। दोनों नासाछिद्रों की रक्षा महेश्वरी दक्षिणकालिका करें।।१०-११।।

क्रीं क्रीं क्रीं रसनां पातु हूं हूं पातु कपोलकम्।
वदनं सकलं पातु ह्रीं ह्रीं स्वाहा स्वरूपिणी ॥१२॥
द्वाविंशत्यक्षरी स्कन्धौ महाविद्या सुखप्रदा।
खड्गमुण्डधरा काली सर्वाङ्गमभितोऽवतु ॥१३॥
क्रीं हूं क्रीं त्र्यक्षरी पातु चामुण्डा हृदयं मम।
ऐं हूं ॐ ऐं स्तनद्वन्द्वं ह्रीं फट् स्वाहा ककुत्स्थलम् ॥१४॥

क्रीं क्रीं क्रीं जीभ की रक्षा करे। हूं हूं कपोलों की रक्षा करे। ह्रीं ह्रीं स्वाहारूपिणी मेरे सभी अंगों और मुख की रक्षा करे। महाविद्या सुखप्रदा बाईस अक्षरों वाली क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा मेरे दोनों कन्धों की रक्षा करे। खड्ग-मुण्डधरा काली मेरे सभी अंगों की रक्षा करे। क्रीं हूं क्रीं त्र्यक्षरी चामुण्डा मेरे हृदय की रक्षा करे। ऐं हूं ॐ ऐं मेरे स्तनों की एवं ह्रीं फट् स्वाहा मेरे ककुदस्थल की रक्षा करे।।१२-१४।।

अष्टाक्षरी महाविद्या भुजौ पातु सकर्तृका।
क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं करौ पातु षडक्षरी मम ॥१५॥
क्रीं नाभि मध्यदेशं च दक्षिणे कालिकाऽवतु।
क्रीं स्वाहा पातु पृष्ठं च कालिका सा दशाक्षरी ॥१६॥

क्रीं मे गुह्यं सदा पातु कालिकायै नमस्ततः ।
सप्ताक्षरी महाविद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥१७॥

अष्टाक्षरी क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा कैचीधारिणी मेरी भुजाओं की रक्षा करे। षडक्षरी कीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं मेरे हाथों की रक्षा करे। क्रीं दक्षिणे कालिका नाभि और मध्य देश की रक्षा दक्षिणे कालिके क्रीं स्वाहा करे।

कालिका दशाक्षरी क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके फट् मेरे पीठ की रक्षा करे। क्रीं मेरे गुह्यदेश की रक्षा करे। मेरे गुह्यदेश की रक्षा क्रीं कालिकायै नमः सप्ताक्षरी महाविद्या सर्वतन्त्रगोपिता करे।।१५-१७।।

ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिका हूं हूं पातु कटिद्वयम् ।
काली दशाक्षरी विद्या स्वाहा ममोरुयुग्मकम् ॥१८॥
ॐ ह्रीं क्रीं मे स्वाहा पातु कालिका जानुनि सदा ।
काली हृदयविद्येयं चतुर्वर्गफलप्रदा ॥१९॥
क्रीं ह्रीं ह्रीं पातु सा गुल्फं दक्षिणे कालिकावतु ।
क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा पदं पातु चतुर्दशाक्षरी मम ॥२०॥

ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके हूं हूं दशाक्षरी मेरे दोनों कटिभाग की रक्षा करे। क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके फट् स्वाहा मेरे ऊरुद्वय की रक्षा करे। ॐ ह्रीं क्रीं स्वाहारूपी कालिका मेरे घुटनों की रक्षा करे।

यह कालीहृदय विद्या धर्मार्थ-काम-मोक्षप्रदायक है। क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके मेरे टखनों की रक्षा करे। क्रों क्रों हूं हूं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा चतुर्दशाक्षरी मेरे पैरों की रक्षा करे।।१८-२०।।

खड्गमुण्डधरा काली वरदा भयहारिणी ।
विद्याभिः सकलाभिः सा सर्वाङ्गमभितोऽवतु ॥२१॥
काली कपालिनी कुल्ला कुरुकुल्ला विरोधिनी ।
विप्रचित्ता तथोग्रोग्रप्रभा दीप्ता घनत्विषा ॥२२॥
नीला घना बलाका च मात्रा मुद्रामिता च माम् ।
एताः सर्वाः खड्गधरा मुण्डमालाविभूषणाः ॥२३॥
रक्षन्तु दिग्विदिक्षु मां ब्राह्मी नारायणी तथा।
माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापराजिता ॥२४॥
वाराही नारसिंही च सर्वाश्चामितभूषणाः ।
रक्षन्तु स्वायुधैर्दिक्षु सर्वासु मां यथा तथा ॥२५॥

खड्ग-मुण्डधरा काली वरदाभयहारिणी विद्याभि: सकलाभि: सा क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा मेरे सभी अंगों की रक्षा करे। काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी, विप्रचिता, उग्रप्रभा, दीप्ता, घनत्विषा, नीला, घना, बलाका, मात्रा, मुद्रा, मिता—ये सभी खड्गधारिणी मुण्डमालाविभूषिता मेरी रक्षा दिशाओं और विदिशाओं में करे।

ब्राह्मी, माहेश्वरी, नारायणी, चामुण्डा, कौमारी, अपराजिता, वाराही, नारसिंही—ये सभी अलंकृता अपने आयुधों से अलंकृत होकर सभी दिशाओं में मेरी रक्षा करें।

इति ते कथितं दिव्यं कवचं परमाद्भुतम् ।
श्रीजगन्मङ्गलं नाम महाविद्यौघविग्रहम् ।।२६।।
त्रैलोक्याकर्षकं ब्रह्मन् कवचं मन्मुखोदितम् ।
गुरुपूजां विधायाथ विधिवत्प्रपठेत्ततः ।।२७।।

फलश्रुति—इस प्रकार मैंने परम अद्भुत दिव्य कवच का कथन किया। यह जगन्मंगलनामक कवच महाविद्यौघविग्रह है। मेरे मुख से निकला यह कवच तीनों लोकों का आकर्षक है। विधिवत् गुरुपूजा करके विधिवत् इसका पाठ करे।।२६-२७।।

कवचं त्रि: सकृद्वापि यावज्जीवं च वा पुन: ।
एतच्छतार्द्धमावर्त्य त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।।२८।।
त्रैलोक्यं क्षोभयत्येव कवचस्य प्रसादत: ।
महाकविर्भवेन्मासात्सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।।२९।।
पुष्पाञ्जलिं कालिकायै मूलेनैवार्पयेत्सकृत् ।
शतवर्षसहस्राणां पूजाया: फलमाप्नुयात् ।।३०।।

इस कवच का तीन पाठ करे अथवा आजीवन पचास पाठ प्रतिदिन करे तो तीनों लोकों में विजयी होता है। इस कवच के प्रभाव से साधक तीनों लोकों को क्षुब्ध कर सकता है। एक महीने में महाकवि होता है, सर्वसिद्धीश्वर होता है। मूल मन्त्र से कालिका को पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। इससे सौ हजार वर्षों की पूजा का फल प्राप्त करता है।।२८-३०।।

भूर्जे विलिखितं चैतत्स्वर्णस्थं धारयेद्यदि ।
शिखायां दक्षिणे बाहौ कण्ठे वा धारयेद्यदि ।।३१।।
त्रैलोक्यं मोहयेत्क्रोधात्त्रैलोक्यं चूर्णयेत्क्षणात् ।
पुत्रवान् धनवान् श्रीमान्नानाविद्यानिधिर्भवेत् ।।३२।।
ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि तद्गात्रस्पर्शनात्तत: ।
नाशमायान्ति या नारी वन्ध्या च मृतपुत्रिणी ।।३३।।

कण्ठे वा वामबाहौ वा कवचस्यास्य धारणात् ।
बह्वपत्या जीववत्सा भवत्येव न संशयः ॥३४॥

भोजपत्र पर लिखकर सोने के ताबीज में भरकर शिखा, दाँयाँ हाथ या कण्ठ में यदि धारण करे तो तीनों लोकों को मोहित कर सकता है। क्रोध से तीनों लोकों को क्षणमात्र में ध्वस्त कर सकता है।

पुत्र-बान्धवों से युक्त धनवान, श्रीमान, नाना विद्याओं का सागर होता है। ब्रह्मास्त्रादि शस्त्र उसके शरीर के स्पर्श से नष्ट हो जाते हैं। बाँझ स्त्री या मृतवत्सा नारी यदि इस कवच को कण्ठ या वाम भुजा में धारण करे तो वह बहुत पुत्रों की माता हो जाती है। मृतवत्सा जीववत्सा हो जाती है। इसमें संशय नहीं है।।३१-३४।।

न देयं परशिष्येभ्यो ह्यभक्तेभ्यो विशेषतः ।
शिष्येभ्यो भक्तियुक्तेभ्यश्चान्यथा मृत्युमाप्नुयात् ॥३५॥
स्पर्द्धामुद्धूय कमलावाग्देवीमन्दिरे मुखे ।
पौत्रान्तं स्थैर्यमास्थाय निवसत्येव निश्चितम् ॥३६॥
इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेत्कालिदक्षिणाम् ।
शतलक्षं प्रजप्त्वापि तस्य मन्त्रो न सिद्ध्यति ।
स शस्त्रघातमाप्नोति सोऽचिरान्मृत्युमाप्नुयात् ॥३७॥

इति भैरवतन्त्रे भैरवभैरवीसंवादे कालीकल्पे
श्यामाकवचं समाप्तम्

दूसरे के शिष्य को यह कवच न दे। जो भक्त न हो, उसे भी न दे। अपने भक्त शिष्य को यह कवच दे; अन्यथा मृत्यु हो जाती है। परस्पर स्पर्द्धा का परित्याग करके लक्ष्मी और सरस्वती उसके घर पौत्र के जीवनकाल तक निवास करती हैं।

इस कवच को जाने विना जो दक्षिणकालिका के मन्त्रों का जप करता है, उसे सौ लाख जपने पर भी सिद्धि नहीं मिलती और अन्त काल में शस्त्राघात से उसकी मृत्यु हो जाती है।।३५-३७।।

◆

तारास्तोत्रम्

मातर्नीलसरस्वति प्रणमतां सौभाग्यसम्पत्प्रदे
प्रत्यालीढपदस्थिते शवहृदि स्मेराननाम्भोरुहे ।
फुल्लेन्दीवरलोचने त्रिनयने कर्त्री कपालोत्पले
खड्गञ्चादधती त्वमेव शरणं त्वामीश्वरीमाश्रये ॥१॥

हे माते! नील सरस्वति! सौभाग्य-सम्पत्ति-दायिनि! तुमको प्रणाम है। आप शव की छाती पर प्रत्यालीढ पैरों से स्थित हैं।

मुखकमल पर मुस्कुराहट है। प्रफुल्ल कमल के समान आपकी तीन आँखें हैं। हाथों में कैंची, कपाल, कमल और खड्ग हैं। हे माते! तुम्हारी ही शरण में तुम्हारा ही आश्रय है।।१।।

वाचामीश्वरि भक्तिकल्पलतिके सर्वार्थसिद्धीश्वरि
गद्यप्राकृतपद्यजातरचनासर्वार्थसिद्धिप्रदे ।
नीलेन्दीवरलोचनत्रययुते कारुण्यवारान्निधे
सौभाग्यामृतवर्द्धनेन कृपया सिञ्च त्वमस्मादृशम् ।।२।।

वाणी की ईश्वरी भक्तिकल्पलतिका सर्वार्थसिद्धिदायिनी ईश्वरी हैं। प्राकृत गद्य-पद्यमयी रचना में सर्वार्थसिद्धिप्रदायिका हैं। नीलकमल के समान आपके तीन नेत्र हैं।

आप करुणा के सागर हैं। सौभाग्य-अमृत-वृद्धि के लिये आप अमृतरूपी दृष्टि से मुझे कृपया अभिषिञ्चित कर दें।।२।।

खर्वे गर्वसमूहपूरिततनो सर्पादिवेषोज्वले
व्याघ्रत्वक्परिवीतसुन्दरकटिव्याधूतघण्टाङ्किते ।
सद्य: कृन्तगलद्रज:परिमिलन्मुण्डद्वयीमूर्द्धज-
ग्रन्थिश्रेणिनृमुण्डदामललिते भीमे भयन्नाशय ।।३।।

आपका कद नाटा है; परन्तु गर्वसमूह से पूर्ण है। साँपों के विष से उज्ज्वल है। सिंह के समान पतली कमर है। उसमें घंटियाँ लटक रही हैं।

सद्य:छिन्न रुधिरयुक्त दो मुण्ड आपके मूर्धा पर हैं। गले में नरमुण्डों की माला है। आप ललित और भयानक दोनों रूपों से मेरी भीतियों का नाश करें।।३।।

मायानङ्गविकाररूपललनाविन्द्वर्धचन्द्राङ्कितं
हुं फट् ट्कारमयी त्वमेव शरणं मन्त्रात्मिके मादृश: ।
मूर्तिस्ते जननि त्रिधामघटिता स्थूलातिसूक्ष्मा परा
वेदानां न हि गोचरा कथमपि प्राप्तां नु तामाश्रये ।।४।।

ह्रीं स्त्रीं हूं फट् मन्त्रात्मिके! मैं तुम्हारी शरण में हूँ, मेरी ओर दृष्टि कीजिये। हे जननि! आप त्रिमूर्तिरूप में स्थूल, अतिसूक्ष्म और परा हैं, आप कभी गोचर नहीं होती हैं। आप ही का आश्रय है।।४।।

त्वत्पादाम्बुजसेवया सुकृतिनो गच्छन्ति सायुज्यतां
तस्या: श्रीपरमेश्वरत्रिनयनब्रह्मादिसाम्यात्मन: ।

संसाराम्बुधिमज्जने पटुतनुर्देवेन्द्रमुख्यान् सुरान्
मातस्ते पदसेवने हि विमुखान् किं मन्दधीस्सेवते ।।५।।

आपके चरणकमलों की सेवा से सत्कर्मियों को सायुज्य प्राप्त होता है। उसकी आत्मा की समता ब्रह्मा, विष्णु, महेश से होती है।

संसारसागर में मग्न तेरे पादसेवा से विमुख देवेन्द्रादि मुख्य देवताओं की जो उपासना करते हैं, उनकी बुद्धि मन्द होती है।।५।।

मातस्त्वत्पदपङ्कजद्वयरजोमुद्राङ्ककोटीरिण-
स्ते देवा जयसङ्गरे विजयिनो निःशङ्कमङ्के गताः ।
देवोऽहं भुवने न मे सम इति स्पर्द्धां वहन्तः परे
तत्तुल्यान्नियतं यथा शशिरवी नाशं व्रजन्ति स्वयम् ।।६।।

हे माते! आपके चरणकमलों की धूलि से देवताओं का मस्तक मुद्रांकित है। हे जयशंकरविजयिनि! आप निःशंक शंकर ही गोद में बैठती हैं।

मैं देवता हूँ, मेरे समान दूसरा कोई नहीं है, ऐसी स्पर्द्धा जो संसार में करते हैं, वे तत्तुल्य नियत हैं और चन्द्र- सूर्य के समान स्वयं नष्ट हो जाते हैं।।६।।

त्वन्नामस्मरणात्पलायनपरा द्रष्टुं च शक्ता न ते
भूतप्रेतपिशाचराक्षसगणा यक्षाश्च नागाधिपाः ।
दैत्या दानवपुङ्गवाश्च खचरा व्याघ्रादिका जन्तवो
डाकिन्यः कुपितान्तकाश्च मनुजान्मातः क्षणं भूतले ।।७।।

तुम्हारे नाम के स्मरणमात्र से भूत-प्रेत-पिशाच-राक्षस-यक्ष-नागाधिप-दैत्य-दानव-खेचर-व्याघ्रादि-जन्तु-डाकिनी-क्रुद्ध मनुष्य क्षणमात्र में दूर भाग जाते हैं; साधक की ओर देख नहीं सकते।।७।।

लक्ष्मीः सिद्धगणाश्च पादुकमुखाः सिद्धास्तथा वैरिणां
स्तम्भश्चापि वराङ्गने गजघटास्तम्भस्तथा मोहनम् ।
मातस्त्वत्पदसेवया खलु नृणां सिध्यन्ति ते ते गुणाः
क्लान्तिः कान्तमनोभवोऽत्र भवति क्षुद्रोऽपि वाचस्पतिः ।।८।।

लक्ष्मी, सिद्धगण, पादुकमुख, सिद्ध वैरियों का स्तम्भन होता है। वरांगनायें मोहित होती हैं।

हे माते! तेरे चरणों की सेवा से मनुष्यों को सिद्धि मिलती है। कामदेव के समान कान्ति होती है। मूर्ख भी वाचस्पति हो जाता है।।८।।

ताराष्टकमिदं पुण्यं भक्तिमान् यः पठेन्नरः ।
प्रातर्मध्याह्नकाले च सायाह्ने नियतः शुचिः ।।९।।
लभते कवितां विद्यां सर्वशास्त्रार्थविद्भवेत् ।
लक्ष्मीमनश्वरां प्राप्य भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान् ।।१०।।
कीर्तिं कान्तिं च नैरुज्यं सर्वेषा प्रियतां व्रजेत् ।
विख्यातिञ्चापि लोकेषु प्राप्यान्ते मोक्षमाप्नुयात् ।।११।।

इति नीलतन्त्रे ताराष्टकं समाप्तम्

इस ताराष्टक का पाठ मनुष्य भक्तिपूर्वक प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्या में पवित्र होकर निश्चित समय पर करे। ऐसा करने से उसे कवित्व विद्या मिलती है। वह सर्वशास्त्रवेत्ता हो जाता है। स्थिर लक्ष्मी प्राप्त करके इच्छित भोगों का उपभोग करता है। उसे कीर्ति, कान्ति, आरोग्य और लोकप्रियता प्राप्त होती है। लोक में ख्याति होती है और अन्त में मोक्ष मिलता है।।९-१०।।

◆

ताराकवचम्

ईश्वर उवाच—

कोटितन्त्रेषु गोप्या हि विद्यातिभयमोचिनी ।
दिव्यं हि कवचं तस्याः शृणुष्व सर्वकामदम् ।।१।।

पूर्वपीठिका—ईश्वर ने कहा कि कोटि तन्त्रों में गोपनीय भयमोचनी विद्या के दिव्य सर्वकामप्रद कवच को सुनिये।।१।।

ताराकवचस्याऽक्षोभ्यऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो भगवती तारा देवता सर्वमन्त्रसिद्धिसमृद्धये जपे विनियोगः।

विनियोग—इस ताराकवच के ऋषि अक्षोभ्य, छन्द त्रिष्टुप् और देवता तारा हैं। समस्त मन्त्रों की सिद्धि और समृद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है।

प्रणवो मे शिरः पातु ब्रह्मरूपा महेश्वरी ।
ह्रींकारं पातु लालाटे बीजरूपा महेश्वरी ।।२।।
स्त्रींकारः सदा वदने लज्जारूपा महेश्वरी ।
हूंकारः पातु हृदये भवानीशक्तिरूपधृक् ।।३।।
फट्कारः पातु सर्वाङ्गे सर्वसिद्धिफलप्रदा ।
खर्वा मां पातु देवेशी गण्डयुग्मे भयापहा ।।४।।

कवच—ब्रह्मरूपा महेश्वरी ‘ॐ’ मेरे शिर की रक्षा करे। ह्रीं बीजरूपा महेश्वरी मेरे ललाट की रक्षा करे। लज्जारूपा महेश्वरी स्त्रीं मेरे मुख की रक्षा करे। भवानी शक्तिरूपा हूं मेरे हृदय की रक्षा करे। सर्वसिद्धिफलप्रदा फट् मेरे सभी अंगों की रक्षा करे। भयापहा देवेर्शा खर्वा मेरे कपोलों की रक्षा करे।।२-४।।

लम्बोदरी सदा स्कन्धयुग्मे पातु महेश्वरी ।
व्याघ्रचर्मावृता कट्यां पातु देवी शिवप्रिया ॥५॥
पीनोन्नतस्तनी पातु पार्श्वयुग्मे महेश्वरी ।
रक्तवर्तुलनेत्रा च कटिदेशे सदावतु ॥६॥
ललज्जिह्वा सदा पातु नाभौ मां भुवनेश्वरी ।
करालास्या सदा पातु लिङ्गे देवी हरप्रिया ॥७॥

लम्बोदरी महेश्वरी मेरे दोनों कन्धों की रक्षा करे। व्याघ्रचर्मावृता देवी शिवप्रिया मेरे कमर की रक्षा करे। पीनोन्नतस्तनी महेश्वरी मेरे दोनों पार्श्वों की रक्षा करे। रक्तवर्तुलनेत्रा मेरे कमर की रक्षा सर्वदा करे। ललज्जिह्वा भुवनेश्वरी सर्वदा नाभि की रक्षा करे। करालास्या देवी हरिप्रिया सर्वदा मेरे लिङ्ग की रक्षा करे।।५-७।।

पिङ्गोग्रैकजटा पातु जङ्घायां विघ्ननाशिनी ।
प्रेतखर्परधरा देवी जानुचक्रे महेश्वरी ॥८॥
नीलवर्णा सदा पातु जानुनी सर्वदा मम ।
नागकुण्डलधरा देवी पातु पादयुगे ततः ॥९॥
नागहारधरा देवी सर्वाङ्गं पातु सर्वदा ।
नागकङ्कधरा देवी पातु प्रान्तरदेशतः ॥१०॥
चतुर्भुजा सदा पातु गमने शत्रुनाशिनी ।
खड्गहस्ता महादेवी श्रवणे पातु सर्वदा ॥११॥

विघ्ननाशिनी पिंगोग्रैकजटा मेरे जांघों की रक्षा करे। प्रेतखर्परधरा देवी महेश्वरी मेरे घुटनों की रक्षा करे। नीलवर्णा सर्वदा मेरे जानुओं की रक्षा करे। देवी नागकुण्डलधरा मेरे दोनों पैरों की रक्षा करे।

नागहारधरा देवी मेरे सभी अंगों की रक्षा करे। नागकंकधरा देवी मेरी प्रान्तरदेश में रक्षा करे। शत्रुनाशिनी चतुर्भुजा मार्ग में मेरी रक्षा करे। खड्गहस्ता महादेवी सर्वदा मेरे कानों की रक्षा करे।।८-११।।

नीलाम्बरधरा देवी पातु मां विघ्ननाशिनी ।
कर्तृहस्ता सदा पातु विवादे शत्रुमध्यतः ॥१२॥

ब्रह्मरूपधरा देवी संग्रामे पातु सर्वदा ।
नागकङ्कधरा देवी भोजने पातु सर्वदा ॥१३॥
शवकर्णा महादेवी शयने पातु सर्वदा ।
वीरासनधरा देवी निद्रायां पातु सर्वदा ॥१४॥

विघ्ननाशिनी नीलाम्बरधरा देवी सदैव मेरी रक्षा करे। विवाट में, शत्रुओं के बीच में कर्तृहस्ता सर्वदा मेरी रक्षा करे। ब्रह्मधरा देवी सर्वदा मेरी रक्षा संग्राम में करे। नागकंकणधरा देवी सर्वदा भोजन में मेरी रक्षा करे। शवकर्णा देवी सर्वदा शयन में मेरी रक्षा करे। वीरासनधरा देवी सर्वदा नींद में रक्षा करे।।१२-१४।।

धनुर्बाणधरा देवी पातु मां विघ्नसंकुले ।
नागाञ्चितकटी पातु देवी मां सर्वकर्मसु ॥१५॥
छिन्नमुण्डधरा देवी कानने पातु सर्वदा ।
चितामध्यस्थिता देवी मारणे पातु सर्वदा ॥१६॥
द्वीपिचर्मधरा देवी पुत्रदारधनादिषु ।
अलङ्कारान्विता देवी पातु मां हरवल्लभा ॥१७॥

धनुर्वाणधरा देवी विघ्नों के बीच में मेरी रक्षा करे। जिनकी कमर में नाग है, वह मेरी रक्षा सभी कर्मों में करे। छिन्न मुण्डधरा देवी मेरी रक्षा सर्वदा जंगलों में करे। चितामध्यस्थिता देवी मारण कर्म में मेरी रक्षा करे। द्वीपिचर्मधरा देवी पुत्र-दार-धनादिकों में मेरी रक्षा करे। अलंकारान्विता देवी हरवल्लभा मेरी रक्षा करे।।१५-१७।।

रक्षरक्ष नदीकुञ्जे हूं हूं फट् समन्विते ।
बीजरूपा महादेवी पर्वते पातु सर्वदा ॥१८॥
मणिधरा वज्रिणि देवी महाप्रतिसरे तथा ।
रक्षरक्ष हूं हूं ॐ ह्रीं स्वाहा महेश्वरी ॥१९॥
पुष्पकेतुराजार्हेति कानने पातु मां सदा ।
ॐ ह्रीं वज्रपुष्पे हूं फट् प्रान्तरे सर्वकामदा ॥२०॥

हूं हूं फट् समन्विता नदीकुञ्जों में रक्षा करे। बीजरूपा महादेवी सर्वदा पर्वत में रक्षा करे। मणिधरा वज्रिणी देवी महाप्रतिसर में रक्षा करे। हूं हूं ॐ ह्रीं स्वाहा महेश्वरी रक्षा करे। पुष्पकेतुराजार्हति मेरी रक्षा वन में करे। ॐ ह्रीं वज्रपुष्पे हूं फट् सर्वकामदा प्रान्तर में मेरी रक्षा करे।।१८-२०।।

ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे पातु पुत्रान् महेश्वरी ।
हूं स्वाहा शक्तिसंयुक्ता दारान् रक्षतु सर्वदा ॥२१॥

ॐ आं हूं फट् स्वाहा महेशानी पातु द्यूते हरप्रिया ।
ॐ ह्रीं सर्वविघ्नोत्सारिणी देवी विघ्नान्मां सदावतु ॥२२॥

ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे मेरे पुत्रों की रक्षा करे। शक्तिसंयुक्त हूं स्वाहा मेरी पत्नियों की रक्षा सर्वदा करे। ॐ आं हूं फट् स्वाहा महेशानी हरिप्रिया द्यूत में मेरी रक्षा करे। ॐ ह्रीं सर्वविघ्नोत्सारिणी देवी मेरी रक्षा विघ्नों में सदा करे।।२१-२२।।

ॐ पवित्रवज्रभूमे हूं फट् स्वाहासमन्विता ।
पृथिव्यां पातु मां देवी सर्वविघ्नविनाशिनी ॥२३॥
ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हूं फट् स्वाहासमन्विता ।
पाताले पातु मां देवी लाकिनी नामसंज्ञिका ॥२४॥
स्त्रींकारी पातु मां पूर्वे शक्तिरूपा महेश्वरी ।
स्त्रींकारी पातु देवेशी वधूरूपा महेश्वरी ॥२५॥

ॐ पवित्रवज्रभूमे हूं फट् स्वाहा से समन्वित सर्वविघ्नविनाशिनी मेरी रक्षा पृथ्वी पर करे। ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हूं फट् स्वाहा समन्वित लाकिनी नामक देवी मेरी रक्षा पाताल में करे। ह्रींकारी शक्तिरूपा महेश्वरी मेरी रक्षा पूर्व में करे। वधूरूपा स्त्रींकारी देवी महेश्वरी मेरी रक्षा करे।।२३-२५।।

हूंस्वरूपा महादेवी पातु मां क्रोधरूपिणी ।
फट्स्वरूपा महामाया उत्तरे पातु सर्वदा ॥२६॥
पश्चिमे पातु मां देवी फट्स्वरूपा हरप्रिया ।
मध्ये मां पातु देवेशी हूंस्वरूपा नगात्मजा ॥२७॥
नीलवर्णा सदा पातु सर्वत्र वाग्भवा सदा ।
भवानी पातु भवने सर्वैश्वर्यप्रदायिनी ॥२८॥

क्रोधस्वरूपिणी हूंस्वरूपा महादेवी मेरी रक्षा करे। फट्स्वरूपा हरिप्रिया देवी मेरी रक्षा पश्चिम में करे।

हूंस्वरूपा नगात्मजा देवी मेरी रक्षा मध्य में करे। नीलवर्णा मेरी रक्षा करे। ऐं मेरी सर्वत्र रक्षा करे। सर्वैश्वर्यप्रदायिनी भवानी भवन में रक्षा करे।।२६-२८।।

विद्यादानरता देवी पातु वक्त्रे सरस्वती ।
शास्त्रे वादे च संग्रामे जले च विषमे गिरौ ॥२९॥
भीमरूपा सदा पातु श्मशाने भयनाशिनी ।
भूतप्रेतालये घोरे दुर्गा मां भीषणावतु ॥३०॥

विद्यादानरता सरस्वती मेरे मुख की रक्षा करे। शास्त्र-वाद-विवाद में, संग्राम-जल-विषम

वाणी में भी यही रक्षा करे। भीमरूपा भयनाशिनी श्मशान में रक्षा करे। भीषण दुर्गा मेरी रक्षा घोर भूत-प्रेतालय में करे। शिवदूती महेशानी सर्वत्र मेरी रक्षा करे।।२९-३०।।

पातु नित्यं महेशानी सर्वत्र शिवदूतिका ।
कवचस्य च माहात्म्यं नाहं वर्षशतैरपि ।।३१।।
शक्नोमि कथितुं देवि भवेत्तस्य फलं च यत् ।
पुत्रदारेषु बन्धूनां सर्वदेशे च सर्वदा ।।३२।।
न विद्यते भयं यस्य नृपपूज्यो भवेच्च सः ।
शुचिर्भूत्वाऽशुचिर्वापि कवचं सर्वकामदम् ।।३३।।
प्रपठन् वा स्मरन्मर्त्यो दुःखशोकविवर्जितः ।
सर्वशास्त्रे महेशानि कविराट् भवति ध्रुवम् ।।३४।।

फलश्रुति—हे देवि! सौ वर्षों में भी मैं इस कवच के माहात्म्य और प्राप्त फलों का वर्णन नहीं कर सकता। इस कवच के प्रभाव से सर्वदा सभी देशों में पुत्र-पत्नी-बन्धुओं को कोई भय नहीं होता।

इसका धारणकर्ता राजाओं से पूज्य होता है। पवित्र या अपवित्र अवस्था में सर्वकामप्रद कवच का जो पाठ या स्मरण करता है, वह दुःख-शोक से विवर्जित होता है। हे महेशानि! वह सभी शास्त्रों में पारंगत कविराट् होता है।।३१-३४।।

सर्ववागीश्वरी मर्त्यो लोकवश्यो धनेश्वरः ।
रणे द्यूते विवादे च जयस्तत्र भवेद् ध्रुवम् ।।३५।।
पुत्रपौत्रान्वितो मर्त्यो विलासी सर्वयोषिताम् ।
शत्रवो दासतां यान्ति सर्वेषां वल्लभः सदा ।।३६।।
गर्वी खर्वी भवत्येव वादी स्खलति दर्शनात् ।
मृत्युश्च वश्यतां याति दासास्तस्यावनीभुजः ।।३७।।

वह सर्ववागीश्वर लोकों को वश में करके धनेश्वर होता है। युद्ध में, विवाद में, जूआ में उसकी निश्चित जीत होती है। पुत्र-पौत्रों से युक्त सभी योषिताओं का विलासी होता है। शत्रु उसके वश में होते हैं। वह सबका वल्लभ होता है। गर्वी-खर्वी-वादी उसे देखते ही पराभूत होते हैं। मृत्यु उसके वश में होती है। वनवासी उसके दास हो जाते हैं।।३५-३७।।

प्रसङ्गात्कथितं सर्वं कवचं सर्वकामदम् ।
प्रपठन्वा स्मरन्मर्त्यः शापानुग्रहणक्षमः ।।३८।।
आनन्दवृन्दसिन्धूनामधिपः कविराड्भवेत् ।
सर्ववागीश्वरी मर्त्यो लोकवश्यः सदा सुखी ।।३९।।

गुरोः प्रसादमासाद्य विद्यां प्राप्य सुगोपिताम् ।
तत्रापि कवचं देवि दुर्लभं भुवनत्रये ॥४०॥

प्रसंगवश सब कुछ कहा। यह कवच सर्वकामप्रदायक है। इसके पाठ या स्मरण करने वालों में शाप देने और अनुग्रह करने की क्षमता हो जाती है। आनन्दवृन्दसिन्धु का स्वामी वह कविराट् होता है। मनुष्य सर्ववागीश्वर लोकों को वश में करके सदैव सुखी होता है। यह गुप्त विद्या गुरु को प्रसन्न करके प्राप्त करे। उसमें भी यह कवच तीनों लोकों में दुर्लभ है।।३८-४०।।

गुरुर्देवो हरः साक्षात्पत्नी तस्य हरप्रिया ।
अभेदेन भजेद्यस्तु तस्य सिद्धिरदूरतः ॥४१॥
मन्त्राचारा महेशानि कथिताः पूर्ववत्प्रिये ।
नाभौ ज्योतिस्तथा वक्त्रं हृदयोपरि चिन्तयेत् ॥४२॥

गुरुदेव साक्षात् शिव और गुरुपत्नी पार्वती हैं। इस अभेदभाव से यदि भजन करे तो सिद्धि उससे दूर नहीं होती। मन्त्रसाधना का जैसा आचार पहले कहा गया है, वैसा ही होता है। नाभि, मुख और हृदय में ज्योति का चिन्तन करे।।४१-४२।।

ऐश्वर्यं सुकवित्वं च महावागीश्वरो नृपः ।
नित्यं तस्य महेशानि महिलासङ्गमञ्चरेत् ॥४३॥
पञ्चाचाररतो मर्त्यः सिद्धो भवति नान्यथा ।
शक्तियुक्तो भवेन्मर्त्यः सिद्धो भवति नान्यथा ॥४४॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ये देवासुरमानुषाः ।
तं दृष्ट्वा साधकं देवि लज्जायुक्ता भवन्ति ते ॥४५॥

इस चिन्तन से ऐश्वर्य, सुन्दर कवित्व, महावागीश्वरत्व और नृपत्व प्राप्त होता है। हे महेशानि! उसके साथ महिलायें नित्य रहती हैं। जो मनुष्य पञ्च मकार में रत रहता है, उसी को सिद्धि मिलती है; दूसरों को नहीं। जो साधक शक्ति के साथ साधना करता है, उसी को सिद्धि मिलती है; दूसरों को नहीं मिलती। उसे देखकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देव, असुर, मनुष्य लज्जित हो जाते हैं।।४३-४५।।

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले ये देवाः सिद्धिदायकाः ।
प्रशंसन्ति सदा देवि तं दृष्ट्वा साधकोत्तमम् ॥४६॥
विघ्नात्मकाश्च ये देवाः स्वर्गे मर्त्ये रसातले ।
प्रशंसन्ति सदा सर्वे तं दृष्ट्वा साधकोत्तमम् ॥४७॥

ये देवता स्वर्गलोक, पृथ्वीलोक और पाताल में सिद्धिदायक हैं। ये साधकोत्तम को

देखकर उसकी प्रशंसा करते हैं। जो देवता स्वर्ग, भूलोक और पाताल में विघ्नकर्ता हैं, वे भी साधकोत्तम को देखकर उसकी प्रशंसा करते हैं।।४६-४७।।

इति ते कथितं देवि मया सम्यक्प्रकीर्तितम् ।
भुक्तिमुक्तिकरं साक्षात्कल्पवृक्षस्वरूपकम् ।।४८।।
आसाद्याद्यगुरुं प्रसाद्य य इदं कल्पद्रुमालम्बनं
मोहेनापि मदेन वापि रहितो जाड्येन वा युज्यते ।
सिद्धोऽसौ भुवि सर्वदु:खविपदां पारं प्रयात्यन्तको
मित्रं तस्य नृपाश्च देवि विपदो नश्यन्ति तस्याशु च ।।४९।।
तद्गात्रं प्राप्य शस्त्राणि ब्रह्मास्त्रादीनि वै भुवि ।
माल्यानि कुसुमान्येव भवन्ति सुखदानि च ।
तस्य गेहे स्थिरा लक्ष्मीर्वाणी वक्त्रे वसेद् ध्रुवम् ।।५०।।

हे देवि! इस प्रकार मैंने सम्यक् प्रकीर्तित भोग-मोक्षदायक कल्पवृक्ष के समान कवच का वर्णन किया। सर्वप्रथम गुरु को प्रसन्न करे। तब इस कल्पवृक्ष का अवलम्बन करे। इससे वह मोह से, मद से, जड़ता से रहित हो जाता है। वह सिद्ध हो जाता है। सभी दु:ख-विपदाओं से पार हो जाता है। अपान्तक मित्र होते हैं। राजा मित्र होते हैं। उसकी सभी विपदायें नष्ट हो जाती हैं। उसके शरीर से छूने पर ब्रह्मास्त्रादि शस्त्र सुखद पुष्पमाला हो जाते हैं। उसके घर में लक्ष्मी और मुख में सरस्वती का वास होता है।।४८-५०।।

इदं कवचमज्ञात्वा तारां यो भजते नर: ।
अल्पायुर्निर्धनो मूर्खो भवत्येव न संशय: ।।५१।।
लिखित्वा धारयेद्यस्तु कण्ठे वा मस्तके भुजे ।
तस्य सर्वार्थसिद्धि: स्याद्यद्यन्मनसि वर्तते ।।५२।।
गोरोचनाकुङ्कुमेन रक्तचन्दनकेन वा ।
यावकैर्वा महेशानि लिखेन्मन्त्रं समाहित: ।।५३।।
अष्टम्यां मङ्गलदिने चतुर्दश्यामथापि वा ।
सन्ध्यायां देवदेवेशि लिखेद्यन्त्रं समाहित: ।।५४।।

इस कवच को जाने विना जो तारा की उपासना करते हैं, वे निस्सन्देह अल्पायु, निर्धन और मूर्ख हो जाते हैं।

इस कवच को लिखकर कण्ठ, मस्तक या भुजा में धारण करने से उसे सर्वार्थसिद्धि होती है। वह जो इच्छा करता है, वह पूरी होती है। गोरोचन, कुंकुम, लाल चन्दन या यावक से इसे एकाग्र चित्त से लिखे। मंगलवार की अष्टमी या चतुर्दशी तिथि में सन्ध्या के समय इसे लिखे।।५१-५४।।

मघायां श्रवणायां वा रेवत्यां वा विशेषतः ।
सिंहराशौ गते चन्द्रे कर्कटस्थे दिवाकरे ॥५५॥
मीनराशौ गुरौ याते वृश्चिकस्थे शनैश्चरे ।
लिखित्वा धारयेद्यस्तु उत्तराभिमुखो भवन् ॥५६॥
श्मशाने प्रान्तरे वापि शून्यागारे विशेषतः ।
निशायां यो लिखेद्यन्त्रं तस्य सिद्धिरचञ्चला ॥५७॥
भूर्जे पत्रे लिखेन्मन्त्रं गुरुणा च महेश्वरि ।
ध्यानधारणयोगेन धारयेद्यस्तु भक्तितः ॥५८॥
अचिरात्तस्य सिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥५९॥

इति श्रीरुद्रयामले तन्त्रे उग्रताराकवचं समाप्तम्

मघा, श्रवण, रेवती नक्षत्र में सिंहराशि के चन्द्र और कर्क राशि के सूर्य, मीन राशि के गुरु, वृश्चिक राशि के शनि जब हों तो इसे उत्तराभिमुख होकर लिखे और धारण करे। श्मशान, प्रान्तर या शून्य गृह में रात में जो इस यन्त्र को लिखता है, उसकी सिद्धि स्थिर होती है।

हे महेश्वरि! गुरु का ध्यान करके इसे भोजपत्र पर लिखे और भक्तिपूर्वक धारण करे। ऐसा करने से नि:सन्देह अल्प काल में ही उसे सिद्धि प्राप्त हो जाती है।।५५-५९।।

●

त्रैलोक्यमोहनं नाम ताराकवचम्

देव्युवाच—

तारापूजा श्रुता नाथ विद्याश्च सकलास्ततः ।
साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि कवचं मन्त्रविग्रहम् ॥१॥
त्रैलोक्यमोहनं नाम सर्वापद्विनिवारकम् ।
पुरैव सूचितं नाथ कृपया मे प्रकाशय ॥२॥

पूर्वपीठिका—श्रीदेवी ने कहा कि हे नाथ! तारापूजा और उसकी सभी विद्याओं के बारे में सुना। अब मैं तारा के उस मन्त्रविग्रह कवच को सुनना चाहती हूँ, जिसका नाम त्रैलोक्यमोहन है और जो सर्वापद्विनिवारक है। इसके बारे में आपने पहले बतलाया था; अब आप उसे प्रकाशित कीजिये।।१-२।।

भैरव उवाच—

देवदानव-विद्याधृक्पूजिते प्राणवल्लभे ।
त्रैलोक्यमोहनं नाम श्रूयतां कवचं परम् ॥३॥

सर्वविद्यामयं देवि सर्वमन्त्रमयं ध्रुवम् ।
सर्वरक्षाकरं देवि सर्वविद्याप्रदायकम् ॥४॥
वेदव्यासोऽपि यद्धृत्वा सर्वज्ञः पठनाद्यतः ।
यद्धृत्वा पठनादीशस्त्रैलोक्यविजयी प्रभुः ॥५॥
धनाधिपः कुबेरोऽपि देवाधिपः शचीपतिः ।

श्री भैरव ने कहा कि हे प्राणवल्लभे! जिसे देवता-दानव पूजते हैं और धारण करते हैं, उस श्रेष्ठ त्रैलोक्यमोहन नामक कवच को सुनिये। यह कवच सभी विद्यामय और सभी मन्त्रसमन्वित है। निश्चित है कि यह सर्वरक्षाकारक है और सर्वविद्याप्रदायक है, जिसका पाठ करके और जिसको धारण करके वेदव्यास सर्वज्ञ हो गये थे। जिसका पाठ और धारण करके ईश्वर त्रिलोकविजयी स्वामी हो गये। कुबेर धनेश्वर और शचीपति इन्द्र देवेश हो गये।।३-५।।

पठनाद्धारणात् नित्यं यतः सर्वे दिगीश्वराः ।
सर्वसिद्धियुताः सन्तः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ॥६॥
अस्य प्रसादादीशोऽहं भैरवाणां सुरेश्वरि ।
क्रोधाधिपो महाभीमो देवेषु कथितः प्रभुः ॥७॥
न दद्यात्परशिष्येभ्यो दद्याच्छिष्येभ्य एव च ।
अभक्तेभ्योऽपि पुत्रेभ्यो दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥८॥

इसी के पाठ और धारण करने से सभी दिक्पाल हो गये हैं। उन्हें सभी सिद्धियाँ प्राप्त हैं और सभी ऐश्वर्ययुक्त हैं। इसी के प्रभाव से मैं भैरवों का स्वामी हूँ, देवताओं में मैं क्रोधभैरव महाभीषण हूँ। दूसरे के शिष्यों को यह कवच नहीं देना चाहिये। जो भक्त न हो; उसे, अपने शिष्य या पुत्र को देने से मृत्यु प्राप्त होती है।।६-८।।

त्रैलोक्यमोहनस्यास्य कवचस्य ऋषिः शिवः ।
छन्दो विराट् देवता च सोग्रतारा प्रकीर्तिता ।
चतुर्वर्गेषु विद्यायां विनियोगः प्रकीर्तितः ॥९॥

विनियोग—इस त्रैलोक्यमोहन कवच के ऋषि शिव, छन्द विराट् एवं देवता उग्रतारा हैं। चतुर्वर्ग-सम्बन्धित विद्या-प्राप्ति के लिये इसका विनियोग होता है।।९।।

ॐ ह्रीं स्त्रीं मे शिरः पातु हूं फट् पातु ललाटकम्।
सार्द्धपञ्चाक्षरी तारा पायान्नेत्रयुगं मम ॥१०॥
ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं श्रुती पायान्नमः पातु च नासिकाम्।
तारा षडक्षरी पायाद्वदनं मुण्डभूषणा ॥११॥

ह्रीं स्त्रीं हूं फट् वदनं पातु जिह्वां पातु महेश्वरी ।
ह्रीं स्त्रीं हूं मे गलं पायात्सापि नीलसरस्वती ॥१२॥
स्त्रीं स्कन्धौ पातु नियतं तारैकाक्षररूपिणी ।
हूं घण्टां मे सदा पातु बीजैकाक्षररूपिणी ॥१३॥
ऐं ह्रीं स्त्रीं हूञ्च फट् पायाद्वाक्तारा मे भुजद्वयम् ।
श्रीं ह्रीं स्त्रीं हूं च फट् पायाच्छ्रीतारा मे स्तनद्वयम् ॥१४॥

कवच—ॐ ह्रीं स्त्री मेरे शिर की रक्षा करे। हूं फट् मेरे ललाट का रक्षक हो। साढ़े पाँच अक्षरों के मन्त्र—ॐ त्रीं ह्रीं हूं फट्, त्रीं हूं फट् क्लीं ऐं, श्रीं ह्रीं त्रीं हूं फट्, ह्रीं ह्रीं त्रीं हूं फट्, ऐं ह्रीं त्रीं हूं फट्, त्रीं हूं ह्रीं फट् सम्प्रदायक्रम से दोनों नेत्रों की रक्षा करे। ॐ ह्रीं स्त्री हूं कानों की रक्षा करे। नाक की रक्षा नमः करे। मुण्डभूषणा तारा षडक्षर ऐं ॐ ह्रीं क्रीं हूं फट्, ॐ ह्रीं हुं ह्रीं हूं फट्, ऐं ह्रीं ॐ फट् स्वाहा मेरे मुख की रक्षा करे। ह्रीं स्त्रीं हूं फट् मेरे जीभ की रक्षा करे। ह्रीं स्त्रीं हूं नील सरस्वती मेरे गले की रक्षा करे। स्त्रीं नियत तारा एकाक्षरीरूपा मेरे कन्धों की रक्षा करे। एकाक्षर बीज हूं रूपा मेरे कण्ठ की रक्षा करे। ऐं ह्रीं स्त्रीं हूं फट् वाक्तारा मेरी भुजाओं की रक्षा करे। मेरे दोनों स्तनों की रक्षा श्रीं ह्रीं स्त्रीं हूं फट् रूपा तारा करे।।१०-१४।।

ह्रीं ह्रीं स्त्रीं हूञ्च फट् पायात्तारा च हृदयं मम ।
हूं ह्रीं स्त्रीं हूञ्च फट् बीजं तारा पृष्ठं सदावतु ॥१५॥
क्लीं ह्रीं स्त्रीं हूञ्च फट् पायात्पार्श्वौ कामस्वरूपिणी ।
ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं नमः पायान्महाविद्या षडक्षरी ॥१६॥
ऐं सौः ॐ ऐं ह्रीं फट् स्वाहा कटिदेशं सदाऽवतु ।
अष्टाक्षरी महाविद्या साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपिणी ॥१७॥
खं हूं हौं ॐ ऐं श्रीं ह्रीं सा गुह्यदेशं सदाऽवतु ।
सप्ताक्षरी चोग्रतारा मूलविद्यास्वरूपिणी ॥१८॥
ॐ ह्रीं हां हूं नमस्तारायै सकलपदन्ततः ।
दुस्तरः तारयपदं तारय प्रणवद्वयम् ।
स्वाहेति च महाविद्या जानुनी सर्वदाऽवतु ॥१९॥

ह्रीं ह्रीं स्त्रीं हूं फट् रूपा तारा मेरे हृदय की रक्षा करे। हूं ह्रीं स्त्रीं हूं फट् बीज तारा मेरे पीठ की रक्षा करे। क्लीं ह्रीं स्त्रीं हूं फट् कामस्वरूपिणी मेरे पार्श्वों की रक्षा करे। ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं नमः महाषडक्षरी मेरी रक्षा करे।

ऐं सौः ॐ ऐं ह्रीं फट् स्वाहा कटिप्रदेश की रक्षा करे। खं हूं हौं ॐ ऐं श्रीं ह्रीं सः साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी अष्टाक्षरी महाविद्या मेरे गुह्यदेश की रक्षा सर्वदा करे। ॐ ह्रीं हां हूं

नमस्तारायै सकलदुस्तरं तारय तारय ॐ ऊं स्वाहा—सप्ताक्षरी मूलविद्यास्वरूपिणी महाविद्या उग्रतारा मेरे घुटनों की रक्षा करे ।।१५-१९।।

ऐं सौः ॐ ऐं क्लीं फट् स्वाहा जङ्घे पातु परात्मिका।
ॐ ह्रीं स्त्रीं हूञ्च फट् तारा हंसाद्यन्ता नवाक्षरी ।
महोग्रतारा पादौ मे पातु नित्यं महेश्वरी ॥२०॥
ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः वद वद वाग्वादिनी च ।
कामबीजत्रयं नीलसरस्वतीस्वरूपकम् ।
ऐं ऐं ऐं काहि काहि कलरीं स्वाहेति सर्वदा ।
चतुस्त्रिंशल्लिपिमयो पातु ताराखिलं वपुः ॥२१॥

ऐं सौः ॐ ऐं क्लीं फट् स्वाहा परात्मिका मेरे जांघों की रक्षा करे। हंसः ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं फट् हंसः नवाक्षरी महोग्रतारा महेश्वरी दोनों पैरों की रक्षा सर्वदा करे।

ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः वद वद वाग्वादिनी क्लीं क्लीं क्लीं नीलसरस्वती ऐं ऐं ऐं कह कह कलरीं स्वाहा चौंतीस अक्षरों वाली तारा मेरे शरीर की रक्षा करे।।२०-२१।।

इन्द्रो वामाक्षियुक्पृथ्वी सरस्वत्यनलप्रिया ।
कूर्चाद्यन्ता पातु चोर्ध्वं मूलविद्या दशाक्षरी ॥२२॥
तारं माया वधूः कूर्चं काली कामकला ततः ।
उग्रतारे भगं कामः परा लक्ष्मीः शिवाङ्कुशौ ।
सा महाषोडशी प्रोक्ता तारादेव्या मयाधुना ।
विधिवद् ग्रहणादस्या मृत्युं मृत्युपथं नयेत् ॥२३॥
एषा विद्या मया गुप्ता तन्त्रादियामलेषु च ।
साम्प्रतं कथिता तुभ्यं कवचाङ्गतया प्रिये ॥२४॥

हूं लं लौं सरस्वती स्वाहा हूं—मूल विद्या दशाक्षरी ऊर्ध्व दिशा में रक्षा करे। ॐ ह्रीं स्त्रीं हूं क्रीं ईं उग्रतारे एं क्लीं ह्रीं श्रीं ह्रौं क्रों—यह महाषोडशी तारा देवी का मन्त्र है, जिसे मैंने कहा।

विधिवत् इसे ग्रहण करने पर यह मृत्यु की भी मृत्यु हो जाती है। इस विद्या को मैंने यामल आदि तन्त्रों में गुप्त रक्खा था। उसी को आज मैंने कवच के अंगरूप में प्रकाशित किया है।।२२-२४।।

इति ते कथितं देवि गुह्याद्गुह्यतरं परम् ।
त्रैलोक्यमोहनं नाम कवचं मन्त्रविग्रहम् ॥२५॥
ब्रह्मविद्यामयं भद्रे केवलं ब्रह्मरूपिणम् ।

मन्त्रविद्यामयञ्चैतत्कवचं मन्मुखोदितम् ॥२६॥
गुरूमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं प्रपठेद्यदि ।
त्रिः सकृद्वा यथाज्ञानं भैरवस्तत्क्षणाद्भवेत् ॥२७॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः कुलकोटीः समुद्धरेत् ।
गुरुः स्यात्सर्वविद्यास्वप्यधिकारी जपादिषु ॥२८॥

फलश्रुति—गुप्त से गुप्त, श्रेष्ठ, मन्त्रविग्रह, त्रैलोक्यमोहन नामक कवच का वर्णन हे देवि! मैंने किया। हे भद्रे!यह कवच ब्रह्मविद्यामय केवल ब्रह्मस्वरूप है। मन्त्रविद्यामय यह कवच मेरे मुख से निकला है। विधिवत् गुरुदेव की पूजा करके यदि इस कवच का पाठ साधक करे या तीन पाठ एक साथ करे तो वह ज्ञान में भैरव के समान तत्क्षण हो जाता है। वह स्वयं सभी पापों से मुक्त हो जाता है और अपने करोड़ों पूर्वजों का उद्धार कर देता है। सभी विद्याओं में वह गुरु और जपादि का अधिकारी होता है।।२५-२८।।

शतमष्टोत्तरञ्चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः ।
शतमष्टोतरं जप्त्वा भवेद् भूमिपुरन्दरः ॥२९॥
त्रैलोक्यं विचरेद्वीरो गणनाथो यथा गुहः ।
गद्यपद्यमयी वाणी भवेद्गङ्गाप्रवाहवत् ॥३०॥
पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा मूलेनैव पठेत्ततः ।
पञ्चवर्षसहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥३१॥

एक सौ आठ पाठ से इसका पुरश्चरण होता है। इसके एक सौ आठ पाठ करने से वह पृथ्वी पर इन्द्र के समान हो जाता है। वह कार्तिकेय के समान गणनाथ होकर तीनों लोकों में विहार करता है। गंगाप्रवाह के समान गद्य-पद्यमयी वाणी की धारा उसके मुख से प्रवाहित होने लगती है। मूल मन्त्र से आठ पुष्पाञ्जलियाँ देकर इसका पाठ करना चाहिये। ऐसा करने से उसे पाँच हजार वर्षों की पूजा का फल मिलता है।।२९-३१।।

भूर्जे विलिख्य गुलिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ।
पुरुषो दक्षिणे बाहौ योषिद्वामभुजे तथा ॥३२॥
बहुपुत्रवती नारी पुरुषो धनपुत्रवान् ।
सर्वसिद्धीश्वरो भूत्वा विचरेद्भैरवो यथा ॥३३॥
तद्गात्रं प्राप्य शस्त्राणि ब्रह्मास्त्रादीनि भैरवि ।
माल्यानि कुसुमान्येव भवन्ति सुखदानि च ।
[१]तस्य गेहे चिरं लक्ष्मीर्वाणी च निवसेद्ध्रुवम् ॥३४॥
इदं कवचमज्ञात्वा तारां यो भजतेऽधमः ।

---

१. 'तस्य गेहे चिरं लक्ष्मीर्वाणी वसेद्ध्रुवम्' इति पाठान्तरम्।

अल्पायुर्निर्धनो मूर्खो भवत्येव न संशयः ॥३५॥

इति भैरवीभैरवसंवादे ताराकल्पे त्रैलोक्यमोहनं
नाम ताराकवचं समाप्तम्

इस कवच को भोजपत्र पर लिखकर सोने की तावीज में भरकर पुरुष दाहिने बाँह में और स्त्री वाम भुजा में धारण करे तो स्त्री को बहुत पुत्र होते हैं और पुरुष पुत्रवान, धनवान होता है।

वह सभी सिद्धियों का स्वामी होकर भैरव के समान संसार में विचरण करता है। उसके शरीर से स्पर्श करते ही ब्रह्मास्त्र आदि शस्त्र फूलमाला के समान सुख- दायक हो जाते हैं।

उसके घर में स्थिर लक्ष्मी और सरस्वती का वास दीर्घकाल तक होता है। इस कवच को जाने विना जो तारा की उपासना करता है, वह अधम, अल्पायु, निर्धन और मूर्ख हो जाता है; इसमें कोई संशय नहीं है।।३२-३५।।

●

वगलामुखीस्तोत्रम्

चलत्कनककुण्डलोल्लसितचारुगण्डस्थलीं
लसत्कनकचम्पकद्युतिमदिन्दुबिम्बाननाम् ।
गदाहतविपक्षकां कलितलोलजिह्वञ्चलां
स्मरामि बगलामुखीं विमुखवाङ्मनःस्तम्भिनीम् ॥१॥

बगलामुखी का मुखमण्डल सोने और चम्पे के फूल के वर्ण का और चन्द्रमा के समान आभा से युक्त है। उनके सुन्दर कपोलों पर स्वर्णकुण्डललोल शोभा बढ़ा रहा है। गदा-प्रहार से विपक्षियों को वह नष्ट करती है। जीभ सुन्दर चंचल है। विमुखों की वाणी और मन का स्तम्भन करने वाली बगलामुखी का स्मरण करता हूँ।।१।।

पीयूषोदधिमध्यचारुविलसद्रक्तोत्पले मण्डले
यः सिंहासनमौलिपातितरिपुं प्रेतासनाध्यासिनीम् ।
स्वर्णाभां करपीडितारिरसनां भ्राम्यद्गदां बिभ्रती-
मित्थं ध्यायति यान्ति तस्य सहसा सद्योऽथ सर्वापदः ॥२॥

जो सुधासागरमध्य में रत्नोज्ज्वल मण्डप में अनेकानेक रत्नजटित स्वर्णसिंहासन पर आसीन है। उनकी कान्ति सोने के वर्ण की है। एक हाथ में शत्रु की जीभ और दूसरे से घूमती हुई गदा को धारण किये हुए प्रेतासन पर बैठी हुई हैं। जो भक्त साधक इस स्वरूप का ध्यान करता है, उसकी सभी आपदायें समाप्त हो जाती हैं।।२।।

देवि त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते यः पीतपुष्पाञ्जलीन्
भक्त्या वामकरे निधाय च मनुं मन्त्री मनोज्ञाक्षरम् ।
पीठध्यानपरोऽथ कुम्भकवशाद्बीजं स्मरेत्पार्थिवं
तस्यामित्रमुखस्य वाचि हृदये जाड्यं भवेत्तत्क्षणात् ।।३।।

हे देवि बगले! जो भक्त तुम्हारे चरणकमलों के अर्चन में पीत पुष्पों की अंजलि भक्तिपूर्वक निज वामकर में रचकर, पीठध्यान में तत्पर होकर कुम्भक प्राणायाम द्वारा तुम्हारे मनोहर अक्षर वाले मन्त्रभूमिबीज लं का स्मरण करता है, उसके शत्रु के मुख, वचन और हृदय में तुरन्त जड़ता व्याप्त हो जाती है।।३।।

वादी मूकति रङ्कति क्षितिपतिर्वैश्वानरः शीतति
क्रोधी शाम्यति दुर्जनः सुजनति क्षिप्रानुगः खञ्जति ।
गर्वी खर्वति सर्वविच्च जडति त्वन्मन्त्रिणा यन्त्रितः
श्रीनित्ये वगलामुखि प्रतिदिनं कल्यामि तुभ्यं नमः ।।४।।

तुम्हारे मन्त्र के जानकार साधक के द्वारा यन्त्रित किया गया वादी गूंगा, राजा रंक, आग शीतल, क्रोधी शान्त, दुष्ट व्यक्ति सज्जन, तीव्र गति वाला लंगड़ा, घमंडी छोटा और सर्वज्ञ जड़ हो जाता है।

इसीलिये हे कल्याणि श्रीस्वरूपे नित्ये भगवति बगले ! मैं तुम्हें प्रतिदिन नमस्कार करता हूँ।।४।।

मन्त्रस्तावदलं विपक्षदलने स्तोत्रं पवित्रं च ते
यन्त्रं वादिनियन्त्रणं त्रिजगतां जैत्रं च चित्रं च ते ।
मातः श्रीबगलेति नाम ललितं यस्यास्ति जन्तोर्मुखे
त्वन्नामग्रहणेन संसदि मुखस्तम्भो भवेद्वादिनाम् ।।५।।

विपक्षियों के दमन के लिये तुम्हारा मन्त्र ही पर्याप्त है। उसी के समान तुम्हारा स्तोत्र भी है। वादियों के नियन्त्रण के लिये त्रिलोकप्रसिद्ध तुम्हारा यन्त्र भी विजयशाली विचित्र है। हे माँ! श्री बगला यह तुम्हारा ललित नाम जिस साधक के मुख को शोभित करता है, वह भाग्यशाली है; क्योंकि सभा में तुम्हारे नाम का स्मरण करते ही वादियों का मुख स्तम्भित हो जाता है।।५।।

दुष्टस्तम्भनमुग्रविघ्नशमनं दारिद्र्यविद्रावणं
भूभृद्भीशमनं चलन्मृगदृशां चेतःसमाकर्षणम् ।
सौभाग्यैकनिकेतनं मम दृशोः कारुण्यपूर्णेक्षणं
मृत्योर्मारणमाविरस्तु पुरतो मातस्त्वदीयं वपुः ।।६।।

दुष्ट जनों का स्तम्भक, उग्र विघ्नों का शामक, दरिद्रता-निवारक, राजाओं का दमनकारक, मृगाक्षियों के चंचल चित्त का समाकर्षक एवं समदर्शियों के लिये सौभाग्य का एकमेव निकेतन, करुणापूर्ण नेत्रों वाला और मृत्यु का भी मारक तुम्हारा सुन्दर शरीर हे माँ ! मेरे आगे प्रकट हो।।६।।

मातर्भञ्जय मद्विपक्षवदनं जिह्वां चलाः कीलय
ब्राह्मीं मुद्रय दैत्यदेवधिषणामुग्रां गतिं स्तम्भय ।
शत्रूञ्चूर्णय देवि तीक्ष्णगदया गौराङ्गि पीताम्बरे
विघ्नौघं बगले हर प्रणमतां कारुण्यपूर्णे क्षणे ॥७॥

हे गौरांगि, पीताम्बरे, माँ देवि! मेरे विपक्षियों के मुख को तोड़ दो। उनकी जिह्वा को कील दो। वाणी को रुद्ध कर दो।

देव और दैत्यों की उग्र बुद्धि और गतियों को स्तम्भित कर दो। अपनी तीक्ष्ण गदा से शत्रुओं को चूर्ण कर दो। अपनी करुणामयी दृष्टि से भक्तों के विघ्नों को दूर कर दो।।७।।

मातर्भैरवि भद्रकालि विजये वाराहि विश्वाश्रये
श्रीविद्ये समये महेशि बगले कामेशि रामे रमे ।
मातङ्गि त्रिपुरे परात्परतरे स्वर्गापवर्गप्रदे
दासोऽहं शरणागतः करुणया विश्वेश्वरि त्राहि माम् ॥८॥

हे माँ बगले! भैरवी, भद्रकाली, वाराही, भुवनेश्वरी, श्रीविद्या, षोडशी, बाला, त्रिपुरसुन्दरी, कमला आदि सब तुम्हीं हो। स्वर्ग और मोक्ष भी तुम्हीं देती हो। परात्पर ब्रह्म भी तुम्हीं हो। मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। हे विश्वेश्वरि! करुणा करके मेरी रक्षा करो।।८।।

संरम्भे चौरसङ्घे प्रहरणसमये बन्धने व्याधिमध्ये
विद्यावादे विवादे प्रकुपितनृपतौ दिव्यकाले निशायाम् ।
वश्ये वा स्तम्भने वा रिपुवधसमये निर्जने वा जने वा
गच्छंस्तिष्ठन् त्रिकालं यदि पठति शिवं प्राप्नुयादाशु धीरः ॥९॥

तुम परमा विद्या हो। तीनों लोकों की जननी हो। विघ्नसमूह का नाश करती हो। स्त्रियों को आकर्षित करती हो। तीनों लोकों के आनन्द को बढ़ाती हो। दुष्टों का उच्चाटन करती हो। पशुजन के मन को सम्मोहित करती हो। शत्रु की जीभ-कीलन में भैरवी हो। सदैव विजय देनेवाली परा ब्रह्मास्त्रविद्या हो।।९।।

नित्यं स्तोत्रमिदं पवित्रमिह यो देव्याः पठत्यादरा-
द्धृत्वा यन्त्रमिदं तथैव समरे बाहौ करे वा गले ।

राजानोऽप्यरयो मदान्धकरिणस्सर्पा मृगेन्द्रादिका-
स्ते वै यान्ति विमोहिता रिपुगणा लक्ष्मीः स्थिरा सिद्धयः ॥१०॥

सभी विद्याएँ, लक्ष्मी, नित्य सौभाग्य, दीर्घायु, पुत्र-पौत्रादिसहित सर्वसाम्राज्य-सिद्धि, मान, भोग, वश्यता, आरोग्य, सुख आदि जो भी मनुष्य को प्राप्त होना चाहिये, वह सब तुम्हारी कृपा से इस पृथ्वी पर ही साधक को प्राप्त हो जाता है।।१०।।

त्वं विद्या परमा त्रिलोकजननी विघ्नौघसञ्छेदिनी
योषित्कर्षणकारिणी जनमनःसम्मोहसन्दायिनी ।
स्तम्भोत्सारणकारिणी पशुमनःसम्मोहसन्दायिनी
जिह्वाकीलनभैरवी विजयते ब्रह्मादिमन्त्रो यथा ॥११॥

हे देवि! विप्लवकाल में, चोरों के समूह में, शत्रु पर प्रहारकाल में, बन्धन में, व्याधि-पीड़ा में, विद्यासम्बन्धी विवाद में, मौखिक कलह में, नृपकोप में और रात के दिव्यकाल में, वश्य कार्य में, स्तम्भन में, शत्रुवध के समय में, निर्जन स्थान में अथवा वन में, कहीं भी चलता हुआ, बैठा हुआ तीनों काल में जो साधक तुम्हारे स्तोत्र का पाठ करता है, वह धीर पुरुष शीघ्र ही कल्याण प्राप्त करता है।।११।।

विद्यालक्ष्मीर्नित्यसौभाग्यमायुः पुत्रैः पौत्रैः सर्वसाम्राज्यसिद्धिम् ।
मानो भोगो वश्यमारोग्यसौख्यं प्राप्तं तत्तद्भूतलेऽस्मिन्नरेण ॥१२॥

भगवती पीताम्बरा के इस पवित्र स्तोत्र का पाठ जो साधक नित्य आदरपूर्वक करता है तथा इनके यन्त्र को बाँह में, हाथ में या गले में युद्धकाल में धारण करता है तो राजा एवं शत्रुगण विमोहित हो जाते हैं। इतना ही नहीं; ऐसे साधक को लक्ष्मी की स्थिरता भी प्राप्त होती है।।१२।।

यत्कृतं जपसन्नाहं गदितं परमेश्वरि ।
दुष्टानां निग्रहार्थाय तद्गृहाण नमोस्तु ते ॥१३॥
ब्रह्मास्त्रमिति विख्यातं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
गुरुभक्ताय दातव्यं न देयं यस्य कस्यचित् ॥१४॥
पीताम्बरां द्विभुजां च त्रिनेत्रां गात्रकोमलाम् ।
शिलामुद्गरहस्तां च स्मरेत्तां बगलामुखीम् ॥१५॥
प्रातर्मध्याह्नकाले स्तवपठनमिदं कार्यसिद्धिप्रदं स्यात् ॥१६॥

इति रुद्रयामले तन्त्रे श्रीबगलामुखीस्तोत्रं समाप्तम्

हे परमेश्वरि! दुष्टों के निग्रहार्थ तुम्हारे विषय में जो मैंने जपादिपूर्वक कहा है, उसे तुम स्वीकार करो, तुम्हें नमस्कार है।

त्रिलोक में ब्रह्मास्त्र नाम से विख्यात इस स्तोत्र को सबको न देकर केवल गुरुभक्त शिष्यों को ही देना चाहिये।

कोमल शरीर वाली, वज्र और मुद्गर हाथों में धारण करने वाली, त्रिनेत्र एवं दो भुजाओं वाली पीताम्बरा बगलामुखी का मैं स्मरण करता हूँ।।१३-१६।।

●

मातङ्गीकवचम्

श्रीदेव्युवाच—

साधु साधु महादेव कथयस्व सुरेश्वर ।
मातङ्गीकवचं दिव्यं सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ।।१।।

पूर्वपीठिका—श्रीदेवी ने कहा—हे सुरेश्वर महादेव! आपने जो कहा, उसके लिये साधुवाद है। अब आप सर्वसिद्धिकर दिव्य मातंगी कवच का कथन कीजिये, जो मनुष्यों के लिये सर्वसिद्धिदायक है।।१।।

ईश्वर उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मातङ्गीकवचं शुभम् ।
गोपनीयं महादेवि मौनी जापं समाचरेत् ।।२।।

ईश्वर ने कहा कि हे देवि! आप सुनिये। मैं शुभद मातंगी कवच का वर्णन करता हूँ। हे महादेवि! यह कवच गोपनीय है। मौन रहकर इसका जप करना चाहिये।।२।।

अस्य श्रीमातङ्गीकवचस्य दक्षिणामूर्तिर्ऋषिर्विराट् छन्दो मातङ्गी देवता चतुर्वर्गसिद्धये विनियोगः।

विनियोग—इस मातंगी कवच के ऋषि दक्षिणामूर्ति हैं। छन्द विराट् है। देवता मातंगी हैं। चतुर्वर्ग-सिद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है।

ॐ शिरो मातङ्गिनी पातु भुवनेशी तु चक्षुषी ।
तोडला कर्णयुगलं त्रिपुरा वदनं मम ।।३।।
पातु कण्ठे महामाया हृदि माहेश्वरि तथा ।
त्रिपुरा पार्श्वयोः पातु गुदे कामेश्वरी मम ।।४।।
ऊरूद्वये तथा चण्डी जङ्घयोश्च रतिप्रिया ।
महामाया पादयुग्मे सर्वाङ्गेषु कुलेश्वरी ।।५।।

कवच—मेरे शिर की रक्षा मातंगी और आँखों की रक्षा भुवनेश्वरी करे। दोनों कानों की रक्षा तोडला और मुख की रक्षा त्रिपुरा करे। महामाया कण्ठ की और माहेश्वरी हृदय

की रक्षा करे। त्रिपुरा पार्श्वों की और कामेश्वरी गुदा की रक्षा करे। चण्डी दोनों ऊरुओं की और रतिप्रिया जंघाओं की रक्षा करे। महामाया दोनों पैरों की और कुलेश्वरी सारे शरीर की रक्षा करे।।३-५।।

अङ्गं प्रत्यङ्गकं चैव सदा रक्षतु वैष्णवी ।
ब्रह्मरन्ध्रे सदा रक्षेन्मातङ्गीनाम संस्थिता ॥६॥
रक्षेन्नित्यं ललाटे सा महापिशाचिनीति च ।
नेत्रयोः सुमुखी रक्षेद्देवी रक्षतु नासिकाम् ॥७॥
महापिशाचिनी पश्चान्मुखे रक्षतु सर्वदा ।
लज्जा रक्षतु मां दन्ताञ्चोष्ठौ सम्मार्जनीकरा ॥८॥
चिबुके कण्ठदेशे च ठकारत्रितयं पुनः ।
सविसर्गं महादेवि हृदयं पातु सर्वदा ॥९॥

वैष्णवी सर्वदा मेरे अंग-प्रत्यंगों की रक्षा करे। मातंगी सर्वदा मेरे नाम की रक्षा करे। महापिशाचिनी नित्य मेरे ललाट की रक्षा करे। नेत्रों की रक्षा सुमुखी और नाक की रक्षा देवी करे।

मुख के पिछले भाग की रक्षा महापिशाचिनी करे। लज्जा मेरे होठों की और सम्मार्जनी मेरे दाँतों की रक्षा करे। तीन ठः ठः मेरे कण्ठ, चिबुक और हृदय की रक्षा करे।।६-९।।

नाभिं रक्षतु मां लोला कालिकाऽवतु लोचने ।
उदरे पातु चामुण्डा लिङ्गे कात्यायनी तथा ॥१०॥
उग्रतारा गुदे पातु पादौ रक्षतु चाम्बिका ।
भुजौ रक्षतु शर्वाणी हृदयं चण्डभूषणा ॥११॥
जिह्वायां मातृका रक्षेत्पूर्वे रक्षतु पुष्टिका ।
विजया दक्षिणे पातु मेधा रक्षतु वारुणे ॥१२॥

लोला मेरे नाभि की रक्षा करे और लोचनों की रक्षा कालिका करे। उदर की रक्षा चामुण्डा और लिंग की रक्षा कात्यायनी करे। उग्रतारा गुदा की और अम्बिका पैरों की रक्षा करे।

भुजाओं की रक्षा शर्वाणी और हृदय की रक्षा चण्डभूषणा करे। मातृका जीभ की और पूर्व में पुष्टि रक्षा करे। विजया दक्षिण में और मेधा पश्चिम में रक्षा करे।।१०-१२।।

नैर्ऋत्यां श्रद्धया रक्षेद्वायव्यां पातु लक्ष्मणा ।
ऐशान्यां रक्षयेद्देवी मातङ्गी शुभकारिणी ॥१३॥
रक्षेत्सुरेशी चाग्नेये बगला पातु चोत्तरे ।

ऊर्ध्वं पातु महादेवि देवानां हितकारिणी ॥१४॥
पाताले पातु मां नित्यं वशिनी विश्वरूपिणी ।
प्रणवं च ततो माया कामबीजं च कूर्चकम् ॥१५॥
मातङ्गिनी ङेयुतास्त्रं वह्निजायावधिर्मनुः ।
सार्द्धैकादशवर्णा सा सर्वत्र पातु मां सदा ॥१६॥

श्रद्धा नैर्ऋत्य में और लक्ष्मणा वायव्य में रक्षा करे। ईशान में मातंगी रक्षा करे। सुरेशी अग्निकोण में और बगला मेरी रक्षा उत्तर दिशा में करे। देवताओं की हितकारिणी महादेवी मेरी रक्षा ऊर्ध्वदिशा में करे। विश्वरूपिणी वशिनी मेरी रक्षा पाताल में करे। ॐ ह्रीं क्लीं हूं मातंगिन्यै फट् स्वाहा साढ़े ग्यारह अक्षरों का मन्त्र मेरी रक्षा सर्वत्र सर्वदा करे।।१३-१६।।

इति ते कथितं देवि गुह्याद् गुह्यतरं परम् ।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं देवदुर्लभम् ॥१७॥
य इदं प्रपठेन्नित्यं जायते सम्पदालयम् ।
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥१८॥
गुरूमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं प्रपठेद्यदि ।
ऐश्वर्यं सुकवित्वं च वाक्सिद्धिं लभते ध्रुवम् ॥१९॥

फलश्रुति—हे देवि! इस प्रकार मैंने गुप्त से गुप्ततर, श्रेष्ठ, देवदुर्लभ त्रैलोक्यमंगल नाम कवच आपको बतलाया।

जो मनुष्य इसका पाठ नित्य करता है, उसे सम्पदाओं का आलय प्राप्त होता है। वह निश्चित रूप से परम अतुल्य ऐश्वर्य प्राप्त करता है। जो विधिवत् गुरु का पूजन करके यदि इस कवच का पाठ करता है तो उस मनुष्य को ऐश्वर्य, सुकवित्व और वाक्सिद्धि प्राप्त होती है। यह ध्रुव सत्य है।।१७-१९।।

नित्यं तस्य तु मातङ्गी महिला मङ्गलं चरेत् ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ये देवाः सुरसत्तमाः ॥२०॥
ब्रह्मराक्षसवेताला ग्रहाद्या भूतजातयः ।
तं दृष्ट्वा साधकं देवि लज्जायुक्ता भवन्ति ते ॥२१॥
कवचं धारयेद्यस्तु सर्वसिद्धिं लभेद् ध्रुवम् ।
राजानोऽपि च दासत्वं षट्कर्माणि च साधयेत् ॥२२॥

मातंगी देवी उसका मंगल नित्य करती हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश और सुरेशादि देवता, ब्रह्मराक्षस, वेताल, ग्रह, भूत जाति उसे देखते ही लज्जित हो जाते हैं। जो इस कवच को धारण करता है, उसे सभी सिद्धियाँ मिल जाती हैं। राजा लोग दासवत् हो जाते हैं। उसे षट्कर्मों में सिद्धि प्राप्त होती है।।२०-२२।।

सिद्धो भवति सर्वत्र किमन्यैर्बहुभाषितैः ।
इदं कवचमज्ञात्वा मातङ्गीं यो भजेन्नरः ॥२३॥
अल्पायुनिर्धनो मूर्खो भवत्येव न संशयः ।
गुरौ भक्तिः सदा कार्या कवचे च दृढा मतिः ॥२४॥
तस्मै मातङ्गिनी देवी सर्वसिद्धिं प्रयच्छति ॥२५॥

इति नन्द्यावर्ते उत्तरखण्डे त्वरिफलदायिनी
मातङ्गिनीकवचं समाप्तम्

इति महामहोपाध्यायश्रीकृष्णानन्दभट्टाचार्यविरचिते
तन्त्रसारे चतुर्थः परिच्छेदः

* * *

अधिक क्या कहा जाय, उसे सर्वत्र सिद्धि मिलती है। इस कवच को जाने विना जो मातंगी की उपासना करता है, वह अल्पायु, निर्धन और मूर्ख हो जाता है। इसमें शंका नहीं है। गुरुभक्तिसहित दृढ़ विचार से कवच का जो पाठ करता है, उसे मातंगी देवी सभी सिद्धियाँ देती हैं।।२३-२५।।

चतुर्थ परिच्छेद सम्पूर्ण

* * *

पञ्चमः परिच्छेदः

उपचारादिनिरूपणम्

अथ प्रसङ्गादुपचारादयो निरूप्यन्ते—

अथ चतुःषष्ट्युपचाराः। सर्वोपचारमन्त्रास्त्रितारीपूर्वाः कल्पयामि नम इत्यन्ताः कार्याः। यथा—ऐं ह्रीं श्रीं पाद्यं कल्पयामि नमः। एवं अर्घ्यं कल्पयामि नमः इत्यादिक्रमेण। तथा सिद्धयामले—

त्रितारीञ्च मुखे कृत्वा देयस्य भुवनेश्वरी ।
कल्पयामि नमः पश्चादुपचारेष्वयं विधिः ॥ इति ।

उपचारादिकों का निरूपण—सभी प्रकार के उपचारों को प्रदान करते समय पहले त्रितारी ऐं ह्रीं श्रीं तीन बीजों का उच्चारण करते हुए देय द्रव्य का उल्लेख करके कल्पयामि नमः बोले। जैसे—ऐं ह्रीं श्रीं पाद्यं कल्पयामि नमः।

सिद्धयामल के अनुसार भुवनेश्वरी और श्रीविद्या के अर्चन में इसी प्रावधान का पालन करना चाहिये।

चतुःषष्ट्युपचाराः

आसनारोपणम्। सुगन्धितैलाभ्यङ्गम्। मज्जनशालाप्रवेशनम्। मज्जनमण्डपे मणिपीठोपवेशनम्। दिव्यस्नानीयम् उद्वर्तनम्। उष्णोदकस्नानम्। कनककलसस्थितसर्वतीर्थाभिषेकम्। धौतवस्त्रपरिमार्जनम्। अरुणदुकूलपरिधानम्। अरुणदुकुलोत्तरीयम्। आलेपमण्डपप्रवेशनम्। आलेपमणिपीठोपवेशनम्। चन्दनागुरुकुङ्कममृगमदकर्पूरकस्तूरीरोचनादिव्यगन्धसर्वाङ्गानुलेपनम्। केशभारस्य कालागुरुधूपमल्लिकामालतीजातीचम्पकाशोकशतपत्रपूगकुहरीपुन्नागकह्लारयूथीसर्ववर्तुकुसुममालाभूषणम्। भूषणमण्डपप्रवेशनम्। भूषणमणिपीठोपवेशनम्। नवरत्नमुकुटम्। चन्द्रशकलम्। सीमन्तसिन्दूरम्। तिलकरत्नम्। कालाञ्जनम्। कर्णपालीयुगलम्। नासाभरणम्। अधरपावकम्। ग्रथनभूषणम्। कनकचित्रपदकम्। महापदकम्। मुक्तावलीम्। एकावलीम्। देवच्छन्दकम्। केयूरयुगलचतुष्कम्। वलयावलीम्। ऊर्मिकावलीम्। काञ्चीदामकटीसूत्रम्। शोभाख्याभरणम्। पादकटकम्। रत्ननूपुरम्। पादांगुरीयकम्। एककरे पाशम्। अन्यकरे अंकुशम्। इतरकरेषु पुण्ड्रेक्षुचापम्। अपरकरे पुष्पबाणान्। श्रीमन्माणिक्यपादुकाम्। स्वसमानवेदशास्त्रावरणदेवताभिः सह सिंहासनारोहणम्। कामेश्वरपर्यङ्कोपवेशनम्। अमृताशनचषकम्। आचमनीयम्। कर्पूर-

वटिकाम्। आनन्दोल्लासविलासहासम्। मङ्गलारात्रिकम्। श्वेतच्छत्रम्। चामरयुगलम्। दर्पणम्। तालवृन्तम्। गन्धम्। पुष्पम्। धूपम्। दीपम्। नैवेद्यम्। पानार्थम्। पुनराचमनीयं ताम्बूलं नमस्कारं कल्पयेत्। एतेषामुपचाराणामभावे एते मन्त्रा जप्या:। तदुक्तं नवरत्नेश्वरे—

चतु:षष्ट्युपचाराणामभावे तन्मनुं जपेत् ।
तत्तदेव फलं विन्द्यात्साधक: स्थिरमानस: ॥

चौंसठ उपचार—१. पाद्य, २. अर्घ्य, ३. स्वागत, ४. आसन, ५. सुगन्धित तेल, ६. स्नानार्थ गृहप्रवेश, ७. स्नानमण्डप में मणिपीठ पर उपवेशन, ८. स्नानार्थ उद्वर्तन, ९. उष्ण जलस्नान, १०. स्वर्णकलशपूर्ण तीर्थ जल से अभिषेक, ११. धौत वस्त्र से देहमार्जन, १२. परिधान हेतु लाल रेशमी वस्त्र, १३. उत्तरीय के लिये लाल रेशमी वस्त्र, १४. आलेपन मण्डप में प्रवेश, १५. आलेपनार्थ मणिमय पीठ पर उपवेशन, १६. सर्वांग में चन्दन, अगर, कुंकुम, मृगमद, कपूर, कस्तूरी, गोरोचन और दिव्य गन्धद्रव्य का लेपन, १७. केशकलाप में काला अगर, धूप, मल्लिका, मालती, जाती, चम्पा, अशोक, कमल, गुवाक पुष्प, पुन्नाग, कल्हार, जूही और सभी ऋतुओं के फूलों का भूषण, १८. अलंकारमण्डप में प्रवेश, १९. अलंकार प्रदान हेतु मणिमय पीठ पर उपवेशन, २०. नवीन मणिमुकुटदान, २१. अर्द्धचन्द्रभूषण, २२. सीमन्त सिन्दूर, २३. तिलक रत्न, २४. काला अगर का अंजन, २५. दो कर्णाभूषण, २६. नासा आभरण, २७. अधर हेतु आलता, २८. सोने की कण्ठमाला, २९. स्वर्णविचित्र पदक, ३०. वृहत् पदक, ३१. मुक्तावली, ३२. एकावली (हारविशेष), ३३. चतु:षष्टिक हार, ३४. सोने का एक जोड़ा केयूर, चाँदी का एक जोड़ा केयूर, ३५. वलयचतुष्टय, ३६. उर्मिकावलि (अंगूठियाँ), ३७. कटिभूषण (करधनी), ३८. शोभानामक अलंकार, ३९. चरण का कटक, ४०. रत्ननूपुर, ४१. पैरों का अंगुरीय, ४२. एक हाथ में पाश, ४३. अन्य हाथ में अंकुश, ४४. अन्य हाथ में पुण्ड्र नामक ईख का धनुष, ४५. अन्य हाथ में पुष्पवाण, ४६. माणिक्यमय पादुका, ४७. अपने समान वेश और वस्त्रधारी आवरण देवताओं सहित सिंहासन पर आरोहण, ४८. कामेश्वर शिव के अंक में उपवेशन, ४९. अमृतपान के लिये गिलास, ५०. आचमनीय, ५१. कूर्परवटिका, ५२. आनन्द, उल्लास और हास्य विलास, ५३. मंगल आरती, ५४. श्वेत छत्र, ५५. दो चामर, ५६. दर्पण, ५७. तालवृन्त, ५८. गन्ध, ५९. पुष्प, ६०. धूप, ६१. दीप, ६२. नैवेद्य, ६३. पानीय, ६४. आचमनीय ताम्बूल नमस्कार।

श्रीविद्या की अर्चना में उक्त चौंसठ उपचारों का ही विवरण है। उपचार के अभाव में उपचारमन्त्र बोलकर जल प्रदान करे—ऐसा नवरत्नेश्वर में लिखा है। स्थिर चित्त से मन्त्रपाठ करने से साधक तद् रूप फल का भागी होता है।

अष्टादशोपचारा:

आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ।
स्नानं वस्त्रोपवीतञ्च भूषणानि च सर्वशः ।
गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपमन्नञ्च तर्पणम् ॥
माल्यानुलेपनञ्चैव नमस्कारविसर्जने ।
अष्टादशोपचारैस्तु मन्त्री पूजां समाचरेत् ॥

अष्टादशोपचार—१. आसन, २. स्वागत, ३. पाद्य, ४. अर्घ्य, ५. आचनमीय, ६. स्नानीय, ७. वस्त्र, ८. यज्ञोपवीत, ९. आभूषण, १०. गन्ध, ११. पुष्प, १२. धूप, १३. दीप, १४. नैवेद्य, १५. दर्पण, १६. माल्य, १७. अनुलेपन, १८. नमस्कार।

षोडशोपचारा:

पाद्यमर्घ्यं तथाचामं स्नानं वसनभूषणे ।
गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्याचमनं ततः ॥
ताम्बूलमर्चना स्तोत्रं तर्पणञ्च नमस्क्रिया ।
प्रयोजयेच्च पूजायामुपचारांस्तु षोडश ॥

षोडशोपचार—१. पाद्य, २. अर्घ्य, ३. आचमनीय, ४. स्नानीय, ५. वस्त्र, ६. भूषण, ७. गन्ध, ८. पुष्प, ९. धूप, १०. दीप, ११. नैवेद्य, १२. आचमनीय, १३. ताम्बूल, १४. स्तोत्रपाठ, १५. तर्पण, १६. नमस्कार।

दशोपचारा:

पाद्यमर्घ्यं तथाचामं मधुपर्काचमनं तथा ।
गन्धादयो नैवेद्यान्ता उपचारा दश क्रमात् ॥५॥

दशोपचार—१. पाद्य, २. अर्घ्य, ३. आचमनीय, ४. मधुपर्क, ५. आचमनीय, ६. गन्ध, ७. पुष्प, ८. धूप, ९. दीप, १०. नैवेद्य।

पञ्चोपचारा:

गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपं नैवेद्यमेव च ।
अखण्डं फलमासाद्य कैवल्यं लभते ध्रुवम् ॥६॥

पञ्चोपचार—१. गन्ध, २. पुष्प, ३. धूप, ४. दीप, ५. नैवेद्य।

मणिमुक्ताद्रव्याणां निर्माल्यकालकथनम्

योगिनीतन्त्रे—

मणिमुक्तासुवर्णानि देवे दत्तानि यानि वै ।
न निर्माल्यं द्वादशाब्दं ताम्रपात्रं तथैव च ॥

पटी शाटी च षण्मासं नैवेद्यं दत्तमात्रतः ।
मोदकं कृषरञ्चैव यामार्द्धेन महेश्वरि ॥
पट्टवस्त्रं त्रिमासाच्च यज्ञसूत्रमहं स्मृतम् ।
यावदुष्णं भवेदन्नं परमान्नं तथैव च ॥
मस्तकं रुधिरञ्चैव अहोरात्रेण पार्वति ।
मुहूर्तं दधि दुग्धञ्च आज्यं यामेन शङ्करि ॥
करवीरमहोरात्रं बिल्वपत्रं तथैव च ।
जवारक्तञ्च माध्यञ्च निर्माल्यं सार्द्धयामके ॥
माल्यं वै करवीरस्य पद्मस्य बिल्वकस्य च ।
यामार्द्धेन महेशानि ताम्बूलं दत्तमात्रतः ॥
न निर्माल्यञ्च दाडिम्बं तथा बिल्वफलं प्रिये ।
सौगन्धिकञ्च कदली प्रयत्नेन नियोजयेत् ॥

मणि-मुक्तादि द्रव्यों का निर्माल्यकाल—योगिनीतन्त्र के अनुसार मणि-मुक्ता-स्वर्ण और ताम्रपात्र देवता को निवेदन करने पर वारह वर्ष तक निर्माल्य नहीं होते।

रेशमी साड़ी छः महीनों में और नैवेद्य देने मात्र ही से निर्माल्य होता है। मोदक, कृषर (तिलतण्डुल से बना खाद्य) आधे प्रहर में, रेशमी वस्त्र तीन मास में और यज्ञसूत्र एक दिन में निर्माल्य होता है। अन्न और परमान्न जब तक गर्म रहें, तब तक निर्माल्य नहीं होते। मस्तक और रुधिर दिन-रात में, दही और दूध एक मुहूर्त में एवं घी एक प्रहर में निर्माल्य होता है।

कबरी-पुष्प और बेलपत्र २४ घण्टों में, रक्त जवा और कुन्दपुष्प डेढ़ प्रहर में, कबरी कुसुम की माला आधे प्रहर में और ताम्बूल अर्पण करते ही निर्माल्य हो जाता है।

अनार और बिल्वफल कभी निर्माल्य नहीं होते। श्वेत कमल और केला देवता को यत्नपूर्वक निवेदन करे।

त्रिपुरसुन्दर्याः षोडशोपचारमन्त्राः

उद्यच्चन्दनकुङ्कुमारुणपयोधाराभिराप्लावितां
नानानर्घ्यमणिप्रवालघटितां दत्तां गृहाणाम्बिके ।
आमृष्टां सुरसुन्दरीभिरभितो हस्ताम्बुजैर्भक्तितो
मातः सुन्दरि भक्तकल्पलतिके श्रीपादुकामादरात् ॥१॥

त्रिपुरसुन्दरी को षोडशोपचार-प्रदान के मन्त्र—हे माते! तुम्हें श्रीपादुका प्रदान करता हूँ। यह रक्त चन्दन और कुंकुम से लाल जलधारा द्वारा परिमार्जित है। नाना प्रकार की अति मूल्यवान मणियों और प्रवालों से जड़ा हुआ है। सुर-सुन्दरियों ने भक्तिपूर्वक

अपने करकमलों से इसे चारो ओर से पोंछा है। हे माँ त्रिपुरसुन्दरि! तुम भक्तजनों की कल्पलतिका हो। तुम इस पादुका को सादर ग्रहण करो।।१।।

देवेन्द्रादिभिरर्चितं सुरगणैरादाय सिंहासनं
चञ्चत्काञ्चनसञ्चयाभिरचितं चारुप्रभाभास्वरम् ।
एतच्चम्पककेतकीपरिमलं तैलं महानिर्मलं
गन्धोद्वर्तनमादरेण तरुणी दत्तं गृहाणाम्बिके ॥२॥

हे जननि! देवेन्द्रादि सुरगणों ने जिसकी अर्चना की है, मैं उसी समुज्ज्वल स्वर्णराशि से निर्मित सुन्दर प्रभा से प्रकाशमान सिंहासन देता हूँ। इस सिंहासन पर आप विराजमान होकर तरुणी-प्रदत्त अति निर्मल सुगन्धित तेल को ग्रहण करें। इस तेल में चम्पक और केतकी की सुगन्ध विद्यमान है। इसे कृपया ग्रहण करें।।२।।

पश्चाद्देवि गृहाण शम्भुगृहिणि श्रीसुन्दरि प्रायशो
गन्धद्रव्यसमूहनिर्भरतरं धात्रीफलं निर्मलम् ।
तत्केशान् परिशोध्य कङ्कतिकया मन्दाकिनीस्रोतसि
स्नात्वा प्रोज्ज्वलगन्धकं भवतु ते श्रीसुन्दरि त्वन्मुदे ॥३॥

हे देवि! हे शिवगृहिणि! हे श्रीसुन्दरि! विविध गन्धद्रव्यों में पूरित, निर्मल आमलाफल-पिष्ट ग्रहण करो। इस आमलापिष्ट को मस्तक में लगाकर मन्दाकिनी की धारा से स्नान करो। स्नान के बाद कंघी द्वारा केशों को संवार कर देखो कि किस प्रकार की मनोरम गन्ध निकलती है। हे श्रीसुन्दरि! तब इससे आप आनन्दित प्रफुल्लित होइये।।३।।

सुराधिपतिकामिनीकरसरोजनालीधृतां
सचन्दनकुङ्कमागुरुभरेण विभ्राजिताम् ।
महापरिमलोज्ज्वलां सरसशुद्धकस्तूरिकां
गृहाण वरदायिनि त्रिपुरसुन्दरि श्रीपदे ॥४॥

हे सम्पत्तिप्रदायिनि त्रिपुरसुन्दरि! हे वरप्रदे! विशुद्ध कस्तूरी प्रदान करता हूँ, ग्रहण करो। इस कस्तूरी को सुरराज की कामिनी ने अपने करकमलों से रक्खा है। इसमें चन्दन, अगर और कुंकुममिश्रित होने से उत्तम गन्ध निकल रही है।।४।।

गन्धर्वामरकिन्नरप्रियतमासन्तानहस्ताम्बुज-
प्रस्तारैर्ध्रियमानमुत्तमतरं काश्मीरजापिञ्जरम् ।
मातर्भास्वरभानुमण्डललसत्कान्तिप्रदानोज्ज्वलं
चैनं निर्मलमातनोतु वसनं श्रीसुन्दरि त्वन्मुदे ॥५॥

हे श्रीसुन्दरि! कुंकुमरस से लोहित वर्ण वस्त्र मैंने लाया है। देवता, गन्धर्व और

किन्नरगण की प्रियतमाओं के करकमलों से प्रसारित यह वस्त्र धारण करो। इस वस्त्र से जो कान्तिधारा निकल रही है, वह प्रात:काल के उज्ज्वल सूर्यमण्डल से निकलती हुई कान्ति के समान है। यह उज्ज्वल निर्मल वस्त्र तुम्हारे लिये आनन्दवर्द्धक है।।५।।

स्वर्णाकल्पितकुण्डले श्रुतियुगे हस्ताम्बुजे मुद्रिका
मध्ये सा रसना नितम्बफलके मञ्जीरमंघ्रिद्वये।
हारो वक्षसि कङ्कणौ क्वणरणत्कारौ करद्वन्द्वके
विन्यस्तं मुकुटं शिरस्यनुदिनं दत्तोन्मुदं स्तूयताम् ॥६॥

कानों में स्वर्णकुण्डल, करकञ्जों में अंगुठियाँ, नितम्बदेश में चन्द्रहार, पैरों में नूपुर, वक्ष में हार, दोनों हाथों में रुनझुन बजते कंगन और मस्तक में मुकुट देता हूँ। तुम इसे ग्रहण करो और इनकी प्रशंसा करो।।६।।

ग्रीवायां धृतकान्तिकान्तपटलं ग्रैवेयकं सुन्दरं
सिन्दूरं विलसल्ललाटफलके सौन्दर्यमुद्राधरम्।
राजत्कज्जलमुज्ज्वलोत्पलदलश्रीमोचने लोचने
तद्दिव्यौषधिनिर्मितं रचयतु श्रीशाम्भवि श्रीपदे॥७॥

हे धनदे श्रीशाम्भवि! तुम्हारे गले का हार सुन्दर है, उसकी छटा सब ओर बिखरी हुई है। ललाट में सिन्दूर सौन्दर्य को बढ़ा रहा है। आँखों में लगाने के लिये यह काजल है, जिसकी तुलना में नीलोत्पल की शोभा फीकी है। यह काजल दिव्य औषधि से निर्मित हैं। तुम आँखों में इस काजल को लगाओ।।७।।

अमन्दतरमन्दरोन्मथितदुग्धसिन्धूद्भवं
निशाकरकरोपमं त्रिपुरसुन्दरि श्रीपदे।
गृहाण मुखमीक्षितुं मुकुरविम्बविद्रुमै
र्विनिर्मित मघच्छिदे रतिकराम्बुजस्थायिनम् ॥८॥

हे ऐश्वर्यदायिनी श्रीशाम्भवि! विशाल मन्दराचल से क्षीरसागर का मन्थन कर चन्द्ररश्मि-सा स्वच्छ दर्पण जो प्राप्त हुआ है, जो उत्तम प्रवाल से विरचित है और जो रति के करकञ्ज में स्थित है, उसी उत्तम दर्पण को मुख देखने के लिये तुम्हें देता हूँ। ग्रहण करो और हमारे पापसमूह का नाश करो।।८।।

कस्तूरीद्रवचन्दनागुरुसुधाधाराभिराप्लावितं
चञ्चच्चम्पकपाटलादिसुरभिद्रव्यैः सुगन्धीकृतम्।
देवस्त्रीगणमस्तकस्थितमहारत्नादिकुम्भव्रजै-
रम्भः शाम्भवि विमलं सम्भ्रमेण दत्तं गृहाणाम्बिके ॥९॥

हे शाम्भवि! देवरमणियों द्वारा महारत्नों से निर्मित कलश द्वारा मस्तक पर जो लाया गया है; जो कस्तूरी, चन्दन, अगर, सुधाधारा, चम्पा, गुलाब आदि वस्तुओं से सुवासित है, वही निर्मल जल तुम्हें सादर देता हूँ। तुम ग्रहण करो।।९।।

कह्लारोत्पलनागकेशरसरोजाख्यावलीमालती
मल्लीकैरवकेतकादिकुसुमैः रक्ताश्वमारादिभिः ।
पुष्पैर्माल्यभरेण वै सुरभिणा नानारसस्रोतसा
ताम्राम्भोजनिवासिनीं भगवती श्रीसुन्दरीं पूजये ॥१०॥

हे भगवति! श्रीसुन्दरि! आप रक्तकमलनिवासिनी हैं। कल्हार, उत्पल, नागकेशर, कमल, मालती, मल्लिका, कैरव, केतकी, लाल कनैल आदि नाना प्रकार के पुष्प और विविध रसपूर्ण सुगन्धित माला द्वारा आपकी पूजा करता हूँ।।१०।।

मांसीगुग्गुलचन्दनागुरुरजःकर्पूरशैलेयजै-
र्माध्वीकैः सह कुङ्कमैः सुरभितैः सर्पिर्भिरामिश्रितैः ।
सौरभ्यास्थितिमन्दिरे मणिमये पात्रेऽभवत्प्रीतये
धूपोऽयं सुरकामिनीविरचितः श्रीसुन्दरि त्वन्मुदे ॥११॥

हे श्रीसुन्दरि! जटामासी, गुग्गुल, चन्दन, अगर, कपूर, शिलाजित, मधु, कुंकुम और घी से देवरमणियों ने जो धूप बनाया है, उसी धूप को तुम्हारी प्रीति के लिये अति सौरभमय मणिमय पात्र में रखकर प्रदान करता हूँ। यह तुम्हारे लिये आनन्दवर्द्धक हो।।११।।

घृतद्रवपरिस्फुरद्रुचिररत्नयष्ट्यान्वितो-
महातिमिरनाशनः सुरनितम्बिनीनिर्मितः ।
सुवर्णचषकस्थितः सघनसारवर्त्यान्वित
स्तव त्रिपुरसुन्दरि स्फुरतु देवि दीपो मुदे ॥१२॥

हे देवि! हे त्रिपुरसुन्दरि! सुरमहिलाओं ने तुम्हारे लिये जो दीपक प्रस्तुत किया है, जो उत्तम रत्नयष्टि के ऊपर घी से प्रज्वलित किया गया है, जो सोने के दीपक में जल रहा है, जिसकी बत्ती चन्दनकाष्ठ की है, जो घोर अन्धकार दूर करता है, उसी दीपक को प्रदान करता हूँ। यह आनन्दवर्द्धक हो।।१२।।

जातीसौरभनिर्भरं रुचिकरं शाल्योदनं निर्मलं
युक्तं हिंगुमरीचजीरसुरभिद्रव्यान्वितैर्व्यञ्जनैः ।
पक्वान्नेन सपायसेन मधुना दध्याज्यसम्मिश्रितं
नैवेद्यं सुरकामिनीविरचितं श्रीसुन्दरि त्वन्मुदे ॥१३॥

हे सुन्दरि! जाती-सौरभ से पूर्ण, रुचिर, शाल्योदन से युक्त, निर्मल हींग, मरिच,

जीरा आदि सुगन्धि द्रव्यों से सुपक्व व्यंजनसहित पायस, मधु, दही, घीमिश्रित सुर-रमणियों द्वारा रचित नैवेद्य तुम्हें प्रदान करता हूँ, जो तुम्हें सन्तुष्टिप्रद हो।।१३।।

लवङ्गकलिकोज्ज्वलं बहुलनागवल्लीदलं
सजातिफलकोमलं सघनसारपूगीफलम् ।
सुधामधुरिमाकुलं रुचिररत्नपात्रस्थितं
गृहाण मुखपङ्कजे स्फुरितमम्ब ताम्बूलकम् ॥१४॥

लवंग-कलिका से सद्गन्धपूरित असंख्य पर्णपत्र, जातीफल, कपूर और कसैली से संवलित रत्नपात्र में स्थित ताम्बूल को अपने मुखकमल में ग्रहण करो और मुख का सौन्दर्य बढ़ाओ।।१४।।

शरत्प्रभवचन्द्रमास्फुरितचन्द्रिकासुन्दरं
दलत्सुरतरङ्गिणीललितमौक्तिकाडम्बरम् ।
गृहाण नवकाञ्चनप्रभवदण्डखण्डोज्ज्वलं
महात्रिपुरसुन्दरि प्रकटमातपत्रं महत् ॥१५॥

हे महात्रिपुरसुन्दरि! शारदीय चन्द्र की चन्द्रिका जैसा सुन्दर, सुरकामिनियों द्वारा मुक्तादाम से समलंकृत, कांचन दण्डविशिष्ट उज्ज्वल अति विस्तृत महाछत्र देता हूँ; ग्रहण करो।।१५।।

मातस्त्वन्मुदमातनोतु सुभगस्त्रीभिः सदान्दोलितं
शुभ्रं चामरमिन्दुकुन्दसदृशं प्रस्वेददुःखापहम् ।
सद्योऽगस्त्यवसिष्ठनारदशुकव्यासादिवाल्मीकिभिः
भव्ये भव्यानुकूले कुमतिवनदवे विश्ववन्द्यांघ्रिपद्मे ।
स्वे चित्ते क्रियमाण एव कुरुतां शर्माणि वेदध्वनिः ॥१६॥

हे माते! सौभाग्यवती स्त्रियों द्वारा आन्दोलित, इन्दुकुन्दतुल्य शुभ्र घर्मजनित क्लेश का नाशक चामर तुम्हें तृप्त करे। अगस्त्य, वशिष्ठ, नारद, शुक, व्यास, वाल्मीकि आदि मुनि अपने मन में जो सारी वेदध्वनि करते हैं, वह सब तुम्हें सन्तुष्ट करें।।१६।।

स्वीयाङ्गने वेणुमृदङ्गशङ्खभेरीनिनादैरुपगीयमाना ।
कोलाहलैराकुलिता तवास्तु विद्याधरीनृत्यकला सुखाय ॥१७॥

सुरपुरवासिनी देवियों द्वारा वेणु, मृदंग, शंख, भेरी-वादन के साथ गीयमान गीतध्वनि और कोलाहलपूर्ण विद्याधरियों की नृत्य कला तुम्हें आनन्दित करे।।१७।।

देविभक्तिरसभावितवृत्ते प्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते ।
तत्तु नान्यमपि सत्फलमेकं जन्मकोटिभिरपीह न लभ्यम् ॥१८॥

हे देवि! भक्तवृन्द यदि किसी प्रकार तुम्हारी प्रियता प्राप्त कर सकें तो कोटि-कोटि जन्म में भी उस भक्तलभ्य सत्फल का एकांश सदृश फल प्राप्त होने में समर्थ नहीं हो सकता।।१८।।

एतैः षोडशभिः पद्यैरुपचारोपकल्पितैः ।
यः परां देवतां स्तौति स तेषां फलमाप्नुयात् ॥१९॥

इन पूर्वोक्त सोलह पद्यों द्वारा मानसिक रूप से षोड़श उपचारों को प्रदान करते हुए जो परा देवता की स्तुति करता है, वह उन उपचारों को देने का यथार्थ फल प्राप्त करता है।।१९।।

रुद्राक्षमाहात्म्यम्

पद्मपुराणे—

शिखायां हस्तयोः कण्ठे कर्णयोश्चापि यो नरः ।
रुद्राक्षं धारयेद्भक्त्या स शैवं लोकमाप्नुयात् ॥
नववक्त्रन्तु रुद्राक्षं धारयेद्वामबाहुना ।
चतुर्दशमुखञ्चैव शिखायां धारयेद्बुधः ॥
एकवक्त्रः शिवः साक्षाद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
अवध्यत्वं प्रतिस्रोता वह्निस्तम्भं करोति च ॥
द्विवक्त्रो हरगौरी स्याद्गोवधाद्यघनाशकृत् ।
त्रिवक्त्रोऽग्निस्त्रिजन्मोत्थपापराशिं विनाशयेत् ॥
चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति ।
पञ्चवक्त्रस्तु कालाग्निरगम्याक्षयपापनुत् ॥
षड्वक्त्रस्तु गुहः साक्षाद्गर्भहत्यां व्यपोहति ।
सप्तवक्त्रस्त्वनन्तः स्यात् स्वर्णस्तेयाघनुत्सदा॥
विनायकोऽष्टवक्त्रः स्यात्सर्वानृतविनाशकृत् ।
भैरवो नववक्त्रस्तु शिवसायुज्यकारकः ॥
दशवक्त्रः स्मृतो विष्णुर्भूतप्रेतपिशाचहा ।
एकादशमुखो रुद्रो नानायज्ञफलप्रदः ॥
द्वादशास्यो भवेदर्कः सर्वक्रतुफलप्रदः ।
त्रयोदशमुखः कामः सर्वकामफलप्रदः ॥
चतुर्दशास्यः श्रीकण्ठो वंशोद्धारकरः परः ।
निश्छिद्राश्च सुपक्वाश्च रुद्राक्षा धारणे स्मृताः ॥

इति रुद्राक्षमाहात्म्यम्

रुद्राक्ष-माहात्म्य—पद्मपुराण का कथन है कि मस्तक, दोनों हाथों, दोनों कानों और कण्ठ में रुद्राक्ष धारण करने से शिवलोक प्राप्त होता है।

नौ मुखी रुद्राक्ष को वामभुजा में और चौदहमुखी रुद्राक्ष को शिखा में धारण करे। एकमुखी रुद्राक्ष शिवस्वरूप है। ब्रह्महत्या के पाप का विनाशक है। इसे धारण करने वाला अवध्य होता है। वह अग्निस्तम्भन कर सकता है। दोमुखी रुद्राक्ष हर-गौरी-स्वरूप है। इसे धारण करने से गोवधजनित पाप का विनाश होता है। तीनमुखी रुद्राक्ष अग्निस्वरूप है। इसे धारण करने से तीन जन्मों के पापों का नाश होता है। चारमुखी रुद्राक्ष ब्रह्मास्वरूप है; नरहत्याजनित पाप का विनाशक है। पाँचमुखी रुद्राक्ष कालाग्निस्वरूप है। इसके धारण करने से अगम्यागमन और अखाद्य-भोजनजनित पाप नष्ट होता है।

छः मुखी रुद्राक्ष कार्तिकेयस्वरूप है। इसके धारण करने से गर्भहत्याजनित पाप का विनाश होता है। सात मुखी रुद्राक्ष स्वयं अनन्त है। इसके धारण करने से स्वर्ण-चोरीजनित पाप कट जाता है। आठ मुखी रुद्राक्ष साक्षात् गणपति है। इसके धारण करने से सब प्रकार के मिथ्या भाषणजनित पाप नष्ट होते हैं। नौ मुखी रुद्राक्ष भैरवस्वरूप है। इसके धारण करने से शिव का सायुज्य मिलता है।

दशमुखी रुद्राक्ष विष्णुस्वरूप है। इसके धारण करने से भूत-प्रेत-पिशाचादि का भय नष्ट होता है। ग्यारह मुखी रुद्राक्ष के धारण करने से विविध यज्ञों का फल प्राप्त होता है। बारह मुखी रुद्राक्ष सूर्यस्वरूप है। यह सभी यज्ञों का फल देता है। तेरह मुखी रुद्राक्ष धारण करने से सभी कामनायें पूर्ण होती हैं। चौदह मुखी रुद्राक्ष श्रीकण्ठ है। इसके धारण करने से पूर्वजों का उद्धार होता है। निश्छिद्र और सुपक्व रुद्राक्ष का धारण करना प्रशस्त है।

रुद्राक्षसंस्कारः

पञ्चामृतं पञ्चगव्यं स्नानकाले प्रयोजयेत् ।
रुद्राक्षस्य प्रतिष्ठायां मन्त्रं पञ्चाक्षरं तथा ।
त्रैयम्बकादिमन्त्रञ्च तथा तत्र प्रयोजयेत् ॥
ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥

तथा—ॐ हौं अघोरे हौं घोरे हूं घोरतरे ॐ ह्रैं ह्रीं श्रीं ऐं सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपिणे हूं हूं।

अनेनापि च मन्त्रेण रुद्राक्षस्य द्विजोत्तमः ।
प्रतिष्ठां विधिवत्कुर्यात्ततोऽधिकफलं लभेत् ।

ततो यथास्वमन्त्रेण धारयेद्भक्तिसंयुतः ॥

ततो क्रमेण मन्त्राः—ॐ ॐ भृशं नमः, ॐ ॐ नमः, ॐ ॐ नमः, ॐ ह्रीं नमः, ॐ हूं नमः, ॐ हूं नमः, ॐ ॐ हूं हूं नमः, ॐ सं हूं नमः, ॐ हूं नमः, ॐ हं नमः, ॐ ह्रीं नमः, ॐ ह्रीं नमः, ॐ क्षां क्षौं नमः, ॐ नमो नमः।

रुद्राक्षे देहसंस्थे तु कुक्कुरो म्रियते यदि ।
सोऽपि रुद्रपदं याति किं पुनर्मानवा गुह ॥
सप्तविंशतिरुद्राक्षमालया देहसंस्थया ।
यः करोति नरः पुण्यं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥
यो ददाति द्विजातिभ्यो रुद्राक्षाद् भुवि षण्मुखम् ।
तस्य प्रीतो भवेद्रुद्रः स्वपदञ्च प्रयच्छति ॥
विना मन्त्रेण यो धत्ते रुद्राक्षं भुवि मानवः ।
स याति नरकान् घोरान् यावदिन्द्राश्चतुर्दशः ॥

रुद्राक्षसंस्कार-पद्धति—रुद्राक्ष की प्रतिष्ठा के समय उसे पञ्चगव्य और पञ्चामृत से स्नान कराकर शिव-पञ्चाक्षर मन्त्र और त्र्यम्बक मन्त्र से प्रतिष्ठित करना चाहिये। ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् और ॐ हौं अघोरे हौं घोरे हूं घोरतरे ॐ ह्रैं ह्रीं श्रीं ऐं सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो रुद्ररूपिणे हूं हूं मन्त्रों से विधिवत् रुद्राक्ष की प्रतिष्ठा कर उसे धारण करने से अधिक फल मिलता है।

रुद्राक्ष की प्रतिष्ठा कर भक्तिपूर्वक यथोक्त मन्त्र से उसे धारण करे। धारण करने के मन्त्र क्रमशः एक से चौदह मुखी तक के रुद्राक्षों के निम्न प्रकार के हैं—

१. ॐ ॐ भृशं नमः। २. ॐ ॐ नमः। ३. ॐ ॐ नमः। ४. ॐ ह्रीं नमः। ५. ॐ हूं नमः। ६. ॐ हूं नमः। ७. ॐ ॐ हूं हूं नमः। ८. ॐ सं हूं नमः। ९. ॐ हूं नमः। १०. ॐ हं नमः। ११. ॐ ह्रीं नमः। १२. ॐ ह्रीं नमः। १३. ॐ क्षां क्षौं नमः। १४. ॐ नमो नमः (ॐ हं नमः)।

मृत्युकाल में कुत्ते के शरीर में भी रुद्राक्ष हो तो उसे रुद्रत्व प्राप्त होता है। मनुष्य को जो अनन्त फल मिलता है, उसके बारे में क्या कहा जा सकता है।

सताईस रुद्राक्षों की माला बनाकर उसे धारण करके जो पुनीत कार्य किया जाता है, उसका फल कोटि गुणा बढ़ जाता है। जो व्यक्ति ब्राह्मण को छः मुखी रुद्राक्ष का दान करता है, उस व्यक्ति से स्वयं रुद्र सन्तुष्ट होकर उसे अपना पद प्रदान करते हैं। जो व्यक्ति विना मन्त्र के रुद्राक्ष धारण करता है, वह चौदह इन्द्रों के शासनकाल तक नरक में वास करता है।

प्रकारान्तर-रुद्राक्ष-संस्कारे देवतामन्त्रादिकथनम्

स्कन्दपुराणे कार्तिकेय उवाच—

एकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्तवसवो नव ।
दशैकादशद्वादशत्रयोदशचतुर्दश ॥
एतेषाञ्च मुखानान्तु देवता कात्र शङ्कर ।
गुणञ्च कीदृशं तेषां कथयस्व यथार्थतः ॥

श्रीशङ्कर उवाच—

शृणु षण्मुख तत्त्वेन वक्त्रे वक्त्रे यथाक्रमम् ॥
एकवक्त्रः शिवः साक्षाद् ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥
द्विवक्त्रो देवदेव्यौ च गोवधं नाशयेद्ध्रुवम् ।
त्रिवक्त्रो दहनः साक्षाद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥
चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति ।
पञ्चवक्त्रः स्वयं रुद्रः कालाग्निर्नाम नामतः ॥
अगम्यगमनाच्चैव अभक्ष्यस्य च भक्षणात् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः पञ्चवक्त्रस्य धारणात् ॥
षड्वक्त्रः कार्तिकेयस्तु धारणाद्दक्षिणे भुजे ।
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥
सप्तवक्त्रो महासेन वाऽनन्तो नाम नागराट् ।
गुरुतल्पादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥
अष्टवक्त्रो महासेन साक्षाद्देवो विनायकः ।
पृष्ठोदरकरेणापि संस्पृशेद्वा गुरोः स्त्रियम् ॥
एवमादीनि पापानि अतिपापानि सर्वशः ।
विघ्नास्तु तस्य नश्यन्ति मुक्तो याति परां गतिम् ॥
गुणा ह्येतेषु सर्वेषु अष्टवक्त्रस्य धारणात् ।
नववक्त्रो भैरवः स्याद्धारयेद्वामके भुजे ॥
कापिलं मुक्तिदं प्रोक्तं मम तुल्यबलो भवेत् ।
लक्षकोटिसहस्राणि ब्रह्महत्यां करोति यः ॥
तत्सर्वं दहते शीघ्रं नववक्त्रस्य धारणात् ॥
दशवक्त्रोः महासेनः साक्षाद्देवो जनार्दनः ।
ग्रहाश्चैव पिशाचाद्या वेताला ब्रह्मराक्षसाः ।
पन्नगाश्च विनश्यन्ति दशवक्त्रस्य धारणात् ॥

वक्त्रैकादशरुद्राक्षो रुद्रा एकादश स्मृताः ।
शिखायां धारयेन्नित्यं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ।
हेमशृंग्याश्च लक्षस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति वक्त्रैकादशधारणात् ॥
रुद्राक्षं द्वादशैर्वक्त्रैः कण्ठदेशे च धारयेत् ।
आदित्यस्तुष्यते नित्यं द्वादशार्का व्यवस्थिताः ॥
त्रयोदशमुखः कामः सर्वकामफलप्रदः ।
चतुर्दशास्यः रुद्राक्षः वंशोद्धारकरः परः ॥
रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनपरिमितान् मस्तके विंशतिर्द्वे
षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगगलके द्वादशं द्वादशैव ।
बाह्वोरिन्दोः कलाभिः पृथगनियमितं चैकमेकं शिखायां
वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति कलुषं सः स्वयं नीलकण्ठः ॥

तत्र क्रमेण धारणमन्त्राः—ॐ ऐं ।१। ॐ श्रीं ।२। ॐ घ्रुं घ्रुं ।३। ॐ ह्रीं ह्रः ।४। ॐ ह्रीं ।५। ॐ ऐं ह्रीं ।६। ॐ ह्रां ।७। ॐ क्रं रं ।८। ॐ ह्रां ।९। ॐ ह्रीं ।१०। ॐ श्रीं ।११। ॐ हां ह्रां ।१२। ॐ क्षौं स्रौं ।१३। ॐ डं मां ।१४।

रुद्राक्षसंस्कार के प्रकारान्तर में देवता—स्कन्दपुराण में लिखा है कि कार्तिकेय के प्रश्न करने पर श्री शंकर ने बताया कि एकमुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिव हैं। इसके धारण करने से ब्रह्महत्या का पाप दूर होता है। दो मुखी रुद्राक्ष देव और देवीस्वरूप है। इसके धारण करने से गोवध का पाप दूर होता है। तीन मुखी रुद्राक्ष अग्निस्वरूप है। इसके धारण से ब्रह्महत्या का पाप नष्ट होता है। चार मुखी रुद्राक्ष स्वयं ब्रह्मा है। इसके धारण से नरहत्या का पाप नष्ट होता है। पाँच मुखी स्वयं कालाग्नि नामक रुद्र है। इसके धारण से अगम्यागमन और अभक्ष्य-भक्षणादिजन्य पाप नष्ट होते हैं।

छः मुखी रुद्राक्ष कार्तिकेय है। इसे वामभुजा में धारण करने से ब्रह्महत्यादि पाप नष्ट होता है। सात मुखी रुद्राक्ष अनन्त है। इसके धारण से गुरुपत्नीगमनादि-जनित पाप नष्ट होते हैं। आठ मुखी रुद्राक्ष गणेशविग्रह है। इसके धारण से गुरुपत्नी का स्पर्श, पेट, पीठ या हाथ से होने पर जो पाप होते हैं, उन सबका तथा अन्यान्य महापापों का नाश होता है। उस साधक के सभी विघ्न नष्ट होते हैं और अन्त में उसे परम गति प्राप्त होती है।

एकमुखी से सातमुखी तक के रुद्राक्षों को धारण करने से जो-जो फल प्राप्त होते हैं, वे सब आठमुखी रुद्राक्ष धारण से भी प्राप्त होते हैं। नौमुखी रुद्राक्ष स्वयं भैरव है। इसे बाँयें हाथ में धारण करके मुक्ति पाकर धारणकर्ता शिवतुल्य होता है।

जो व्यक्ति लक्ष कोटि सहस्र ब्रह्महत्यारा हो, वह भी नौमुखी रुद्राक्ष धारण से पापमुक्त हो जाता है। दशमुखी रुद्राक्ष साक्षात् जनार्दन है। इसके धारण करने से ग्रह-पिशाच-वेताल-यक्ष-पन्नगादि का नाश होता है।

ग्यारह मुखी रुद्राक्ष एकादश रुद्रों का विग्रह है। इसे शिखा में धारण करने से हजार अश्वमेध, सौ वाजपेय यज्ञों का और एक लाख स्वर्णशृंगी गायों के दान का पुण्य प्राप्त होता है।

बारह मुखी रुद्राक्ष को कण्ठ में धारण करने से बारह आदित्यों के दर्शन का फल प्राप्त होता है। तेरह मुखी रुद्राक्ष धारण करने से सभी मनोकामनायें पूर्ण होती हैं। चौदह मुखी रुद्राक्ष स्वयं नीलकण्ठ है। इसके धारण करने से वंश का उद्धार होता है।

जो मनुष्य कण्ठ में बत्तीस, मस्तक पर बाईस, कानों में छः-छः, दाहिने हाथ में बारह, बाँयें हाथ में बारह, बाँईं भुजा में सोलह, दाँईं भुजा में सोलह, शिखा में एक और वक्ष में एक सौ आठ रुद्राक्षों को धारण करता है, वह अपने सभी पापों को नष्ट कर स्वयं नीलकण्ठस्वरूप होता है।

प्रकारान्तर से रुद्राक्षसंस्कार—उक्त चौदह प्रकार के रुद्राक्षों को धारण करने के मन्त्र क्रमशः निम्न प्रकार के हैं। इन मन्त्रों का पाठ करके रुद्राक्ष धारण करना चाहिये—
१. ॐ ऐं, २. ॐ श्रीं, ३. ॐ ध्रुं ध्रुं, ४. ॐ ह्रीं ह्रः, ५. ॐ ह्रीं, ६. ॐ ऐं ह्रीं,
७. ॐ ह्रां, ८. ॐ रूं रं , ९. ॐ ह्रां, १०. ॐ ह्रीं, ११. ॐ श्रीं, १२. ॐ हां
ह्रां, १३. ॐ क्षौं स्रौं, १४. ॐ डं मां।

नित्य-नैमित्तिकादिकर्मभङ्गे प्रायश्चित्तम्

गौतमीये—

यद्यत्कर्मणि वैगुण्यं नित्ये नैमित्तिके तथा ।
सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रं मूलञ्चायुतमेव च ।
नित्ये सहस्रं प्रजपेत् नैमित्तिके तथायुतम् ॥

इति विष्णुविषयम्। अन्यत्र तु तन्त्रराजे—

नित्यातिक्रमदोषाणां शान्त्यै विद्यां शतं जपेत् ।
नैमित्तिकातिक्रमेण सहस्रं प्रजपेन्मनुम् ॥

पापसङ्करे तु—

सर्वेषामेव पापानां सङ्करे समुपस्थिते ।
प्रायश्चित्तन्तु तन्त्रोक्तमयुतं मन्त्रजापतः ॥

नित्य-नैमित्तिकादि कर्मभंग में प्रायश्चित्त—गौतमीय तन्त्र में लिखा है कि नित्य

या नैमित्तिक कर्म में वैगुण्य होने पर उन कर्मों के देवता के मन्त्र का एक हजार या दस हजार जप करे। नित्य कर्म का लोप होने पर हजार और नैमित्तिक कर्म-भंग होने पर दस हजार मन्त्र-जप करे। यह विष्णु उपासना के बारे में है। अन्य देवता के कर्म में तन्त्रराजतन्त्र में लिखा है कि नित्य कर्म के अति-क्रमण दोष की शान्ति के लिये एक सौ मन्त्र-जप करे। नैमित्तिक कर्म के अतिक्रमदोष की शान्ति के लिये हजार मन्त्र जप करे। यदि नित्य-नैमित्तिक दोनों कर्मों के व्यतिक्रम का संकट हो तो उसका प्रायश्चित्त दस हजार मन्त्रजप से होता है।

परिभाषा:

गौतमीये—

परिभाषामथो वक्षे उपचारविधौ हरेः ।
द्रव्याणां यावती संख्या पात्राणां द्रव्यसंहतिः ॥
हाटकं राजतं ताम्रमारकूटमृदादिना ।
उपचारविधावेतद् द्रव्यमाहुर्मनीषिणः ॥
आसने पञ्चपुष्पाणि स्वागते षट् चतुःपलम् ।
श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताभिरीरितम् ॥
पाद्ये चार्घ्ये जलं तावद्गन्धपुष्पाक्षतं यवाः ।
दूर्वास्तिलाश्च चत्वारः कुशाग्रश्वेतसर्षपाः ॥
जातीलवङ्गकक्कोलक्वाथतोयञ्च षट्पलम् ।
प्रोक्तमाचमनं कांस्ये मधुपर्के घृतं मधु ।
दध्ना सह पलैकन्तु शुद्धं वारि तथाचमे ॥
परिमाणन्तु पञ्चाशत्पलं स्नानार्थमम्भसः ।
निर्मलेनोदकेनाथ सर्वत्र परिपूर्णता ॥
मलिनं गर्हितं सर्वं त्यजेत्पूजाविधौ हरेः ।
वितस्तिमात्रादधिकं वासोयुग्मञ्च नूतनम् ॥
स्वर्णाद्याभरणान्येव मुक्तारत्नयुतानि च ।
चन्दनागुरुकर्पूरपङ्कगन्धः पलावधिः ॥
नानाविधानि पुष्पाणि पञ्चाशदधिकानि च ।
कांस्यादिनिर्मिते पात्रे धूपो गुग्गुलुकर्षभाक् ॥
यावद्भक्ष्यं भवेत्पुंसस्तावद्दद्याज्जनार्दने ।
नैवेद्यं विविधं वस्तु भक्ष्यादिकचतुर्विधम् ॥
कर्पूरादियुता वर्तिः सा च कार्पासनिर्मिता ।

सप्तावृत्त्या सुसंयुक्तो दीपः स्याच्चतुरंगुलः ॥
शिलापिष्टं वन्दनायां सप्तधा वर्तयेन्नरः ।
कार्यं ताम्रादिपात्रे तत्प्रीतये वनमालिनः ॥
दूर्वाक्षतप्रमाणन्तु विज्ञेयस्तु शताधिकम् ।
उत्तमोऽयं विधिः प्रोक्तो विभवे सति सर्वदा ॥
एषामभावे सर्वेषां यथाशक्त्या तु पूजयेत् ।
अनुकल्पं वर्जयेच्च द्रव्याणां विभवे सति ॥
अनेन विधिना यस्तु पूजयेदुपचारतः ।
सर्वभोगान्वितो भूत्वा व्रजेदन्ते हरेः पुरम् ॥

परिभाषा—गौतमीय तन्त्र में लिखा है कि पूजा के उपचारों में से प्रत्येक उपचार को पृथक्-पृथक् पात्रों में रखना चाहिये।

सोना, चाँदी, ताम्बा, पीतल और मिट्टी के पात्र ही प्रशस्त हैं। सामर्थ्य के अनुसार पात्रों की व्यवस्था करे।

आसनदान में आसन के ऊपर पाँच पुष्पों को रक्खे। स्वागत में छः पुष्प प्रदान करे। पाद्य में ६० ग्राम जल में साँवाँ (अन्न), दूब, कमल और अपराजिता डालकर अर्पण करे। अर्घ्य में ६० ग्राम जल में आठ वस्तुओं को डाले; जैसे—गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव, दूर्वा, तिल, कुशाग्र, श्वेत सरसों।

आचमनीय जल की मात्रा ९० ग्राम है। इसमें जायफल, लवंग, कंकोल, क्वाथ मिलाना चाहिये। मधुपर्क कांस्य पात्र में दे। इसमें घी, दही और मधु होना चाहिये। मधुपर्क देने के बाद जो आचमनीय दे, उसमें शुद्ध जल की मात्रा ११ ग्राम हो। स्नानीय जल की मात्रा लगभग तीन किलोग्राम होनी चाहिये। निर्मल जल से स्नानीय कार्य सम्पन्न करे।

श्रीहरि की पूजा में मलिन और गर्हित वस्तु का त्याग करे। एक बित्ता से बड़ा दो नये वस्त्र प्रदान करे। आभूषण सोने का होना चाहिये। उनमें मोती रत्न हो। गन्ध-द्रव्य, चन्दन, अगर, कपूर को पीस कर तैयार करे।

इसका परिमाण बारह ग्राम से अधिक न हो। भाँति-भाँति के पुष्प प्रदान करे। फूल पचास से अधिक हों। २० ग्राम गुग्गुल का धूप कांस्य पात्र में निवेदित करे।

एक पुरुष के भोजन योग्य नैवेद्य जनार्दन को अर्पित करे। १. चर्व्य, २. चोष्य, ३. लेह्य, ४. पेय चार प्रकार के खाद्य का नैवेद्य अर्पण करे। दीप की बत्ती कपास की रुई में कपूर मिलाकर बनाए। इसमें सात आवृति होनी चाहिये। बत्ती की लम्बाई चार अंगुल होनी चाहिये। नीराजन के समय शिलापिष्ट को सात बार घुमाए। शिलापिष्ट को ताम्रादि पात्र में रक्खे। इससे वनमाली सन्तुष्ट होते हैं।

पूजा में जहाँ दूर्वा या आतप तण्डुल देय हो, वहाँ वह सौ से अधिक ग्राह्य है। समर्थ के लिये यही उत्तम है। इन सभी वस्तुओं का अभाव होने पर यथाशक्ति पूजा करे। सामर्थ्य होने पर अनुकल्प वर्जित है। इस प्रकार उपचार प्रदान कर जो अर्चन करता है, वह सभी ऐश्वर्यों को भोगकर अन्त में वैकुण्ठ में जाता है।

विष्ण्वाराधनमन्त्रा:

तत्र गौतमीये—

सर्वान्तर्यामिने देव सर्वबीजमयं ततः ।
आत्मस्थाय परं शुद्धमानसं कल्पयाम्यहम् ।।

इति आसनम्।

यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवा ब्रह्महरादयः ।
कृपया देवदेवेश मदग्रे सन्निधीभव ।
यस्य ते परमेशान स्वागतं स्वागतं प्रभो ।।

इति स्वागतम्।

कृतार्थोऽनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितन्तु मे ।
यदागतोऽसि देवेश चिदानन्दमयाव्यय ।।
अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा वैकल्यात्साधनस्य च ।
यदपूर्णं भवेत्कृत्यं तथाप्यभिमुखो भव ।।

इत्यावाहनम्।

यद्भक्तिलेशसम्पर्कात् परमानन्दसम्भवः ।
तस्मै ते परमेशान पाद्यं शुद्धाय कल्पये ।।

इति पाद्यम्।

देवानामपि देवाय देवानां देवतात्मने ।
आचामं कल्पयामीश सुधायाः श्रुतिहेतवे ।।

इत्याचमनीयम्।

तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम् ।
तापत्रयविमोक्षाय तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम् ।।

इत्यर्घ्यम्।

सर्वकल्मषहीनाय परिपूर्णसुधात्मकम् ।
मधुपर्कमिमं देव कल्पयामि प्रसीद मे ।।

इति मधुपर्कः।

उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रतः ।
शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम् ॥
इति पुनराचमनीयम्।

परमानन्दबोधाब्धि - निमग्न - निजमूर्तये ।
साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीश ते ॥
इति स्नानीयम्।

मायाचित्रपटाच्छन्न - निजगुह्योरुतेजसे ।
निरावरणविज्ञाय वासस्ते कल्पयाम्यहम् ॥
इति वस्त्रम्।

यमाश्रित्य महामाया जगत्सम्मोहिनी सदा ।
तस्मै ते परमेशाय कल्पयाम्युत्तरीयकम् ॥
इत्युत्तरीयम्।

यस्य शक्तित्रयेणेदं सम्प्रोतमखिलं जगत् ।
यज्ञसूत्राय तस्मै ते यज्ञसूत्रं प्रकल्पये ॥
इति यज्ञोपवीतम्।

स्वभावसुन्दराङ्गाय नानाशक्त्याश्रयाय ते ।
भूषणानि विचित्राणि कल्पयामि सुरार्चित ॥
इति भूषणानि।

समस्तदेवदेवेश सर्वतृप्तिकरं परम् ।
अखण्डानन्दसम्पूर्णं गृहाण जलमुत्तमम् ॥
इति जलम्।

परमानन्दसौरभ्यपरिपूर्णदिगन्तरम् ।
गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वर ॥
इति गन्धः।

तुरीयगुणसम्पन्नं नानागुणमनोहरम् ।
आनदसौरभं पुष्पं गृह्यतामिदमुत्तमम् ॥
इति पुष्पम्।

वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
इति धूपः।

सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्मिरापहः ।
सवाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
इति दीपः।

सत्पात्रसिद्धं सुहविर्विविधानेकभक्षणम् ।
निवेदयामि देवेश सानुगाय गृहाण तत् ॥
इति नैवेद्यम्।

ततो जलं समस्तदेवदेवेश इत्यादिना। तथा गौतमीये—

पूजा च पञ्चधा प्रोक्ता तासां भेदान् शृणुष्व मे ।
अभिगमनमुपादानं योगः स्वाध्याय एव च ।
इज्या पञ्चप्रकारार्चाः क्रमेण कथयामि ते ॥
तत्राभिगमनं नाम देवतास्थानमार्जनम् ।
उपलेपननिर्माल्यदूरीकरणमेव च ॥
उपादानं नाम गन्ध-पुष्पादि-चयनं तथा ।
योगो नाम स्वदेवस्य स्वात्मत्वेनैव भावना ॥
स्वाध्यायो नाम मन्त्रार्थसन्धानपूर्वको जपः ।
सूक्तस्तोत्रादिपाठस्तु हरेः संकीर्तनं तथा ।
तत्त्वादिशास्त्राभ्यासश्च स्वाध्यायः परिकीर्त्तितः ॥
इज्यानाम स्वदेवस्य पूजनन्तु यथार्थतः ।
इति पञ्चप्रकारार्चाः कथितास्तव सुव्रते ।
सार्ष्टिसामीप्यसालोक्यसायुज्यसारुप्यदाः क्रमात् ॥

भगवान् विष्णु की आराधना के मन्त्र—गौतमीय तन्त्र के अनुसार विष्णु की पूजा में उपचार-प्रदान के मन्त्र निम्न प्रकार के हैं—

आसन—हे देव! आप सभी के अन्तर्यामी हैं। आप आत्मस्थित हैं। अत: आपको सर्वबीजमय विशुद्ध उत्तम आसन देता हूँ।

स्वागत—ब्रह्मा और महेश आदि देवगण जिनके दर्शन की इच्छा रखते हैं, हे देवदेवेश! आप वही श्रेष्ठ आराध्य देव हैं। मेरे सम्मुख उपस्थित होने की कृपा करें। हे परमेश्वर! आपका स्वागत है, स्वागत है।

आवाहन—हे चिदानन्दमय! हे अक्षय पुरुष! हे देवदेवेश! आज आपका शुभागमन हुआ है। इससे मैं कृतार्थ कृतज्ञ हूँ। मेरा जीवन सार्थक हो गया। अज्ञानवश या असावधानी या घबराहट के कारण आपके स्वागत-पूजन में यदि कोई कर्म अधूरा रह जाय तो भी आप कृपा करके मेरे समीप विराजमान रहें।

पाद्य—जिनके प्रति बिन्दुमात्र भक्ति का संचार होने से ही परमानन्द प्राप्त होता है, हे परमेश्वर! आप वही शुद्ध देव हैं। आपके पादप्रक्षालन हेतु पाद्य अर्पित करता हूँ।

आचमनीय—हे ईश्वर! आप देवों के भी देव हैं। देवगण का देवत्व ही आपकी आत्मा है। आपसे अमृत मिलेगा, इसी आशा से आपको आचमन देता हूँ।

अर्घ्य—जो तीनों तापों को दूर करता है, जो दिव्य परमानन्ददायक है, वही अर्घ्य आपको देता हूँ, जिससे मुझे तीनों तापों से मुक्ति मिले।

मधुपर्क—हे देव! आप सभी पापों से मुक्त हैं। आपको अमृतस्वरूप यह मधुपर्क देता हूँ। मुझ पर प्रसन्न होइये।

पुनराचमनीय—जिनका स्मरण करने से ही जूठा या अपवित्र मनुष्य पवित्र हो जाता है, वही भगवान् आप हैं। आपको पुन: आचमनीय देता हूँ।

स्नानीय—हे ईश्वर! आप परमानन्दमय ज्ञानसागर में मग्न हैं। सभी प्रकार से उत्तम जल आपको स्नान के लिये देता हूँ।

वस्त्र—आप मायारूपी विचित्र वस्त्र से अपने गोपनीय तीव्र तेज को ढँके हुए हैं। आप ज्ञानमय हैं। आप पर कोई आवरण नहीं है। इस प्रकार के आपको मैं वस्त्र देता हूँ।

उत्तरीय—जिनका सहारा लेकर महामाया संसार को सदा मोह में रक्खे रहती है, वही परमेश्वर आप हैं। आपको मैं उत्तरीय देता हूँ।

यज्ञोपवीत—जिनकी सृष्टि-स्थिति-संहार—तीन शक्तियों से सम्पूर्ण संसार बन्धा हुआ है और जो यज्ञसूत्र हैं, वैसे आपको यज्ञसूत्र देता हूँ।

आभूषण—हे देवपूजित! आपके अंग स्वभावत: सुन्दर हैं। आप विविध शक्तियों के आश्रय हैं। आपको विलक्षण आभूषण देता हूँ।

जल—हे देवेदेवेश्वर! हे पूर्णानन्दमय! सम्पूर्ण तुष्टिप्रद श्रेष्ठ पीने का जल स्वीकार करें।

गन्ध—हे परमेश्वर! जिसकी परमानन्दमय सुगन्धि से सारी दिशायें पूर्ण हैं, उस श्रेष्ठ गन्ध को कृपया स्वीकार करें।

पुष्प—ब्रह्मतत्त्व से युक्त, विविध गुणों से मनोरम, आनन्ददायक सुगन्धिमय इस श्रेष्ठ पुष्प को आप स्वीकार करें।

धूप—दिव्य वनस्पति के रस वाला यह अत्यन्त मनोरम धूप, जो सभी देवों के सूँघने के योग्य है, उसे आप स्वीकार करे।

दीप—जिसका तेज अत्यधिक है, जो भीतर-बाहर से ज्योतिर्मय है और जिसके द्वारा चारो दिशाओं का अन्धेरा दूर होता है, उस श्रेष्ठ प्रकाशमय दीप को आप स्वीकार करें।

नैवेद्य—हे देवेश! उत्तम पात्र में सज्जित विविध भक्ष्य और पूर्ण उत्तम घी युक्त नैवेद्य देता हूँ। अपने सेवकों के साथ इसे स्वीकार करें।

अन्त में पुन: 'देवदेवेश्वर' मन्त्र से जल प्रदान करे।

गौतमीय तन्त्र में वर्णन है कि पूजा पाँच प्रकार की होती है—१. अभिगमन, २. उपादान, ३. योग, ४. स्वाध्याय और ५. इज्या। देवता के स्थान का मार्जन कर उस स्थान से निर्माल्य को हटाकर गोबर से उसे लीपना अभिगमन कहलाता है। गन्ध-पुष्पादि को एकत्र करना उपादान है। अभीष्ट देवता का अपनी आत्मा के रूप में ध्यान करना योग कहा जाता है। अर्थ समझते हुए मन्त्र का जप करना, सूक्त एवं स्तोत्रादि का पाठ, हरिनाम का कीर्तन, विष्णुतत्त्व-शिवतत्त्व आदि को तन्त्रशास्त्र से जानकर उसका अभ्यास करना स्वाध्याय है। इष्टदेवता का विधिपूर्वक अर्चन करना इज्या है। इन पाँचों के माध्यम से क्रमश: १. सार्ष्टि, २. सामीप्य, ३. सालोक्य, ४. सायुज्य और ५. सारूप्य नामक मुक्तियाँ मिलती हैं।

वैष्णवानां द्वादशशुद्धय:

अथ द्वादशशुद्धिश्च वैष्णवानामिहोच्यते ।
गृहोपसर्पणञ्चैव तथानुगमनं हरे: ।
भक्त्या प्रदक्षिणञ्चैव पादयो: शोधनं पुन: ।।
पूजार्थं पत्रपुष्पाणां भक्त्यैवोत्तोलनं हरे: ।
करयो: सर्वशुद्धीनामियं शुद्धिर्विशिष्यते ।।
तन्नामकीर्तनञ्चैव गुणानामपि कीर्तनम् ।
भक्त्या च कृष्णदेवस्य वचस: शुद्धिरिष्यते ।।
तत्कथाश्रवणञ्चैव तस्योत्सवनिरीक्षणम् ।
श्रोत्रयोर्नेत्रयोश्चैव शुद्धि: सम्यगिहोच्यते ।।
पादोदकस्य निर्माल्यमालानामपि धारणम् ।
उच्यते शिरस: शुद्धि: प्रणतस्य हरे: पुन: ।।
आघ्राणं गन्धपुष्पादेर्निर्माल्यस्य तपोधन ।
विशुद्धि: स्यादन्तरस्य घ्राणस्यापि विधीयते ।।
पत्रपुष्पादिकं यच्च कृष्णपादयुगार्पितम् ।
तदेकं पावनं लोके तद्धि सर्वं विशोधयेत् ।।
ललाटे च गदा कार्या मूर्ध्नि चापं शरांस्तथा ।
नन्दकञ्चैव हृन्मध्ये शङ्खं चक्रं भुजद्वये ।।
शङ्खचक्रान्वितो विप्र: श्मशाने म्रियते यदि ।

प्रयागे या गतिः प्रोक्ता सा गतिस्तस्य गौतम ॥

वैष्णवों की बारह शुद्धियाँ—भक्तिपूर्वक विष्णुमन्दिर में जाना, विष्णु का अनुगमन और उनकी प्रदक्षिणा करने से दोनों पैरों की शुद्धि होती है। पूजा के लिये भक्तिपूर्वक पुष्प और तुलसी आदि चुनने से दोनों हाथों की शुद्धि होती है। यह सभी शुद्धियों से श्रेष्ठ है। भक्तिपूर्वक उनके नाम और गुणों का कीर्तन करने से वाणी की शुद्धि होती है। विष्णुकथा सुनने से दोनों कानों की शुद्धि होती है। विष्णुसम्बन्धी उत्सव देखने से दोनों आँखों की शुद्धि होती है।

विष्णु का चरणोदक, निर्माल्य और पुष्पमाला को अपने शिर पर रखने से एवं विष्णु के सामने मस्तक झुकाने से मस्तक की शुद्धि होती है। विष्णु को समर्पित गन्ध एवं पुष्प को सूंघने से आन्तरिक शुद्धि तथा नाक की शुद्धि होती है।

श्रीकृष्ण के चढ़ाए हुए पत्र-पुष्पादि सभी पवित्र होते हैं। उनके द्वारा सभी वस्तुओं का शोधन हो जाता है। अपने ललाट में गदा, मस्तक पर धनुष-वाण, हृदय पर कौस्तुभ-मणि और दोनों बाँहों में शंख-चक्र अंकित करे।

शंख-चक्र के चिह्न को धारण करने वाला कोई विप्र यदि श्मशान में मरता है तो वह प्रयागराज में मरने का पुण्य प्राप्त करता है।

विष्णोर्द्वात्रिंशदपराधाः

तन्त्रान्तरे—

यानैर्वा पादुकाभिर्वा यानं भगवतो गृहे ।
देवोत्सवेष्वसेवा च अप्रणामस्तदग्रतः ॥
उच्छिष्टे चैव चाशौचे भगवद्वन्दनादिकम् ।
एकहस्तप्रणामश्च तत्पुरस्तात्प्रदक्षिणम् ॥
पादप्रसारणञ्चाग्रे तथा पर्यङ्कबन्धनम् ।
शयनं भक्षणञ्चैव मिथ्याभाषणमेव च ॥
उच्चैर्भाषो मिथो जल्पो रोदनानि च विग्रहः ।
निग्रहानुग्रहौ चैव स्त्रीषु च क्रूरभाषणम् ॥
कम्बलावरणञ्चैव परनिन्दा परस्तुतिः ।
अश्लीलभाषणञ्चैव अधोवायुविमोक्षणम् ॥
शक्तौ गौणापचारश्च अनिवेदितभक्षणम् ।
तत्तत्कालोद्भवानाञ्च कलादीनामनर्पणम् ॥
विनियुक्तावशिष्टस्य प्रदानं व्यञ्जनस्य च ।
स्पष्टीकृत्यासनञ्चैव परनिन्दा परस्तुतिः ॥

गुरौ मौनं निजस्तोत्रं देवतानिन्दनं तथा ।
अपराधास्तथा विष्णोर्द्वात्रिंशत्परिकीर्त्तिताः ॥

इदमुपलक्षणम्।

वासिष्ठे—

केशवाग्रे नृत्यगीतं न करोति हरेर्दिने ।
वह्निना किं न दग्धोऽसौ गतः किं न रसातलम् ॥

नारदीये—

स्मरणं कीर्तनं विष्णोः कलौ मन्त्रजपादिकम् ।
दानन्तु प्रीतये तस्य नान्यथा गतिरिष्यते ॥

गौतमीये—

शालग्रामशिलातोयमपीत्वा यस्तु मस्तके ।
प्रक्षेपणं प्रकुर्वीत ब्रह्महा स निगद्यते ॥
विष्णोः पादोदकं पीतं कोटिजन्माघनाशनम् ।
तदेवाष्टगुणं पापं भूमौ विन्दुनिपातनात् ॥

विष्णु के प्रति ३२ अपराध—१. यान पर चढ़े हुए या पादुका पहने हुए भगवान् के मन्दिर में प्रवेश करना। २. देवोत्सव में विष्णु की सेवा न करना। ३. विष्णु के समक्ष जाकर प्रणाम न करना। ४. जूठी दशा या अपवित्र अवस्था में भगवान् को प्रणामादि करना। ५. एक हाथ से प्रणाम करना। ६. विष्णु के सम्मुख अन्य देवता की प्रदक्षिणा करना। ७. विष्णु के सम्मुख पैर फैलाना। ८. भगवान् के सामने अन्य वस्त्र द्वारा दोनों जाँघों को बाँधकर बैठना। ९. देवता के सामने सोना। १०. भोजन करना। ११. झूठ बोलना। १२. ऊँचे स्वर में बोलना। १३. गप-शप या इधर-उधर की बातें करना। १४. रोना। १५. झगड़ा करना। १६. किसी का अपमान करना। १७. किसी का पक्षपात करना। १८. किसी स्त्री को कठोर बात कहना। १९. भगवान् को कम्बल से ढकना। २०. भगवान् के सामने किसी की निन्दा करना। २१. किसी की प्रशंसा करना । २२. अश्लील बात कहना। २३. अधोवायु छोड़ना। २४. समर्थ होते हुए भी समुचित उपचारों से पूजा न करना। २५. भगवान् को भोग लगाए विना कुछ भी खाना। २६. उपलब्ध मौसमी फलों को न चढ़ाना। २७. दूसरे द्वारा व्यवहृत भोजन में से बचे हुए व्यंजन को भगवान् को समर्पित करना। २८. उद्धत भाव से बैठना। २९. प्रशंसा के बहाने निन्दा करना। ३०. गुरुप्रशंसा के स्थान पर मौन रहना। ३१. आत्मप्रशंसा। ३२. देवनिन्दा।

उक्त ३२ अपराधों के अतिरिक्त अन्य निन्दनीय कर्म भी अपराध माने गये हैं। वशिष्ठसंहिता में लिखा है कि जो हरिदिवस में विष्णु के सम्मुख नाच-गान नहीं करता,

वह अग्निदग्ध-जैसा या पातालपतित-जैसा होता है।

नारदीय पुराण में लिखा है कि कलिकाल में विष्णु-स्मरण, विष्णु का नाम-कीर्तन, विष्णुप्रीत्यर्थ दान और मन्त्रजप आदि करना चाहिये। इनके अतिरिक्त कल्याण का कोई अन्य उपाय कलियुग में नहीं है।

गौतमीय तन्त्र में लिखा है कि जो व्यक्ति शालग्राम शिला का जल नहीं पीता, बल्कि उस जल को केवल शिर पर छिड़क लेता है, वह ब्रह्महत्या जैसे पाप का भागी होता है। विष्णु के चरणोदक को पीने से कोटि जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। इस जल का एक बूंद भी भूमि पर गिराने से आठगुना अधिक पाप लगता है।

धारणमन्त्रस्तु—

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
विष्णुपादोदकं पीत्वा शिरसा धारयाम्यहम् ॥

अगस्त्ये—

हत्यां हन्ति यदंघ्रिजापि तुलसी स्तेयञ्च तोयं पदे
नैवेद्यं बहुमद्यपानजनितं गुर्वङ्गनासङ्गजम् ।
श्रीशाधीननतिः स्थितिर्हरिजनैस्तत्सङ्गजं किल्विषं
शालग्रामशिलानृसिंहमहिमा कोऽप्येष लोकोत्तरः ॥

सनत्कुमारे—

केशवाग्रे नृत्यगीतं यः करोति कलौ नरः ।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति नित्यशः ॥

वासिष्ठे—

सुप्तः प्रबोधकालश्च मन्त्राणामभिधीयते ।
मन्त्रविद्याविभागेन द्विविधा मन्त्रजातयः ॥
मन्त्राः पुंदेवताः प्रोक्ता विद्याः स्त्रीदेवता स्मृताः ।
त्रीपुंनपुंसकात्मानो मन्त्राः सर्वे समीरिताः ॥
पुंमन्त्रा हुंफडन्ताः स्युर्द्विठान्ताः स्युः स्त्रियो मताः ।
नपुंसका नमोऽन्ताः स्युरित्युक्ता मनवस्त्रिधा ।
एतच्छून्या भवेद्विद्या महाशब्देति गीयते ॥

एवं तन्त्रेऽपि—

अग्नीषोमात्मका मन्त्रा विज्ञेयाः क्रूरसौम्ययोः ।
कर्मणोर्वह्नितारान्त्यवियत्प्रायाः समीरिताः ॥

आग्नेया मनवः सौम्या भूयिष्ठेन्द्वमृताक्षराः ।
आग्नेया सम्प्रबुध्यन्ते प्राणे चरति दक्षिणे ॥
भागेऽन्यस्मिन् स्थिते प्राणे सौम्या बोधं प्रयान्ति हि ।
नाडीद्वयगते प्राणे सर्वे बोधं प्रयान्ति ते ।
प्रयच्छन्ति फलं सर्वे प्रबुद्धा मन्त्रिणां सदा ॥

यद्वा—

प्राणापानसमायोगात् शिवशक्त्योश्च मेलनम् ।
प्रबोधकालो विज्ञेयः स्वापकालस्ततः परः ॥

तथा—

वामावहो यदा वायुर्ह्रस्वानां योजनं तदा ।
दक्षिणस्यां यदा वायुस्तदा दीर्घास्तु योजिताः ।
उभयस्थो यदा वायुस्तदा स्यादुभयात्मकः ॥
सम्पुटीकृत्य मन्त्रेण आदिलान्तान् सविन्दुकान् ।
पुनश्च सविसर्गान्तान् क्षकारं केवलं पठेत् ।
एवं जप्तो यदीष्टश्चेत्प्रबुद्धः शीघ्रसिद्धिदः ॥

इति सुप्तप्रबोधकालः

●

विष्णु के चरणोदक लेने का मन्त्र—विष्णु का चरणोदक अकाल मृत्यु को दूर करता है। सभी प्रकार की व्याधियों को नष्ट करता है। इसे पीकर मैं अपने शिर पर धारण करता हूँ।

अगस्त्यसंहिता में कहा है कि विष्णु के चरणकमलों पर अर्पित तुलसी हत्याजन्य पाप नष्ट करती है। विष्णु का चरणोदक स्वर्णचोरी के पाप को दूर करता है । विष्णु का प्रसाद मद्यपान के पाप को नष्ट करता है। विष्णु को प्रणाम करने से गुरुपत्नीगमन के पापों का नाश होता है। वैष्णवजन के सत्संग से सभी प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं।

शालग्रामशिलारूपी नृसिंहदेव की महिमा अलौकिक है। सनत्कुमार ने कहा है कि कलियुग में केशव के सम्मुख जो नृत्य-गीत करता है, वह पग-पग पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है।

वशिष्ठसंहिता में मन्त्र के सुप्ति और प्रबोध का समय बताया गया है। मन्त्र और विद्या—ये दोनों अलग-अलग हैं। पुरुषदेवता के नाम मन्त्र कहलाते हैं और स्त्रीदेवता के नाम को विद्या कहते हैं। इनके अतिरिक्त नपुंसक मन्त्र भी होते हैं। जिन मन्त्रों के अन्त

में हुं फट् होते हैं, वे पुंल्लिंग मन्त्र होते हैं। जिनके अन्त में स्वाहा हो, वे स्त्रीलिंग और जिनके अन्त में नमः हों, वे नपुंसक मन्त्र माने जाते हैं। इस प्रकार मन्त्र के तीन वर्ग होते हैं। जिन विद्याओं के अन्त में हूं फट् आदि नहीं होते; उन्हें महाविद्या कहते हैं। इसी प्रकार अन्य मन्त्र महामन्त्र कहलाते हैं।

जिन मन्त्रों के देवता अग्नि हैं, वे सभी मन्त्र क्रूर कर्मों में प्रयुक्त होते हैं। जिन मन्त्रों के देवता सोम हैं, वे सभी मन्त्र सौम्य हैं। शान्ति कर्म में इनका प्रयोग होता है। आग्नेय मन्त्रों में वह्नि = र, तार = ॐ, अन्त्य वर्ण 'क्ष' और वियत् 'ह' अर्थात् रं ॐ क्ष हं में से कोई बीज अवश्य रहता है। सौम्य मन्त्रों में इन्दु 'स' अमृताक्षर 'व' अधिक संख्या में रहते हैं।

प्राणवायु जिस समय दाँयें नासापुट से प्रवाहित होता है, उस समय आग्नेय मन्त्र प्रबुद्ध होता है। जिस समय प्राणवायु बाँयें नासापुट से प्रवाहित होता है, उस समय सौम्य मन्त्र प्रबुद्ध होता है। जिस समय प्राणवायु दोनों नासापुटों से प्रवाहित होता है, उस समय सभी प्रकार के मन्त्र प्रबुद्ध होते हैं। प्रबुद्ध मन्त्र ही साधकों को अभीष्ट फल प्रदान करते हैं।

कुम्भक काल में गुह्यस्थित अपान वायु से जिस समय प्राणवायु का योग होता है, उसी समय शिव-शक्ति का मिलन होता है। इसी समय सभी मन्त्रों का प्रबोध होता है। इसके अतिरिक्त अन्य समय को सभी मन्त्रों का स्वप्नकाल समझा जाता है।

बाँयीं नासिका से जब वायु चले तब ह्रस्व स्वर की योजना समझे। दाँईं नासिका से जब वायु चले तब दीर्घ स्वर की योजना समझे। जब दोनों नासापुटों से वायु चले तब ह्रस्व-दीर्घ दोनों स्वरों का योग समझना चाहिये।

'अ' से 'ल' तक के पचास वर्णों को बिन्दुसमन्वित कर प्रत्येक वर्ण को मन्त्रपुटित करता हुआ जप करे। पुनः उसी वर्ण का प्रतिलोम क्रम से जप करके 'क्ष' वर्ण को मेरुरूप मानकर केवल उसी का पाठ करे। इस प्रकार जप करने से अभीष्ट मन्त्र प्रबुद्ध होकर शीघ्र सिद्धि प्रदान करता है।

योगाङ्गासनानि

पद्मासनं स्वस्तिकाख्यं भद्रं वज्रासनन्तथा ।
वीरासनमिति प्रोक्तं क्रमादासनपञ्चकम् ॥
ऊर्वोरुपरि विन्यस्य सम्यक्पादतले उभे ।
अंगुष्ठौ च निबध्नीयाद्धस्ताभ्यां व्युत्क्रमात्ततः
पद्मासनमिदं प्रोक्तं योगिनां हृदयङ्गमम् ॥
जानूर्वोरन्तरे सम्यक्कृत्वा पादतले उभे ।
ऋजुकायो विशेद्योगी स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥

सीवन्याः पार्श्वयोर्न्यस्य गुल्फयुग्मं सुनिश्चलम्।
वृषणाधः पार्श्वपादौ पाणिभ्यां परिबन्धयेत् ।
भद्रासनं समुद्दिष्टं योगिभिः परिकल्पितम् ॥
ऊर्वोः पादौ क्रमान्न्यस्य जानुनोः प्राङ्मुखांगुलिः ।
करौ निदध्यादाख्यातं वज्रासनमनुत्तमम् ॥
एकं पादमधः कृत्वा विन्यस्योरौ तथेतरम् ।
ऋजुकायो विशेन्मन्त्री वीरासनमितीरितम् ॥

योगांग आसन—योगसिद्धि के लिये पाँच आसन प्रशस्त माने गये हैं—१. पद्मासन, २. स्वस्तिकासन, ३. भद्रासन, ४. वज्रासन, ५. वीरासन।

दाँयीं जंघा के ऊपर बाँयाँ पदतल और बाँयें के ऊपर दाँयाँ पदतल रखकर दाँयें हाथ से बाँयें पैर के अंगूठे को और बाँयें हाथ से दाँयें पैर के अंगूठे को पकड़कर बैठने से पद्मासन होता है। यह आसन योगियों को अत्यन्त प्रिय है।

दाँयें जानु और दाँयीं जंघा के बीच में बाँयाँ पदतल तथा बाँयीं जंघा और जानु के बीच में दाँयाँ पदतल प्रविष्ट कर सरल भाव से बैठना स्वस्तिकासन कहलाता है।

अण्डकोष के दोनों ओर दोनों गुल्फों को सटाकर कोष के अधोभाग में दोनों पैरों के दो पार्श्वों को दो हाथों द्वारा बाँधकर बैठना भद्रासन कहलाता है।

दोनों जाँघों के ऊपर दोनों पैर रखकर दोनों जानुओं पर दोनों हाथों को इस प्रकार रक्खे कि अंगुलियाँ ऊर्ध्वमुख रहें। इस प्रकार बैठना वज्रासन कहलाता है।

एक पैर भूमि पर रखकर दूसरा पैर अन्य जाँघ पर रक्खे और सरल भाव से बैठे, यही वीरासन कहलाता है।

मुद्राप्रकरणम्

मुद्रापदव्युत्पत्तिमाह तन्त्रे—

मोदनात्सर्वदेवानां द्रावणात्पापसन्ततेः ।
तस्मान्मुद्रेति विख्याता मुनिभिस्तन्त्रवेदिभिः ॥
अथ मुद्राः प्रवक्ष्यामि सर्वतन्त्रेषु कल्पिताः ।
याभिर्विरचिताभिश्च मोदन्ते मन्त्रदेवताः ॥
अर्चने जपकाले च ध्याने काम्ये च कर्मणि ।
स्नाने चावाहने शङ्खे प्रतिष्ठायाञ्च रक्षणे ॥
नैवेद्ये च तथान्यत्र तत्तत्कल्पप्रकाशिते ।
स्थाने मुद्राः प्रद्रष्टव्याः स्वस्वलक्षणलक्षिताः ॥

आवाहन्यादिका मुद्रा न साधारणी मता ।
तथा षडङ्ग-मुद्राश्च सर्वमन्त्रेषु योजयेत् ॥
एकोनविंशतिर्मुद्रा विष्णोरुक्ता मनीषिभिः ।
शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-वेणु-श्रीवत्सकौस्तुभाः ॥
वनमाला तथा ज्ञानमुद्रा बिल्वाह्वया तथा ।
गरुडाख्या परा मुद्रा विष्णोः सन्तोषवर्द्धिनी ॥
नारसिंही च वाराही हायग्रीवी धनुस्तथा ।
वाणमुद्रा ततः पर्शुर्जगन्मोहनिका परा ॥
काममुद्रा परा ख्याता शिवस्य दश मुद्रिकाः ।
लिङ्गयोनित्रिशूलाक्षमालेष्टाभीमृगाह्वयाः ॥
खट्वाङ्गा च कपालाख्या डमरुः शिवतोषदाः ।
सूर्यस्यैकैव पद्माख्या सप्त मुद्रा गणेशितुः ॥
दन्तपाशांकुशा विघ्नपर्शुलड्डूकसंज्ञिताः ।
बीजपूराह्वया मुद्रा विज्ञेया विघ्नपूजने ॥
पाशांकुशवराभीतिखड्गचर्मधनुःशराः ।
मौषली मुद्रिका दौर्गी मुद्रा शक्तेः प्रियङ्करा ॥
लक्ष्मीमुद्रार्चने लक्ष्म्या वाग्वादिन्याश्च पूजने ।
अक्षमाला तथा वीणा व्याख्या पुस्तकमुद्रिका ॥
सप्तजिह्वाह्वया मुद्रा विज्ञेया वह्निपूजने ।
मत्स्यमुद्रा च कूर्माख्या लेलिहा मुण्डसंज्ञिका ॥
महायोनिरिति ख्याता सर्वसिद्धिसमृद्धिदा ।
शक्त्यर्चने महायोनिः श्यामादौ मुण्डमुद्रिका ।
मत्स्यकूर्मलेलिहाख्या मुद्रा साधारणी मता ॥
तारार्चने विशेषास्तु कथ्यन्ते पञ्च मुद्रिकाः ।
योनिश्च भूतिनी चैव बीजाख्या दैत्यधूमिनी ।
लेलिहानेति सम्प्रोक्ता पञ्चमुद्रा विलोकिताः ॥
दशमा मुद्रिका ज्ञेयास्त्रिपुरायाश्च पूजने ।
संक्षोभद्रावणाकर्षवश्योन्मादमहांकुशाः ॥
खेचरी-बीजयोन्याख्या त्रिखण्डा परिकीर्तिता ।
कुम्भमुद्राभिषेके स्यात्पद्ममुद्रासने तथा ॥
कालकर्णी प्रयोक्तव्या विघ्नप्रशमकर्मणि ।
गालिनी च प्रयोक्तव्या जलशोधनकर्मणि ॥

मुद्राप्रकरण—तन्त्र में मुद्रा शब्द की व्याख्या है कि मुद्रायें देवताओं के आनन्द को बढ़ाकर सभी प्रकार के पापों को नष्ट करती हैं। पूजा में, जपकाल में, ध्यान में, काम्य कर्म में, स्नान में, आवाहन में, शंखस्थापन में, प्राणप्रतिष्ठा में, रक्षण में, नैवेद्य देने में और अन्य कल्पोक्त कार्यों में अपने-अपने लक्षणों के अनुरूप मुद्राओं का प्रदर्शन अवश्य करना चाहिये।

आवाहनी आदि नौ प्रकार की मुद्रायें सभी पूजनों में एक समान हैं। इसी प्रकार षडंग मुद्रायें भी सभी कर्मों में समान समझनी चाहिये।

विष्णुपूजा में पण्डितों ने उन्नीस मुद्रायें निर्दिष्ट की हैं—१. शंख, २. चक्र, ३. गदा, ४. पद्म, ५. वेणु, ६. श्रीवत्स, ७. कौस्तुभ, ८. वनमाला, ९. ज्ञान, १०. बिल्व, ११. गरुड़, १२. नारसिंही, १३. वाराही, १४. हयग्रीव, १५. धनु, १६. वाण, १७. परशु, १८. जगन्मोहनिका, १९ काम। इन मुद्राओं के प्रदर्शन से भगवान् विष्णु परम सन्तुष्ट होते हैं।

शिव को सन्तुष्ट करने वाली दस मुद्रायें हैं—१ लिंग, २. योनि, ३. त्रिशूल, ४. अक्षमाला, ५. वर, ६. अभय, ७. मृग, ८. खट्वांग, ९. कपाल, १०. डमरू।

सूर्यपूजा में एकमात्र पद्ममुद्रा बताई गयी है।

गणेशपूजा में सात मुद्रायें निर्दिष्ट हैं—१. दन्त, २. पाश, ३. अंकुश, ४. विघ्न, ५. परशु, ६. लड्डूक, ७. बीजपूर।

शक्ति देवता को प्रीतिदायिनी दश मुद्रायें हैं—१. पाश, २. अंकुश, ३. वर, ४. अभय, ५. खड्ग, ६. चर्म, ७. धनुष, ८.वाण, ९. मूशल, १०. दौर्गी।

लक्ष्मीपूजा में लक्ष्मीमुद्रा और सरस्वतीपूजा में चार मुद्रायें निर्दिष्ट हैं—१. अक्षमाला, २. वीणा, ३. व्याख्या, ४. पुस्तक।

अग्निपूजा में सप्तजिह्वा नाम की मुद्रा प्रशस्त है।

कुछ मुद्रायें सर्वसिद्धिप्रदायिनी हैं। जैसे—१. मत्स्य, २. कूर्म, ३. लेलिहा, ४. मुण्ड, ५. महायोनि। शक्ति देवता की पूजा में महायोनि एवं श्यामा आदि की पूजा में मुण्डमुद्रा प्रशस्त है। मत्स्य-कूर्म-लेलिहा जैसी कुछ मुद्रायें सर्वसामान्य समझनी चाहिये।

ताराविद्या के अर्चन में पाँच मुद्रायें प्रशस्त हैं—१. योनि, २. भूतिनी, ३. बीज, ४. दैत्यधूमिनी, ५. लेलिहाना।

त्रिपुरसुन्दरी की पूजा में प्रशस्त दस मुद्रायें हैं—१. संक्षोभिणी; २. द्राविणी, ३. आकर्षिणी, ४. वश्या, ५. उन्मादिनी, ६. महांकुशा, ७. खेचरी, ८. बीज, ९. योनि और १० त्रिखण्डा।

अभिषेककार्य में कुम्भ मुद्रा, उपवेशन में पद्ममुद्रा, विघ्नशान्ति में कालकर्णी और जलशोधन में मालिनी मुद्रा प्रशस्त है।

श्रीगोपालार्चने वेणुर्नृहरेर्नारसिंहिका ।
वराहस्य स पूजायां वाराहाख्यां प्रयोजयेत् ॥
हयग्रीवार्चने चैव हायग्रीवीं प्रदर्शयेत् ।
रामार्चने धनुर्बाणमुद्रे पर्शुस्तथार्चने ॥
परशुरामस्य विज्ञेया जगन्मोहनसंज्ञिका ।
वासुदेवाह्वया ध्याने कुम्भमुद्रा तु रक्षणे ॥
सर्वत्र प्रार्थने चैव प्रार्थनाख्यां प्रयोजयेत् ।
उद्देशानुक्रमादासामुच्यन्ते लक्षणानि च ॥
हस्ताभ्यामञ्जलिं बद्ध्वानामिकामूलपर्वणि ।
अंगुष्ठौ निक्षिपेत्सेयं मुद्रा त्वावाहनी स्मृता ॥
अधोमुखी त्वियञ्चेत् स्यात् स्थापनी मुद्रिका स्मृता।
उच्छ्रितांगुष्ठमुष्ट्योश्च संयोगात् सन्निधापनी ॥
अन्तःप्रवेशितांगुष्ठा सैव संरोधनी मता ।
उत्तानमुष्टियुगला सम्मुखीकरणी मता ॥
देवताङ्गे षडङ्गानां न्यासः स्यात्सकलीकृतः ।
सव्यहस्तकृता मुष्टिर्दीर्घाधोमुखतर्जनी ।
अवगुण्ठनमुद्रेयमभितो भ्रामिता मता ॥
अन्योन्याभिमुखाश्लिष्टा कनिष्ठानामिका पुनः ।
तथैव तर्जनीमध्या धेनुमुद्रा प्रकीर्त्तिता ।
अमृतीकरणं कुर्यात्तया साधकसत्तमः ॥
अन्योन्यग्रथितांगुष्ठा प्रसारितपरांगुली ।
महामुद्रेयमुदिता परमीकरणे बुधैः ।
प्रयोजयेदिमा मुद्रा देवताह्वानकर्मणि ॥

गोपालपूजा में वेणुमुद्रा और नृसिंहपूजा में नारसिंही मुद्रा निर्दिष्ट है। वराह देव की पूजा में वाराही मुद्रा प्रशस्त है। हयग्रीव की पूजा में हयग्रीव मुद्रा दिखानी चाहिये। राम की पूजा में धनुष और वाण मुद्रायें प्रशस्त हैं। परशुराम की पूजा में परशु और सम्मोहन मुद्रा विहित है। ध्यान के समय परशुराम को वासुदेव मुद्रा दिखानी चाहिये।

रक्षाविषय में कुम्भ मुद्रा और सभी देवपूजाओं में प्रार्थना के समय प्रार्थनामुद्रा का प्रयोग सर्वत्र करना चाहिये। अब मुद्राओं का लक्षण बतलाता हूँ।

१. आवाहनी—दोनों हाथों को अञ्जलिबद्ध कर दोनों हाथों की अनामिकाओं के मूल पर्व पर दोनों अंगूठों को लगायें।

२. स्थापनी—आवाहनी मुद्रा की दोनों हस्ताञ्जलियों को अधोमुख करें।

३. सन्निधापिनी—दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बाँधकर दो अंगूठों को ऊपर उठायें।

४. संरोधिनी—दोनों हाथों के दोनों अंगूठों को अन्त:प्रविष्ट कर अधोमुखी मुट्ठियाँ बाँधें।

५. सम्मुखीकरणी—अधोमुखी दोनों मुट्ठियों को चित् करके रक्खें।

६. सकलीकरण—देवता के अंगों में षडंग न्यास करें।

७. अवगुण्ठन—बाँयें हाथ की मुट्ठी बाँधकर तर्जनी को दीर्घ फैलाकर अधोमुख करें और देवता के चारो ओर घुमायें।

८. धेनुमुद्रा—दोनों हाथों की सभी अंगुलियों को परस्पर सन्धिमध्यगत कर एक हाथ की कनिष्ठा के अग्रभाग के साथ दूसरे हाथ की अनामिका के अग्रभाग को मिलायें।

इसी प्रकार तर्जनी के अग्रभाग के साथ मध्यमा के अग्रभाग को मिलायें।

इस धेनुमुद्रा से पूजाकाल में नैवेद्य आदि पूजासामग्री का अमृतीकरण किया जाता है।

९. महामुद्रा—दोनों हाथों के दोनों अंगूठों को परस्पर ग्रथित कर अन्यान्य सभी अंगुलियों को फैलायें। इस महामुद्रा से परमीकरण और देवता का आवाहन किया जाता है।

अङ्गन्यासस्य मुद्राणां लक्षणं प्राक्समीरितम् ।
वैष्णवीनान्तु मुद्राणां कथ्यन्ते लक्षणान्यथ ।।
वामांगुष्ठन्तु संगृह्य दक्षिणेन तु मुष्टिना ।
कृत्वोत्तानं ततो मुष्टिमङ्गुष्ठन्तु प्रसारयेत् ।।
वामांगुल्यस्तथा श्लिष्टाः संयुक्ताः स्युः प्रसारिताः ।
दक्षिणांगुष्ठसंस्पृष्टा ज्ञेयैषा शङ्खमुद्रिका ।।
हस्तौ तु सम्मुखौ कृत्वा सुभुग्नौ सुप्रसारितौ ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ लग्नौ मुद्रैषा चक्रसंज्ञिका ।।
अन्योऽन्याभिमुखौ हस्तौ कृत्वा तु ग्रथितांगुली ।
अंगुष्ठौ मध्यमे भूयः सुलग्ने सुप्रसारिते ।
गदामुद्रेयमुदिता विष्णोः सन्तोषवर्द्धिनी ।।
हस्तौ तु सम्मुखौ कृत्वा सन्नतप्रोत्थितांगुली ।
तलान्तमिलितांगुष्ठौ कृत्वैषा पद्ममुद्रिका ।।

ओष्ठे वामकरांगुष्ठौ लग्नास्तस्य कनिष्ठिका ।
दक्षिणांगुष्ठसंयुक्ता तत्कनिष्ठा प्रसारिता ।।
तर्जनीमध्यमानामाः किञ्चित्सङ्कोच्य चालिताः ।
वेणुमुद्रा भवत्येषा सुगुप्ता प्रेयसी हरेः ।।
अन्योन्यपृष्ठकरयोर्मध्यमानामिकांगुली ।
अंगुष्ठेन तु बध्नीयात्कनिष्ठामूलसंस्थिते ।
तर्जन्यौ कारयेदेषा मुद्रा श्रीवत्ससंज्ञिता ।।
अनामापृष्ठसंलग्ना दक्षिणस्य कनिष्ठिका ।
कनिष्ठयान्यया बद्धा तर्जन्या दक्षया तथा ।
वामानामाञ्च बध्नीयाद्दक्षिणांगुष्ठमूलके ।
अंगुष्ठमध्यमे वामे संयोज्य सरलाः पराः ।
चतस्रोऽप्यग्रसंलग्ना मुद्रा कौस्तुभसंज्ञिका ।।
स्पृशेत्कण्ठादिपादान्तं तर्जन्यंगुष्ठया तथा ।
करद्वयेन मालावन्मुद्रेयं वनमालिका ।।
तर्जन्यंगुष्ठकौ सक्तावग्रतो विन्यसेत्सुधीः ।
वामहस्ताम्बुजं वामजानुमूर्ध्नि प्रविन्यसेत् ।
ज्ञानमुद्रा भवेदेषा रामचन्द्रस्य प्रेयसी ।।

अंगन्यास की सभी मुद्रायें पहले बतायी जा चुकी हैं। अब सभी वैष्णवी मुद्राओं का लक्षण बताया जाता है—

१. शंखमुद्रा—दाँयें हाथ की मुट्ठी से बाँयें हाथ के अंगूठे को पकड़कर उस मुट्ठी को ऊपर उठायें। फिर दाहिने हाथ के अंगूठे को उठाकर उसे बाँयें हाथ की फैली हुई अन्यान्य सभी अंगुलियों से मिला दें।

२. चक्रमुद्रा—दोनों हाथों को परस्पर सम्मुख कर चक्रभाव से फैलायें। अंगूठे और कनिष्ठा अंगुलियों को एक-दूसरे से मिला दें।

३. गदामुद्रा—दोनों हाथों को परस्पर सम्मुख कर अन्यान्य अंगुलियों को परस्पर ग्रथित करें।

४. पद्ममुद्रा—दोनों हाथों को सम्मुख करके सभी अंगुलियों को सन्नत भाव से प्रोथित कर दोनों अंगूठों को हथेलियों से मिला दें।

५. वेणुमुद्रा—बाँयें हाथ के अंगूठे को ओठ से मिलाकर बाँईं कनिष्ठा को दाहिने हाथ के अंगूठे से मिलायें। फिर दाहिने हाथ की कनिष्ठा को फैलाकर तर्जनी-मध्यमा-अनामिका को कुछ सिकोड़कर हिलायें।

यह वेणुमुद्रा अति गोपनीय है और विष्णु की प्रेयसी है।

६. श्रीवत्समुद्रा—दोनों हाथों के पृष्ठभागों को परस्पर मिलायें। दाहिने हाथ के अंगूठे से बाँयें हाथ की मध्यमा-अनामिका को और बाँयें हाथ के अंगूठे से दाहिने हाथ की मध्यमा-अनामिका को पकड़ें। फिर दाहिने हाथ की तर्जनी को बाँयें हाथ की कनिष्ठा के मूल में और बाँयें हाथ की तर्जनी को दाहिने हाथ की कनिष्ठा के मूल में स्थापित करें।

७. कौस्तुभमुद्रा—दाहिने हाथ की कनिष्ठा को अनामिका के पृष्ठ में संलग्न कर बाँयें हाथ की कनिष्ठा से उन्हें जकड़ लें। फिर दाहिने हाथ के अंगूठे के मूल में बाँयें हाथ के अंगूठे और मध्यमा को संयुक्त करें। शेष चार अंगुलियों के अग्रभागों को मिलायें।

८. वनमालामुद्रा—दोनों हाथों के अंगूठों और तर्जनियों को अलग-अलग मिलाकर कण्ठ से पैर तक स्पर्श करें तथा दोनों हाथों को माला के समान बनायें।

९. ज्ञानमुद्रा—दाहिने हाथ के अंगूठे और तर्जनी के अग्रभाग को मिला कर हृदय पर रक्खें तथा बाँयें हाथ को कमल के समान फैलाकर बाँयें जानु पर रखें।

यह ज्ञानमुद्रा रामचन्द्र को अतिप्रिय है।

अंगुष्ठं वाममुद्दण्डितमितरकरांगुष्ठकेनाथ बद्ध्वा
तस्याग्रं पीडयित्वांगुलीभिरपि च तां वामहस्तांगुलीभिः ।
बद्ध्वा गाढं हृदि स्थापयतु विमलधीर्व्याहरन्मारबीजं
बिल्वाख्या मुद्रिकैषा स्फुटमिह गदिता गोपनीया विधिज्ञैः ॥
हस्तौ तु विमुखौ कृत्वा ग्रथयित्वा कनिष्ठिके ।
मिथस्तर्जनिके श्लिष्टे श्लिष्टावंगुष्ठकौ तथा ॥
मध्यमानामिके द्वे तु द्वौ पक्षाविव चालयेत् ।
एषा गरुडमुद्रा स्यात् विष्णोः सन्तोषवर्द्धिनी ॥
जानुमध्ये करौ कृत्वा चिबुकोष्ठौ समावुभौ ।
हस्तौ तु भूमिसंलग्नौ कम्पमानः पुनः पुनः ॥
मुखं विवृत्तकं कुर्यात्लेलिहानाञ्च जिह्विकाम् ।
नारसिंही भवेदेषा मुद्रा तत्प्रीतिवर्द्धिनी ॥

प्रकारान्तरम्—

अंगुष्ठाभ्यान्तु करयोस्तथाक्रम्य कनिष्ठिके ।
अधोमुखीभिः सर्वाभिर्मुद्रेयं नृहरेर्मता ॥
देवोपरि करं वामं कृत्वोत्तानमधः सुधीः ।
नमयेदिति सम्प्रोक्ता मुद्रा वाराहसंज्ञिका ॥

प्रकारान्तरम्—

दक्षहस्तश्चोर्ध्वमुखं वामहस्तमधोमुखम् ।
अंगुल्यग्रन्तु संयुक्तं मुद्रा वाराहसंज्ञिका ॥
वामहस्ततले दक्षा अंगुलीस्तास्त्वधोमुखीः ।
संरोप्य मध्यमां तासामुन्नम्याधो विकुञ्चयेत् ॥
हयग्रीवप्रिया मुद्रा तन्मूर्तेरनुकारिणी ॥
वामस्य मध्यमाग्रन्तु तर्जन्यग्रेण योजयेत् ।
अनामिकां कनिष्ठाञ्च तस्यांगुष्ठेन पीडयेत् ॥
दर्शयेद्वामके स्कन्धे धनुर्मुद्रेयमीरिता ।
दक्षमुष्टेस्तु तर्जन्या दीर्घया बाणमुद्रिका ॥

यद्वा ज्ञानार्णवे—

यथा हस्तगतं चापं तथा हस्तं कुरु प्रिये ।
चापमुद्रेयमाख्याता वामहस्ते व्यवस्थिता ॥
यथा हस्तगता बाणास्तथा हस्तं कुरु प्रिये ।
बाणमुद्रेयमाख्याता रिपुवर्गनिकृन्तनी ॥
तले तलन्तु करयोस्तिर्यक्संयोज्य चांगुलीः ।
संहताः प्रसृताः कुर्यान्मुद्रा परशुसंज्ञिका ॥
उच्छ्रितांगुष्ठमुष्टी द्वे मुद्रा त्रैलोक्यमोहिनी ।
हस्तौ तु सम्पुटौ कृत्वा प्रसृतांगुलिके तथा ॥
तर्जन्यौ मध्यमापृष्ठे अंगुष्ठौ मध्यमाश्रितौ ।
काममुद्रेयमुदिता सर्वदेवप्रियङ्करी ॥

१०. बिल्वमुद्रा—बाँयें हाथ के अंगूठे को ऊपर उठाकर उसके मूल को दाहिने हाथ के अँगूठे से पकड़कर दाहिने हाथ की अन्य अँगुलियों द्वारा बाँयें अंगूठे के अग्रभाग को दबायें। दाहिने हाथ की सभी अंगुलियों द्वारा बाँयें हाथ की सभी अंगुलियों को पकड़कर 'क्लीं' का उच्चारण करते हुए दोनों हाथों को हृदय पर रक्खें। यह बिल्व मुद्रा गोपनीय मानी गयी है।

११. गरुड़मुद्रा—एक हाथ के पीठ पर दूसरे हाथ को विपरीत मुख से रखकर कनिष्ठा से कनिष्ठा को, तर्जनी से तर्जनी को और अंगूठे से अंगूठे को पकड़ें। दोनों मध्यमाओं और अनामिकाओं को पंख के समान चलायें। यह गरुड़ मुद्रा विष्णु को प्रसन्न करती है।

१२. नारसिंही मुद्रा—जानुओं के बीच में दोनों हाथ रखकर ठोढ़ी और ओठ को

समभाव में रक्खें तथा दोनों हाथों को भूमि से सटाकर कँपायें। साथ ही मुँह खोलकर जीभ को बाहर निकालकर बार-बार हिलायें। इस नारसिंही मुद्रा से नृसिंहदेव अति प्रसन्न होते हैं।

इस मुद्रा की दूसरी विधि यह है कि दोनों हाथों के अंगूठों से दोनों कनिष्ठाओं को दबाकर सभी अंगुलियों को अधोमुख करें।

१३. वाराही मुद्रा—देवता के ऊपर बाँयें हाथ को उत्तान रखकर उसके अधोभाग को झुकावें। वाराही मुद्रा की दूसरी विधि यह है कि दाहिने हाथ को ऊर्ध्वमुख और बाँयें हाथ को अधोमुख रखकर दोनों हाथों की अंगुलियों को एक-दूसरे से मिलावें।

१४. हयग्रीव मुद्रा—बाँयें हाथ की हथेली पर दाहिने हाथ की सभी अंगुलियों को अधोमुख रखकर दाहिने हाथ की मध्यमा को ऊपर उठाते हुए अधोमुख सिकोड़ें। यह मुद्रा हयग्रीव को अतिप्रिय है।

१५. धनुर्मुद्रा—बाँयें हाथ के अग्रभाग को तर्जनी के अग्रभाग से संयोजित कर उसी हाथ के अंगूठे से अनामिका और कनिष्ठा को दबाते हुए बाँयें कन्धे को स्पर्श करें।

१६. वाणमुद्रा—दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधकर तर्जनी को फैलावें। ज्ञानार्णव में धनुर्मुद्रा की दूसरी विधि यह है कि हाथ में धनुष होने से जो रूप बनता है, उसी रूप में बाँयें हाथ को रक्खें।

इसी प्रकार हाथ में बाण होने से जो रूप बनता है, उसी रूप में दाँयें हाथ को रखने से बाणमुद्रा बनती है। यह मुद्रा शत्रुओं का विनाश करती है।

१७. परशुमुद्रा—एक हथेली पर दूसरी हथेली को टेढी, उनकी अपनी-अपनी अंगुलियों को यथासम्भव दूर रखकर मिलावें और फैलावें।

१८. त्रैलोक्यमोहिनी मुद्रा—दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बाँधकर दोनों अंगूठों को ऊपर की ओर फैलावें।

१९. काममुद्रा—दोनों हाथों को सम्मुख रखकर अंगुलियों को फैलावें। फिर दोनों तर्जनियों को मध्यमा की पीठ से लगाकर दोनों अँगूठों को मध्यमा से जोड़ें। यह काममुद्रा दिखाने से सभी देवता प्रसन्न होते हैं।

महादेवप्रियाणान्तु कथ्यन्ते लक्षणान्यथ ।
उच्छ्रितं दक्षिणांगुष्ठं वामांगुष्ठेन बन्धयेत् ।
वामांगुलीर्दक्षिणाभिरंगुलीभिश्च बन्धयेत् ।
लिङ्गमुद्रेयमाख्याता शिवसान्निध्यकारिणी ॥
मिथः कनिष्ठिके बद्ध्वा तर्जनीभ्यामनामिके ।

अनामिकोर्ध्वसंश्लिष्टदीर्घमध्यमयोरधः ।
अंगुष्ठाग्रद्वयं न्यस्येद्योनिमुद्रेयमीरिता ॥
अंगुष्ठेन कनिष्ठान्तु बद्ध्वा श्लिष्टांगुलित्रयम् ।
प्रसारयेत्रिशूलाख्या मुद्रैषा परिकीर्तिता ॥
अंगुष्ठतर्जन्यग्रेषु ग्रथयित्वांगुलित्रयम् ।
प्रसारयेदक्षमाला मुद्रेयं परिकीर्तिता ॥
अधःस्थितो दक्षहस्तः प्रसृतो वरमुद्रिका ॥
ऊर्ध्वीकृतो वामहस्तः प्रसृतोऽभयमुद्रिका ॥
मिलितानामिकांगुष्ठं मध्यमाग्रे नियोजयेत् ।
श्लिष्टांगुल्युच्छ्रिते कुर्यान्मृगमुद्रेयमीरिता ॥
पञ्चांगुल्यो दक्षिणास्तु मिलिता ह्यूर्ध्वमुन्नताः ।
खट्वाङ्गमुद्रा विख्याता देवस्यातिप्रिया मता ॥
पात्रवद्वामहस्तञ्च कृत्वाङ्के वामके तथा ।
निधायोच्छ्रितवत्कुर्यान्मुद्रा कापालिकी मता ॥
मुष्टिञ्च शिथिलां बद्ध्वा ईषदुच्छ्रितमध्यमाम् ।
दक्षिणां तूर्ध्वमुन्नम्य कर्णदेशे प्रचालयेत् ।
एषा मुद्रा डमरुका सर्वविघ्नविनाशिनी ॥

महादेव की प्रिय मुद्रायें—महादेव को प्रिय लगने वाली मुद्रायें निम्नवत् है—

१. लिंगमुद्रा—दाहिने हाथ के अंगूठे को उठाकर बाँयें अँगूठे से पकड़े। फिर बाँयें हाथ की सभी अंगुलियों को दाहिने हाथ की सभी अंगुलियों से पकड़े। इस लिंगमुद्रा को दिखाने से शिव का सान्निध्य प्राप्त होता है।

२. योनिमुद्रा—दोनों हाथों की कनिष्ठाओं को एक-दूसरे से सम्बद्ध करके दाहिने हाथ की तर्जनी से बाँई अनामिका और बाँई तर्जनी से दाँई अनामिका को आबद्ध करें। फिर दोनों अनामिकाओं के अग्रभाग में दोनों मध्यमाओं को जोड़कर फैला दें। साथ ही उन्हीं दोनों मध्यमाओं के मूल में दोनों अंगूठों को लगा दें।

३. त्रिशूल—दाहिने हाथ के अंगूठे से बाँयें हाथ की कनिष्ठा को पकड़कर शेष तीन अंगुलियों को फैला दें।

४. अक्षमाला—दाहिने हाथ के अंगूठे से तर्जनी को पकड़कर शेष तीन अंगुलियों को फैला दें।

५. वरमुद्रा—दाहिने हाथ को अधोमुख करें।

६. अभयमुद्रा—बाँयें हाथ को ऊर्ध्वमुख करके फैलावें।

७. मृगमुद्रा—अनामिका और अंगुष्ठ को मिलाकर मध्यमा के अग्रभाग से मिलावें। शेष सभी अंगुलियों को ऊपर उठायें।

८. खट्वांगमुद्रा—दाहिने हाथ की ऊर्ध्वमुखी पाँचों अंगुलियों को फैलाकर मिलावें। यह खट्वांग मुद्रा शिव को अतिप्रिय है।

९. कापालिनी मुद्रा—बाँयें हाथ को भिक्षापात्र जैसा बनाकर बाँईं ओर उठा हुआ रक्खें।

१०. डमरू मुद्रा—दाहिने हाथ की ढीली मुट्ठी बाँधकर मध्यमा को कुछ ऊपर उठाकर कान के पास चलावें। यह डमरू मुद्रा सभी प्रकार के विघ्नों को दूर करती है।

तथा गणेशमुद्राणामुच्यते लक्षणान्यथ ।
उत्तानोर्ध्वमुखी मध्या सरला बद्धमुष्टिका ।
दन्तमुद्रा समाख्याता सर्वागमविशारदैः ॥
वाममुष्टेस्तु तर्जन्या दक्षमुष्टेस्तु तर्जनीम् ।
संयोज्यांगुष्ठकाग्राभ्यां तर्जन्यग्रे स्वके क्षिपेत् ।
एषा पाशाह्वया मुद्रा विद्वद्भिः परिकीर्तिता ॥
ऋज्वीञ्च मध्यमां कृत्वा तर्जनीं मध्यपर्वणि ।
संयोज्याकुञ्चयेत् किञ्चिन्मुद्रैषांकुशसंज्ञिका ॥
तर्जनीमध्यमानामाकनिष्ठांगुष्ठमुष्टिका ।
अधोमुखी दीर्घरूपा मध्यमा विघ्नमुद्रिका ॥
पर्शुमुद्रा मिगदिता प्रसिद्धा लड्डुमुद्रिका ।
बीजपूराह्वया मुद्रा प्रसिद्धत्वादुपेक्षिता ॥
शाक्तेयीनाञ्च मुद्राणां कथ्यन्ते लक्षणान्यथ ।
पाशांकुशवराभीतिधनुर्बाणाः समीरिताः ॥
कनिष्ठाऽनामिके बद्ध्वा स्वांगुष्ठेनैव दक्षतः ।
शिष्टांगुली तु प्रसृते संसृष्टे खड्गमुद्रिका ॥
वामहस्तं तथा तिर्यक्कृत्वा चैव प्रसार्य च ।
आकुञ्चितांगुलीं कुर्याच्चर्ममुद्रेयमीरिता ॥
मुष्टिं कृत्वा तु हस्ताभ्यां वामस्योपरि दक्षिणम् ।
कुर्यान्मूषलमुद्रेयं सर्वविघ्नविनाशिनी ॥
मुष्टिं कृत्वा कराभ्याञ्च वामस्योपरि दक्षिणम् ।
कृत्वा शिरसि संयोज्य दुर्गामुद्रेयमीरिता ॥

गणेश की मुद्रायें—गणेश की आराधना में प्रयुक्त होने वाली मुद्रायें इस प्रकार कही गयी हैं—

१. दन्तमुद्रा—दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधकर ऊपर उठायें और मध्यमा को सीधा करके ऊपर उठायें।

२. पाशमुद्रा—बाँई मुट्ठी की तर्जनी को दाँई मुट्ठी की तर्जनी से मिलाकर दोनों अंगूठों को अपनी-अपनी तर्जनी के अग्रभाग से मिलावें।

३. अंकुशमुद्रा—दाहिने हाथ की मध्यमा को सीधे फैलाकर कुछ सिकोड़ते हुए तर्जनी के मध्य पर्व से मिलावें।

४. विघ्नमुद्रा—तर्जनी-मध्यमा-अनामिका-कनिष्ठा और अंगुष्ठ से मुट्ठी बाँधकर मध्यमा को अधोमुखी कर फैलावें।

५. परशुमुद्रा का वर्णन पहले हो चुका है। लड्डुक मुद्रा प्रसिद्ध है और बीजपूर मुद्रा का प्रचलन नहीं है। अतः इन तीनों मुद्राओं की विधि यहाँ नहीं दी गयी है।

६. शक्तिदेवता की मुद्राओं में से पाश, अंकुश, धनुष, वाण, वर और अभय—इन छः मुद्राओं का वर्णन हो चुका है। शेष का वर्णन यहाँ किया जा रहा है—

७. खड्गमुद्रा—दाहिने हाथ के अंगूठे से कनिष्ठा और अनामिका को पकड़कर शेष तर्जनी और मध्यमा को मिलाकर फैलायें।

८. चर्ममुद्रा—बाँयें हाथ को टेढ़ा कर फैलाते हुए अंगुलियों को सिकोड़ें।

९. मूशल मुद्रा—दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बाँधकर बाँई मुट्ठी के ऊपर दाँई मुट्ठी रक्खें। इस मूशल मुद्रा से सभी विघ्नों की शान्ति होती है।

१०. दुर्गा मुद्रा—दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बाँधकर बाँई मुट्ठी पर दाहिनी मुट्ठी रखकर मस्तक पर रक्खें।

चक्रमुद्रां तथा बद्ध्वा मध्यमे द्वे प्रसार्य च।
कनिष्ठिके तथानीय तदग्रेऽङ्गुष्ठकौ क्षिपेत्।
लक्ष्मीमुद्रा परा ह्येषा सर्वसम्पत्प्रदायिनी ॥
वीणावादनबद्धस्तौ कृत्वा सञ्चालयेच्छिरः।
वीणामुद्रेयमाख्याता सरस्वत्याः प्रियङ्करी ॥
वाममुष्टिं स्वाभिमुखीं कृत्वा पुस्तकमुद्रिका।
दक्षिणांगुष्ठतर्जन्यावग्रलग्ने परांगुलीः ॥
प्रसार्य संहतोत्ताना एषा व्याख्यानमुद्रिका।
श्रीरामस्य सरस्वत्या अत्यन्तप्रेयसी मता ॥
मणिबन्धस्थितौ कृत्वा प्रसृतांगुलिकौ करौ।
कनिष्ठांगुष्ठयुगले मिलित्वान्तः प्रसारयेत्।

सप्तजिह्वाख्यमुद्रेयं वैश्वानरप्रियङ्करी ।।
कनिष्ठांगुष्ठकौ सक्तौ करयोरितरेतरम् ।
तर्जनीमध्यमानामाः संहता भुग्नवर्जिता ।
मुद्रैषा गालिनी प्रोक्ता शङ्खस्योपरिचालिता ।।
दक्षांगुष्ठं परांगुष्ठे क्षिप्त्वा हस्तद्वयेन तु ।
सावकाशामेकमुष्टिं कुर्यात् सा कुम्भमुद्रिका ।।
मुष्ट्योरूर्ध्वीकृतांगुष्ठौ तर्जन्यग्रे तु विन्यसेत् ।
सर्वरक्षाकरी ह्येषा कुम्भमुद्रा प्रकीर्त्तिता ।।
प्रसृतांगुलिकौ हस्तौ मिथःश्लिष्टौ च सम्मुखौ ।
कुर्यात्स्वहृदये सेयं मुद्रा प्रार्थनसंज्ञिका ।।
अञ्जल्यञ्जलिमुद्रा स्याद्वासुदेवाह्वया च सा ।।

११. लक्ष्मी मुद्रा—पूर्वोक्त प्रकार से चक्रमुद्रा बनाकर दोनों मध्यमाओं को फैलावें। दोनों मध्यमाओं को दोनों कनिष्ठाओं पर लाकर उनके अग्रभाग पर रक्खें। यह लक्ष्मीमुद्रा सभी सम्पत्ति प्रदान करती है।

१२. वीणा मुद्रा—वीणा बजाते समय दोनों हाथ जिस रूप में रहते हैं, उस रूप में उन्हें रखकर मस्तक हिलायें। यह वीणा मुद्रा सरवती को अतिप्रिय है।

१३. पुस्तक मुद्रा—बाँयें हाथ की मुट्ठी बाँधकर उसे अपनी ओर दिखावें।

१४. व्याख्यान मुद्रा—दाहिने हाथ के अंगूठे और तर्जनी के अग्रभाग को मिलाकर शेष सभी अंगुलियों को उत्तानरूप में मिलाकर फैलावें। यह व्याख्यान मुद्रा श्रीराम और सरस्वती को अति प्रिय हैं।

१५. सप्तजिह्वा मुद्रा—दोनों हाथों की कलाइयों को मिलाकर सभी अंगुलियों को फैलावें। दोनों अंगूठों को दोनों कनिष्ठाओं से मिलावें। यह सप्तजिह्वा मुद्रा अग्निदेव को अतिप्रिय है।

१६. गालिनी मुद्रा—दाहिने हाथ की कनिष्ठा को बाँयें हाथ के अंगूठे से और बाँयें हाथ की कनिष्ठा को दाहिने हाथ के अंगूठे से मिलाकर दोनों हाथों की तर्जनी-मध्यमा-अनामा अंगुलियों को सीधा रखकर मिलावें।

यह गालिनी मुद्रा शंखस्थापन में शंख के ऊपर चलायी जाती है।

१७. कुम्भ मुद्रा—दाहिने हाथ के अंगूठे से बाँयें हाथ के अंगूठे को पकड़कर दोनों हाथों की एक ही मुट्ठी बाँधें या दोनों अंगूठों को ऊर्ध्वमुख कर ऊर्ध्वमुखी दोनों तर्जनियों के अग्रभाग को मिलावें। इस मुद्रा से सभी प्रकार की रक्षा होती है।

१८. प्रार्थना वासुदेव मुद्रा—दोनों हाथों को सम्मुख रखकर सभी अंगुलियों को परस्पर मिलावें और अपने हृदय से सटावें।

अंगुष्ठावुन्नतौ कृत्वा मुष्ट्योः संलग्नयोर्द्वयोः ।
तावेवाभिमुखी कुर्यान्मुद्रैषा कालकर्णिका ॥
दक्षिणा निविडा मुष्टिर्नासिकार्पिततर्जनी ॥
मुद्रा विस्मयसंज्ञा स्याद्विस्मयावेशकारिणी ॥
मुष्टिरूर्ध्वीकृतांगुष्ठा दक्षिणा नादमुद्रिका ।
तर्जन्यंगुष्ठसंयोगादग्रतो विन्दुमुद्रिका ॥
अधोमुखे वामहस्ते ऊर्ध्वास्यं दक्षहस्तकम् ।
क्षिप्त्वांगुलीरंगुलीभिः संग्रथ्य परिवर्तयेत् ।
एषा संहारमुद्रा स्याद्विसर्जनविधौ स्मृता ॥
दक्षपाणिपृष्ठदेशे वामपाणितलं न्यसेत् ।
अंगुष्ठौ चालयेत्सम्यङ्मुद्रेयं मत्स्यरूपिणी ॥
वामहस्तस्य तर्जन्यां दक्षिणस्य कनिष्ठिकाम् ।
तथा दक्षिणतर्जन्यां वामांगुष्ठं नियोजयेत् ॥
उन्नतं दक्षिणांगुष्ठं वामस्य मध्यमादिकाः ।
अंगुलीर्योजयेत्पृष्ठे दक्षिणस्य करस्य च ॥
वामस्य पितृतीर्थेन मध्यमानामिके तथा ।
अधोमुखे च ते कुर्याद्दक्षिणस्य करस्य च ॥
कूर्मपृष्ठसमं कुर्याद्दक्षपाणिञ्च सर्वतः ।
कूर्ममुद्रेयमाख्याता देवताध्यानकर्मणि ॥
अन्तरांगुष्ठमुष्टिन्तु कृत्वा वामकरस्य च ।
मध्यमाग्रं दक्षिणस्य तथालम्ब्य प्रयत्नतः ।
मध्यमेनाथ तर्जन्यामंगुष्ठाग्रेण योजयेत् ॥
दक्षिणं योजयेत्पाणिं वाममुष्टौ तु साधकः ।
दर्शयेद्दक्षिणे भागे मुण्डमुद्रेयमुच्यते ॥

१९. कालकर्णी मुद्रा—दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बाँधकर सम्मुख रक्खें। दोनों अंगूठों को खड़ा करके दोनों मुट्ठियों को मिला दें।

२०. विस्मय मुद्रा—दाहिने हाथ की मुट्ठी बनाकर उसकी तर्जनी को निकालकर नाक के आगे रक्खें। यह विस्मय मुद्रा संसार को विस्मय में डाल देती है।

२१. नाद मुद्रा—दाहिने हाथ के अंगूठे को खड़ा करके मुट्ठी बाँधें।

२२. बिन्दु मुद्रा—दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधकर अंगूठे और तर्जनी को परस्पर मिलावें।

२३. संहार मुद्रा—बाँयें हाथ को अधोमुख और दाहिने हाथ को ऊर्ध्वमुख करके दोनों हाथों की सभी अंगुलियों को एक-दूसरे से आबद्ध करते हुए हाथों को परिवर्तित करें। संहार मुद्रा का प्रयोग विसर्जन में होता है।

२४. मत्स्य मुद्रा—दाहिने हाथ को अधोमुख करके उसकी पीठ पर बाँयीं हथेली रखकर दोनों अंगूठों को हिलावें।

२५. कूर्म मुद्रा—बाँयें हाथ की तर्जनी से दाहिनी कनिष्ठा और दाहिनी तर्जनी से बाँयें अंगूठे को मिलाकर दाहिने अंगूठे को उठावें और बाँयीं अनामिका-मध्यमा को दाहिने हाथ की पीठ पर रक्खें। फिर बाँयें हाथ को तर्जनी और अंगूठे के मध्य भाग से दाहिने हाथ की मध्यमा और अनामिका को अधोमुख करके मिलावें। दाहिने हाथ को कछुए की पीठ के समान ऊपर उठावें।

इसका प्रयोग ध्यान के समय किया जाता है।

२६. मुण्ड मुद्रा—बाँयें हाथ की मुट्ठी बाँधकर मुट्ठी के भीतर बाँयें अंगूठे को प्रविष्ट करें। दाँयें हाथ की मध्यमा के सहारे तर्जनी आदि सभी अंगुलियों को परस्पर मिलाते हुए उन्हें बाँई मुट्ठी से मिलाकर दाँयीं ओर दिखावें।

ताराया योन्यादिमुद्रा यथा—

योनिमुद्रा च वक्तव्या दर्शयेत्तामधोमुखीम् ।
परिवर्त्य करौ स्पृष्टौ कनिष्ठाकृष्टमध्यमे ॥
अनामायुगलञ्चाधस्तर्जनीयुगलं पृथक् ।
अन्योऽन्यं निविडं बद्ध्वांगुष्ठाग्रेऽनामिके ततः ॥
दानवधूमकेत्वाख्या मुद्रैषा कथिता प्रिये ।
अस्यास्तु बन्धनान्मन्त्री बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम् ॥
वक्त्रं विस्तारितं कृत्वाप्यधोजिह्वाञ्च चालयेत्।
पार्श्वस्थं मुष्टियुगलं लेलिहानेति कीर्तिता ॥

एषा ताराराधने अन्या लेलिहाना वक्तव्या।

योनिर्मायाधरः सेन्दूर्वधुः कूर्चं क्रमाद्विदुः ।
बीजानि चोच्चरन्मन्त्री मुद्राबन्धनमाचरेत् ॥
तर्जनीमध्यमानामा समः कुर्यादधोमुखी ।
अनामायां क्षिपेद्बद्धामृज्वीं कृत्वा कनिष्ठिकाम् ।
लेलिहानाममुद्रेयं जीवन्यासे प्रकीर्तिता ॥

तर्जन्यनामिका-मध्या-कनिष्ठाक्रमयोगतः ।
करयोर्योजयत्येव कनिष्ठामूलदेशतः ।
अंगुष्ठाग्रे तु निक्षिप्य महायोनिः प्रकीर्तिता ॥

तारादेवी की मुद्रायें—ऐं ह्रीं ऐं स्त्रीं हूं—इन पाँच बीजों का उच्चारण करते हुए तारा की पाँच मुद्राओं को बाँधना चाहिये।

१. दानव धूमकेतु मुद्रा—दोनों हाथों को परिवर्तित कर दोनों कनिष्ठाओं से दोनों मध्यमाओं को खींचें। फिर दोनों अनामिकाओं को अलग-अलग अधोमुख करके परस्पर कसकर आबद्ध करें। अंगूठे के अग्रभाग से अनामिका को मिलावें। इससे साधक सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

२. लेलिहान मुद्रा—मुख खोलकर अधोमुखी जीभ को हिलावें। दोनों हाथों की मुट्ठियाँ अपने दोनों ओर बगल में रक्खें। यह तारापूजन में प्रशस्त है।

लेलिहान मुद्रा की दूसरी विधि यह है कि तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को समभाव में रखकर अधोमुख करें। अनामिका से अंगूठे को मिलाते हुए कनिष्ठा को सीधी रक्खें। इसका प्रयोग प्राणप्रतिष्ठा में किया जाता है।

३. महायोनि मुद्रा—दाँयें हाथ की तर्जनी से बाँयें हाथ की तर्जनी, मध्यमा से मध्यमा, अनामिका से अनामिका तथा कनिष्ठा से कनिष्ठा को मिलाकर दोनों कनिष्ठाओं के मूल भाग में दोनों अंगूठों को मिलावें।

वामकेश्वरतन्त्रोक्ताः प्रकाश्यन्तेऽत्र मुद्रिकाः ।
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मुद्राः सर्वार्थसिद्धिदाः ।
याभिर्विरचिताभिश्च सान्निध्यं त्रैपुरं भवेत् ॥
परिवर्त्य करौ स्पृष्टावंगुष्ठौ कारयेत्समौ ।
अनामान्तर्गते कृत्वा तर्जन्यौ कुटिलाकृती ॥
कनिष्ठिके नियुञ्जीत निजस्थाने महेश्वरि ।
त्रिखण्डेयं समाख्याता त्रिपुराध्यानकर्मणि ॥
मध्यमामध्यगे कृत्वा कनिष्ठेऽङ्गुष्ठरोधिते ।
तर्जन्यौ दण्डवत्कृत्वा मध्यमोपर्यनामिके ।
एषा च परमा मुद्रा सर्वसंक्षोभकारिणी ॥
एतस्या एव मुद्राया मध्यमे सरले यदा ।
क्रियते परमेशानि सर्वविद्राविणी तदा ॥
मध्यमातर्जनीभ्याञ्च कनिष्ठानामिके समे ।
अंकुशाकाररूपाभ्यां मध्यमे परमेश्वरि ॥

अंगुष्ठन्तु नियुञ्जीत कनिष्ठानामिकोपरि ।
इयमाकर्षिणी मुद्रा त्रैलोक्याकर्षिणी परा ॥
पुटाकारौ करौ कृत्वा तर्जन्यावंकुशाकृती ।
परिवर्तक्रमेणैव मध्यमे तदधोगते ॥
क्रमेण देवि तेनैव कनिष्ठानामिके तथा ।
संयोज्य निविडाः सर्वा अंगुष्ठावग्रदेशतः ।
मुद्रेयं परमेशानि सर्ववश्यकरी मता ॥
सम्मुखौ तु करौ कृत्वा मध्यमामध्यगेऽन्त्यजे ।
अनामिके तु सरले तद्बहिस्तर्जनीद्वयम् ॥
दण्डाकारौ ततोऽङ्गुष्ठौ मध्यमानखदेशगौ ।
मुद्रैषोन्मादिनी नाम्नाकर्षिणं सर्वयोषिताम् ॥
अस्यास्त्वनामिकायुग्ममधःकृत्वांकुशाकृती ।
तर्जन्यावपि तेनैव क्रमेण विनियोजयेत् ।
इयं महांकुशा मुद्रा सर्वकामार्थसाधिनी ॥
सव्यं दक्षिणदेशे तु सव्यदेशे तु दक्षिणम् ।
बाहुं कृत्वा महादेवि हस्तौ सम्परिवर्त्य च ॥
कनिष्ठानामिके देवि युक्त्या तेन क्रमेण तु ।
तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोर्ध्वमपि मध्यमे ॥
अंगुष्ठौ तु महेशानि सरलावपि कारयेत् ।
इयं सा खेचरी नाम्ना पार्थिवस्थानयोजिता ॥
परिवर्त्य करौ स्पृष्टावर्द्धचन्द्राकृती प्रिये ।
तर्जन्यंगुष्ठयुगलं युगपत्कारयेत्ततः ॥
अधः कनिष्ठावष्टब्धे मध्यमे विनियोजयेत् ।
तथैव कुटिले योज्ये सर्वाधस्तादनामिके ।
बीजमुद्रेयमचिरात्सर्वसिद्धिविवर्द्धिनी ॥
मध्यमे कुटिले कृत्वा तर्जन्युपरि संस्थिते ।
अनामिके मध्यगते तथैव हि कनिष्ठिके ॥
सर्वा एकत्र संयोज्य अंगुष्ठपरिपीडिताः ।
एषा तु परमा मुद्रा योनिमुद्रेयमीरिता ॥
एता मुद्रा महेशानि त्रिपुराया मयोदिताः ।
पूजाकाले प्रयोक्तव्या यथानुक्रमयोगतः ॥

त्रिपुरा देवी की मुद्रायें—वामकेश्वरतन्त्र में त्रिपुरा का सान्निध्य प्रदान करने वाली सर्वार्थसिद्धिप्रद मुद्राओं का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

१. त्रिखण्डा मुद्रा—दोनों हाथों को परिवर्तित कर दोनों अंगूठों को सीधे समभाव में रक्खें। दोनों तर्जनियों को दोनों मध्यमाओं के मध्यगत कर तिरछी रक्खें। दोनों कनिष्ठाओं को अपने-अपने स्थान पर रहने दें। इसका प्रयोग त्रिपुरा देवी के ध्यान में किया जाता है।

२. सर्वसंक्षोभकरिणी मुद्रा—दोनों हाथों की मध्यमाओं को मध्य स्थान में रखकर दोनों कनिष्ठाओं को दोनों मध्यमाओं द्वारा आबद्ध करें। दोनों तर्जनियों को दण्डाकार कर दोनों मध्यमाओं के ऊपर दोनों अनामिकाओं को रक्खें।

३. सर्वविद्राविणी मुद्रा—सर्वसंक्षोभकरिणी मुद्रा में मध्यमा को सीधा करके स्थापित करें।

४. आकर्षिणी मुद्रा—मध्यमा और तर्जनी को अंकुशाकार करके कनिष्ठा और अनामिका को यथावत् रक्खें। फिर मध्यमा पर अंगूठे को और अनामिका पर कनिष्ठा को लगावें। इससे तीनों लोकों का आकर्षण होता है।

५. सर्ववश्यकरी मुद्रा—दोनों हाथों को पुटित कर दोनों तर्जनियों को अंकुशाकार बनावें। दाँयीं मध्यमा-अनामिका और कनिष्ठा अंगुलियों के अग्रभाग को बाँयें हाथ की तीन अंगुलियों से मिलावें। सबों को कसकर संयुक्त करें।

६. उन्मादिनी मुद्रा—दोनों हाथों को अपने सामने करके दोनों कनिष्ठाओं को मध्यमा के मध्य भाग से मिलावें। दोनों अनामिकाओं को सीधा रखते हुए उनके ऊपर दोनों तर्जनियों को स्थापित करें। फिर दोनों अंगूठों को दण्डाकार बनाकर मध्यमा के नखप्रदेश में स्थापित करें। इससे सभी नारियों का आकर्षण होता है।

७. महांकुश मुद्रा—उन्मादिनी मुद्रा में दोनों अनामिकाओं को अंकुशाकार बनाकर अधोभाग में स्थापित करते हुए दोनों तर्जनियों को भी अंकुशाकार बनाकर उनसे मिलावें। यह सभी कामनाओं को सिद्ध करती है।

८. खेचरी मुद्रा—बाँयें हाथ को दाँईं ओर और दाँयें हाथ को बाँईं ओर रखकर दोनों को उलट दें। बाँयें हाथ की कनिष्ठा और अनामिका को दाँयें हाथ की अनामिका और कनिष्ठा से संयुक्त करें। दोनों तर्जनियों के द्वारा दोनों मध्यमाओं के ऊपरी भाग को दबावें। दोनों अंगूठों को सीधा रक्खें।

९. बीज मुद्रा—दोनों हाथों को उलटकर अर्द्धचन्द्राकार बनावें। तर्जनी और दोनों अंगूठों को एकत्र कर मिलावें। दोनों मध्यमाओं के नीचले भाग को कनिष्ठा से दबावें। सभी अंगुलियों के अधोभाग में दोनों अनामिकाओं को तिरछा रखकर उसी मध्यमा से मिलावें। इससे सभी सिद्धियाँ मिलती हैं।

१०. योनिमुद्रा—दोनों मध्यमाओं को तिरछा करके तर्जनियों के ऊपर रक्खें। दोनों कनिष्ठाओं को अनामिकाओं के मध्य में रखकर सभी अंगुलियों को एकत्र मिलाते हुए अंगूठों द्वारा दबावें।

उक्त सभी मुद्रायें त्रिपुरा देवी की पूजा में प्रयुक्त होती हैं।

वामहस्तेन मुष्टिन्तु बद्ध्वा कर्णप्रदेशके ।
तर्जनीं सरलां कृत्वा भ्रामयेन्मनुवित्तमः ।
सौभाग्यदण्डिनी मुद्रा न्यासकालेऽपि सूचिता ॥
अन्तरांगुष्ठमुष्ट्या तु निरुध्य तर्जनीमिमाम् ।
रिपुजिह्वा ग्रहा मुद्रा न्यासकालेऽपि सूचिता ॥
बद्ध्वा तु योनिमुद्रां वै मध्यमे कुटिले कुरु ।
अंगुष्ठौ च तदग्रे तु मुद्रेयं भूतिनी मता ॥
वाममुष्टिं विधायाथ तर्जनीमध्यमे ततः ।
प्रसार्य तर्जनीमुद्रा निर्दिष्टा वज्रपाणिना ॥

इति मुद्राप्रकरणम्

◆

११. सौभाग्यदण्डिनी मुद्रा—बाँयें हाथ की मुट्ठी बाँधकर तर्जनी को सीधी करके कान के चारो ओर घुमावें। पूजाकाल में इस मुद्रा को दिखाने से सौभाग्य में वृद्धि होती है।

१२. रिपुजिह्वाग्रहा मुद्रा—मुट्ठी बाँधकर उसके भीतर अंगूठे को प्रविष्ट करते हुए उस मुट्ठी को तर्जनी से आबद्ध करें।

१३. भूतिनी मुद्रा—योनिमुद्रा बनाकर मध्यमाओं को तिरछा करके उन मध्यमाओं पर दोनों अंगूठों को स्थापित करें।

१४. तर्जनी मुद्रा—बाँयें हाथ की मुट्ठी बाँधकर मध्यमा और तर्जनी को फैलायें।

धारणयन्त्रादि

भुवनेश्वरीयन्त्रम्

शारदायाम्—

आलिख्याष्टदिगर्गलान्युदरगं पाशादिकं त्र्यक्षरं
कोष्ठेष्वङ्गमनून्परेषु विलिखेदष्टार्णमन्त्रद्वयम् ।
अच्पूर्वापरषट्कयुग्लषवरान् व्योमासनानर्गले-
ष्वालिख्येन्द्रजलादिपाधिगुणशः पंक्तिद्वयं तत्परम् ॥

कोष्ठेष्वष्टयुगार्णमात्मसहितां युग्मस्वरान्तर्गतां
मायां केशरगां दलेषु विलिखेन्मूलं त्रिपंक्तिक्रमात्।
त्रिःपाशांकुशवेष्टितञ्च लिपिभिर्वीतं क्रमादुत्क्रमात्
पद्मस्थेन घटेन पङ्कजमुखेनावेष्टितं तद्बहिः ॥
घटार्गलमिदं यन्त्रं मन्त्रिणां श्रीपदं मतम्।
पाशश्रीशक्तिकन्दर्पकामशक्तिरमांकुशाः ॥
प्रथमोऽष्टाक्षरी मन्त्रस्ततः कामिनिरञ्जिनि।
स्वाहान्तोऽष्टाक्षरः सद्भिरपरः परिकीर्तितः ॥
ह्रीं गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि सवर्म फट्।
द्विठान्तः षोडशार्णोऽयं मन्त्रः सद्भिरुदीरितः ॥

इति घटार्गलयन्त्रम्

●

भुवनेश्वरीधारण यन्त्र—शारदातिलक तन्त्र में लिखा है कि आठ दिशाओं में आठ अर्गल अंकित कर उसके मध्य में निम्न मन्त्र लिखे—आं ह्रीं क्रों। ह्रीं के गर्भ में साध्य नाम लिखे। आठ कोणों में पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर के कोणों में क्रमशः नमः, स्वाहा, वषट्, हूं लिखे। आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान कोणों में फट् लिखे।

बाद के आठ कोणों में पूर्वादि प्रादक्षिण्य क्रम से आं श्रीं ह्रीं क्लीं क्लीं ह्रीं श्रीं क्रों में से एक-एक को लिखे। इसके बाद के आठ कोणों में 'कामिनीरञ्जिनी स्वाहा' अष्टाक्षर मन्त्र के एक-एक अक्षर को लिखे। तब अर्गल के अन्तर्गत कोणों में इस प्रकार के आठ मन्त्र लिखे—

१. पूर्व कोण में—ह्लं ह्लां ह्लिं ह्लीं ह्लुं ह्लूं।
२. आग्नेय कोण में—ह्यं ह्यां ह्यिं ह्यीं ह्युं ह्यूं।
३. दक्षिण कोण में—ह्वं ह्वां ह्विं ह्वीं ह्वुं ह्वूं।
४. नैर्ऋत्य कोण में—ह्रं ह्रां ह्रिं ह्रीं ह्रुं ह्रूं।
५. पश्चिम कोण में—ह्लें ह्लैं ह्लों ह्लौं ह्लं ह्लः।
६. वायव्य कोण में—ह्यें ह्यैं ह्यों ह्यौं ह्यं ह्यः।
७. उत्तर कोण में—ह्वें ह्वैं ह्वों ह्वौं ह्वं ह्वः।
८. ईशान कोण में—ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रं ह्रः।

इसके बाद सोलह पद्मदलों में पूर्वादि प्रादक्षिण्यक्रम से ह्रीं गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि हूं फट् स्वाहा षोडशाक्षर मन्त्र के एक-एक अक्षरों को लिखे। उसके बाद अष्ट दलों में पूर्वादि प्रादक्षिण्यक्रम से निम्न मन्त्रवर्णावलियों को लिखे—

१. पूर्व दल में—हंस: अ ई आ हंस:।

२. आग्नेय दल में—हंस: इ ई ई हंस:।

३. दक्षिण दल में—हंस: उ ई ऊ हंस:।

४. नैर्ऋत्य दल में—हंस: ऋ ई ॠ हंस:।

५. पश्चिम दल में—हंस: ऌ ई ॡ हंस:।

६. वायव्य दल में—हंस: ए ई ऐ हंस:।

७. उत्तर दल में—हंस: ओ ई औ हंस:।

८. ईशान दल में—हंस: अं ई अ: हंस:।

इसके बाद आठ दलों में ही आं ह्रीं क्रों लिखे।

घटार्गल यन्त्र →

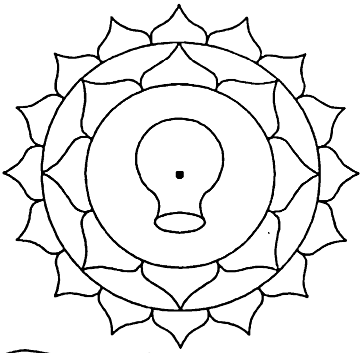

भुवनेश्वरी यन्त्र

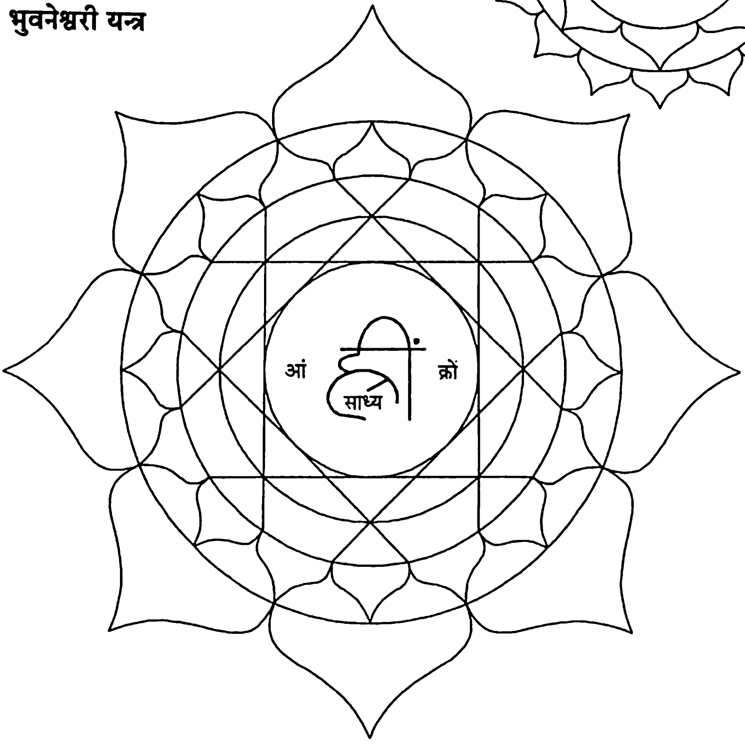

इसके बाद प्रथम वृत्त के अन्तराल में अं से क्षं तक के वर्णों को लिखे। दूसरे अन्तराल में क्षं से अं तक के पचास वर्णों को लिखे।

इसके बाहर षोडश दल पद्म और उसके अन्दर अष्टदल पद्म बनाकर औंधा घट बनावे। यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार का है—

त्वरितायन्त्रम्

तारे हूं विलिखेत्सरोजकुहरे साध्याभिधानान्वितं
मन्त्रार्णान् वसुसंख्यकान् वसुदलेष्वालिख्य तद्बाह्यतः ।
शक्त्या त्रिः परिवेष्टितं घटगतं पद्मस्थमब्जाननं
यन्त्रं वश्यकरं ग्रहादिभयहल्लक्ष्मीप्रदं कान्तिदम् ॥

इति त्वरितायन्त्रम्

●

त्वरिताधारण यन्त्र—अष्टदल पद्मकर्णिका में ॐ लिखे। ॐ के गर्भ में हूं लिखे। इसके बगल में हूं अमुकं वशमानय स्वाहा लिखे।

त्वरिता यन्त्र

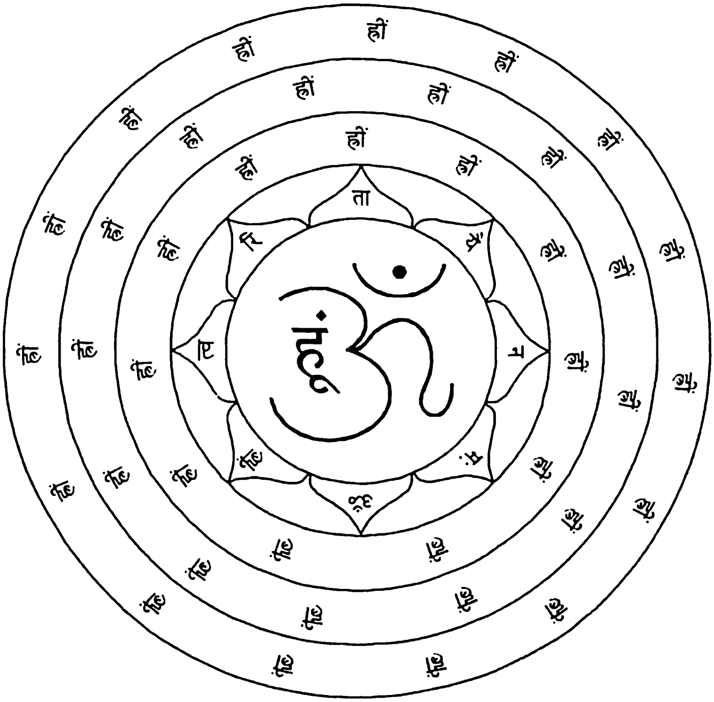

तब आठ दलों में पूर्वादि प्रादक्षिण्य क्रम से अष्टाक्षर मन्त्र 'ॐ ह्रीं त्वरितायै नम:' के एक-एक अक्षरों को लिखे। इन सबको शक्तिमन्त्र ह्रीं की तीन पंक्तियों द्वारा वेष्टित करे।

अष्टदल पद्म अंकित करके उस पर कलश स्थापित करे। कलश के मुख पर भी अष्टदल पद्म अंकित करे। कलश पर यन्त्र स्थापित करे। यह यन्त्र लोकवशकारी, ग्रहादि भयनाशक और श्री-कान्तिदायक है।

नवदुर्गायन्त्रम्

पद्मं भानुदलान्वितं प्रविलिखेत्तत्कर्णिकायां पुन-
स्तारं शक्तिगबीजसाध्यसहितं तत्केशरेषु क्रमात्।
मर्दिन्या मनुसम्भवान् युगलशो वर्णान् पुनः पत्रगान्
मन्त्रार्णान् गुणशो विधाय विलिखेदन्त्यं तदन्त्ये दले॥

मन्त्रस्तु—

उत्तिष्ठ पुरुष किं स्वपिषि भयं मे समुपस्थितम्।
यदि शक्यमशक्यं वा तन्मे भगवति शमय स्वाहा॥
मातृकावर्ण-संवीतं भूपुरद्वयमध्यगम्।
यन्त्रञ्च विन्ध्यवासिन्याः प्रोक्तं सर्वसमृद्धिदम्॥
रक्षाकरं विशेषेण क्षुद्रभूतादिनाशनम्।
राज्यदं भ्रष्टराज्यानां वश्यदं वश्यमिच्छताम्॥
सुतार्थिनां च सुतदं रोगिणां रोगशान्तिदम्।
बहुना किमिहोक्तेन यन्त्रं तत्कामदो मणिः॥

इति नवदुर्गायन्त्रम्

●

नवदुर्गाधारण यन्त्र—पहले द्वादश दल पद्म बनावे। उसकी कर्णिका में ॐ लिखकर उसके गर्भ में ह्रीं दुं और साध्य का नाम लिखे।

बारह दलों में महिषमर्दिनी स्वाहा के दो वर्ण लिखे। तब उन्हीं दलों में 'उत्तिष्ठ पुरुषि किं स्वपिषि? भयं मे समुपस्थितं यदि शक्यमशक्यं वा तन्मे भगवति शमय स्वाहा' के तीन-तीन अक्षरों को लिखे, अन्त में जो शेष रहे, उन्हें अन्तिम दल में लिखे। मातृकावर्णों से इसे वेष्टित करे।

इसे विन्ध्यवासिनी यन्त्र कहते हैं। इससे सभी ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। इसे धारण करने वाले की रक्षा होती है। विशेषत: भूत-प्रेत आदि नष्ट होते हैं। जिसकी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है, उसे पुन: वैभव प्राप्त होता है। इससे वशीकरण होता है। पुत्रार्थी को पुत्र मिलता

है। रोगी का रोग दूर होता है। सभी इच्छायें पूरी होती हैं।

नवदुर्गा यन्त्र

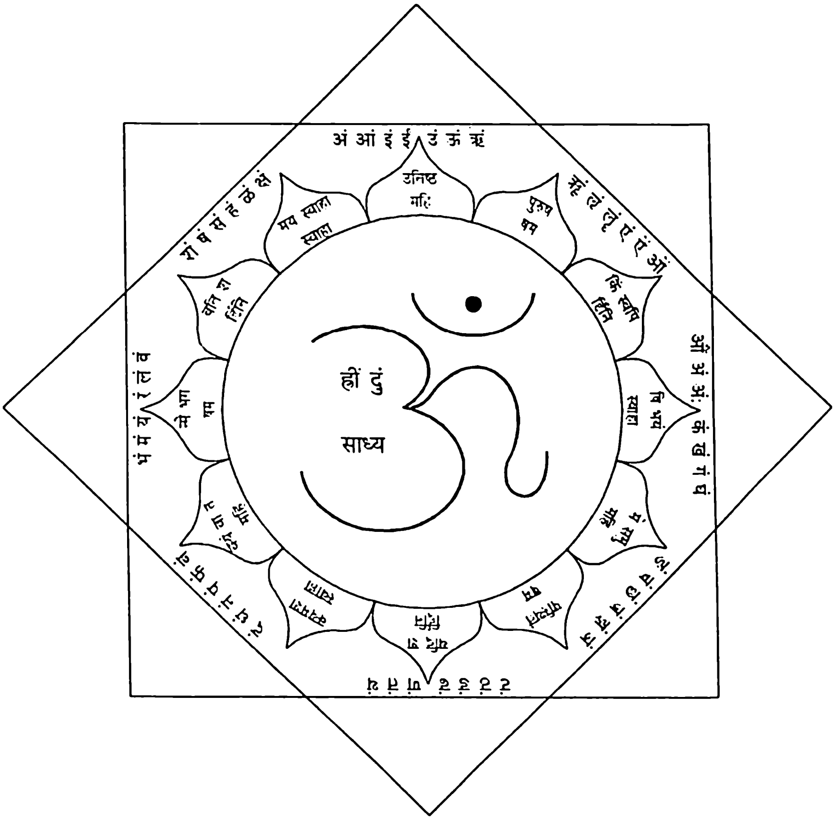

लक्ष्मीयन्त्रम्

वेदादिस्थितसाध्यनाम युगश: श्रीशक्तिमारान्वितं
किञ्जल्केषु दिनेशपत्रविलसन्मन्त्राक्षरं तद्वहि: ।
पद्मं व्यञ्जनकेशरं स्वरलसत्पत्राष्टयुग्मं धरा
विम्बाभ्यां वषडन्तरा त्वरितया यन्त्रं लिखेद्वेष्टितम् ।।
भूपुरद्वयकोणेषु हक्षौ लेख्यौ पुन: पुन: ।
महालक्ष्मीयन्त्रमिदं सर्श्वैश्वर्यफलप्रदम् ।।
सर्वदु:खप्रशमनं सर्वापद्विनिवारकम् ।
बहुना किमिहोक्तेन परमस्मान्न विद्यते ।।

इति लक्ष्मीयन्त्रम्

मीयन्त्र—पहले द्वादशदल पद्म अंकित करे। उसकी कर्णिका में ॐ के गर्भ नाम लिखे।

ह दलों के मूल में श्रीं ह्रीं, क्लीं श्रीं, ह्रीं क्लीं, श्रीं ह्रीं, क्लीं श्रीं, ह्रीं क्लीं, श्रीं ां श्रीं, ह्रीं क्लीं, श्रीं ह्रीं, क्लीं श्रीं, ह्रीं क्लीं लिखे। फिर बारह दलों में ऐं ह्रीं ह्सौ: जगत्प्रसूत्यै नम: द्वादशाक्षर मन्त्र के एक-एक अक्षर लिखे जायेंगे।

ःशदल पद्म के दलों के मूल में दो-दो व्यंजनों; जैसे—क-ख, ग-घ इत्यादि को ह से स तक बत्तीस वर्ण होते हैं। दलों में अं से अ: तक के सोलह वर्णों को ूपुरद्वय के कोनों में ह-क्ष लिखे।

यन्त्र को धारण करने से सभी ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। दु:खों का अन्त होता है। पत्तियों का निवारण होता है।

लक्ष्मी यन्त्र

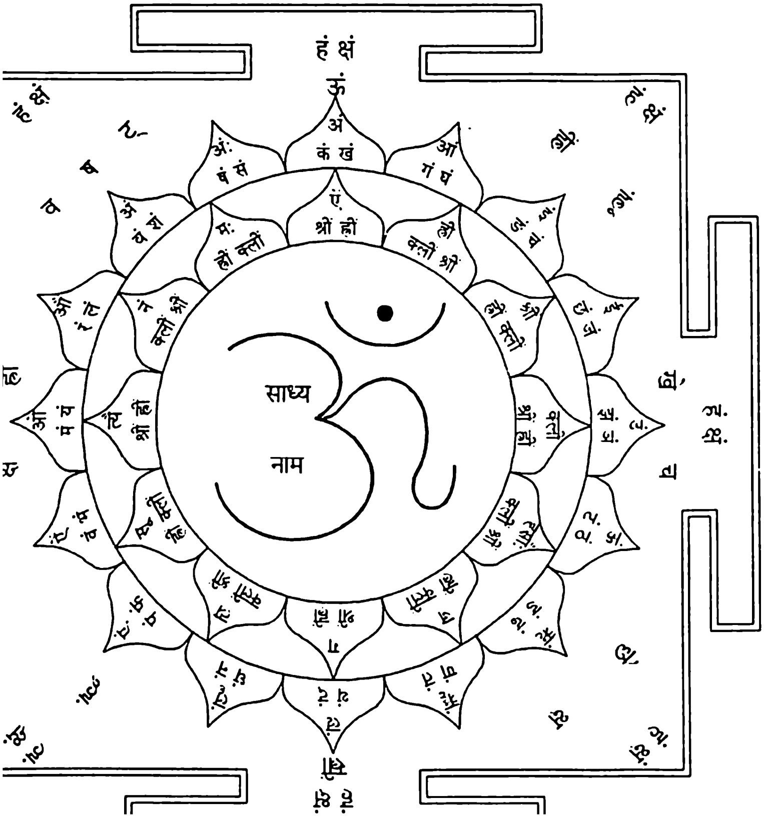

त्रिपुरभैरवीयन्त्रम्

मध्याद्यं नवयोनिषु प्रविलिखेद्बीजानि वर्णास्त्रिशो
गायत्र्याः पुनरष्टपत्रविवरेष्वालिख्य लिप्यावृतम् ।
भूविम्बद्वितयेन मन्मथयुजा कोणेषु संवेष्टितं
यन्त्रं त्रैपुरमीरितं त्रिभुवनप्रक्षोभणं श्रीपदम् ॥

गायत्री तु—

मन्मथं त्रिपुरादेवि विद्महे पदमुद्धरेत् ।
उक्त्वा कामेश्वरिपदं प्रवदेदथ धीमहि ॥
अन्ते च प्रवदेद् भूयस्तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात् ।
गायत्र्येषा समाख्याता त्रैपुरी सर्वसिद्धिदा ॥

इति त्रिपुरभैरवीयन्त्रम्

●

त्रिपुरभैरवी यन्त्र

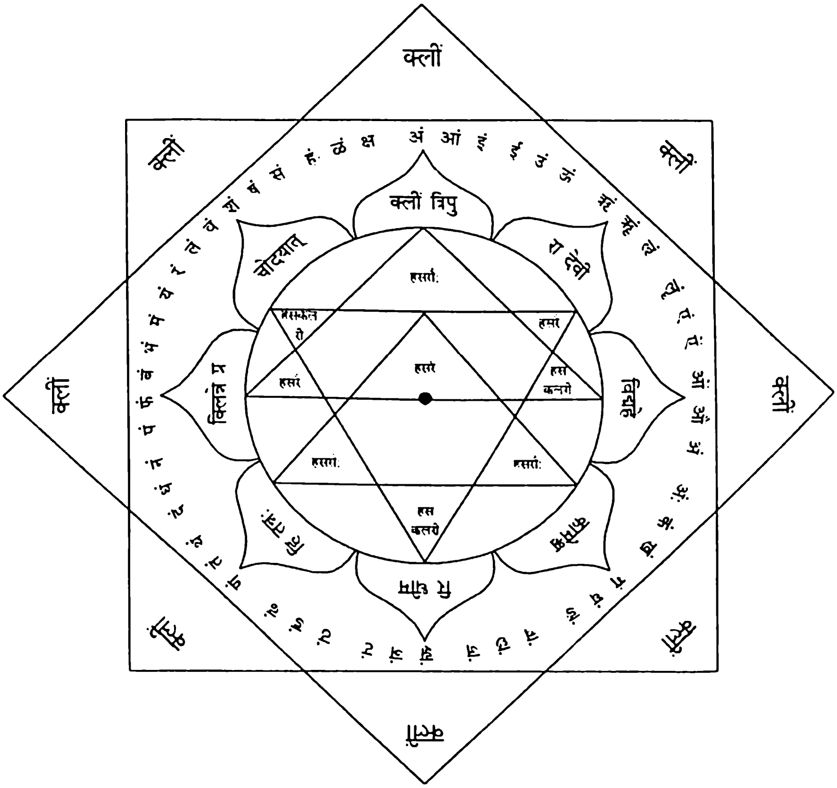
क्लीं
क्लीं
क्लीं
क्लीं
क्लीं
क्लीं
क्लीं
क्लीं
क्लीं
क्लीं त्रिपु
रा देवि
विद्महे
कामेश्वरि
धीमहि
तन्नः
क्लिन्ने प्र
चोदयात्
अं आं इं ईं उं ऊं
ळं क्ष

त्रिपुरभैरवी यन्त्र—अष्टदल पद्म अंकित करके उसके मध्य में नवयोनि अंकित करे। नवयोनि के मध्य से आरम्भ करके निम्न त्रिकूट मन्त्र के एक-एक कूट को लिखे। कूट है—हसरैं, हसकलरीं, हसरौः। तीन आवृति में नवों त्रिकोणों में ये कूट अंकित हो जायेंगे। आठ दलों में से प्रत्येक दल में त्रिपुरा गायत्री क्लीं त्रिपुरादेवि विद्महे कामेश्वरि धीमहि तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात् के चौबीस अक्षरों में से तीन-तीन अक्षरों को लिखे। तब भूपुरद्वय से वेष्टित करे। इन दोनों भूपुरों के कोनों में कामबीज क्लीं अंकित करे। इस त्रिपुरा यन्त्र को धारण करने वाला तीनों लोकों को वश में कर लेता है और अपार वैभव प्राप्त कर लेता है।

त्रिपुरायन्त्रम्

वह्नेर्गेहयुगान्तरस्थसदने मायां लिखेद्वाग्भवं
षट्कोणेष्वथ सन्धिषु प्रविलिखेत् ब्लूंकारमावेष्टयेत्।
स्त्रींबीजेन समीरितं त्रिभुवनप्रक्षोभणं त्रैपुरं
यन्त्रं पञ्चमनोभवात्मकमिदं सौन्दर्यसम्पत्करम् ॥

इति त्रिपुरायन्त्रम्

त्रिपुरा यन्त्र

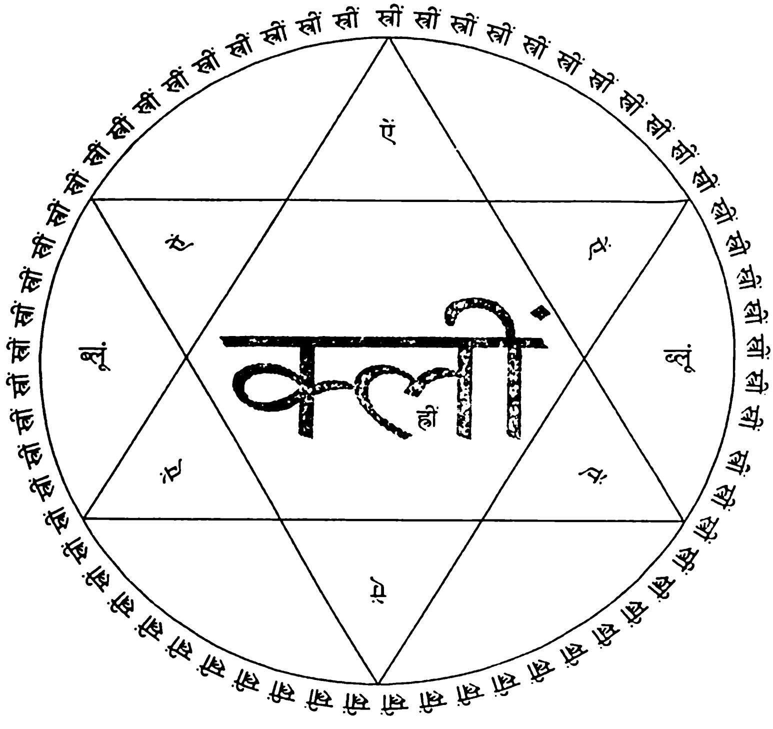

त्रिपुरा यन्त्र—ऊर्ध्वमुख त्रिकोण के ऊपर अधोमुख त्रिकोण बनाने से षट्कोण बन जाता है। उसके मध्य में क्लीं लिखे। क्लीं के गर्भ में ह्रीं लिखे। छः कोनों में 'ऐं' लिखे। दोनों त्रिकोणों की सन्धि में ब्लूं लिखे। इन सबको स्त्रीबीज से वेष्टित करे।

पाँच मनोभवात्मक बीज क्लीं ह्रीं ऐं ब्लूं स्त्रीं से युक्त त्रिपुरा यन्त्र होता है। इस यन्त्र से तीनों लोक वशीभूत होते हैं। इसे धारण करने वाला रूप, सौन्दर्य और वैभव से सम्पन्न रहता है।

श्रीविद्यायन्त्रम्

विशेषं धारणं यन्त्रं प्रसङ्गात्कथयामि ते ।
रेफहकारयोर्मध्ये देवीनामाभिमुख्यकम् ॥
साध्यनामद्वितीयान्तं तस्योर्ध्वे विलिखेन्मनुम् ।
तत्रैव मातृकां सर्वां विलिखेच्चक्रबाह्यतः ।
पञ्चगव्यामृतेनैव मूलेन परिवेष्टयेत् ॥
तत्र प्राणं प्रतिष्ठाप्य विद्यामष्टोत्तरं शतम् ।
तत्स्पृष्ट्वा प्रजपेन्मन्त्रं न्यासध्यानपरायणः ॥
हेम्नो मध्यगतं कृत्वा राजतस्याथवा पुनः ।
करे धृता जगद्वश्यं हृदये स्त्रीषु वल्लभः ।
कण्ठे धनं लभेद्भाले स्तम्भनं सर्वदा भवेत् ।
शिखायां मोक्षमाप्नोति तस्माद्यत्नेन धारयेत् ॥

इति श्रीविद्यायन्त्रम्

●

श्रीविद्या धारण यन्त्र—मूल मन्त्र के 'रेफ' एवं हकार के मध्य में देवी का नाम लिखकर उसके सम्मुख द्वितीयान्त साध्य नाम लिखे। उसके ऊपर मन्त्र लिखकर इसके बाहर मातृकावर्णावली से वेष्टित करे।

पूजाकाल में पञ्चगव्य, पञ्चामृत से और मूल मन्त्र से इसका परिवेष्टन करे। तब इसमें देवी की प्राणप्रतिष्ठा कर न्यास-ध्यानादि द्वारा पूजा करे। अन्त में यन्त्र को स्पर्श करते हुए १०८ बार मन्त्रजप करे।

इस यन्त्र को सोना या चाँदी के ताबीज में भरकर भुजा में धारण करने से संसार वशीभूत होता है। हृदय पर धारण करने वाला सबों का प्राणप्रिय हो जाता है। कण्ठ में धारण करने से धनलाभ, मस्तक पर धारण करने से स्तम्भन और जृम्भण होता है। शिखा में धारण करने से जीवनमुक्ति प्राप्त होती है।

श्रीविद्या (त्रिपुरा) धारण यन्त्र

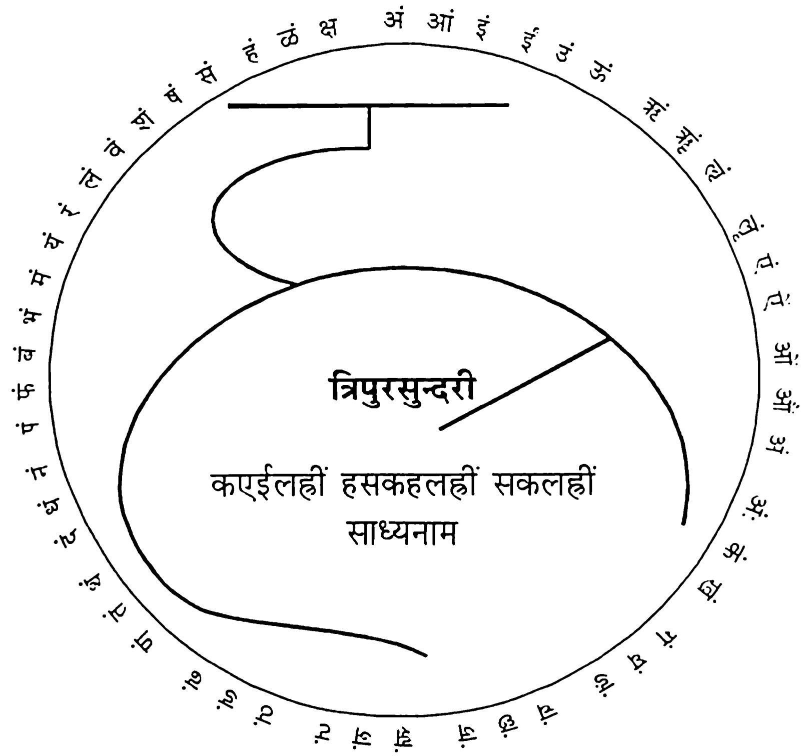
त्रिपुरसुन्दरी
कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं
साध्यनाम
अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः
कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्ष

गणेशयन्त्रम्

बीजं षट्कोणमध्ये स्फुरदनलपुरे तारगं दिक्षु लक्ष्मी-
र्मायाकन्दर्पभूमीस्तदनु रसपुटेष्वालिखेद्बीजषट्कम् ।
तत्सन्धिष्वङ्गमन्त्रान् वसुदलकमले मूलमन्त्रस्य वर्णान्
शिष्टान् पत्रेषु विद्वान् विलिखतु गुणशश्चान्त्यमन्त्ये पलाशे ॥
आवीतं लिपिभिः क्रमोत्क्रमवशात्पाशांकुशाभ्यामपि
भूविम्बद्वितयेन वेष्टितमिदं यन्त्रं गणाधीशितुः ।
लाक्षा-कुंकुम-रोचना-मृगमदैर्भूर्जोदरे हेम्नि वा
संलिख्याभिवहन् लभेत सकलैः सम्प्रार्थनीयां श्रियम् ॥
उक्तं महागणपतेर्विधानं सुरपूजितम् ।
सर्वसिद्धिकरं पुंसां समस्तपुरुषार्थदम् ॥

इति गणेशयन्त्रम्

●

गणेश यन्त्र—अष्टदल पद्म बनाकर उसकी कर्णिका-मध्य में षट्कोण बनाए। षट्कोण के मध्य में ऊर्ध्वमुख त्रिकोण बनावे। त्रिकोण के मध्य में ॐ लिखकर ॐ के मध्य में 'गं' लिखे।

षट्कोण के मध्य में स्थित त्रिकोण के चारो ओर श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं मन्त्र लिखकर षट्कोण के छ: कोणों में ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं क्लौं गं—इन छ: बीजों को लिखे। छ: सन्धिस्थलों में नम:, स्वाहा, वषट्, हुं, वौषट्, फट्—ये छ: अंगमन्त्र लिखे।

इसके बाद पद्म के सात दलों में मूल मन्त्र के तीन-तीन अक्षर लिखकर शेष वर्णों को आठवें दल में लिखे। जैसे—१. गणप, २. तये व, ३. रद व, ४. रद स, ५. र्वजनं, ६. मे वश, ७. मानय, ८. स्वाहा। अब एक पंक्ति में अनुलोम वर्णों द्वारा और एक पंक्ति में विलोम वर्णों द्वारा वेष्टन करे। उसके बाहर आं क्रों द्वारा वेष्टन करे। अन्त में दो चतुरस्रों द्वारा वेष्टित करे।

गणेश यन्त्र

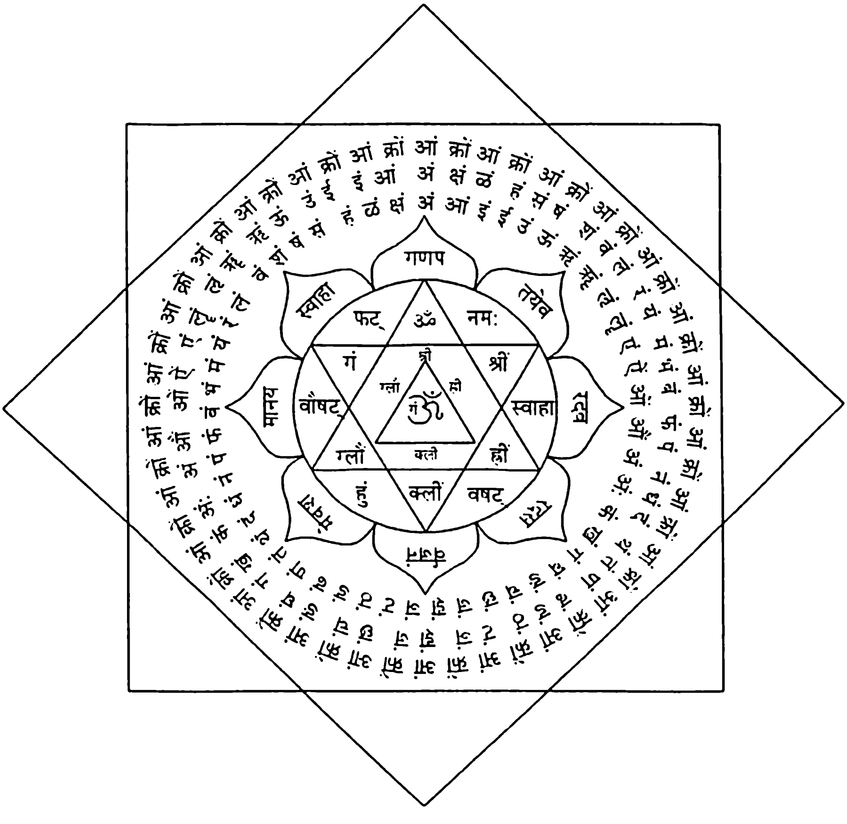
गणप
तयेव
रदव
रदस
र्वजनं
मेवश
मानय
स्वाहा
फट्
ॐ
नम:
गं
श्रीं
वौषट्
स्वाहा
ग्लौं
ह्रीं
हुं
क्लीं
वषट्
गं
श्री
ह्री
क्लीं
आं क्रों आं क्रों आं क्रों

इस यन्त्र को लाह, कुंकुम, गोरोचन और कस्तूरी के घोल से भोजपत्र पर लिखे। सोने के ताबीज में भरकर धारण करने से धन-सम्पत्ति का लाभ होता है।

महागणपति का यह यन्त्र देवताओं द्वारा पूजित है। इससे सभी सिद्धियाँ मिलती हैं, सभी इच्छायें पूरी होती हैं।

श्रीरामयन्त्रम्

तारं मध्ये विलिखतु मनुं षट्सु कोणेषु सन्धि-
ष्वङ्गं मायां स्मरमपि लिखेत्कोणगण्डेषु पश्चात् ।
किञ्जल्केषु स्मरणगमथो पत्रमध्येषु माला-
मन्त्रस्यार्णान् गुहमुखमितानष्टमे पञ्चवर्णान् ।।
दशाक्षरेण संवेष्ट्य कादिवर्णैश्च भूपुरे ।
दिग्विदिक्षु लिखेद्बीजे नरसिंहवराहयोः ।।
नमो भगवते ब्रूयाच्चतुर्थ्या रघुनन्दनम् ।
रक्षोघ्नविशदायान्ते मधुरादि समीरयेत् ।।
प्रसन्नवदनायेति पश्चादमिततेजसे ।
बलाय पश्चाद्रामाय विष्णवे तदनन्तरम् ।
प्रणवादिनमोऽन्तोऽयं मालामन्त्रः प्रकीर्तितः ।।

इति श्रीरामयन्त्रम्

◆

श्रीराम धारण यन्त्र—अष्टदल पद्म बनाकर कर्णिका में षट्कोण बनावे। इसके मध्य में ॐ लिखकर छः कोणों में रां रामाय नमः का एक एक वर्ण लिखे। छः सन्धियों में नमः, स्वाहा, वषट्, वौषट्, हुं, फट् लिखे।

कोणगंडों में ह्रीं क्लीं छः बार लिखे। आठ किञ्जल्कों में दो-दो स्वरवर्ण लिखकर आठ दलों में मालामन्त्र के छः-छः अक्षरों को लिखकर अन्तिम दल में शेष वर्णो को अंकित करे।

यन्त्र के बाहर भूपुर बनाकर उसकी चारो दिशाओं में क्ष्रौं और चारो कोणों में हूं लिखे। मालामन्त्र इस प्रकार का है—

ॐ नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय मधुरप्रसन्नवदनाय अमिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः।

इसके बाद दशाक्षर मन्त्र हूं जानकीवल्लभाय स्वाहा से वेष्टित करे। तब मातृकावर्णो से वेष्टित करे।

श्रीराम धारण यन्त्र

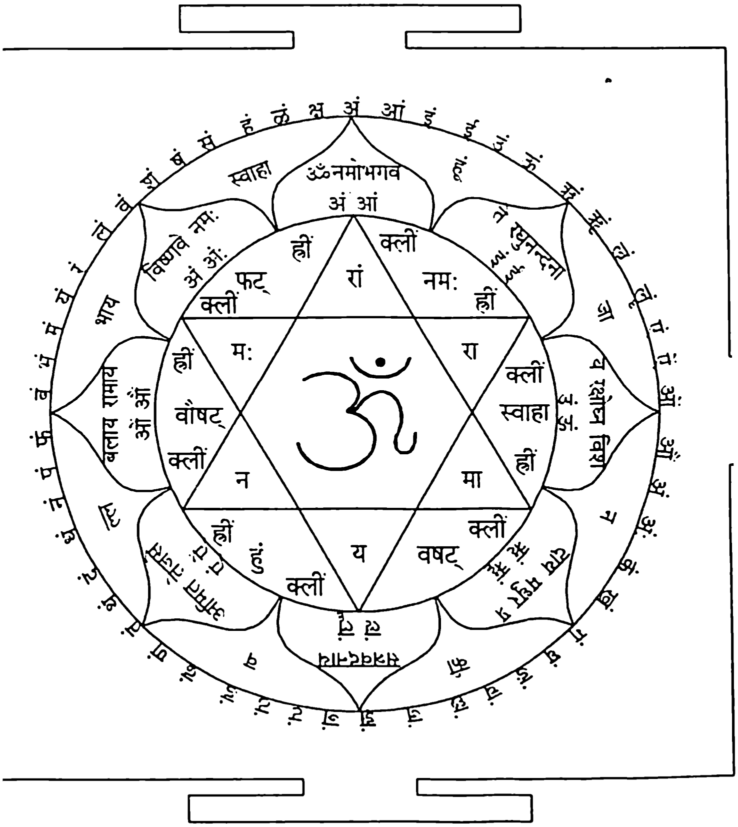
ॐ
रां
रा
मा
य
न
म:
ह्रीं
क्लीं
नम:
स्वाहा
हीं
क्लीं
वषट्
हुं
ह्रीं
क्लीं
वौषट्
ह्रीं
क्लीं
फट्
ॐनमोभगव
अं आं
स्वाहा
विष्णवे नम:
अं ओं
वलाय रामाय
ओं औं
अं आं इं ईं उं ऊं

नृसिंहयन्त्रम्

बीजं साध्यसमन्वितं प्रविलिखेन्मध्येऽष्टपत्रेष्वथो
मन्त्रार्णान् श्रुतिशो विभज्य विलिखेल्लिप्या बहिर्वेष्टयेत् ।
बाह्ये कोणगबीजरुद्धवसुधागेहद्वयेनावृतं
यन्त्रं क्षुद्रविषग्रहामयरिपुप्रध्वंसनं श्रीपदम् ।।

इति नृसिंहयन्त्रम्

●

सिंह धारण यन्त्र—अष्टदल पद्म बनाकर उसकी कर्णिका में बीजमन्त्र क्ष्रौं नाम लिखकर आठ दलों में अग्रांकित मन्त्र के चार-चार अक्षरों को लिखे-

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्।

नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युर्मृत्युं नमाम्यहम्।।

मातृका वर्णों से पूरे चक्र को वेष्टित करे। उनके बाहर दो चतुरस्र बनाकर उनके आठ कोणों में क्ष्रौं मन्त्र लिखे।

नृसिंह धारण यन्त्र

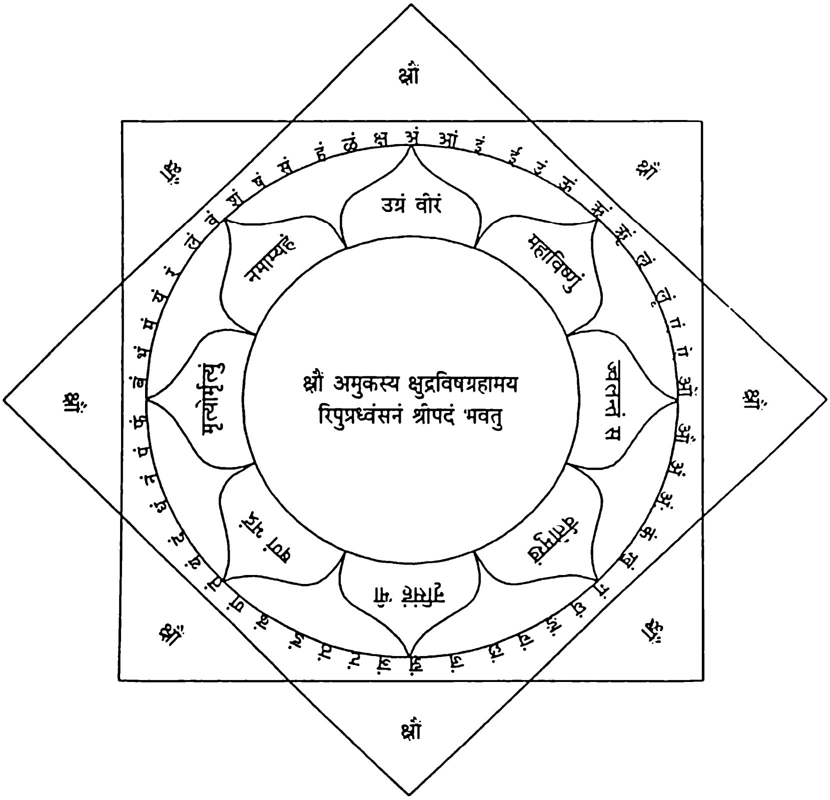
क्ष्रौं
उग्रं वीरं
महाविष्णुं
ज्वलन्तं स
र्वतोमुखं
नृसिंहं भी
षणं भद्रं
मृत्योर्मृत्युं
नमाम्यहं
क्ष्रौं अमुकस्य क्षुद्रविषग्रहामय
रिपुप्रध्वंसनं श्रीपदं भवतु

इस यन्त्र के द्वारा क्षुद्र विषनाश, ग्रहदोषशान्ति, रोगनिवारण, शत्रुविनाश और धनलाभ होता है।

गोपालयन्त्रम्

पिण्डं मूलेन वीतं दहनपुरयुगे कोणराजत् षडर्णं
कुर्यात्पद्मं दशार्णस्फुरितदशदलं कामबीजेन वीतम्।
पद्मं किञ्जल्कसंस्थं स्मरविकृतिदलप्रोल्लसत्षोडशार्णं
किञ्जल्कव्यञ्जनाढ्यं विकृतियुगदलेष्वर्पितानुष्टुवर्णम्।।

पाशांकुशाभ्यामावीतं क्षौणीपुरयुगाश्रिषु ।
अष्टाक्षरेण लसितं यन्त्रं गोपालदैवतम् ॥
धर्मार्थकामफलदं सर्वरक्षाकरं परम् ।
पञ्चान्तको धरासंस्थो मनुरिन्दुविभूषितः ॥
पिण्डबीजमिदं प्रोक्तं सर्वसिद्धिकरं परम् ।
स्मरः कृष्णाय ठद्वन्द्वं षडर्णो मनुरीरितः ॥
गोपीजनान्ते प्रवदेद्वल्लभायाग्निवल्लभा ।
अयं दशाक्षरो मन्त्रो दृष्टादृष्टफलप्रदः ॥
प्रणवं हृदयं कृष्णं ङेऽन्तमुक्त्वा ततः परम् ।
तादृशं देवकीपुत्रं हुं फट् स्वाहा समन्वितम् ॥
षोडशाक्षरमन्त्रोऽयं गोविन्दस्य समीरितः ।
पिण्डं रतिपतेर्बीजं नमो भगवते ततः ॥
नन्दपुत्राय बालादिवपुषे श्यामलाय च ।
गोपीजनपदस्यान्ते वल्लभाय द्विठावधिः ॥
अनुष्टुब्मन्त्र आख्यातो गोपालस्य जगत्पतेः ।
अनङ्गः कृष्णगोविन्दौ ङेऽन्तावष्टाक्षरो मनुः ॥

इति गोपालयन्त्रम्

◆

गोपाल धारण यन्त्र—दशदल पद्म बनाकर उसकी कर्णिका-मध्य में षट्कोण बनाकर उसके मध्य में ग्लौं लिखकर मूल मन्त्र क्लीं गोपीजनवल्लभाय से वेष्टित करे। षट्कोण के छः कोणों में क्लीं कृष्णाय स्वाहा षडक्षर मन्त्र के एक-एक वर्ण को लिखे। पद्म के दश दलों में गोपीजनवल्लभाय स्वाहा दशाक्षर मन्त्र के एक-एक वर्ण लिखकर दश दलों के कोणों-सन्धियों में क्लीं अंकित करके वेष्टित करे। उस दश दल के बाहर एक षोडशदल पद्म बनावे। उसके किञ्जल्क में सोलह स्वर और दलों में षोडशाक्षर मन्त्र ॐ नमः कृष्णाय देवकीपुत्राय हूं फट् स्वाहा के एक-एक वर्ण अंकित करे। किञ्जल्क में लिखित स्वरवर्णों के ऊपर व्यंजन वर्णों को भी अंकित करे। सोलह दलों में लिखित षोडशाक्षर मन्त्र के पूर्व अनुष्टुप् मन्त्र भी लिखे। अनुष्टुप् मन्त्र है—ग्लौं क्लीं नमो भगवते नन्दपुत्राय बालवपुषे श्यामलाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा। षोडशदल पद्म के बाहर दो भूपुर बनाये। उनके कोणों में पाश और अंकुशबीज—आं क्रों लिखकर वेष्टित करे। अष्टाक्षर मन्त्र से युक्त इस गोपालयन्त्र से धर्मार्थ-काम की प्राप्ति होती है। सभी प्रकार की रक्षा होती है। पञ्चान्तक ग और धरा 'ल' को मिलाकर उनमें औ और बिन्दु जोड़ने से

पिण्ड मन्त्र ग्लौं बनता है। यह सर्वसिद्धिप्रद है। क्लीं कृष्णाय स्वाहा षडक्षर मन्त्र हैं। गोपीजनवल्लभाय स्वाहा दशाक्षर मन्त्र है। इस दशाक्षर मन्त्र से दृष्ट और अदृष्ट सभी प्रकार के फल प्राप्त होते हैं। ॐ नम: कृष्णाय देवकीपुत्राय हुं फट् स्वाहा षोडशाक्षर मन्त्र है। अनुष्टुप् मन्त्र है—ग्लौं क्लीं नमो भगवते नन्दपुत्राय बालवपुषे श्यामलाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा। अष्टाक्षर मन्त्र है—क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय।

गोपाल धारण यन्त्र

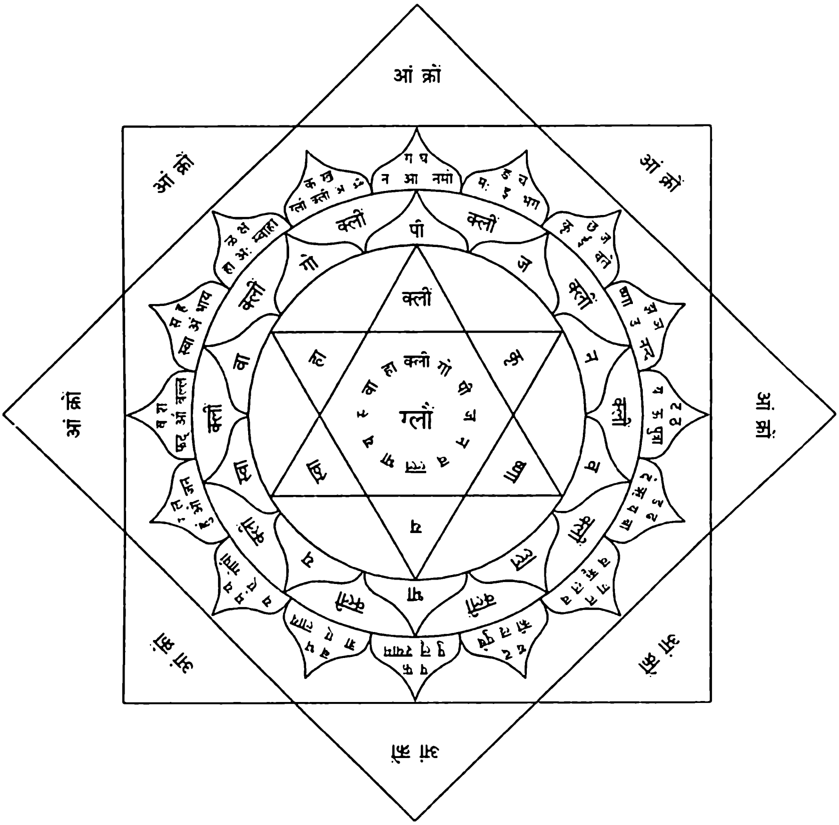

श्रीकृष्णयन्त्रम्

प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदग्विधिवदभिलिखेत्स्पष्टरेखाचतुष्कं
कोणोद्यच्छूलयुक्तं वलययुगयुतं मध्यपूर्वं तदन्तम्।
श्लोकस्यार्णान् पुरस्ताद्वसुपदविवरेष्वष्टवर्णं लिखित्वा
तद्बाह्ये द्वादशार्णैस्तदनु परिवृतं देवकीपुत्रयन्त्रम्॥

तत्सुकीदेवदेवेतं तं वेदे वरतोरतम् ।
तं रतो रूढतोऽख्यातं तं ख्यातो देवकीसुतम् ॥
लिखितं भूर्जपत्रादौ यन्त्रमेतद्यथाविधि ।
विधृतं बाहुना नित्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥
पलाशवृक्षफलके लिखितं साधुसाधितम् ।
गोस्थाने निखनेदेतद्गवां वृद्धिर्भवेत्तदा ॥

इति श्रीकृष्णयन्त्रम्

●

श्रीकृष्ण धारण यन्त्र—पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण की ओर दो-दो रेखायें खींचे। उनके चार कोणों में चार शूल रेखायें अंकित कर मध्य में और आगे दो वृत्त अंकित करे।

इस यन्त्र के मध्य में अनुष्टुप् मन्त्र के प्रत्येक चरण के पहले और अन्तिम वर्ण को मध्य में लिखकर पूर्वादि क्रम से श्लोक के बचे हुए वर्णों में से एक-एक कर एक-एक कोष्ठ में लिखे।

श्रीकृष्ण धारण यन्त्र

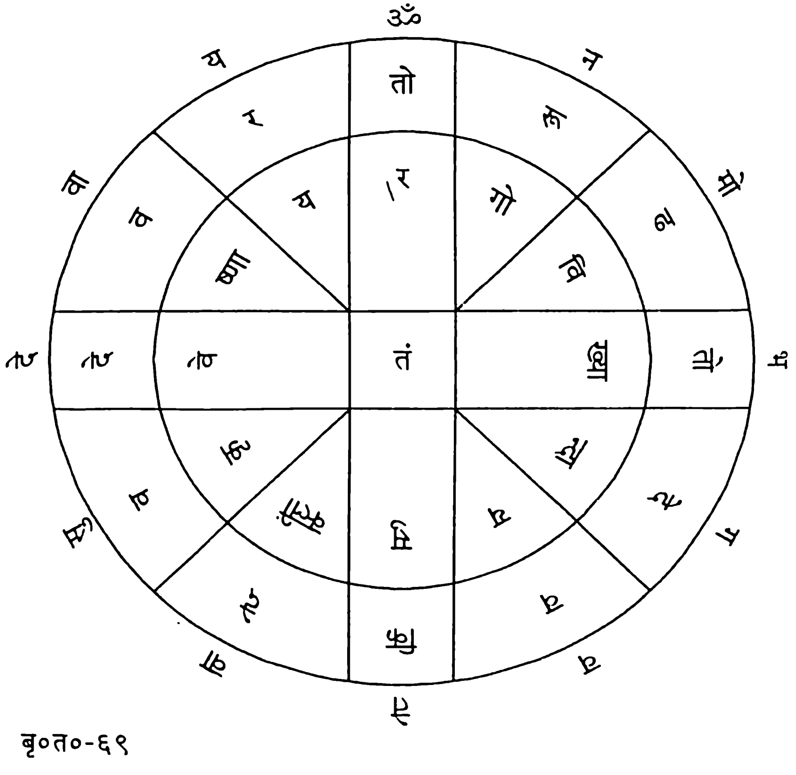

अनुष्टुप् मन्त्र है—

तंसुकीदेवदेवेतं तं वेदे वरतो रतम्।
तं रतो रूढ़तोऽख्यातं तं ख्यातो देवकीसुतम्।।

उत्तम आत्मसुख, ब्रह्मानन्द पाने की आशा से स्वयं देवदेव महादेव जिनके निकट बैठते हैं, जो सर्वत्र निर्लेप वासुदेव नाम से प्रसिद्ध हैं, जो पुण्यस्वरूप हैं, जो मनुष्यों को भवसागर पार कराने वाले हैं, जो गोपियों के वस्त्र, मक्खन एवं भक्तों के मन को चुराने के कारण चोर कहे जाते हैं; उन देवकीपुत्र कृष्ण को पहचानने में कोई समर्थ नहीं है। जिन पर लक्ष्मी की कृपा है, जो भक्त नाम से प्रख्यात हैं; वे ही उन्हें जानते हैं।

उक्त यन्त्र के कोणों में चार शूल अंकित करने से जो आठ विवर बनते हैं, उनमें क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय के आठ वर्णों को अंकित करे। यन्त्र के बाहर ॐ नमो भगवते वासुदेवाय द्वादशाक्षर मन्त्र के वर्णों को अंकित करे।

इस यन्त्र को भोजपत्रादि पर अंकित कर यथाविधि भुजा में धारण करने से सभी इच्छायें पूरी होती हैं।

इस यन्त्र को पलाश के तख्ते पर अंकित करके गोशाला में स्थापित करने से गोवृद्धि होती है।

शिवयन्त्रम्

तत्रादौ षट्कोणमण्डलं कृत्वा तदन्तः साध्यनामयुक्तं प्रासादबीजं विलिख्य षट्कोणेषु प्रणवसहितपञ्चाक्षरवर्णान् विलिख्य कोणविवरेषु षडङ्गमन्त्रांस्तद्बहिः पञ्चदलानि विरचय्य तद्दलेषु ॐ ईशानाय नमः ॐ तत्पुरुषाय नमः ॐ अघोराय नमः ॐ सद्योजाताय नमः ॐ वामदेवाय नमः—इति पञ्चमन्त्रान् प्रागादिक्रमेण लिखेत्। तद्बहिरष्टदलानि रचयित्वा दलेषु मातृकाष्टवर्णान् लिखेत्। तद्बहिर्वृत्तं त्र्यम्बकेन वेष्टयेत्। एतद्यन्त्रं जपहोमादिना सम्पूज्य धारयेत्, आयुरारोग्यैश्वर्यादिचतुर्वर्गादिसिद्धिर्भवति ।

इति शिवयन्त्रम्

●

शिवधारण यन्त्र—षट्कोण बनाकर उसके मध्य में प्रासादबीज हौं एवं साध्य नाम लिखे। तब छः कोणों में षडक्षर मन्त्र ॐ नमः शिवाय के एक-एक वर्ण को लिखे। षट्कोण के विवरों में नमः, स्वाहा, वषट्, हुं, वौषट्, फट्—यह षडंग मन्त्र लिखे।

इसके बाहर पञ्चदल पद्म बनाकर एक-एक दल में पूर्वादि क्रम से इन पाँच मन्त्रों को लिखे—१. ॐ ईशानाय नमः। २. ॐ तत्पुरुषाय नमः। ३. ॐ अघोराय नमः।

४. ॐ सद्योजाताय नमः। ५. ॐ वामदेवाय नमः। पञ्चदल पद्म के बारह अष्ट पद्म अंकित करे। प्रत्येक दल में आठ वर्गों के एक-एक वर्ग को लिखे। अन्त में त्र्यम्बक मन्त्र से सारे यन्त्र को वेष्टित करे—त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्। पूजा-जप-हवन के अन्त में इस शिवयन्त्र को धारण करने से आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और चतुर्वर्ग की वृद्धि होती है।

शिवधारण यन्त्र

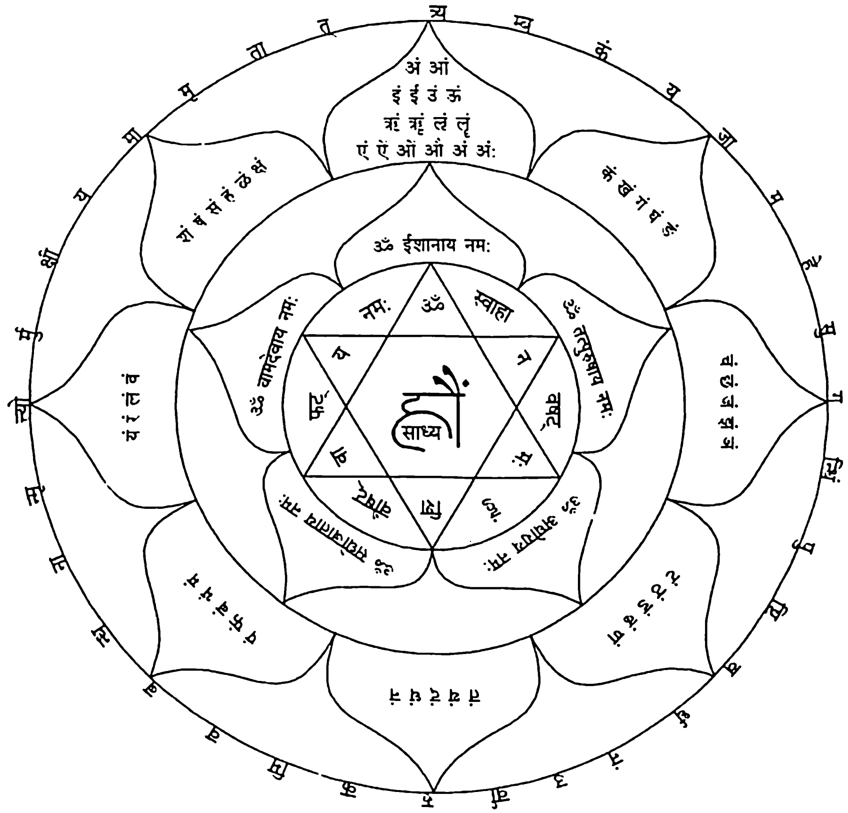
अं आं
इं ईं उं ऊं
ऋं ॠं लृं ॡं
एं ऐं ओं औं अं अः
कं खं गं घं ङं
चं छं जं झं ञं
टं ठं डं ढं णं
तं थं दं धं नं
पं फं बं भं मं
यं रं लं वं
शं षं सं हं ळं क्षं
ॐ ईशानाय नमः
ॐ तत्पुरुषाय नमः
ॐ अघोराय नमः
ॐ सद्योजाताय नमः
ॐ वामदेवाय नमः
ॐ
नमः
स्वाहा
वषट्
हुं
वौषट्
फट्
हौं
साध्य

मृत्युञ्जययन्त्रम्

मध्ये साध्याक्षराढ्यं ध्रुवमभिविलिखेन्मध्यमं दिग्दलेषु
कोणेष्वन्त्यं मनोस्तत्क्षितिभवनमथो दिक्षु चान्द्रं विदिक्षु।
टान्तं यन्त्रं तदुक्तं सकलभयहरं क्ष्वेडभूतापमृत्यु-
र्व्याधिव्यामोहदुःखप्रशमनमुदितं श्रीपदं कीर्तिदायि ॥

इति मृत्युञ्जययन्त्रम्

●

ृत्युञ्जयधारण यन्त्र—अष्टदल पद्म बनाकर उसकी कर्णिका-मध्य में ॐ लिखे। के गर्भ में साध्यनाम लिखे। अष्टदल के पूर्वादि दिशा के दलों में जूं लिखे। यादि कोणस्थ दलों में स: लिखे। तब भूपुर बनाकर उसकी चारो दिशाओं में सं लिखे चारो कोनों में ठं अंकित करे।

इस मृत्युञ्जय यन्त्र को धारण करने से सभी भय नष्ट होते हैं। विषभय, भूतोपद्रव, त्यु, व्याधि, व्यामोह आदि सभी दु:खों का निवारण होता है। वैभव और यश भी होता है।

मृत्युञ्जयधारण यन्त्र

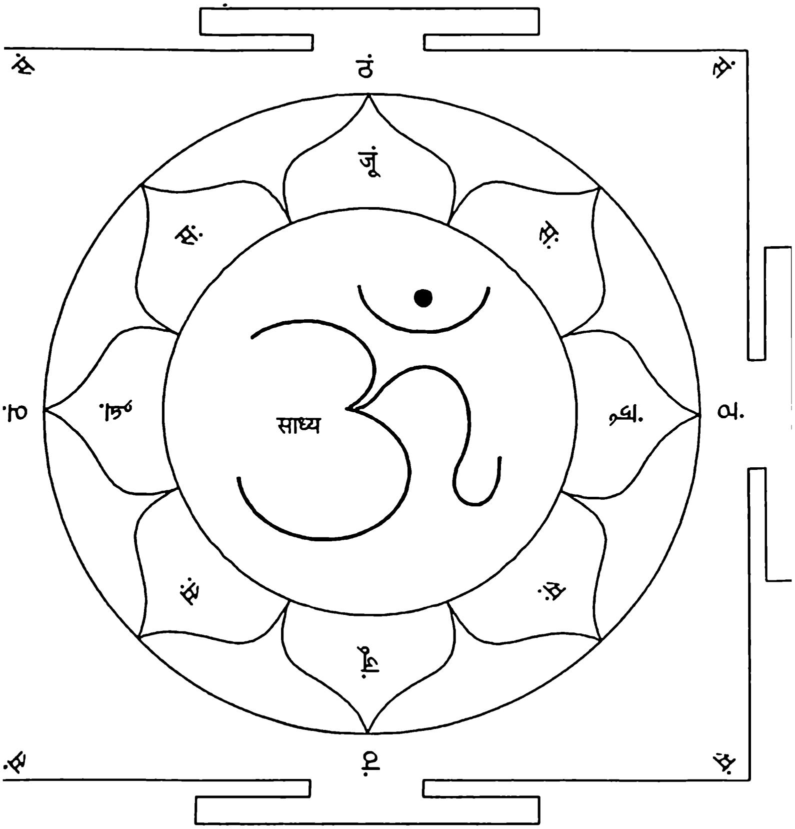

कालीयन्त्रम्

त्र यामले—

आद्यं बीजं ससाध्यं प्रथमवसुगृहे तद्बहिश्चाष्टकोणे
पूर्वाद्यञ्चाष्टबीजं तदनु वसुगृहद्वन्द्वके बीजषट्कम् ।

किञ्जल्कं तत्स्वराढ्यं वसुदलविवरे स्वाहया बीजषट्कं
कूर्चाभ्यामेव वीतं क्षितिगृहयुगयोरन्तरे यन्त्रराजम् ॥
देवीबीजत्रयं तत्प्रतिदिशमपरं शक्तिबीजद्वयं तत्
कोणे कोणे लिखेद्यस्त्रिजगति स गुरुः शङ्करस्यापि विष्णोः ॥

इति कालीयन्त्रम्

●

कालीधारण यन्त्र—रुद्रयामल में बताया गया है कि प्रथम त्रिकोण-मध्य में क्रीं लिखे। उसके गर्भ में साध्य नाम लिखे। उसके बाहर आठ कोणों में भी क्रीं लिखे। इसके बाहर अष्टदल बनाकर दलों के मूल भाग में दो-दो स्वरवर्ण लिखे। छः दलों के अग्रभाग में छः बीज और सातवें-आठवें दल में स्वाहा लिखे। तब यन्त्र को 'हूं' से दो आवृत्ति में वेष्टित कर उसके बाहर दो चतुरस्र बनाए। इन भूपुरों के कोनों में दो-दो ह्रीं अंकित करे।

कालीधारण यन्त्र

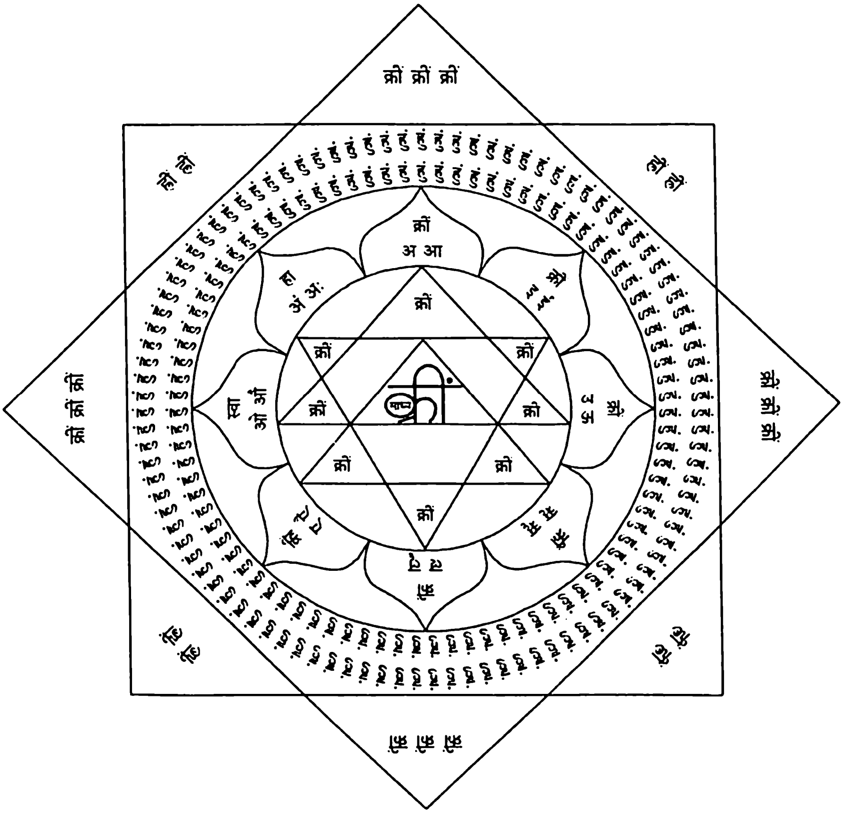

इस काली यन्त्र को धारण करने वाला तीनों लोकों में शिव और विष्णु के समान गौरव प्राप्त करता है।

शान्तिकादौ ताराधारणयन्त्रम्

तदुक्तं फेत्कारिणीये—

योनियुग्मे लिखेन्मन्त्रं मन्त्री हेमशलाकया ।
क्लीवहीनान् दीर्घवर्णान् षट्कोणे विलिखेत्ततः ।।
अष्टपत्रेष्वष्टवर्णान् तद्बहिर्भूपुरद्वयम् ।
अष्टवज्रं भूपुरे च विलिख्य साधकोत्तमः ।।
सुवर्णपट्टे भूर्जे वा रौप्ये वाप्यथ सुव्रते ।
विलिखेद्धमलेखन्या गन्धाष्टकसमन्वितम् ।
दूर्वाकाण्डेन वालिख्य कुशमूलेन वा पुनः ।।

एकवीराकल्पे—

वेष्टितं पीतवस्त्रेण जतुना परिवेष्टयेत् ।
बध्नीयात् पट्टसूत्रेण शिशूनां कण्ठभूषणम् ।।
स्त्रीणां वामभुजे चैवमन्येषां दक्षिणे भुजे ।
वन्ध्यापि लभते पुत्रं निर्धनो धनवान् भवेत् ।।
इयं लब्ध्वां परा रक्षा ज्ञानार्थं गौतमादिभिः ।
प्रीत्यर्थं पार्थिवैरन्यैः संग्रामे जयकांक्षिभिः ।।

अस्यार्थः—योनियुग्मे षट्कोणे। तन्मध्ये हेमशलाकादिना भूर्जपत्रादौ कुंकुम-गोरोचनारक्तचन्दनजटामांसीसमांशं विधाय पंक्तिक्रमेण मूलमन्त्रं लिखित्वा तस्य ह्ल्लेखारेफमध्ये अमुकस्य रक्षां कुरु कुरु अमुकीनां शुभं पुत्रमुत्पादय इति वा अस्य ज्ञानं कुरु कुरु इत्यादि वा साध्यसहितं विलिख्य षट्कोणे क्लीवहीनान् आ ई ऊ ऐ औ अः इति दीर्घवर्णानेकैकं लिखेत्। तदुक्तम्—

स्वराणां मध्यगं यच्च तच्चतुष्कं नपुंसकम् । इति।

अष्टपत्रेष्वष्टवर्णान् ऐं ह्रीं ॐ ऐं ह्रीं फट् स्वाहेति लिखेत्। तदुक्तम्—

वाग्भवं कुलदेवीञ्च तारकं वाग्भवं तथा ।
ह्ल्लेखा चास्त्रमन्त्रान्ते वह्निजायावधिर्मनुः ।
अष्टाक्षरो मनुः प्रोक्तो मन्त्राणां सार ईरितः ।।

इति तारायन्त्रम्

●

ताराधारण यन्त्र—इस यन्त्र का प्रयोग शान्ति आदि कर्म में होता है। फेत्कारिणी तन्त्र में कहा गया है कि सोने की कलम से स्वर्णपत्र, रजतपत्र या भोजपत्र पर कुंकुम, गोरोचन, लाल चन्दन, जटामांसी के बराबर भाग के घोल से यन्त्र अंकित करे। षट्कोण के मध्य में पंक्तिक्रम से मूलमन्त्र, ह्रीं और रेफ के मध्य में अमुकेन अमुकस्य रक्षां कुरु कुरु, अमुकीनां शुभं पुत्रमुत्पादय, अस्य ज्ञानं कुरु कुरु इत्यादि साध्य विषय लिखकर छः कोणों में आ ई ऐ औ अः दीर्घ स्वरों को अंकित करे। तब आठ दलों में ऐं ह्रीं ॐ ह्रीं फट् स्वाहा इन आठ वर्णों को लिखे। इसके बाहर भूपुर बनाकर उनके आठ कोणों में वज्र अंकित करे। स्वर्णलेखनी के अभाव में दूर्वाकाण्ड या कुशमूल से अष्टगन्ध द्वारा यन्त्र अंकित करे।

ताराधारण यन्त्र

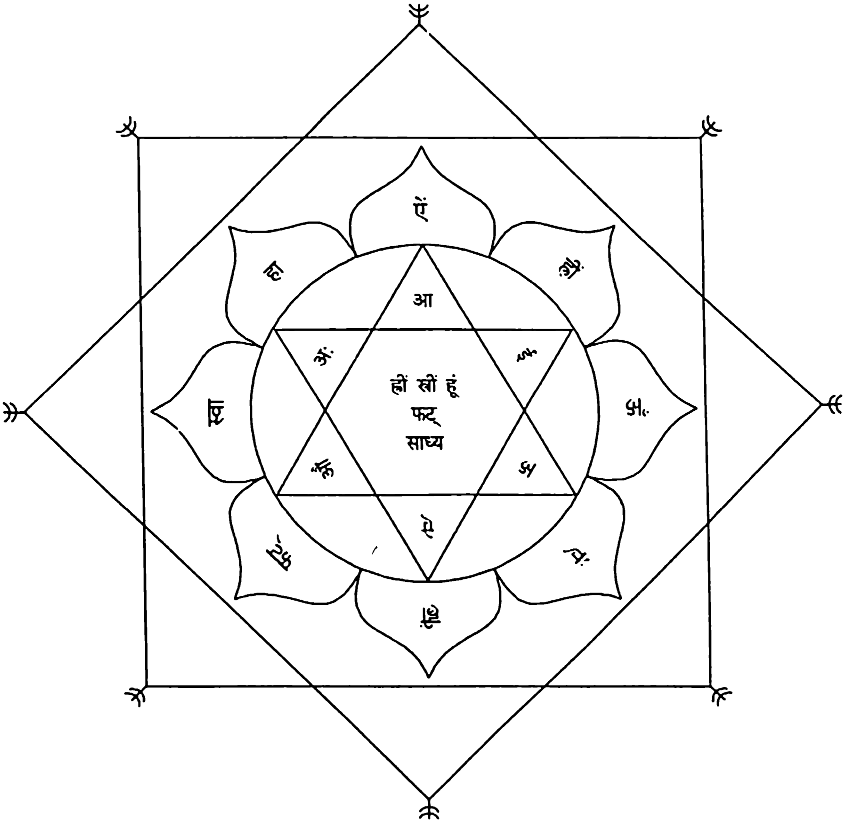

एकवीराकल्प में कहा गया है कि पीत वस्त्र और जतु द्वारा लपेटकर लाल सूत से बाँधकर बालकों के कण्ठ में, स्त्रियों के बाँयें हाथ में, पुरुषों के दाँयें हाथ में यन्त्र धारण

करना चाहिये। इस तारा यन्त्र के धारण करने से वन्ध्या पुत्रवती होती है एवं निर्धन धनी होता है।

गौतम आदि ऋषियों ने ज्ञानप्राप्ति हेतु इस रक्षायन्त्र को प्राप्त किया था। बाद में अन्यान्य राजाओं ने युद्ध में विजय की कामना से इसे धारण किया था।

फेत्कारिणी तन्त्र में योनियुग्म शब्द आया है, उसका अर्थ षट्कोण होता है। इसी प्रकार क्लीब वर्णों से आशय है। ऋ ॠ ऌ ॡ चार वर्णों से मूल मन्त्र निम्न प्रकार का है—ऐं ह्लीं ॐ ऐं ह्लीं फट् स्वाहा।

यन्त्रलेखनद्रव्यम्

काश्मीर-रोचना-लाक्षा-मृगेभमद-चन्दनैः ।
विलिखेद्धेमलेखन्या यन्त्राणि तानि देशिकः ।।
भूमिस्पृष्टं शवस्पृष्टं दग्धं निर्माल्यसङ्गतम् ।
विदीर्णं लङ्घितं मन्त्री यन्त्रं नैव च धारयेत् ।।
सौवर्णे राजते पात्रे भूर्जे वा सम्यगालिखेत् ।
अथवा ताम्रपट्टेन गुटिकीकृत्य धारयेत् ।।
यावज्जीवन्तु सौवर्णे रौप्ये विंशतिवार्षिकम् ।
भूर्जे द्वादशवर्षाणि तदर्द्धं ताम्रपट्टके ।।

इति यन्त्रलेखनद्रव्यम्

●

यन्त्रलेखन द्रव्य—कुंकुम, गोरोचन, लाक्षा, कस्तूरी, गजमद, चन्दन के समभाग के घोल से सोने की कलम से यन्त्र को अंकित करना चाहिये। भूमि-स्पर्शित, निर्माल्य से स्पर्शित, टूटा हुआ और लाँघा हुआ यन्त्र धारण करने योग्य नहीं होता। स्वर्णपत्र, रजतपत्र या भोजपत्र पर यन्त्र को अंकित कर पुनः उसे ताम्बे के ताबीज में भरकर धारण करना चाहिये।

स्वर्ण पर अंकित यन्त्र जीवन भर, चाँदी पर अंकित यन्त्र बीस वर्षों तक, भोजपत्र पर लिखित यन्त्र बारह वर्षों तक और ताम्रपत्र पर अंकित यन्त्र छः वर्षों तक धारण करने के योग्य रहता है।

प्रयोगानन्तरं शान्त्युदकस्नानम्

तद्यथा—

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणो विभुः ।।

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते ।
आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा ॥
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः ।
ब्रह्मणा सहिता ह्येते दिक्पालाः पान्तु ते सदा ॥
कीर्त्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्षमा मतिः ।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिर्माया निद्रा च भावना ।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु देवपत्न्याः समागताः ॥
आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ॥
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।
ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च ॥
देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसोऽङ्गनाः ।
अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च ॥
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये ।
सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मकामार्थसिद्धये ॥

इति वसिष्ठसंहितोक्ताभिषेकमन्त्राः

●

प्रयोग के बाद अभिषेक—वशिष्ठसंहिता में अभिषेक के समय पठनीय मन्त्र निम्न प्रकार के लिखित हैं—ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता तुम्हारा अभिषेक करें। वासुदेव, जगन्नाथ, संकर्षण, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तुम्हें विजय प्रदान करें। इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, पवन, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा, अनन्त, दिक्पाल तुम्हारी रक्षा करें।

कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्षमा, मति, बुद्धि, लज्जा, वायु, शान्ति, माया, निद्रा, भावना आदि देवपत्नियाँ आकर तुम्हारा अभिषेक करें।

आदित्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु, नवग्रह सन्तुष्ट होकर तुम्हारा अभिषेक करें।

देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग, ऋषि, मुनि, गाएँ, देवमातायें, देवपत्नियाँ, वृक्ष, नाग, दैत्य, अप्सरायें, अस्त्र, शस्त्र, राजा, वाहन, औषधियाँ, रत्न, कला-काष्ठ आदि, काल, अंश, नदियाँ, सागर, पर्वत, तीर्थ, मेघ और नद—ये सभी धर्म-अर्थ-काम की सिद्धि के लिये तुम्हारा अभिषेक करें।

संक्षेपतो नित्यपूजाविधि:

तदुक्तं यामले—

आदावृष्यादिविन्यास: करशुद्धिस्तत: परम् ।
अंगुलिव्यापकन्यासौ हृदादिन्यास एव च ।।
तालत्रयञ्च दिग्बन्ध: प्राणायामस्तत: परम् ।
ध्यानं पूजा जपश्चेति सर्वतन्त्रेष्वयं क्रम: ।।

पूजा च मूलदेवताया एव। मातृकान्यासोऽप्यावश्यकस्तथा च—

जपार्थं सर्वमन्त्राणां विन्यासञ्च लिपेर्विना ।
कृतं तन्निष्फलं विद्यात्तस्मादादौ लिपिं न्यसेत् ।।

सभी देवता की संक्षिप्त पूजाविधि—यामल में कहा गया है कि पहले ऋष्यादि न्यास, करशुद्धि, अंगुलिन्यास, व्यापकन्यास, हृदयादि न्यास, तालत्रय, चुटकी बजाकर दिग्बन्धन, दिव्य-अन्तरिक्ष एवं भौम विघ्नों का निवारण, गुर्वादि प्रणाम, प्राणायाम, ध्यान करके तब पूजा-जप आदि करे।

यहाँ पूजा से तात्पर्य प्रधान देवता की पूजा है। मातृकान्यास अवश्य करना चाहिये। सभी मन्त्रों के जप में मातृकान्यास आवश्यक है।

मातृकान्यास के विना जो कुछ भी किया जाता है, वह सब निष्फल होता है। अत: सर्वप्रथम मातृकान्यास अवश्य करना चाहिये।

श्रीविद्याया: संक्षेप-पूजाविधि:

तदुक्तं स्वतन्त्रतन्त्रे—

पूजाविशेषान् देवेशि शृणु नित्यक्रमोदितान् ।
अशक्तानान्तु विस्तारे तथा चापत्सु शस्यते ।
अन्यथानर्थकारि स्यात् संकोचार्चनमीश्वरि ।।
हेतिभिर्मध्यमाद्यं स्यात् द्वितीयं नवयोनिषु ।
चतुर्दशारावध्यन्यच्चतुर्थं प्रोक्तरूपत: ।
पञ्चमं सर्वदु:खार्तिनाशनं वाञ्छितप्रदम् ।।

अस्यार्थ:—अशक्तानां हेतिभिर्मध्यमाद्यं स्यात्। हेतिचतुष्टयसहितदेवताचतुष्टयार्चनम्। पाशांकुशधनुर्बाणा हेतय:।

देवतास्तु—कामेश्वरी-वज्रेश्वरी-भगमालिनी-श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी-देवताचतुष्टयार्चनरूपमेतदाद्यार्चनमित्यर्थ:। द्वितीयमाह—नवयोनिष्विति। वशिन्यादिमध्यमान्तमिति। तृतीयार्चनमाह—चतुर्दशारचक्रस्थितसर्वसंक्षोभिण्यादिमध्यमान्ता सपर्या

तृतीया। चतुर्थं प्रोक्तरूपत इति। तत्र प्रोक्तरूपेणेत्यर्थः। षोडशदलादिमध्यमान्तमिति यावत्। पञ्चमं भूगृहादिमध्यमान्तमिति यावत्।

इति पञ्चप्रकारार्चा प्रोक्ता सर्वार्थसिद्धिदा ।

तत्रादौ भूतशुद्धिप्राणायामपुरःसरं करशुद्ध्यासनचतुष्टयाङ्गवशिन्यादिन्यासचतुष्टयं विधाय बालया अर्घ्यद्वयं संशोध्य षडासनविद्यया पीठपूजां विधाय विन्दौ हृल्लेखया परचितिमावाह्य यथाशक्त्युपचारैरभ्यर्च्य पूर्ववत्सर्वभूतबलिं दत्त्वा जपस्तोत्रैः सन्तोषयेदिति। तदुक्तं नवरत्नेश्वरे—

न्यासत्रयं समासाद्य चक्रपूजासनेन वै ।
बालयार्घ्यं समासाद्य हृल्लेखामनुना शिवे ।
चक्रमध्ये समावाह्य संक्षेपार्चनमर्चयेत् ।। इति।

श्रीविद्या संक्षिप्त पूजाविधि—स्वतन्त्रतन्त्र में शिवजी ने कहा है कि हे देवेशि! जो विस्तृत पूजा करने में असमर्थ हों, विपत्ति में हों, उन्हें संक्षिप्त पूजा करनी चाहिये। जो समर्थ हों, जिन्हें कोई असुविधा न हो, उन्हें संक्षिप्त पूजा नहीं करनी चाहिये; अन्यथा उनका अनिष्ट होता है।

पाशांकुशधनुर्वाण अस्त्रचतुष्टय के साथ कामेश्वरी, वज्रेश्वरी, भगमालिनी, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी की पूजा मध्य में करे। यही आद्य अर्चन है। नौ योनियों में वशिनी आदि की पूजा करे। यह द्वितीय अर्चन है।

चतुर्दशार चक्र में सर्वसंक्षोभिणी आदि की पूजा करे। यह तृतीय अर्चन है। चतुर्थ अर्चन में षोडश दल पूजन होता है। पञ्चम अर्चन भूपुर में करे।

उक्त पञ्चविध अर्चन से सिद्धि-लाभ होता है। सभी दुःख दूर होकर अभीष्ट फल मिलता है; परन्तु इस अर्चन से पूर्व भूतशुद्धि, प्राणायाम और करशोधन करे। आसनचतुष्टयांगस्वरूप वशिन्यादि न्यासचतुष्टय करे।

बाला बीज से अर्घ्यद्वय का संशोधन करे। षडासन मन्त्र से पीठपूजा करे। तब बिन्दु में हृल्लेखा ह्रीं से चिन्मयी ललिता का आवाहन करे। तब यथाशक्ति उपचारों से पूजा कर पूर्ववत् बलि देकर जप एवं स्तोत्रपाठ से देवी को सन्तुष्ट करे।

इस विषय में नवरत्नेश्वर में कथन है कि चक्रपूजा के विधान के अनुसार तीन न्यास करके बालामन्त्र से अर्घ्यसंस्कार करे। मायाबीज से चक्र के मध्य में देवी का आवाहन कर संक्षेप में उनकी पूजा करे।

अथवा तदुक्तं विशुद्धेश्वरतन्त्रे—

पूजासङ्कोचकञ्चैव कथयामि सुरेश्वरि ।

यत्पूजाबोधमात्रेण जीवन्मुक्तः प्रजायते ॥
प्रथमाग्रे तु त्रिपुरा द्वितीया त्रिपुरेश्वरी ।
तृतीया चक्रराजे तु त्रिपुरादिसमन्विता ॥
देवीपूजाक्रमेणैव सुन्दरी वासिनीति च ।
पञ्चमे त्रिपुराश्रीश्च षष्ठे त्रिपुरमालिनी ॥
सप्तमे त्रिपुरा सिद्धा चाष्टमे त्रिपुरात्मिका ।
मध्ये शक्तौ महेशानि महात्रिपुरसुन्दरी ॥

यथा वाराहीतन्त्रे—षडङ्गं विन्यस्य देवीमावाह्य विन्दुचक्रे अणिमां द्वितीये कामकलां तृतीये ब्राह्मीं चतुर्थे सुन्दरीं पञ्चमे आकर्षिणीं षष्ठे कामेश्वरीं वसुदले भेरुण्डां षोडशदले कुलेश्वरीं सम्पूज्य देव्यै पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा मन्त्रं जपेदिति।

इति श्रीविद्यायाः संक्षेपार्चा

●

विशुद्धेश्वरतन्त्र के अनुसार आगे त्रिपुरा प्रथमा, त्रिपुरेश्वरी द्वितीया, चक्रराज में त्रिपुरसुन्दरी तृतीया, त्रिपुरवासिनी चतुर्थी, त्रिपुराश्री पञ्चमी, त्रिपुरमालिनी षष्ठी, त्रिपुरात्मिका सप्तमी, त्रिपुराम्बिका अष्टमी और महात्रिपुरसुन्दरी नवमी की पूजा करनी चाहिये। इस संक्षिप्त पूजा को जानने वाला जीवनमुक्त हो जाता है।

वाराही तन्त्र के अनुसार षडंग न्यास करके देवी का आवाहन करे। बिन्दुचक्र में अणिमा, द्वितीय में कामकला, तृतीय में ब्राह्मी, चतुर्थ में सुन्दरी, पञ्चम में आकर्षिणी, षष्ठ में कामेश्वरी, अष्टम में भेरुण्डा और षोड़श दल में कुलेश्वरी की पूजा करके मूल देवता को तीन पुष्पाञ्जलि देकर मूल मन्त्र का जप करे।

नैमित्तिकविधि:

तत्र गौतमीये; नारद उवाच—

कर्मान्तरमथो वक्ष्ये श्रृणुष्वावहितो मुने ।
यत्कृत्वा मन्दभाग्योऽपि लभेन्मन्त्रफलानि वै ॥
प्रणवद्वयमध्यस्थं जपेदयुतसंख्यया ।
त्रिरात्रजपमात्रेण वृहस्पतिसमो भवेत् ।
व्याख्याता सर्वशास्त्राणां वेदानामपि जायते ॥
रविवारेऽश्वत्थमूले जपेदष्टोत्तरं शतम् ।
भूयो भूयो भवेच्छान्तिर्जीवेदष्टोत्तरं शतम् ॥
तस्य शान्तिर्भवेन्नूनं यमुद्दिश्य कृता क्रिया ।

अंकुशैरर्चयेत्कृष्णं मासमात्रन्तु निर्मलैः ।
मुच्यते मलिनैः कृच्छ्रैः पापैर्घोरतरैरपि ॥
पट्टवस्त्रैर्यजेद्भक्त्या सम्पत्तिमतुलां लभेत् ।
विद्रुमैः पूजयेत्कृष्णं त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥
माणिक्यैः पूजयेद्भक्त्या सार्वभौमसमो भवेत् ।
पद्मरागैर्यजेत् कृष्णं राजा भवति निश्चितम् ॥
क्षत्रियः सार्वभौमः स्यात्साधयेत् सकलां महीम् ।
गारुत्मतमये रत्नैः पूजयन् ज्ञानवान् भवेत् ॥
अपि हीरकरत्नेन पूजयन् किं न लभ्यते ।
सुवर्णपुष्पैरभ्यर्च्य मासं भक्तिपरायणः ॥
कुवेरसमसम्पत्तिं सम्प्राप्य मोदतेऽचिरात् ।
देहान्ते हरिं तां प्राप्य निर्वाणपदमृच्छति ॥

नैमित्तिक विधि—गौतमीय तन्त्र में नारद कहते हैं कि कृष्णमन्त्र क्रीं को ॐ से पुटित कर प्रतिदिन दश हजार जप तीन रातों तक करे तो अभागा भी बृहस्पति के समान शास्त्रों की व्याख्या करने में समर्थ और वेदार्थ-विज्ञान में विशारद हो जाता है। रविवार को अश्वत्थमूल में बैठकर एक सौ आठ मन्त्रजप करने से सभी विपत्तियों की शान्ति होती है और साधक एक सौ आठ वर्षों तक जीवित रहता है। जिसके कल्याण के लिये इस अनुष्ठान को किया जाता है, उसके भी सभी दोषों की शान्ति हो जाती है।

जो एक महीने तक प्रतिदिन निर्मल वस्त्र से कृष्ण की पूजा करता है, उसके सारे पाप एवं कष्ट दूर हो जाते हैं। जो भक्तिपूर्वक रेशमी वस्त्र से कृष्ण की पूजा करता है, उसे अतुल सम्पत्ति मिलती है। मूंगों से कृष्ण की पूजा करने से तीनों लोक वशीभूत होते हैं। भक्तिपूर्वक माणिक्य से कृष्ण की पूजा करने से सार्वभौम शासक होता है। पद्मराग से कृष्णपूजन करने पर शासक होता है, यह सत्य है। कोई भी क्षत्रिय इस प्रकार की पूजा करके सार्वभौमत्व पाकर सारी पृथ्वी पर शासन करता है। गारुत्मत् मणि से पूजा करने से साधक ज्ञानी होता है। हीरा से पूजा करने पर सभी कार्य सिद्ध होते हैं। भक्तिपूर्वक एक महीने तक स्वर्णपुष्प से पूजा करने से कुबेर के समान धनी होता है और चिरकाल तक सुख भोग कर मोक्ष प्राप्त करता है।

रविवारे सरसिजैः कह्लारैः सोमवारके ।
मङ्गले रक्तपद्मैश्च बुधे तगरसम्भवैः ॥
चम्पकैर्गुरुवारे च शुक्रे कुमुदसम्भवैः ।
शनिवारे शमीपुष्पैः पूजयेद्भक्तितो यतिः ॥

रविवारे घृताक्तन्तु पयोभक्तं निवेदयेत् ।
सोमवारे पिष्टकादि सितया सह योजयेत् ।
मङ्गले गुडसम्मिश्रमन्नं बहुगुणान्वितम् ।
बुधवारे यावकैस्तु गुरौ सूपसमुद्भवैः ॥
शुद्धान्नं शुक्रवारे तु शनौ सघृतपायसम् ।
वैशाखे मासि विधिवत्तर्पयेद्धिमवज्जलैः ॥
ज्येष्ठे मासि प्रयत्नेन फलैः सम्पूजयेद्धरिम् ।
आषाढे मासि विधिवत्पवित्रैः पूजयेद्धरिम् ॥
एकैकं स्वर्णसूत्राणि ग्रन्थियुक्तानि कारयेत् ।
अथवा पट्टसूत्राणि पद्मसूत्राणि वा पुनः ॥
पूजान्ते देवराजाय महिषीभ्यो निवेदयेत् ।
मिथुनेभ्यस्तदा दत्त्वा महान्तमुत्सवं चरेत् ॥
तोषयेद् भक्ष्यभोज्यैश्च ब्राह्मणान् संशितव्रतान् ।
एवं संवत्सरं मन्त्री कृत्वाभीष्टमवाप्नुयात् ॥
न चेद्वर्षकृता पूजा वास्तोर्भक्ष्याय कल्पते ।
श्रावणे मासि कृष्णं तु पूजयेत् केतकोद्भवैः ॥
चन्द्रचन्दनकस्तूरीकुंकुमादिसुवासितैः ।
एलालवङ्गकक्कोलफलानि बहुधार्पयेत् ॥
भाद्रे मासि यजेद्विष्णुं भक्ष्यैर्बहुगुणान्वितैः ।
ईषे मासि यजेद्भक्त्या भक्ष्यैर्भोज्यैः सुविस्तरैः ॥
कार्पासनिर्मितैर्वस्त्रैर्नानाभरणभूषितैः ।
तुलास्थे भास्करे कृष्णं पूजयेन्मासमात्रकम् ॥
रात्रौ प्रदीपैर्होमैश्च दुग्धपिष्टादिसंयुतैः ।
घृतदीपमविच्छिन्नं दद्यान्मासं महोज्ज्वलम् ॥

रविवार को कमल से, सोमवार को कल्हार से, मंगलवार को लाल कमल से, बुधवार को तगर से, बृहस्पतिवार को चम्पापुष्प से, शुक्रवार को कुन्दपुष्प से एवं शनिवार को शमीपत्र-पुष्प से कृष्ण की पूजा करे।

रविवार को घृतयुक्त पायसान्न से, सोमवार को लड्डू और शक्कर से, मंगलवार को गुड़मिश्रित अन्न से, बुध को यावक से, बृहस्पतिवार को सूप से, शुक्रवार को शुद्धान्न से, शनिवार को घृतयुक्त पायस से श्रीकृष्ण की पूजा करे।

वैशाख में विधिपूर्वक जल से हरि का तर्पण, ज्येष्ठ में फल से हरि की पूजा, आषाढ़

में द्रव्य से हरि की पूजा करे। एक स्वर्णसूत्रग्रन्थियुक्त पवित्र बनाए, रेशमी वस्त्र या पद्मसूत्र से पवित्र बनाकर पूजा के अन्त में देवश्रेष्ठ और उनकी महिषी को निवेदित करे। इस काल में सम्पत्तियों को दान देकर महोत्सव करना चाहिये।

इसी समय व्रत-परायण ब्राह्मणों को भी विविध भक्ष्य से भोजन कराए। एक वर्ष तक यह पूजा करने से अभीष्ट फल प्राप्त होता है। जो ऐसी पूजा नहीं करता, उसकी वार्षिक पूजावस्तु को देवता खा जाते हैं।

श्रावण में केतकीपुष्प से कृष्ण की पूजा करे। इस पूजा के समय कपूर, चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम आदि गन्धद्रव्य एवं इलायची, लौंग, कंकोल और फल प्रदान करे।

भादो के महीने में उत्तम भक्ष्यों से एवं आश्विन में विविध भक्ष्य-भोज्य, कपास से बने वस्त्र और विविध अलंकारों से तथा कार्तिक में दूध और पीठा से पूजा करके रात में दीपदान करे। पूरे कार्तिक महीने भर अखण्ड घी का दीपक जलाए।

एकादश्यामुपवसेद् द्वादश्यां पारणादिने ।
शुक्लायां विष्णुमभ्यर्च्य वस्त्रालङ्करणादिभिः ॥
अस्यां तिथौ तु मतिमान् वार्षिकोत्सवमाचरेत् ।
भोज्यानि बहुभक्ष्याणि ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥
एवं कृते देवतास्य तुष्ट्या चेष्टं प्रयच्छति ।
सन्तं लोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥
मार्गशीर्षे यजेद्देवं नवान्नैर्व्यञ्जनैः शुभैः ।
नारिकेलफलक्षोदं मिश्रितं गुडजीरकैः ।
सुपक्वं देवराजाय भक्त्या तस्मै निवेदयेत् ॥
पौषे मासि च मासं वै धृतैः पुष्पैः प्रपूजयेत् ।
ग्रहदोषं विजित्वाशु भूयान्नृपतिसन्निभः ॥
माघे मासि यजेत्कृष्णमक्षतैः सगुडैः सितैः ।
दुग्धान्नं शर्करायुक्तं मिष्टान्नञ्च निवेदयेत् ।
अस्मिन् मासि शुभदिने वस्त्रेणाच्छादयेद्विभुम् ॥
फाल्गुने देवकीपुत्रं पूजयेत्स्वर्णपङ्कजैः ।
सुगन्धिकुसुमैर्धूपैर्दीपैस्तत्र सुविस्तरैः ॥

एकादशी को उपवास कर द्वादशी में पारणा करे। वस्त्राभूषण से विष्णुपूजन कर वार्षिक उत्सव मनाए।

इस दिन ब्राह्मणों को विविध भक्ष्य द्रव्य प्रदान करे। इससे देवता सन्तुष्ट होकर अभिलाषा पूर्ण करते हैं।

ऐसी पूजा करने वाला मनुष्य उस दिव्य-लोक में जाता है, जहाँ से फिर लौटना नहीं होता है।

अगहन माह में नवान्न और उत्तम व्यंजन से कृष्ण की पूजा करे। नारियल-चूर्ण में गुड़ और जीरा मिलाकर पकावे। उसे भगवान् को भक्तिपूर्वक अर्पण करे।

पौष मास में प्रतिदिन घी और पीठा से पूजा करने पर सभी ग्रहदोषों का निवारण होता है एवं वैभव और ऐश्वर्य मिलता है।

माघ में गुड़मिश्रित श्वेत अक्षत से पूजा करे। इस काल में शक्करयुक्त दूध में पका अन्न और मिष्टान्न देना चाहिये। इसी महीने के किसी शुभ दिन में प्रभु को वस्त्र से आच्छादित करे।

फाल्गुन में स्वर्णकमल, बहुत सुगन्धित फूल और धूप-दीप आदि से देवकीनन्दन की पूजा करे।

चैत्रे मासि वासुदेवं सर्वपुष्पैः समर्चयेत् ।
पौर्णमास्यां यजेद्भक्त्या दमनैश्च सगुच्छकैः ।।
अस्मिन् दिने रतिं कामं पूजयेद्भक्तितत्परः ।
न चेत् सांवत्सरी पूजा विफला तस्य जायते ।।
भस्मीभूतं स्मरं दृष्ट्वा रुदिता सा रतिः सती ।
तां दृष्ट्वा कृपयाविष्टो वरं दातुं शिवः स्वयम् ।।
प्रत्युवाच रतिं तेऽयं सुभगत्वमवाप्नुयात् ।
सुन्दरः सर्वलोकेषु क्रीडार्थं व्रजसुन्दरि ।।
ततोऽभूत्क्रन्दनजलात्पुष्पं दमनकं शुभम् ।
तेन पूजनमात्रेण संवत्सरफलं लभेत् ।।
होमयेल्लक्षमात्रं यः पिष्टकैर्घृतभर्जितैः ।
तावत्संख्यं मनुं जप्त्वा कृष्णं पश्यति मन्त्रवित् ।।
इति ते कथितं सम्यक्पूजनं वार्षिकोद्भवम् ।
कृत्वानेन विधानेन किं न सिध्यति भूतले ।।

चैत्र माह में सभी प्रकार के फूलों से वासुदेव की पूजा करे। इसी महीने में पूर्णिमा के दिन अशोकपुष्प के गुच्छ से भक्तिपूर्वक पूजा कर भक्तिसहित रति और कामदेव की पूजा करे। इस दिन उनकी पूजा न करने से साल भर की पूजा निष्फल हो जाती है।

इसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि जब भगवान् शंकर के कोप से कामदेव भस्म हो गये तब पतिव्रता रति विलाप करने लगी। दया करके शिव ने उन्हें वरदान दिया कि हे

सुन्दरि! तुम्हारा यही पति सभी लोकों में सुन्दर रूप धारण कर तुम्हारे साथ क्रीड़ा करेगा। तुम इस समय यहाँ से जाओ। रति की आँखों से उस समय जो आँसू गिरे थे, उन्हीं से दमनक नामक फूल उत्पन्न हुए।

इन पुष्पों से पूजा करने से वर्ष भर की पूजाओं का फल मिलता है। एक लाख कृष्णमन्त्र का जप कर पकौड़ों से एक लाख हवन करने से कृष्ण के दर्शन मिलते हैं।

वार्षिक पूजा का जो विवरण यहाँ बताया गया है, उसके अनुसार पूजा करने से सभी कामनायें सिद्ध होती हैं।

श्रीविद्यापूजनम्

ज्ञानार्णवे—

अथ वक्ष्ये महेशानि श्रीविद्यापूजनं महत् ।
ब्रह्महत्यादिदोषाणां प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ।।
ब्रह्मपत्रैर्महेशानि पूजयेत्क्रममुत्तमम् ।
समस्तरश्मिसहितं नित्याम्नायपुरस्कृतम् ।।
कुलाचारक्रमाद्देवि कर्पूरक्षोदमण्डितम् ।
मासमात्रेण देवेशि महापातककोटयः ।
जन्मान्तरकृता सर्वा नाशयेन्नात्र संशयः ।।
लक्ष्मीस्तस्य गृहे वश्या सुस्थिरा सुरवन्दिते ।
जवापुष्पैर्महेशानि पूजयेत्पूर्ववच्छिवाम् ।।
मासमात्रं क्रमेणैव तेनैव परमेश्वरीम् ।
ब्रह्महत्यादिपापानि पूर्वजन्मकृतानि च ।
नाशयेन्नात्र सन्देहो धनवान् जायते बुधः ।।

श्रीविद्यापूजा प्रयोग—ज्ञानार्णव में भगवान् शिव कहते हैं कि हे महेश्वरि! श्रीविद्या की पूजा से ब्रह्महत्या-जैसे घोर पापों का निवारण हो जाता है। चारो वेदों में इस पूजा की प्रशंसा की गयी है। सभी आवरणदेवताओं के साथ पलाशपत्रों से श्रीविद्या-पूजन करना चाहिये। यही इस पूजा का उत्तम क्रम है।

हे देवि! कुलाचार की विधि से कर्पूरचूर्ण से युक्त उपचारों से एक महीने तक इस श्रीविद्या-पूजन को करे तो जन्म-जन्मान्तर के सञ्चित करोड़ों पाप भी सर्वथा निर्मूल हो जाते हैं; इसमें सन्देह नहीं है।

हे सुरवन्दिते! इस प्रकार से देवी की पूजा करने से लक्ष्मी प्रसन्न होती हैं और पूजक के घर में स्थिर होकर निवास करती हैं।

हे महेश्वरि! पूर्वोक्त विधि से एक महीने तक अड़हुल के फूल से परमेश्वरी की पूजा करने से पूर्वजन्म के ब्रह्महत्यादि पाप नष्ट होते हैं और अर्चक धनी होता है; इसमें सन्देह नहीं है।

केतक्यास्तरुणैः पुष्पैः पूर्ववत्पूजयेत्प्रिये ।
उपपातकसङ्घांश्च मासमात्रेण नाशयेत् ।
सौभाग्यमतुलं तस्य जायते नात्र संशयः ॥
शतपत्रैर्मनोरम्यैः पूजयेन्मासमात्रकम् ।
पूर्ववत्परमेशानि सर्वं पापं प्रणाशयेत् ॥
चम्पकैः सुमनोरम्यैः पूर्ववत्पूजयेच्छिवाम् ।
मासमात्रेण हन्त्येव पापौघं शतजन्मजम् ।
सौभाग्यवान्भवेन्मन्त्री त्रिपुरायाः प्रसादतः ॥
श्वेतपद्मैर्महादेवि महद्भिः पूजयेत्पराम् ।
पूर्वजं नाशयेत्पापं विंशजन्मकृतं प्रिये ।
मासमात्रेण सकलं मोक्षस्तस्य करे स्थितः ॥

हे प्रिये! जो एक महीने तक विकसित केवड़ा के फूलों से श्रीविद्या का पूजन करता है, उसके सभी उपपातक नष्ट हो जाते हैं। उसका सौभाग्य अनुपम हो जाता है।

हे परमेश्वरि! इसी प्रकार सुन्दर कमल से एक महीने तक पूजा करने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। सुन्दर चम्पा के पुष्पों से एक मास तक पूजन करने से सौ जन्मों के पाप नष्ट होते हैं एवं देवी त्रिपुरा की कृपा से सौभाग्यवृद्धि होती है।

हे प्रियतमे महेशि! जो उत्तम श्वेत पद्मों से एक मास तक परा देवी का पूजन करता है, उसके बीस जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं और मोक्ष प्राप्त होता है।

बन्धूककुसुमैर्देवि मासमात्रं प्रपूजयेत् ।
त्रैलोक्यं वशगं तस्य पूर्वपापं दहेन्नरः ॥
बिल्वपत्रैश्च लाजैश्च सदैव परिपूजयेत् ।
पूर्ववत्परमेशानि मासमात्रं प्रसन्नधीः ।
समृद्धिमान् भवेत् सोऽपि सर्वपापहरः सदा ॥
मल्लिकामालतीपुष्पैः कुन्दैश्च शतपत्रकैः ।
श्वेतोत्पलसमुत्थैश्च पूजयेन्मासमात्रकम् ॥
कुलाचारक्रमेणैव पातकः शतजन्मजम् ।
ब्रह्महत्यादिजनितं नाशयेन्नात्र संशयः ।
मुक्तिस्तस्य करे देवि वाचा जीवसमो भवेत् ॥

हे देवि! जो एक मास तक बन्धूकपुष्पों से इन देवी का पूजन करता है, उसके पूर्व जन्मों के पाप भस्म हो जाते हैं एवं तीनों लोक उसके वश में होते हैं।

हे देवि! जो पूर्वोक्त नियमानुसार निर्मल हृदय से वेलपत्र और धान के लावा से त्रिपुरा देवी की सदा पूजा करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर सदैव समृद्धिशाली रहता है।

जो कुलाचारक्रम से केवल एक मास तक मल्लिका, मालती, जाती, कुन्द, कमल, श्वेत उत्पलबीजों से त्रिपुरा की पूजा करता है, उसके सौ जन्मों के ब्रह्महत्या के पाप नष्ट हो जाते हैं; इसमें सन्देह नहीं है। हे देवि! वह बृहस्पति के समान वक्ता होता है और मोक्ष प्राप्त करता है।

अगस्त्यबाणबन्धूकजवारक्तोत्पलैः प्रिये ।
पूर्वक्रमेण सम्पूज्य मासमेकं प्रसन्नधीः ।
पातकं नाशयेन्मन्त्री साक्षात्कामसमो भवेत् ॥
चम्पकैः पाटलैर्देवि बकुलैर्नागकेशरैः ।
कह्लारैः सिन्धुवारैश्च पूजयेत्पूर्ववत्क्रमात् ॥
सौभाग्यमतुलं तस्य मासमात्रेण जायते ।
पापं विनाशयेद्देवि यदि जन्मसहस्रजम् ॥

हे प्रिये! जो वक, वाण, बन्धूक, जवा और रक्तोत्पलपुष्पों से एक मास तक प्रसन्न मन से देवी की पूजा करता है, उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। वह कामदेव के समान हो जाता है।

हे देवि! जो पूर्वोक्त विधि से चम्पा, गुलाब, वकुल, नागकेशर, कल्हार और सिन्दुवारपुष्पों से त्रिपुरसुन्दरी की पूजा करता है, वह एक मास में ही अनुपम सौभाग्यशाली होता है और उसके हजार जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं।

रविवारेऽरुणाम्भोजैः कुमुदैः सोमवारके ।
भौमे रक्तोत्पलैः सौम्यवारे तगरसम्भवैः ॥
गुरुवारे च कह्लारैः शुक्रवारे सिताम्बुजैः ।
उत्पलैः शनिवारे च पूजयेदब्दमादरात् ॥
निवेदयेत्क्रमोक्तेषु रविवारादिसप्तषु ।
पायसं दुग्धकदली नवनीतं सिता घृतम् ॥
एवमब्दं समाराध्य देवीं गन्धादिभिः क्रमात् ।
ग्रहपीडां विजित्याशु स सुखानि समश्नुते ॥

जो व्यक्ति एक वर्ष तक भक्तिपूर्वक रविवार को लाल कमल से, सोमवार को कुमुद

से, मंगलवार को रक्तोत्पल से, बुधवार को तगर से, बृहस्पतिवार को कल्हार से, शुक्रवार को श्वेत पद्म से और शनिवार को उत्पल से त्रिपुरसुन्दरी की पूजा करता है और एक वर्ष तक प्रतिदिन गन्धादि से पूजा करता है तथा रविवार को खीर, सोमवार को दूध, मंगलवार को केला, बुधवार को मक्खन, बृहस्पतिवार को गुड़, शुक्रवार को घी और शनिवार को उपर्युक्त सभी द्रव्यों को निवेदित करता है, उसकी सारी ग्रहपीड़ा दूर होती है एवं वह अत्यधिक सुख पाकर शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करता है।

ताराकाल्योर्मत्स्यसूक्ते—

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पूजयेच्च प्रयत्नतः ।
यद्यत्प्रार्थयते मन्त्री तत्तदाप्नोति नित्यशः ।
लभते मञ्जुलां वाणीं कृष्णाष्टम्यां सदा यजेत् ।।

अत्र नित्यार्चनानन्तरं नैमित्तिकं कार्यम्। यत्र कालनियमो न दृश्यते तत्र मासार्द्धं मासं तद् द्विगुणं वा मण्डलं नैमित्तिकानुष्ठानं कर्त्तव्यमिति। तथोक्तं रुद्रयामले—

मासार्द्धमथवा मासं द्विगुणं त्रिगुणं तथा ।
यावत्फलाप्तिमान्योगी तावदेवं समाचरेत् ।।

अन्यत्रापि—

नैमित्तिके तथा काम्ये फलाप्तिर्मण्डलावधिः ।
न चेत्तद् द्विगुणं कुर्याद्यथा स्यात्फलभाक्सुधीः ।।
अष्टम्यां पूजनं देव्याः सर्वकामफलप्रदम् ।
रम्भाजातीबीजपूरं सुगन्धिपरिमिश्रितम् ।
मिश्रीकृत्य बलिं दद्यादष्टम्याञ्च विशेषतः ।।
स्वर्णमालां महादेव्यै दद्याद्गन्धैर्विशेषतः ।
फलं क्षीरं तथा दद्यादधिकं शर्करान्वितम् ।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सम्पत्त्यै पूजयेच्छिवाम् ।
फलञ्चाक्षयसिद्ध्यर्थं दद्याद्देव्यै प्रयत्नतः ।।

तथा नीलतन्त्रे—

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पूजयेच्च यथाविधि ।
आज्ञासिद्धिमवाप्नोति जवापुष्पञ्च वर्वराम् ।।
चन्दनञ्चार्ककुसुमं दद्यात् श्वेतापराजिताम् ।
यस्तु सम्पूजयेद् दुर्गां महाष्टम्यां विशेषतः ।
जन्मत्रयार्जितं पापं तत्क्षणादेव नाशयेत् ।।

दुर्गां तारिणीमिति प्रकरणानुमूलत्वात्।

तारा और काली के प्रयोग—मत्स्यसूक्त में कहा गया है कि साधक अष्टमी और चतुर्दशी के दिन काली या तारा की पूजा करके जिस-जिस वस्तु की प्रार्थना करता है, वे सब उसे सदा प्राप्त होती हैं।

कृष्ण पक्ष की अष्टमी से नियमित रूप में काली और तारा की पूजा करने से मनोहर वाक्शक्ति मिलती है। यहाँ नित्य पूजा के बाद नैमित्तिक पूजा करनी चाहिये।

जहाँ नैमित्तिक कार्य के बारे में विशेष काल निरूपित न हो, वहाँ एक पक्ष, एक मास या उसके दूने समय तक अनुष्ठान करना चाहिये। रुद्रयामल में बतलाया गया है कि एक पक्ष, एक मास, दो मास, तीन मास अथवा जब तक फल प्राप्त न हो तब तक नैमित्तिक क्रिया का अनुष्ठान करता रहे।

अन्यत्र भी कहा गया है कि नैमित्तिक और काम्य कर्म में एक मण्डल अर्थात् उनचास दिनों में पूजा का फल मिलता है। यदि फल न मिले तो उसके दूने समय तक कार्य करे।

अष्टमी तिथि में तारा या काली की पूजा करने से सभी इच्छायें पूरी होती हैं। कदलीपुष्प, जातीपुष्प, अनारपुष्प को सभी सुगन्धित द्रव्यों के साथ मिलाकर अष्टमी तिथि में बलि प्रदान करे। इसी दिन गन्धयुक्त स्वर्णमाला से महादेवी की पूजा करे। पूजन का अक्षय फल मिले, इसके लिये कर्मफल को देवी को समर्पित कर देना चाहिये।

नीलतन्त्र में कहा गया है कि अष्टमी और चतुर्दशी तिथियों में यथाशक्ति जो काली और तारा की पूजा करता है और इस पूजा के समय अड़हुल, बर्बरा, चन्दन, अरकन्द पुष्प, श्वेत अपराजिता अर्पित करता है तो उसे आज्ञासिद्धि मिलती है। जो महाष्टमी के दिन विशेष रूप से तारा की पूजा करता है, उसके तीन जन्मों के पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं।

प्रयोगविधिः

सर्वप्रयोगे अयुतजपः। तथा च शारदायाम्—

अयुतं होमसंख्या स्यात् जपस्तावान् प्रकीर्तितः ।

सभी देवताओं की प्रयोग-विधि—शारदातिलक में बताया गया है कि सभी प्रयोगों में सामान्यतः दस हजार जप और दस हजार हवन होना चाहिये।

तत्रादौ भुवनेश्वरीप्रयोगः

तद्यथा—

मन्त्री त्रिमधुरोपेतैर्हुत्वाश्वत्थसमिद्वरैः ।
ब्राह्मणान् वशयेच्छीघ्रं पार्थिवान् पद्महोमतः ।।

पलाशपुष्पैस्तत्पत्नीर्मन्त्रिणः कुमुदैरपि ।
पञ्चविंशतिसञ्जप्तैर्जलैः स्नानं दिने दिने ॥
आत्मानमभिषिञ्चेद्यः सर्वसौभाग्यवान् भवेत् ॥
पञ्चविंशतिसञ्जप्तं जलं प्रातः पिबेन्नरः ।
अवाप्य महतीं लक्ष्मीं कवीनामग्रणीर्भवेत् ॥

तथा—

हुत्वा पलाशकुसुमैर्वाक्छ्रियं लभते ध्रुवम् ।
ब्राह्मीघृतं पिबेद्यस्तु मूलमन्त्राभिमन्त्रितम् ।
कवित्वं लभते मन्त्री वत्सरान्नात्र संशयः ॥
सिद्धार्थान् लवणोपेतान् हुत्वा मन्त्री वशं नयेत् ।
नरं नारीं नरपतिं नात्र कार्या विचारणा ॥

भुवनेश्वरी-प्रयोग—घी, चीनी, मधु, मधुरत्रय-मिश्रित पीपल के पत्तों के हवन से किसी भी ब्राह्मण को साधक अपने वश में कर सकता है। कमलपुष्प के हवन से राजा को, पलाशपुष्प के हवन से रानी को और कुमुदपुष्प के हवन से मन्त्री को शीघ्र वशीभूत कर सकते हैं। हवन के समय प्रतिदिन जल के ऊपर पच्चीस बार बीजमन्त्र का जप कर उसी जल से स्नान करना चाहिये।

अभिमन्त्रित जल से अपने को अभिषिक्त करने वाला सभी क्षेत्रों में सौभाग्यशाली होता है। जो प्रातःकाल जल के ऊपर पच्चीस बार बीजमन्त्र का जप कर उस जल का पान करता है, वह तीक्ष्ण बुद्धि होकर श्रेष्ठ कवि होता है। पूर्वोक्त विधि से जो पलाशपुष्प से हवन करता है, वह वाक्शक्ति से सम्पन्न होता है; इसमें सन्देह नहीं है। जो मूल मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित ब्राह्मी घी पीता है, वह साल भर में कवित्व शक्ति प्राप्त कर लेता है। नमक और श्वेत सरसो से मन्त्रोच्चारणपूर्वक हवन करने से सभी नर-नारी और नरेश को वशीभूत किया जा सकता है।

त्वरिताप्रयोगः

योनिकुण्डं प्रकल्प्याथ कुर्याद्धोमं यथेच्छया ।
मल्लिकाकुसुमैर्हुत्वा वशयेदखिलं जगत् ॥
कृत्याद्रोहादिशमनं पलाशकुसुमैर्हुतम् ।
इक्षुदण्डैः शुभैर्हुत्वा महतीं वृद्धिमाप्नुयात् ॥
दीर्घमायुरवाप्नोति दूर्वाहोमेन साधकः ।
धान्यैः प्रक्षालितैर्हुत्वा श्रियमिष्टामवाप्नुयात् ॥
अशोकैः पुत्रमाप्नोति मधुकैरिष्टमाप्नुयात् ।

फलैर्जम्बूद्भवैर्हुत्वा लभते धनमीप्सितम् ॥
पुष्पैर्बकुलसम्भूतैः कीर्तिः स्यादनपायिनी ।
दीर्घमायुर्भवेदाम्रैश्चम्पकैः काञ्चनं लभेत् ॥
कुर्वीत सर्षपैर्होमं शत्रुनाशकरं सुधीः ।
पत्रैर्वकुलजैर्हुत्वा शीघ्रञ्चोत्सादयेदरीन् ॥
शाल्मलीपत्रहोमेन सपत्नान्नाशयेद् ध्रुवम् ।
माषहोमेन मूकः स्यादुन्मत्तोऽक्षैर्भवेदरिः ॥

त्वरिता-प्रयोग—त्वरिता देवी के हवन में त्रिकोण कुण्ड बनाकर अपनी कामना के अनुरूप निम्नलिखित द्रव्यों द्वारा हवन करना चाहिये—

मल्लिकापुष्प से सारे संसार का वशीकरण होता है। पलाशपुष्प के हवन से अन्यकृत मारणादि क्रिया की शान्ति होती है।

उत्तम ईखखण्डों के हवन से महान् उन्नति होती है। दूब के हवन से परमायु प्राप्त होती है। धुले हुए धान्य के हवन से अभीष्ट सम्पत्ति प्राप्त होती है।

अशोकपुष्प के हवन से पुत्र प्राप्त होता है। महुआ-फूल के हवन से अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है।

जामुन के हवन से धनलाभ, वकुलपुष्प के हवन से अक्षय कीर्ति, आम्रमञ्जरी के हवन से दीर्घ आयु, चम्पापुष्प के हवन से स्वर्णलाभ, सरसो के हवन से शत्रुनाश, बकुलपत्र के हवन से शत्रुसमूह का शीघ्र नाश, सेमलपत्र के हवन से शत्रुनाश, उड़द के हवन से शत्रु का वाक् स्तम्भन और बहेड़ा के हवन से शत्रु पागल हो जाता है।

दुर्गाप्रयोग:

वशयेत्तिलहोमेन नरान्नरपतीनपि ।
सिद्धार्थैर्जुहुयान्मन्त्री रोगान्मुच्येत तत्क्षणात् ॥
पद्मैर्हुत्वा जयेच्छत्रून्दूर्वाभिः शान्तिमाप्नुयात् ।
पलाशकुसुमैः पुष्टिं धान्यैर्धान्याश्रयं लभेत् ॥
काकपक्षैः कृतो होमो द्वेषं वितनुयान्नृणाम् ।
मरीचहोमान्मरणं रिपुराप्नोति सर्वदा ॥

दुर्गा के प्रयोग—तिल के हवन से नर एवं नरेश का वशीकरण, श्वेत सरसो से तत्क्षण आरोग्य-लाभ, कमल के हवन से शत्रु पर विजयप्राप्ति, दूर्वा से शान्तिलाभ, पलाशपुष्प से पुष्टिलाभ एवं धन-धान्य-सम्पत्ति की प्राप्ति, कौए के पंख के हवन से विद्वेषण और काली मिर्च के हवन से शत्रुनाश होता है।

पीत्वा तन्मन्त्रितं तोयं सहस्रं प्रत्यहं जपेत् ।
महाकविर्भवेन्मन्त्री वत्सरेण न संशयः ॥
उरोमात्रोदके स्थित्वा ध्यायेन्मार्तण्डमण्डले ।
स्थितां देवीं प्रतिदिनं त्रिसहस्रं मनुं जपेत् ।
लभते मण्डलात्सिद्धिं वाचामप्रतिमामपि ॥
पलाशबिल्वकुसुमैर्जुहुयान्मधुरोक्षितैः ।
समिद्भिर्वा तदुत्थाभिर्यशः प्राप्नोति वाक्पतेः ॥
पलाशकुसुमैर्हुत्वा परां वाक्सिद्धिमाप्नुयात् ।
कदम्बकुसुमैस्तद्वत्फलैः श्रीफलसम्भवैः ॥
अचिराच्छ्रियमाप्नोति वाचां कुन्दसमुद्भवैः ।
नन्द्यावर्तप्रसूनैर्वा हुत्वा वाग्वल्लभो भवेत् ॥

सरस्वती-प्रयोग—प्रतिदिन सरस्वती-मन्त्र का एक हजार जप करके इसी मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पीने से एक वर्ष के अन्दर निश्चय ही कवित्वशक्ति प्राप्त होती है। जो प्रतिदिन छाती के बराबर जल में खड़े होकर सूर्यमण्डल में विराजमान सरस्वती का ध्यान करते हुए तीन हजार मन्त्र-जप करता है, वह अनुपम वाक्सिद्धि पा जाता है। त्रिमधुराक्त पलाशफूल, बेलफूल या पलाश-बेल की समिधा से जो हवन करता है, वह बृहस्पति के समान यशस्वी होता है।

केवल पलाशफूलों के हवन से वाक्सिद्धि मिल जाती है। कदम्बपुष्प और बेलफल के हवन से शीघ्र वाक्सिद्धि मिलती है। कुन्द या नन्द्यावर्तपुष्प के हवन से सरस्वती की कृपा प्राप्त होती है।

लक्ष्मीप्रयोग

यथा—

वक्षःप्रमाणे सलिले स्थित्वा मन्त्रमिमं जपेत् ।
त्रिलक्षं सञ्जपेन्मन्त्री देवीं ध्यात्वार्कमण्डले ।
स भवेदल्पकालेन रमाया वसतिः स्थिरा ॥
आराध्योत्तरनक्षत्रे देवीं स्रक्चन्दनादिभिः ।
नन्द्यावर्तभवैः पुष्पैः सहस्रं जुहुयात्ततः ॥
पौर्णमास्यां फलैर्बिल्वैर्जुहुयान्मधुराप्लुतैः ।
पञ्चम्यां विशदाम्भोजैः शुक्रवारे सुगन्धिभिः ॥
अन्यैर्वा विशदैः पुष्पैः प्रतिमासं विशालधीः ।

स भवेदब्दमात्रेण सर्वदा सम्पदां निधिः ॥
शालिभिर्जुह्वतो नित्यमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
अचिरादेव महती लक्ष्मीः सञ्जायते ध्रुवम् ॥
जवापुष्पाणि जुहुयादष्टोत्तरसहस्रकम् ।
गृहीत्वा प्रजपेद्भस्म नागवल्लीरसान्वितम् ।
तिलकं धारयेत्तेन सर्ववश्यकरं भवेत् ॥

नागवल्ली पर्णम्।

लक्ष्मी-प्रयोग—छाती के बराबर जल में खड़े होकर साधक सूर्यमण्डल में लक्ष्मी का ध्यान करते हुए तीन लाख मन्त्र-जप करे। इससे शीघ्र ही लक्ष्मी उसके घर में स्थायी रूप से निवास करने लगती है।

उत्तरफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा या उत्तरभाद्रपद नक्षत्र में माला-चन्दनादि से लक्ष्मी देवी की पूजा कर नन्द्यावर्तपुष्प से एक हजार हवन करे। पूर्णिमा के दिन त्रिमधुराक्त बेलफल से हवन करे। पञ्चमी तिथि में श्वेत कमल से या शुक्रवार को सुगन्धित द्रव्यों से या अन्य किसी शुभ पुष्प से प्रतिमाह हवन करे तो सभी प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त होती है।

प्रतिदिन धान्य से एक हजार आठ आहुतियों से हवन करे तो शीघ्र ही अपार धनलाभ होता है। अड़हुल-फूल से एक हजार आठ आहुतियाँ देकर हवन का भस्म लेकर पान के रस में मिलावे और उससे तिलक लगा कर मन्त्र का जप करे तो सभी लोग वशीभूत होते हैं।

गणेशप्रयोगः

तर्पयेत्सलिलैः शुद्धैर्दिनशो गणनायकम् ।
चतुश्चत्वारिंशदाढ्यं चतुःशतमतन्द्रितः ।
प्राप्नुयान्मण्डलादर्वागभीष्टमधिकं नरः ॥
नारिकेलैः कृतो होमश्चतुर्थ्यां श्रीपदो भवेत् ।
शुक्लपक्षे प्रतिपदमारभ्य दिनशः सुधीः ॥
चतुर्थ्यन्तं नारिकेलशक्तुलाजतिलैः क्रमात् ।
चतुःशतं प्रजुहुयाद्वश्याः स्युः सर्वजन्तवः ॥
सतिलैस्तण्डुलैर्होमैश्चतुर्थ्यां श्रीपदो भवेत् ।
पद्महोमेन भूपालांस्तत्पत्नीरुत्पलैः शुभैः ॥
मन्त्रिणः कुमुदैः पुष्पैर्विप्रान् पिप्पलसम्भवैः ।
समिद्धैर्नरपतीनुडुम्बरसमुद्भवैः ।
प्लक्षैर्वैश्यान् वटोद्भूतैः शूद्रान्मन्त्री वशं नयेत् ॥

मधुना स्वर्णलाभः स्याद्गोदुग्धेन लभेत गाः ।
आज्यहोमेन महतीं श्रियमाप्नोति मानवः ।
तया सर्वसमृद्धिः स्यादन्नैरन्नपतिर्भवेत् ।।

गणेश-प्रयोग—प्रतिदिन निरालस होकर विशुद्ध जल से चार सौ चौवालीस बार गणेश का तर्पण करे। ऐसा करने से निर्दिष्ट समय के पहले और अधिक मात्रा में अभीष्ट-लाभ होता है।

चतुर्थी तिथि में नारियलखण्डों से हवन करने पर श्रीलाभ होता है। शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से लेकर चतुर्थी तक प्रतिदिन क्रमश: नारियल, सत्तू, धान का लावा, तिल से चार सौ हवन करे। अर्थात् प्रतिपदा में नारियलखण्डों से एक सौ, द्वितीया में सत्तू से एक सौ, तृतीया में लावा से एक सौ और चतुर्थी में तिल से एक सौ हवन करे। इससे सभी प्राणी वशीभूत होते हैं।

चतुर्थी में तिल और चावल मिलाकर हवन करने से श्रीलाभ होता है। कमल के हवन से राजा का, उत्पल के हवन से रानी का, कुमुद के हवन से मन्त्रियों का, पीपल-पत्तों के हवन से ब्राह्मणों का, गूलरसमिधा के हवन से क्षत्रिय का, पाकड़-समिधा के हवन से वैश्यों का एवं वटसमिधा के हवन से शूद्रों का वशीकरण होता है।

मधु से हवन करने पर स्वर्गलाभ, गोदुग्ध द्वारा हवन करने से गोलाभ, आज्य के हवन से अतुल सम्पत्तिलाभ, दही से हवन करने पर समृद्धि का लाभ एवं अन्न से हवन करने पर अन्नभण्डार का लाभ होता है।

सूर्यप्रयोग:

यथा—

एवं सम्पूज्य विधिवद्भास्करं भक्तवत्सलम् ।
दद्यादर्घ्यं प्रतिदिनं वारे वा तस्य चोदिते ।
प्रभाते मण्डलं कृत्वा पूर्ववत्पीठमर्चयेत् ।।
पात्रं ताम्रमयं प्रस्थतोयग्राहि मनोहरम् ।
निधाय तत्र मनुना पूरयेत्तच्छुभोदकैः ।।
कुङ्कुमं रोचनाराजीरक्तचन्दनकैरवान् ।
करवीरजवाशालिकुशश्यामाकतण्डुलान् ।।
निक्षिपेत्सलिले तस्मिन्नैक्यं सम्भाव्य भानुना ।
साङ्गमभ्यर्चयेत्तस्मिन् भास्करं प्रोक्तलक्षणम् ।।
गन्धपुष्पादिनैवेद्यैर्यथाविधिविधानवित् ।
अपिधाय जपेन्मन्त्रं सम्यगष्टोत्तरं शतम् ।।

पुनः सम्पूज्य गन्धाद्यैर्जानुभ्यामवनीं गतः ।
आमस्तकं समुद्धृत्य व्योम्नि सावरणे रवौ ।
दृष्टिं निधाय ऐक्येन मूलमन्त्रं जपन्नरः ॥
दद्यादर्घ्यं दिनेशाय प्रसन्नेनान्तरात्मना ।
दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं भूयो जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥
यावदर्घ्यामृतं भानुः समादत्ते निजैः करैः ।
तेन तृप्तो दिनमणिर्दद्यात्तस्मै मनोरथान् ॥
अर्घ्यदानमिदं पुंसामायुरारोग्यवर्द्धनम् ।
धनधान्यपशुक्षेत्रपुत्रमित्रकलत्रदम् ।
तेजोवीर्ययशःकान्तिविद्याविभवभाग्यदम् ॥

सूर्य के प्रयोग—प्रतिदिन या रविवार को यथाविधि भक्तवत्सल सूर्यदेव का पूजन करके अर्घ्य प्रदान करे।

सूर्योदय के बाद मण्डल बनाकर पूर्वोक्त विधि से पीठदेवता की पूजा करे। एक प्रस्थ = लगभग पन्द्रह किलो जल समा सके, इतना बड़ा ताम्रकलश उस मण्डल पर रखकर सूर्यमन्त्र का जप करते हुए उस कलश को जल से पूर्ण करे।

सूर्यदेव से अपने ऐक्य की भावना करते हुए उक्त जलपूर्ण ताम्रकलश में कुंकुम, गोरोचन, राई, सरसों, लाल चन्दन, वेणामूल, कनैल, अड़हुल, धान्य, कुश, साँवाँ और चावल—इन सबों को डाले।

इसके बाद पात्र में गन्ध-पुष्प-नैवेद्य आदि से सूर्य और उनके अंगदेवताओं का पूजन करके उसी पात्र को आच्छादित करते हुए एक सौ आठ सूर्यमन्त्र का जप करे।

गन्धादि द्वारा सूर्य की पूजा पुनः करे। भूमि पर दोनों घुटनों को रखकर मस्तक तक सारे शरीर को उठाते हुए आकाश में आवरणदेवताओं से घिरे हुए सूर्यदेव को देखकर सूर्य के साथ अपने ऐक्य की भावना करते हुए मन ही मन मन्त्र के जप के साथ प्रसन्न चित्त से सूर्यदेव को अर्घ्य प्रदान करे। तब पुष्पाञ्जलि देकर एक सौ आठ मन्त्रजप करे।

मन्त्रजप के समय यह भावना करता रहे कि सूर्यदेव अपनी किरणों से अर्घ्यामृत को ग्रहण कर रहे हैं।

इस प्रकार की पूजा से सूर्यदेव सन्तुष्ट होकर अर्घ्यदाता की अभीष्ट कामना को पूर्ण करते हैं। उक्त सूर्यार्घ्य-दान से आयु, आरोग्य की वृद्धि होती है। धन-धान्य, पशु-क्षेत्र, पुत्र-मित्र और कलत्र से सम्पन्न होकर मनुष्य तेजस्वी, शक्तिशाली, कान्तिमान, विद्वान् ऐश्वर्ययुक्त और सौभाग्यशाली होता है।

श्रीरामप्रयोग:

जातीप्रसूनैर्जुहुयादिन्दिरावाप्तये नरः ।
जातीप्रसूनैर्जुहुयाच्चन्दनाम्भःसमुच्छ्रितैः ॥
राजवश्याय कमलैर्धनधान्यादिसम्पदे ।
नीलोत्पलानां होमेन वशयेदखिलं जगत् ॥
बिल्वप्रसूनैर्जुहुयादिन्दिरावाप्तये नरः ।
दूर्वाहोमेन दीर्घायुर्भवेन्मन्त्री निरामयः ॥
रक्तोत्पलहुतान्मन्त्री धनमाप्नोति वाञ्छितम् ।
मेधाकामेन होतव्यं पलाशकुसुमैर्नवैः ॥
तज्जप्तमम्भः प्रपिवेत्कविर्भवति वत्सरात् ।
तन्मन्त्रितान्नं भुञ्जीत महदारोग्यमाप्नुयात् ॥

श्रीराम के प्रयोग—यश, कान्ति और लक्ष्मी-प्राप्ति के लिये जातीपुष्प से हवन करे। वशीकरण के लिये चन्दनजल से हवन करे।

धन-धान्य-सम्पत्तिलाभ के लिये कमल से हवन करे। सारे संसार को वशीभूत करने के लिये नीलोत्पल से हवन करे।

लक्ष्मी-लाभ के लिये बिल्वपुष्पों से हवन करे। निरोगिता और दीर्घायुष्य के लिये दूब से हवन करे। धन के लिये लाल कमल से हवन करे। बुद्धि-मेधावृद्धि के लिये विकसित पलाशपुष्पों से हवन करे।

राममन्त्र का जप करते हुए जलपान करे। ऐसा करने से साधक को एक वर्ष के अन्दर कवित्व शक्ति प्राप्त होती है। श्रीराममन्त्र से अभिमन्त्रित अन्न खाने से सभी रोगों से रक्षा होकर स्वास्थ्य सदैव उत्तम बना रहता है।

श्रीकृष्णप्रयोग:

अथ प्रयोगान् वक्ष्यामि मन्त्रयोरुभयोः समान् ।
यान् कृत्वा साधकवरो लोकत्रयप्रपूजितः ॥
वन्दे तं देवकीपुत्रं सद्योजाताम्बुदप्रभम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं वनमालिनम् ॥
एवं ध्यात्वा मनुवरं लक्षं ब्राह्ममुहूर्तके ।
जप्त्वा मेधां परां प्राप्य कवीनामग्रणीर्भवेत् ॥
अथवा स्फटिकाभासं लेखपुस्तकधारिणीम् ।
तं विचिन्त्य जपेल्लक्षं मूलं ब्राह्ममुहूर्तके ।
जप्त्वा मन्त्री त्रिकालज्ञो बृहस्पतिसमो भवेत् ॥

चलद्गोचारणं बालं ध्यायन् ब्राह्ममुहूर्तके ।
जप्त्वा मनुवरं विद्वान् सर्वशास्त्रार्थविद्भवेत् ।
सर्ववेदार्थकुशलो ज्ञानवान्भवति ध्रुवम् ।।
नन्दाङ्गने पर्यटन्तं धूलीनिचयधूसरम् ।
दीप्तमणिगणोद्दीप्तं यशोदालोचनोत्सुकम् ।।
एवं ध्यात्वा मनुवरं जपेन्नियममास्थितः ।
लक्षैकजपनादस्य किं न सिध्यति भूतले ।।
प्रातः प्रातः पिबेत्तोयमष्टोत्तरशतं जपन् ।
अत्यन्तमूको दुष्टात्मा जडः पाषाणवत्तथा ।।
अनेन जलपानेन साक्षाद्वाक्पतिसन्निभः ।
जायते नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं न चान्यथा ।।

श्रीकृष्ण के प्रयोग—भगवान् श्रीकृष्ण के दशाक्षर और अष्टाक्षर मन्त्रों के प्रयोग एक समान हैं। इन प्रयोगों को करने से साधक तीनों लोकों में पूजनीय होता है। पहले निम्नवत् ध्यान करना चाहिये—

वन्दे तं देवकीपुत्रं सद्योजाताम्बुदप्रभम्।
शंखचक्रगदापद्मधारिणं वनमालिनम्।।

मैं उन वनमाली देवकीनन्दन की वन्दना करता हूँ, जो अपने हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए हुए हैं। जो नवीन मेघ के समान घोर कृष्ण वर्ण के हैं।

ध्यान करने के बाद ब्राह्ममुहूर्त में एक लाख मन्त्रजप करने से साधक अनुपम मेधावी होकर कवियों में अग्रगण्य होता है।

अथवा एक हाथ में लेखनी और दूसरे हाथ में पुस्तक धारण करने वाले, उज्ज्वल स्फटिक के समान रूप वाले भगवान् कृष्ण का ध्यान कर ब्राह्ममुहूर्त में दशाक्षर या अष्टादशाक्षर मन्त्र का एक लाख जप करे तो साधक त्रिकालज्ञ और बृहस्पति के समान विद्वान् एवं पूजनीय होता है।

चलद् गोचारणं बालं अर्थात् बालकरूप में गायों को चरा रहे हैं—ऐसा ध्यान कर ब्राह्म मुहूर्त में जप करे तो साधक सभी शास्त्रों का ज्ञाता होकर वेदों का पारदर्शी विद्वान् होता है।

नन्दाङ्गने पर्यटन्तं धूलिनिचयधूसरम्।
दीप्तमणिगणोद्दीप्तं यशोदालोचनोत्सुकम्।।

अर्थात् भगवान् कृष्ण नन्द के आंगन में धूल से लिपटे हुए घूम-फिर रहे हैं। उज्ज्वल मणियों से उनका शरीर सुशोभित है। यशोदा जी के नेत्र उन्हें उत्सुकतापूर्वक देख रहे

हैं। ऐसा ध्यान करके यथाशक्ति मन्त्रजप करे। इस प्रकार एक लाख जप से सभी कार्य सिद्ध होते हैं।

प्रतिदिन प्रात:काल कृष्णमन्त्र का एक सौ आठ जप करते हुए जल पीने से गूंगा, दुष्टात्मा और पत्थर-जैसा जड़ मनुष्य भी साक्षात् बृहस्पति के समान वक्ता और विद्वान् निस्सन्देह हो जाता है।

पद्भ्यां निक्षिप्य शकटं रुदन्तं प्राकृतं यथा ।
लक्षं जप्यादिति ध्यात्वा आपद्भ्यो मुच्यते ध्रुवम् ॥
शत्रुतो न भयं तस्य राजतो दस्युतोऽपि वा ।
न तस्य विद्यते भीतिः कदाचिदपि सुव्रत ॥
नित्यं कर्मरतं कृष्णं वन्यैः पुष्पैः समर्चयेत् ।
वश्या भवन्ति सर्वे च ब्राह्मणा नात्र संशयः ॥
गोपालवेशं मनसा जातीपुष्पैः समर्चयेत् ।
वश्या भवन्ति राजानो नात्र कार्या विचारणा ।
तमालोद्भवपुष्पैश्च वैश्या वश्या भवन्ति हि ॥
नीलोत्पलैश्च शूद्राश्च मासं कृष्णं समर्चयेत् ।
जुहुयाद्रक्तपुष्पैश्च मिश्रितैस्तिलतण्डुलैः ।
मन्त्रेणाष्टसहस्रन्तु जप्त्वा तद्भस्म धारयेत् ।
ललाटे विधृते तस्य सर्वे वश्या भवन्ति हि ॥
अनेन च शरीरेण राजानो वश्यतामियुः ।
स्त्रियो वश्या भवन्त्यत्र पुत्रामात्याश्च सर्वथा ॥
विवाहार्थी जपेन्मन्त्रं मासमष्टसहस्रकम् ।
रासमण्डलमध्यस्थं कृष्णं ध्यात्वा व्रजे स्थितम् ।
विवाहयेदुत्तमाङ्गीं कन्यां सर्वगुणोज्ज्वलाम् ॥
पुत्रं मे रक्ष रक्षेति द्विजेन प्रार्थितो हरिः ।
हृतपुत्रं समाहृत्य ददौ यस्तं विचिन्तयेत् ॥
पुत्रकामो लभेत्पुत्रं मासेनैकेन सुन्दरम् ।
दीर्घायुरप्रतिहतबलवीर्यसमन्वितम् ॥

पद्भ्यां निक्षिप्य शकटं रुदन्तं प्राकृतं यथा अर्थात् बालक कृष्ण अपने दोनों पैरों से शकटरूपधारी असुर को दूर फेंककर सामान्य बच्चे की तरह रो रहे हैं। ऐसा ध्यान करके एक लाख मन्त्र जपने से निश्चय ही बड़ी से बड़ी विपत्ति दूर हो जाती है, शत्रु नष्ट हो जाते हैं एवं चोर-डाकू आदि का भय भी नहीं रहता। निरन्तर कर्मशील कृष्ण की पूजा वन्य

पुष्पों से करने पर सभी ब्राह्मण वशीभूत होते हैं। मन ही मन गोपालरूप का ध्यान करते हुए जातीपुष्पों से पूजा करे तो राजा वशीभूत होते हैं। तमालपुष्प से पूजा करने पर वैश्य और नीलोत्पल से पूजा करने पर शूद्र वश में होते हैं।

एक हजार आठ मन्त्र जप करने के बाद तिल-चावलसहित लाल फूलों से हवन करे और भस्म को ललाट पर धारण करे तो सभी प्राणी वशीभूत होते हैं। यही भस्म सम्पूर्ण शरीर में लगाए तो राजा-रानी-राजकुमार और मन्त्री वश में होते हैं।

व्रजभूमि में श्रीकृष्ण रासमण्डल में विराजमान हैं। ऐसा ध्यानसहित प्रतिदिन आठ हजार जप एक माह तक करे तो विवाहार्थी का विवाह सर्वगुणसम्पन्ना, गौरवर्णा एवं उत्तमांगी कन्या से हो जाता है।

पुत्रं मे रक्ष रक्षेति द्विजेन प्रार्थितो हरि:।
हृतं पुत्रं समाहृत्य ददौ यस्तं विचिन्तयेत्।।

अर्थात् किसी ब्राह्मण ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना किया कि मेरे पुत्र की रक्षा करो। इस पर उन्होंने उसके अपहृत पुत्र को लाकर उसे दे दिया। ऐसा ध्यान करके एक महीने तक जप करने से पुत्रार्थी दीर्घायु, अति बल, वीर्यवान और सुन्दर पुत्र को प्राप्त करता है।

कुन्दपुष्पैः समाराध्य कृष्णं ध्यायेच्च कन्यका ।
मासद्वयं तथा मन्त्रं जपेदष्टसहस्रकम् ।
मनोरथपतिं लब्ध्वा दीर्घकालञ्च क्रीडति ॥
अञ्जनं कुसुमं वस्त्रं ताम्बूलं चन्दनं तथा ।
अन्यान्यप्युपभोग्यानि स्पृष्ट्वा मन्त्रं शतं जपेत् ।
दीयते यस्य यस्येति सोऽचिराद्दासवद्वशी ॥
स्त्रियो वश्या अनेनैव भवन्ति मुनिसत्तम ।
पुरुषं वशयेन्नारी अनेनैव विधानतः ॥
अन्नाद्यकामः श्रीपुष्पैः सिततण्डुलमिश्रितैः ।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु जुहुयादन्नवान् भवेत् ॥
विश्वरूपधरं ध्यात्वा शतमष्टोत्तरं जपेत् ।
समाहितमना मन्त्री यशोऽर्थी कीर्तिमाप्नुयात् ॥
भूतप्रेतपिशाचादिस्कन्दादिग्रहपीडितः ।
पूतनास्तनपातारं ध्यात्वा मन्त्रं शतं जपेत् ॥
प्रणश्यन्ति ग्रहा दुष्टाः पलायन्ते इतस्ततः ।
सर्पमण्डलदष्टे च मूषिकाद्यैश्च दंशिते ॥
कृष्णं कालीयदमनं चिन्तयित्वा जपेन्नरः ।

तर्जयन्तं विषं घोरं हूंकारेण विनाशयेत् ।।
अत्रापान्यमनुं वक्ष्ये बीजाद्यं शृणु तत्त्वतः ।
कालीयस्य फणामध्ये दिव्यं नृत्यं करोति तम् ।
नमामि देवकीपुत्रं नृत्यराजानमच्युतम् ।।
ज्वरार्तोऽभ्यर्चयेन्मन्त्री जपेदष्टशतं तथा
ज्वरेण संस्तुतं कृष्णं बलप्रद्युम्नसंयुतम् ।।
दहन्तं वाणनगरीं गरुडोपरि संस्थितम् ।
नवज्वरेण सम्पिष्टं ध्यात्वा नाशयते क्षणात् ।।
शीतलाकामलादीनि तथा चातुर्थिकज्वरान् ।
प्लीहगुल्मशकृद्वायूनपस्मारभयं तथा ।
नाशयेन्नात्र सन्देहो दृष्टिमात्रेण मान्त्रिकः ।।

यदि कोई कन्या कृष्णमूर्ति का ध्यान करती हुई दो मास तक कुन्दपुष्प से पूजा करके एक हजार आठ जप प्रतिदिन करे तो उसे मनचाहा पति मिलता है, जिसके साथ वह दीर्घ काल तक सुख भोगती है।

अञ्जन, पुष्प, ताम्बूल, चन्दन, अन्य उपभोग्य द्रव्य को स्पर्श करते हुए कृष्णमन्त्र का एक सौ जप करे। इसमें से कोई वस्तु जिसे दी जायगी, वह वशीभूत होता है। इस प्रकार पुरुष स्त्रियों को और स्त्रियाँ पुरुषों को वश में कर सकती हैं।

अन्नादि की कामना से श्वेत चावलयुक्त लवंगपुष्प से एक हजार आठ हवन करे तो अन्नभण्डार प्राप्त होता है।

यश की कामना हो तो विश्वरूपधारी श्रीकृष्ण का ध्यान करके एकाग्र मन से एक सौ आठ बार मन्त्रजप करे तो निश्चय ही यशलाभ होता है।

भूत-प्रेत-पिशाच आदि और स्कन्द आदि ग्रहबाधा से जो पीड़ित हों, वे पूतनास्तन का पान करते हुए कृष्ण का ध्यान करते हुए सौ बार मन्त्रजप करें तो उनकी सभी बाधायें दूर होती हैं।

साँप के काटने पर या विषैले मूषक आदि के काटने पर कालिय दमन करने वाले कृष्ण का ध्यान करते हुए मन्त्र का जप करे तो एक हुंकारमात्र से घोर विष भी नष्ट हो जाता है। इससे सम्बन्धित एक अन्य मन्त्र भी है—

क्लीं कालियस्य फणामध्ये दिव्यं नृत्यं करोति तम्।
नमामि देवकीपुत्रं नृत्यराजानमच्युतम्।।

अर्थात् जो कालिय नाग के फणों पर मनोहर नृत्य करते हैं, उन नृत्यराज देवकीनन्दन अच्युत को मैं प्रणाम करता हूँ।

ज्वर से पीड़ित व्यक्ति पूजा करके एक सौ आठ जप करे और निम्न प्रकार का ध्यान करे—

ज्वरेण संस्तुतं कृष्णं बलप्रद्युम्नसंयुतम्।
दहन्तं वाणनगरीं गरुड़ोपरि संस्थितम्।।

अर्थात् गरुड़ पर विराजमान कृष्ण वाणासुर की नगरी को भस्म कर रहे हैं। बलराम और प्रद्युम्न उनके साथ हैं। ज्वर उनकी स्तुति कर रहा है। ऐसा ध्यान करने से चेचक, पाण्डुरोग, चातुर्थिक ज्वर, प्लीहा, गुल्म, यकृत्, वायुरोग, अपस्मार आदि सभी व्याधियाँ शीघ्र ही अच्छी हो जाती हैं।

गोपालजुष्टपादञ्च वेणुमादाय संस्थितम् ।
ध्यात्वा कृष्णं जपेन्मन्त्रं पशुमान् स तु मासतः ।।
राज्ञः पुरोधा भवितुमिति यस्य मतिर्भवेत् ।
मधुसिक्तैः सितैः पुष्पैर्हुत्वा तन्मण्डलाल्लभेत् ।
महैश्वर्यमथ प्राप्य विश्वख्यातो भवेद् ध्रुवम् ।।
गोवर्धनधरं कृष्णं ध्यात्वा मन्त्रं जपेन्नरः ।
वातवर्षादिभिर्घोरैर्भये सम्यगुपस्थिते ।
भयमाशु विनश्येत्तु नात्र कार्या विचारणा ।।
वृन्दावनगतं कृष्णं वृष्टिकामो विचिन्तयन् ।
जपेदष्टसहस्रन्तु वृष्टिमाप्नोत्यसंशयम् ।
एवञ्च मनसा ध्यात्वा वृष्टिं वर्षासु चाहरेत् ।।
एवं जलाशये ध्यात्वा जपेदष्टसहस्रकम् ।
वृष्टिर्भवत्यकालेऽपि महती नात्र संशयः ।।
गायन्तं वेणुना कृष्णं गानकामो विचिन्तयन् ।
आज्यमष्टशतं हुत्वा किन्नरैः सह गीयते ।।
जयकामो जपेद्यस्तु हरन्तं कल्पकद्रुमम् ।
संस्तुतं देवताभिश्च गरुडारूढमच्युतम् ।।
ध्यात्वा रक्तकरवीरसमिद्भिर्जुहुयाद्वशी ।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु साक्षात्पराजितो रिपुः ।।
राजादिभयमापन्ने संशये दुर्गसंसदि ।
हुत्वा दशसहस्रन्तु तत्क्षणान्नाशयेद्ध्रुवम् ।।
नीलोत्पलादिभिर्हुत्वा अष्टोत्तरसहस्रकम् ।
शङ्खादिनिधिसंयुक्तं द्वारकामध्यगं हरिम् ।

ध्यात्वा तण्डुलदूर्वाभिर्हुत्वा शान्तिकमाहरेत् ।।

गोपालजुष्टपादं च वेणुमादाय संस्थितम् अर्थात् ग्वालों का समूह जिनके चरणों की सेवा कर रहा है और जिनके हाथों में वंशी है, ऐसे भगवान् कृष्ण का ध्यान करते हुए जो मन्त्रजप करता है, वह एक महीने के अन्दर बहुत-सी गायों का स्वामी हो जाता है।

मधुसिक्त श्वेत पुष्पों से हवन करने वाला राजपुरोहित बनता है। ऐश्वर्य से युक्त होकर संसार में विख्यात होता है। भयंकर तूफान, घनघोर वर्षा आदि के संकट में गोवर्धनधारी कृष्ण का ध्यान करते हुए मन्त्रज़प करे तो निस्सन्देह संकट दूर होता है।

वर्षा की कामना हो तो वृन्दावन में विराजमान भगवान् कृष्ण का ध्यान करते हुए एक हजार आठ मन्त्र-जप करे। इससे वृष्टि अवश्य होती है। वर्षाकाल में मन ही मन ऐसे ध्यानमात्र से ही वर्षा हो सकती है। जलाशय में खड़े होकर ऐसा ध्यान करते हुए एक हजार आठ जप करने से अकाल में भी निस्सन्देह घोर वर्षा होती है।

जिसे संगीतविद्या में यश पाने की इच्छा हो, वह वंशीधर भगवान् कृष्ण का ध्यान करते हुए घी से एक सौ आठ आहुतियाँ देकर हवन करे। इससे गन्धर्व और किन्नरों के समान गाने की सामर्थ्य प्राप्ति होती है।

हरन्तं कल्पकद्रुमं संस्तुतं देवताभिश्च गरुडारूढमच्युतं अर्थात् गरुड़ पर विराजमान भगवान् पारिजात का हरण कर रहे हैं और देवगण उनकी स्तुति कर रहे हैं—ऐसा ध्यान करते हुए जप करे। लाल कनेरफूल से एक हजार आठ हवन करे तो शत्रुओं की पराजय निश्चित रूप से होती है। राज्यभय या कोई महा संकट उपस्थित होने पर तत्काल उस विधि से दस हजार हवन करे तो निस्सन्देह सभी संकट दूर हो जाते हैं।

नीलोत्पल आदि से एक हजार आठ हवन करके शंख, पद्म आदि निधियों से युक्त द्वारका में विराजमान श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए पुन: हवन करने से शान्तिलाभ होता है।

कदम्बमूले गायन्तं गोपालं वनमालिनम् ।
कदम्बकुसुमैर्जुष्टं चिन्तयित्वा जनार्दनम् ।।
अपामार्गदलैर्हुत्वा अष्टोत्तरसहस्रकम् ।
सर्वान् लोकान् वशीकृत्य आशु विज्ञो भविष्यति ।।
राजद्वारे सभायाञ्च व्यवहारे च मन्त्रवित् ।
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा प्रथमं वाक्यमुच्चरेत् ।
अनेनैव विधानेन सर्वत्र विजयी भवेत् ।।
मोक्षकामो जपेद्यस्तु पुण्डरीकाक्षमव्ययम् ।
सनकादिस्तुतं कृष्णं शुक्लाम्बरधरं प्रभुम् ।।

शङ्खचक्रधरं ध्यात्वा मन्त्रं लक्षं जपेन्नरः ।
तारसम्पुटितं कृत्वा विधिवत् स्थानमाश्रितः ॥
चक्राब्जमण्डले कृष्णं पूजयेद्भक्तिमावहन् ।
संसारसागरात्सद्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥

कदम्बमूले गायन्तं गोपालं वनमालिनम्।
कदम्बकुसुमैर्जुष्टं चिन्तयित्वा जर्नादनम्।।

अर्थात् कदम्ब के पुष्पों से सुशोभित कदम्बमूल पर विराजमान वनमाला पहने जनार्दन गोपाल गा रहे हैं—ऐसा ध्यान करते हुए प्रतिदिन श्वेत अपामार्ग से एक हजार आठ हवन करे।

इससे साधक आशु विज्ञ बनकर सारे संसार को वशीभूत कर सकता है। राजद्वार में, सभा या विचारगोष्ठियों में पहले आठ सौ मन्त्रजप करके साधक पहला-पहला वाक्य बोले। ऐसा करने से साधक सर्वत्र विजयी होता है।

सनकादिस्तुतं कृष्णं शुक्लाम्बरधरं प्रभुम्।
शंखचक्रधरं ध्यायेत्पुण्डरीकाक्षमव्ययम्।।

अर्थात् शंख-चक्रधारी श्वेत वस्त्र पहने कमलनयन अव्यय प्रभु कृष्ण की स्तुति सनकादि ऋषि कर रहे हैं—ऐसा ध्यान करते हुए एक लाख मन्त्र-जप करे। जप के लिये यथाविधि कोई उत्तम स्थान चुन ले। वहीं निजी आसन पर बैठकर ॐ से पुटित कृष्णमन्त्र का जप करे। भक्तिपूर्वक चक्राब्जमण्डल में कृष्ण की पूजा करे। ऐसा करने से संसार-सागर से मुक्ति मिलती है।

दधिवामनप्रयोगः

पायसान्नेन जुहुयात्सहस्रं श्रियमाप्नुयात् ।
धान्यहोमेन धान्याप्तिः शतपुष्पसमुद्भवैः ।
बीजैः सहस्रसंख्यातैर्होमो भयविनाशनः ॥
दध्योदनेन शुद्धेन हुत्वा मुच्येत दुर्गतेः ।
स्मृत्वा त्रैविक्रमं रूपं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।
मुक्तो बन्धाद्भवेत्सद्यो नात्र कार्या विचारणा ॥

दधिवामन के प्रयोग—खीर से एक हजार हवन करने से धन-प्राप्ति, चावल से हवन करने पर अन्न-लाभ, एक हजार पद्मबीजों से हवन करने पर भय का नाश होता है।

विशुद्ध दधिमिश्रित अन्न से हवन करने पर दुर्गति से मुक्ति मिलती है। त्रिविक्रम के रूप का स्मरण करते हुए एकाग्र मन से मन्त्रजप करे तो शीघ्र ही बन्धन से छुटकारा मिलता है।

हयग्रीवप्रयोगः

बिल्वै फलैः कृतो होमः श्रीपदः परिगीयते ।
कुन्दपुष्पाणि जुहुयादिच्छन् वाक्छ्रियमव्ययम् ।
मनुनानेन सञ्जप्तं घृतं ब्राह्मीरसैः श्रृतम् ।
कवितामाहरेत् पुंसामनर्गलविजृम्भिणीम् ।।
वचामनेन सञ्जप्तां भक्षयेत्प्रातरन्वहम् ।
सर्ववेदागमादीनां व्याख्याता जायतेऽचिरात् ।।

हयग्रीव-प्रयोग—बेलफल से हवन करने पर धन प्राप्त होता है। अक्षय वाक्शक्ति-प्राप्ति के लिये चमेलीपुष्पों से हवन करे। ब्राह्मीरस से पके घी के ऊपर हयग्रीव मन्त्र का जप करके उस घी को पीने से मुख से काव्यधारा निकलती है। प्रतिदिन प्रभात में वच के ऊपर हयग्रीव मन्त्र का जप करके उस वच को खा लिया जाय तो थोड़े ही समय में सभी वेद और आगम आदि शास्त्रों की व्याख्या करने की शक्ति प्राप्त होती हैं।

नृसिंहप्रयोगः

श्रीपुष्पैर्जुहुयान्मन्त्री बिल्वकाष्ठेधितेऽनले ।
सहस्रं श्रियमाप्नोति पत्रैर्वा बिल्वसम्भवैः ।।

श्रीपुष्पं लवङ्गपुष्पम्।

प्रसूनैर्वा फलैस्तद्वत् दुर्वाहोमादरोगिताम् ।
दुःस्वप्ने निशि सञ्जाते स्नात्वा मन्त्रं शतं जपेत् ।
अनिद्रा मन्त्रवित्पश्चात्सुस्वप्नस्तस्य जायते ।।
व्याघ्रचौरमृगादिभ्यो महारण्ये भयाकुले ।
रक्षेन्मनुरयं जप्तो भयेष्वन्येषु मन्त्रिणम् ।।
अनेन मन्त्रितं भस्म विषग्रहमहोरगान् ।
नाशयेदचिरादेव मन्त्रस्यास्य प्रभावतः ।।
घोराभिचारे सोन्मादे महोत्पाते महाभये ।
जपेन्मन्त्रं स्मरेदेनं दुःखान्मुक्तो भवेन्नरः ।।
सिंहरूपं महाभीमं नखदंष्ट्रातिभीषणम् ।
स्मृत्वात्मानं विभुं पश्चाद्ध्यायेन्मृगशिशुं रिपुम् ।।
गृहीत्वा गलदेशे तं पुनर्दिक्षु क्षिपेद् द्रुतम् ।
पुत्रमित्रकलत्रादेरुच्चाटो जायते रिपोः ।।
पूर्वमृत्युपदे साध्यनाम कृत्वा स्वयं हरिः ।
निशितैर्नखदंष्ट्राद्यैः खाद्यमानं रिपुं स्मरन् ।।

नित्यमष्टोत्तरशतं जपेन्मन्त्रमतन्द्रितः ।
जायते मण्डलादर्वाक्शत्रुसेनानिवारणम् ॥
विभीतकाष्ठैर्ज्वलिते पावके रिपुमर्दनम् ।
विचिन्त्य देवं नृहरिं सम्पूज्य कुसुमादिभिः ॥
समूलमलुनैर्जुहुयाच्छरैर्दशशतं पृथक् ।
रिपुं खादन्निव जपेन्निर्भिन्दन्निव निक्षिपेत् ॥
कृत्वा सप्तदिनं मन्त्री सेनामिष्टां महीपतेः ।
प्रस्थापयेच्छुभे लग्ने परराष्ट्रजयेच्छया ॥
तस्याः पुरस्तान्नृहरिं निघ्नन्तं रिपुमण्डलम् ।
स्मृत्वा प्रयोगं कुर्वीत यावदायाति सा पुनः ॥
विजित्य निखिलान् शत्रून् सह वीरश्रिया सुखम् ।
आगतो विजयी राजा ग्रामक्षेत्रधनादिभिः ॥
प्रीणयेन्मन्त्रिणं सम्यग्विभवैः प्रीतमानसः ।
मन्त्री यदि न सन्तुष्येदनर्थः स्यान्महीपतेः ॥

नृसिंह के प्रयोग—बेल की लकड़ी की अग्नि में लवंगपुष्प से अथवा बेलपत्र से एक हजार हवन करने पर धन मिलता है। बेल के फल-फूल से हवन करने से भी यह फल मिलता है। दूर्वा के हवन से आरोग्य-लाभ होता है।

रात में बुरा सपना देखने पर प्रातः में स्नान करके नृसिंहमन्त्र का एक सौ आठ जप करे और रात में जब तक नींद न आये तब तक इसी मन्त्र का जप करे तो अच्छे स्वप्न दिखाई देते हैं।

नृसिंहमन्त्र के जप से भयानक जंगल में बाघ, चोर और अन्य हिंसक पशुओं के भय से या अन्य किसी प्रकार के भय से रक्षा होती है। इस मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म को शरीर में लगाने से विष, दुष्ट ग्रह, विषैले सर्प का नाश हो जाता है। घोर अभिचार, महोत्पात एवं महान् भय होने पर नृसिंह का स्मरण करते हुए जप करने से छुटकारा मिलता है।

अपने-आपको नख और दाँत से युक्त अति भीषण भीमकाय नृसिंह मानकर शत्रु को मृगशावक समझकर यह भावना करे कि मैं नृसिंहदेव शत्रु को गले से पकड़कर चारो दिशाओं में फेंक रहा हूँ। ऐसा करने से शत्रु के पुत्र, मित्र और कुटुम्बियों का उच्चाटन होता है। अमुकस्य मृत्युं कुरु में अमुक के स्थान पर साध्य नाम लेकर यह भावना करे कि मैं स्वयं नृसिंहरूप हूँ। अपने तेज नखों से शत्रु का विदारण का रहा हूँ। ऐसी भावना करते हुए प्रतिदिन १०८ मन्त्रजप करे। आलस्य छोड़कर ऐसा करने से निर्दिष्ट समय के अन्दर शत्रुसेना का निवारण हो जाता है।

बहेरा की लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में नृसिंहदेव का ध्यान करके गन्ध-पुष्पादि से उनकी पूजा करे। पूजा के वाद कमलपत्रों से एक हजार हवन करे।

मन्त्रजप के समय मन में यह भावना करे कि मैं शत्रु का भक्षण कर रहा हूँ और उसे दूर फेंक दे। एक सप्ताह तक हवन करके शत्रुराज्य को जीतने की कामना कर राजा की सेना को शुभ लग्न में यात्रा करने का आदेश दे।

सैन्ययात्रा के समय मन ही मन यह भावना करे कि नृसिंहदेव आकर शत्रुसेना का संहार कर रहे हैं।

जब तक सेना विजयी होकर वापस न लौटे तब तक इस प्रयोग का अनुष्ठान करता रहे। राजा भी जब विजयी होकर लौटे, तब सन्तुष्ट मन से गाँव, धान के खेत और धनादि का दान देकर साधक को प्रसन्न करे; क्योंकि अनुष्ठानकर्त्ता के असन्तुष्ट होने से राजा का अनिष्ट हो सकता है।

वराहप्रयोगः

रवौ सिंहगतेऽष्टम्यां शुक्लपक्षे सितां शिलाम् ।
पञ्चगव्येषु निक्षिप्य स्पृष्ट्वा तामयुतं जपेत् ॥
उत्तराभिमुखो भूत्वा तां शिलां निखनेद्भुवि ।
शत्रुचौरमहाभूतैः कृत्याबाधां विनाशयेत् ॥
भानूदये भौमवारे साध्यक्षेत्रात्समाहरेत् ।
मृत्तिकां सञ्जपन्मन्त्रं तं पुनर्विभजेत्त्रिधा ॥
चुल्ल्यामेकां समालिख्य पाकपात्रे तथापराम् ।
गोदुग्धे परमालोड्य शोधितांस्तण्डुलान् क्षिपेत् ।
शोधितेऽग्नौ पचेत्सम्यक् चरुं मन्त्री जपन्मनुम् ॥
अवतार्य चरुं पश्चादग्नौ देवं यथाविधि ।
धूपदीपादिकैरिष्ट्वा पुनराज्यप्लुतं चरुम् ॥
जुहुयादेधिते वह्नौ यावदष्टोत्तरं शतम् ।
एवं सप्तारवारेषु जुहुयात् क्षेत्रसिद्धये ॥
प्रातःकाले भृगोवरि मृदं साध्यमहीतलात् ।
आदाय हरिरापाद्य पूर्ववज्जुहुयात्सुधीः ।
विरोधो नश्यति क्षेत्रे सह चौराद्युपप्लवैः ॥
राजवृक्षसमुत्थाभिः समिद्भिर्मनुनामुना ।
त्रिसहस्त्रं प्रजुहुयात्तस्य स्युः सर्वसम्पदः ॥
शालिभिर्जुहुयान्मन्त्री नित्यमष्टोत्तरं शतम् ।

समृद्धिर्धान्यसंघातैः शोभते तस्य मन्दिरम् ।
तावदाज्येन जुहुयान्मण्डलात्स्वर्णमाप्नुयात् ।।

वराहदेव के प्रयोग—सूर्य के सिंहराशि में प्रवेश करने पर अर्थात् भाद्रपद शुक्लाष्टमी को एक उजला पत्थर लेकर गाय के दूध, दही, घी, गोबर और मूत्ररूप पञ्चगव्य में उसे रख दे। उस पत्थर को स्पर्श करते हुए दश हजार मन्त्र-जप करे। जप के बाद उत्तरमुख होकर उस पत्थर को जमीन में गाड़ दे। ऐसा करने से शत्रुकृत, चोरकृत या महाभूतकृत सभी बाधायें दूर हो जाती हैं।

मंगलवार को सूर्योदय के समय मन्त्रजप करते हुए शत्रु की जमीन से मिट्टी ले आए। उस मिट्टी का तीन भाग करे। एक भाग से चूल्हा पर और एक भाग से पाकपात्र पर लेप करे। तीसरे भाग को गोदुग्ध में मिला कर उस दूध में चावल धोकर डाल दे। तब शोधित अग्नि में उस दूधमिश्रित चावल को पकाकर खीर बनाए। पकाते समय मन्त्र जपता रहे। खीर को आग पर से उतार कर उसी आग में धूप-दीपादि से यथाविधि वराहदेव की पूजा करे। उसी प्रज्ज्वलित अग्नि में वराहदेव की पूजा करके खीर में घी मिलाकर उससे १०८ हवन करे। इस प्रयोग को सात मंगलवारों में करने से विवादग्रस्त क्षेत्र प्राप्त हो जाता है।

शुक्रवार के प्रात:काल में शत्रु की भूमि से मिट्टी लाकर पूर्वोक्त विधि से मिट्टी मिलाकर चरु तैयार करे। अग्नि में आहुति दे। ऐसा करने से क्षेत्रसम्बन्धी विरोध और चौरादि का उपद्रव शान्त हो जाता है।

वराहमन्त्र का जप करते हुए राजवृक्ष सोमालू की समिधा से तीन हजार हवन करने मे सभी सम्पत्ति प्राप्त होती हैं।

साधक चावल से प्रतिदिन एक सौ आठ हवन करे तो उसे समृद्धि-लाभ होता है। धान्य से घर भर जाता है। केवल घी से हवन करने पर उनचास दिनों के अन्दर सुवर्ण प्राप्त होता है।

मृत्युञ्जयप्रयोग:

दुग्धसिक्तैः सुधाखण्डैर्मन्त्री मासं सहस्रकम् ।
आराधितेऽग्नौ जुहुयाद्विधिवद्विजितेन्द्रियः ।

सुधाखण्डं गुडूचिः।

सन्तुष्टः शरङ्कस्तेन सुधाप्लावितविग्रहः ।
आयुरारोगसम्पत्तिर्यशःपुत्रान् विवर्द्धयेत् ।।
सुधा वटतिला दूर्वा पयः सर्पिः पयो हविः ।
इत्युक्तैः सप्तभिर्द्रव्यैर्जुहुयात्सप्तवासरम् ।।
क्रमाद्दशशतं नित्यमष्टोत्तरमतन्द्रितः।

सप्ताधिकान् द्विजान्नित्यं भोजयेन्मधुरान्वितम् ॥
विकारानुगुणं मन्त्री वर्द्धयेद्धोमवासरान् ।
गुरवे दक्षिणां दद्यादरुणा गाः पयस्विनीः ॥
गुरुं सम्पूज्येत् पश्चाद्धनाद्यैर्देवताधिया ।
अनेन विधिना साध्यः कृत्याद्रोहादिभिस्ततः ।
विमुक्तः सुचिरं जीवेच्छरदां शतमञ्जसा ॥
अभिचारे ज्वरे तीव्रे घोरोन्मादे शिरोगदे ।
असाध्यरोगे क्ष्वेडार्तो मोहे दाहे महाभये ॥
होमोऽयं शान्तिदः प्रोक्तः सर्वसम्पत्प्रदायकः ।
द्रव्यैरेतैः प्रजुहुयात् त्रिजन्मसु यथाविधि ॥
भोजयेन्मधुरैर्भोज्यैर्ब्राह्मणान् वेदपारगान् ।
दीर्घमायुरवाप्नोति वाञ्छितां विन्दते श्रियम् ॥
एकादशाहुतीर्नित्यं दूर्वाभिर्जुहुयाद्बुधः ।
अपमृत्युजिदेव स्यादायुरारोग्यवर्द्धनः ॥
त्रिजन्मसु सुधावल्लीकाश्मीरवकुलोद्भवैः ।
समिद्वरैः कृतो होमः सर्वमृत्युगदापहः ॥
सिद्धार्थैर्विहितो होमो महाज्वरविनाशनः ।
अपामार्गसमिद्धोमः सर्वामयनिसूदनः ॥

मृत्युञ्जय के प्रयोग—प्रतिदिन ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विधिवत् संस्कृत अग्नि में एक महीने तक दूधमिश्रित गुडूचीखण्डों से हवन करे। इससे प्रसन्न होकर अमृतमय देह वाले महादेव स्वयं आकर आयु, आरोग्य, सम्पदा, यश और पुत्रवृद्धि कर देते हैं।

१. गुडूची, २. वरगदपत्र, ३. तिल, ४. दूब, ५. दूध, ६. गोघृत, ७. खीर— इन सात वस्तुओं से प्रतिदिन एकाग्र मन से सात दिनों तक एक हजार आठ हवन करे। प्रतिदिन सात से अधिक ब्राह्मणों को मिष्टान्न का भोजन कराए। आहुतियों की संख्या दश सौ है; अतः उसी के अनुरूप दश दिनों तक हवन करना चाहिये। गुरुदेव को देवता समझते हुए धनादि से उनकी पूजा करे। दक्षिणा में दुधारू लाल गाय प्रदान करे। इस प्रयोग से शत्रुकृत अभिचार और विद्रोहादि से छुटकारा मिलता है एवं साधक सौ वर्षों तक सुखपूर्वक जीवित रहता है। किसी का अभिचार हो, कठिन ज्वर हो, उन्माद रोग हो, शिरोरोग या कोई असाध्य रोग हो या मोह, दाह और महाभय-जैसा संकट हो तो इस प्रकार के हवन से शान्ति मिलती है एवं सभी सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं।

तीन जन्मनक्षत्रों में अर्थात् जन्मनक्षत्र, उपनयननक्षन और दीक्षानक्षत्र में उन सात वस्तुओं से यथाविधि हवन करे। वेदज्ञ ब्राह्मणों को मधुर भोजन कराए तो दीर्घ जीवन और अभीष्ट सम्पत्ति प्राप्त होती हैं।

प्रतिदिन दूब से ग्यारह आहुतियाँ देने से अपमृत्यु का निवारण होता है। आयु तथा आरोग्य की वृद्धि होती है।

तीन जन्मनक्षत्रों में गुडूची, कुंकुम, वकुल के पत्तों से हवन करने पर सभी प्रकार के मृत्युरोग दूर होते हैं। श्वेत सरसों के हवन से महाज्वर दूर होता है। अपामार्ग के हवन से सभी प्रकार के रोग शान्त होते हैं।

दक्षिणामूर्तिप्रयोगः

भिक्षाहारो जपेन्मासं मनुमेनं जितेन्द्रियः ।
नित्यं सहस्रमष्टोर्ध्वं परां विन्दति वाक्श्रियम् ॥
त्रिवारं जप्तमेतेन मनुना सलिलं पिवेत् ।
नित्यशो दक्षिणामूर्तिं ध्यायेत्साधकसत्तमः ।
शास्त्रव्याख्यानसामर्थ्यं लभते वत्सरान्तरे ॥
ब्राह्मी सैन्धवसिद्धार्थवचाकुष्ठकणोत्पलैः ।
सुगन्धिसंयुतैः कल्कैः श्रृतं ब्राह्मीरसैर्घृतम् ॥
मनुनानेन सञ्जप्तमयुतं साधु साधितम् ।
निपीतं कविता-कान्ति-बलायुः-श्रीधृतिप्रदम् ॥

दक्षिणामूर्ति शिव के प्रयोग—प्रतिदिन भिक्षा आहारी और जितेन्द्रिय होकर एक महीने तक एक हजार आठ मन्त्रजप करने से उत्तम वाक्शक्ति प्राप्त होती है।

दक्षिणामूर्ति का ध्यान करते हुए इस मन्त्र के तीन बार जप से अभिमन्त्रित जल को नित्य पीने से साधक एक वर्ष के भीतर सभी शास्त्रों की व्याख्या करने की योग्यता प्राप्त कर लेता है।

१. ब्राह्मी, २. सेन्धा नमक, ३. श्वेत सरसो, ४. वच, ५. कूट, ६. पीपर और उत्पल के क्वाथ में सुगन्धित द्रव्य मिलाए। इस क्वाथ में घी मिलाकर ब्राह्मीरस में पकाए। इस घी पर दस हजार मन्त्र का जप करे। इस अभिमन्त्रित घी को पीने से कवित्व शक्ति, तेज, बल, आयु, श्री और धारणा शक्ति की वृद्धि होती है।

भैरवीप्रयोगः

जुहुयादरुणाम्भोजैरदोषैर्मधुराप्लुतैः ।
लक्षसंख्यं तदूर्ध्वं वा प्रत्यहं भोजयेद्द्विजान् ॥

वनिता युवती रम्याः प्रीणयेद्देवताधिया ।
होमान्ते धनधान्याद्यैस्तोषयेद् गुरुमात्मनः ।
एवं कृते जगद्वश्यो रमाया भवनं भवेत् ॥
रक्तोत्पलैस्त्रिमध्वक्तैररुणैर्वा हयारिजैः ।
पुष्पैः पयोऽन्नैः सघृतैर्होमाद्विश्वं वशं नयेत् ॥
वाक्सिद्धिं लभते मन्त्री पलाशकुसुमैर्हुतात् ।
कर्पूरागुरुसंयुक्तं गुग्गुलुं जुहुयात्सुधीः ॥
ज्ञानं दिव्यमवाप्नोति तेनैव स भवेत्कविः ।
क्षीराक्तैरमृताखण्डैर्होमः सर्वापमृत्युजित् ॥
दूर्वाभिरायुषे होमः क्षीराक्ताभिर्दिनत्रयम् ।
गिरिकर्णीभवैः पुष्पैर्ब्राह्मणान् वशयेद् ध्रुवम् ॥
कह्लारैः पार्थिवान् पुष्पैस्तद्वधूः कर्णिकारजैः ।
मालतीकुसुमैर्हुत्वा तत्पुत्रांश्च वशं नयेत् ॥
कोरण्टकुसुमैर्वैश्यान् वृषलान् पाटलोद्भवैः ।
अनुलोमविलोमान्तःस्थितः साध्याह्वयान्वितम् ॥
मन्त्रमुच्चार्य जुहुयान्मन्त्री मधुरलोडितैः ।
सर्षपैः कटुसम्मिश्रैर्वशयेत् पार्थिवान् क्षणात् ॥
अनेनैव विधानेन तत्पत्नीं तत्सुतानपि ।
जातीबिल्वफलैः पुष्पैर्मधुरत्रयसंयुतैः ।
नरनारीनरपतीन् होमतो वशयेद्ध्रुवम् ॥
मालतीवकुलोद्भूतैः पुष्पैश्चन्दनलोडितैः ।
जुहुयात् कवितां मन्त्री लभते वत्सरान्तरे ॥
मधुरत्रयसंयुक्तैः फलैर्बिल्वसमुद्भवैः ।
जुहुयाद्वशयेल्लोकान् श्रियमाप्नोति वाञ्छिताम् ॥
पाटलैः कुसुमैः कुन्दैश्चोत्पलैर्नागचम्पकैः ।
नन्द्यावर्तैर्विकसितैः कृतमालैर्जुहोति यः ।
जायते वत्सरादर्वाक्श्रिया विजितपार्थिवः ॥
साज्यमन्नं प्रजुहुयाद्भवेदन्नसमृद्धिमान् ।
कस्तूरीकुङ्कुमोपेतं कर्पूरं जुहुयाद्वशी ।
कन्दर्पादधिकं सद्यः सौन्दर्यमधिगच्छति ॥
लाजान् प्रजुहुयान्मन्त्री दक्षिक्षीरघृतप्लुतान् ।

विजित्य रोगानखिलान् स जीवेच्छरदां शतम् ।।
पादद्वयं मलयजं पादं कुङ्कुमकेशरम् ।
पादं गोरोचनायाश्च त्रीणि पिष्ट्वा हिमाम्भसा ।।
विदध्यात्तिलकं भाले यान् पश्येद्यैर्विलोक्यते ।
तान् स्पृशेत्स्पृश्यते यैर्वा वश्याः स्युस्तस्य तेऽचिरात् ।।
कर्पूरकपिचोराणि समभागानि कल्पयेत् ।
चतुर्भागगजटामांसी तावती रोचना मता ।।
कुङ्कुमं सप्तभागं स्याद्द्विभागं चन्दनं मतम् ।
अगुरुर्नवभागः स्यादिति भागक्रमेण च ।।
हिमाद्भिः कन्यकापिष्टमेतत्सर्वं सुसाधितम् ।
आदाय तिलकं भाले कुर्याद्भूमिपतीन्नरान् ।।
वनितां मदगर्वाढ्यां मदोन्मत्तान्मतङ्गजान् ।
सिंहव्याघ्रान् महासत्त्वान् भूतवेतालराक्षसान् ।
दर्शनादेव वशयेन्नात्र कार्या विचारणा ।।

भैरवी के प्रयोग—त्रिमधुराक्त लाल कमलों से एक लाख या पचास हजार हवन करे और नित्य ब्राह्मणभोजन कराये। सुन्दरी युवती रमणियों को देवियाँ समझते हुए प्रतिदिन उनकी पूजा करके उन्हें सन्तुष्ट करे। हवन समाप्त होने पर अपने गुरुदेव को धन-धान्यादि से प्रसन्न करे। इस अनुष्ठान से सारा संसार वशीभूत होता है। साधक लक्ष्मीपति बनता है। अथवा त्रिमधुराक्त रक्तोत्पलों या लाल कनेरपुष्पों या घीयुक्त खीर से हवन करे तो सारा जगत् वशीभूत होता है।

पलाशपुष्पों से हवन करे तो वाक्सिद्धि मिलती है। कपूर और अगर को गुग्गुल में मिलाकर हवन करे तो साधक दिव्य ज्ञान पाकर कवि होता है। दूधमिश्रित गुडूचीखण्डों से हवन करे तो सभी प्रकार के अपमृत्यु का निवारण होता है। दूध के साथ दूर्वा से तीन दिनों तक हवन करे तो दीर्घ आयु मिलती है। गिरीकर्णी-पुष्पों से हवन करे तो ब्राह्मण, कल्हारपुष्पों से राजवृन्द, कर्णिकार से राजपत्नियाँ, मालतीपुष्पों से राजपुत्र, पीले झिण्टी पुष्पों से वैश्य और गुलाब के फूलों से हवन करे तो शूद्र वशीभूत होते हैं।

मन्त्र के मध्य में अनुलोम-विलोम से साध्य का नाम प्रविष्ट कर मन्त्रोच्चारण करते हुए त्रिमधु और त्रिकटु-मिश्रित सरसों से हवन करे तो शीघ्र ही राजा-रानी और उनके पुत्रादि वशीभूत होते हैं।

त्रिमधुराक्त जातीपुष्प, बिल्वपुष्प, जातीफल और बिल्वफल से हवन करे तो नर-नारी और नरेश वशीभूत होते हैं। चन्दनयुक्त मालती और वकुलपुष्पों से हवन करे तो साधक

एक वर्ष के अन्दर कविता करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। त्रिमधुराक्त बेलफलों से हवन करे तो सारे संसार का वशीकरण होता है एवं वाञ्छित सम्पदा प्राप्त होती है। पाटलपुष्प, कुन्दपुष्प, उत्पल, नागकेशर, चम्पापुष्प, नन्द्यावर्तपुष्प और कंचनपुष्प से हवन करे तो एक वर्ष में राजैश्वर्य से भी अधिक वैभव मिलता है। घृतयुक्त अन्न से हवन करने पर समृद्धि होती है। जो व्यक्ति ब्रह्मचर्यपूर्वक कस्तूरी, कुंकुम और कपूर से हवन करता है, वह कामदेव से भी अधिक सुन्दर होता है। दूध-दही-घी से युक्त लावा से हवन करे तो सभी रोगों से मुक्त होकर सौ वर्षों तक जीवित रहता है।

दो भाग चन्दन, एक भाग कुंकुम-केशर, एक भाग गोरोचन को शीतल जल में पीसकर उससे मस्तक पर तिलक करे। ऐसा तिलकधारी जिसे देखता है या जो साधक को देखता है या साधक जिसका स्पर्श करता है, वे सभी तत्काल वशीभृत हो जाते हैं।

कपूर, कपि और चोर को समान भाग लेकर उसमें चार भाग जटामासी, चार भाग गोरोचन, सात भाग कुंकुम, दो भाग कस्तूरी और नौ भाग अगरु मिलाकर शीतल जल में किसी कन्या से पीसवाकर इस घोल को मन्त्रपूत कर उससे मस्तक पर तिलक लगाए तो देखने वाले शासक, सभी पुरुष, रूप-यौवनगर्विता स्त्रियाँ, मतवाले हाथी, सिंह, व्याघ्र, अन्य महाबली पशु, भूत, वेताल और राक्षस आदि वशीभूत हो जाते हैं।

सुन्दरीप्रयोग:

ज्ञानार्णवे—

मल्लिका-मालती-जाती-कुसुमैर्मधुमिश्रितैः।
घृतपूर्णैर्हुनेद्देवि वागीशत्वं प्रजायते ।
मूकस्यापि हि मूढस्य शिलारूपस्य नान्यथा ।।
जवापुष्पैराज्यसिक्तैः करवीरैस्तथाविधैः ।
हवनान्मोहयेन्मन्त्री लोकत्रयनिवासिनः ।।
कर्पूरं कुङ्कुमं देवि मिश्रं मृगमदेन हि ।
हवनान्मदनो देवि मन्त्रिणा विजितो भवेत् ।
सौभाग्येन विलासेन सामर्थ्येनापि सुव्रते ।।
चम्पकैः पाटलैर्हुत्वा श्रियं प्रोल्लसिताम्बराम् ।
प्राप्नोति मन्त्री महतीं स्तम्भयेज्जगतीमिमाम् ।।
श्रीखण्डं गुग्गुलुं चन्द्रमगुरुं होमयेत्ततः ।
नागेन्द्रासुरदेवानां पुरन्ध्रीर्वशमानयेत् ।।
सर्वलोका वशास्तस्य भवन्त्येव न संशयः ।
लक्षहोमाल्लभेद्राज्यं दारिद्र्यभयपीडितः ।।

दुर्गोपशमनं देवि पलत्रिमधुहोमतः ।
रुधिराक्तेन छागस्य मांसेन निशि होमतः ॥
मधुरत्रययुक्तेन गुरुणोक्तविधानतः ।
परराष्ट्रं महादुर्गं समस्तं स्ववशं नयेत् ॥
गोक्षीरं मधुदध्याज्यं पृथग्घुत्वा वरानने ।
आयुर्बलमथारोग्यं समृद्धिर्जायते नृणाम् ॥
क्रमेण शैलजे क्षीरमधुभ्यां मृत्युनाशनम् ।
दधिमाक्षिकहोमेन सौभाग्यं धनमाप्नुयात् ॥
सितया केवलं होमं वैरिस्तम्भनकारकः ।
होमो दधिमधुक्षीरलाजैश्च वीरवन्दिते ।
कालहन्ता रोगहन्ता मृत्युहन्ता न संशयः ॥
कमलैररुणैर्होमः सम्यक्सम्पत्तिदायकः ।
रक्तोत्पलैर्जगद्वश्यं राजानो वशगाः क्षणात् ॥
नीलोत्पलैर्महादुष्टा वशमायान्ति नान्यथा ।
श्वेतोत्पलैः श्रियं वाचं लभते हवनात्प्रिये ॥

सुन्दरी के प्रयोग—ज्ञानार्णव में शिवजी कहते हैं कि हे देवि! मधुमिश्रित घीपूर्ण मल्लिका, मालती, जातीपुष्पों से हवन करे तो मूक, निर्बोध, पत्थर-जैसी जड़ प्रकृति वाला मनुष्य भी वागीश बन जाता है। घी-मिश्रित जपा और कनेरपुष्पों से हवन करे तो साधक तीनों लोक के प्राणियों को मोहित कर सकता है। हे देवि! कस्तूरीयुक्त कपूर और कुंकुम से हवन करे तो साधक सौभाग्य, विलास और सामर्थ्य में कामदेव पर भी विजय प्राप्त कर सकता है।

चम्पा और गुलाबफूलों से हवन करे तो साधक अनुपम श्रीलाभ करता है। वह सारे संसार को स्तम्भित करने में समर्थ होता है। चन्दन, गुग्गुल, कपूर और अगर से हवन करे तो देव-दैत्य-नागों की कामिनियाँ वशीभूत होती हैं। सारे लोक वश में हो जाते हैं। इस प्रकार का हवन एक लाख करे तो अति दरिद्र व्यक्ति भी राजैश्वर्य को प्राप्त करने में समर्थ होता है।

हे देवि! त्रिमधुराक्त मांस से हवन करे तो गृह अशान्ति से रहित होता है। गुरु द्वारा बताई गयी विधि से रात में रक्ताक्त छागमांस से हवन करे तो साधक परराष्ट्र और दुर्ग को अपने अधीन करने में समर्थ होता है।

हे वरानने! गोदुग्ध, मधु, दधि और घृत से अलग-अलग हवन करे तो आयु, बल, आरोग्य और समृद्धि प्राप्त होती है। हे शैलपुत्रि! दूध और मधु से बारी-बारी से हवन करे

तो मृत्यु का निवारण होता है। दधिमिश्रित मधु से हवन करे तो सौभाग्य और धन की प्राप्ति होती है।

केवल शक्कर से हवन करे तो शत्रु का स्तम्भन होता है। हे वीरपूजिते! दधि, मधु, दुग्ध और लाजा से हवन करे तो रोग और मृत्युनिवारण की शक्ति प्राप्त होती है। लाल कमल से हवन करे तो विपुल सम्पत्ति प्राप्त होती है। लाल कुमुद से हवन करे तो शीघ्र ही सारा संसार वशीभूत हो जाता है। नीलोत्पल से हवन करे तो महा दुष्ट भी वशीभूत होते हैं। हे प्रिये! श्वेतोत्पल से हवन करे तो लक्ष्मी और सरस्वती की कृपा प्राप्त होती है।

तथा—

अक्षमालां प्रपूज्याथ चन्दनेन सुपूजिताम् ।
समाश्रित्य जपेद्विद्यां लक्षमात्रं सदा शुचिः ॥
योषितो भ्रामयन्त्येव मनस्तस्य सुनिश्चितम् ।
तदा द्वितीयलक्षन्तु प्रजपेत्साधकोत्तमः ॥
पातालतलनागेन्द्रकन्यकाः क्षोभयन्ति तम् ।
तासां कटाक्षमात्रेण सम्मोहयति साधकम् ॥
तदा लक्षत्रयं कुर्यात्साधकः स्थिरमानसः ।
तृतीयलक्षे सञ्जप्ते भ्रामयन्ति सुराङ्गनाः ॥
अभिमानेन सौन्दर्यसौभाग्यमदकारिणा ।
साधकं भ्रामयन्त्येव तत्रासौ स्थिरमानसः ॥
तदा लक्षत्रयं साधु सर्वपापनिकृन्तनम् ।
एवं लक्षत्रये जप्ते साधकः सुस्थमानसः ॥
सम्मोहयति स्वर्लोकभूर्लोकतलवासिनः ।
पुरुषा योषितो वश्याश्चराचरमपि प्रिये ॥
गोरोचनादिभिर्द्रव्यैश्चक्रराजं समालिखेत् ।
अतीवसुन्दरीं रम्यां तन्मध्ये प्रतिमां वराम् ॥
ज्वलन्तीं नामसहितां महाबीजविदर्भिताम् ।
चिन्तयेत्तु ततो देवीं योजनानां सहस्रतः ॥
अदृष्टपूर्वा देवेशि श्रुतमात्रापि दुर्लभा ।
राजकन्याथवा भार्या भयलज्जाविवर्जिता ।
आयाति साधकं सम्यङ्मन्त्रमूढा सती प्रिये ॥
चक्रमध्यगतो भूत्वा साधकश्चिन्तयेत् सदा ।
उद्यद्भानुसहस्राभमात्मानमरुणं तथा ।

साध्यमप्यरुणीभूतं चिन्तयेत्परमेश्वरि ॥
अनेन क्रमयोगेन स्वयं कन्दर्परूपवान् ।
सर्वसौभाग्यसुभगः सर्वलोकवशङ्करः ॥
सर्वरक्तोपचारैश्च मुद्रासहितविग्रहम् ।
चक्रं सम्पूजयेद्यस्तु यस्य नाम विदर्भितम् ॥
स भवेद्दासवद्देवि धनाढ्यो वापि भूपतिः ।
चक्रमध्यगतं कुर्यान्नाम यस्यास्तु योषितः ॥
अदृष्टाया महेशानि योनिमुद्राधरो बुधः ।
हठादानयते शीघ्रं यक्षिणीं राजकन्यकाम् ॥
नागकन्यामप्सरसं खेचरीं वा सुराङ्गनाम् ।
विद्याधरीं दिव्यरूपां ऋषिकन्यां रिपुस्त्रियम् ॥
मदनोद्भूतसन्तापस्थलज्जघनमण्डलाम् ।
कामबाणविभिन्नान्तःकरणां लोलचक्षुषम् ॥
महांकामकलाध्यानयोगात्तु सुरवन्दिते ।
क्षोभयेत्स्वर्गभूर्लोकपातालतलयोषितः ॥

चन्दन का लेप लगाकर रुद्राक्षमाला का पूजन करे। पवित्र भाव से इस माला से एक लाख जप करने पर जब सुन्दर रमणियाँ आकर साधक के मन को लुभाने की चेष्टा करें तब पुनः एक लाख जप करे।

दूसरे लक्षजप के समय पाताल से नागकन्यायें आकर साधक को मोहित करने की चेष्टा करती हैं; किन्तु उस समय भी साधक एकाग्र मन से तीसरा लक्ष जप करने में जुट जाय।

तृतीय लक्षजप के पूरा होने पर देवरमणियाँ आकर साधक को व्याकुल करने का प्रयत्न करती हैं; किन्तु साधक अपनी साधना में अटल रहते हुए पुनः तीन लाख जप करे। तब स्वर्ग, मर्त्य और पातालवासी सभी प्राणी, चराचर जगत् उस साधक के वशीभूत हो जाता है। इसके बाद गोरोचन आदि से चक्रराज को अंकित करे।

उस चक्रराज के मध्य में अत्यन्त सुन्दर रमणीया प्रतिमा स्थापित करे। महामन्त्र से विदर्भित कर उस प्रतिमा में साध्य का नाम लिखे। तब देवी का ध्यान करे।

इस प्रयोग से अनुपम, अदृष्टपूर्वा राजनन्दिनी या राजरानी भी भय-लाज छोड़कर मन्त्रमुग्ध होकर साधक के समीप आ जाती है।

उस समय चक्र के मध्य में विराजमान साधक स्वयं को उदीयमान हजार सूर्यों के समान रक्त वर्ण का होने की भावना करे। साध्य के भी रक्त वर्ण के होने की भावना करे।

ऐसा करने से साधक कामदेव के समान रूपवान और सौभाग्यशाली होकर सारे लोकों को वशीभूत करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है।

उक्त विधि के अनुसार जिसके नाम को विदर्भित करके मुद्रा और प्रतिमा के साथ चक्र की पूजा की जायगी तो भले ही वह बहुत धनाढ्य या राजा हो, साधक का दास-जैसा बन जाता है।

हे महेश्वरि! साधक ने जिस रमणी को कभी देखा भी न हो, यदि उसका नाम भी चक्रमध्यगत कर योनिमुद्रा धारण करे तो वह यक्षिणी, राजकन्या, नागकन्या, अप्सरा, खेचरी, देवकामिनी, विद्याधरी, दिव्य रूपवती ऋषिकन्या, शत्रुपत्नी को वलपूर्वक शीघ्र ला सकता है।

हे सुरपूजिते! इस प्रकार कामकला के ध्यानयोग से स्वर्ग, पृथ्वी, पातालवासिनी सभी रमणियों को साधक मुग्ध कर सकता है।

रोचनाभागमेकन्तु भागमेकन्तु कुङ्कुमम् ।
अथ भागद्वयं देवि चन्दनं मर्दयेत्समम् ।।
एकत्र तिलकं कुर्यात्त्रैलोक्यवशकारिणम् ।
अष्टोत्तरशतं विद्यां मन्त्रयित्वा वशं नयेत् ।।
राजानं नगरं ग्रामं येन यद्यत्प्रदृश्यते ।
मन्त्रिणा परमेशानि तत्सर्वं तस्य वश्यगम् ।।
ताम्बूलं धूपमुदकं पत्रं पुष्पं फलं दधि ।
दुग्धं चूर्णमात्रं च वस्त्रं कर्पूरमेव च ।।
कस्तूरीघुसृणञ्चैव लवङ्गं जातिपत्रकम् ।
जलं वा वस्तु सकलं यद्यत्तु परमेश्वरि ।।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा यस्मै यस्मै प्रयच्छति ।
स वश्यो जायते देवि नात्र कार्या विचारणा ।।
स्त्रियस्तु सकला वश्या दासीभूता भवन्ति ताः ।
हठाकर्षणमेतत्तु कथितं नान्यथा भवेत् ।।

हे देवि! एक भाग गोरोचन, एक भाग कुंकुम, दो भाग चन्दन लेकर एक में मिलाए। उससे तिलक लगाए तो तीनों लोक वशीभूत होते हैं।

उक्त द्रव्य पर एक सौ आठ बार मन्त्रजप करे। तब तिलक लगाए तो साधक राज्य, नगर, ग्राम, जिस पर भी दृक्पात करेगा, वह सभी उसके वशीभूत होते हैं। हे परमेश्वरि! उस समय जिस व्यक्ति को साधक देखेगा, वह उसके वशीभूत हो जाता है।

ताम्बूल, धूप, जल, पत्र-पुष्प, फल, दही, दूध, घी, चूर्ण, वस्त्र, कपूर, कस्तूरी, कुंकुम, इलायची, लवंग, जाती, तेजपत्र अथवा जल में से किसी को एक सौ आठ मन्त्रजप से अभिमन्त्रित कर उसे जिस व्यक्ति को दिया जायगा, वह तत्क्षण ही साधक के वशीभूत हो जायगा। इस प्रयोग से सभी रमणियाँ वशीभूत होकर दासी-जैसी हो जाती हैं। इसे ही हठाकर्षण कहते हैं।

अथ वक्ष्ये महेशानि महापातकनाशनम् ।
शिवां सम्पूजयेद्देवि सुगन्धैः कुसुमैः प्रिये ।
महापातकयुक्तात्मा तत्क्षणात् पापहा भवेत् ॥
शमीदूर्वाङ्कुराश्वत्थपल्लवैरथवार्कजैः ।
मासेन हन्ति कलुषं सप्तजन्मकृतं नरः ॥
मुद्रासन्नद्धयोगः सन्पूर्वोक्तध्यानयोगतः ।
लक्षमात्रं जपेद्यस्तु महापापैः प्रमुच्यते ॥
लक्षद्वयेन पापानि सप्तजन्मकृतान्यपि ।
महापातकमुख्यानि नाशयेन्नात्र संशयः ॥
ततो लक्षद्वयं जप्त्वा मन्त्रमेनं कुलेश्वरि ।
महापातककोटिस्तु नाशयेन्नात्र संशयः ॥
चतुर्लक्षजपाद्देवि महावागीश्वरो भवेत् ।
कुबेर इव देवेशि पञ्चलक्षान्न संशयः ॥
षड्लक्षजपमात्रेण महाविद्याधरो भवेत् ।
सप्तलक्षजपान्मन्त्री खेचरीमेलको भवेत् ॥
अष्टलक्षजपान्मन्त्री देवपूज्यो भवेन्नरः ।
अणिमाद्यष्टसिद्धीनां नायको भवति प्रिये ।
वशगास्तस्य राजानो योषितश्च विशेषतः ॥
नवलक्षप्रमाणानि जपेत्त्रिपुरसुन्दरीम् ।
रुद्रमूर्तिः स्वयं कर्ता स तु साक्षान्न संशयः ।
सर्वैर्वन्द्यः सदा सुस्थः सर्वसौभाग्यवान्भवेत् ॥

हे महेश्वरि! अब महापातकनाश का उपाय बतलाते हैं। सुगन्धित पुष्प से सुन्दरी की पूजा करने से महापापी व्यक्ति भी पाप से मुक्त हो जाता है। शमीपत्र, दूर्वा, अश्वत्थपत्र और अर्कपत्र से हवन करने पर एक महीने में महापाप से छुटकारा होता है। मुद्रा बाँधकर पूर्वोक्त ध्यानयोग से एक लाख जप करे तो निश्चय ही महापाप नष्ट हो जाता है।

इसी प्रकार दो लाख जप करे तो सात जन्मों के बड़े से बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं।

हे कुलेश्वरि! एक महीने में दो लाख मन्त्रजप करे तो कोटि महापाप नष्ट होते हैं।

हे देवि! चार लाख जप से साधक महावागीश्वर होता है। पाँच लाख जप से कुबेर के समान ऐश्वर्यवान होता है। छ: लाख जप करे तो महाविद्याधर, सात लाख जप से खेचरी गण का सहचर, आठ लाख जप से देवपूज्य और अणिमादि आठो सिद्धियों का स्वामी होकर राजाओं को; विशेषत: रमणियों को वशीभूत करने में समर्थ होता है।

त्रिपुरसुन्दरी के नौ लाख जप करने से जपकर्ता रुद्रस्वरूप होता है। सभी उसकी वन्दना करते हैं। सर्वसौभाग्यसम्पन्न होकर वह सदैव स्वस्थ जीवन व्यतीत करता है; इसमें सन्देह नहीं है।

छिन्नमस्ताप्रयोग:

श्रीफलानां पलाशानां तथैवोडुम्बरस्य च ।
सर्वसिद्धिप्रदो होमः कर्तव्योऽथ प्रयत्नतः ।।
शतमष्टोत्तरं हुत्वा जपं कुर्यात्ततः परम् ।
मालतीकुसुमैर्होमः कर्तव्यो मधुसंयुतैः ।
घृतेन सहितो वापि वागीशत्वप्रदायकः ।।
आज्ययुक्तेन भक्तेन बलिर्देयः सदामिषैः ।
षण्मासं दधिसंयुक्तैर्लक्ष्मीस्तस्य स्थिरा भवेत् ।।
छागमांसं सरक्तञ्च घृतेन प्लावितं तथा ।
यो जुहोत्ययुतं देवीं राजा तस्य वशो भवेत् ।।
श्वेतेन करवीरेण होमं सम्यक्करोति यः ।
लक्षमात्रं विधानेन स जीवेच्छरदां शतम् ।।
जुहुयात्तिलपुष्पेण मधुना तेन साधकः ।
लक्षसंख्यानि यो देवीं सिद्धिस्तस्य न संशयः ।।
कर्णिकारसहस्राणि यो जुहोति घृतैः सहः ।
स प्राप्नोति परां सिद्धिमीप्सितां सुरसुन्दरि ।।
पायसेन चरेद्धोमं घृतेन सह सुन्दरि ।
त्रिसन्ध्यं मासमात्रन्तु वागीशत्वमवाप्नुयात् ।।

छिन्नमस्ता के प्रयोग—बेलपत्र, पलाशपत्र और गूलर की समिधा से हवन करे तो सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार १०८ आहुति देकर जप करे।

मधु या घी से युक्त मालतीपुष्पों से हवन करे तो वागीशत्व प्राप्त होता है। छ: महीने तक प्रतिदिन घीसहित अन्न और दधियुक्त मांस की बलि प्रदान करे तो लक्ष्मी अचल होकर साधक के घर में निवास करती है।

घृताप्लावित छागमांस से दस हजार हवन करे तो राजा वशीभूत होते हैं। श्वेत कनेरपुष्पों से विधिवत् एक लाख हवन करे तो सौ वर्षों की आयु होती है। मधुयुक्त तिलपुष्पों से एक लाख हवन करे तो निस्सन्देह अभीष्ट सिद्ध होता है।

हे सुरसुन्दरि! जो अमलतासपुष्पों से एक हजार हवन करता है, वह अपनी वाञ्छित श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त करता है।

हे सुन्दरि! एक मास तक तीनों सन्ध्याओं में घृताक्त खीर से हवन करे तो वागीशत्व प्राप्त होता है।

श्यामाप्रयोगः

कालीतन्त्रे—

अथ काम्यविधिं वक्ष्ये येन सर्वत्र पारगः ।
साधक साधयेत्सिद्धिं देवानामपि दुर्लभाम् ।।
कुलागारं पुष्पिताया दृष्ट्वा यो जपते नरः ।
अयुतैकप्रमाणेन साधकः स्थिरमानसः ।
केवलं गुप्तभावेन स तु विद्यानिधिर्भवेत् ।।
संस्कृताः प्राकृताः शब्दा लौकिका वैदिकास्तथा ।
वशमायान्ति ते सर्वे साधकस्य च नान्यथा ।।
अथवा मुक्तकेशस्तु हविर्भुक्त्वा सुसंयतः ।
प्रजपेदयुतं प्राज्ञ एतदेव फलं लभेत् ।।
नग्नां परलतां पश्यन् अयुतं यस्तु साधकः ।
प्रजपेत् स भवेत् शीघ्रं विद्याया वल्लभः स्वयम् ।।
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनः कुण्ठतां गताः ।
गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते ।।
तन्नाम्ना सुधियः सर्वे प्रणमन्ति मुदान्विताः ।
तस्य वाक्यपरिचयाज्जडा भवन्ति वाग्मिनः ।।

श्यामादि देवताओं के प्रयोग—कालीतन्त्र में जो विधि बतलायी गयी है, उसके अनुसार साधना करने से साधक सभी विषयों का पारदर्शी होकर देवदुर्लभ सिद्धि प्राप्त करने में समर्थ होता है।

रजस्वला रमणी की योनि को देखते हुए गुप्त भाव से स्थिरचित्त होकर दश हजार मन्त्रजप करे।

इस जप के प्रभाव से साधक सभी विषयों का ज्ञाता हो जाता है। संस्कृत, प्राकृत, लौकिक, वैदिक सभी शब्दों का मर्मज्ञ हो जाता है।

हविष्याशी रहते हुए अतिसंयमपूर्वक मुक्तकेश होकर श्यामामन्त्र का दस हजार जप करे तो साधक को इसके पूर्ववर्णित फल की प्राप्ति होती है।

जो साधक परस्त्री को नग्न देखते हुए दस हजार जप करता है, वह शीघ्र ही विद्या की कृपा प्राप्त कर लेता है। उस साधक को देखते ही वादी लोग कुण्ठित हो जाते हैं।

सभा में उसके मुख से गद्य-पद्यमयी वाणी धाराप्रवाह निकलती है। उस साधक के नाममात्र को सुनकर ही सभी लोग आनन्दपूर्वक उसे प्रणाम करते हैं। मूर्ख व्यक्ति भी उसके सम्पर्क में आकर उत्तम वक्ता बन जाता है।

कुलचूडामणौ—

रजोयुक्तां समासाद्य तद्गात्रे स्वेष्टदेवताम् ।
पूजयित्वा महारात्रौ त्रिदिनं प्रजपेन्मनुम् ।
लक्षपीठफलं देवि लभते नात्र संशयः ॥
वेतालपादुकासिद्धिं खड्गसिद्धिञ्च भैरव ।
अञ्जनं तिलकं गुह्यं साधयेत्साधकोत्तमः ॥

प्रजपेत्प्रतिदिनमष्टोत्तरसहस्रमित्यर्थः।

यत्र जापे च होमे च संख्या नोक्ता मनीषिभिः ।
तत्रैव गणना प्रोक्ता गजान्तकसहस्रकम् ॥
विद्याकामेन होतव्यं पद्मैर्मधुसमन्वितैः ।
धनकामेन होतव्यं तिलाज्यमधुसंयुतम् ॥
बन्धूकपुष्पहोमेन दासञ्च कुरुते नृपम् ।
सर्पिर्लवणहोमेन सदाकर्षति कामिनी ॥
वकुलैर्होममात्रेण सौभाग्यं लभते नरः ।
मल्लिकाजातिपुन्नागकदम्बैः पुष्टिमाप्नुयात् ।
क्षीराज्यतगरैर्होमान्महतीं कवितां लभेत् ॥
चन्दनागुरुकाश्मीरकर्पूरहोमतः पुनः ।
मन्त्री नीलसरस्वत्याः सर्वाभीष्टमवाप्नुयात् ॥

नीलसरस्वतीपदमुपलक्षणम्।

कर्पूरहोमतो मन्त्री सर्वाभीष्टमवाप्नुयात् ।
सम्पूज्य मूलमन्त्रेण बिल्वपत्रैर्घृतान्वितैः ।
सहस्रं प्रत्यहं हुत्वा प्राप्नोति परमां गतिम् ॥

प्रतिदिनमिति मण्डलपर्यन्तम्।

घृताक्तमालतीपुष्पहोमाद्द्रुतकविर्भवेत् ।

अत्र यत्र यत्र होमे संख्या नोक्ता तत्र तत्रायुतसंख्यया होतव्यम्। तदुक्तं तत्रैव—

सर्वस्यैव तु होमस्य नियमोऽयुतसंख्यकः ।

कुलचूड़ामणितन्त्र में कहा गया है कि रजस्वला रमणी को पाकर उसके अंग में इष्टदेवता की पूजा कर महानिशा में तीन रातों तक मन्त्रजप करे तो हे देवि! एक लाख पीठों में पूजा करने का फल प्राप्त होता है।

इस प्रकार की साधना से साधक शक्ति पाकर वेतालसिद्धि, पादुकासिद्धि, खड्गसिद्धि, अञ्जनसिद्धि, तिलकसिद्धि और अन्य बहुत-सी गोपनीय सिद्धियों को प्राप्त करने में समर्थ होता है।

तीन दिन जप करने के सम्बध में यह ज्ञातव्य है कि प्रतिदिन एक हजार आठ जप करना चाहिये; क्योंकि यह नियम है कि जहाँ जप या हवन की संख्या न बताई गई हो, वहाँ मनीषियों ने एक हजार आठ जप-हवन का निर्देश दिया है।

विद्याकामना से मधुयुक्त कमलों से, धनकामना से मधुयुक्त तिल-घी से, राजवशीकरण में बन्धूकपुष्पों से, नारी-आकर्षण में लवणयुक्त घी से, सौभाग्यलाभ की कामना में वकुलपुष्पों से, पुष्टिलाभ की कामना में मल्लिका-जाती-पुन्नाग और कदम्बपुष्पों से हवन करना चाहिये।

चन्दन, अगर, कुंकुम, कपूर से नीलसरस्वती के मन्त्र से हवन करे तो अभीष्ट कामना पूर्ण होती है। यहाँ नीलसरस्वती का नाम केवल प्रतीकात्मक है। कालिकामन्त्र से भी यह हवन कर सकते हैं। कपूर से हवन करने पर सभी कामनायें पूरी होती हैं।

मूल मन्त्र से पूजा करके घृतयुक्त बेलपत्रों से एक वर्ष तक प्रतिदिन एक हजार जप करे तो मोक्ष मिलता है। यहाँ प्रतिदिन से तात्पर्य मण्डल से है।

मण्डल शब्द कर्मदिवसों की सीमा उनचास दिनों का बोधक है। पूर्वोक्त विधानों में जहाँ-जहाँ मण्डल शब्द आया है, वहाँ-वहाँ यही आशय समझना चाहिये।

घृताक्त मालतीपुष्पों से हवन करने पर शीघ्र आशुकवित्व का शक्ति मिलती है। जहाँ हवन की संख्या निर्दिष्ट नहीं है, वहाँ दस हजार आहुतियों से हवन करे। कालीतन्त्र में बताया गया है कि सभी होमों में दस हजार की संख्या का ही नियम है।

तर्पणम्

मस्त्यसूक्ते—

मधुना तर्पणं कुर्यात्सर्वकामप्रपूरकम् ।
मन्त्रसिद्धिकरं साक्षान्महापातकनाशनम् ॥

नीलतन्त्रे—

कर्पूरमिश्रितैस्तोयैर्मासमात्रं हि तर्पयेत् ।
वशीकृत्य नृपान् सर्वान् भोगो स्याद्यावदायुषम् ॥
घृतैः पूर्णायुषः सिद्ध्यै दुग्धैरारोग्यसिद्धये ।
अगुरुमिश्रितैस्तोयैः सर्वकालः सुखी भवेत् ॥
नारिकेलोदकैर्मिश्रैस्तोयैः सर्वार्थसिद्धिये ।
मरीचमिश्रितैस्तोयैस्तथा शत्रून् विनाशयेत् ॥
केवलैरुष्णतोयैँश्च शत्रुमुच्चाटयेत्क्षणात् ।
ज्वराविष्टो भवेत्तेन दुग्धसेकात्समं नयेत् ॥

सिद्धसारस्वते—

शताभिजप्तमात्रेण रोचनातिलकं नरः ।
कृत्वा पश्यति यं मन्त्री तं कुर्याद्दासवत्सुधीः ॥

तर्पण और उसका फल—मत्स्यसूक्त में वर्णन है कि मधु से तर्पण करने पर सभी कामनायें पूर्ण होती हैं, मन्त्र सिद्ध होता है और सभी पापों का नाश होता है।

नीलतन्त्र के अनुसार जो कर्पूरमिश्रित जल से एक महीने तक तर्पण करता है, वह सभी राजाओं को वशीभूत करके सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। पूर्णायु की कामना हो तो घृत से एवं आरोग्यलाभ की इच्छा होने पर दूध से तर्पण करे। अगरमिश्रित जल से तर्पण करने पर बहुत समय तक जीवन सुखी रहता है। सभी कामनाओं की सिद्धि के लिये नारियलजल से तर्पण करना चाहिये। मरिचमिश्रित जल से तर्पण करने पर शत्रु का नाश होता है। केवल गरम जल से तर्पण करने पर शत्रु का उच्चाटन तत्काल होता है। उष्ण जल के प्रभाव से शत्रु ज्वर से पीड़ित होता है। उस ज्वर की शान्ति दूध के अभिषेक से होती है।

सिद्धसारस्वत में कहा है कि साधक गोरोचन के ऊपर एक सौ मन्त्रजप करे। फिर उस गोरोचन से तिलक लगाकर जिस पर दृष्टिपात करेगा, वही वशीभूत हो जायगा।

फेत्कारीये—

उपचारविशेषेण राजपत्नीं वशं नयेत् ।
राजानं जपमात्रेण बलिना सकलं जगत् ॥

उपचारविशेषेणेति अधिकारिभेदाद् बोद्धव्यम्। जपमात्रेणेति पूजाबहिर्भावेनेत्यर्थः। बलिद्रव्यन्तु मत्स्यसूक्ते—

रम्भाजातीबीजपूरं सुगन्धिपरिमिश्रितम् ।
मिश्रीकृत्य बलिन्दद्यादष्टम्याञ्च विशेषतः ॥

बलिमन्त्रस्तु—

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य उग्रतारे ततः परम् ।
विकंटदंष्ट्रे मोहयपदद्वयं समुच्चरेत् ।
मारय खादय शत्रून् पचद्वयं वदेत्ततः ॥

ये मां हिंसितुमुद्यता योगिनी चक्रैस्तान् हारय हूं फट् स्वाहा परविद्यामाकर्षय त्रुटद्वयं कपाले गृह्ण गृह्ण बलिं स्वाहेति। अयन्ताराविषये, कालिकादौ तु तत्पटलोक्तबलिसम्भारो बोद्धव्यः।

उपचार-विशेष—फेत्कारीतन्त्र में बताया गया है कि उपचारविशेष द्वारा अर्चन करने पर राजपत्नी को, जप से राजा को और बलि से सारे संसार को वशीभूत किया जा सकता है। यहाँ अधिकारीभेद से उपचारविशेष भी भिन्न-भिन्न समझना चाहिये। पूजांग जप से भिन्न पृथक् केवल जप को ही जप समझना चाहिये।

बलिद्रव्य के सम्बन्ध में मत्स्यसूक्त में कहा गया है कि केला, जायफल, अनार में सुगन्धि द्रव्यों को मिलाकर बलि देनी चाहिये। बलिदान के लिए प्रशस्त तिथि अष्टमी है।

बलिमन्त्र—उग्रतारे विकटदंष्ट्रे! मोहय मोहय मारय खादय शत्रून् पच पच ये मां हिंसितुमुद्यता योगिनीचक्रैस्तान् हारय हूं फट् स्वाहा। परविद्यामाकर्षय, त्रुट त्रुट कपाले गृह्ण गृह्ण बलिम् स्वाहा। यह मन्त्र तारा से सम्बन्धित है। काली आदि के बारे में उनके पटल में जो मन्त्रादि बतलाए गए हैं, उन्हीं को प्रयोग में लाना चाहिये।

पाठान्तर—उक्त बलिमन्त्र का दूसरा रूप यह है—ॐ उग्रतारे विकटदंष्ट्रे! परपक्षं मोहय मोहय मारय खादय शत्रून् पच पच ये हिंसितुमुद्यता योगिनीचक्रैस्तान् दारय हुं फट् स्वाहा। परविद्यामाकर्षय फट् फट्। कपाले गृह्ण गृह्ण बलिं स्वाहा।

निग्रहाद्युपायः

वीरतन्त्रे—

श्मशानाङ्गारमादाय मङ्गले वासरे निशि ।
कृष्णवस्त्रेण संवेष्ट्य बध्नीयाद्रक्ततन्तुना ॥
शताभिमन्त्रितं कृत्वा निक्षिपेद्वैरिवेश्मनि ।
सप्ताहाभ्यन्तरे तस्य चोच्चाटनमिदं महत् ॥

तदुक्तं फेत्कारीये—

नरास्थिनि लिखेन्मन्त्रं क्षारयुक्तहरिद्रया ।
सहस्रं परिसञ्जप्य निशायां शनिवासरे ।
निक्षिप्यते यस्य गेहे मृत्युस्तस्य द्विमासतः ॥

क्षेत्रे तु शस्यहानिः स्याद्धयहानिस्तुरङ्गमे ।
धनहानिर्धनागारे ग्राममध्ये तु तत्क्षयः ।।

क्षारस्तु श्येनविड्युक्तं विड्लवणम्। हृल्लेखाधोगतरेफमध्ये अमुकामुकयोर्महाद्वेषं कुरु इति। तदुक्तम्—

द्वेषे तु विलिखेन्मन्त्रं प्रेतकर्पटके सुधीः ।
द्वेष्यद्वेषकयोर्नाम्नी तस्य द्वेषो महान् भवेत् ।।

विलिखेन्मन्त्रमिति मन्त्रं लिखित्वा हृल्लेखारेफमध्ये अमुकं मारय मारयेत्यादि साध्यसहितमित्यर्थः। अथवा साध्यं लिखित्वा तदन्ते लिखेत्। सहस्रं परिजप्येति अमुकं मारय मारयेति अन्ते मन्त्रजपः। विद्वेषे तु अमुकामुकयोर्विद्वेषं कुरु कुरु इत्यस्यान्ते सहस्रं जपेत्।

शत्रुनिर्यातनादि का उपाय-निरूपण—वीरतन्त्र में बताया गया है कि मंगलवार की रात में श्मशान से अंगार लाकर काले वस्त्र में लपेटकर लाल डोरे से बाँधे। उसके ऊपर एक सौ मन्त्र जप कर उसे शत्रु के घर में फेंक दे। इस क्रिया के फलस्वरूप एक सप्ताह के अन्दर शत्रु का उच्चाटन होता है।

फेत्कारिणीतन्त्र में कहा गया है कि शनिवार की रात में मनुष्य की हड्डी लाकर उसके ऊपर बाजपक्षी की विष्ठा से युक्त नमक में हल्दी मिला कर घोल वनाए।

उस घोल से तारिणी मन्त्र लिखकर उसके ऊपर उस मन्त्र का एक हजार जप करे। ऐसी अभिमन्त्रित अस्थि को जिसके घर में फेंका जायगा, उसकी मृत्यु दो मास के भीतर हो जायगी।

उस हड्डी को खेत में फेंकने से फसल-हानि, घोड़े पर फेंकने से घोड़े की मृत्यु, धनागार में फेंकने से धनहानि और गाँव के बीच फेंकने से गाँव का नाश होता है।

ह्रीं के निम्न भाग में जो रेफ है, उसे लम्बा करके उसके मध्य में 'अमुकामुकयोर्महाद्वेषं कुरु' यह वाक्य लिखे तो विद्वेषण होता है।

प्रमाण में बताया गया है कि विद्वेषण करने के लिए शववस्त्र लाकर उसमें मन्त्र और द्वेष्य तथा द्वेषक के नाम लिखे। इससे उन दोनों के बीच में द्वेष उत्पन्न हो जायगा।

अथवा हृल्लेखा ह्रीं के रेफ के मध्य में 'अमुकं मारय मारय' लिखे तो मारण होगा। अथवा साध्य विषय पहले लिख कर तब मन्त्र लिखे। 'अमुकं मारय मारय' कहकर मन्त्र का एक हजार जप करे।

विद्वेषण में 'अमुकामुकयोर्विद्वेषं कुरु' पहले कहे, तब मन्त्र का एक हजार जप करे।

वेतालादिसिद्धिः

तदुक्तं कुलचूडामणौ; भैरव उवाच—

वेतालादिमहासिद्धिः कथं भवति चण्डिके ।
तन्मे कथय देवेशि यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ॥

देव्युवाच—

निम्बवृक्षोद्भवं काष्ठं श्मशाने साधकोत्तमः ।
भौमवारे मध्यरात्रौ गत्वा कुलयुगान्वितः ॥
खनित्वा चाष्टलक्षं वै जपेन्महिषमर्दिनीम् ।
तत्सहस्रं हुनेत्तद्वत्तत्रैव पितृकानने ॥
काष्ठमुद्धृत्य तस्मिन् वै दण्डं पादुकचिह्नितम् ।
कृत्वा दुर्गाष्टमीरात्रौ श्मशाने निक्षिपेत्ततः ॥
तस्योपरि शवं कृत्वा पूजयित्वा यथाविधि ।
शवासनगतो वीरो जपेदष्टसहस्रकम् ॥
ततो मातृबलिं दत्त्वा काष्ठमामन्त्रयेत्ततः ।
स्फें स्फें दण्ड महाभाग योगिनीहृदयप्रिय ॥
मम हस्तस्थितो नाथ ममाज्ञां परिपालय ।
एवमामन्त्र्य वेतालः यत्र यत्र प्रयुज्यते ॥
तं तं चूर्णीविधायाथ पुनरायाति कौलिकः ।
गच्छ गच्छ द्रुतं गच्छ पादुके वरवर्णिनि ॥
मत्पादस्पर्शमात्रेण गच्छ त्वं शतयोजनम् ।
अष्टलौहं समासाद्य पञ्चाशदंगुलाकृतिम् ॥
खड्गं कृत्वा तत्र मन्त्रं लिखित्वा प्रजपेन्मनुम् ।
तत्सहस्रं ततो हुत्वा महाशवकलेवरे ॥
खनित्वा जीववृक्षाग्रे बद्ध्वा शुष्कन्तु भावयेत् ।
कुलाष्टम्यामर्द्धरात्रौ चितामध्येऽग्निसंयुतम् ॥
प्रीतिपूर्वं समामन्त्र्य हुनेत्पितृवने ततः ।
मधुरत्रयसंयुक्तं बिल्वपत्रेण संयुतम् ॥
पादादिमूर्ध्वपर्यन्तं होमान्ते बलिमाहरेत् ।
बल्यन्ते परमा माया देवी महिषमर्दिनी ॥
आयाति बलिपूर्णास्या वरहस्ता हसन्मुखी ।
गृह्ण वत्सेति शब्देन खड्गमुत्तोल्य धारयेत् ॥

घोरदंष्ट्रे महाकालि करवालस्वरूपिणि ।
आं घ्रां घ्रीं घ्रूं ईं ऊं कुरु कल्याणं विपक्षच्छेदविस्तरम् ।
एवमामन्त्र्य खड्गन्तु यमुद्दिश्य क्षिपेन्नरः ।
छित्त्वा छित्त्वा पुनश्छित्त्वा गच्छत्याकृष्यते पुनः ॥
अथवा कृष्णमार्जारमेकघातेन घातयेत् ।
कुजे चतुष्पथे रात्रौ निखनेन्मन्त्रितं ततः ॥
तत्र मोचां समारोप्य यावत्पत्रं प्रजायते ।
तावद्भुक्त्वा हविष्यान्नं प्रतिरात्रं जपेन्मनुम् ॥
अष्टोत्तरसहस्रन्तु एकाकी दीपवर्जितः ।
उत्पन्नं पत्रमालोक्य छित्त्वा निश्छिद्रमानयेत् ॥
तत्र भुक्त्वा हविष्यान्नं तद्दिने तटिनीतटे ।
तमानीय सुहृत्सङ्गः क्षालयेन्मन्त्रमुच्चरन् ॥
ततः स्रोतोमुखं वत्स यदस्थि प्रतिगच्छति ।
तदानीय यजेत्तत्र कालिकां घोरनिस्वनाम् ॥
अभिमन्त्र्य सहस्रन्तु कालीमन्त्रं प्रयत्नतः ।
सिद्धाञ्जनो भवेन्मन्त्री नात्र कार्या विचारणा ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीमिश्रितञ्चास्थिघर्षितम् ।
कृत्वा तिलकमादाय सर्वं जयति साधकः ॥
कुलमीनं कुलान्नञ्च कुलमद्यं कुलेश्वर ।
कुलस्थाने समानीय दत्त्वा देव्यै प्रयत्नतः ॥
अष्टोत्तरसहस्रन्तु जप्त्वा भूमितले स्थितः ।
भूमौ फूत्कारमात्रेण विवरं तत्र जायते ॥
शतयोजनदूरे वा यत्र साध्यस्थितिर्भवेत् ।
तत्रैव गमनं तस्य भूतलान्तःप्रसर्पिणः ।
एवं विवरमध्ये तु गवाक्षकुहरेऽपि वा ।
कामसङ्कोचमासाद्य गच्छत्यविकलो नरः ॥
दुर्गामन्त्रं विना वत्स कालीमन्त्रं तथैव च ।
सिद्धयः कुलनाथेश जायन्ते न कथञ्चन ॥

वेतालादि सिद्धि के उपाय—कुलचूड़ामणि में भैरव ने चण्डी से पूछा कि वेतालादि की महासिद्धि कैसे होती है? यह मुझे बताइये। देवी ने कहा कि मंगलवार की आधी रात में निम्बवृक्ष की दो लकड़ियाँ लेकर श्मशान में जाये और गड्ढा खोदकर उसमें

उन्हें गाड़ दे। तब महिषमर्दिनी मन्त्र का आठ लाख जप करे। वहीं श्मशान में ठहर कर आठ हजार हवन करे। तब नीम की उन लकड़यों को निकाल कर ले आये। उनसे खडाऊँ और डण्डा बनवाये। बाद में दुर्गापूजा की महा अष्टमी की रात में उन लकड़ियों को श्मशान में ले जाकर उनके ऊपर शव को स्थापित करे। उस शव पर बैठकर वीरभाव से आठ हजार मन्त्रजप करे। इसके बाद मातृकागण को बलि देकर निम्न मन्त्र से लकड़ियों को अभिमन्त्रित करे—

स्फें स्फें दण्ड महाभाग योगिनीहृदय प्रिय!
मम हस्तस्थितो नाथ ममाज्ञां परिपालय।।

हे योगिनियों के हृदय के प्रिय महाभाग दण्ड! हे नाथ! तुम मेरे हाथ में रहकर मेरी आज्ञा का पालन करो।

इस प्रकार दण्ड में वेताल को आमन्त्रित करके उस दण्ड का प्रयोग जिन लोगों पर करेंगे, उनको वह नष्ट करके लौट आयेगा। पादुका को आमन्त्रित करने का मन्त्र है—

गच्छ गच्छ द्रुतं गच्छ, पादुके वरवर्णिनि।
मत्पादस्पर्शमात्रेण गच्छ त्वं शतयोजनम्।।

हे वरवर्णिनी पादुके! तुम शीघ्र जाओ। मेरे पैरों के स्पर्शमात्र से तुम सौ योजन तक जाओ।

अष्टलौह लाकर पचास अंगुल का एक खड्ग बनवाए। उस खड्ग पर मन्त्र को लिखकर उस मन्त्र का जप आठ हजार करे। तब आठ हजार आहुतियों से हवन करे। उस खड्ग को शवदेह में प्रविष्ट करके जीयापूता जायफल के वृक्ष से खड्गसहित उस शव को बाँध कर सुखाए।

कृष्णपक्ष की अष्टमी की आधी रात के समय श्मशान में जाकर एकाग्र मन से प्रेमपूर्वक उस सूखे हुए शवदेह के पैर से शिर तक सभी अंगों में त्रिमधुर और बेलपत्र के साथ चिताग्नि में हवन करे। हवन के बाद बलि-निवेदन करे।

बलि देने पर परमा माया महिषमर्दिनी देवी बलिपूर्ण मुख से हँसती हुई वरदायिनी होकर कहती हैं—वत्स गृह्ण अर्थात् हे वत्स! ग्रहण करो और उक्त खड्ग को लेकर साधक को प्रदान करेंगी। उक्त खड्ग को प्राप्त कर साधक जिस किसी के प्रति निम्न मन्त्र पढ़कर उसे फेंकेगा, वह जाकर उसके टुकड़े-टुकड़े करके पुन: साधक के हाथ में वापस आ जायगा—

घोरदंष्ट्रे महाकालि करवालस्वरूपिणि।
आं घ्रां घ्रीं घ्रूं ईं ऊं कुरु कल्याणं विपक्षच्छेदविस्तरम्।।

उक्त खड्ग के एक आघात से काले बिलाव को काट डाले। उस मृत बिलाव के

शरीर को किसी मंगलवार की रात में अभिमन्त्रित करके किसी चौराहे पर गाड़ दे। जिस स्थान पर बिलाव को गाड़े, वहाँ केला का एक पेड़ लगा दे।

जब तक उस केले के वृक्ष में नए पत्ते न निकलें तब तक साधक हविष्यान्न भोजन करता हुआ प्रति रात में अकेले अन्धकार में एक हजार आठ मन्त्रजप करता रहे।

केले के वृक्ष में नए पत्ते लगने पर विना छेद वाला एक पत्ता लाकर उसी पत्ते पर हविष्यान्न का भोजन करे।

इसके बाद उसी दिन उस गाड़े हुए काले बिलाव को खोदकर निकाले और अपने सुहृद् लोगों के साथ उसे नदी-तट पर ले जाए। वहाँ मन्त्र पढ़ते हुए उसे धोये। धोते समय जो अस्थिखण्ड धाराप्रवाह की ओर वह चले, उस अस्थि को लाकर उस पर घोररावा कालिका की पूजा करे। तब एक हजार मन्त्रजप से उसे अभिमन्त्रित करे। इससे साधक अञ्जनसिद्धि प्राप्त करता है।

उस अस्थि को घिसकर उसमें चन्दन, अगर और कस्तूरी मिलाकर उससे तिलक लगाए तो साधक सभी पर विजय प्राप्त करता है। कुलमीन, कुलान्न और कुलमद्य को कुलस्थान पर ले आए और भक्तिपूर्वक देवी को निवेदन करके पृथ्वी पर बैठकर एक हजार आठ मन्त्र जप करे।

ऐसी क्रिया करके भूमि पर फूत्कार मारने से गड्ढ़ा हो जायगा; साध्य भले ही सौ योजन दूर हो, साधक उसके निकट पहुँच जायगा। उक्त प्रकार के गड्ढे या झरोखे के बीच से साधक अपनी देह सिकोड़कर अनायास कहीं भी जा सकता है।

दुर्गा और काली के मन्त्र के अतिरिक्त अन्य किसी मन्त्र की उपासना से इस कार्य में किसी भी रूप से सिद्धि नहीं मिल सकती।

बालकसंस्कार:

मधुलाजाभ्यां नाडीच्छेदात् प्राक्स्वर्णशलाकया यज्ञदारुशिखया श्वेतदूर्वया वा बालकस्य जिह्वामौष्ठं वा दक्षिणपाणिना त्रिवारं सम्मार्ज्य तत्र पिता पंक्त्याकारेण मूलमन्त्रं विलिख्य देवीं पूजयेत्। तदुक्तं मत्स्यसूक्ते—

अथवा मधुलाजाभ्यां जिह्वायां बालकस्य च।
नाडीच्छेदाद्यथापूर्वं लिखेत्स्वर्णशलाकाया ॥
मूलमन्त्रं लिखेन्मन्त्री यस्योष्ठे श्वेतदूर्वया।
वाक्योच्चारणतो बालो वाग्मी द्रुतकविर्भवेत् ॥

महोग्रताराकल्पे तु—नैमित्तिकसंस्कारानन्तरमेव मन्त्रलिखनं कार्यम्। तदुक्तं महोग्रे—

जन्मसंस्कारकं नाम पुत्रे जाते प्रशस्यते ।
जिह्वायान्तु लिखेन्मन्त्रं यज्ञदारुकुशेन वा ॥
वारत्रयन्तु सम्मार्ज्य दक्षिणेनैव पाणिना ।
मूलमुच्चार्य प्रत्येकं पंक्तिं कुर्यात्सुशोभनम् ॥
आदौ संस्कारः कर्तव्यस्तदन्ते विलिखेन्मनुम्।
गन्धचन्दनपुष्पैश्च पूजयेत्तारिणीं शिवाम् ॥
उत्तराभिमुखो भूत्वा स्थापयेत्पीठमुत्तमम् ।
पूजयेत्तारिणीं देवीं नानाभक्ष्यैः सुशोभनैः ।
कविर्वाग्मी भवेत्पुत्रः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥

अत्र तारिणीपदमुपलक्षणं देवीमात्रमेव बोद्धव्यम्। वृहच्छ्रीक्रमादितन्त्रेषु बालकसंस्कारदर्शनात्। तदुक्तं तत्रैव—

बालकस्य तु जिह्वायां त्रिदिनाभ्यन्तरे लिखेत् ।
मधुना श्वेतदूर्वाभिर्लिखेत्स्वर्णशलाकया ।
अमुं वाग्भवकूटञ्च लिखेद्वै जननान्तरम् ॥

एतेन तद्दिनाशक्तौ त्रिरात्राभ्यन्तर इति सूचितम्। अमुमिति भैरव्या वाग्भवकूटमित्यर्थः। अथैकादशाहे देवतां सम्पूज्य मन्त्रं लिखेदिति कश्चित्।

अथ यदि पिता दूरस्थो भवति तदा पितृव्यो मातुलो वा मन्त्रं लिखेदिति। तदुक्तं महोग्रे—

पितुर्भ्राता लिखेन्मन्त्रं मातुर्भ्राताथवा पुनः ।
पितुरेव लिखेन्मन्त्रं नान्य एव कदाचन ॥
मातुः क्रोडे तु संस्थाप्य दर्भानास्तीर्य यत्नतः ।
शान्तिं कुर्याद्बालकस्य ब्राह्मणैः सह साधकः ॥

शान्तिमन्त्रः

इमं पुत्रं कामयतः कामजानामिहैव हि ।

देवेभ्यः पुष्णाति सर्वमिदं मज्जननं शिवशान्तिस्तारायै केशवेभ्यस्तारायै रुद्रेभ्य उमायै शिवाय शिवयशसे। इत्यनेन कुशोदकेन शान्तिं कुर्यात्।

नवजात बालक का संस्कार—मत्स्यसूक्त में कहा है कि नाड़ी-छेदन के पूर्व बालक की जिह्वा या ओठ को तीन बार दाँयें हाथ से धोए। उस धुली हुई जिह्वा या ओठ पर स्वर्णशलाका या यज्ञकाष्ठ के अग्रभाग या श्वेत दूर्वा से मधु और लाजरूपी स्याही से बालक का पिता मन्त्र को पंक्ति के आकार में लिखे। उस पर देवी की पूजा करे। ऐसा

करने से बालक वाक्योच्चारण में समर्थ होते हैं, वक्ता और आशुकवि होते हैं।

महोग्रताराकल्प में लिखा है कि बालक के जातकर्मसंस्कार के बाद मन्त्र लिखना चाहिये। वहाँ कुश से भी लिखने का विधान दिया है। मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए प्रत्येक पंक्ति को सुशोभित करे। पहले जातकर्म संस्कार कर ले। उसके बाद ही मन्त्र लिखना उचित है। इस अवसर पर गन्ध, चन्दन और पुष्पों से तारिणी की पूजा करे।

साधक उत्तराभिमुख होकर पीठस्थापनपूर्वक अनेक प्रकार के उत्तम खाद्य पदार्थों से तारिणी देवी की पूजा करे। इससे बालक वक्ता, कवि, सत्यवादी और जितेन्द्रिय होता है।

यहाँ तारिणी शब्द उपलक्षणमात्र है। इससे देवीमात्र को समझना चाहिये; क्योंकि वृहत् श्रीक्रम आदि अनेक तन्त्रों में भी यह बालक संस्कार बताया गया है। उन सबमें यह लिखा है कि बालक के भूमिष्ठ होने के बाद तीन दिनों के बीच किसी दिन श्वेत दूर्वा या स्वर्णशलाका से मधु से बालक की जिह्वा पर भैरवी का वाग्भव कूट 'ऐं' लिखे।

प्रसवमास के मध्य में ही इस कार्य को अवश्य कर लेना चाहिये। जन्मदिवस के दिन सम्भव न हो तो जन्म के तीन दिन के भीतर इसे सम्पन्न कर लेना चाहिये। पिता यदि उपस्थित न हो तो चाचा या मामा पिता के आराध्य देवता के मन्त्र को बालक की जीभ पर लिखें। अन्य देवता का मन्त्र कदापि न लिखें।

एक मत यह भी है कि ग्यारहवें दिन में देवता की पूजा करके मन्त्र लिखना चाहिये। मन्त्र लिखने के बाद माता की गोद में कुशों को फैला कर रक्खे। उस पर बालक को रखकर ब्राह्मणों के साथ बैठकर यत्नपूर्वक बालक को कुश द्वारा शान्तिजल प्रदान करे।

शान्ति मन्त्र इस प्रकार है—इदं पुत्रं कामयतः कामजानामिहैव हि। देवेभ्यः पुष्णाति सर्वमिदं मज्जननम्। शिवशान्तिस्तारायै केशवेभ्यस्तारायै रुद्रेभ्य उमायै शिवाय शिवयशसे। इस मन्त्र को पढ़ते हुए बालक पर जल छिड़के।

छागादिबलिः

मुण्डमालायाम्—

छागे दत्ते भवेद्वाग्मी मेषे दत्ते कविर्भवेत् ।
महिषे धनसमृद्धिः स्यान्मृगे मोक्षफलं लभेत् ॥
पक्षिदाने समृद्धिः स्याद्गोधिकायां महाफलम् ।
नरे दत्ते महर्द्धिः स्यादष्टसिद्धिरनुत्तमा ॥

एवं—

राजा नरबलिं दद्यान्नान्यो हि परमेश्वरि ।
सिंहव्याघ्रनरान्दत्त्वा ब्राह्मणो नरकान्व्रजेत् ॥

इति वचनात् ब्राह्मणानां नरबलिदाने नाधिकारः। तथा—

चण्डालबलिदानेन महासिद्धिः प्रजायते ।

तत्र सलक्षणं पशुं देव्यग्रे संस्थाप्य वक्ष्यमाणेन विधिना उत्सृजेत्। तदुक्तं यामले—

देव्या अग्रे स्थापयित्वा पशुं लक्षणसंयुतम् ।
श्वेतसर्षपविक्षेपाद् भूतानुत्सारयेत्ततः ।
अर्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्य अस्त्रमन्त्रेण रक्षणम् ।।
कवचेन समागुण्ठ्य धेनुमुद्रामृतीकृतम् ।
गन्धचन्दनपुष्पाद्यैः पूजयित्वा पशुं ततः ।।
वामहस्तेन तं धृत्वा सप्तधा तत्त्वमुद्रया ।
प्रोक्षयेन्मूलमन्त्रेण ततः पूजां समाचरेत् ।।

ततः श्वेतसर्षपेण भूतोत्सारणं कृत्वा अर्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्यास्त्रेण संरक्ष्य, कवचेनावगुण्ठ्य, धेनुमुद्रयामृतीकृत्य, गन्धपुष्पाक्षतैः पशुं सम्पूज्य, मूलेन तत्त्वमुद्रया प्रोक्षणं कृत्वा कर्णे इमं मन्त्रं पठेत्—पशुपाशाय विद्महे विश्वकर्मणे धीमहि तन्नो जीवः प्रचोदयात्।

ततो 'ह्रीं कालि कालि वज्रेश्वरि लौहदण्डाय नमः' इति मन्त्रेण खड्गं पूजयेत्।

ततः खड्गस्याग्रमध्यमूलक्रमेणैव पूजयेत्। यथा हूं वागीश्वरीब्रह्मभ्यां नमः। हूं लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः। हूं उमामहेश्वराभ्यां नमः। ततः ब्रह्मविष्णुशिवशक्तियुक्ताय खड्गाय नमः—इति सर्वत्र पूजयेत्। तत खड्गं प्रणमेत्—

खड्गाय खरशाणाय शक्तिकार्यार्थतत्पर ।
पशुश्छेद्यस्त्वया शीघ्रं खड्गनाथ नमोऽस्तु ते ।।

ततो महावाक्यम्—अमुकदेवताप्रीतिकाम इगं पशुं तुभ्यमहं सम्प्रददे इति। ततो निवेदयेत्—

यथोक्तेन विधानेन तुभ्यमस्तु समर्पितम् ।

ततो बलिं छिन्द्यात्। ततो रुधिरं समांसं बलिं देव्यै दद्यात्।

छागादि बलि और कुलाचार—मुण्डमाला तन्त्र में कहा गया है कि छागबलि देने से वक्तृता शक्ति, मेषबलि देने से कवित्व, महिषबलि देने से धन-समृद्धि, मृगबलि देने से मोक्ष, पक्षिबलि देने से वैभव, गोधिकाबलि देने से श्रेष्ठ फल और नरबलि देने से महासमृद्धि एवं अष्टसिद्धियों का लाभ मिलता है।

हे परमेश्वरि! राजा ही नरबलि दे सकता है; अन्य नहीं। ब्राह्मण यदि सिंह-व्याघ्र और नरबलि देता है तो वह रौरव नरक में जाता है। अत: ब्राह्मण को नरबलि देने का अधिकार नहीं है। चाण्डाल की बलि देने से महासिद्धि प्राप्त होती है।

शुभ लक्षण वाले पशु को देवी के सम्मुख रखकर निम्नलिखित नियमों के अनुसार बलि देनी चाहिये। यामल में लिखा है कि बाँयें हाथ से सुलक्षण पशु को पकड़कर उस पर तत्त्वमुद्रा से सात बार मूल मन्त्रोच्चारपूर्वक जल छिड़के। तब उसके ऊपर श्वेत सरसों छिड़क कर भूतापसारण करे। तब अर्घ्यजल से उसका प्रोक्षण करे।

फट् मन्त्र से रक्षण, हूं से अवगुण्ठन, धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करे। तब गन्ध-चन्दन-पुष्पाक्षत से अर्चन करे। इसके बाद पशु के कान में निम्न पशुगायत्री मन्त्र सुनाए—

पशुपाशाय विद्महे विश्वकर्मणे धीमहि तन्नो जीव: प्रचोदयात्। अब खड्ग की पूजा करे—ह्रीं कालि कालि वज्रेश्वरि लौहदण्डाय नम:। फिर खड्ग के अग्र, मध्य और मूल भागों में क्रमश: निम्न तीन मन्त्रों से पूजा करे—१. हूं वागीश्वरी-ब्रह्मभ्यां नम:। २. हूं लक्ष्मी-नारायणाभ्यां नम:। ३. हूं उमा-महेश्वराभ्यां नम:।

इसके बाद ॐ ब्रह्मविष्णुशिवशक्तियुक्ताय खड्गाय नम: से पूरे खड्ग की पूजा कर निम्न मन्त्र से उसे प्रणाम करे—

खड्गाय खरशाणाय शक्तिकार्यार्थतत्पर।
पशुश्छेद्यस्त्वया शीघ्रं खड्गनाथ नमोऽस्तु ते।।

अब संकल्प करे—विष्णुरोम् तत्सदद्य अमुके मासि अमुकराशिस्थे भास्करे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्र: श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकदेवताप्रीतिकाम: इमं अमुकपशुं देव्यै तुभ्यमहं सम्प्रददे। इसके बाद यथोक्त विधान से 'तुभ्यमस्तु समर्पितं' कहकर निवेदन करे और बलि-छेदन के बाद मांस के साथ रुधिर देवी को अर्पित करे।

रुधिरदाने स्थाननिर्णय: कालिकापुराणे—

छागन्तु वामतो दद्यान्महिषन्तु भवेत्पुर: ।
दक्षिणे वामतो दद्यादग्रतो देहशोणितम् ।।

तथा—

सौवर्णे राजते ताम्रे कांस्याधारे तथैव च ।
निधाय देव्यै दद्यात्तु तद्रक्तं मन्त्रपूर्वकम् ।।

ततोऽवशिष्टं वटुकादिभ्यो दद्यात् । यथा—हूं वां वटुकाय नमः इति गन्धादिभिः सम्पूज्य, पूर्ववन्मन्त्रेण वायव्ये बलिन्दद्यात्। हूं यां योगिनीभ्यो नमः इति सम्पूज्य ईशाने पूर्वमन्त्रेण बलिं दद्यात्। हूं क्षां क्षेत्रपालाय नमः इति सम्पूज्य पूर्वमन्त्रेण

नैर्ऋत्यां बलिं दद्यात्। हूं गां गणपतये नमः इति सम्पूज्याग्नेय्यां गणेशाय बलिं दद्यात्।

रुधिर दान के लिये स्थाननिर्णय—कालिकापुराण में लिखा है कि छाग को बाँईं ओर और महिष को सम्मुख प्रदान करे। दाँयीं ओर, बाँयीं ओर या सामने रुधिर देना चाहिये। सोना, ताम्बा या काँसे के पात्र में रुधिर को रखकर मन्त्रपाठ करते हुए देवी को अर्पित करना चाहिये।

इसके बाद शेष रक्त वटुकादि को अर्पित करे। पहले 'हूं वां वटुकाय नमः' से गन्ध-पुष्पादि से पूजा करे। तब 'एष रुधिरबलिः हूं वां वटुकायः नमः' कहते हुए वायुकोण में रुधिरबलि प्रदान करे।

तव 'हूं यां योगिनीभ्यां नमः' से पूजा कर ईशान कोण में पूर्ववत् मन्त्र से बलि अर्पण करे। 'हूं क्षां क्षेत्रपालाय नमः' से पूजा करके नैर्ऋत्य कोण में बलि प्रदान करे। 'हूं गां गणपतये नमः' से पूजा कर अग्निकोण में बलि अर्पित करे।

स्वगात्ररुधिरदाने तु—

नाभेरधःस्थाद्रुधिरं पृष्ठभागस्य च प्रिये ।
स्वगात्ररुधिरं दद्यान्न कदाचित्तु साधकः ॥
नोष्ठस्य चिबुकस्यापि नेन्द्रियाणां तथैव च ।
कण्ठाधो नाभितश्चोर्ध्वं हृद्भागस्य यतस्ततः ॥
पार्श्वयोश्चापि रुधिरं दुर्गायै विनिवेदयेत् ।
न च रोगाविलादङ्गं नान्यघाताद्धि भैरव ॥

स्वगात्र से बलिरक्तदान—अपने शरीर से रक्तदान की विधि यह है कि साधक नाभि के नीचे के अंगों से या पीठभाग से रक्तदान कदापि न करे। ओष्ठ, चिबुक या अन्य किसी इन्द्रिय का रक्त कभी न दे।

कण्ठ के नीचे और नाभि के ऊपर के हृदयस्थल और दोनों पार्श्वों के किसी स्थान से रक्त लेकर भगवती दुर्गा को अर्पित करे। रोगक्षत अंग से निकला रक्त एवं अन्य किसी चोट से निकला रक्त कभी नहीं देना चाहिये।

फलन्तु कुमारीतन्त्रे—

गृहीत्वा शोणितं पात्रे स्वकीयहृदयोद्भवम् ।
पूजयेत्त्रिपुरादेवीं सर्वसौभाग्यहेतवे ॥

तथा—

स्वगात्ररुधिरं दत्त्वा नत्वा राजत्वमाप्नुयात् ।

अन्यच्च—

यः स्वहृदयसञ्जातं मांसं मासप्रमाणतः ।
तिलमुद्गप्रमाणं वा दद्याद्भक्तियुतो नरः ।
षण्मासाभ्यन्तरे तस्य काममिष्टमवाप्नुयात् ॥

अन्यच्च—

मद्यं दत्त्वा महादेव्यै ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् ।
स्वगात्ररुधिरं दत्त्वा आत्महत्यामवाप्नुयात् ॥

इति बलिविधिः

●

स्वशरीरस्थ रक्तदान का फल—कुमारीतन्त्र में अपने शरीर के रक्तदान का फल बताते हुए कहा गया है कि अपने हृदय से निकले रक्त को किसी पात्र में लेकर त्रिपुरा देवी की पूजा करे तो सभी सौभाग्य की प्राप्ति होती है।

अन्यत्र भी लिखा है कि अपने शरीर का रक्त देकर प्रणाम करने से राजपद मिलता है। जो व्यक्ति अपने हृदय का मांस एक उड़द, तिल या मूंग के बराबर लेकर देवी को प्रदान करता है, उसे छः मास के अन्दर अभीष्ट-सिद्धि प्राप्त होती है।

ब्राह्मण के लिये अपने शरीर का रक्तदान करना मना है। लिखा है कि देवी को मद्य देने से ब्राह्मण नरक में जाता है। अपने शरीर का रक्तदान करने से वह ब्रह्महत्या के पाप का भागी होता है।

कुलाचारनिरूपणम्

कालीतन्त्रे—

अथाचारं प्रवक्ष्यामि यत्कृतेऽमृतमश्नुते ।
सर्वभूतहिते युक्तः समयाचारपालकः ॥
अनित्यकर्मसंत्यागी नित्यानुष्ठानतत्परः ।
मन्त्राराधनमात्रेण भक्तिभावेन तत्परः ॥
परस्यां देवतायान्तु सर्वकर्मनिवेदकः ।
अन्यमन्त्रार्चने श्रद्धामन्यमन्त्रप्रपूजनम् ॥
कुलस्त्रीवीरनिन्दाञ्च तद्द्रव्यस्यापहारणम् ।
स्त्रीषु रोषं प्रहारञ्च वर्जयेन्मतिमान् सदा ॥
स्त्रीमयञ्च जगत्सर्वं तथात्मानञ्च भावयेत् ।
पेयं चर्व्यं तथा चोष्यं भोज्यं लेह्यं गृहं सुखम् ।

सर्वञ्च युवतीरूपं भावयेन्मतिमान् सदा ॥
कुलजां युवतीं वीक्ष्य नमस्कुर्यात्समाहितः ।
यदि भाग्यवशाद्देवि कुलदृष्टिः प्रजायते ।
तदैव मानसीं पूजां तत्र तासां प्रकल्पयेत् ॥

तासां भगादिदेवीनाम्। तथा च—

भगिनीं भगचिह्वाञ्च भगास्यां भगमालिनीम् ।
भगदन्तां भगाक्षीञ्च भगकर्णीं भगत्वचाम् ॥
भगनासां भगस्तनीं भगस्थां भगसर्पिणीम् ।

कुलाचार—कालीतन्त्र में लिखित है कि जिस कार्य के करने से मोक्ष प्राप्त हो, उसे कुलाचार कहते हैं। कुलाचारनिष्ठ व्यक्ति सभी प्राणियों के कल्याण के लिये सदा प्रयत्नशील रहता है। वह सामयिक आचार का पालन करता है और अनित्य कर्मों को नहीं करता। कर्मों में नित्य लगा रहता है।

मन्त्रजप के समय 'शिवोऽहं' अर्थात् मैं शिव हूँ की भावना रक्खे। सभी कर्मों के फल इष्टदेवता को अर्पित करे। अन्य मन्त्र से पूजा करने में श्रद्धा, अन्य मन्त्र से पूजा, कुलस्त्री की निन्दा, वीरनिन्दा, कुलस्त्री और वीर के द्रव्य का अपहरण, स्त्रियों पर क्रोध, उन पर प्रहार आदि सभी कार्यों को बुद्धिमान सदा के लिये छोड़ दे।

सारे संसार को स्त्रीमय माने। अपने को भी स्त्री ही समझे। चव्य, चोष्य, लेह्य, पेय, भोज्य, गृह और सुख को ज्ञानी युवती के रूप में देखे। सत्कुल में उत्पन्न युवती रमणी को देखते ही एकाग्र मन से प्रणाम करे। सौभाग्य से यदि भग का दर्शन हो जाए तो भगदेवियों का मानसिक पूजन करे। ये देवियाँ हैं—१. भगिनी, २. भगचिह्वा, ३. भगात्या, ४. भगमालिनी, ५. भगदन्ता, ६. भगाक्षी, ७. भगकर्णी, ८. भगत्वचा, ९. भगनासा, १०. भगस्तनी, ११. भगस्था, १२. भगसर्पिणी।

सम्पूज्य ताभ्यो गन्धाद्यैर्मानसैर्गुरुमेव च ॥
नमस्कृत्य यथाध्यानं स्वयमक्षोभितः सुधीः ।
बालां वा यौवनोन्मत्तां वृद्धां वा सुन्दरीं तथा ।
कुत्सितां वा महादुष्टां नमस्कृत्य विभावयेत् ॥
तासां प्रहारं निन्दाञ्च कौटिल्यमप्रियं तथा ।
सर्वथा च न कुर्यात्तु चान्यथा सिद्धिरोधकृत् ॥
स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रियश्चैव विभूषणम् ।
स्त्रीसङ्गिनी सदा भाव्यमन्यथा स्वस्त्रियामपि ।
विपरीतरता सा तु भविता हृदयोपरि ॥

तद्धस्तावचितं पुष्पं तद्धस्तावचितं जलम् ।
तद्धस्तावचितं द्रव्यं देवताभ्यो निवेदयेत् ॥
स्त्रीद्वेषो नैव कर्तव्यो विशेषात्पूजनं महत् ।
जपस्थाने महाशङ्खं निवेश्योर्ध्वे जपञ्चरेत् ॥
स्त्रियं गच्छन् स्पृशन् पश्यन्विशेषात्कुलजां शुभाम् ।
भक्षन् ताम्बूलमत्स्यांश्च भक्ष्यद्रव्यान्यथारुचि ।
भक्ताद्यशेषभक्ष्याणि भुक्त्वा शेषं जपञ्चरेत् ॥

वीरतन्त्रे—

दिक्कालनियमो नात्र स्थित्यादिनियमो न च ।
जपे न कालनियमो नार्चादिषु बलिष्वपि ।
स्वेच्छानियम उक्तोऽत्र महामन्त्रस्य साधने ॥
वस्त्रासनस्थानगेहदेहस्पर्शादिवारिणः ।
शुद्धिं न चाचरेत्तत्र निर्विकल्पं मनश्चरेत् ॥

उक्त देवियों और गुरु का मानसोपचारों से ध्यानपूर्वक पूजन कर उन्हें प्रणाम करे। बालिका, यौवनोन्मत्ता, वृद्धा, सुन्दरी, कुत्सिता या महादुष्टा नारी को भी देवी मानकर नमस्कार करे। उनको मारना या उनकी निन्दा करना, उन्हें कुटिलता दिखाना या उनको अप्रसन्न करने वाला कार्य कभी न करे। ऐसा करने से हानि होती है।

स्त्रियाँ देवता हैं, स्त्रियाँ ही जीवन हैं, स्त्रियाँ ही आभूषण हैं—यही भावना रक्खे। सदा स्त्रीसंग करे। यदि ऐसा करना सम्भव न हो तो अपनी पत्नी को सर्वदा साथ में रक्खे।

वही रमणी रतासक्ता होकर हृदय पर विराजमान होती है। स्त्री के हाथ से लाये पुष्प, जल और पदार्थ ही देवता को अर्पित करे।

स्त्रियों से कभी द्वेष न करे। सदैव विशेषभाव से उनकी पूजा करे। जपस्थल में महाशंख रखकर उसके ऊपर पूजा करे। स्त्रियों के पास जाते हुए, स्त्रियों को स्पर्श करते हुए, विशेषत: कुलजा नारी का दर्शन करते हुए, ताम्बूल या अन्यान्य भक्ष्य वस्तु यथारुचि खाते हुए जप करे। अन्नादि सभी भक्ष्य भोजन कर चुकने पर अवशिष्ट जप करना चाहिये।

वीरतन्त्र में बतलाया गया है कि इस महामन्त्र की साधना में दिशानियम नहीं है, कालनियम भी नहीं है। स्वेच्छा को ही नियम समझना चाहिये। वस्त्र, आसन, गृह, देहस्पर्श इत्यादि कार्यों में जलशुद्धि की कोई आवश्यकता नहीं है। मन को निर्विकार रखना ही मुख्य है।

कुलार्णवे—

कुलाचारगृहं गत्वा भक्त्या पापविशुद्धये ।
याचयेदमृतं कौलं तदभावे जलं पिबेत् ॥
कुलाचारेण यद्दत्तं कृत्वा पात्रन्तु भक्तितः ।
नमस्कृत्य च गृह्णीयादन्यथा नरकं व्रजेत् ॥

अन्यत्रापि—

न वृथा गमयेत्कालं द्यूतक्रीडादिभिः सुधीः ।
गमयेद्देवतापूजाजपयागस्तवादिना ॥
वीराणां जपयज्ञस्तु सर्वकाले प्रशस्यते ।
सर्वदेशे सर्वपीठे कर्तव्यो नात्र संशयः ॥

शिवागमे—

शतिः शिक्तः शिवः शक्तिः शक्तिर्ब्रह्मा जनार्दनः ।
शक्तिरिन्द्रो रविः शक्तिः शक्तिश्चन्द्रो ग्रहा ध्रुवम् ।
शक्तिरूपं जगत्सर्वं यो न जानाति नारकी ॥

वीरतन्त्रे--

स्नानादिमानसं शौचं मानसः प्रभवो जपः ।
मानसं पूजनं दिव्यं मानसं तर्पणादिकम् ॥
सर्व एव शुभः कालो नाशुभो विद्यते क्वचित् ।
न विशेषो दिवारात्रौ न सन्ध्यायां महानिशि ॥
सर्वदा पूजयेद्देवीमस्नातः कृतभोजनः ।
महानिश्यशुचौ देशे बलिं मन्त्रेण दापयेत् ॥

यत्तु—

रात्रावेव महापूजा कर्तव्या वीरवन्दिते ।
न दिने सर्वथा कार्या शासनान्मम सुव्रते ॥

तत्पुनः कुलपूजाविषयम्।

महानिशा तु तत्रैव—

अर्द्धरात्रात्परं यच्च मुहूर्तद्वयमेव च ।
सा महारात्रिरुद्दिष्टा तद्दत्तमक्षयं भवेत् ॥

कुलार्णव में लिखा है कि कुलाचारी के घर में पहुँचकर पापशुद्धि के लिये कौल भक्तिपूर्वक अमृत की प्रार्थना करे। यदि न मिले तो अमृत समझते हुए जल ही माँगकर

पीये। कुलाचारी जिस रूप में भी पात्र दे, उसे श्रद्धापूर्वक नमस्कार करते हुए ग्रहण करे। ऐसा न करने से नरकगामी होना पड़ता है। ज्ञानी व्यक्ति जूआ आदि क्रीड़ा में व्यर्थ समय नष्ट न करे; अपितु देवपूजा, जप, यज्ञ और स्तोत्रपाठ द्वारा ही अपना जीवन व्यतीत करे। वीरों के लिये जप-यज्ञ करने के लिये सभी समय प्रशस्त हैं। यह जप-यज्ञ सारे देश में और सभी सिद्धपीठों में किया जा सकता है।

शिवागम में लिखा है कि शक्ति ही शिव है। शिव ही शक्ति है। ब्रह्मा शक्ति है। जनार्दन शक्ति है। इन्द्र शक्ति है। सूर्य शक्ति है। चन्द्र शक्ति है। ग्रहगण शक्तिस्वरूप हैं। अधिक क्या कहा जाय; इस सारे संसार को जो शक्तिरूप में नहीं समझ पाता, वही नारकी है।

वीरतन्त्र में स्पष्ट किया है कि मानसिक स्नानादि, मानस शौच, मानसिक जप, नसिक अर्चना, मानसिक तर्पण इत्यादि वीराचारी कर्तव्य हैं। वीराचार में सभी काल ुभ है। कोई भी काल कभी भी अशुभ नहीं होता। दिन-रात-सन्ध्या या महानिशा में कोई भी विशेष या मुख्य नहीं है। सभी समान हैं। विना स्नान के भोजन खा-पीकर सदा देवी की पूजा करे। वीर साधक महानिशाकाल में अपवित्र स्थान में भी मन्त्रपाठ करता हुआ बलि प्रदान करे।

हे वीरवन्दिते! रात्रिकाल में महापूजा करे। दिन में महापूजा कदापि न करे। महापूजा अर्थात् कुलपूजा।

वीरतन्त्र में महानिशा के सम्बन्ध में बताया गया है कि रात के दो प्रहरों के बाद दो मुहूर्तकाल को महानिशा कहते हैं। इस समय जो कुछ भी दान किया जाता है, वह अक्षय होता है।

गान्धर्वे—

पृथ्वीमृतुमतीं वीक्ष्यं सहस्रं यदि नित्यशः ।
तदा वादी स्वसिद्धान्तहतः क्षितितलं व्रजेत् ।।

नित्यशः इति षोडशदिनं यावत्।

पर्वते हस्तमारोप्य निर्भयो यतमानसः ।
कवितां लभते सोऽपि अमृतत्वञ्च गच्छति ।।

अत्रापि सहस्रमिति सम्बन्धः। पृथ्वीं कुलं पर्वतं स्तनम्। अन्यच्च नीलतन्त्रे—

पद्मं दृष्ट्वा तथा विद्धं खञ्जनं शिखरं तथा ।
चामरं रविविम्बञ्च तिलपुष्पं सरोरुहम् ।।
त्रिशूलं वीक्ष्य जप्त्वा च शतशः शुद्धभावतः ।
मुखं प्रसादं सुमुखं सुलोचनं सुहास्यकम् ।।

सुवेशं सुगतिञ्चैव सुगन्धं सुखमेव च।
लभते च यथासंख्यं शृणु पार्वति सादरम् ॥

पद्मं मुखं विम्बमधरं खञ्जनं चक्षुः शिखरं मस्तकं चामरं केशम्। रविविम्बं सिन्दूरं तिलपुष्पं नासिकां सरोरुहं नाभिं त्रिशूलं त्रिवलीम् इति बोध्यम्।

गन्धर्वतन्त्र में कहा गया है कि ऋतुमती पृथ्वी को देखकर जो प्रतिदिन एक हजार मन्त्रजप करता है, उसका विरोधी अपने सिद्धान्त में स्वयं पराभूत होकर लज्जा से पाताल में चला जाता है।

आगमतत्त्वविलास में लिखा है कि पृथ्वी शब्द का अर्थ है—कुलस्थान योनि। नित्य जप से अर्थ है—सोलह दिनों तक प्रतिदिन जप करना। जो स्तन पर हाथ रखकर मन्त्र-जप करता है, वह कवित्वशक्ति प्राप्त कर अन्त में मोक्षलाभ करता है।

नीलतन्त्र में लिखा है कि मुख, अधर, नेत्र, मस्तक, केश, सिन्दूर, नासिका, नाभि, त्रिवली को देखकर विशुद्ध मन से एक सौ जप क्रमपूर्वक करे तो क्रमशः मुख, प्रसाद, सुमुख, सुलोचन, सुहास्य, सुवेश, सुगति, सुगन्ध और सुख की प्राप्ति होती है।

भावचूड़ामणौ—

एकाकी निर्जने देशे श्मशाने विजने वने।
शून्यागारे नदीतीरे निःशङ्को विहरेत्सदा।
महाचीनद्रुमे देवीं ध्यात्वा तत्र प्रपूजयेत् ॥
तद्द्रुमोद्भवपुष्पेण पूजयेद्भक्तिभावतः।
स भवेत्कुलदेवश्च कुलद्रुमगतः शुचिः ॥
ब्रह्मतरोर्महापद्मे देवीं ध्यात्वा यथाविधि।
तत्सुधारसधारेण तर्पयेन्मातृकानने ॥
महाचीनद्रुमलतावेष्टितः साधकोत्तमः।
रात्रौ यदि जपेन्मन्त्रं सैव कल्पलता भवेत् ॥
तिथिक्रमेण संख्याभिर्लताभिर्वेष्टितो यदि।
तदा मासेन सिद्धिः स्यात्सहस्रजपमानतः ॥
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां द्विगुणं यदि दृश्यते।
तत्रैव महती सिद्धिर्देवतानां सुदुर्लभा ॥

भावचूड़ामणि में कहा गया है कि निर्जन प्रदेश, श्मशान, विजन वन, शून्य गृह, नदीतट में अकेले शान्त चित्त होकर सदा भ्रमण करे। महाचीन वृक्ष में देवी का ध्यान कर उसी में देवी की पूजा करे। उसी वृक्ष के फूलों से भक्तिपूर्वक पूजा करके विशुद्ध भाव

से कुलवृक्ष के पास जाय तो साधक साक्षात् कुलदेव वन जाता है। व्रह्मवृक्ष पलाश के महापद्म में यथानियम देवी का ध्यान करके उसकी सुधारसधारा से मातृकानन में तर्पण करे।

यदि कोई साधक महाचीन द्रुमलता से परिवेष्टित होकर रात में जप करे तो वह लता उसके लिये कल्पलता के समान सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली हो जायेगी। यदि कोई साधक तिथिसंख्या के अनुसार लता से परिवेष्टित होकर प्रतिदिन एक हजार जप करे तो एक महीने में उसे सिद्धि मिल जायेगी।

अष्टमी और चतुर्दशी तिथियों में यदि द्विगुण भाव से पूजा-जपादि कोई साधक करे तो उसे देवदुर्लभ महती सिद्धि प्राप्त होती है।

कुलचूडामणौ—

शृणु पुत्र रहस्यं मे समयाचारसम्भवम् ।
येन हीना न सिध्यन्ति जन्मकोटिसहस्रशः ॥
मानवः कुलशास्त्राणां कुलचर्यानुचारिणाम् ।
उदारचित्तः सर्वत्र वैष्णवाचारतत्परः ।
परनिन्दासहिष्णुः स्यादुपकाररतः सदा ॥
पर्वते विपिने वापि निर्जने शून्यमण्डपे ।
चतुष्पथे कलामध्ये यदि दैवाद्गतिर्भवेत् ॥
क्षणं स्थित्वा मनुं जप्त्वा नत्वा गच्छेद्यथासुखम् ।
गृध्रं वीक्ष्य महाकालीं नमस्कुर्यादलक्षितः ॥
क्षेमङ्करीं तथा वीक्ष्य जम्बूकीं यमदूतिकाम् ।
कुररीं श्येनकाकौ च कृष्णमार्जारमेव च ॥
कृशोदरि महाचण्डे मुक्तकेशि बलिप्रिये ।
कुलाचारप्रसन्नास्ये नमस्ते शङ्करप्रिये ॥
श्मशानञ्च शवं दृष्ट्वा प्रदक्षिणमनुव्रजम् ।
प्रणम्यानेन मनुना मन्त्री सुखमवाप्नुयात् ॥
घोरदंष्ट्रे करालास्ये किटिशब्दनिनादिनि ।
घोरघोररवास्फाले नमस्ते चितिवासिनि ॥
रक्तवस्त्रं तथा पुष्पं विलोक्य त्रिपुराम्बिकाम् ।
प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ इमं मन्त्रं पठेन्नरः ॥
बन्धूकपुष्पसङ्काशे त्रिपुरे भयनाशिनि ।
भाग्योदयसमुत्पन्ने नमस्ते वरवर्णिनि ॥

कुलचूड़ामणि में बताया गया है कि समयाचार के विना सहस्र कोटि जन्मों में भी सिद्धि नहीं मिलती। जो व्यक्ति कुलशास्त्र और कुलाचार के अनुसार चलता है, वह सभी विषयों में उदार चित्त, वैष्णवाचारपरायण और परनिन्दासहिष्णु होकर सदा परोपकार में लगा रहता है। यदि किसी समय दैवयोग से पर्वत पर, निर्जन वन में, शून्य मण्डप में, चतुष्पथ में या कलामध्य में जाना पड़े तो उस स्थान में क्षण भर रुककर मन्त्र-जप करते हुए नमस्कार कर अभीष्ट स्थान को जाय। गिद्ध का दर्शन हो तो चुपचाप महाकाली को प्रणाम करे। यदि क्षेमंकरी, जम्बूकी, यमदूतिका, कुररी, वाज, कौआ और काले विलाव का दर्शन हो तो निम्न मन्त्र से उन्हें प्रणाम करे—

कृशोदरि महाचण्डे मुक्तकेशि बलिप्रिये।
कुलाचारप्रसन्नास्थि नमस्ते शङ्करप्रिये।।

हे कृशोदरि! तुम बलि को खाने के लिय प्रचण्ड स्वरूप धारण करके मुक्तकेशी होकर विराजमान रहती हो। तुम कुलाचार से प्रसन्न होती हो। हे शंकरप्रिये! तुम्हें प्रणाम है।

श्मशान या शव को देखकर उनके पास जाकर उनकी प्रदक्षिणा करे और निम्न मन्त्र से उन्हें प्रणाम करे—

घोरदंष्ट्रे करालास्ये किटिशब्दनिनादिनि।
घोरघोररवास्फाले नमस्ते चितिवासिनी।।

हे करालमुखि! तुम चिता में रहती हुई विकट दाँतों को दिखाती हुई किटि शब्द से चित्कार करती हो और अति भीषण ध्वनि का विस्तार करती हो। तुम्हें नमस्कार है।

इस प्रकार के प्रणाम करने से साधक का जीवन सुखी होता है और वह सब प्रकार से उन्नति करता है।

कृष्णवस्त्रं तथा पुष्पं राजानं राजपूरुषम् ।
हस्त्यश्वरथशस्त्राणि फलकान्वीरपूरुषान् ॥
महिषं कुलदेवञ्च दृष्ट्वा महिषमर्दिनीम् ।
प्रणम्य जयदुर्गां वा स च विघ्नैर्न लिप्यते ॥
जय देवि जगद्धात्रि त्रिपुराद्ये त्रिदैवते ।
भक्तेभ्यो वरदे देवि महिषघ्नि नमोऽस्तु ते ॥
मद्यभाण्डं समालोक्य मत्स्यं मांसं वरस्त्रियम् ।
दृष्ट्वा च भैरवीं देवीं प्रणम्य विमृशन्मनुम् ॥
घोरविघ्नविनाशाय कुलाचारसमृद्धये ।
नमामि वरदे देवि मुण्डमालाविभूषिते ॥

रक्तधारासमाकीर्णवदने त्वां नमाम्यहम् ।
सर्वविघ्नहरे देवि नमस्ते हरवल्लभे ।।
एतेषां दर्शनेनैव यदि नैवं प्रकुर्वते ।
शक्तिमन्त्रं पुरस्कृत्य तस्य निद्धिर्न जायते ।।

तथा कुलचूडामणौ—

कुलवारे कुलाष्टम्यां चतुर्दश्यां विशेषतः ।
योगिनीपूजनं तत्र प्रधानं कुलपूजनम् ।।
यथा विष्णुतिथौ विष्णुः पूजितो वाञ्छितप्रदः ।
तथा कुलतिथौ दुर्गा पूजिता वरदायिनी ।।

काला वस्त्र, काला फूल, राजा, राजपुरुष, हाथी, घोड़ा, रथ, शस्त्र, ढाल, वीर पुरुष, भैंस और कुलदेवता का दर्शन हो तो निम्न मन्त्र से उन्हें प्रणाम करे—

जय देवि जगद्धात्रि त्रिपुराद्ये त्रिदैवते।
भक्तेभ्यो वरदे देवि महिषघ्नि नमोऽस्तु ते।।

हे देवि जगद्धात्रि! तुम त्रिनेत्ररूपिणी आद्या त्रिपुरा हो। हे देवि! तुम्हीं ने महिषासुर को मारकर भक्तों को वर दिया, तुम्हें प्रणाम।

उक्त प्रकार से महिषमर्दिनी या जयदुर्गा को प्रणाम करने से साधक को किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचता और उसका जीवन सुखी होता है।

मद्यपात्र, मछली, मांस अथवा सुन्दर रमणी का दर्शन हो तो निम्न मन्त्र से उन्हें प्रणाम करे—

घोरविघ्नविनाशाय कुलाचारसमृद्धये।
नमामि वरदे देवि मुण्डमालाविभूषिते।।
रक्तधारासमाकीर्णवदने त्वां नमाम्यहम्।
सर्वविघ्नहरे देवि नमस्ते हरवल्लभे।।

अर्थात् हे देवि! तुम नरमुण्डमाला धारण कर वरदान देती हो। कुलाचार की उन्नति और भीषण विघ्नों के निवारण के लिये तुम्हें प्रणाम करता हूँ। हे देवि! तुम्हारा मुख रक्तधारा से पूर्ण है। तुम्हें प्रणाम है। हे वरवल्लभे! तुम सर्वविघ्ननिवारिणी हो, तुम्हें प्रणाम है।

उक्त सबके दर्शन पाकर जो शक्तिमन्त्रदीक्षित व्यक्ति उक्त प्रकार का प्रणाम नहीं करता, उसे मन्त्रसिद्धि नहीं मिलती है।

कुलचूड़ामणि में लिखा है कि कुलवार, कुलाष्टमी; विशेषतया चतुर्दशी तिथि में

योगिनी-पूजा ही श्रेष्ठ कुलपूजा है। विष्णुतिथि में विष्णुपूजा करने से जैसे विष्णु अभीष्ट वर देते हैं, उसी प्रकार कुलतिथि में दुर्गापूजन करने से भगवती दुर्गा वाञ्छित वर प्रदान करती हैं।

कुलवारादिनियमन्तु यामले—

रविश्चन्द्रो गुरुः सौरिश्चत्वारश्चाकुला इमे ।
भौमशुक्रौ कुलाख्यौ हि बुधवारः कुलाकुलः ॥
द्वितीया दशमी षष्ठी कुलाकुलमुदाहृतम् ।
विषमाश्चाकुलाः सर्वाः शेषाश्च तिथयः कुलाः ॥
वरुणार्द्राभिजिन्मूलं कुलाकुलमुदाहृतम् ।
कुलानि समधिष्ण्यानि शेषाणि चाकुलानि च ॥
तिथिवारे च नक्षत्रे अकुले स्थायिनोऽजयः ।
कुलाख्ये जयिनो नित्यं साम्यञ्चैव कुलाकुले ॥

एवं कुलवारादिकं ज्ञात्वा साधकः कर्म कुर्यात्।

यामल में कुलवार आदि का वर्णन किया गया है। रविवार, सोमवार, बृहस्पतिवार और शनिवार अकुलवार हैं। मंगल एवं शुक्र को कुलवार कहते हैं तथा बुधवार को कुलाकुलवार कहते हैं।

द्वितीया, दशमी, षष्ठी तिथियों को कुलाकुल तिथि कहते हैं। सभी विषम तिथियाँ अकुल और समतिथियाँ कुल तिथि कही गयी हैं।

श्रवण, आर्द्रा, अभिजित् (उत्तराषाढ़ के अन्तिम पाद और श्रवण के प्रथम चार दण्ड) एवं मूल नक्षत्रों को कुलाकुल कहते हैं। सम नक्षत्रों को कुलनक्षत्र और शेष को अकुल नक्षत्र मानते हैं।

अकुल तिथि-वार-नक्षत्र में कार्य करने से पराजय होती है। कुलवार-कुलतिथि-कुलनक्षत्र में कार्य करने से सदैव विजय होती है। कुलाकुल वार-तिथि-नक्षत्र में कार्य करने से फल समभाव में होता है। अर्थात् कार्य का न तो सुफल होता है और न ही कुफल। अत: कुलवार आदि को जानकर उन्हीं में कार्य करना चाहिये।

शिवाबलि:

तदुक्तं कुलचूडामणौ—

बिल्वमूले प्रान्तरे वा श्मशाने वापि साधकः ।
मांसप्रधाननैवेद्यं सन्ध्याकाले निवेदयेत् ॥
कालि कालीति वक्तव्ये तत्रोमां शिवरूपिणी ।

पशुरूपधरायाति परिवारगणैः सह ।
भुक्त्वा रौति यदैशान्यां मुखमुत्तोल्य सुन्दरम् ।
तदैव मङ्गलं तस्य नान्यथा कुलभूषण ।।
अवश्यमन्नदानेन नियतं तोषयेच्छिवाम् ।
नित्यश्राद्धं तथा सन्ध्यावन्दनं पितृतर्पणम् ।
तथैव कुलसेव्यानां नित्यता कुलपूजने ।।
पशुरूपां शिवां देवीं यो नार्चयति निर्जने ।
शिवारावेण तस्याशु सर्वं नश्यति निश्चितम् ।।
जपपूजाविधानानि यत्किञ्चित् सुकृतानि च ।
गृहीत्वा शापमादाय शिवा रोदिति निर्जने ।।
एकया भुज्यते यत्र शिवया देव भैरव ।
तत्रैव सर्वशक्तीनां प्रीतिः परमदुर्लभा ।।
पशुशक्तिः पक्षिशक्तिर्नरशक्तिर्यथाक्रमात् ।
पूजनाद्द्विगुणं कर्म मङ्गलं साधयेद्यतः ।
तेन सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यं पूजनं महत् ।।

शिवाबलि—कुलचूड़ामणि में कहा गया है कि साधक सन्ध्याकाल में बिल्वमूल, प्रान्तर या श्मशान में जाकर 'कालि कालि' कहकर पुकारे और मांसप्रधान नैवेद्य अर्पित करे।

नैवेद्य अर्पण के बाद शिवारूपिणी उमा परिवारगण के साथ पशुरूप में आकर उस नैवेद्य को खाती है और ईशान कोण की ओर मुख उठाकर यदि उत्तम स्वर में बोलती है तो शुभ समझना चाहिये; अन्यथा अमंगल की सम्भावना है—ऐसा मानना चाहिये।

अन्नदान द्वारा शिवा को अवश्य प्रसन्न करना चाहिये। सन्ध्यावन्दन, पितृतर्पण और नित्य श्राद्ध जिस प्रकार अवश्य करना चाहिये, वैसे ही कुलपूजा में कुलसेव्यों का पूजन भी अवश्य करना चाहिये। पशुरूपधारिणी शिवा की पूजा जो निर्जन स्थान में नहीं करता, उसका सब कुछ शिवा के शब्द से नष्ट हो जाता है। शिवा उस साधक का जप-पूजा-कार्य और सभी पुण्य ग्रहण कर लेती है। उसे शाप देकर निर्जन स्थान में रोती है।

जिस स्थान पर भी शिवा बलि खा लेती है, वहाँ शक्ति की परम कृपा होती है। पूजा से पशुशक्ति, पक्षिशक्ति और नरशक्ति गुणहीन कार्य को भी गुणयुक्त कर देती है। अत: सभी शक्तियों की पूजा अवश्य करनी चाहिये।

राजादिभयमापन्ने देशान्तरभयादिके ।
शुभाशुभानि कर्माणि विचिन्त्य बलिमाहरेत् ।।

मन्त्रस्तु—

गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणि ।
शुभाशुभफलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिन्तव ।।
एवमुच्चार्य दातव्यो बलिः कुलजनप्रिय ।
यदि न भुज्यते वत्स तदा नैव शुभं भवेत् ।।
शुभं यदि भवेत्तत्र भुज्यते तदशेषतः ।
एवं ज्ञात्वा महादेव शान्तिस्वस्त्ययनं चरेत् ।।

इति शिवाबलिः

●

राजभय, देशान्तरभय या अन्य कोई भय होने पर शुभाशुभ कर्म की विवेचना कर शिवा-बलि देनी चाहिये। शिवा-बलि का मन्त्र इस प्रकार का है—

गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणि।
शुभाशुभ फलं व्यक्तं ब्रूहि गृह्ण बलिं तव।।

हे कालाग्निरूपिणि महाभागे देवि शिवे! तुम बलि को ग्रहण करो और हमारे शुभाशुभ फल को स्पष्ट रूप से बताओ।

उक्त मन्त्र को बोलते हुए बलि प्रदान करे। शिवा यदि आकर उस बलि को ग्रहण न करे तो शुभ नहीं होता: यदि बलिद्रव्य को वह आकर पूरा खा जाय तो समझे कि अभीष्ट कार्य में शुभ फल होगा।

इस प्रकार शिवाबलि से शुभाशुभ को जानकर यदि अशुभ की सूचना मिले तो उसकी शान्ति के लिये आवश्यक उपाय करे।

कुलवर्त्मनो गोपनीयता

कुलवर्त्म सर्वत्र गोपनीयम्। तथा च नीलतन्त्रे—

निर्जने चैव कर्त्तव्यं न चैवं जनसन्निधौ ।
किंवा पक्षिपतङ्गादिदर्शने नैव कारयेत् ।।
पातालमण्डपे वापि गह्वरे सुनियन्त्रिते ।
निश्छिद्रमण्डपे वापि कर्तव्यं न च सन्निधौ ।।
कुलपुष्पं कुलद्रव्यं कुलपूजां कुलं जपम् ।
कुलं कुलपतिश्चैव कुलमालां कुलाकुलम् ।।
कुलचक्रं कुलध्यानं सर्वथा न प्रकाशयेत् ।
प्रकाशात् सिद्धिहानिः स्यात्प्रकाशान्निधनादिकम्।।

प्रकाशान्मन्त्रनाशः स्यात् प्रकाशात्कुलहिंसनम् ।
प्रकाशान्मृत्युलाभः स्यान्न प्रकाश्यं कदाचन ।।
पूजाकाले च देवेशि यदि कोऽप्यत्र गच्छति ।
दर्शयेद्वैष्णवीं मुद्रां विष्णुन्यासं तथा स्तवम् ।।
प्रकाशाद्यदि गुप्तिः स्यात्तत्प्रकाशान्न दूषणम् ।
गोपनाद्यदि व्यक्तिः स्यान्न गुप्तिः सा विधीयते ।।
कदाचिद्देहहानिस्तु न चाव्यक्तिः कदाचन ।
वरं पूजा न कर्तव्या न च व्यक्तिः कदाचन ।।

कुलमार्ग की गोपनीयता—कुलमार्ग को सर्वत्र गुप्त रखना चाहिये। नीलतन्त्र में कहा गया है कि निर्जन स्थान में ही कुलकर्म का अनुष्ठान करे। लोगों के सामने उसे नहीं करना चाहिये। यहाँ तक कि पक्षी-पतंग आदि भी कुलकार्य को न देखने पायें, ऐसी सावधानी बरतनी चाहिये।

भूमध्यस्थित गृह में, बन्द द्वार वाले भूगर्त में या छिद्रहीन स्थान में कुलकार्य करे। लोगों की आँखों के सामने न करे। कुलपुष्प, कुलद्रव्य, कुलपूजा, कुलजप, कुलपति, कुलमाला, कुलाकुल, कुलचक्र और कुलध्यान को सर्वथा गुप्त रक्खे।

कुलमार्ग को प्रकाशित करने से सिद्धि की हानि होती है। यहाँ तक कि साधक की मृत्यु भी सम्भव है। कुलाचार को प्रकाशित करने से मन्त्रनाश, कुलहिंसा और मृत्यु की सम्भावना है। अत: कुलाचार को कभी प्रकाशित न करे।

पूजा के समय यदि कोई आ जाय तो वैष्णवी मुद्रा दिखाए। विष्णुन्यास करे और विष्णुस्तोत्र का पाठ करे। प्रकाशित करने से यदि गोपन हो तो प्रकाशित करने में दोष नहीं है। गोपन करने से यदि प्रकाशित होता हो तो वह गोपनीयता नहीं करनीं चाहिये।

शरीर भले ही त्याग दे; किन्तु आचार का प्रकाशन कदापि न करे। प्रकाश होने का भय हो तो भले अर्चन न करे; किन्तु अर्चन को कभी प्रकट न करे।

प्रात:कृत्यम्

साधकः प्रातरुत्थाय कुलवृक्षं प्रणम्य च ।

कुलवृक्षो यथा—

पादाघातादशोको वदनमदिरया केशरः कर्णिकारः
चूतो निम्बो हसाभ्यां तिलकतरुनमेरुपियालश्च गीत्वा ।
संलापात् कर्णिकारः कुरुवकतरुरालिङ्गनात् सिन्धुवारः
कादम्बः कामिनीनामुदयति नियतं स्पर्शनाच्चम्पशाखी ।।

तथा च श्रुतिः। दशकुलवृक्षाणामनुपप्लवः। दशकुलवृक्षो यथा—

श्लेष्मातककरञ्जौ च बिल्वाश्वत्थकदम्बकाः।
निम्बो वटोडुम्बरौ च धात्री चिञ्चा दश स्मृताः।
मूलादि-ब्रह्मरन्ध्रान्तं कुलं ध्यात्वा गुरुं स्मरेत्॥
प्रह्लादानन्दनाथाख्यं सनकानन्दमेव च।
कुमारानन्दनाथाख्यं वसिष्ठानन्दनाथकम्॥
क्रोधानन्दं सुखानन्दं ज्ञानानन्दमतः परम्।
बोधानन्दमथाभ्यर्च्य ध्यायेत्कुलमुखोपरि॥
महासवरसोल्लासहृदया घूर्णलोचनाः।
कुलालिङ्गनसम्भिन्नचूर्णिताशेषतामसाः॥
कुलशिष्योपरिकृपापूर्णान्तःकरणोद्यताः।
वराभयोद्यतकराः कुलतन्त्रार्थवेदिनः॥
एवं कुलगुरुं नत्वा विसृज्य कुलनायिकाम्।
कुलस्थानं समाश्रित्य स्नानार्थं तीर्थमाश्रयेत्॥
आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैराचम्यान्यत्समाचरेत्।

प्रातःकृत्य—साधक प्रभातकाल में उठकर कुलवृक्षों को नमस्कार करे। कुलवृक्ष ये हैं—कामिनियों के पदाघात में अशोक वृक्ष; मुखमदिरा के सिञ्चन में बकुल और कर्णिकार वृक्ष; हास्य में आम्र और निम्ब वृक्ष, संगीत में तिलक, नमेरु और पियाल वृक्ष; वाक्य में कर्णिकार वृक्ष; आलिंगन में कुरुवक और सिन्दुवार वृक्ष एवं स्पर्श में कदम्ब वृक्ष।

श्रुति में कहा है कि दस प्रकार के कुलवृक्षों का उन्मूलन न करे—१. लिसोड़ा, २. करञ्ज, ३. बेल, ४. अश्वत्थ, ५. कदम्ब, ६. नीम, ७. वरगद, ८. गूलर, ९. आमला, १० ईमली।

पहले मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक कुलकुण्डलिनी का ध्यान करके कुलगुरुओं का ध्यान करे। गुरुपरम्परा इस प्रकार है—१. प्रह्लादानन्दनाथ, २. सनकानन्दनाथ, ३. कुमारानन्दनाथ, ४. वशिष्ठानन्दनाथ, ५. क्रोधानन्दनाथ, ६. सुधानन्दनाथ, ७. ज्ञानानन्दनाथ, ८. बोधानन्दनाथ। इनका ध्यान सहस्रार पद्म में करे।

महाऽऽसवरसोल्लासहृदया घूर्णलोचना।
कुलालिङ्गनसम्भिन्नचूर्णिताशेषतामसाः॥
कुलशिष्योपरि कृपापूर्णान्तःकरणोद्यताः।
वराभयोद्यतकराः कुलतन्त्रार्थवेदिनः॥

महा आसव के रसपान से उक्त सभी गुरुओं के हृदय उल्लासपूर्ण हैं, उनके नेत्र गोल-गोल घूम रहे हैं। कुलालिंगन कर उन्होंने समस्त तमोभाव को नष्ट कर डाला है। उनका अन्त:करण कुलशिष्यों के प्रति कृपाभाव से पूर्ण है। अपने दोनों हाथों से वे वर और अभय देने को उद्यत हैं। कुलतन्त्र के विषय में वे ज्ञान देते रहते हैं।

उक्त प्रकार से कुलगुरुओं को ध्यानपूर्वक नमस्कार करके षट्चक्रों का अवलम्वन कर कुलकुण्डलिनी को यथास्थान प्रतिष्ठित कर स्नान के लिये किसी तीर्थ में जाय और वहाँ आत्मतत्त्वाय स्वाहा, विद्यातत्त्वाय स्वाहा, शिवतत्त्वाय स्वाहा से तीन बार आचमन करे।

कुलार्णवे—

कुलसूर्याय देवाय त्रिरर्घ्यन्तु प्रदापयेत् ।
देवानृषीन् पितृंश्चैव तर्पयेत्कुलवारिणा ।।

कुलचूडामणौ—

आचान्तः कुलदर्भेण सदर्भः कुलपुण्ड्रकः ।
कुलपात्रं सदूर्वाञ्च सतिलं सजलं तथा ।
गृहीत्वा कुलदेव्याश्च प्रीतये स्नानमाचरेत् ।।
एवं हि कृतसङ्कल्पः कुलचक्रं जले न्यसेत् ।
कुलस्थानात्समानीय कुलमुद्रांकुशेन च ।।
कुलतीर्थानि तत्रैव समावाह्य शिवात्मकम् ।
तत्तोयञ्च त्रिधा पीत्वा त्रिधा च प्रोक्षणं तनोः ।।

स्वतन्त्रेऽपि—

मूलं पठन्मूर्ध्नि तोयं मुद्रया कुम्भसंज्ञया ।
क्षिप्त्वा वारत्रयं देवि आचामेत्साधकाग्रणीः ।।

इति कुलाचारः

◆

कुलार्णव में बताया गया है कि कुलसूर्य को ह्रीं हंसः मार्तण्डभैरवाय इत्यादि रूप में तीन बार अर्घ्य देकर कुलवारी से देव, ऋषि और पितृतर्पण करे।

कुलचूड़ामणि में कहा गया है कि कुलदर्भ (स्वर्ण-रजत् आदि) को हाथ में लेकर आचमन कर त्रिपुण्ड्र लगाए। तब ताम्रपात्र में दर्भ, तिल, दूब और जल लेकर देवी की प्रसन्नता के लिये स्नान करे। संकल्प करके कुलस्थान सूर्य से कुलचक्र को लाकर जल में स्थापित करे। कुलमुद्रा अंकुश मुद्रा से जल में कुलतीर्थों का आवाहन कर शिवरूपी उस जल को तीन भागों में विभक्त कर उससे तीन बार अपने शरीर का प्रोक्षण करे।

स्वतन्त्रतन्त्र में लिखा है कि हे देवि! श्रेष्ठ साधक मूल मन्त्र का पाठ करते हुए कुम्भ मुद्रा द्वारा मस्तक पर तीन वार जल छिड़क कर आचमन करे।

दूतीयागः

अथ दूतीयागो निरूप्यते; तत्रादौ विजयास्वीकारः। तथा च विजयाकल्पे—

संविदासवयोर्मध्ये संविदेव गरीयसी ।
संवित्प्रयोगस्तेनेह पूजादौ साधकोत्तमैः ।
कर्तव्यश्च महापूजा करणीया सुनिश्चितैः ॥

अयं प्रयोगः पूजादौ कुलीनैः सर्वत्र कर्तव्यः। अन्यत्रापि—

आनन्देन विना भ्रंशो न च तृप्यन्ति देवताः ।

सा च चतुर्विधा—ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा, शुक्लरक्तपीतकृष्णपुष्पभेदैः। तासां शुद्धिस्तु विजयाकल्पे—

संविदे ब्रह्मसम्भूते ब्रह्मपुत्रि सदानघे ।
भैरवाणाञ्च तृप्त्यर्थं पवित्रा भव सर्वदा ॥
ॐ ब्राह्मण्यै नमः स्वाहेति शोधयेत्ततः ।
सिद्धिमूलिकरे देवि मूलबोधप्रबोधिनि ॥
राजपुत्रि वशङ्करि शत्रुकण्ठत्रिशूलिनि ।
ऐं क्षत्रियायै नमः स्वाहा शोधयेदपरां ततः ॥
अज्ञानेन्धनदीप्ताग्निज्ञानाग्निज्वलरूपिणि ।
आनन्दाज्याहुतिं मत्वा सम्यग्ज्ञानं प्रयच्छ मे ॥
ह्रीं वैश्यायै नमः स्वाहा वैश्याञ्च शोधयेत्ततः ।
नमस्यामि महामाये योगमार्गप्रदर्शिनि ॥
त्रैलोक्यविजये मातः समाधिफलदा भव ।
श्रीं शूद्रायै नमः स्वाहेति शूद्राञ्च परिशोधयेत् ॥

ततः सर्वासां शोधनम्—

ॐ अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि पदं ततः ।
अमृतमाकर्षयद्वन्द्वं सिद्धिं देहि ततः परम् ।
अमुकं मे ततो ब्रूयाद्वशमानय तत्परम् ।
द्विठान्तोऽयं मनुः प्रोक्तः सर्वासामिह शोधने ॥

ज्ञाने प्रत्येकेन तत्तन्मन्त्रेण प्रत्येकं शोधयेत् अज्ञाने त्वनेन शोधयेत्।

दूती-याग में विजया-स्वीकार—विजयाकल्प में बताया गया है कि विजया और

आसव में से विजया ही प्रधान है। अत: उत्तम साधक पूजा के पूर्व विजया का प्रयोग करते हैं। विजया-प्रयोग के बाद सुस्थिर चित्त से महापूजा करनी चाहिये। कुलाचारी साधक को सभी पूजाओं के पूर्व विजया का प्रयोग करना चाहिये; क्योंकि आनन्द के विना कर्म सुसम्पन्न नहीं होता। देवता सन्तुष्ट नहीं होते और विजया आनन्ददायिनी है।

विजया चार प्रकार की होती है—ब्राह्मणी, क्षत्रिय, वैश्या विजया एवं शूद्रा। श्वेत पुष्पों वाली विजया ब्राह्मणी, लाल पुष्पों वाली क्षत्रिया, पीले पुष्पों वाली वैश्या और काले पुष्पों वाली शूद्रा कही जाती है।

१. संविदे ब्रह्मसम्भूते ब्रह्मपुत्रि सदाऽनघे।
भैरवानां च तृप्त्यर्थं पवित्रा भव सर्वदा।। ॐ ब्रह्मण्यै नम: स्वाहा।

अर्थात् हे ब्रह्मनन्दिनी विजये! तुम ब्रह्मसम्भूता और निर्मला हो। भैरवों की तृप्ति के लिये तुम पवित्र हो जाओ। ब्राह्मणी विजया को नमस्कार।

२. सिद्धिमूलिकरे देवि मूलबोधप्रबोधिनि।
राजपुत्रि वशंकरि शत्रुकण्ठत्रिशूलिनि।। ऐं क्षत्रियायै नम: स्वाहा।

हे राजनन्दिनी देवि! तुम मूलाधार को प्रबुद्ध कर सिद्धिमूलिकरा होती हो। तुम शत्रुकण्ठ में त्रिशूल मारने वाली होकर सभी को वश में करती हो। क्षत्रिया विजया को नमस्कार।

३. अज्ञानेन्धनदीप्ताग्निज्ञानाग्निज्वलरूपिणि।
आनन्दाज्याहुतिं मत्वा सम्यग् ज्ञानं प्रयच्छ मे।। ह्रीं वैश्यायै नम: स्वाहा।

अज्ञानरूपी ईंधन से जिनकी अग्नि जलाती हो, उनके लिये तुम ज्ञानाग्नि शिखा के रूप में प्रज्वलित होकर आनन्दरूप घृताहुति अर्पित करती हो। तुम उसी ज्ञानाग्नि को जलाकर मुझे उचित ज्ञान प्रदान करो। वैश्या विजया को प्रणाम।

४. नमस्यामि महामाये योगमार्गप्रदर्शिनि।
त्रैलोक्यविजये मात: समाधिफलदा भव।। श्रीं शूद्रायै नम:।

हे माता! तुम योगमार्ग दिखाने वाली महामाया हो। तुम्हें नमस्कार करता हूँ। हे त्रैलोक्यविजये! तुम मुझे समाधि का फल प्रदान करो। श्रीशूद्रा विजया को प्रणाम।

जहाँ पता न चल सके कि कौन विजया है? वहाँ निम्नलिखित सर्वसामान्य शोधनमन्त्र से शोधन क्रिया करे—

ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतमाकर्षय अमृतमाकर्षय सिद्धिं देहि अमुकं मे वशमानय स्वाहा। हे अमृते! हे अमृतसम्भूते! तुम अमृत का आकर्षण करो, अमृत की वर्षा करो, सिद्धि प्रदान करो। अमुक को मेरे वश में करो।

उत्तरतन्त्रे—

मूलमन्त्रं सप्तवारं तस्योपरि नियोजयेत् ।
आवाहनादि मुद्राञ्च धेनुं योनिं ततः परम् ॥
दिग्बन्धनं छोटिकाभिस्तालत्रयपुरःसरम् ।
दिव्यदृष्ट्या पार्ष्णिघातैः सर्वान्विघ्नान् निरस्य च ।
सप्तधा तर्पयेद् ब्रह्मरन्ध्रे मूलं जपन्मनुम् ॥
गुरुं पद्मे सहस्रारे तथा सङ्केतमुद्रया ।
त्रिवारं तर्पयेद्भक्त्या साधकः सिद्धिहेतवे ॥

मूलमिष्टदेवतामन्त्रमुच्चार्य अमुकदेवतां तर्पयामि एवं गुरुञ्च तर्पयेत्। ततः सङ्केतमुद्रया तत्त्वमुद्रया च तत् स्वीकुर्यात्। यथा—ऐं वद वद वाग्वादिनि मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्वसत्त्ववशङ्करि स्वाहा। तथा च—

ऐं वद वद पदं ब्रूयाद्वाग्वादिनिपदन्ततः ।
मम जिह्वाग्रे स्थिरीति भव सर्वपदं ततः ।
सत्ववशङ्करि स्वाहामन्त्रेण जुहुयान्मुखे ॥

उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि विजया के ऊपर मूल मन्त्र का सात बार जप करे। फिर आवाहनादि मुद्रायें, धेनुमुद्रा और योनिमुद्रा दिखाकर तीन बार हथेली पर ताल देकर चुटकी बजाकर दिग्बन्ध करके बाँयें पैर की एँड़ी से भूमि पर चोट करते हुए दिव्य दृष्टि से सभी विघ्नों को दूर करे। तव सात बार मूल मन्त्र का जप करके ब्रह्मरन्ध्र में मूल देवता का तर्पण करे।

फिर तत्त्वमुद्रा से सहस्रदल कमल में भक्तिपूर्वक तीन बार गुरु का तर्पण करे। तर्पणस्थल में इष्टदेवता के मूल मन्त्र का उच्चारण करके अमुकदेवतां तर्पयामि कह कर तर्पण करे। गुरु का तर्पण भी इसी प्रकार करे। इसके बाद निम्न मन्त्र को बोलकर संकेतमुद्रा, तत्त्वमुद्रा से विजया को मुख में डाले—

ऐं ॐ वद वद वाग्वादिनि मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्वशत्रुवशंकरी स्वाहा ।

तन्त्रचूडामणौ—

विना हेतुकमासाद्य क्षोभयुक्तो महेश्वरः ।
न पूजां हवनं कुर्यान्न ध्यानं नापि चिन्तनम् ।
तस्माद्भुक्त्वा च पीत्वा च पूजयेत् परमेश्वरीम् ।
पीत्वेति विजयामेव प्रकरणात् ॥

तन्त्रचूड़ामणि में कहा गया है कि विजया का प्रयोग न कर अर्चन करने से महेश्वर क्षुब्ध होते हैं।

न पूजां हवनं कुर्यान्न ध्यानं नापि चिन्तनम्।
तस्माद् भुक्त्वा च पीत्वा च पूजयेत् परमेश्वरीम्।।

विजया के विना पूजा, हवन, ध्यान और चिन्तन भी नहीं करना चाहिये। अत: विजया खा-पीकर ही परमेश्वरी की पूजा करे। विजया का ध्यान इस प्रकार का है—

त्रिनेत्रां हास्यसंयुक्तां रत्नाभरणभूषिताम्।
रक्ताम्बरपरीधानां पद्मोपरि स्थिताम्।।
सुगन्धिरक्तकुसुमां सर्वाभरणभूषिताम्।

विजया देवी तीन नयनों वाली हैं। मुखमण्डल पर मुस्कान है। रत्नजटित आभूषण धारण की हुई हैं। उनका वस्त्र लाल है। वे लाल कमल पर विराजमान हैं। सुगन्धित लाल फूलों से युक्त हैं। सभी प्रकार के आभूषणों से अलंकृत हैं।

यजनप्रकारः

तत्र रात्रौ प्रहरे गते ताम्बूलपूरितमुखः सन् कुलनायिकां पूजयेत्। उत्तरतन्त्रे—

याममात्रे गते रात्रौ कुलगेहं ततः पुमान् ।
ताम्बूलपूरितमुखो धूपामोदसुगन्धितः ।।
रक्तचन्दनदिग्धाङ्गो रक्तमाल्यानुसेवितः ।
रक्तवस्त्रपरीधानो लाक्षारसगृहङ्गतः ।।
रक्तमाल्येन संवीतो रक्तपुष्पविभूषितः ।
पञ्चीकरणसङ्केतैः पूजयेत्कुलनायिकाम् ।।

कुलनायिका यथा तत्रैव—

नटी कापालिका वेश्या पुक्वसी नापिताङ्गना ।
रजकी रञ्जकी चैव सैरिन्ध्री च सुवासिनी ।।
घटिकाघटिका चैव तथा गोपालकन्यका ।
विशेषवैदग्ध्ययुताः सर्वा एव कुलाङ्गनाः ।।
गुरुभक्ता देवभक्ता घृणालज्जाविवर्जिताः ।
सङ्गोपनरताः प्रायस्तरुण्यः सर्वसिद्धिदाः ।।
अक्षताचारसम्पन्नां शीलसौभाग्यशालिनीम् ।
सदनुष्ठाननिरतां सात्त्विकीं भक्तिसंयुताम् ।।
कालुष्यरहितां कुर्यात्समयां भक्तवत्सलाम् ।
चातुर्यौदार्यदाक्षिण्यकरुणादिगुणान्विताम् ।।
रूपयौवनसम्पन्नां शीलसौभाग्यशालिनीम् ।
सदा परिगृहीतां वा यद्वा सङ्केतमागताम् ।।

अथवा तत्क्षणायातां मदनानलतापिताम् ।
विलिप्तां रक्तगन्धेन रक्ताम्बरविभूषिताम् ।
सुगन्धिरक्तकुसुमां सर्वाभरणभूषिताम् ।
सुधूपधूपितां तन्वीं दूतीकर्मसु योजयेत् ।।

यजव-प्रकार—रात के प्रथम प्रहर बीत जाने पर ताम्बूल खाकर कुलनायिका का अर्चन करे। उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि एक प्रहर रात बीत जाने पर साधक शरीर में धूप-गन्ध लगाकर सभी अंगों में लाल चन्दन का लेप लगाकर लाल माला और लाल वस्त्र पहनकर मुख को ताम्बूलपूर्ण करके लाक्षा से रञ्जित लाल वर्ण के कुलगृह में जाकर लाल माला और लाल फूलों से विभूषित होकर पञ्च मकार-संकेत से कुलनायिका की पूजा करे।

कुलनायिकाओं में ये कन्यायें आती हैं—नटी, कापालिका, वेश्या, पुक्कसी, नापितकन्या, रञ्जकी, सैरन्ध्री, सुवासिनी, घटिका, अघटिका और गोपालकन्या। विशेष चतुर, गुरुभक्ता, देवभक्ता, घृणा-लज्जा होना, गोपनरता और युवती होने से इनके द्वारा इस कार्य में सब प्रकार की सिद्धि मिलती है।

अक्षताचारसम्पन्ना, सुशीला, सौभाग्यवती, सदनुष्ठाननिरता, सत्त्वगुणयुक्ता, भक्तिमती, निर्मल स्वभावा, भक्तवत्सला, चातुर्य-औदार्य-दया-दाक्षिण्यादि गुण वाली, रूपयौवनवती, सदा जिसे ग्रहण किया जा सके अथवा जो संकेतस्थान में इशारे मात्र से आ जाय या कामानलतप्ता होकर जो तत्काल आ जाय, रक्त-गन्धलिप्ता, रक्त वस्त्रधारिणी, सुगन्धित रक्तपुष्पों से शोभिता, सर्वालंकारमण्डिता, सुधूपधूपिता और पतली रमणी को दूतीयाग में नियुक्त करे।

कुमारीतन्त्रे—

नटी कापालिका वेश्या रजकी नापिताङ्गना ।
ब्राह्मणी शूद्रकन्या च तथा गोपालकन्यका ।
मालाकारस्य कन्या च नव कन्याः प्रकीर्तिताः ।।

ब्राह्मणीति तु ब्राह्मणविषयम्।

एवम्भूतां यजेत्तान्तु प्रसूनतुलिकोपरि ।
व्यङ्गाङ्गीं विकृताङ्गीं वा सविकल्पकमानसीम् ।।
वर्षीयसीं पापरतां हूंकारीमर्थलोलुपाम् ।
अभक्तमानसां दीनां वर्जयेत्साधकोत्तमः ।।
अर्थाद्वा कामतो वापि सौख्यादपि च यो नरः ।
लिङ्गयोनिरतो मन्त्री रौरवं नरकं व्रजेत् ।।

उपदिष्टा यदा देवि तथा पुत्री तु कन्यका ।
पूजार्हा च यदा देवि तदा माता न संशयः ।।

एवंविधं कुलमानीय उद्वर्तनादिकं विधाय तुलिकोपरि नियोजयेत्। तथोत्तरतन्त्रे—

तदानीय कुलं सम्यक् उद्वर्तनमनन्तरम् ।
स्नातं शुद्धदुकूलादिगन्धलेपनशोभितम् ।।
अलंकृतं गतश्रान्तिं स्वागतं चासनं तथा ।
निवेश्य तुलिकामध्ये नानापुष्पसुगन्धिना ।।
चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमादिभिः ।
समाकीर्णे निवेश्याथ पूजयेत्कुलनायिकाम् ।।

ततो भूतशुद्ध्यादिकं विधाय तत्तत्कुलाङ्गे न्यासं कुर्यात्। तद्यथा—

अङ्गन्यासकरन्यासौ प्राणायामं ततः परम् ।
विधाय मातृकान्यासं कुलाङ्गेऽपि प्रविन्यसेत् ।।

कुमारीतन्त्र में कहा गया है कि नटी, कापालिका, वेश्या, रजकी, नापितांगना, ब्राह्मणी, शूद्रकन्या, गोपालकन्या, मालीकन्या—ये नौ प्रकार की कन्यायें ही इस कार्य में प्रशस्त हैं। ब्राह्मणी केवल ब्राह्मण की ही शक्ति होगी!

उक्त प्रकार की कन्या को पुष्पशय्या पर बिठाकर पूजन करे। विकलांगी, विकृतांगी, सन्दिग्धचित्ता, वृद्धा, पापिनी, हुंकारकारिणी, अर्थलुब्धा, अभक्तचित्ता और कातर रमणी को इस कार्य में नियुक्त न करे।

जो साधक अर्थलोभ या कामवासना की तृप्ति के लिये इस याग में प्रवृत्त होता है, वह रौरव नरक में जाता है, जहाँ से लौट नहीं पाता।

हे देवि! जिन्हें दीक्षादि उपदेश दिया हो, पुत्री या कन्या और पूजा के योग्य रमणी माता के समान होती है। अत: पूजनीया गुरुस्त्री एवं कन्याजातीया नारी को छोड़कर अन्य रमणी के साथ कुलाचार करे।

पूर्वोक्त प्रकार की कुलकन्या को लाकर उसे तैल-हरिद्रादि लेपन कर स्नान कराये। पुष्पादि से बने सिंहासन पर बैठाये।

उत्तरतन्त्र में इसके सम्बन्ध में लिखा है कि कुलकन्या का स्वागत करके उसे विविध सुगन्धित पुष्पों, अगर, चन्दन, कपूर, कस्तूरी, कुंकुम आदि से लिप्त पुष्पशैय्या पर बिठाकर उसका अर्चन करे। भूतशुद्धि कर अंगन्यास, करन्यास और प्राणायाम करके उसके शरीर में मातृकान्यास करे।

ततः पञ्चमकारमानीय शोधयेत्। पञ्चमकारो यथा—

मद्यं मांसञ्च मत्स्यञ्च मुद्रां मैथुनमेव च ।
मकारपञ्चकञ्चैव महापातकनाशनम् ॥

तत्र सुरायाः शोधनं यथा घटं धृत्वा पठेत्—

एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् ।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम् ॥
सूर्यमण्डलसम्भूते वरुणालयसम्भवे ।
अमाबीजमये देवि शुक्रशापाद्विमुच्यताम् ॥
वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि ।
तेन सत्येन ते देवि ब्रह्महत्यां व्यपोहतु ॥

तत ॐ वां वीं वूं वैं वौं वः ब्रह्मशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः। इति तदुपरि दशधा जपेत्। ततः ॐ शां शीं शूं शैं शौं शः शुक्रशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः। इति तदुपरि दशधा जपेत्। एवं ह्रीं श्रीं क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः कृष्णशापविमोचयामृतं स्रावय स्वाहेति दशधा जपेत्। ततो मूलमन्त्रं तदुपरि अष्टधा जप्त्वा देवतामयं विभावयेत्। इति द्रव्यशुद्धिः। एतद् द्रव्यदानन्तु शूद्रस्यैव। तथा च श्रीक्रमे—

न दद्याद् ब्राह्मणो मद्यं महादेव्यै कथञ्चन ।
वामकामो ब्राह्मणो हि मद्यं मांसं न भक्षयेत् ॥

कुलचूडामणौ—

यत्रासवमवश्यन्तु ब्राह्मणन्तु विशेषतः ।
गुडार्द्रकं तदा दद्यात्ताम्रे वा विसृजेन्मधु ।
देव्यास्तु दक्षिणे भागे चक्रपार्श्वे निवेदयेत् ॥
एतद् द्रव्यन्तु शूद्रस्य नान्येषान्तु कदाचन ।
वैश्यस्य माक्षिकं शुद्धं क्षत्रियस्य तु साज्यकम् ॥
ब्राह्मणश्च गवां क्षीरं ताम्रे वा विसृजेन्मधु ।
नारिकेलोदकं कांस्ये सर्वेषां द्रव्यशोधनम् ॥

क्षत्रियवैश्ययोस्तु गौडी माधवी च दातव्या तत्र तयोरधिकारात्। तदभावेऽनुकल्पविधानम्। तथा च—

गौक्षीरं ब्राह्मणो दद्याद् गव्यमाज्यञ्च बाहुजः ।

माक्षिकं द्रव्यं शूद्रः पौष्टादिकं पुनः। तेन शूद्रस्य अनुकल्पः।

शोधन—तब पञ्च मकारों का शोधन करे। इन मकारों से महापाप नष्ट हो जाता है। सुरापात्र को स्पर्श किए हुए निम्न मन्त्र पढ़े—

एकमेव परंब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम्।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम्।।
सूर्यमण्डलसम्भूते वरुणालयसम्भवे।
अमाबीजमये देवि शुक्रशापाद्विमुच्यताम्।।
वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि।
तेन सत्येन ते देवि ब्रह्महत्यां व्यपोहतु।।

ॐ वां वीं कं वैं वौं व: ब्रह्मशापविमोचितायै सुधादेव्यै नम: का दश जप। ॐ शां शी शूं शैं शौं श: शुक्रशापविमोचितायै सुधादेव्यै नम: का दश जप। ह्रीं श्रीं क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्र: कृष्णशापविमोचयामृतं स्त्रावय स्वाहा का दश जप। अन्त में उस पर मूल मन्त्र का आठ बार जप करके उसे देवतारूप समझे।

अनुकल्प—कुलचूड़ामणि में बताया गया है कि क्षत्रिय, गौड़ीय, वैश्य, माधवी सुरा अर्पित करे; क्योंकि वे उसके अधिकारी हैं। यदि आसव न हो तो अनुकल्प से काम लें। ब्राह्मण के लिये गोदुग्ध, क्षत्रिय के लिये गोघृत, वैश्य के लिये मधु और शूद्र के लिये पुष्पादिजन्य मधु अनुकल्प में निर्दिष्ट हैं।

जो ब्राह्मण मद्य नहीं दे सकते, वे उसके बदले गुड़मिश्रित अदरख और ताम्रपात्र में मधु अर्पित करें। वे केवल गोदुग्ध या ताम्र या कांस्यपात्र में मधु या नारियलजल भी दे सकते हैं। वैश्य मद्य के स्थान पर माक्षिक मधु और क्षत्रिय घी के साथ मधु अर्पित करें। शूद्रों को मद्य ही देना चाहिये। जो कुछ भी अर्पित किया जाय, उसका शोधन मद्यशोधन की विधि के अनुसार करना आवश्यक है। अनुकल्प में दिये जाने वाले द्रव्यों का भी शोधन करना चाहिये।

कुलार्णवे—

जलं क्षीरं घृतं भद्रे मधु मैरेयमैक्षवम् ।
पौष्पं तरुभवं धान्यसम्भवं चक्रनिर्मितम् ।।
सहकारभवं देवि त्रिविधं बहुभेदकम् ।
मादकं धर्मसम्भेदाद्वर्ज्यमासीत्सुलोचने ।
ज्ञानेन संस्कृतं तत्तु महापातकनाशनम् ।।
तद्दाने पातकाभावो दिव्यभावविषयां वा।
माकन्दफलजं रम्यं द्रव्यं सेव्यं द्विजातिभि: ।।
अमादकत्वाद्देवेशि ऐक्षवं सेव्यते बुधै: ।

एतेन क्षत्रियादिभिरमादकं द्रव्यं सेव्यम्। मादकस्य पापहेतुकत्वं उक्तम्। भैरवतन्त्रे—

मद्यं मांसं विना वत्स यत्किञ्चित्कुलसाधनम् ।
शक्त्यै दत्त्वा ततः शेषं गुरवे तन्निवेदयेत् ।
तदनुज्ञां मूर्ध्नि कृत्वा शोषमात्मनि योजयेत् ॥

तेन क्षत्रियादीनां मुख्यस्य दानेऽधिकारः न पाने। यत्तु—

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा पतित्वा च महीतले ।
उत्थाय च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥

भैरवतन्त्रे—

पाने भ्रान्तिर्भवेद्यस्य घृणा स्याद्रक्तरेतसोः ।
शुचौ चाऽशुद्धताभ्रान्तिः पापाशङ्का च मैथुने ।
स भ्रष्टः पूजयेद्देवीं चण्डीमन्त्रं कथं जपेत् ॥

तथा—

मदिरायां मैथुने च जातिवृत्तिं न चाचरेत् ।

एतत्तु चतुर्थाश्रमिपरम्। तत्तद्द्रव्यग्रहणे जातिचिन्ता न कुर्यात्। एतेषां शोधनस्यावश्यकत्वात्। तथा च—

संशोधनमनाचर्य स्त्रीषु मद्येषु साधकः ।
आचर्य सिद्धिहानिः स्यात्क्रुद्धा भवति सुन्दरी ॥

मद्येषु मुख्यानुकल्पेषु। तथा कुलपूजायामस्यावश्यकत्वम्। तथा च—

मधु मांसं विना देवि कुलपूजा समारभेत् ।
जन्मान्तरसहस्रस्य सुकृतं तस्य नश्यति ॥

कुलार्णव में लिखा है कि जलजात, दुग्धजात, घृतजात, मैरेय, ऐक्षव, पुष्पजात, वृक्षजात, धान्योत्पन्न, चक्रनिर्मित, आम्रसम्भूत अनेक प्रकार के मद्य होते हैं। मादकता उत्पन्न करने के कारण मद्य को त्याज्य माना गया है। ज्ञान से उन्हें संस्कृत करने से वे महापापनाशक हो जाते हैं; अतः उन्हें अर्पित करने से पुण्य होता है। आम्रफल से बना मद्य मनोहर द्रव्य होता है। अतः द्विजातियों द्वारा वह सेवनीय है।

पण्डितगण ऐक्षव मद्य को अमादक मानते हैं और उसका सेवन करते हैं। इससे स्पष्ट है कि मादक रूप में मद्य का सेवन नहीं करना चाहिये। मादकता न हो, इस प्रकार के मद्यसेवन में कोई दोष नहीं है।

भैरवतन्त्र में बताया गया है कि मद्य-मांस के अतिरिक्त अन्य जो कुछ भी कुलद्रव्य

हो, उस सबको शक्ति को अर्पित कर शेष द्रव्य गुरुदेव को प्रदान कर दे। तब गुरु की आज्ञा से वचे हुए अंश का स्वयं उपयोग करे।

इससे स्पष्ट है कि क्षत्रिय आदि को मुख्य वस्तु देने का अधिकार है; किन्तु मद्यपान में अधिकार नहीं है।

यह भी कहा गया है कि पान करने में जिसे भ्रान्ति हो, रक्त और शुक्र से जिसे घृणा हो, शुद्धता और अशुद्धता का भ्रम जिसमें हो, पञ्च मकार में जिसे पाप की आशंका हो; वह देवी की पूजा कैसे करेगा? चण्डीमन्त्र का जप कैसे कर पायगा?

मद्य और मैथुन में जाति का विचार नहीं करना चाहिये; किन्तु इन सभी तत्त्वों का शोधन करना अत्यावश्यक है। पञ्चम और मद्य का शोधन किए विना व्यवहार में लाने से सिद्धि की हानि होती है।

कुलपूजा में मधु और मांस का होना अनिवार्य है। उनके विना कुलपूजा करने से सहस्र जन्मों के पुण्य नष्ट हो जाते हैं।

मांसादिशोधनम्

मांसन्तु त्रिविधं ज्ञेयं जलखेचरभूचरम् ।
त्रिविधं मांसं सम्प्रोक्तं देवताप्रीतिकारकम् ॥
मत्स्यन्तु त्रिविधं देवि उत्तमाधममध्यमम् ।
उत्तमं त्रिविधं देवि शालपाठीनरोहितम् ॥
प्रवीणं कण्टकैर्हीनं तैलाक्तं वल्कलैर्युतम् ।
देव्याः प्रीतिकरञ्चैव मध्यमन्तच्चतुर्विधम् ।
क्षुद्राणि तानि सर्वाणि अधमानि विदुर्बुधाः ॥

भूधरमांसञ्च—

गोनृमेषाश्वमहिषवराहाजमृगोद्भवम् ।
महामांसाष्टकं प्रोक्तं देवताप्रीतिकारकम् ॥

मांसाभावेऽनुकल्पः। समयाचारे—

लवणार्द्रकपिण्याकतिलगोधूममाषकम् ।
लशुनञ्च महादेवि मांसप्रतिनिधिः स्मृतः ॥

मुद्रा तु द्विविधा। कुलार्णवे—

कृषरं मण्डलाकारं चन्द्रविम्बनिभं शुभम् ।
चारुपक्वं मनोहारी शर्कराद्यैश्च पूरितम् ।
पूजाकाले देवताया मुद्रैषा परिकीर्तिता ॥

यामले—

भृष्टधान्यादिकः यावच्चर्वणीयं प्रकल्पयेत् ।
तेषां संज्ञा कृता मुद्रा महामोहप्रदायिनी ॥

एतेषां शोधनन्तु स्वतन्त्रतन्त्रे—ॐ प्रतद्विष्णुरित्यादिना मांसम्। ॐ त्र्यम्बकमित्यादिना मीनम्। ॐ तद्विष्णोरित्यादिना मुद्राञ्च शोधयेत्।

मांसादि का शोधन—मांस तीन प्रकार का होता है—जलचर, खेचर, भूचर। ये तीनों ही मांस देवता को प्रिय हैं। मत्स्य भी तीन प्रकार का होता है—उत्तम, मध्यम और अधम। शाल, पाठीन और रोहित—ये तीनों मत्स्य उत्तम हैं। कण्टकहीन, तैलाक्त और वल्कलयुक्त बड़े मत्स्य को मध्यम कहते हैं। सभी प्रकार के क्षुद्र मत्स्य अधम माने गये हैं।

भूचर मांस—१. बैल, २. मनुष्य, ३. भेड़ा, ४. अश्व, ५. भैंसा, ६. सूअर, ७. बकरा, ८. हरिण—ये आठ प्रकार के मांस महामांस कहलाते हैं। ये सभी देवता को प्रिय हैं। मांस के अभाव में अनुकल्प समयाचारतन्त्र के अनुसार हैं—नमक, अदरख, पिण्याक, तिल, गेहूँ, उड़द एवं लहसुन।

मुद्रा दो प्रकार की होती है। कुलार्णव में बताया गया है कि चन्द्रविम्ब के समान गोलाकार, सुपक्व, शक्कर आदि से पूर्ण उत्तम मुद्रा पूजाकाल में देवता को प्रदान करनी चाहिये। यामल के अनुसार सभी चर्वणीय धान्य को मुद्रा कहते हैं। इससे देवता को आनन्द मिलता है।

स्वतन्त्रतन्त्र के अनुसार 'ॐ प्रतद् विष्णुः' आदि मन्त्र से मांस का, 'ॐ त्र्यम्बकं यजामहे' इत्यादि मन्त्र से मत्स्य का और 'ॐ तद् विष्णोः परमं पदं' इत्यादि मन्त्र से मुद्रा का शोधन होता है।

शक्तिशोधनम्

तत्र भावचूडामणौ—

अदीक्षितकुलासङ्गात्सिद्धिहानिः प्रजायते ।
तत्कथाश्रवणञ्चेत्स्यात्तत्तल्पगमनं यदि ।
स कुलीनः कथं देवि पूजयेत् परमेश्वरीम् ॥

श्रीक्रमे—

संशोधनमनाचर्य नाचरेत्कुलपूजनम् ॥

कौलिकतन्त्रे—

अभिषेकाद्भवेच्छुद्धिर्मन्त्रस्योच्चारविन्दुभिः ।
बलाद्वा यत्नतो वापि अभिषेकं समाचरेत् ॥

अभिषेकमन्त्रस्तु—

आदौ बालां समुच्चार्य त्रिपुरायै समुद्धरेत् ।
नमः शब्दं समुच्चार्य इमां शक्तिं ततो वदेत् ।।
पवित्रीकुरुशब्दान्ते मम सिद्धिं कुरु प्रिये ।
वह्निजायां समुच्चार्य शुद्धिमन्त्रः सुरेश्वरि ।
तस्याः कर्णेऽभेदबुद्ध्या मायाबीजं समुच्चरेत् ।।

इति शक्तिशोधनम्। ततः शोधितद्रव्यमर्घ्ये क्षिपेत्। श्रीक्रमे अर्घ्यविधौ—

पूर्वशोधितद्रव्यन्तु गुप्तेनैव च संक्षिपेत् ।

शक्तिशोधन—भावचूड़ामणि में बताया गया है कि अदीक्षिता शक्ति के साथ होने से सिद्धि की हानि होती है। यदि कोई साधक अदीक्षिता शक्ति की बात सुनता है या उससे सम्पर्क करता है तो वह कुलीन नहीं रहता, परमेश्वरी की पूजा करने के योग्य नहीं रहता।

श्रीक्रम के अनुसार शोधन किए विना मद्यपान और स्त्रीसम्पर्क करने से सिद्धि की हानि होती है। भगवती रुष्ट हो जाती है। कौलिकतन्त्र में बताया गया है कि मन्त्रोच्चारण-पूर्वक जल से कामिनी का अभिषेक करने से वह विशुद्ध होकर शक्ति बन जाती है। अतः उसका अभिषेक अवश्य करना चाहिये। अभिषेक का मन्त्र है—ऐं क्लीं सौः त्रिपुरायै नमः इमां शक्तिं पवित्रीकुरु मम सिद्धिं कुरु स्वाहा।

यही शक्तिशोधन मन्त्र है। फिर उस शक्ति के कान में मायाबीज 'ह्रीं' सुनाये।

श्रीक्रम में अर्घ्यविधान में बताया गया है कि गुप्त रूप से पूर्वशोधित द्रव्य को अर्घ्यपात्र में डालना चाहिये।

स्वतन्त्रतन्त्रे—

आद्यद्रव्यमर्घ्यपात्रे निक्षिप्य प्रयतः सुधीः ।
कुण्डगोलोद्भवं द्रव्यं स्वयम्भुकुसुमन्तथा ।
अर्घ्यं दत्त्वा महेशानि सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।।
सुधया चार्घ्यदानेन योगिनीनां भवेत्प्रियः ।
महायोगी भवेद्देवि पीठप्रक्षालनैर्जलैः ।।

भैरवतन्त्रे—

पञ्चमात्तु परं नास्ति शाक्तानां सुखमोक्षयोः ।
केवलैः पञ्चमैर्वापि सिद्धो भवति साधकः ।।

तेन पञ्चमकारेण पूजा कर्त्तव्या। ततोऽर्घ्यस्थापनानन्तरं पर्यङ्कमध्ये पीठं पूजयेत्। मण्डूकाय नमः इत्यादिक्रमेण। तदुक्तम्—

पूजयेदथ पर्यङ्कमध्ये मण्डूकमग्रतः ।
कालाग्निरुद्रमाधारशक्तिं कूर्ममनन्तकम् ॥
वराहं पृथिवीं कन्दं नालञ्च केशराणि च ।
पद्मञ्च कर्णिकञ्चैव मण्डलञ्च समर्चयेत् ॥
धर्मं वैराग्यमैश्वर्यं ज्ञानमज्ञानमेव च ।
अनैश्वर्यमवैराग्यमधर्ममपि पूजयेत् ॥
ज्ञानविद्यात्मकञ्चैव आत्मानञ्चापि पूजयेत् ।
गन्धपुष्पाक्षतादीनि दत्त्वा तत्रैव पूजयेत् ॥

अथ तुलिकोपरि कुलं स्थापयित्वा प्रपूजयेत्। तथा च—

तस्योपरि कुलं स्थाप्य पूजानुष्ठानमेव च ।
पूजयेच्च ततस्तस्यां पञ्चकामान्समाहितः ।
ह्रीञ्चैव कामराजञ्च क्लीं कन्दर्पं ऐं च मन्मथम् ॥
ब्लूं मकरध्वम् स्त्रीञ्चैव हि मनोभवम् ।
ओङ्कारादिनमोऽन्तञ्च कुसुमैर्गन्धसंयुतैः ॥
अर्चयित्वा चतुर्दिक्षु पूजयेत्कुलनायिकाम् ।
वटुकं भैरवीञ्चैव दुर्गाञ्च क्षेत्रपालकम् ॥

पूजावाक्यन्तु—ॐ ह्रीं कामराजाय नमः इत्यादि। तत ऐं क्लीं स्त्रीं क्लीं ब्लूं आधारशक्तिश्रीपादुकां पूजयामीत्यनेन तस्या ललाटे त्रिकोणं विलिखेत्। तथा च तन्त्रसारे—

वाग्भवं कामबीजञ्च स्त्रीबीजं कामराजकम् ।
ब्लूमात्मकं ततो दत्त्वा आधारशक्तिमुद्धरेत् ॥
श्रीपादुकां ततो दत्त्वा पूजयामि वदेत्ततः ।
अनेन मनुना देवि ललाटे सुमनोहरम् ।
त्रिकोणं तत्र संलिख्य सिन्दूराद्यैर्वरानने ॥

उत्तरतन्त्रे—

तस्या मूर्ध्नि त्रिकोणञ्च यन्त्रमालिख्य साधकः ।
महाप्रेतासनं मध्ये बालाञ्च पूजयेत्ततः ॥

तत एवञ्च ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः इति पूजयेत्। ततो बालां कामेश्वरीञ्च पूजयेत्।

स्वतन्त्रतन्त्र में लिखा है कि ज्ञानी व्यक्ति सावधानी के साथ अर्घ्यपात्र में पूर्वशोधित

द्रव्य डाल कर कुण्डगोल द्रव्य और स्वयम्भू कुसुम छोड़कर देवी को अर्घ्य प्रदान करता है। इससे उसे सभी सिद्धियाँ मिल जाती हैं।

सुरा से अर्घ्य देने पर साधक योगिनियों का प्रिय होता है। पीठक्षालन वारि से अर्घ्य देने पर साधक महायोगी होता है। उत्तरतन्त्र में बताया गया है कि शक्तिमन्त्रोपासकों के लिये पञ्चम के अतिरिक्त अन्य कोई कल्याणकारी या मोक्षप्राप्ति का साधन नहीं है। एकमात्र पञ्चम द्वारा ही साधक सिद्धि प्राप्त कर सकता है। अतः पञ्चमकार द्वारा पूजा करना आवश्यक कर्तव्य है।

अर्घ्यस्थापन के बाद पीठ के मध्य में मण्डूकाय नमः इत्यादि क्रम से कालाग्नि, रुद्र, आधारशक्ति, कूर्म, अनन्त, वराह, पृथिवी, कन्द, नालकेशरसमूह, पद्मकर्णिका, मण्डल, धर्म, वैराग्य, ऐश्वर्य, ज्ञान, अज्ञान, अनैश्वर्य, अवैराग्य, अधर्म की पूजा करके ज्ञानविद्यात्मक आत्मा की पूजा करे। तब गन्ध-पुष्पाक्षत से देवता की पूजा करके पर्यंक के ऊपर कुल को स्थापित कर उसकी पूजा करे।

सावधानीपूर्वक शक्ति के अंग में गन्ध-पुष्प से पञ्च काम की पूजा करे—ॐ ह्रीं कामराज़ाय नमः, क्लीं कन्दर्पाय नमः, ॐ ऐं मन्मथाय नमः, ॐ ब्लूं मकरध्वजाय नमः, ॐ स्त्रीं मनोभवाय नमः।

इसी प्रकार चारो दिशाओं में पूजा कर कुलनायिका की पूजा करे। तब वटुकभैरव, दुर्गा और क्षेत्रपाल की पूजा करे। इसके बाद ऐं क्लीं स्त्रीं क्ली ब्लूं आधारशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि कहते हुए शक्ति के ललाट पर सिन्दूर आदि से मनोहर त्रिकोण अंकित करे। उत्तरतन्त्र में लिखा है कि शक्ति के मस्तक पर त्रिकोणयन्त्र बनाकर ह्सौः सदाशिव-महाप्रेतपद्मासनाय नमः से महाप्रेतासन की पूजा कर भगवती बाला की और कामेश्वरी की पूजा करे।

कुलार्णवे—

गणेशञ्च कुलाध्यक्षं दुर्गां लक्ष्मीं सरस्वतीम् ।
त्रिकोणेषु च सम्पूज्य वसन्तं मदनं प्रिये ।
स्तनयोः पूजयेत्पश्चान्मुखे तस्याः सुधाकरम् ॥

उत्तरतन्त्रे—

मौलौ गणेशं केशाग्रे कुलाध्यक्षं ललाटके ।
दुर्गां भ्रुवोस्तथा लक्ष्मीं रसनायां सरस्वतीम् ॥

इति यत् स्थानवैपरीत्यं तदैच्छिकम्। ज्ञानार्णवे—

दक्षपादादिमूर्द्धान्तं वाममूर्द्धादि सुन्दरि ।
पादान्तं पूजयेत्सर्वाः कला वै कामसोमयोः ॥

श्रद्धा प्रीति रतिश्चैव भूतिः कान्तिर्मनोभवा।
मनोहरा मनोरामा मदनोत्पादिनी तथा ॥
मोहिनी दीपनी चैव शोधनी च वशङ्करी।
रञ्जनी चैव देवेशि षोडशी प्रियदर्शना।
षोडशस्वरसंयुक्ता एताः कामकला यजेत् ॥

वाक्यन्तु—अं श्रद्धायै नमः, आं प्रीत्यै नमः इत्यादि।

ततश्चन्द्रकलाः पूज्याः शिरसश्चरणावधि।
पूषा वशा च सुमना रतिः प्रीतिस्तथा धृतिः ॥
ऋद्धिः सौम्या मरीचिश्च शैलजे चांशुमालिनी।
अङ्गिरा वशिनी चैव छाया सम्पूर्णमण्डला।
तथा तुष्ट्यमृते चैव कलाः सोमस्य षोडश ॥

अङ्गिरास्थाने मदिरेति वा पाठः। उत्तरतन्त्रे—

स्वरैरेव प्रपूज्या हि सर्वकार्यार्थसिद्धये।

कुलार्णव में लिखा है कि त्रिकोण के मध्य में गणेश और कुलाध्यक्ष की पूजा करके उसके तीनों कोणों में दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती की पूजा करे। तब दोनों स्तनों में वसन्त और मदन की पूजा कर मुखमण्डल में सुधाकर की पूजा करे।

उत्तरतन्त्र के अनुसार मस्तक में गणेश, केशाग्र में कुलाध्यक्ष, ललाट में दुर्गा, भ्रूमध्य में लक्ष्मी और जीभ में सरस्वती की पूजा करे। साधक इच्छानुसार दोनों में से किसी क्रम को मान सकता है। ज्ञानार्णव में बताया गया है कि दाँयें पैर से लेकर मस्तक के दाँयें भाग तक कामकला एवं सोमकला की पूजा करे। ये कलायें निम्नांकित हैं—

कामकला—१. श्रद्धा, २. प्रीति, ३. रति, ४. भूति, ५. कान्ति, ६. मनोभवा, ७. मनोहरा, ८. मनोरमा, ९. मदना, १०. उत्पादिनी, ११. मोहिनी, १२. दीपनी, १३. शोधनी, १४. वशंकरी, १५. रञ्जनी और १६. प्रियदर्शना। इन सोलह कलाओं में से प्रत्येक के नाम के पूर्व सोलह स्वरों को लगाकर पूजा करे। यथा—अं श्रद्धायै नमः, आं प्रीत्यै नमः इत्यादि।

चन्द्रकला—१. पूषा, २. वशा, ३. सुमना, ४. रति, ५. प्रीति, ६. धृति, ७. बुद्धि, ८. सौम्या, ९. मरीचि, १०. अंशुमालिनी, ११. अंगिरा, १२. वशिनी, १३. छाया, १४. सम्पूर्णमण्डला, १५. तुष्टि और १६. अमृता।

उत्तरतन्त्र में लिखा है कि सोलह स्वरों का योग करके उक्त सोलह कलाओं की पूजा करे। इससे कार्य सिद्ध होते हैं।

ललितातन्त्रे—

भगे त्वदीये विज्ञेया नाड्यस्तिस्त्रः प्रवाहिकाः ।
एका तु वाहिका चान्द्री सौरी चान्या तु वाहिका ।
आग्नेयी चापरा ज्ञेया पूजयेत्तास्तु साधकः ॥
अम्बुं स्त्रवति चान्द्री सा पुष्पं स्त्रवति भानवी ।
बीजं स्त्रवति चाग्नेयी तास्तु नाभिरर्चयेत् ॥

ललितातन्त्रे—

वाग्भवाद्यैर्नमोयुक्तैस्ताः पूजयेत्प्रसन्नधीः ।

तेन ऐं चान्द्र्यै नमः। ऐं सौर्यै नमः। ऐं आग्नेयै नमः। उत्तरतन्त्रे—

पूजयेन्मदनागारे रक्तचन्दनचर्चिते ।
भगमालामनुं प्रोच्य त्रितारानन्तरं तथा ।

तथा—

ऐं ह्रीं श्रीं ऐं जं ब्लूं क्लिन्ने ततः परम् ।
सर्वाणीति भगानीति वशमानय तत्परम् ॥
स्त्रीं ह्रीं क्लीं ब्लूं भगमालिन्यै नमः ।
ऐं ह्रीं श्रीं इति मन्त्रेण गन्धाद्यैस्तामर्चयेत् ॥

ततस्तु तत्रैव मूलं पूजयेत्। तन्त्रान्तरे—

इहाप्यावाहनं नास्ति जीवन्यासो महेश्वरि ।
तथैवञ्च विधानेन तां षोडशोपचारकैः ।
इष्टदेवीं प्रपूज्याथ सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥

ततः स्वलिङ्गं पूजयेत्।

अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैः स्वशिवं तदनन्तरम् ।
मूलमन्त्रं ॐ नमः शिवाय ततः परम् ।
यजेत्तत्पुरुषाघोरसद्योजातकसंज्ञकैः ॥

ललितातन्त्र में कहा है कि शक्ति के कुलागार में तीन प्रवाहिनी नाड़ियाँ हैं—मध्य में चान्द्री नाड़ी एवं अगल-बगल में सौरी और आग्नेयी नाड़ियाँ हैं। साधक इन तीनों नाड़ियों की पूजा करे। चान्द्री नाड़ी जल, सौरी नाड़ी पुष्प और आग्नेयी नाड़ी बीज का क्षरण करती है। नामोच्चारण करते हुए इन तीनों नाड़ियों की पूजा करनी चाहिये। ललितातन्त्र के अनुसार नाम के पूर्व ऐं और अन्त में नमः लगाकर प्रसन्न चित्त से यह पूजन करना चाहिये। ऐं चान्द्र्यै नमः, ऐं सौर्यै नमः, ऐं आग्नेय्यै नमः मन्त्र हैं।

उत्तरतन्त्र के अनुसार रक्त-चन्दनचर्चित मदनागार में पहले भगमाला के मन्त्र का उच्चारण करके ऐं क्लीं सौः का जप करे। उसके बाद ऐं ह्रीं श्रीं ऐं जं ब्लूं क्लिन्ने सर्वाणि भगानि वशमानय मे मन्त्र का जप करे। तब स्त्रीं ह्रीं क्लीं ब्लूं भगमालिनी नमः, ऐं ह्रीं श्रीं मन्त्र से गन्धादि उपचारों से पूजा करे। तब उस मदनागार में इष्टदेवता की पूजा करे।

तन्त्रान्तर में बताया गया है कि इस पूजन में आवाहन और जीवन्यास की आवश्यकता नहीं है। केवल षोड़शोपचार से इष्टदेवता की पूजा करे। इसी से सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

इसके बाद ॐ नमः शिवाय से स्वशिव की पूजा कर तत्पुरुष, अघोर और सद्योजात नामों से पूजा करे।

श्रीविद्यायान्तु—

तारञ्च भुवनेशानीं तथा त्रिपुरसुन्दरीम् ।
नमः शिवाय विद्येयं दशार्णा परिकीर्तिता ॥

इति विशेषः। सुन्दरीं सुन्दरीत्रिकूटम्। तत्पुरुषादिमन्त्रस्तु पूर्वोक्तः।

निवृत्तिञ्च प्रतिष्ठाञ्च विद्याञ्च तदनन्तरम् ।
शक्तिञ्च शान्त्यतीताञ्च तदङ्गे तदनन्तरम् ॥
समग्रविद्यामुच्चार्य त्रिकोणञ्चैव पूजयेत् ।
अवधूतेश्वरीं कुब्जां कामाख्यां समयामपि ॥
चक्रेश्वरीं कालिकाञ्च तथा दिक्वरवासिनीम् ।
महाचण्डेश्वरीं तारां पूजयेदत्र साधकः ॥
तदनुज्ञां ततो लब्ध्वा दत्त्वा ताम्बूलमेव च ।
शिवञ्च तत्र निक्षिप्य गजतुण्डाख्यमुद्रया ।
धर्माधर्महविर्दीप्त आत्माग्नौ मनसा स्रुचा ।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् ॥
स्वाहान्तोऽयं महामन्त्र आरम्भे परिकीर्तितः ।
ततो जपेत् स्त्रियं गच्छन्विद्यां त्रिभुवनेश्वरीम् ॥

जपेदिति अष्टोत्तरसहस्रं शतं वा अक्षुब्धो जपेत्। तथा च स्वतन्त्रतन्त्रे—

प्रजपेत्क्षोभरहितश्चाष्टोत्तरसहस्रकम् ।
शतमष्टोत्तरं वापि प्रजपेत् शुद्धमानसः ॥
प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनी स्रुचा ।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णमग्नौ जुहोम्यहम् ।
स्वाहान्तोऽयं महामन्त्रः शुक्रत्यागे प्रकीर्तितः ॥

श्रीविद्या का साधक 'ॐ ह्रीं ऐं क्लीं सौः नमः शिवाय इस दशाक्षर मन्त्र से अपने शिव की पूजा करे। तत्पुरुषादि मन्त्र पहले वतलाये गये हैं। इसके बाद शक्ति के अंग में निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीता देवताओं की पूजा करे।

पूर्वोक्त मन्त्र का उच्चारण करते हुए त्रिकोण की पूजा करे। इसके बाद अवधूतेश्वरी, कुब्जा, कामाख्या, समया, चक्रेश्वरी, कालिका, दिक्करवासिनी, महाचण्डेश्वरी और तारा की पूजा करे। तव शक्ति को ताम्बूल देकर उसकी अनुमति लेकर गजतुण्ड मुद्रा द्वारा कुलागार में अपने शिव को प्रवेश कराये। प्रवेश कराने का मन्त्र है—

धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीं जुहोम्यहम्।। स्वाहा।

धर्म-अमर्धरूप हवि द्वारा प्रज्ज्वलित आत्मरूप अग्नि में मनोरूप स्रुव द्वारा सुषुम्ना मार्ग से मैं सभी इन्द्रियवृत्तियों की आहुति देता हूँ।

आरम्भ काल के अन्त में स्वाहा का उच्चारण करते हुए उक्त मन्त्र का पाठ करना चाहिये। इसी प्रकार शक्तिसम्पर्क में अक्षुब्ध चित्त से त्रिभुवनेश्वरी के मन्त्र का एक हजार आठ जप करे। शुक्रत्याग के समय निम्न मन्त्र का पाठ करे—

प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनी स्रुचा।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णमग्नौ जुहोम्यहम्।। स्वाहा।

विशेषस्तु ज्ञानार्णवे—

शिवशक्तिसमायोगो योग एव न संशयः ।
सीत्कारो मन्त्रजापश्च वचनं स्तवनं भवेत् ।
आलिङ्गनञ्च कस्तूरीं कर्पूरं चुम्बनं भवेत् ।।
नखदंष्ट्रक्षतादीनि पुष्पाणि विविधानि च ।
मथनं तर्पणं विद्धि बीजपातो विसर्जनम् ।।

कुलार्णवे—

आलिङ्गनं चुम्बनञ्च स्तनयोर्मर्दनन्तथा ।
दर्शनं स्पर्शनं योनेर्विकाशो लिङ्गघर्षणम् ।
प्रवेशः स्थापनं शक्तेर्नव पुष्पाणि पूजने ।।

यामले—

संयोगाज्जायते सौख्यं परमानन्दलक्षणम् ।
कुलामृतं प्रयत्नेन गृह्णीयाद् दुर्लभं नरः ।।
तेनामृतेन दिव्येन सर्वे तुष्टा भवन्ति हि ।
यत्कामं कुरुते मन्त्री तत्क्षणादेव सिध्यति ।।

ज्ञानार्णवे—

कुलद्रव्यञ्च संशोध्य शिवशक्तिमयं प्रिये ।
जीवामृतं परंब्रह्मरूपं निक्षिप्य सुन्दरि ॥
अर्घ्यपात्रामृतैर्यष्ट्वा निर्विकल्पः सदा नरः ।
श्रीविद्याक्रममभ्यर्च्य परब्रह्ममयो भवेत् ॥

श्रीविद्येत्युपलक्षणम्।

इति ते कथितं ज्ञानं सर्वं रम्यं वरानने ।
सविकल्पस्तु सततं पापभाग् जायते नरः ॥
विचिकित्सापरो मन्त्री जायते गुरुतल्पगः ।
अतएव वरारोहे निर्विकल्पः सदा भवेत् ॥

ज्ञानार्णव में विशेष भाव से स्पष्ट किया गया है कि शिव और शक्ति के सम्मिलन का नाम ही योग है। इस अवसर पर शीत्कार मन्त्रजप, वाक्य स्तव, आलिंगन कस्तूरी, चुम्बन कर्पूर, नखक्षत-दन्तक्षत आदि बहुविध पुष्प, मथन तर्पण और बीजपात विसर्जन माना गया है।

कुलार्णव के अनुसार आलिंगन, चुम्बन, स्तनमर्दन, दर्शन, स्पर्शन, योनिविकास, लिंगघर्षण, प्रवेश और स्थापन—ये शक्तिपूजा के नौ पुष्प हैं। यामल में बताया गया है कि शिव-शक्तिसंयोग के द्वारा परमानन्दमय सुख उत्पन्न होता है। इस क्रिया से साधक सुदुर्लभ दिव्य कुलामृत ग्रहण करता है।

इस दिव्यामृत से सभी देवगण प्रसन्न होते हैं। इस कुलामृत को देकर साधक शीघ्र ही अपने अभीष्ट को सिद्ध कर लेता है।

ज्ञानार्णव में बताया गया है कि उक्त कुलद्रव्य शिव-शक्तिमय जीवामृत है। यह परब्रह्मस्वरूप है। इस कुलद्रव्य का शोधन कर अर्घ्यपात्र में डालकर उस अर्घ्यपात्र के अमृत से पूजा करने पर साधक निर्विकल्प हो जाता है। इस भाव से श्रीविद्या-पूजा के क्रमानुसार साधना करने से साधक परब्रह्ममय हो जाता है। यहाँ श्रीविद्या-पूजन उपलक्षण है। सभी देवताओं के सम्बन्ध में यही तथ्य समझना चाहिये।

इस विषय में सन्दिग्ध होने से मनुष्य पाप का भागी होता है। जो भी सन्देह करता है, उसे गुरुतल्पगामी-जैसा महापाप लगता है। अत: इस समस्त साधना को विना किसी सन्देह के करना चाहिये।

समयाचारे—

कुलामृतं समादाय तदर्घ्ये निक्षिपेत्ततः ।
तदर्घ्येण समाराध्य पूजाशेषं समाचरेत् ॥

कुलामृतं शोधितम्। शोधनमन्त्रस्तु श्रीक्रमे—

अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि प्रिये ।
देवीपदं शुक्रशापं प्रमोचयपदद्वयम् ।।
अमृतं स्रावयद्वन्द्वममृतं कुरुयुग्मकम् ।
स्वाहापदं ततो देवि शुक्रशुद्धिर्भवेत्प्रिये ।।
शुक्रैरक्षततण्डुलैः सुगन्धिकुसुमैर्युतैः ।
अर्घ्यद्रव्यैश्च देवेशि योनौ देवीं प्रपूजयेत् ।।

उतरतन्त्रे—

धूपदीपैश्च नैवेद्यैर्विविधैः कुलसाधकः ।
विधाय वन्दितां ताञ्च तदुच्छिष्टं स्वयञ्चरेत् ।।

शिवागमे च—

अविचारं शक्त्युच्छिष्टं न पिबेत्पुरुषो यदि ।
घोरञ्च नरकं याति कुलमार्गात्पतेद्ध्रुवम् ।।
तस्माद्विचार्य यत्नेन शक्त्युच्छिष्टं भजेत्सुधीः ।
आनन्दं कारयेद्वीरस्तत्त्वं निर्भ्रान्तितः पिबेत् ।।

समयाचारतन्त्र के अनुसार अर्घ्यपात्र में कुलामृत डालकर उस अर्घ्यजल से अर्चन कर पूजा पूरी करनी चाहिये। कुलामृत का शोधन कर लेना चाहिये। श्रीक्रम में उसके शोधन का मन्त्र निम्न प्रकार का बताया गया है—

अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि देवि शुक्रशापं प्रमोचय प्रमोचय अमृतं स्रावय स्रावय अमृतं कुरु कुरु स्वाहा।

इस मन्त्र से शुक्र का शोधन हो जाता है। सुगन्धित पुष्प और अक्षत के साथ इस शोधित शुक्र को अर्घ्यजल में मिलाकर उक्त कुलागार में ही देवी की पूजा करनी चाहिये। उत्तरतन्त्र में आगे लिखा है कि कुलसाधक धूप-दीप-बहुविध वस्तुओं से शक्ति की पूजा करके स्वयं उसका उच्छिष्ट भोजन करे। शिवागम में कहा गया है कि बुद्धिमान साधक निर्विकार भाव से शक्ति के उच्छिष्ट का सेवन करे; अन्यथा वह कुलमार्ग से पतित होकर घोर नरक में जाता है। अत: वीर साधक स्थिर हृदय से विचार कर भ्रान्ति छोड़कर आवश्यक कर्तव्य समझते हुए शक्ति के उच्छिष्ट द्रव्य को खाये, पीये और आनन्द का अनुभव करे।

कुलामृते—

पूजाकालं विना नैव पश्येच्छक्तिं दिगम्बराम् ।
पूजाकालं विना नैव सुधा पेया च साधकैः ।

आयुषा हीयते स्पृष्ट्वा पीत्वा च नरकं व्रजेत् ।।

इति कुलपूजा। यामले—

नैवेद्यं त्रिपुरादेव्या वाञ्छन्ति विबुधाः सदा ।
तस्मादेवं कुरु श्रेष्ठ ब्रह्मणे विष्णवेऽपि च ।
महाशुद्धाय सूर्याय गणेशाय यमाय च ।।
वह्नये च वरुणाय वायवे धनदाय च ।
ईशानाया महादेवि साधकाय प्रदापयेत् ।।

त्रिपुरेत्युपलक्षणम्।

कुलामृत में बताया गया है कि पूजासमय को छोड़कर अन्य किसी भी समय दिगम्बरा शक्ति का दर्शन न करे। पूजासमय के अतिरिक्त सुरापान कदापि न करे। अन्य समय सुरा को छूने से भी आयुक्षय होता है। उसे पीने से नरक जाना पड़ता है।

नैवेद्य महिमा—यामल में कहा है कि त्रिपुरा देवी को अर्पित नैवेद्य की कामना देवगण भी निरन्तर करते हैं। अतः इस नैवेद्य को ब्रह्मा, विष्णु एवं शुद्ध स्वभाव के सूर्य, गणेश, अग्नि, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान सभी देवता को प्रदान करे; क्योंकि ये सभी साधक हैं। यहाँ त्रिपुरा देवी उपलक्षणमात्र है। आशय हैं कि सभी देवियों का उच्छिष्ट नैवेद्य सभी के द्वारा ग्राह्य है।

वीराणां पुरश्चरणम्

तत्रादौ परकीयां नारीं दीक्षितां पूजयेत्। तथा च कुलचूडामणौ—

पुरश्चरणकाले हि परयोषां प्रपूजयेत् ।
दीक्षितां वस्त्रभूषाद्यैर्भोज्यैः पायससम्भवैः ।।
आरम्भकाले नियतं स्वयं पक्वान्नभोजनम् ।
नानाविधं पिष्टकञ्च नानारससमन्वितम् ।।
दुग्धं दधि घृतं तक्रं नवनीतं सशर्करम् ।
उपलाखण्डचूतानि नानाविधरसायनम् ।।
नारिकेलं कपित्थञ्च नागरङ्गं सुदर्शनम् ।
लिम्पाकं बीजपूरञ्च दाडिमीफलमुत्तमम् ।।
नानारम्यफलञ्चैव नानागन्धविलेपनम् ।
चन्दनं मृगनाभिञ्च श्रीखण्डं नवपल्लवम् ।।
टङ्कणं लोध्रकञ्चैव जलजं वनजं तथा ।
नानाशैलसमुद्भूतं नानालङ्कारभूषितम् ।।
शून्यगेहे समानीय चार्घ्योदकविशोधितम् ।

अमृतीकरणं कृत्वा शक्तिञ्चाभिमुखीं नयेत् ।।
ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा च कुलभूषणा ।
वैश्या नापितकन्या च रजकी नटकी तथा ।
विशेषवैदग्ध्ययुताः सर्वा एव कुलाङ्गनाः ।।

वीराचारी का पुरश्चरण—कुलचूड़ामणितन्त्र में बताया गया है कि पुरश्चरण के समय भी दीक्षिता परनारी का वस्त्र, भूषण और पायस आदि भोज्य पदार्थों से पूजन करना चाहिये। पुरश्चरण के आरम्भकाल में ही अपने द्वारा पकाया हुआ अन्न, व्यंजन, विविध रसमय अनेक प्रकार के पिष्टक, घी, दूध, दही, मट्ठा, मक्खन, शक्कर, मिश्री, बताशा, आम, विविध रसायन द्रव्य, नारियल, कत्था, नारंगी, नीबू, बीजपूर, अनार, अनेक प्रकार के सुन्दर फल, विविध गन्धद्रव्य, रक्तचन्दन, कस्तूरी, श्रीखण्ड, नवपल्लव, टंकणफल, लोध्रफल, जलज-वनज विविध वस्तुयें, विविध पर्वतीय द्रव्य और विविध भूषणभूषित परिच्छद आदि नारी-पूजा में प्रदान करे। शून्य गृह में शक्ति को लाकर अर्घ्यजल से शोधन करे। अमृतीकरण करके उसे अपने सामने बिठावे।

१. ब्राह्मणी, २ क्षत्रिया, ३. वैश्या, ४. शूद्रा, ५. वेश्या, ६. नापितकन्या, ७. रजकी, ८. नटकी—इन सभी स्त्रियों को शक्ति मानना चाहिये। विशेष भाव से लीलाचातुर्य जिनमें हो, उन कुलांगनाओं को इस कार्य में शक्तिरूप से ग्रहण करना चाहिये।

अथ दीक्षिता अष्टशक्तीः क्रमेण संस्थाप्यार्घ्यपात्रं स्थापयित्वा अर्घ्योदकेन तांश्चाभ्युक्ष्य वमिति धेनुमद्रया अमृतीकृत्याष्टशक्तिरूपभेदं कृत्वा ब्राह्मण्याद्यष्टशक्तीनां संज्ञाभिर्नामकरणं कृत्वा क्रमेणासनादिकं दद्यात्। तदुक्तं तत्रैव—

अष्टकन्यारूपभेदं विलोक्यामर्षवेष्टितम् ।
ब्राह्मण्याद्यष्टशक्तीनां नामभिः कृतसंज्ञया ।।
आसनं प्रथमं दत्त्वा स्वागतञ्च पुनः पुनः ।
अर्घ्यं पाद्यञ्च पानीयं मधुपर्कं जलन्ततः ।।
स्नापयेद् गन्धपुष्पादिकेशसंस्कारमेव च ।
धूपयित्वा ततः केशान् कौषेयञ्च निवेदयेत् ।।
ततः स्थानान्तरे पीठमास्तीर्य पादुकाद्वयम् ।
दत्त्वा तत्र समासीनां नानालङ्कारभूषणैः ।
भूषयित्वानुलेपञ्च गन्धं माल्यं निवेदयेत् ।।

ततस्तां तां शक्तिं यथाक्रमेण ब्रह्माण्यादिरूपां समावाह्य जीवन्यासादिकं कृत्वा गन्धपुष्पधूपदीपान्नव्यञ्जनादिकं दत्त्वा तासां सव्यकर्णे क्रमेण स्तोत्रं पठेत्। तदुक्तं तत्रैव—

तां तां शक्तिं समावाह्य मूर्ध्नि तासां समानयेत् ।
भोज्यं मण्डलमध्ये तु स्वर्णपात्रे सुशोभने ।
चर्व्यं चोष्यं लेह्यं पेयं भोज्यं भक्ष्यं निवेदयेत् ।।
अदीक्षिता भवेद् या तु तदा मायां निवेदयेत् ।
तासां सव्येषु कर्णेषु ततः स्तोत्रं समाचरेत् ।।
ॐ मातर्देवि नमस्तेऽस्तु ब्रह्मरूपधरेऽनघे ।
कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ।।
ॐ माहेशि वरदे देवि परमानन्दरूपिणि ।
कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ।।
ॐ कौमारि सर्वविद्येशे कुमारक्रीडने वरे ।
कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ।।
ॐ विष्णुरूपधरे देवि विनतासुतवाहिनि ।
कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ।।

उपर्युक्त आठ शक्तियों को यथाक्रम बिठाकर अर्घ्यस्थापन करे। अर्घ्यजल द्वारा उनका अभ्युक्षण करके वं बीज से धेनुमुद्रा द्वारा अमृतीकरण करे। तब ब्राह्मणी आदि आठ शक्तियों के नाम से अलग-अलग क्रमपूर्वक आवाहन करके उनमें अलग-अलग प्राणप्रतिष्ठा करे। तब उन्हें आसनादि उपचार प्रदान करे। आसन, स्वागत, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, गन्ध, पुष्प, केशसंस्कार द्रव्य, धूप, पट्टवस्त्र, पादुकाद्वय, विविध अलंकार, गन्धादि अनुलेपन द्रव्य, पुष्पमाला आदि उपचारों से अलग-अलग उनकी पूजा कर उपयुक्त आसनों पर उन्हें बिठावे।

इसके बाद उनमें से प्रत्येक के बाँयें कान में निम्न स्तव का पाठ सुनाये। ब्राह्मणी शक्ति के बाँयें कान में—

ॐ मातर्देवि नमस्तेऽस्तु ब्रह्मरूपधरेऽनघे।
कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे।।

हे माता! हे देवि! तुम निष्कलुष ब्रह्मरूपधारिणी हो। तुम कृपा करके मेरे विघ्नों को दूर करो। मुझे मन्त्रसिद्धि दो।

क्षत्रिया शक्ति के बाँयें कान में—

ॐ माहेशि वरदे देवि परमानन्दरूपिणि।
कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे।।

हे देवि माहेशि! तुम परमानन्दरूपिणी हो, वरदायिनी हो। कृपा करके मेरे विघ्न को दूर करो, मुझे मन्त्रसिद्धि दो।

वैश्या शक्ति के वाँयें कान में—

ॐ कौमारि सर्वविद्येशे कुमारक्रीड़ने परे।
कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे।।

हे कौमारि! तुम सभी विद्याओं की अधीश्वरी हो। तुम कार्तिकेय के साथ क्रीड़ा करने में सुदक्ष हो। तुम कृपा करके मेरे विघ्न को दूर करो, मुझे मन्त्रसिद्धि दो।

शूद्रा शक्ति के बाँयें कान में—

ॐ विष्णुरूपधरे देवि विनतासुतवाहिनि।
कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे।।

हे विष्णुरूपधारिणि, हे गरुड़वाहिनि, हे देवि! तुम कृपा करके मेरे विघ्न को दूर करो। मुझे मन्त्रसिद्धि प्रदान करो।

ॐ वाराहि वरदे देवि दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे ।
कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥
ॐ शत्रुरूपधरे देवि शक्रादिसुरपूजिते ।
कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥
ॐ चामुण्डे मुण्डमालासृक्चर्चिते विघ्ननाशिनि ।
कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥
ॐ महालक्ष्मि महोत्साहे क्षोभसन्तापहारिणि ।
कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥
मितिमातृमये देवि मितिमातृबहिष्कृते ।
एके बहुविधे देवि विश्वरूपे नमोऽस्तु ते ॥
एतत्स्तोत्रं पठेद्यस्तु कर्मारम्भेषु संयतः ।
विदग्धां वा समालोक्य तस्य विघ्नं न जायते ॥

वेश्या शक्ति के बाँयें कान में—

ॐ वाराहि वरदे देवि दंष्ट्रोदधृतवसुन्धरे।
कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे।।

हे वाराही देवि! तुम वरदायिनी हो। तुमने अपने दाँतों से पृथ्वी का उद्धार किया है। मुझे मन्त्रसिद्धि प्रदान करो।

नापिता शक्ति के बाँयें कान में—

ॐ शक्ररूपधरे देवि शक्रादिसुरपूजिते।
कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे।।

हे इन्द्ररूपधारिणी देवि! इन्द्रादि देव तुम्हारी पूजा करते हैं। तुम कृपा करके मेरे विघ्न को दूर करो। मुझे मन्त्रसिद्धि प्रदान करो।

रजकी शक्ति के बाँयें कान में—

ॐ चामुण्डे मुण्डमालासृक्चर्चिते विघ्ननाशिनि।
कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे।।

हे चामुण्डे! तुम मुण्डमाला से विभूषित होकर रक्ताक्त कलेवर से विघ्नों का नाश करती हो। तुम कृपा करके मेरे विघ्न को दूर करो। मुझे मन्त्रसिद्धि प्रदान करो।

नटकी शक्ति के बाँयें कान में—

ॐ महालक्ष्मी महोत्साहे क्षोभसन्तापनाशिनि।
कृपया हर मे विघ्नं मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे।।

हे महालक्ष्मि! सभी कार्यों में तुम्हारा महान् प्रोत्साहन रहता है। तुम अपने सेवकों के क्षोभ और सन्ताप को दूर करती हो। तुम कृपा करके मेरे विघ्न को दूर करो। मुझे मन्त्रसिद्धि प्रदान करो।

सभी शक्तियों के बाँयें कान में—

मितिमातृमये देवि मितिमातृबहिष्कृते।
एके बहुविधे देवि विश्वरूपे नमोऽस्तु ते।

हे देवि! तुम मितिमातृमयी हो, मितिमातृ से रहित भी हो। तुम एक होकर भी बहुरूपिणी हो, तुम विश्वरूपिणी हो; तुम्हें नमस्कार है।

कर्म के आरम्भ में जो स्तव का पाठ संयमपूर्वक करता है अथवा किसी विदुषी रमणी को देखकर इसका पाठ करता है तो उसे किसी प्रकार के विघ्न का सामना नहीं करना पड़ता।

कुलीनस्य द्वारदेवाः कथितास्तव पुत्रक।
दीक्षाकाले नित्यपूजासमये नार्चयेद्यदि।
तस्य पूजाफलं वत्स नीयते यक्षराक्षसैः।।
यदि व्रीडापरा सा तु भोजने तद्गृहाद्बहिः।
स्थितस्तावत्पठेत्स्तोत्रं यावत्तृप्तिः प्रजायते।
आचम्य मुखवासादि ताम्बूलञ्च निवेदयेत्।।
ततो दद्यात्पुनर्मालां गन्धचन्दनपङ्किलम्।
विसृज्य प्रदक्षिणीकृत्य वरं प्रार्थ्य सुखी भवेत्।।
अन्या यदि न गच्छेत्तु निजकन्या निजानुजा।
अग्रजा मातुलानी वा माता वा तत्सपत्निका।।

पूर्वाभावे परा पूज्या मदंशा योषितो मताः ।
अग्रजा मातुलानी वा माता वा तत्सपत्निका ॥
एका चेत्कुलशास्त्रज्ञ पूजार्हा तत्र भैरव ।
सर्व एव सुराः पूज्याः सत्यं ब्रह्मशिवादयः ॥
एका चेद्युवती तत्र पूजिता चावलोकिता ।
सर्वा एव परा देव्यः पूजिताः कुलभैरव ॥
आदावन्ते च मध्ये च लक्षपूर्त्तौ विशेषतः ।
न पूजयति चेत्कान्तां तदा विघ्नैर्विलिप्यते ॥
पूर्वार्जितफलं नास्ति का कथा परजन्मनि ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजयेत्कुलसुन्दरीम् ॥

अथैवं क्रमेण लक्षजपादौ मध्ये अन्ते च शक्तिं पूजयेत्। लक्षमित्युपलक्षणम्। ततो रात्रौ पञ्चमेन देवीं सम्पूज्य रहस्यमालया कुलयुक्तं गुरुं शिरसि हृदि देवीञ्च ध्यात्वा शिवोऽहमिति भावयन् जपं कुर्यात्। मुण्डमालायाम्—

गते तु प्रथमे यामे तृतीयप्रहरावधि ।
निशायाञ्च प्रजप्तव्यं रात्रिशेषे जपेन्न तु ॥

कुलाचारी साधक के लिये ये शक्तियाँ ही द्वारदेवता हैं। दीक्षाकाल में या नित्य पूजा के समय में जो इन द्वारदेवताओं की पूजा नहीं करता, उसकी पूजा के फल को यक्ष-राक्षस खा जाते हैं। शक्तियों को अन्नादि देकर उनके सम्मुख बैठकर उस स्तव का पाठ करने से यदि शक्तियों को संकोच हो तो साधक को घर के बाहर जाकर वहीं बैठकर उक्त स्तोत्र का पाठ करना चाहिये। जब तक शक्तियाँ भोजन करके तृप्त न हो जायँ तब तक इस स्तोत्र का पाठ करता रहे।

भोजन समाप्त हो जाने पर शक्तियों को आचमन कराये और मुख सुगन्धित करने के लिये ताम्बूल प्रदान करे। तब गन्ध-चन्दन लगाकर पुष्पमाला पहनाकर उनकी प्रदक्षिणा करके उनसे आशीर्वाद लेकर उन्हें विदा करे। इससे साधक के सभी अभीष्ट पूर्ण होते हैं और वह सब प्रकार से सुखी होता है।

इस साधना हेतु यदि उक्त रमणियाँ न मिलें तो अपनी पुत्री, अपनी छोटी या बड़ी बहन, मामी, माता या विमाता को लाकर उनका पूजन करे। प्रथमोक्त का अभाव होने पर बाद वाली का अर्चन करे; क्योंकि स्त्रीमात्र ही भगवती की अंशस्वरूपा है। सबके हीन होने पर प्रयत्नपूर्वक केवल एक का ही पूजन करे। एक की ही पूजा कर लेने से ब्रह्मा, शिव आदि सभी देवों की पूजा सम्पन्न हो जाती है।

इस पुरश्चरण कर्म में एक ही युवती का दर्शन-पूजन करने से सभी देवियों की पूजा

सम्पन्न हो जाती है। पुरश्चरण जप के पूर्व, मध्य और अन्त में विशेषतः एक लाख जप पूरा होने पर यदि रमणी का अर्चन नहीं होता है तो विघ्न उपस्थित होता है।

नारी-पूजा न करने से पूर्वसञ्चित पुण्य भी नष्ट हो जाते हैं। अतः यत्न करके कुलसुन्दरी की पूजा अवश्य करे।

लक्ष जप के आदि, मध्य और अन्त में शक्तिपूजा आवश्यक कर्तव्य है। इस कथन में लक्ष जप उपलक्षणमात्र है। तात्पर्य यह है कि कितना भी जप करना हो, नारीपूजन आवश्यक है।

बाद में रात के समय पञ्चमकार से देवी की पूजा करके मस्तक में कुलगुरु का और हृदय में देवी का ध्यान करके शिवोऽहं की भावना करते हुए रहस्यमाला से जप करे।

मुण्डमालातन्त्र में कहा गया है कि रात का एक प्रहर बीतने पर तीसरे प्रहर तक जप करे। रात के शेष भाग में जप नहीं करना चाहिये।

स्वतन्त्रतन्त्रे—

रात्रौ मांसासवैर्देवीं पूजयित्वा विधानतः ।
ततो नग्नां स्त्रियं नग्नो रमन् क्लेदयुतोऽपि वा ।।
जपेल्लक्षं ततो देवीं होमयेज्ज्वलदिन्धने ।
योनिकुण्डे स्थिते सर्पिर्मांसमत्स्ययुतं भृशम् ।।
दशांशं तर्पयेद् द्रव्यैर्मांसमिश्रैस्तु साधकः ।
तर्पणस्य दशांशेन अभिषिच्य जगन्मयीम् ।।
दशांशं भोजयेत्साधु साधकं देवताप्रियम् ।
दिव्यं मांसञ्च मत्स्यञ्च चर्वणञ्च प्रदापयेत् ।।
तदन्ते तोषयेद्भक्त्या गुरुं स्वर्णादिभिः प्रिये ।
एतत्कल्पान्महादेवि मन्त्रः सिध्यति निश्चितम् ।।

इति कुलपुरश्चरणम्

●

स्वतन्त्रतन्त्र में लिखा है कि रात के समय मांस और मदिरा से देवी का विधिपूर्वक अर्चन करे। निर्वस्त्र अवस्था में निर्वस्त्रा रमणी के साथ रमण करते हुए क्लेदयुक्त अवस्था में ही लक्ष जप करे। तब त्रिकोणाकार कुण्ड की ज्वलित अग्नि में मत्स्य-मांसयुक्त हवि से जप का दशांश हवन करे।

मांसयुक्त द्रव्य द्वारा हवन का दशांश तर्पण करे। तब तर्पण के दशांश से जगन्मयी का अभिषेक करे।

अभिषेक के दशांश संख्यक वीरसाधकों को दिव्य मत्स्य-मांससहित चर्व्य द्रव्य का भोजन कराकर तृप्त करे। अन्त में स्वर्णादि से भक्तिपूर्वक गुरुदेव को प्रसन्न करे। इस वीराचारकल्प के अनुसार पुरश्चरण करने से मन्त्र अवश्य सिद्ध होता है।

मन्त्रिणां मन्त्रस्नानम्

तन्त्रान्तरे—

स्नायाच्च विमले तीर्थे पुष्करे हृदयाश्रिते ।
विन्दुतीर्थेऽथवा स्नात्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।।
इडासुषुम्ने शिवतीर्थकेऽस्मिन् ज्ञानाम्बुपूर्णे वहतः शरीरे ।
ब्रह्माम्बुभिः स्नाति तयोः सदा यः किन्तस्य गाङ्गैरपि पुष्करैर्वा ।।

इति स्नानम्

◆

साधकों का मन्त्रस्नान—अपने हृदय में स्थित निर्मल पुष्करतीर्थ में अथवा मस्तक में स्थित सहस्रदल कमल के मध्यस्थ त्रिकोण के मध्य में स्थित बिन्दुतीर्थ में साधकों को स्नान करना चाहिये। ऐसे स्नान से मोक्ष प्राप्त होता है; पुनर्जन्म नहीं होता।

यह देह ही शिवतीर्थ है। इस शिवतीर्थ में इड़ा और सुषुम्ना नामक दो ज्ञान-सलिलपूर्ण नदियाँ हैं। इन दो नदियों के ज्ञानजल में जो निरन्तर स्नान करता है, उसके लिये गंगोदक या पुष्कर तीर्थजल की क्या आवश्यकता है? ध्यानपूर्वक मन्त्रजप करने से यह मन्त्रस्नान सम्पन्न होता है।

सन्ध्या

शिवशक्त्योः समायोगो यस्मिन् काले प्रजायते ।
सा सन्ध्या कुलनिष्ठानां समाधिस्थे प्रजायते ।।

तर्पणस्तु—

मूलाधाराज्ज्वलन्तीञ्च सोमसूर्याग्निरूपिणीम् ।
कुण्डलिनीं समुत्थाप्य परविन्दुं निवेश्य च ।
तदुद्भवामृतेनैव तर्पयेद्देहदेवताम् ।।

तदुक्तं नवरत्नेश्वरे—

चन्द्रार्कानलसङ्घट्टाद् गलितं यत्परामृतम् ।
तेनामृतेन दिव्येन तर्पयेदिष्टदेवताम् ।।
ब्रह्मरन्ध्रादधोभागे यच्चान्द्रं पात्रमुत्तमम् ।
कलासारेण सम्पूर्य तर्पयेत्तेन खेचरीम् ।।

साधकों की सन्ध्या—जिस समय शिव-शक्ति परमात्मा कुण्डलिनी का मिलन होता है, उसी को सन्ध्या कहते हैं। जो कुलाचारी समाधिस्थ हो सकते हैं, उन्हीं के लिये यह सन्ध्या है।

इस प्रकार की सन्ध्या के बाद तर्पण करना होता है। सोम-सूर्याग्निरूपिणी प्रज्ज्वलित कुण्डलिनी शक्ति को मूलाधार से उठाकर परम बिन्दु में स्थापित कर उस बिन्दु से उत्पन्न होने वाले अमृत से शरीरस्थ इष्टदेवता का तर्पण करे।

नवरत्नेश्वर में इसके बारे में बताया गया है कि चन्द्र-सूर्य और अग्नि के संयोग से कुण्डलिनी शक्ति से जो परामृत निकलता है, उस दिव्यामृत द्वारा इष्टदेवता का तर्पण करे।

ब्रह्मरन्ध्र के अधोभाग में, भ्रूद्वय के मध्य में, आज्ञाचक्र में चन्द्ररूप जो उत्तम पात्र है, उसे अमृतसार से पूर्ण करके उससे कुलकुण्डलिनी का तर्पण करे।

ध्यानन्तु—

किरणस्थं तदग्निस्थं चन्द्रभास्करमध्यगम् ।
महाशून्ये लयं कृत्वा पूर्णस्तिष्ठति योगिराट् ।।

अथवा—

निरालम्बे पदे शून्ये यत्तेज उपजायते ।
तद्गर्भमभ्यसेन्नित्यं ध्यानमेतद्धि योगिनाम् ।।

तद्गर्भमित्यन्तःकरणस्थमभ्यसेदिति।

कुलयोगी का ध्यान—

किरणस्थं तदाऽग्निस्थं चन्द्रभास्करमध्यगम्।
महाशून्ये लयं कृत्वा पूर्णस्तिष्ठति योगिराट्।।

किरण में, अग्नि में और चन्द्र-सूर्य के मध्य में जो तेज विद्यमान है, श्रेष्ठ योगी उसे महाशून्य में लीन कर एकीभाव से पूर्ण होकर विराजमान रहता है।

निरालम्बे पदे शून्ये यत्तेज उपजायते।
तद् गर्भमभ्यसेन्नित्यं ध्यानमेतद्धि योगिनाम्।।

निराधार शून्य में जो तेज है, उसे अन्तःकरण में रखने का अभ्यास करे। अन्तःकरण को तेजोमय करने का अभ्यास करे। यही योगियों का ध्यान है।

आन्तरपूजा

मूलाधारात्कुलकुण्डलिनीम् उत्थाप्य, हृदयादर्कमण्डलं नीत्वा, सहस्रदलकमलान्तर्गतचन्द्रामृतधारया मूलमन्त्रं स्मरन् सिञ्चेत्।

अर्चयन्विषयैः पुष्पैस्तत्क्षणात्तन्मयो भवेत् ।
न्यासस्तन्मयताबुद्धिः सोऽहं भावेन पूजयेत् ।।

तन्मयेति तदेकत्वज्ञानं सोऽहमिति।

मन्त्राक्षराणि चिच्छक्तौ प्रोतानि परिभावयेत् ।
तामेव परमव्योम्नि परमानन्दबृंहिते ।
दर्शयत्यात्मसद्भावं पूजाहोमादिभिर्विना ।। इति।

विषयपुष्पाणि यथा—

अमायमनहङ्कारमरागममदन्तथा ।
अमोदकमदम्भञ्च अनिन्दाक्षोभकौ तथा ।
अमात्सर्यमलोभञ्च दशपुष्पं विदुर्बुधाः ।।
अहिंसा परमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः ।
दयापुष्पं क्षमापुष्पं ज्ञानपुष्पञ्च पञ्चमम् ।।

आन्तरपूजा—मूलाधार से कुलकुण्डलिनी को उठाकर हृदयमार्ग से आदित्यमण्डल में ले जाय। मूल मन्त्र का स्मरण करते हुए सहस्रदल कमल की कर्णिका-मध्यवर्ती चन्द्रमा से निकलते हुए अमृत को लेकर उससे कुण्डलिनी का अभिषेक करे।

विषयरूप पुष्पों से पूजा करते-करते तन्मय हो जाय। यही तन्मयता न्यास है। सोऽहं भाव से पूजा करे। तन्मयता से तात्पर्य यह है कि आराध्य के साथ अपनी एकता का अनुभव करे। सोऽहं अर्थात् मैं वही देवता हूँ।

मन्त्र के अक्षरों को कुण्डलिनी द्वारा मालासूत्र के समान गूंथा हुआ होने की भावना करे। उस कुण्डलिनी शक्ति को परमानन्द-विस्फारित परमात्मा से ग्रथित होने की भावना करे।

उक्त भावनामयी पूजा-होमादि बाह्य व्यापार से रहित होती हुई भी साधक के सोऽहं भाव को प्रतिष्ठित कर देती है।

विषय पुष्प—१. अमाया, २. अनहंकार, ३. अनासक्ति, ४. गर्वहीन, ५. निर्मोह, ६. अदम्भ, ७. अनिन्दा, ८. अक्षोभ, ९. अमात्सर्य, १०. अलोभ—ये दश पुष्प माने गये हैं। इनके अतिरिक्त पाँच पुष्प ये हैं—१. अहिंसा २. इन्द्रियनिग्रह, ३. दया, ४. क्षमा, ५. ज्ञान।

होम:

आत्मानमपरिच्छिन्नं विभाव्यात्मान्तरात्मपरमात्मज्ञानात्मरूपं चतुरस्रं चित्कुण्डमानन्दमेखलायुतम्। अर्द्धमात्राकृतियोनिविभूषितं नाभौ ध्यात्वा तन्मध्यस्थज्ञानाग्नौ

जुहुयात्। यथा मूलान्ते—

नाभिचैतन्यरूपाग्नौ हविषा मनसा स्रुचा ।
ज्ञानप्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् ।।

स्वाहा इति प्रथमाहुतिम्।

मूलान्ते—

धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा ।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् ।।

स्वाहा इति द्वितीयाहुतिम्।

मूलान्ते—

प्रकाशाकाशहस्ताभ्यां अवलम्ब्योन्मनी स्रुचा ।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णमग्नौ जुहोम्यहम् ।।

स्वाहा इति तृतीयाहुतिं दद्यात्। ततो मूलान्ते—

अन्तर्निरन्तरनिरिन्धनमेधमाने
मायान्धकारपरिपन्थिनि संवदिग्नौ ।
कस्मिंश्चिदद्भुतमरीचिविकाशभूमौ
विश्वं जुहोमि वसुधादिशिवावसानम् ।।

इति चतुर्थाहुतिं जुहुयात्।

इत्यन्तर्यजनं कृत्वा साक्षाद्ब्रह्ममयो भवेत् ।
न तस्य पापपुण्यानि जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ।

अयम् अन्तर्यागो ज्ञानिनामेव।

हवन—नाभि में आत्मा से आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मारूपी चतुरस्र हवनकुण्ड की कल्पना करे। आनन्द इस कुण्ड की मेखला है। अर्द्धमात्राकार योनि द्वारा यह कुण्ड सुशोभित है। इस कुण्ड में ज्ञानाग्नि की भावना कर उसी में हवन करे।

१. मूल मन्त्र— नाभिचैतन्यरूपाग्नौ हविषा मनसा स्रुचा।
ज्ञानप्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तिर्जुहोम्यहं स्वाहा।।

मूल मन्त्र बोलकर ज्ञान से उद्दीप्त नाभिस्थित चैतन्यरूपी अग्नि में मनोरूप हवि के साथ मैं सदैव इन्द्रियवृत्तियों की आहुति देता हूँ।

२. मूल मन्त्र— धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहं स्वाहा।।

मूल मन्त्र को बोलकर धर्म और अधर्मरूपी हवि द्वारा उद्दीप्त आत्मारूपी अग्नि में

सुषुम्ना मार्ग से मनोरूप स्रुक् द्वारा मैं सदैव इन्द्रियवृत्तियों की आहुति देता हूं। यह कहकर दूसरी आहुति दे।

३. मूल मन्त्र— प्रकाशाकाशहस्ताभ्यां अवलम्ब्योन्मनी स्रुचा।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णमग्नौ जुहोम्यहं स्वाहा।।

मूल मन्त्र का उच्चारण करके प्रकाश और अप्रकाश—इन हाथों से उन्नत मनोरूप स्रुक् पकड़कर मैं धर्म-अधर्म-कलारूप हवि का आत्माग्नि में हवन करता हूँ। तीसरी आहुति दे।

४. मूल मन्त्र— अन्तर्निरन्तरनिरिन्धनमेधमाने
मायाऽन्धकारपरिपथिनी संविदग्नौ।
कस्मिंश्चिद्भुतमरीचिविकासभूमौ
विश्वं जुहोमि वसुधा दिशि वावसानम्।।

मूल मन्त्र बोलकर अन्तर में विना ईन्धन के सर्वदा जो संविद् रूपी अग्नि प्रज्ज्वलित रहती है, जिसके द्वारा मायारूपी अन्धकार दूर होता है और जिससे अद्भुत रूप में किरणों का प्रकाश फैलता है, उस ज्ञानाग्नि में पृथ्वी और दिशाओं सहित सारे विश्व की आहुति देता हूँ। यह कहकर चौथी आहुति प्रदान करे।

उक्त प्रकार से अन्तर्याग करके साधक साक्षात् ब्रह्मरूप हो जाता है। वह पाप-पुण्य से रहित हो जाता है। वह जीवन्मुक्त हो जाता है। यह अन्तर्याग केवल ज्ञानियों के लिये ही है।

अन्त:पञ्चमकारयजनप्रकार:

तदुक्तं कुलार्णवे अन्तर्यजने—

सुरा शक्तिः शिवो मांसं तद्भोक्ता भैरवः स्वयम् ।
तयोरैक्ये समुत्पन्न आनन्दो मोक्ष उच्यते ॥
आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च देहे व्यवस्थितम् ।
तस्याभिव्यञ्जकं द्रव्यं योगिभिस्तेन पीयते ॥
लिङ्गत्रयविशेषज्ञः षट्चक्रपद्मभेदकः ।
पीठस्थानानि चागत्य महापद्मवनं व्रजेत् ॥
आमूलाधारमाब्रह्मरन्ध्रं गत्वा पुनः पुनः ।
चिच्चन्द्रकुण्डलीशक्तिसामरस्यमहोदयः ॥
व्योमपङ्कजनिस्यन्दसुधापानरतो नरः ।
मधुपानमिदं देवि चेतरन्मद्यपानकम् ॥
पुण्यापुण्यपशुं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित् ।

परे लयं नयेच्चित्तं पलाशीति निगद्यते ॥
मानसादीन्द्रियगणं संयम्यात्मनि योजयेत् ।
मांसाशी स भवेद्देवि इतरे प्राणिघातकाः ॥
परशक्त्यात्ममिथुनसंयोगानन्दनिर्भराः ।
मुक्तास्ते मैथुनं तत्स्यादितरे स्त्रीनिषेवकाः ॥

अन्तर्याग—कुलार्णव में बताया गया है कि उक्त अन्तर्याग में कुण्डलिनी शक्ति ही सुरा हैं। परशिव ही मांस है। स्वयं भैरव उसके भोक्ता हैं। शिव और शक्ति के योग से जो आनन्द प्रकाशित होता है, वही मोक्ष कहलाता है।

आनन्द ही ब्रह्मरूप है। साधक के शरीर में ही यह आनन्द रहता है। देवता के लिए देय द्रव्य उसी आनन्द का अभिव्यञ्जक है।

योगीजन इसी उद्देश्य से पञ्चमकार का सेवन करते हैं। जो स्वयम्भू लिंग, वाण लिंग और इतरलिंग के विषय में विशेष रूप से जानते हैं, वे ही षट्चक्र का भेदन करने में समर्थ होते हैं। जो सभी पीठस्थानों में आकर महापद्मवन में परम शिव तक पहुँच पाते हैं, जो मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक बारम्बार जाते हुए चिन्मय परशिव के साथ कुण्डलिनी शक्ति की एकता सम्पादित कर सहस्रदल कमल के मध्य स्थित चन्द्रमण्डल से निकलती हुई सुधाधारा का पान कर सकते हैं, वे ही वास्तव में अमृतपान करते हैं। सामान्य सुरापान को तो मद्यपान कहते हैं।

जो योगविद्या का पारदर्शी होकर ज्ञानरूपी खड्ग से पुण्य और पापरूपी पशु की बलि देते हुए परब्रह्म में अपने चित्त को लय कर पाता है, वही वास्तविक मांसाशी है। जो मन आदि सभी इन्द्रियों को संयमित कर उन्हें आत्मा से युक्त कर लेता है, उसी को मांसाशी कहते हैं। अन्य व्यक्ति जो सामान्य मांसाहार करते हैं, वे तो प्राणी-घातक हैं।

जो परशक्ति के साथ परशिव का मिथुनरूप में सम्मिलन कराकर आनन्दपूर्ण होकर मुक्त हो पाता है, वही वास्तविक मैथुन करता है; अन्य स्त्रीसंग करने वाले लोग तो मात्र भोगी ही कहे जाते हैं।

कुमारीपूजा

ज्ञानार्णवे—

होमादिकं हि सकलं कुमारीपूजनं विना ।
परिपूर्णफलं न स्यात्पूजया तद्भवेद् ध्रुवम् ।
कुमारीपूजया देवि फलं कोटिगुणं भवेत् ॥
पुष्पं कुमार्यै यद्दत्तं तन्मेरुसदृशं फलम् ।
कुमारी भोजिता येन त्रैलोक्यं तेन भोजितम् ॥

तत्र कुमारीनिर्णयो यामले—

एकवर्षा भवेत्सन्ध्या द्विवर्षा सा सरस्वती ।
त्रिवर्षा च त्रिधामूर्तिश्चतुर्वर्षा च कालिका ।
सुभगा पञ्चवर्षा तु षड्वर्षा तु उमा भवेत् ॥
सप्तभिर्मालिनी साक्षादष्टवर्षा तु कुब्जिका ।
नवभिः कालसन्दर्भा दशभिश्चापराजिता ॥
एकादशे च रुद्राणी द्वादशाब्दे तु भैरवी ।
त्रयोदशे महालक्ष्मीर्द्विसप्ता पीठनायिका ॥
क्षेत्रज्ञा पञ्चदशभिः षोडशे चाम्बिका स्मृता ।
एवं क्रमेण सम्पूज्या यावत्पुष्पं न विद्यते ॥
प्रतिपदादिपूर्णान्तं वृद्धिभेदेन पूजयेत् ।
महापर्वसु सर्वेषु विशेषाच्च पवित्रके ।
महानवम्यां देविशि कुमारीं च प्रपूजयेत् ॥

कुमारी-पूजन—ज्ञानार्णव में बताया गया है कि कुमारी-पूजा न करने से हवन आदि सभी कार्यों का पूरा फल नहीं होता। कुमारी-पूजा करने से होमादि का पूर्ण फल तो प्राप्त होता ही है; साथ ही उसमें कोटिगुणा आधिक्य हो जाता है। कुमारी को एक फूल देने से सुमेरु पर्वत के दान-जैसा पुण्य मिलता है। कुमारी को भोजन कराने से तीनों लोकों को भोजन कराने का फल मिलता है।

यामल के अनुसार एकवर्षा कन्या सन्ध्या, द्विवर्षा कन्या सरस्वती, त्रिवर्षीया कन्या त्रिमूर्ति, चार वर्षीया कन्या कालिका, पञ्चवर्षीया सुभगा, षड्वर्षीया उमा, सात वर्षीया मालिनी, आठ वर्षीया कुब्जिका, नववर्षीया कालसन्दर्भा, दशवर्षीया अपराजिता, एकादशवर्षीया रुद्राणी, द्वादशवर्षीया भैरवी, त्रयोदशवर्षीया महालक्ष्मी, चतुर्दशवर्षीया पीठनायिका, पञ्चदशवर्षीया क्षेत्रज्ञा और षोडशवर्षीया अम्बिका नाम से प्रसिद्ध हैं। जब तक कन्या ऋतुमती न हो तब तक आयु के अनुसार नाम से उसका पूजन करना चाहिये।

पूजाक्रम:

तत्र कुमारीमानीय ऐंकारेण जलं तत्तन्नाम्ना देवीबुद्ध्या दद्यात्। ह्रींकारेण तथा पाद्यं श्रींकारेण चार्घ्यं हूंबीजेन चन्दनं ह्रींकारेण पुष्पाणि हसौः मन्त्रेण धूपदीपौ दद्यात्। ततः षडङ्गेन पूजयेत्। तद्यथा—

ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं हसौः कुलकुमारीके हृदयाय नमः। हैं वैं ह्रैं श्रीं ह्रीं ऐं स्वाहा शिरसे स्वाहा। ॐ श्रीं शिखायै वषट्। ऐं कुलवागीश्वरि कवचाय हुं। ऐं कुलेश्वरि नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्रीं अस्त्राय फट्। ततः ऐं सिद्धजयाय पूर्ववक्त्राय नमः। ऐं

जयाय उत्तरवक्त्राय नमः। ऐं ह्रीं श्रीं कुब्जिके पश्चिमवक्त्राय नमः। ऐं कालिके दक्षवक्त्राय नमः।

वाग्भवेन पुरक्षोभं मायाबीजे गुणाष्टकम् ।
श्रियो बीजे श्रियो लाभः हूं बीजेनारिसंक्षयः ।
भैरवेण च बीजेन खगत्वममरादिभिः ।
कुमारिका ह्यहं नाथ सदा त्वं हि कुमारिका ॥
अष्टोत्तरशतं वापि एकां वापि प्रपूजयेत् ।
पूजितां प्रतिपूज्यन्ते निर्दहन्त्यवमानिताः ।
कुमारी योगिनी साक्षात्कुमारी परदेवता ॥
असुरा दुष्टनागाश्च ये ये दुष्टग्रहा अपि ।
भूतवेतालगन्धर्वा डाकिनीयक्षराक्षसाः ॥
याश्चान्या देवताः सर्वा भूर्भुवःस्वश्च भैरवाः ।
पृथिव्यादीनि सर्वाणि ब्रह्माण्डं सचराचरम् ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
ते तुष्टाः सर्वतुष्टाश्च यस्तु कन्यां प्रपूजयेत् ॥
विधियुक्तं कुमारीभिर्भोजयेच्चैव भैरवीम् ।
पाद्यमर्घ्यं तथा धूपं कुङ्कुमं चन्दनं शुभम् ।
भक्तिभावेन सम्पूज्य कुमारीभ्यो निवेदयेत् ॥
प्रदक्षिणत्रयं कुर्यादादौ मध्ये तथान्ततः ।
पश्चाच्च दक्षिणा देया रजतं स्वर्णमौक्तिकैः ।
दक्षिणाञ्च कुमारीभ्यो दद्यात्प्रक्रमतस्तथा ॥

पूजा पद्धति—कुमारी को लाकर ऐं बीज का उच्चारण करते हुए सन्ध्या आदि नाम लेकर उसे देवी मानकर जल प्रदान करे। ह्रीं बीज से पाद्य, श्रीं से अर्घ्य, हूं से चन्दन, ऐं से पुष्प, हसौः से धूप-दीपादि प्रदान करे। तब षडंग पूजा करे।

ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं हसौः कुलकुमारिके हृदयाय नमः। हैं वै ह्रैं श्रीं ह्रीं ऐं स्वाहा शिरसे स्वाहा। ॐ श्रीं शिखायै वषट्। ऐं कुलवागीश्वरी कवचाय हुं। ऐं कुलेश्वरी नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्रीं अस्त्राय फट्।

तब पूर्वादि मुखों की पूजा करे। जैसे—ऐं सिद्धिजयाय पूर्ववक्त्राय नमः। ऐं जयाय उत्तरवक्त्राय नमः। ऐं ह्रीं श्रीं कुब्जिके पश्चिमवक्त्राय नमः। ऐं कालिके दक्षवक्त्राय नमः।

ऐं बीज से पूजा करने पर पुरक्षोभ होता है। ह्रीं से पूजा करने पर अणिमादि अष्ट सिद्धियाँ मिलती हैं। श्रीं से पूजा करने पर लक्ष्मी-लाभ होता है। हूं से पूजा करने पर

शत्रुनाश होता है और हसौः से पूजा करने पर आकाशमार्ग से जाने की शक्ति मिलती है। सभी कुमारियाँ शिव-शक्ति की अंशरूपा हैं।

१०८ कुमारियों के अभाव में एक ही कुमारी की पूजा करे। कुमारियों की पूजा करने से साधक पूज्य बनता है। कुमारियों की उपेक्षा या अवज्ञा करने वाले का सर्वनाश हो जाता है। कुमारी ही साक्षात् योगिनी है। कुमारी ही साक्षात् परमदेवता है। जो कुमारी की पूजा करता है, उस पर असुर, दुष्ट नाग, दुष्ट ग्रह, भूत, वेताल, गन्धर्व, डाकिनी, यक्ष, राक्षस और सभी देवगण, भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, भैरवगण, पृथिवी आदि समस्त चराचर ब्रह्माण्ड; ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ईश्वर, सदाशिव सभी प्रसन्न रहते हैं।

विधिपूर्वक कुमारी को भोजन कराये। भक्तिभाव से पूजन कर कुमारियों को पाद्य, अर्घ्य, धूप, कुंकुम और उत्तम चन्दन अर्पित करे। पूजन के पूर्व, मध्य, अन्त में तीन बार उन कुमारियों की प्रदक्षिणा करे। पूजन से बाद कुमारियों को यथाक्रम सोना-चाँदी और मोती की दक्षिणा प्रदान करे।

तथा तन्त्रैव—

विवाहयेत्स्वयं कन्यां ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
गवां हत्या च स्त्रीहत्या सर्वं पापं विनश्यति ॥
यो यश्च पुण्यकाले तु कन्यादानं प्रकल्पयेत् ।
भुक्तिमुक्तिफलं तस्य सौभाग्यं सर्वसम्पदः ॥
रुद्रलोके वसेन्नित्यं त्रिनेत्रो भगवान् हरः ।
तीर्थकोटिसहस्राणि अश्वमेधशतानि च ।
तत्फलं लभते मर्त्त्यो यस्तु कन्यां विवाहयेत् ॥
वालुकासागरे ज्ञेयं तावदब्दसहस्रकम् ।
एकैकं कुलमुद्धृत्य रुद्रलोके महीयते ॥

कन्यादानन्तु तत्तद्देवताप्रीतये इति सम्प्रदायविदः। वस्तुतस्तु तत्तद्वर्षीयायाः कन्यायास्तत्तद्देवताबुद्ध्या शिवरूपत्वं सम्प्रदानीये विभाव्य दद्यादिति रहस्यार्थः।

यामल में बताया गया है कि जो उन कुमारियों का व्याह कराता है, उसके सभी ब्रह्महत्या, गोहत्या, स्त्रीहत्या-जैसे घोर पाप नष्ट हो जाते हैं। जो व्यक्ति पुण्यकाल में कन्यादान करता है, उसे समस्त भोग-मोक्ष-सौभाग्य और सभी प्रकार की सम्पत्ति का लाभ होता है। वह स्वयं भगवान् त्रिनेत्र शिव के समान होकर चिरकाल तक रुद्रलोक में निवास करता है। कुमारी-विवाह में समर्थ व्यक्ति को सहस्र कोटि तीर्थों और सौ अश्वमेध यज्ञों का फल मिलता है। एक कुल का उद्धार करने से समुद्र में जितने बालूकण हैं, उतने सहस्र वर्षों तक वह रुद्रलोक में सम्मानित होकर निवास करता है।

कन्यादान देवता की प्रसन्नता के लिये करना चाहिये। आशय यह है कि आयु-वर्ष के अनुसार कन्यानाम को देवता समझकर उसके वर को शिवरूप मानकर कन्यादान करने से असीम पुण्य का लाभ होता है।

योगप्रक्रिया

गौतमीये; गौतम उवाच—

देवर्षे योगयुक्तात्मन् योगानुभवदर्शक ।
सांख्ययोगविशेषज्ञ कर्मयोगनिषेवक ।
विना योगं न सिध्येत्तु कुण्डलीचंक्रमः प्रभो ।।
मूलपद्मे कुण्डलिनी यावन्निद्रायिता प्रभो ।
तावत्किञ्चिन्न सिध्येत यन्त्रमन्त्रार्चनादिकम् ।।
जागर्ति यदि सा देवि बहुभिः पुण्यसञ्चयैः ।
तदा प्रासादमायान्ति यन्त्रमन्त्रार्चनादयः ।।
शिववद्विहरेल्लोकेष्वष्टैश्वर्यसमन्वितः ।
योगयोगाद्भवेन्मुक्तिर्मन्त्रसिद्धिरखण्डिता ।।
सिद्धे मनौ परावाप्तिरिति शास्त्रार्थनिर्णयः ।
तस्मात्कार्यं परं योगं कथयस्व मुनीश्वर ।।
मुक्तात्मा येन विहरेत्स्वर्गे मर्त्त्ये रसातले ।
जीवन्मुक्तश्च देहान्ते निर्वाणपदमाप्नुयात् ।।

योग की प्रक्रिया—गौतमतन्त्र में गौतम ऋषि नारद से पूछते हैं कि हे देवर्षे! आपकी आत्मा सदैव योग में मग्न रहती है। आप निरन्तर योग के रहस्य को देखते रहते हैं। सांख्ययोग में जो विशेषता है, वह आपको ज्ञात है। आप सदा कर्मयोग करते रहते हैं।

हे प्रभो! योग के विना कुण्डलिनी की गतिशक्ति नहीं होती है। मूलाधार पद्म में जब तक कुण्डलिनी सोई रहती है तब तक मन्त्र-यन्त्र-अर्चन आदि कुछ भी सफल नहीं होते। बहुपुण्यसञ्चय के फलस्वरूप कुण्डलिनी देवी यदि जाग जायँ तभी मन्त्र-यन्त्र-अर्चन आदि फलप्रद हो सकते हैं।

साधक अष्टविध ऐश्वर्य पाकर शिव के समान विहार कर सकता है। योग का अनुष्ठान होने से मोक्षप्राप्ति एवं सम्पूर्ण रूप से मन्त्रसिद्धि होती है। मन्त्रसिद्धि होने से ब्रह्म का लाभ है—ऐसा कथन शास्त्रों का है। अतएव हे मुनिश्रेष्ठ! कौन योग अत्युत्तम है। किस योग का अवलम्बन करना चाहिये। जिस योग के अनुष्ठान से स्वर्ग, मर्त्य और पाताललोक में जीवन्मुक्तभावपूर्वक समय बिताकर देहान्त होने पर परम निर्वाण को पाया जा सके, उसे मुझे बताइये।

नारद उवाच—

कथयामि तव स्नेहाद्योगयोग्योऽसि गौतम ।
संसारोत्तारणे युक्तिर्योगशब्देन कथ्यते ।
ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः ।।
तव स्नेहात्समाख्याता योगविघ्नकरास्त्विमे ।
कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यसंज्ञकाः ।
योगाङ्गैरेभिर्जित्वा तान् योगिनो योगमाप्नुयुः ।।
यमं नियममासनप्राणायामौ ततः परम् ।
प्रत्याहारं धारणाख्यं ध्यानं सार्द्धं समाधिना ।
अष्टाङ्गान्याहुरेतानि योगिनो सोगसाधने ।।
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम् ।
क्षमाधृतिर्मिताहारः शौचं चेति यमा दश ।।
तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानं देवस्य पूजनम् ।
सिद्धान्तश्रवणञ्चैव ह्रीर्मतिश्च जपो हुतम् ।
दशैते नियमाः प्रोक्ता योगशास्त्रविशारदैः ।।

आसनानि पूर्वोक्तानि।

नारदजी ने कहा कि हे गौतम! तुम योगानुष्ठान के उपयुक्त पात्र हो; इसलिये बतलाता हूँ कि संसारसागर को पार करने के उपाय का ही नाम योग है। योगविशारदों ने जीवात्मा और परमात्मा के ऐक्य को योग नाम से निर्दिष्ट किया है। १. काम, २. क्रोध, ३. लोभ, ४. मोह, ५. मद, ६. मात्सर्य—ये सभी योग में विघ्न डालते हैं।

योगीजन योगांग द्वारा इन सभी विघ्नों पर विजय पाकर योगसिद्धि प्राप्त करते हैं। १. यम २. नियम, ३. आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. ध्यान, ८. समाधि—योगसाधन के ये आठ अंग है। १. अहिंसा, २. सत्य, ३. अस्तेय, ४. ब्रह्मचर्य, ५. दया, ६. सरलता, ७. क्षमा, ८. धृति, ९. मिताहार, १०. शौच—ये दश यम कहलाते हैं। दश नियम हैं—१. तपस्या, २. सन्तोष, ३. आस्तिक्य, ४. दान, ५. देवपूजा, ६. सिद्धान्तश्रवण, ७. लज्जा, ८. मति, ९. जप, १० हवन।

योगांग आसन के सम्बन्ध में पहले बता चुके हैं।

इडयाकर्षयेद्वायुः वाह्यं षोडशमात्रया ।
धारयेत् पूरितं योगी चतुःषष्ट्या च मात्रया ।।
सुषुम्नामध्यगं सम्यग् द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः ।
नाड्या पिङ्गलया चैनं रेचयेद् योगवित्तमः ।

प्राणायाममिमं प्राहुर्योगशास्त्रविशारदाः ॥
भूयोभूयः क्रमात्तस्य व्यत्यासेन समाचरेत् ।
मात्रावृद्धिक्रमेणैव सम्यग्द्वादश षोडश ॥
जपध्यानादिभिर्युक्तं सगर्भ तं विदुर्बुधाः ।
तदपेतं निगर्भञ्च प्राणायामं परं विदुः ॥
क्रमादभ्यासतः पुंसो देहे स्वेदोद्गमोऽधमः ।
मध्यमः कम्पसंयुक्तो भूमित्यागः परो मतः ।
उत्तमस्य गुणावाप्तिर्यावच्छीलनमिष्यते ॥
इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु निरर्गलम् ।
बलादाहरणं तेभ्यः प्रत्याहारो विधीयते ॥
अंगुष्ठगुल्फजानूरूसीमनीलिङ्गनाभिषु ।
हृद्ग्रीवाकण्ठदेशेषु लम्बिकायां तथा नसि ॥
भ्रूमध्ये मस्तके मूर्ध्नि द्वादशान्ते यथाविधि ।
धारणं प्राणमरुतो धारणेति निगद्यते ॥
समाहितेन मनसा चैतन्यान्तरवर्त्तिना ।
आत्मन्यभीष्टदेवानां ध्यानं ध्यानमिहोच्यते ॥
समत्वभावना नित्यं जीवात्मपरमात्मनोः ।
समाधिमाहुर्मुनयः प्रोक्तमष्टाङ्गलक्षणम् ॥

प्राणायाम में सोलह स्वर का जप करते हुए इड़ा नाड़ी से श्वास ले। इस वायु को चौंसठ बार जप करते हुए रोके रहे। तदनन्तर बत्तीस बार जप करते हुए पिङ्गला नाड़ी से उक्त वायु को त्याग दे। इस प्राणायाम को क्रम और विपरीतक्रम से बार-बार करे। इड़ा से पूरक, सुषुम्ना से कुम्भक और पिङ्गला से रेचक करे। फिर पिङ्गला से पूरक, सुषुम्ना से कुम्भक और इड़ा से रेचक करे। इसी प्रकार संख्या बढ़ाते-बढ़ाते बारह या सोलह प्राणायाम करे।

जिस प्राणायाम में जप-ध्यान किया जाता है, उसे सगर्भ प्राणायाम कहते हैं। जिसमें जप-ध्यान नहीं करते, उसे निगर्भ प्राणायाम कहते हैं।

उक्त प्राणायाम को करते-करते यदि शरीर से पसीना निकल आए तो उसे अधम प्राणायाम कहते हैं। जिस प्राणायाम से देह काँपने लगे, उसे मध्यम प्राणायाम कहते हैं। जिस प्राणायाम के करते-करते देह शून्य के ऊपर उठने लगे, उसे उत्तम प्राणायाम कहते हैं। जब तक इस उत्तम प्राणायाम की स्थिति न प्राप्त हो तब तक प्राणायाम का अभ्यास करते रहना चाहिये।

इन्द्रियाँ विषयों में निर्बाध घूमती रहती हैं। उन विषयों से इन्द्रियों को वलपूर्वक हटा लेना ही प्रत्याहार कहलाता है। अंगूठा, गुल्फ, घुटना, जंघा, अण्डकोष, लिंग, नाभि, हृदय, गर्दन, कण्ठ, लम्बिका, गलघाँटी, नाक, भ्रूमध्य, मस्तक, ब्रह्मरन्ध्र और हृदय-कमल में वायु को स्थिर करके रखना ही धारणा है। मन को एकाग्र भाव से चैतन्य में लगाकर उस मन से आत्मा में अभीष्ट देवता का रूप देखना ध्यान कहलाता है। जीवात्मा और परमात्मा के समत्व की भावना में निरन्तर निमग्न रहना समाधि कहलाता है। ये ही अष्टांगों के लक्षण हैं।

इत्यादि कथितं विप्र कामादिषट्कनाशनम् ।
इदानीं कथये तेऽहं मन्त्रयोगमनुत्तमम् ।।
विश्वं शरीरमित्युक्तं पञ्चभूतात्मकं मुने ।
चन्द्रसूर्याग्नितेजोभिर्जीवब्रह्मैक्यरूपकम् ।।
तिस्रः कोट्यस्तदर्द्धेन शरीरे नाडयो मताः ।
तासु मुख्या दश प्रोक्तास्तासु तिस्रो व्यवस्थिताः ।।
प्रधाना मेरुदण्डेऽत्र चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी ।
इडा वामे स्थिता नाडी शुक्ला तु चन्द्ररूपिणी ।।
शक्तिरूपा च सा नाडी साक्षादमृतविग्रहा ।
दक्षिणे पिङ्गलाख्या तु पुंरूपा सूर्यविग्रहा ।
दाडिमीकेशरप्रख्या विषाख्या मुनिभिः स्मृता ।।
मेरुमध्ये स्थिता या तु मूलादाब्रह्मविग्रहा ।
सर्वतेजोमयी सा तु सुषुम्ना बहुरूपिणी ।।
तस्या मध्ये विचित्राख्या अमृतस्राविणी शुभा ।
सर्वदेवमयी सा तु योगिनां हृदयङ्गमा ।
विसर्गाद्बिन्दुपर्यन्तमेतत्तिष्ठति तत्त्वतः ।।
मूलाधारे त्रिकोणाख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मके ।
मध्ये स्वयम्भूलिङ्गन्तु कोटिसूर्यसमप्रभम् ।।
तदूर्ध्वे कामबीजन्तु कलशान्तीन्दुनादकम् ।
तदूर्ध्वे तु शिखाकारा कुण्डली ब्रह्मविग्रहा ।।
तद्बाह्ये हेमवर्णाभं वसवर्णं चतुर्दलम् ।
द्रुतहेमसमप्रख्यं पद्मं तत्र विभावयेत् ।।
तदूर्ध्वेऽग्निसमप्रख्यं षड्दलं हीरकप्रभम् ।
बादिलान्तषड्वर्णेन युक्ताधिष्ठानसंज्ञकम् ।।

हे द्विज! कामादि छः रिपुओं के दमन की विधि मैंने तुम्हें बतलायी। अब तुम्हें सर्वश्रेष्ठ मन्त्रयोग को बतलाता हूँ! हे ऋषे! पञ्चभूतमय यह शरीर एक छोटा विश्व है। इस देह में जीव और ब्रह्म, चन्द्र-सूर्य-अग्नि का प्रतिभास तेजरूप में होता है। साढ़े तीन करोड़ नाड़ियाँ इस देह में विद्यमान हैं। इनमें दश नाड़ियाँ प्रधान हैं। इन दस में भी तीन नाड़ियाँ सर्वश्रेष्ठ हैं।

चन्द्र-सूर्य और अग्निरूपिणी ये तीन प्रधान नाड़ियाँ मेरुदण्ड में हैं। जो नाड़ी बाँईं ओर है, वह चन्द्ररूपिणी श्वेत वर्ण शक्तिरूपा अमृतमयी है। इसे इड़ा नाड़ी कहते हैं। दाँईं ओर पुरुषरूपिणी जो नाड़ी सूर्यरूप में रहती है, उसका रंग अनारपुष्प के केशर के समान रक्ताभ है। मुनियों ने इसे विष नाम से निर्दिष्ट किया है। इस नाड़ी का नाम पिंगला है। मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक मेरुदण्ड के मध्य में जो नाड़ी अवस्थित है, उस सर्वतेजोमयी बहुरूपिणी नाड़ी को सुषुम्ना कहते हैं।

सुषुम्ना नाड़ी के अन्दर एक अन्य अति सूक्ष्म नाड़ी अमृतस्राव करती हुई गुह्य-द्वार से परमशिव के स्थान तक व्याप्त कर विद्यमान रहती है। उस नाड़ी को विचित्रा नाम से सम्बोधित करते हैं। यह सर्वदेवमयी है और इसे केवल योगीजन ही जानते हैं।

मूलाधार कमल में एक त्रिकोण यन्त्र इच्छा और ज्ञानरूप में संस्थित है। उस त्रिकोण-मध्य में कोटि सूर्य के समान तेजस्वी स्वयम्भू लिंग विराजमान है। इस त्रिकोण के ऊर्ध्व भाग में कामबीज क्लीं विद्यमान है। उस कामबीज के ऊपर शिखाकार कुण्डली ब्रह्ममूर्ति में शोभित है। त्रिकोण के बाहरी भाग में चतुर्दल कमल में वं शं षं सं—ये चार वर्ण विद्यमान हैं। इस पद्म का रंग पिघले हुए सोने के समान है।

उक्त मूलचक्र के ऊर्ध्व भाग में अग्नि के समान कान्तियुक्त हीरे-जैसा उज्ज्वल एक षड्दल पद्म है। इस चक्र को अधिष्ठान चक्र कहते हैं। इसके छः दलों में बं भं मं यं रं लं विद्यमान है।

मूलमाधारषट्कानां मूलाधारं ततो विदुः ।
स्वशब्देन परं लिङ्गं स्वाधिष्ठानं ततो विदुः ।।
तदूर्ध्वे नाभिदेशे तु मणिपूरं महत्प्रभम् ।
मेघाभं विद्युदाभञ्च बहुतेजोमयन्ततः ।
तत्पद्मं मणिवद्भिन्नं मणिपूरं तथोच्यते ।।
दशभिश्च दलैर्युक्तं डादिफान्ताक्षरान्वितम् ।
शिवेनाधिष्ठितं पद्मं विश्वलोकैककारणम् ।।
तदूर्ध्वेऽनाहतं पद्ममुद्यदादित्यसन्निभम् ।
कादिठान्ताक्षरैरर्कपत्रैश्च समधिष्ठितम् ।।

तन्मध्ये बाणलिङ्गस्तु सूर्यायुतसमप्रभम् ।
शब्दब्रह्ममयं शब्दोऽनाहतस्तत्र दृश्यते ।
अनाहताख्यं पद्मं तन्मुनिभि: परिकीर्त्यते ।।
आनन्दसदनं तत्तु पुरुषाधिष्ठितं परम् ।
तदूर्ध्वन्तु विशुद्धाख्यं दलं षोडशपङ्कजम् ।।
स्वरै: षोडशकैर्युक्तं धूम्रवर्णैर्महत्प्रभम् ।
विशुद्धिं तनुते यस्माज्जीवस्याहंसलोकनात् ।
विशुद्धं पद्ममाख्यातमाकाशाख्यं महाद्भुतम् ।।
आज्ञाचक्रं तदूर्ध्वे तु आत्मनाधिष्ठितं परम् ।
आज्ञासंक्रमणं तत्र गुरोराज्ञेति कीर्तितम् ।।
कैलासाख्यं तदूर्ध्वे तु बोधनीन्तु तदूर्ध्वत: ।
एवञ्च शिवचक्राणि प्रोक्तानि तव सुव्रत ।।
सहस्राराम्बुजं विन्दुस्थानं तदूर्ध्वमीरितम् ।।
आदौ पूरकयोगेन स्वाधारे योजयेन्मन: ।
गुदमेढ्रान्तरे शक्तिं तामाकुञ्च्य प्रबोधयेत् ।।

उक्त चतुर्दल पद्म को छ: आधारों का मूल मानकर मूलाधार कहते हैं। स्व शब्द परलिंग का बोधक है। इस पद्म में वही परलिंग होने से इसे स्वाधिष्ठान कहते हैं। स्वाधिठान के ऊर्ध्व भाग में नाभिस्थान में मणिपूर नामक एक अति उज्ज्वल कान्ति वाला दशदल पद्म विद्यमान है। इस पद्म का रंग मेघ और विद्युत् के समान तेजोमय है। मणि जैसी इसकी कान्ति होने से इसे मणिपूर कहते हैं। इस पद्म के दश दलों में डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं वर्ण विद्यमान हैं। इस पद्म में शिव का निवास है। अत: यह पद्म अखिल विश्व का एकमात्र कारण है।

मणिपूर के ऊर्ध्व भाग में अनाहत पद्म है। इसकी कान्ति उदीयमान सूर्य के समान है। उसके बारह दलों में कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं वर्ण विद्यमान हैं। इस अनाहत पद्म के मध्य में दस हजार सूर्यो के समान कान्ति वाला शब्दब्रह्ममय वाणलिंग सुशोभित है। इस पद्म में अनाहत शब्द की अनुभूति होती है।

इसी से इसका नाम अनाहत पद्म है। इस पद्म में परम पुरुष के अधिष्ठित होने से यह आनन्द का आगार है।

इसके ऊर्ध्व भाग में विशुद्ध नामक षोडशदल पद्म है। इस बृहत् पद्म का वर्ण धुयें के समान है। इसके सोलह दलों में अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अ: सोलह स्वर विद्यमान हैं। इस पद्म में मरमशिव हंस का दर्शन होने से जीव विशुद्ध

हो जाता है। इसी से इसका नाम विशुद्ध है। इस विशुद्ध पद्म का ही दूसरा नाम आकाश है।

विशुद्ध पद्म के ऊर्ध्व भाग में 'आज्ञाचक्र' है। इसी चक्र में आत्मा अधिष्ठित है। इस पद्म का वर्ण शुभ्र है। इसके दो दल हैं। दलों में हं क्षं वर्ण विद्यमान हैं। गुरु के आदेश से इस चक्र से आज्ञा अर्थात् वाक्सिद्धि संक्रमित होती है। इसी से इसका नाम आज्ञाचक्र है। इसके ऊर्ध्व भाग में कैलाशपुरी और बोधिनी चक्र विद्यमान है। हे सुव्रत! इस प्रकार शिवचक्र नाम से प्रसिद्ध नौ चक्रों में से छः चक्रों का वर्णन मैंने किया। इनके ऊर्ध्व भाग में सहस्रार पद्म और बिन्दुस्थान है।

पहले पूरक द्वारा मूलाधार में मन का संयोग करे। गुह्य और मेढ्र के मध्य भाग में मूलाधार में जो कुण्डलिनी शक्ति विद्यमान है, उसे आकुञ्चित करके जगाये। तब ब्रह्मग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि का भेदन कर स्वयम्भू लिंग और इतर लिंग का भेदन करते हुये उक्त कुण्डलिनी देवी का परशिव के साथ एकीभूत रूप में ध्यान करे।

लिङ्गभेदक्रमेणैव विन्दुचक्रन्तु प्रापयेत्।
शम्भुना तां परां शक्तिमेकीभावं विचिन्तयेत्॥
तत्रोत्थितामृतरसं द्रुतलाक्षारसोपमम्।
पाययित्वा च तां शक्तिं कृष्णाख्यां प्रसिद्धिदाम्॥
षट्चक्रदेवतास्तत्र सन्तर्प्यामृतधारया।
आनयेत्तेन मार्गेण मूलाधारं ततः सुधीः॥
एवमभ्यस्यमानस्य अहन्यहनि मारुतम्।
जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यते भवबन्धनात्॥
पूर्वोक्तदूषिता मन्त्राः सर्वे सिध्यन्ति नान्यथा।
ये गुणाः सन्ति देवस्य पञ्चकृत्यविधायिनः॥
ते गुणाः साधकवरे भवन्त्येव न चान्यथा।
इत्येतं कथितं सर्वं योगमार्गमनुत्तमम्॥
इदानीं धारणाख्यन्तु शृणुष्वावहितो मया।
दिक्कालाद्यनवच्छिन्ने कृष्णे चेतो निधाय च।
तन्मयो भवति क्षिप्रं जीवब्रह्मैक्ययोजनात्॥
अथवा समलं चित्तं यदा क्षिप्रं न सिध्यति।
तदावयवयोगेन योगी योगान्समभ्यसेत्॥

दोनों के संयोग से लाक्षारस के समान जो सुधारस उत्पन्न होता है, उसी का पान कृष्णाख्या योगसिद्धिदायिनी कुण्डलिनी को कराये और उसके द्वारा कुण्डलिनी का तर्पण

करे। उसी सुधा से ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, परशिव, सावित्री, महालक्ष्मी, भद्रकाली, भुवनेश्वरी, डाकिनी, राकिणी, शाकिनी, हाकिनी आदि षट्चक्र के देवताओं का तर्पण करे। तदनन्तर योगी उस सुषुम्ना मार्ग से कुलकुण्डलिनी को मूलाधार में वापस ले आये।

उक्त प्रकार से प्रतिदिन वायु-धारण का अभ्यास करने से बुढ़ापा आदि दुःखों से मुक्त होकर साधक भवबन्धन से मुक्त होने में सफल होता है। उक्त वायु-धारणयोग के प्रभाव से पूर्वोक्त सभी दूषित मन्त्र भी सिद्ध हो जाते हैं। पञ्च-मकार-साधना के व्यवस्थापक महादेव के जो सभी गुण हैं अथवा प्रतिदिन पञ्चयज्ञ करने वालों में जो सभी गुण उदित होते हैं, वे सभी गुण वायुधारक साधक में प्रकाशित होते हैं। वायु-धारण की यह उत्तम क्रिया ऐसी ही है।

अब यह बताते हैं कि धारणा कैसे की जाती है। दिक्काल द्वारा अनवच्छिन्न अनन्त कृष्ण में चित्त को समर्पित करते हुए जीव और ब्रह्म में ऐक्य स्थापित करने से शीघ्र ही तन्मय हो सकते हैं। अथवा चित्त के मलिन होने के कारण शीघ्र सिद्धि न मिले तो योगी अवयवयोग द्वारा अर्थात् किसी अवयव में चित्त निवेश करके योग का अभ्यास करे।

पादाम्भोजे मनो दद्यान्नखकिञ्जल्कचित्रिते ।
जङ्घायुग्मे तथारामकदलीकाण्डशोभिते ॥
ऊरुद्वये मत्तहस्तिकरदण्डसमप्रभे ।
गङ्गावर्त्तगभीरे तु नाभौ सिद्धविले ततः ॥
उदरे वक्षसि तथा हारे श्रीवत्सकौस्तुभे ।
पूर्णचन्द्रायुतप्रख्ये ललाटे चारुकुन्तले ॥
शङ्खचक्रगदाम्भोजदोर्दण्डपरिमण्डिते ।
सहस्रादित्यसङ्काशे किरीटे कुण्डलद्वये ।
स्थाने नियोजयेन्मन्त्री विशुद्धः शुद्धचेतसा ॥
मनो निवेश्य कृष्णे वै तन्मयो भवति ध्रुवम् ।
यावन्मनो लयं याति कृष्णे स्वात्मनि चिन्मये ।
तावदिष्टमनुर्मन्त्री जपहोमं समभ्यसेत् ॥

कृष्ण इत्युपलक्षणम्।

अतःपरं न किञ्चित्तु कृत्यमस्ति तथा हरेः ।
विदिते परतत्त्वे तु समस्तैर्नियमैरलम् ।
तालवृन्तेन किं कार्यं लब्धे मलयमारुते ॥
मन्त्राभ्यासेन योगेन ज्ञानं ज्ञानाय कल्पते ।

न योगेन विना मन्त्रो न मन्त्रेण विना हि सः ।
द्वयोरभ्यासयोगो हि ब्रह्मसंसिद्धिकारणम् ॥
तमःपरिवृते गेहे घटो दीपेन दृश्यते ।
एवं मायावृतो ह्यात्मा मनुना गोचरीकृतः ॥
एवं ते कथितं ब्रह्मन्मन्त्रयोगमनुत्तमम् ।
दुर्लभं विषयासक्तैः सुलभं त्वादृशामपि ॥

नख-किञ्जल्करञ्जित चरणकमल में चित्त का निवेश करे या कदली-काण्ड के तुल्य दोनों जंघाओं में चित्त को लगाये या मस्त हाथी की सूंड के समान दोनों ऊरुओं में मन का निवेश करे या गंगा के भँवर के समान गहरे नाभिकुहर में अथवा उदर, वक्षःस्थल, हार, श्रीवत्स, कौस्तुभमणि या जिस पर मनोहर केश लटके हैं, उस पूर्ण के समान ललाट में या शंख-चक्र-शोभित चार भुजाओं में या हजार सूर्य के समान दीप्तिमान किरीट में या दोनों कुण्डलों में मनोनिवेश करे।

विशुद्धाचारी साधक पवित्र हृदय से उक्त प्रकार कृष्णदेह में किसी स्थान में चित्त को लगाकर तन्मय हो सकता है। यह सत्य है। परमात्मारूप चिन्मय कृष्ण में जब तक मन का लय नहीं होता तब तक इसी प्रकार का अभ्यास करे। यहाँ कृष्ण शब्द उपलक्षणमात्र है। किसी भी देवता के अंगों पर मनोनिवेश किया जा सकता है। इस प्रकार धारणा का अभ्यास कर सकता है।

इसी प्रकार साधक जिस किसी इष्टमन्त्र के जप-हवन का अभ्यास करे। इसके अतिरिक्त साधकों का अन्य कोई कर्तव्य नहीं है। हरि का परम तत्त्व जान लेने पर किसी नियम की आवश्यकता नहीं रहती है। मलयगिरि की रमणीय वायु पाने पर तालवृन्त की क्या आवश्यकता?

मन्त्राभ्यास ही योग है। उसी योग के द्वारा जो ईश्वर की पूजादि की जाती है, वही ज्ञान में परिणत होती है। योग से मन्त्र भिन्न नहीं है। मन्त्र से योग भी भिन्न नहीं है। योग और मन्त्र के अभ्यास से मन्त्रसिद्धि होती है। अन्धकार में डूबे घर में जैसे दीपक की सहायता से घर दिखायी देता है, वैसे ही माया से ढँकी हुई आत्मा भी मन्त्र से प्रत्यक्ष होती है। हे द्विज! यही श्रेष्ठ मन्त्रयोग है। जो लोग विषयासक्त हैं, उनके लिए यह अत्यन्त कठिन है। जो तुम्हारे समान निर्लिप्त भाव से कार्य करते हैं, उन्हीं के लिए यह मन्त्रयोग सुलभ है।

अथ प्रकारान्तरं शारदायाम्—

षण्णवत्यङ्गुलायामं शरीरमुभयात्मकम् ।
गुदध्वजान्तरे कन्दमुत्सेधाद्द्व्यंगुलं विदुः ॥

तस्य द्विगुणविस्तारं वृत्तरूपेण शोभितम् ।
नाड्यस्तत्र समुद्भूता मुख्यास्तिस्रः प्रकीर्तिताः ।।
इडा वामे स्थिता नाडी पिङ्गला दक्षिणे मता ।
तयोर्मध्यगता नाडी सुषुम्ना वंशमाश्रिता ।।
पदांगुष्ठद्वयं याता शिखाभ्यां शिरसा पुनः ।
ब्रह्मस्थानं समापन्ना सोमसूर्याग्निरूपिणी ।।
तस्या मध्यगता नाडी चित्राख्या योगिवल्लभा ।
ब्रह्मरन्ध्रं विदुस्तस्यां पद्मसूत्रनिभं परम् ।।
आधारांश्च विदुस्तत्र मतभेदादनेकधा ।
दिवामार्गमिदं प्राहुरमृतानन्दकारणम् ।।
इडायां सञ्चरेच्चन्द्रः पिङ्गलायां दिवाकरः ।
ज्ञातौ योगनिदानज्ञैः सुषुम्नायाञ्च तावुभौ ।।
आधारकन्दमध्यस्थं त्रिकोणमतिसुन्दरम् ।
ज्योतिषां निलयं दिव्यं प्राहुरागमवेदिनः ।।
तत्र विद्युल्लताकारा कुण्डली परदेवता ।
परिस्फुरति सर्वात्मा सुप्ताहिसदृशाकृतिः ।।
विभर्ति कुण्डलीशक्तिरात्मानं हंसमाश्रिताः ।
हंसः प्राणाश्रयो नित्यं प्राणा नाडीपथाश्रयाः ।।
आधारादुत्थितो वायुर्यथावत्सर्वदेहिनाम् ।
देहं व्याप्य स्वनाडीभिः प्रयाणं कुरुते बहिः ।।
द्वादशांगुलमानेन तस्मात्प्राण इतीरितः ।
रम्ये मृद्वासने शुद्धे पट्टाजिनकुशोत्तरे ।
बद्धैवमासनं योगी योगमार्गपरो भवेत् ।।
ज्ञात्वा भूतोदयं देहे यथावत्प्राणवायुना ।
तत्तद्भूतं यजेद्देहे दृढत्वावाप्तये सुधीः ।।

आसनभूतोदये प्रागुक्ते।

प्रकारान्तर योगप्रणाली—शारदातिलक में कहा है गया कि छः और नौ अंगुल विस्तृत इस चैतन्य और जड़ उभयरूपी गुह्य और लिंग के मध्य में दो अंगुल ऊँचा एक कन्द है। यह वृत्ताकार है। इसी कन्द को मूलाधार कहते हैं। यहीं से सभी नाड़ियाँ उत्पन्न होती हैं; जिनमें तीन प्रधान हैं—बाँई ओर इड़ा, दाँई ओर पिंगला और मध्य में सुषुम्ना नाड़ी है। सुषुम्ना नाड़ी मेरुदण्ड को आश्रय बनाकर रहती है। यह नीचे दो शिराओं द्वारा

दोनों पैरों के अंगूठों तक और ऊपर शिरोभाग द्वारा ब्रह्मस्थान तक जाती है। यह नाड़ी चन्द्र-सूर्य और अग्निस्वरूपा है।

सुषुम्ना नाड़ी के मध्य में चित्रा नाड़ी है, जिसमें मृणालसूत्र के समान अति सूक्ष्म ब्रह्मरन्ध्र विद्यमान है। इस नाड़ी के कुछ आधार हैं, जो मतभेद के कारण अनेक प्रकार के हैं। इमे दिव्य मार्ग भी कहते हैं, जिसके द्वारा अमृतानन्द का भोग कर सकते हैं।

इड़ा से चन्द्र का और पिङ्गला से सूर्य का सञ्चार होता है। योगी लोग केवल सुषुम्ना से ही चन्द्र-सूर्य दोनों का सञ्चार अनुभव कर सकते हैं।

आधारपद्म के मध्य में एक अति सुन्दर त्रिकोणमण्डल है। यह दिव्य ज्योतिर्मय है। इसी त्रिकोण में सभी की आत्मस्वरूपा विद्युल्लताकारा परदेवता कुण्डलिनी प्रसुप्त नागिन के समान प्रतिष्ठित है, जो हंसः, प्राण और नाड़ी के आश्रय से जीवात्मा को धारण करती है।

सभी प्राणी मूलाधार से यथाविधि प्राणवायु को उठाकर सारे शरीर में उसे व्याप्त कर अपने-अपने नाड़ीभाग से बाहर निकालते हैं। यह प्राणवायु बारह अंगुल की है।

मनोहर कोमल विशुद्ध आसन पर वस्त्र, अजिन और कुश बिछाकर उस पर योगोपयोगी आसन बाँधकर योगी साधक योगाभ्यास करते हैं।

प्रारम्भ में प्राणवायु द्वारा देह में भूतोदय को जानकर शरीर को दृढ़ करने के लिये उदित भूत का अर्चन करे। आसन और भूतोदय के बारे में पहले लिखा जा चुका है।

अंगुलीभिर्दृढं बद्ध्वा करणानि समाहितः ।
अंगुष्ठाभ्यामुभे श्रोत्रे तर्जनीभ्यां विलोचने ।
नासारन्ध्रे मध्यमाभ्यामन्याभिर्वदनं दृढम् ॥
बद्धात्मप्राणमनसामेकत्वं समनुस्मरन् ।
धारयेन्मारुतं सम्यग्योगोऽयं योगिवल्लभः ॥
नादः सञ्जायते तस्य क्रमादभ्यस्यतः शनैः ।
मत्तभृङ्गावलीगीतसदृशः प्रथमो ध्वनिः ॥
वंशी कांस्यानिलापूर्णवंशध्वनिनिभोऽपरः ।
घण्टारवसमः पश्चाद्घनमेघस्वनोऽपरः ॥
एवमभ्यस्यतः पुंसः संसारध्वान्तनाशनम् ।
ज्ञानमुत्पद्यते पूर्वं हंसलक्षणमव्ययम् ॥
पुंप्रकृत्यात्मकौ प्रोक्तौ विन्दुसर्गौ मनीषिभिः ।
ताभ्यां क्रमात् समुद्भूतौ विन्दुसर्गावसानकौ ॥

हंसौ तौ पुं-प्रकृत्याख्यौ हं पुमान् प्रकृतिस्तु सः ।
अजपा कथिता ताभ्यां जीवो यामुपतिष्ठते ।।
पुरुषं त्वाश्रयं मत्वा प्रकृतिनित्यमात्मनः ।
यदा तद्भावमाप्नोति तदा सोऽहमियं भवेत् ।।
सकारार्णं हकारार्णं लोपयित्वा ततः परम् ।
सन्धिं कुर्यात्पूर्वरूपं तदासौ प्रणवो भवेत् ।।
परमानन्दमयं नित्यं चैतन्यैकगुणात्मकम् ।
आत्माभेदस्थितं योगो प्रणवं भावयेत्सदा ।।
आम्नायवाचामतिदूरमाद्यं वेद्यं सुसंवेद्यगुणेन सन्तः ।
आत्मानमानन्दरसैकसिन्धुं पश्यन्ति ते तारकमात्मनिष्ठाः ।।

योगाभ्यास के समय एकाग्र मन से दोनों अंगूठों से दोनों कान, दोनों तर्जनियों से दोनों नेत्र, दोनों मध्यमाओं से दोनों नासाछिद्र और शेष अंगुलियों से मुख को दृढ़ता से बन्द कर आत्मा, प्राण और मन की एकता का चिन्तन करते हुए वायु को धारण करे।

इस प्रकार का अभ्यास करते-करते योगी के मुख से अनेक प्रकार की ध्वनि निकलती है। पहले मत्त भौंरों के गुञ्जन जैसी, फिर वंशी, कांस्य और वायुपूर्ण बाँस जैसी ध्वनि, तब घण्ट जैसा शब्द और अन्त में जलपूर्ण घने मेघ जैसी गरज होती है। इस योगाभ्यास से संसाररूपी अन्धकार को दूर करने वाले हंसरूप अविनश्वर ज्ञान का विकास होता है।

बिन्दु को पुरुष और विसर्ग को प्रकृति माना गया है। अत: ह पुरुष और स प्रकृति है। अजपा की आराधना का मूल यही हंस है। जब प्रकृति पुरुष को अपना नित्य आश्रय मानती है तब वह पुरुषभावापन्न होकर सोऽहं बन जाती है।

सकार और हकार का लोप करने से प्रणव ॐ का ज्ञान इसी से होता है। परमानन्दमय नित्य चैतन्यस्वरूप इस ॐ को आत्मा से अभिन्न माना जाता है। आत्मनिष्ठ योगियों ने वेदवाक्यों से परे स्वज्ञेय गुणों द्वारा ज्ञेय आनन्दरस के एकमात्र सागररूप इसी आद्य आत्मारूप प्रणव ॐ को प्रत्यक्ष किया था।

सत्यं हेतुविवर्जितं श्रुतिगिरामाद्यं जगत्कारणं
व्याप्तं स्थावरजङ्गमं निरूपमं चैतन्यमन्तर्गतम् ।
आत्मानं रविचन्द्रवह्निवपुषं तारात्मकं सन्ततं
नित्यानन्दगुणालयं सुकृतिनं पश्यन्ति रुद्धेन्द्रियाः ।।
तारस्य पञ्चविभवैः परिचीयमानं
मानैकगम्यमनिशं श्रुतिमौलिमृग्यम् ।

संवित्समस्तममलम्बरमच्युतं त-
त्तेजःपरं भजत सान्द्रसुधाम्बुराशिम् ॥
हिरण्मयं दीप्तमनेकवर्णं
त्रिमूर्तिमूलं निगमादिबीजम् ।
अंगुष्ठमात्रं पुरुषं भजन्ते
चैतन्यमात्रं रविमण्डलस्थम् ॥
ध्यायन्ति दुग्धाब्धिभुजङ्गभोगे
शयानमाद्यं कमलासहायम् ।
प्रफुल्लनेत्रोत्पलमञ्जनाभं
चतुर्मुखेनाश्रितनाभिपद्मम् ॥
आम्नायगं त्रिचरणं घननीलमुद्य-
च्छ्रीवत्सकौस्तुभगदाम्बुजशङ्खचक्रम् ।
हृत्पुण्डरीकनिलयं जगदेकमूल-
मालोकयन्ति कृतिनः पुरुषं पुराणम् ॥

फलतः साधक लोग इन्द्रियनिरोध करते हुए अपने पुण्यबल से कारणहीन नित्य वेदवाक्य के आदि, जगत् कारण स्थावर व्यापी अन्तर्गत निरुपम चैतन्य स्वरूप नित्यानन्दमय चन्द्र-सूर्याग्निरूप आत्मा का प्रणवरूप में दर्शन करते हैं।

अ ऊ म अर्द्धचन्द्र और विन्दु—इस पञ्च रश्मि वाले वेदान्तवेद्य सच्चिन्मय सर्वव्यापी अविनश्वर, अच्युत, घनीभूत सुधासागर उसी प्रणवरूप तेज का आश्रय लेकर साधना करनी चाहिये।

ज्ञानी लोग हिरण्यकान्ति, प्रदीप्त, अनेकवर्ण, त्रिमूर्ति, मूल निगमादि शास्त्र के आदि कारण, सूर्यमण्डलस्थित चैतन्यस्वरूप अंगुष्ठमात्र परम पुरुष की वन्दना करते हैं; जो क्षीरसागर में अनन्त शय्या पर लक्ष्मी जी के साथ शयन करते हैं। जिनके नेत्रकमल सदा प्रफुल्ल रहते हैं, जिनका वर्ण अञ्जनवत् गाढ़ा नीला है। ब्रह्मा जिनके नाभिपद्म पर विराजमान हैं; उन्हीं आद्य पुरुष का ध्यान योगीजन करते हैं।

जो आम्नाय द्वारा प्रतिपाद्य हैं, जो वामनावतार में तीन पग वाले हैं, जो मेघवत् नीलकान्त हैं, जो श्रीवत्स चिह्न, कौस्तुभ, शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करते हैं, जो भक्तों के हृदय में रहते हैं, जगत् के एकमात्र मूल उन्हीं पुराणपुरुष को पुण्यवान लोग प्रत्यक्ष करने में समर्थ होते हैं।

विन्दोर्नादसमुद्भवः समुदिते नादे जगत्कारणं
तारं तत्त्वमुखाम्बुजं परिवृतं वर्णात्मवाहुव्रजैः ।

आम्नायांघ्रिचतुष्टयं पुररिपोरानन्दमूलं वपुः
पायान्नो मुकुटेन्दुखण्डविलसद्दिव्यामृतौघप्लुतम् ।।
पिण्डं भवेत्कुण्डलिनी शिवात्मा पदं तु हंसः सकलान्तरात्मा ।
रूपं स्मृतं विन्दुरमन्दकान्तिरतीवरूपं शिवसामरस्यम् ।।
पिण्डादियोगं शिवसामरस्यात्सबीजयोगं प्रवदन्ति सन्तः ।
शिवे लयं नित्यगुणाभियुक्ते निर्बीजयोगं फलनिर्व्यपेक्षम् ।।
मूलोन्निद्रभुजङ्गराजसदृशीं यान्तीं सुषुम्नान्तरं
भित्त्वाधारसमूहमाशु विलसत्सौदामिनीसन्निभाम् ।
व्योमाम्भोजगतेन्दुमण्डलगलद्दिव्यामृतौघैः प्लुतां
सम्भाव्य स्वगृहं गतां पुनरिमां सञ्चिन्तयेत्कुण्डलीम् ।।
हंसं नित्यमनन्तमव्ययगुणं स्वाधारतो निर्गता
शक्तिः कुण्डलिनी समस्तजननी हस्ते गृहीत्वा च तम् ।
याता शम्भुनिकेतनं परसुखं तेनानुभूय स्वयं
यान्ती स्वाश्रयमर्ककोटिरुचिरा ध्येया जगन्मोहिनी ।।
अव्यक्तं परविन्दुसञ्चितरुचिं नीत्वा शिवस्यालयं
शक्तिः कुण्डलिनी गुणत्रयवपुर्विद्युल्लतासन्निभा ।
आनन्दामृतमध्यगं पुरभिदं चन्द्रार्ककोटिप्रभं
संवीक्ष्य स्वपुरं गता भगवती ध्येयानवद्या गुणैः ।।
मध्ये वर्त्म समीरणद्वयमिथः सङ्घट्टसंक्षोभजं
शब्दस्तोममतीत्य तेजसि तडित्कोटिप्रभाभास्वरे ।
उद्यन्तीं समुपास्महे नवजवासिन्दूरसन्ध्यारुणां
सान्द्रानन्दसुधामयीं परशिवां प्राप्तां परां देवताम् ।।
गमनागमनेषु जाङ्घिकी सा तनुयाद्योगफलानि कुण्डली ।
उदिता कुलकामधेनुरेषा भजतां कांक्षितकल्पवल्लरी ।।

विन्दु से नाद उत्पन्न होता है और नाद से जगत् कारण प्रणव ॐ निकलता है। तत्त्व ही इस प्रणव का मुख है। यह प्रणव वर्णमय भुजाओं से वेष्टित है। चार वेद इसके चार पैर हैं। मुकुट पर चन्द्रकला है। उसी चन्द्रकला से निकलती अमृतधारा से वह आप्लुत रहता है। आनन्द के जो मूल हैं, उन्हीं महादेव की देह हमारी रक्षा करे।

शिवमयी कुण्डलिनी पिण्ड है। सभी का अन्तरात्मा हंस पद है और बिन्दु अत्युज्ज्वल रूप है। अत: शिवसामरस्य, शिव के साथ अभेदभाव अत्यन्त विचित्र है। शिवसामरस्य के लिये पिण्डादि योग को सजीव योग कहते हैं। फलेच्छारहित होकर

नित्यगुणाभियुक्त परमशिव में आत्मलय को निर्जीव योग कहते हैं। मूलाधार कमल से जागृत, नागिन के समान उठी हुई, विद्युत् के समान कान्ति वाली कुण्डलिनी शक्ति षट्चक्रों का भेदन करती हुई सुषुम्ना मार्ग से जाती हुई सहस्रदल पद्म के मध्य में स्थित चन्द्रमण्डल से विगलित दिव्य सुधाधारा से परिप्लुता होती है और पुनः अपने स्थान मूलाधार कमल में वापस लौट आती है। इसी प्रकार का ध्यान करना चाहिये।

तड़िल्लता-सदृशी त्रिगुणमयी कुण्डलिनी शक्ति परविन्दु के संयोग से समुज्ज्वल अव्यक्त शिवस्थान में पहुँचती है। वहाँ आनन्दसुधा के मध्य में अवस्थित कोटि चन्द्र-सूर्यवत् कान्तिमान शिव के दर्शन कर पुनः अपने स्थान मूलाधार में आ जाती है। उसी प्रशंसनीय कुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिये।

जो सुषुम्ना मार्ग के मध्य में दो वायुओं के संघर्ष से उत्पन्न ध्वनिराशि का अतिक्रमण कर कोटि विद्युत् के आलोक के समान समुज्ज्वल तेज में ऊपर उठती है और नवीन जवा, सन्ध्या तथा सिन्दूर लोहितवर्णा घनीभूत आनन्दसुधा जिसका स्वरूप है, उसी परम शिवसंयुक्ता परमदेवता की मैं वन्दना करता हूँ। गमनागमनपटीयसी और कौल साधकों के लिये कामधेनुस्वरूप में प्रादुर्भूता यही कुलकुण्डलिनी देवी अपने आश्रित लोगों के लिये सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली कल्पलता होकर योग का फल व्यापक करे।

ग्रन्थप्रशंसा

यामले—

आगमे सर्वविद्याश्च सर्वशास्त्राणि चागमे।
आगमे देवदेव्या हि आगमाच्च परा गतिः॥
येऽभ्यस्यन्ति इदं शास्त्रं पठन्ति पाठयन्ति वा।
सिद्धयोऽष्टौ करे तेषां धनधान्यादिसूनवः॥
आदृताः सर्वलोकेषु भोगिनः क्षोभकारकः।
आप्नुवन्ति परं ब्रह्म सर्वशास्त्रविशारदाः॥
वेदार्थशास्त्रविपरीतविलोकनेन प्रायो भवद्यजनलोपमवेक्ष्य मातः।
तद्गूढकूटविशदीकरणेन जातान् दोषान् क्षमस्व तव पादयुगेषु याचे॥
यद्यन्मया नाथ विमूढबुद्ध्या स्पष्टीकृतं गुह्यतमन्तु तन्त्रे।
क्षन्तव्यमेतत्करुणानिधान क्रोधो न चार्हः खलु पामरेषु॥

इति महामहोपाध्यायश्रीकृष्णानन्दवागीशभट्टाचार्य-
विरचितस्तन्त्रसारः समाप्तः

ग्रन्थप्रशंसा—'यामल' में तन्त्र की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि तन्त्रशास्त्र में निखिल विद्या, अखिल शास्त्र और सभी देव-देवियाँ विराजमान हैं। तन्त्रशास्त्र की अतिरिक्त श्रेष्ठ गति अत्युत्तम मोक्षसाधन अन्य कोई नहीं है।

जो लोग इस तन्त्रशास्त्र का अध्ययन-अभ्यास या अध्यापन करते हैं, अष्टसिद्धियाँ उनके हाथ में रहती हैं। इस तन्त्र की सहायता से मनुष्य धन-धान्य-पुत्रादि से सम्पन्न होकर सारे संसार में समादृत होते हैं, सुख का भोग करते हैं, शत्रुओं को क्षुब्ध करते हैं एवं सर्वशास्त्रपारदर्शी होकर परब्रह्म को प्राप्त करते हैं।

हे माते! वेद और अन्यान्य शास्त्रों के विपरीत अर्थ के कारण आपके अर्चन का लोप होते देखकर शास्त्र के कठिन और गूढ़ अर्थ को मैंने स्पष्ट किया है। इसमें जो त्रुटियाँ हुई हों, उन्हें क्षमा करें। आपके दोनों चरणों में मेरी यही प्रार्थना है।

हे माते! मैंने मोहग्रस्त बुद्धि से तन्त्र के गुप्त से गुप्त विषयों को प्रकट किया है। हे दयानिधे! इससे जो अपराध हुआ है, उसे क्षमा करें। पापियों के प्रति क्रोध करना उचित नहीं है।

पञ्चम परिच्छेद सम्पूर्ण

⁂

परिशिष्टम्

देवताविशेषाणां मन्त्रस्तोत्रादिप्रकरणम्

गङ्गामन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गङ्गां भुवनपावनीम् ।
यथोक्तचिन्तया चिन्त्यां भोगमोक्षप्रदायिनीम् ।।

ब्रह्मसंहितायाम्—

विषबीजं समुद्धृत्य मायां विष्णुप्रियां ततः ।
गङ्गापदं ङेयुतान्तं वह्निजायावधिर्मनुः ।
अष्टाक्षरी महाविद्या गङ्गाया भुवि दुर्लभा ।।

विषबीजं प्रणवः, माया ह्रीं, विष्णुप्रिया श्रीं।

ध्यानं यथा क्रियायोगसारे—

ददर्श पुरतो गङ्गां द्विभुजां मकरासनाम् ।
कुन्देन्दुशङ्खधवलां सर्वाभरणभूषिताम् ।।

अन्यद् ध्यानं ब्रह्मवैवर्तादौ द्रष्टव्यम्।

इत्यनेनैव ध्यानेन ध्यात्वा त्रिपथगां शुभाम् ।
दत्त्वा सम्पूजयेद्ब्रह्मन्नुपचारांश्च षोडश ।।
आसनं पाद्यमर्घ्यञ्च स्नानीयञ्चानुलेपनम् ।
धूपदीपौ च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम् ।।
वसनं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम् ।
मनोहरं सुतल्पञ्च देयान्येतानि षोडश ।।
दत्त्वा भक्त्या च प्रणमेत् संस्तूय सम्पुटाञ्जलिः ।
सम्पूज्यैवं प्रकारेण भोगमोक्षफलं लभेत् ।।

अन्यत् सर्वं सामान्यपद्धत्युक्तवत्।

गंगामन्त्र—तन्त्रादि में वर्णित रूप के अनुसार ध्यान करने से जो भोग-मोक्ष प्रदान करती हैं, उन्हीं भुवनपावनी गंगा को बताऊँगा। ब्रह्मसंहिता में मन्त्रोद्धार निम्न प्रकार से किया गया है—

विषबीज ॐ, माया ह्रीं, विष्णुप्रिया श्रीं, चतुर्थी विभक्तियुक्त गङ्गायै और वह्निजाया

स्वाहा को मिलाने से श्री गंगा देवी का पृथ्वी पर दुर्लभ अष्टाक्षर मन्त्र वनता है—ॐ ह्रीं श्रीं गंगायै स्वाहा।

क्रियायोगसार में गंगा जी का ध्यान इस प्रकार का वताया गया है—दो भुजाओं वाली, मकरवाहना, कुन्दपुष्प, चन्द्रमा और शंख के समान उज्ज्वलवर्णा, सभी अलंकारों से सुशोभित गंगा जी को अपने सामने देखता हूँ।

ब्रह्मवैवर्तपुराण आदि में अन्य प्रकार के ध्यान का वर्णन है। मंगलमयी त्रिपथगामिनी गंगा जी का ध्यान करके षोडशोपचारों से उनकी पूजा करे। षोडशोपचार हैं—१. आसन, २. पाद्य, ३. अर्घ्य, ४. स्नानीय जल, ५. अनुलेपन वस्तु, ६. धूप, ७. दीप, ८. नैवेद्य, ९. ताम्बूल, १०. शीतल जल, ११. वस्त्र, १२. आभूषण, १३. पुष्पमाला, १४. गन्ध, १५. आचमनीय, १६. मनोहर उत्तम शय्या। फिर भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर स्तुति करे। इस प्रकार पूजा करने से भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं। अन्य सारे पूजाकर्म सामान्य पूजा-पद्धति (पूर्ववर्णित) के अनुसार करने चाहिये।

कार्तिकेयमन्त्रः

भूतडामरे—

विषं रौद्रं क्रोधपदं धारिणे च ततः परम् ।
वह्निजायान्त उक्तोऽयं मन्त्रः कौमाररूपिणः ।।

विषं प्रणवं, रौद्रं मायाबीजम्। ध्यायेद्यथा—

कार्तिकेयं महाभागं मयूरोपरिसंस्थितम् ।
तप्तकाञ्चनवर्णाभं शक्तिहस्तं वरप्रदम् ।।
द्विभुजं शत्रुहन्तारं नानालङ्कारभूषितम् ।
षण्मुखं तुङ्गनेत्रञ्च सर्वसैन्यपुरस्कृतम् ।।

एवं ध्यात्वा पूर्ववत्सर्वं कृत्वा प्रणमेत्—

ॐ कार्तिकेयं नमस्यामि गौरीपुत्रं शुभप्रदम् ।
षडाननं महाभागं दैत्यदर्पनिषूदनम् ।।
षष्ठी मङ्गलचण्डी च मनसा प्रकृतेः कलाः ।
देव्याश्चरितमेतत्तु सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ।।

कार्तिकेयमन्त्र—विष ॐ रौद्र ह्रीं क्रोधधारिणे स्वाहा को मिलाकर नौ अक्षरों का मन्त्र बनता है—ॐ ह्रीं क्रोधधारिणे स्वाहा। ध्यान निम्न प्रकार का करे—

भगवान् कार्तिकेय मोर के ऊपर विराजमान हैं। तपाये हुए सोने-जैसी उनकी कान्ति है। दो हाथों में शक्ति और वरमुद्रा है। विविध अलंकारों से विभूषित हैं। छः मुख हैं। उन्नत नासिका है। सभी सेनाओं के आगे रहकर शत्रुओं का नाश करते हैं।

इस प्रकार ध्यान करके पूर्वोक्त सामान्य पूजापद्धति से इनकी पूजा करके प्रणाम करे—मैं गौरीपुत्र, कल्याणकारी, दैत्यों के नाश करने वाले भगवान् षडानन कार्तिकेय को प्रणाम करता हूँ।

षष्ठी देवी, मंगल चण्डी, मनसादेवी प्रकृति देवी की अंशभूता हैं। इनकी उपासना करने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

षष्ठीमन्त्रः

यथा—

वेदादि-बीजमुद्धृत्य मायाबीजं ततः परम् ।
षष्ठीदेवीपदं ङेऽन्तं वह्निजायान्वितो मनुः ।
अष्टाक्षरो महामन्त्रः षष्ठीदेव्याः प्रकीर्तितः ॥

ध्यानं यथा—

षष्ठांशं प्रकृतेः शुद्धां सुप्रतिष्ठाञ्च सुप्रभाम् ।
सुपुत्रदाञ्च शुभदां दयारूपां जगत्प्रसूम् ॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् ।
पवित्ररूपां परमां देवसेनामहं भजे ॥

अन्यत्सर्वं पूर्ववत्। पुरश्चरणं लक्षजपः। ब्रह्मवैवर्ते—

अष्टाक्षरं महामन्त्रं लक्षधा यो जपेन्मुने ।
स पुत्रं लभते नूनमित्याह कमलोद्भवः ॥

मङ्गलचण्ड्या ब्रह्मवैवर्ते ज्ञेयम्।

षष्ठी देवी का मन्त्र—वेदादि ॐ, माया ह्रीं, षष्ठीदेव्यै स्वाहा को एक करने से यह मन्त्र बनता है—ॐ ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहा। यह अष्टाक्षर है। षष्ठी देवी का ध्यान इस प्रकार का है—

षष्ठी देवी प्रकृति की अंशस्वरूपा शुद्ध हैं। सुप्रतिष्ठित और कान्तिमयी हैं। ये सुपुत्र को देने वाली, कल्याणकारिणी, दयामयी और जगज्जननी हैं। श्वेत चम्पा-जैसी कान्ति वाली, रत्नजटित अलंकारों से विभूषित, पवित्र रूप वाली श्रेष्ठ देवसेना की मैं वन्दना करता हूँ। पूर्वोक्त सामान्य पूजापद्धति से षष्ठी देवी की पूजा करे। एक लाख मन्त्रजप से इसका पुरश्चरण होता है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में बताया गया है कि जो अष्टाक्षर मन्त्र का जप एक लाख कर लेता है, वह निश्चय ही पुत्रलाभ करता है। ऐसा ब्रह्मा जी का कथन है।

मंगल चण्डी की पूजादि का विवरण ब्रह्मवैवर्तपुराण से ज्ञात करना चाहिये।

विषहरी-जगद्गौरी-मनसामन्त्रः

हलाहलं समुद्धृत्य लज्जाबीजमतः परम् ।
नमः पदं ततः पश्चात् मनसायै ततो वदेत् ॥
स्वाहान्ता परमा विद्या विषघ्नी सर्वदेहिनाम् ।
दशाक्षरीयं कथिता सर्वेषामधिदेवता ॥

हलाहलं प्रणवः। ध्यानं तत्रैव—

श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् ।
वह्निशुद्धांशुकाधानं नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥
महाज्ञानयुताञ्चैव प्रवरां ज्ञानिनां स्वयम् ।
सिद्धाधिष्ठातृदेवीञ्च सिद्धां सिद्धिप्रदां भजे ॥

पूजादिकं पूर्ववत्। एवं जरत्कारुमुन्यास्तीकमुनिनागाद्यावरणान् पूजयेत्।

विषहरी मनसा देवी का मन्त्र—ये देवी विषहरी और जगद् गौरी नामों से विख्यात हैं। इनका मन्त्रोद्धार निम्न प्रकार का है—

हलाहल ॐ, लज्जा ह्रीं, नमः मनसायै स्वाहा को मिलाने से मन्त्र बनता है—ॐ ह्रीं नमः मनसायै स्वाहा। यह दशाक्षरी विद्या है। इसके प्रभाव से सभी विषैले जीवों के विष का नाश होता है। मनसादेवी सभी की अधिष्ठात्री हैं। इनका ध्यान ब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार इस प्रकार का है—

श्वेत चम्पापुष्प-जैसी कान्ति वाली, रत्नजटित आभूषणों से युक्त, अग्नि से पवित्र वस्त्रधारिणी, नाग के यज्ञोपवीत से शोभित, श्रेष्ठ ज्ञानियों में अग्रगण्य, सिद्धों की अधिष्ठात्री देवी, सिद्धिदायिनी देवी की मैं वन्दना करता हूँ।

मनसा देवी की पूजा आदि सामान्य पूजापद्धति से करनी चाहिये। जरत्कारु मुनि, आस्तीक मुनि और आठ नागों की पूजा आवरण में करनी चाहिये।

स्वाहा-मन्त्रः

ब्रह्मवैवर्ते—

ॐ ह्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहा ततः परम् ।
द्वादशार्णा महाविद्या स्वाहादेव्याः प्रकीर्तिता ॥

ध्यानं तत्रैव—

स्वाहां मन्त्राङ्गभूताञ्च मन्त्रसिद्धिस्वरूपिणीम् ।
सिद्धाञ्च सिद्धिदां नृणां कर्मणां फलदां भजे ॥

पूजादिकं सर्वं पूर्ववत्।

स्वाहामन्त्र—अग्निदेव की पत्नी का नाम स्वाहा है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में इनका मन्त्रोद्धार इस प्रकार का है—ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायायै स्वाहा। यह बारह अक्षरों वाली महाविद्या स्वाहा देवी की प्रख्यात है।

इनका ध्यान है—स्वाहा देवी सभी मन्त्रों की अंगभूता हैं। मन्त्रसिद्धिस्वरूपा हैं। मनुष्यों को कर्मफल देने वाली सिद्धिदायिनी सिद्ध देवी हैं। उनको मैं भजता हूँ। स्वाहा देवी की पूजा भी पूर्ववत् करनी चाहिये।

कर्मणां दक्षिणामन्त्रः

तत्रैव—ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणायै स्वाहा च—द्विपञ्चाक्षरः। ध्यानं यथा—

लक्ष्मीदक्षांशसम्भूतां दक्षिणां कमलाकलाम्।
सर्वकर्मेषु दक्षाञ्च फलदां सर्वकर्मणाम्।
विष्णोः शक्तिस्वरूपाञ्च सुशीलां शुभदां भजे ॥

पूजादिकं पूर्ववत्।

कर्मों की दक्षिणारूपी देवी का मन्त्र—विविध प्रकार के कर्मों के लिये जो धन-वस्त्रादि की दक्षिणा दी जाती है, उसे शास्त्रों में देवी रूप में मानकर उसकी पूजा का विधान है। इनका दशाक्षर मन्त्र इस प्रकार का है—ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणायै स्वाहा।

दक्षिणा देवी का ध्यान इस प्रकार का है—लक्ष्मी के दाँयें अंग से उत्पन्न दक्षिणा देवी कमला की कला हैं। ये सभी कर्मों में निपुण हैं। सभी कर्मों की फलदात्री हैं। विष्णु की शक्तिस्वरूपा हैं। सुशीला और मंगलकारिणी हैं। दक्षिणा देवी की पूजा पूर्वोक्त सामान्य पूजापद्धति से करे।

क्रोधराज-मन्त्रः

यथा भूतडामरे—

विषञ्च वज्रज्वालेन हनयुग्ममतः परम्।
सर्वभूतान्ततः कूर्चमन्त्रान्तं मन्त्रमीरितम् ॥

ध्यानपूजादिकं तत्रैव द्रष्टव्यम्। अस्य मन्त्रस्य लक्षजपः सर्वार्थसिद्धये आत्मरक्षार्थमादौ सर्वत्रैव कार्यम्।

क्रोधराज का मन्त्र—भूतडामर में मन्त्रोद्धार निम्न प्रकार का है—विष ॐ वज्रज्वालेन हन हन सर्वभूतान् कूर्च हूँ। सबको एकत्र करने से मन्त्र बनता है—ॐ वज्रज्वालेन हन हन सर्वभूतान् हूं। यह मन्त्र पन्द्रह अक्षरों का है।

इसका ध्यान-पूजादि भूतडामरतन्त्र में द्रष्टव्य है। सभी कार्यों के पहले मन्त्रसिद्धि के लिए तथा आत्मरक्षा के लिए इस मन्त्र का एक लाख जप आवश्यक है।

गङ्गाकवचम्

ॐ गङ्गायै नमः। गङ्गाकवचस्य विष्णुर्ऋषिर्विराट्छन्दः चतुर्दशपुरुषोद्धारणार्थपाठे विनियोगः।

द्रव्यरूपा महाभागा स्नाने च तर्पणेऽपि च ।
अभिषेके पूजने च पातु मां शुक्लरूपिणी ॥१॥
विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी नामधारिणी ।
पाहि मां सर्वतो रक्षेद्गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥२॥
मन्दाकिनी सदा पातु देहान्ते स्वर्गवल्लभा ।
अलकनन्दा च वामभागे पृथिव्यां या तु तिष्ठति ॥३॥
भोगवती च पाताले स्वर्गे मन्दाकिनी तथा ।
पञ्चाक्षरमिमं मन्त्रं यः पठेच्छृणुयादपि ॥४॥
रोगी रोगात्प्रमुच्येत बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
गुर्विणी जनयेत् पुत्रं वन्ध्या पुत्रवती भवेत् ॥५॥
गङ्गास्मरणमात्रेण निष्पापो जायते नरः ।
यः पठेद् गृहमध्ये तु गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥६॥
स्नानकाले पठेद्यस्तु शतकोटिफलं लभेत् ।
यः पठेत्प्रयतो भक्त्या मुक्तः कोटिकुलैः सह ॥७॥

इति विष्णुयामले शिवपार्वतीसंवादे गङ्गाकवचं समाप्तम्

●

गंगाकवच (विष्णुयामलोक्त)—श्रीगंगा कवच के ऋषि विष्णु, छन्द विराट्, देवता श्रीगंगा हैं। चौदह पितरों के उद्धार के लिये इसके पाठ का विनियोग होता है।

द्रवरूपिणी ये गौरवर्णा महाभागा स्नान, तर्पण, अभिषेक और पूजा के समय मेरी रक्षा करें।

हे माते गंगे! तुम विष्णु के चरण से उत्पन्न हुई हो। तुम्हारा नाम वैष्णवी है। तुम त्रिपथगामिनी हो, सभी मार्गों पर तुम मेरी रक्षा करो।

मन्दाकिनी मेरी रक्षा निरन्तर करे। स्वर्गवल्लभा मेरी रक्षा मृत्यु के बाद करे। जो अलकनन्दारूप में धरती पर रहती हैं, वे बाँयें भाग में मेरी रक्षा करें। पाताल में भोगवती और स्वर्ग में मन्दाकिनी रक्षा करें।

जो व्यक्ति गंगा के पञ्चाक्षर मन्त्र का पाठ करता है या सुनता है, वह यदि रोगी है तो रोग से मुक्त हो जाता है और यदि किसी बन्धन में है तो उससे छुटकारा पा जाता है।

गर्भिणी स्त्री इसे सुनकर पुत्र को जन्म देती है। वन्ध्या स्त्री पुत्रवती होती है। गंगा का केवल स्मरण करने से ही मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है।

जो घर पर बैठकर इसका पाठ करता है, वह गंगास्नान करने का फल प्राप्त करता है। स्नान करते समय जो इसका पाठ करता है, वह सौ करोड़ गुना अधिक फल प्राप्त करता है।

जो नियमपूर्वक प्रतिदिन भक्तिपूर्वक इसका पाठ करता है, वह कोटि कुलों के साथ मुक्ति प्राप्त करता है।१-७।।

कार्तिकेयाक्षयकवचम्

देव्युवाच—

ये ये मम सुता जातास्ते ते कंसनिषूदिताः ।
कथं मे सन्ततिस्तिष्ठेद् ब्रूहि मे मुनिपुङ्गव ।।१।।

नारद उवाच—

येनोपायेन लोकानां सन्ततिश्चिरजीविता ।
तत्ते सर्वं प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय ।।२।।

अस्य स्कन्दाक्षयकवचस्य नारदऋषिरनुष्टुप् छन्दः सेनानीर्देवता वत्सरक्षणे विनियोगः।

बाहुलेयः शिरः पायात् स्कन्धौ शङ्करनन्दनः ।।३।।
मुण्डं मे पार्वतीपुत्रो हृदयं शिखिवाहनः ।
कटिं पायाच्छक्तिहस्तो जङ्घे मे तारकान्तकः ।।४।।
गुहो मे रक्षतां पादौ सेनानीर्वत्समुत्तमम् ।
स्कन्दो मे रक्षतामङ्गं दश दिगग्निभूर्मम ।।५।।
षाण्मातुरो भये घोरे कुमारोऽव्यात् श्मशानके ।।६।।
इति ते कथितं भद्रे कवचं परमाद्भुम् ।
धृत्वा पुत्रमवाप्नोति सुभव्यं चिरजीविनम् ।।७।।
नारदस्य वचः श्रुत्वा कवचं विधृतं तया ।
कवचस्य प्रसादेन जीववत्सा भवेत्सती ।।८।।
कवचस्य प्रसादेन तस्याः पुत्रो जनार्दनः ।
धारिकायास्तथा पुत्रो निर्जरैरपि दुर्जयः ।।९।।

इति उमायामले कार्तिकेयाक्षयकवचं समाप्तम्

श्रीकार्तिकेय अक्षय कवच—श्री देवकी ने नारद जी से कहा कि हे मुनिश्रेष्ठ!

मेरे जो-जो पुत्र उत्पन्न हुये, वे सभी कंस के द्वारा मारे गये। किस प्रकार मेरी सन्तान बचे? मुझे बताइये।

श्री नारद ने कहा कि जिस उपाय से लोगों की सन्तान चिरजीवी रहती है, वह सब तुमसे कहता हूँ, सावधानीपूर्वक सुनो।

इस स्कन्द अक्षय कवच के ऋषि नारद, छन्द अनुष्टुप् और देवता सेनानी हैं; सन्तान की रक्षा के लिये इसका विनियोग होता है।

मेरे शिर की रक्षा बाहुलेय, दोनों कन्धों की रक्षा शंकरनन्दन, मुण्ड की रक्षा पार्वतीपुत्र और हृदय की रक्षा शिखिवाहन करें। शक्तिहस्त मेरे कटि की, तारकान्तक दोनों जंघाओं की, गुह दोनों पैरों की और सेनानी उत्तम पुत्र की रक्षा करें।

स्कन्द मेरे अंग की, अग्निभू मेरी दश दिशाओं की, षाण्मातुर घोर भय में और कुमार श्मशान में रक्षा करें। हे कल्याणि! तुमसे यह अतिविलक्षण कवच कहा गया है। इसे धारण करने वाला सुन्दर, भव्य और चिरञ्जीवी पुत्र प्राप्त करता है।

नारद की बात सुनकर देवकी ने कवच को धारण किया। कवच के प्रभाव से वह जीवित पुत्र वाली हुई। इसी कवच के प्रभाव से देवकी पुत्र जनार्दन हुए। कवचधारिणी होने से देवताओं के द्वारा भी दुर्जय पुत्र श्रीकृष्ण हुए।

टिप्पणी—प्रथम नाम बाहुलेय होने का कारण यह है कि कृत्तिका को 'बहुला' कहते हैं। कृत्तिका द्वारा पालित होने के कारण इनका नाम बाहुलेय है।

●

वंशलाभाख्यकवचम्

नारद उवाच—

भगवन् सर्वधर्मज्ञ पार्वतीप्राणवल्लभ ।
वंशलाभाख्यकवचं कृपया मे प्रकाशय ॥१॥

ईश्वर उवाच—

वंशलाभाख्यकवचं दुर्लभं भुवनत्रये ।
यस्य प्रसादात् कमला लेभे तनयमुत्तमम् ॥२॥
कामदेवमपर्णा च विनायक-षडाननौ ।
जयन्तमिन्द्रवनिता देवपत्न्यः सुतानपि ॥३॥

अस्य वंशलाभाख्यकवचस्य भैरवऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीपार्वती देवता जीवित-तनयप्राप्तये विनियोगः।

पार्वती मे शिरः पातु वक्त्रं पातु महेश्वरी ।
भवानी नयने पातु भ्रुवौ शङ्करसुन्दरी ॥४॥
मध्ये पातु महेशानी नितम्बं सुरवन्दिता ।
ऊरू गौरी सदा पातु कौषिकी जानुयुग्मकम् ॥५॥
बाहू द्वौ सुमुखी पातु पाणियुग्मं सुभाविनी ।
पादौ ब्रह्ममयी पातु श्रवणे भुवनेश्वरी ॥६॥
नासिके ललिता पातु कण्ठं त्रिपुरसुन्दरी ।
रुद्राणी हृदयं पातु स्तनद्वन्द्वं महेश्वरी ॥७॥
आपादमस्तकं पातु सर्वाङ्गं सर्वमङ्गला ।
इति ते कथितं विप्र कवचं देवपूजितम् ॥८॥
पठित्वा धारयित्वा च अक्षयं तनयं लभेत् ।
ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि यथा ध्यात्वा पठेन्नरः ॥९॥
सहस्रादित्यसङ्काशां सर्वाभरणभूषिताम् ।
त्रिनेत्रां पाणिविन्यस्तपाशांकुशवराभयाम् ॥१०॥

इति श्रीभैरवतन्त्रे शिवनारद-संवादे वंशलाभाख्यकवचं समाप्तम्

वंशलाभाख्य कवच—श्री नारद ने महादेव से कहा कि भगवन्! आप सभी धर्मों के ज्ञाता हैं। हे पार्वतीवल्लभ! कृपा करके वंशलाभ नामक कवच को मुझे बताइये। महादेव ने कहा कि वंशलाभ नामक कवच तीनों लोकों में दुर्लभ है। इसके प्रभाव से कमला ने कामदेव को, पार्वती ने गणेश और कार्तिकेय को, इन्द्राणी ने जयन्त को और अन्य देवपत्नियों ने भी पुत्र प्राप्त किये हैं।

इस वंशलाभाख्य कवच के ऋषि श्री भैरव, छन्द अनुष्टुप् और देवता श्री पार्वती हैं; दीर्घजीवी पुत्रप्राप्ति के लिये इसका विनियोग होता है।

ऋष्यादि न्यास—शिर में भैरव ऋषि को प्रणाम, मुख में अनुष्टुप् छन्द को प्रणाम, हृदय में पार्वती देवता को प्रणाम। सभी अंगों में जीवित पुत्रप्राप्ति के लिये पाठ में प्रणाम।

ध्यान—सहस्र सूर्यों जैसी आभा वाली, सभी अलंकारों से विभूषित, तीन नयनों वाली, चार हाथों में पाश-अंकुश-वर और अभय मुद्रा धारण करने वाली पार्वती देवी का मैं ध्यान करता हूँ।

मेरे शिर की रक्षा पार्वती और मुख की रक्षा महेश्वरी करें। दोनों आँखों की रक्षा भवानी, दोनों भौहों की शंकरसुन्दरी रक्षा करें। मध्य भाग में महेशानी, नितम्ब की सुरवन्दिता, दोनों जाँघों की गौरी, दोनों घुटनों की रक्षा कौषिकी करें। दोनों भुजाओं की

रक्षा सुमुखी, दोनों हाथों की सुभाविनी रक्षा करें। दोनों पैरों की रक्षा ब्रह्ममयी और दोनों कानों की रक्षा भुवनेश्वरी करें। दोनों नथुनों की रक्षा ललिता, कण्ठ की रक्षा त्रिपुरसुन्दरी करें। हृदय की रुद्राणी, दोनों स्तनों की महेश्वरी रक्षा करें। पैरों से मस्तक तक के सारे शरीर की रक्षा सर्वमंगला करें।

हे प्रिये! इस प्रकार देवताओं से पूजित कवच तुमसे कहा, जिसके पाठ करने और धारण करने से अक्षय पुत्र प्राप्त होता है।

●

षष्ठी-स्तोत्रम्

स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ सर्वकामशुभावहम् ।
वाञ्छाप्रदञ्च सर्वेषां गूढं वेदेषु नारद ॥१॥

प्रियव्रत उवाच—

नमो देव्यै महादेव्यै सिद्धयै शान्त्यै नमो नमः ।
शुभायै देवसेनायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥२॥
वरदायै पुत्रदायै धनदायै नमो नमः ।
सुखदायै मोक्षदायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥३॥
शक्तिषष्ठीस्वरूपायै सिद्धायै च नमो नमः ।
मायायै सिद्धयोगिन्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥४॥
सारायै सारदायै च परायै सर्वकर्मणाम् ।
बालाधिष्ठातृदेव्यै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥५॥
कल्याणदायै कल्याण्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ।
फलदायै फलिन्यै च फलदायै च कर्मणाम् ।
प्रत्यक्षायै च भक्तानां षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥६॥
पूज्यायै स्कन्दकान्तायै सर्वेषु सर्वकर्मसु ।
देवरक्षणकारिण्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥७॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपायै वन्दितायै नमो नमः ।
धनं देहि श्रियं देहि पुत्रं देहि सुरेश्वरि ॥८॥
धर्मं देहि यशो देहि षष्ठीदेव्यै नमोः नमः ।
देहि भूमिं प्रजां देहि राज्यं देहि सुपूजिते ।
कल्याणञ्च जयं देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥९॥
इति देवीञ्च संस्तूय लेभे पुत्रं प्रियव्रतः ।

यशस्विनञ्च राजेन्द्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः ।।१०।।
षष्ठीस्तोत्रमिदं ब्रह्मन् यः श्रृणोति दिने-दिने ।
अपुत्रो लभते पुत्रं वरं सुचिरजीविनम् ।।११।।
वर्षमेकञ्च यो भक्त्या इदं स्तोत्रं श्रृणोति च ।
सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो महावन्ध्या प्रसूयते ।।१२।।
वीरपुत्रञ्च गुणिनं विद्यावन्तं यशस्विनम् ।
सुचिरायुष्मन्तमेव षष्ठीदेवी प्रसादतः ।।१३।।

इति ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे
प्रकृतिखण्डे षष्ठीस्तोत्रं समाप्तम्

नारायण ने कहा कि हे नारद! सर्वकाम शुभदायक, वाञ्छाप्रद, वेदों में गूढ़ कवच को सुनिये।

ॐ देवी महादेवी को नमस्कार। सिद्धि शान्ति को नमस्कार। शुभकरी देवसेना षष्ठी देवी को नमस्कार, नमस्कार। वरदा, पुत्रदा, धनदा को नमस्कार, नमस्कार। सुखदा, मोक्षदा षष्ठी देवी को नमस्कार। षष्ठी शक्तिस्वरूपा सिद्धा को नमस्कार।

माया सिद्धयोगिनी षष्ठी देवी को नमस्कार। सारा, सारदा, परा सभी कर्मों में बालाधिष्ठात्री षष्ठी देवी को नमस्कार। कल्याणी, कल्याणदात्री षष्ठी देवी को नमस्कार। फलदा, फलिनी, सभी कर्मों की फलदात्री, भक्तों के सामने प्रत्यक्ष होने वाली षष्ठी देवी को नमस्कार।

पूज्या, स्कन्दकान्ता सबों में सब कामों में देवताओं की रक्षा करने वाली षष्ठी देवी को नमस्कार। शुद्धसत्त्वस्वरूपा वन्दिता को नमस्कार।

हे सुरेश्वरि! हमें धन दो, पुत्र दो, श्री दो, धर्म दो, यश दो, षष्ठी देवी को नमस्कार। हे षष्ठी देवि! आपको प्रणाम है, हमें भूमि दो, प्रजा दो। हे सुपूजिते! राज्य दो। कल्याण और जय दो, षष्ठी देवी को नमस्कार है।

इस प्रकार देवी की स्तुति करके प्रियव्रत ने पुत्र प्राप्त किया। षष्ठी देवी की कृपा से यह पुत्र राजाओं में श्रेष्ठ और यशस्वी हुआ।

हे ब्रह्मन्! इस षष्ठी देवी के स्तोत्र को जो प्रतिदिन सुनता है, तो उस पुत्रहीन को श्रेष्ठ चिरञ्जीवी पुत्र प्राप्त होता है। एक वर्ष तक जो भक्तिपूर्वक इस कवच को सुनता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। महावन्ध्या को पुत्र होता है। वह पुत्र वीर, गुणवान, विद्वान्, यशस्वी, दीर्घायु षष्ठी देवी की कृपा से होता है।

●

विषहरीमनसास्तोत्रम्

जरत्कारुर्जगद्गौरी मनसा सिद्धयोगिनी ।
वैष्णवी नागभगिनी शैवा नागेश्वरी तथा ।।१।।
जगत्कारुप्रियास्तीकमाता विषहरीति च ।
महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता ।।२।।
द्वादशैतानि नामानि पूजाकाले च यः पठेत् ।
तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च ।।३।।
नागभीते च शयने नाग्रग्रस्ते च मन्दिरे ।
नागक्षतमहादुर्गे नागवेष्टितविग्रहे ।।४।।
इदं स्तोत्रं पठित्वा तु मुच्यते नात्र संशयः ।
नित्यं पठेद्वास्तु दृष्ट्वा नागवर्गः पलायते ।।५।।
दशलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ।
स्तोत्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स विषं भोक्तुमीश्वरः ।
नागौघभूषणं कृत्वा स भवेन्नागवाहनः ।
विषं भवेत्सुधातुल्यं सिद्धस्तोत्रो यदा भवेत् ।।६।।

इति ब्रह्मवैवर्ते मनसास्तोत्रं समाप्तम्

१. जरत्कारु, २. जगद्गौरी, ३. मनसा, ४. सिद्धयोगिनी, ५. वैष्णवी, ६. नागभगिनी, ७. शैवा, ८. नागेश्वरी, ९. जरत्कारुप्रिया, १०. आस्तिकमाता, ११. विषहरी, १२. महाज्ञानवती—ये मनसा देवी के बारह नाम हैं। देवी विश्वपूजिता हैं।

उक्त बारह नामों का पाठ जो पूजाकाल में करता है, उसे नागों का डर नहीं रहता। उसके वंश की वृद्धि होती है।

शय्या पर नाग का डर हो, घर में नागों के होने पर, नागों से भरे विशाल दुर्ग में, शरीर में नागों के लिपट जाने पर इस स्तोत्र का पाठ करने से नागों से रक्षा होती है; इसमें सन्देह नहीं है। वास्तुसर्प को देखकर इस स्तोत्र का पाठ नित्य करे तो सभी सर्प भाग जाते हैं।

दस लाख जप से यह स्तोत्र सिद्ध होता है। जिसे स्तोत्र सिद्ध हो जाता है, वह विष पचाने में समर्थ हो जाता है।

वह नागों को आभूषण बनाकर नागवाहन हो सकता है। स्तोत्र के सिद्ध होने पर विष भी अमृत के समान हो जाता है।

●

स्वाहास्तोत्रम्

वह्निरुवाच—

स्वाहाद्याः प्रकृतेरंशा मन्त्रान्तरशरीरिणी ।
मन्त्राणां फलदात्री च धात्री च जगतां सती ॥१॥
सिद्धिस्वरूपा सिद्धा च सिद्धिदा सर्वदा नृणाम् ।
हुताशदाहिकाशक्तिस्तत्प्राणाधिकरूपिणी ॥२॥
संसारसाररूपा च घोरसंसारतारिणी ।
देवजीवनरूपा च देवपाषाणकारिणी ॥३॥
षोडशैतानि नामानि यः पठेद्भक्तिसंयुतः ।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य सर्वकर्मसु शोभनम् ।
अपुत्रो लभते पुत्रमभार्यो लभते प्रियाम् ॥४॥

इति ब्रह्मवैवर्ते नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे
स्वाहास्तोत्रं समाप्तम्

स्वाहा आदि प्रकृति की अंश हैं। मन्त्र ही स्वाहा का शरीर है। यह देवी मन्त्र का फल देने वाली जगद्धात्री हैं। सिद्धिस्वरूपा, सिद्धा और मनुष्यों को सिद्धिदायिनी हैं। यह अग्नि की दाहिका शक्ति हैं। अग्नि के प्राणों से अधिक प्रिय होने की इनकी महिमा है। यह संसार की सारस्वरूपा हैं। संसार के घोर कष्टों से पार कराने वाली हैं। देवताओं को जीवनदायिनी हैं। हवि प्रदान कर देवताओं को पत्थर के समान दृढ़ता प्रदान करती हैं।

जो भक्तिपूर्वक स्वाहा के उक्त सोलह नामों का पाठ करता है, उसे सभी कर्मों में उत्तम सफलता मिलती है। पुत्रहीन पुत्र प्राप्त करता है एवं पत्नीहीन प्रियतमा पत्नी प्राप्त करता है।

●

दक्षिणास्तोत्रम्

यक्ष उवाच—

गोलोकगोपी त्वं देवी गोपीनां प्रवरा परा ।
राधासमा तत्सखी च श्रीकृष्णप्रेयसी प्रिये ॥१॥
कार्तिकीपूर्णिमायान्तु रासे राधामहोत्सवे ।
आविर्भूता दक्षिणांसात्कृष्णस्य तेन दक्षिणा ॥२॥
पुरा त्वञ्च सुशीलाख्या शीलेन शोभनेन च ।
कृष्णदक्षांसवासाच्च राधाशापाच्च दक्षिणा ॥३॥

गोलोकात्त्वं परिध्वस्ता मम भाग्यादुपस्थिता ।
कृपां कुरु महाभागे मामेव स्वामिनं कुरु ॥४॥
कर्मिणां कर्मणां देवि त्वमेव फलदायिका ।
त्वया विना च सर्वेषां सर्वकर्म च निष्फलम् ॥५॥
फलशाखाविहीनश्च यथा वृक्षो महीतले ।
त्वया विना तथा कर्म कर्मिणाञ्च न शोभते ॥६॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च दिक्पालादय एव च ।
कर्मणश्च फलं दातुं न शक्ताश्च त्वया विना ॥७॥
कर्मरूपी स्वयं ब्रह्मा फलरूपी महेश्वरः ।
यज्ञरूपी विष्णुरहं त्वमेषां साररूपिणी ॥८॥
फलदाता परं ब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
स्वयं कृष्णश्च भगवान् स च शक्तस्त्वया सह ॥९॥
त्वमेव शक्तिः कान्ते मे शश्वज्जन्मनि जन्मनि ।
सर्वकर्मणि शक्तोऽहं त्वया सह वरानने ॥१०॥
इत्युक्त्वा तत्परस्तस्थौ यज्ञाधिष्ठातृदेवकः ।
तुष्टा बभूव सा देवी भजेत्तां कमलाकलाम् ॥११॥
इदञ्च दक्षिणास्तोत्रं यज्ञकाले च यः पठेत् ।
फलञ्च सर्वयज्ञानां लभते नात्र संशयः ॥१२॥
राजसूये वाजपेये गोमेधे नरमेधके ।
अश्वमेधे मङ्गले च विष्णुयज्ञे यशस्वरे ॥१३॥
धनदे भूमिदे फल्लौ पूर्णेष्टौ गजमेधके ।
लौहयज्ञे स्वर्णयज्ञे पाटने ब्रह्मखण्डने ॥१४॥
शिवयज्ञे रुद्रयज्ञे शत्रुयज्ञे च बन्धुके ।
इष्टौ वरुणयागे च कण्टके वैरिमर्दने ॥१५॥
शुचियागे धर्मयागे रोचने पापमोचने ।
बन्धने कर्मयागे च मणियागे सुभद्रके ॥१६॥
एतेषाञ्च समारम्भे इदं स्तोत्रञ्च यः पठेत् ।
निर्विघ्नं च तत्कर्म साङ्गं भवति निश्चितम् ॥१७॥

इति ब्रह्मवैवर्ते नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे
दक्षिणास्तोत्रं समाप्तम्

यज्ञ ने कहा कि हे देवि! तुम गोलोक में गोपी हो, गोपियों में सर्वश्रेष्ठ हो, राधा

के समान राधा की तुम सखी हो। हे प्रिये! तुम श्रीकृष्ण की प्रियतमा हो, कार्तिक की पूर्णिमा में, राधा के रासमहोत्सव में भगवान् कृष्ण के दाँयें कन्धे से तुम प्रकट हुई हो, इसी से दक्षिणा कहलाती हो।

पहले तुम उत्तम स्वभाव के कारण सुशीला नाम से विख्यात थी। भगवान् कृष्ण के दाँयें कन्धे में रहने से और राधा के शाप के कारण तुम्हारा नाम दक्षिणा हो गया।

गोलोक से तुम बहिष्कृत हो गई। मेरे भाग्य से उपस्थित हुई हो। हे महाभागे! कृपा करो, मुझे ही अपना स्वामी बनाओ। हे देवि! कर्म करने वालों के कर्मों का फल देने वाली तुम्हीं हो, तुम्हारे विना सभी के सारे कर्म निष्फल होते हैं।

फल और डाल के विना जैसे पृथिवी पर वृक्ष शोभा नहीं पाते, उसी प्रकार तुम्हारे विना कर्म करने वालों के कर्म शोभा नहीं पाते।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश तथा दिक्पाल आदि तुम्हारे विना कर्मों का फल देने में समर्थ नहीं होते। कर्मरूप स्वयं ब्रह्मा हैं, फलरूप महेश्वर हैं, यज्ञरूप विष्णु हैं, तुम तीनों की सारस्वरूपा हो। प्रकृति के परे फलदाता परब्रह्म निर्गुण होते हैं। स्वयं भगवान् कृष्ण तुम्हारे साथ ही फल देने में समर्थ होते हैं। हे कान्ते! जन्म-जन्मान्तर में तुम्हीं मेरी शाश्वत शक्ति हो। हे वरानने! तुम्हारे साथ ही सभी कर्मों में मैं समर्थ होता हूँ।

यह कहकर यज्ञ के अधिष्ठात्री देवता दक्षिणा के प्रति आकृष्ट हुए और कमला की उस कला की भक्ति की, तब वह देवी प्रसन्न हुई। यज्ञ के समय जो इस दक्षिणास्तोत्र का पाठ करता है, वह सभी यज्ञों का फल प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं है।

राजसूय, वाजपेय, गोमेध, नरमेध, मंगलकारक अश्वमेध और यशदायक विष्णुयज्ञ; धनदायक, भूमिदायक, फलदायक पूर्ण यज्ञ में; गजमेध में, लौहयज्ञ-स्वर्णयज्ञ में, पाटन ब्रह्मखण्डन में, शिवयज्ञ में, रुद्रयज्ञ, इन्द्रयज्ञ, बन्धूकयज्ञ, वरुणयज्ञ, कण्टक और वैरीमर्दन में; शुचियाग, धर्मयाग, रोचन पापपोचन बन्धन कर्म योग मणियाग और सुभद्रक—इन सभी यज्ञों के प्रारम्भ में जो इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसका वह यज्ञ निश्चित रूप से पूर्ण सफल होता है।

●

बलरामस्तोत्रम्

नमस्ते हलधृग् राम नमस्ते मुषलायुध ।
नमस्ते रेवतीकान्त नमस्ते भक्तवत्सल ॥१॥
नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ नमस्ते धरणीधर ।
प्रलम्बारे नमस्तेऽस्तु त्राहि मां कृष्णपूर्वज ॥२॥

इदं स्तोत्रं परं पुण्यं सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ।
यः पठेत्प्रयतो भक्त्या सर्वसिद्धेः स भाजनम् ॥३॥

इति उत्कलखण्डे बलरामस्तोत्रम्

हे हलधारी राम! आपको नमस्कार। आपको नमस्कार। हे मूसल आयुध वाले! आपको नमस्कार। हे रेवतिपते ! हे भक्तवत्सल ! आपको नमस्कार।

हे शक्तिशालियों में श्रेष्ठ! आपको नमस्कार। हे धरणीधर! आपको नमस्कार। हे प्रलम्बशत्रो! आपको नमस्कार। हे कृष्ण अग्रज! मेरी रक्षा करें।

यह स्तोत्र श्रेष्ठ पुण्यदायक है। मनुष्यों को सर्वसिद्धिदायक है। जो नियमपूर्वक भक्ति से इसका पाठ करता है, वह सभी सिद्धियों को प्राप्त करता है।

●

महाकालीस्तोत्रम्

महाकालरुद्र उवाच—

अचिन्त्यामिताकारशक्तिस्वरूपा
प्रतिव्यक्त्यधिष्ठानसत्त्वैकमूर्तिः ।
गुणातीतनिर्द्वन्द्वबोधैकगम्या
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥१॥
अगोत्राकृतित्वादनैकान्तिकत्वा-
दलक्ष्यागमत्वादशेषाकरत्वात् ।
प्रपञ्चालसन्नादनारम्भकत्वा-
त्त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥२॥
असाधारणत्वादसम्बन्धकत्वा-
दभिन्नाश्रयत्वादनाकारकत्वात् ।
अविद्यात्मकत्वादनाद्यात्मकत्वा-
त्त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥३॥
यदा नैव धाता न विष्णुर्न रुद्रो
न कालो न वा पञ्चभूतानि नाशा ।
तदा कारणीभूतसत्त्वैकमूर्ति-
स्त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥४॥
न मीमांसका नैव कालादितर्का
न सांख्या न योगा न वेदान्तवेद्याः ।

न देवा विदुस्ते निराकारभावं
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥५॥
न ते नामगोत्रे न ते जन्ममृत्यु-
र्न ते धामचेष्टे न ते दुःखसौख्ये।
न ते मित्रशत्रू न ते बन्धमोक्षौ
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥६॥
न बाला न च त्वं वयःस्था न वृद्धा
न च स्त्री न षण्डः पुमान्नैव च त्वम्।
न च त्वं सुरो नासुरो नो नरो वा
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥७॥

महाकाल रुद्र ने कहा कि हे महाकाली! आप अचिन्त्य अमिताकार शक्तिस्वरूपा प्रतिव्यक्त्यधिष्ठान सत्त्वस्वरूपा हैं। आप गुणातीत निर्द्वन्द्व बोध से ज्ञात होती हैं। तुम्हीं अकेले परब्रह्मरूप से सिद्ध हो। तुम्हारे अगोत्र अकृति होने से, अनैकान्तिक होने से, अलक्ष्य-अगम होने से, अशेष-अकर्ता होने से, प्रपञ्चालसन्नादनारम्भ होने से यह सिद्ध होता है कि तुम्हीं अकेले ब्रह्म हो।

तुम असाधारण हो, सम्बन्धकत्व हो, अभिन्न आश्रय हो, अनाकारक हो, अविद्यात्मक हो, अनादि हो; इससे सिद्ध होता है कि तुम अकेले ही परब्रह्मरूप हो। जब ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, काल, पञ्चभूतों में से कोई नहीं था तब तुम्हीं सबों का कारण बनी और सत्त्वमूर्ति अकेले परब्रह्म से सिद्ध हो।

जब न मीमांसक, न कालादि तर्क, न सांख्य, न योग, न वेदान्त, न वेद थे और न देव थे तब तुम्हीं अकेली निराकार ब्रह्म के रूप में विद्यमान थी।

तुम्हारा न नाम है, न गोत्र है, न जन्म है, न मृत्यु है, न धाम, न चेष्टा, न सुख, न दुःख, न मित्र, न शत्रु, न बन्धन, न मोक्ष है; इससे सिद्ध होता है कि तुम्हीं परब्रह्मरूप हो।

तुम न बाला, न वयस्का, न वृद्धा, न स्त्री, न नपुंसक, न पुरुष, न सुर, न असुर, न नर हो; इससे सिद्ध होता है कि तुम्हीं परब्रह्मस्वरूप हो।।१-७।।

जले शीतलत्वं शुचौ दाहकत्वं
विधौ निर्मलत्वं रवौ तालकत्वम्।
तवैवाम्बिके यस्य कस्यापि शक्ति-
स्त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥८॥

पपौ क्ष्वेडमुग्रं पुरा यन्महेशः
पुनः संहरत्यन्तकाले जगच्च ।
तवैव प्रसादान्न च स्वस्य शक्त्या
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥९॥
करालाकृतीन्याननानि श्रयन्ती
भजन्ती करास्त्रादिवाहुल्यमित्थम् ।
जगत्पालनायासुराणां वधाय
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥१०॥
महाचण्डयोगेश्वरी गुह्यकाली
कराली महाडामरी साट्टहासा ।
जगद्भासिनी चण्डिका पालिकेति
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥११॥
रुदन्ती शिवाभिर्वहन्ती कपालं
जयन्ती सुरारीन् वदन्ती प्रसन्ना ।
नटन्ती पटन्ती चलन्ती हसन्ती
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥१२॥
अपादापि वाताधिकं धावसि त्वं
श्रुतिभ्यां विहीनापि शब्दं शृणोषि ।
अनासापि जिघ्रस्यनेत्रापि पश्य-
स्यजिह्वापि नानारसास्वादविज्ञा ॥१३॥
यथा विम्बमेकं रवेरम्बरस्थं
प्रतिच्छायया यावदेकोदकेषु ।
समुद्भासतेऽनेकरूपं यथा-
वत्त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥१४॥
यथा भ्रामयित्वा मृदं चक्रमध्ये
कुलालो विधत्ते शरावं घटञ्च ।
महामोहयन्त्रेषु भूतान्यशेषान्
तथा मानुषांस्त्वं सृजस्यादिसर्गे ॥१५॥

तुम्हीं जल में शीतलता, अग्नि की दाहकता, चन्द्रमा की निर्मलता, सूर्य का तापकत्व हो। जहाँ कहीं भी शक्ति है, वह हे अम्बिके! तुम्हारी ही शक्ति है। इससे सिद्ध होता है कि तुम्हीं परब्रह्मस्वरूप हो।

पूर्वकाल में महेश ने हलाहल का पान किया था। जो प्रलयकाल में जगत् का संहार करते हैं, वह तुम्हारी ही कृपा से ऐसा करते हैं; न कि अपनी शक्ति से। इससे सिद्ध होता है कि तुम्हीं परब्रह्मस्वरूप हो।

तुम्हारी आकृति भयानक है, मुख भीषण है, हाथों में अस्त्रों का बाहुल्य है। ये अस्त्र संसार की रक्षा और असुरों के वध के लिये हैं। इससे सिद्ध होता है कि केवल तुम्हीं परब्रह्मस्वरूप हो।

तुम महाचण्डी, योगेश्वरी, गुह्यकाली, कराली, महाडामरी, घोर अट्टहासकर्त्री, जगद्भासिनी, चण्डिका और पालिका हो। इससे सिद्ध होता है कि केवल तुम्हीं ब्रह्मस्वरूप हो। तुम्हीं शिवारूप में रुदन करती हो, मुण्डमाला धारण करती हो, देववैरियों का विनाश करती हो। प्रसन्न होकर बोलती हो, नाचती हो, गाती हो, चलती हो, हँसती हो। इससे सिद्ध होता है कि केवल तुम्ही परब्रह्मस्वरूप हो।

तुम्हारे पैर नहीं हैं, तथापि पवन से भी तेज दौड़ती हो। तुम्हें कान नहीं हैं तथापि शब्दों को सुनती हो। नाक न होने पर भी सूंघती हो, नेत्र न होने पर भी देखती हो, जिह्वा न होने पर भी नाना रसों का स्वाद जानती हो।

जैसे आकाश का एक ही सूर्य जल में अनेक दिखायी पड़ता है, वैसे ही अकेले तुम्हारे अनेक रूप संसार में दिखायी पड़ते हैं। इससे सिद्ध होता है कि केवल तुम्हीं परब्रह्मस्वरूप हो। जैसे कुम्भकार चाक पर मिट्टी रखकर घुमाता है और प्यालियों एवं घड़ों का निर्माण करता है, वैसे ही तुम महामोहयन्त्र, महाभूतों आदि को बनाती हो और मनुष्यों सहित सारी सृष्टि बनाती हो।।८-१५।।

यथा रङ्गरव्यर्कदृष्टिष्वकस्मा-
न्नृणां रूप्यदर्वीकरम्बुभ्रमः स्यात्।
जगत्यत्र तत्तन्मये तद्वदेव
त्वमेकैव तत्तन्निवृत्तौ समस्तम्॥१६॥
महाज्योतिराकारसिंहासनं य-
त्स्वकीयान् सुरान् वाहयस्युग्रमूर्त्ते।
अवष्टभ्य पद्भ्यां शिवं भैरवञ्च
स्थिता तेन मध्ये भवत्येव मुख्या॥१७॥
कुयोगासने योगमुद्राभिनीतिः
कुगोमायुपोतस्य बालाननञ्च।
जगन्मातरादृक्तवापूर्वलीला
कथङ्कारमस्मद्विधैर्देवि गम्या॥१८॥

विशुद्धापरा चिन्मयी स्वप्रकाशा-
मृतानन्दरूपा जगद्व्यापिका च ।
तवेदृग्विधा या निजाकारमूर्तिः
किमस्माभिरन्तर्हृदि ध्यायितव्या ॥१९॥
महाघोरकालानलज्वालजाला-
हिमात्यन्तवासा महाट्टाट्टहासा ।
जटाभारकाला महामुण्डमाला
विशाला त्वमीदृङ्मया ध्यायसेऽम्ब॥२०॥
तपो नैव कुर्वन् वपुः खेदयामि
व्रजन्नापि तीर्थं पदे खञ्जयामि ।
पठन्नापि वेदान् जनिं यापयामि
त्वदंघ्रिद्वयं मङ्गलं साधयामि ॥२१॥
तिरस्कुर्वतोऽन्यामरोपासनार्चे
परित्यक्तधर्माध्वरस्यास्य जन्तोः ।
त्वदाराधनान्यस्तचित्तस्य किं मे
करिष्यन्त्यमी धर्मराजस्य दूताः ॥२२॥
न मन्ये हरिं नो विधातारमीशं
न वह्निं न चार्कं न चेन्द्रादिदेवान् ।
शिवोदीरितानेकवाक्यप्रबन्धै-
स्त्वदर्चाविधानं विशत्वम्ब मत्याम् ॥२३॥

जैसे किसी मनुष्य को करकमल के वास्तविक कमल होने का भ्रम होता है, इसी प्रकार जो जगत् है, वह भ्रम है। तुम्हीं इस भ्रम का निवारण करती हो। आपके महाज्योतिर्मय सिंहासन पर आपकी उग्र मूर्ति को देवगण वहन करते हैं और तुम शिव और भैरव की छाती पर पाँव रखकर उनके बीच में मुख्य होती हो।

तुम कुयोगासन में योगमुद्रा, कुगोमायुपोत का बल हो। हे जगन्माते! तुम्हारी जीभ लपलपाती है। तब तुम्हें मैं किस प्रकार से जान सकता हूँ। तुम विशुद्ध, परा, चिन्मयी, स्वप्रकाश के अमृतानन्दरूपा हो, जगद्व्यापिका हो।

तुम्हीं अपनी मूर्ति को देख सकती हो, मैं अपने हदय में उसे कैसे देख सकता हूँ। तुम महाघोर कालानल के ज्वालाजालरूपी वस्त्र से घिरी हो। घोर अट्टहास कर रही हो। तुम्हारा विशाल जटाभार है। महामुण्डों की माला है। हे माते! तुम्हारे इस रूप का मैं ध्यान करता हूँ।

मैंने तप करके शरीर को कष्ट नहीं दिया। लंगड़ा होने से तीर्थ भी नहीं कर सका। मैंने वेदों का पाठ नहीं किया; किन्तु तुम्हारे मंगलमय चरणयुगल का ध्यान करता हूँ। उपासना-अर्चन के लिये अग्निस्थापन नहीं करता। जो धर्माध्वर हैं, उन्होंने मेरा त्याग कर दिया है। मेरा चित्त केवल तुम्हारी आराधना में लगा रहता है। तब यमदूत मेरा क्या बिगाड़ लेंगे? मुझे न हरि प्रिय हैं, न विधाता, न शिव, न अग्नि, न चन्द्र, न देवता। शिव के द्वारा उदीरित तुम्हारे सम्बन्ध में वाक्यप्रबन्ध अर्चाविधान ही मुझे प्रिय हैं।

नरा मां विनिन्दन्तु नाम त्यज-
द्वान्थवा ज्ञातयः सन्त्यजन्तु ।
यमीया भटा नारके पातयन्तु
त्वमेका गतिर्मे त्वमेका गतिर्मे ॥२४॥
महाकालरुद्रोदितस्तोत्रमेतत्
सदा भक्तिभावेन योध्येति भक्तः ।
न चापन्न शोको न रोगो न मृत्यु-
र्भवेत्सिद्धिरन्ते च कैवल्यलाभः ॥२५॥
इदं शिवायाः कथितं सुधाधाराह्वयं स्तवम् ।
एतस्य सतताभ्यासात्सिद्धिः करतले स्थिता ॥२६॥
एतत्स्तोत्रञ्च कवचं पद्यं त्रितयमप्यदः ।
पठनीयं प्रयत्नेन नैमित्तिकसमर्हणे ॥२७॥
सौम्येन्दीवरनीलनीरदघटाप्रोद्दामदेहच्छटा-
लास्योन्मादनिनादमङ्गलचयैः श्रोण्यन्तदोलज्जटा ।
सा काली करवालकालकलनाहस्त्वश्रियं चण्डिका ॥२८॥
काली क्रोधकरालकालभयदोन्मादप्रमोदालया
नेत्रोपान्तकृतान्तदैत्यनिवहा प्रोद्दामदेहाभया ।
पायाद्वो जयकालिका प्रवलिका हूङ्कारघोरानना
भक्तानामभयप्रदा विजयदा विश्वेशसिद्धासना ॥२९॥
करालोन्मुखी कालिका भीमकान्ता
कटिव्याघ्रचर्मावृता दानवान्ता ।
हूं हूं कङ्मडीनादिनी कालिका तु
प्रसन्ना सदा नः प्रपन्नान् पुनातु ॥३०॥

इति श्रीमहाकालसंहितायां महाकालरुद्रविरचित
सुधाधाराह्वयकालीस्तोत्रम्

नर मेरी निन्दा करते हैं, बान्धव मेरा नाम भी नहीं लेते, जाति ने बहिष्कृत कर दिया है, यमराज के दूत चाहे मुझे नरक में डाल दें तो भी मैं नहीं डरता; क्योंकि मेरी गति एक तुम्हीं हो, गति एक तुम्हीं हो।

महाकाल रुद्र द्वारा कथित इस स्तोत्र का पाठ जो भक्तिभाव से करता है, उसे न विपत्ति, न शोक, न रोग, न मृत्युभय होता है। अन्त में वह कैवल्यलाभ करता है। यह शिव द्वारा कथित सुधाधारामय स्तोत्र है। सर्वदा इसके अभ्यास से सिद्धियाँ करतलगत रहती हैं।

इस स्तोत्र और तीन कवचपद्यों का पाठ नैमित्तिक कार्यों में प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। महाकाली की देहच्छटा सौम्य, इन्दीवर, नीले मेघ की घटा के समान है। लास्य, उन्माद, निनाद मंगलकारक है। श्रोणी और जटा सुन्दर है। ऐसी काली काल को करवाल से खण्डित करती है। चण्डिका श्री देती है।

काली के क्रोध से कराल काल भय से पागल हो जाता है। ये आनन्द के आलय हैं। इनकी आँखों से कृतान्त दैत्य भाग जाते हैं। प्रोद्दाम देह अभयप्रद है। दोनों पैर जयकालिकाप्रवलिका हैं।

इनके विकराल मुख से जो हुंकार निकलता है, वह भक्तों को अभयप्रद है और विजयप्रदायक है। ये विश्वेश के सिद्ध आसन पर विराजमान हैं। करालोन्मुखी कालिका भीमकान्ता हैं। इनकी कटि में बाघम्बर है। ये दानवों का अन्त करती हैं। हूं हूं कड्मडी नादिनी कालिका प्रसन्न होकर हम शरणागतों की रक्षा सर्वदा करें।।२४-३०।।

◆

नायिकाकवचम्

उन्मत्तभैरव उवाच—

शृणु कल्याणि मद्वाक्यं कवचं देवदुर्लभम् ।
यक्षिणीनायिकानान्तु संक्षेपात्सिद्धिदायकम् ।।१।।
ज्ञानमात्रेण देवेशि सिद्धिमाप्नोति निश्चितम् ।
यक्षिणी स्वयमायाति कवचज्ञानमात्रतः ।।२।।
सर्वत्र दुर्लभं देवि डामरेषु प्रकाशितम् ।
पठनाद्धारणान्मर्त्यो यक्षिणीं वशमानयेत् ।।३।।
कवचस्य ऋषिर्गर्गो गायत्रीच्छन्द ईरितम् ।
देवता यक्षिणी देवी सर्वसिद्धिप्रदायिनी ।।४।।
साक्षात्सिद्धिसमृद्ध्यर्थे विनियोगः प्रकीर्तितः ।

उन्मत्तभैरव ने देवी से कहा कि हे कल्याणि! सुनो; मैं देवदुर्लभ कवच का वर्णन करता हूँ। इससे अल्प काल में यक्षिणियाँ और नायिकायें सिद्ध होती हैं। हे देवेशि! इसके ज्ञानमात्र से ही सिद्धि प्राप्त होती है। कवच के ज्ञान होने से ही यक्षिणी स्वयं आती है।

हे देवि! डामर का प्रकाशन सर्वत्र दुर्लभ है। इसके पाठ और इसे धारण करने से यक्षिणी वशीभूत होती है।

इस कवच के ऋषि गर्ग, छन्द गायत्री, देवता सर्वसिद्धिप्रदायिनी यक्षिणी देवी हैं। साक्षात् सिद्धि और समृद्धि के लिये इसका विनियोग होता है।।१-४।।

शिरो मे यक्षिणी पातु ललाटं यक्षकन्यका ।।५।।
मुखं श्रीधनदा पातु कर्णौ मे कुलनायिका ।
चक्षुषी वरदा पातु नासिकां भक्तवत्सला ।।६।।
केशाग्रं पिङ्गला पातु धनदा श्रीमहेश्वरी ।
स्कन्धौ कुलालपा पातु गलं मे कमलानना ।।७।।
किरातिनी सदा पातु भुजयुग्मं जटेश्वरी ।
विकृतास्या सदा पातु महावक्रप्रिया मम ।।८।।
अस्त्रहस्ता पातु नित्यं पृष्ठमुदरदेशकम् ।
भेरुण्डा माकरी देवी हृदयं देवसम्मता ।।९।।
अलङ्कारान्विता पातु मे नितम्बस्थलं दया ।
धार्मिका गुह्यदेशं मे पादयुग्मं सुराङ्गना ।।१०।।
शून्यागारे सदा पातु मन्त्रमातास्वरूपिणी ।
निष्कलङ्का सदा पातु चाम्बुवत्यखिलां तनुम् ।।११।।
प्रान्तरे धनदा पातु निजबीजप्रकाशिनी ।
लक्ष्मीबीजात्मिका पातु निजबीजप्रकाशिनी ।।१२।।
लक्ष्मीबीजात्मिका पातु खड्गहस्ता श्मशानके ।
शून्यागारे नदीतीरे महायक्षेशकन्यका ।।१३।।
पातु मां वरदाख्या मे सर्वाङ्गं पातु मोहिनी ।
महासङ्कटमध्ये तु संग्रामे रिपुसञ्चये ।।१४।।
क्रोधरूपा सदा पातु महादेवनिषेविका ।
सर्वत्र सर्वदा पातु भवानी कुलदायिका ।।१५।।

मेरे शिर की रक्षा यक्षिणी करे। ललाट की रक्षा यक्षकन्या करे। मुख की रक्षा श्रीधनदा करे। मेरे कानों की रक्षा कुलनायिका करे। वरदा आँखों की और भक्तवत्सला नाक की रक्षा करे। पिङ्गला केशाग्र की और महेश्वरी धनदा कन्धों की रक्षा करे।

कमलानना कुलालपा मेरे गले की रक्षा करे। जटेश्वरी किरातिनी मेरी दोनों भुजाओं की रक्षा करे। महावक्रप्रिया विकृतास्या मेरी रक्षा सर्वदा करे। मेरे पीठ और उदरदेश की रक्षा अस्त्रहस्ता करे। देवसम्मता माकरी भेरुण्डा मेरे हृदय की रक्षा करे।

अलंकार-विभूषिता दया मेरे नितम्बस्थल की रक्षा करे। मेरे गुह्य देश की रक्षा धामिका करे। दोनों पैरों की रक्षा सुरांगना करे। मन्त्रमातास्वरूपिणी मेरी रक्षा शून्यागार में करे। निष्कलंका अम्बुवती मेरे सारे शरीर की रक्षा करे। निज बीजप्रकाशिनी धनदा प्रान्तर में मेरी रक्षा करे। निज बीजप्रकाशिनी लक्ष्मीबीजात्मिका मेरी रक्षा श्मशान में करे।

नदी-तट पर, शून्यागार में महायक्षेश की कन्या मेरी रक्षा करे। वरदा मेरे सारे शरीर की रक्षा करे। महासंकट में, संग्राम में, शत्रुमध्य में मोहिनी मेरी रक्षा करे। महादेवनिषेविका क्रोधरूपा सर्वदा मेरी रक्षा करे। भवानी कुलदायिका सर्वत्र सर्वदा मेरी रक्षा करे।।५-१५।।

इत्येतत्कवचं देवि महामन्त्रौघविग्रहम् ।
अस्यापि स्मरणादेव राजत्वं लभतेऽचिरात् ।।१६।।
पञ्चवर्षसहस्राणि स्थिरो भवति भूतले ।
वेदज्ञानी सर्वशास्त्रवेत्ता भवति निश्चितम् ।।१७।।
अरण्ये सिद्धिमाप्नोति महाकवचपाठतः ।
यक्षिणी कुलविद्या च समायाति सुसिद्धिदा ।।१८।।
अणिमा लघिमा प्राप्तिः सुखसिद्धिफलं लभेत् ।
पठित्वा धारयित्वा च निर्जनेऽरण्यमस्तके ।
स्थित्वा जपेल्लक्षमन्त्रमिष्टसिद्धिं लभेन्निशि ।।१९।।
भार्या भवति सा देवी महाकवचपाठतः ।
योगिनां दुर्लभं देवि किमन्यत् साधनादिकम् ।
ग्रहणादेव सिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ।।२०।।

इति वृहद्भूतसन्यानडामरे महातन्त्रे
योगिनीनायिकाकवचं समाप्तम्

हे देवि! यह कवच महामन्त्रौघविग्रह है। इसके स्मरणमात्र से अल्प काल में राजत्व प्राप्त होता है। भूतल पर पाँच हजार वर्षों तक स्थिर रहता है। निश्चित रूप से वह वेदज्ञानी और सर्वशास्त्रवेत्ता हो जाता है।

वन में महाकवच के पाठ से सिद्धि मिलती है। सुसिद्धिदा यक्षिणी कुलविद्या आती है। अणिमा, लघिमा सुखसिद्धि फल प्राप्त होते हैं।

इसका पाठ करके इसे मस्तक पर धारण करके जंगल में स्थित होकर एक लाख जप रात में करने से इष्टसिद्धि मिलती है।

इस कवच के पाठ से यक्षिणी देवी भार्या हो जाती हैं। यह योगियों को दुर्लभ है। तब अन्य साधना की क्या आवश्यकता है? इसके ग्रहणमात्र से ही सिद्धि मिल जाती है। इसमें विचार नहीं करना चाहिये।।१६-२०।।

●

नायिकास्तोत्रम्

अस्याः स्तोत्रं प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय ।
साक्षात्सिद्धिं समाप्नोति योगिनीस्तोत्रपाठतः ॥१॥

उन्मत्तभैरव उवाच—

वन्दे योगिनि योगसिद्धिधनदे बन्धूकपुष्पोज्ज्वले
नानालंकृतिविग्रहे सुरमणि श्रीदेवकन्ये प्रिये ।
दारिद्र्यं हन मे सुखं प्रियप्रदं वाञ्छादिसिद्धिप्रदं
राज्यं मित्रकलत्रपुत्रधनदे मातः समाधेहि मे ॥२॥
तवांघ्रिकमलद्वयं तरुणि देवते दारुणं
महाभयसमाकुलं हर भजामि भूमण्डले ।
कृपां कुरु ममालये सपरिवारदेवैः सह
सदा भव हि भगिनी क्षम कुलापतापं मुदा ॥३॥
त्वमेका योगिनी कन्या पिङ्गला युवती रतिः ।
गौरी विद्याधरी श्यामा प्रसन्ना भव सर्वदा ॥४॥

श्री उन्मत्तभैरव ने कहा कि श्रीनायिकास्तोत्र कहता हूँ, ध्यान से सुनो। इस योगिनीस्तोत्र के पाठ से प्रत्यक्ष सिद्धि मिलती है।

ध्यान—मैं हृदयकमल में नवयुवती सुन्दरी का ध्यान करता हूँ। वह कमलनयना त्रिपुरा योगिनी इच्छानुसार कार्य करती है। हाथों में वर और अभय है। किंकिणी आदि आभूषणों और मालाओं से विभूषित उसका स्वरूप ध्यानकर्ता को धन्य कर देता है।

हे योगिनी-योगसिद्धिरूप धन देने वाली! बन्धूकपुष्प-जैसी उज्ज्वल आभा वाली, विविध अलंकारों से विभूषित शरीर वाली, देवताओं की मणिस्वरूपा हे प्रिय देवकन्या! मेरी दरिद्रता को नष्ट करो। सुखप्रिय पद-वाञ्छादि की सिद्धि प्रदान करो। राज्य, मित्र, परिवार, पुत्र और धनदायिनी हे माते! मुझे कृतार्थ करो।

हे युवती देवि! मैं वन्दना करता हूँ। तुम्हारी कमल जैसी सुन्दर दोनों जाँघें पृथिवी पर व्याप्त करने वाले दारुण भय को दूर करें। परिवारदेवों के साथ मेरे घर पर कृपा करो। सदैव सभी दुःख-कष्टों का निवारण करती रहो।

तुम अकेली योगिनी कन्या, पिगंला, युवती, रति, गौरी, विद्याधरी और श्यामा हो। मुझ पर सदा प्रसन्न रहो।।१-४।।

त्वं सन्ध्या खेचरी विद्या यक्षिणी भूतिनी प्रिया ।
त्वमेका पातु मां धात्री स्वर्णपात्रकराम्बुजा ।।५।।
हिरण्याक्षी विशालाक्षी चपला नागिनी जया ।
प्रसन्ना भव शब्दाख्या कामिनी कामदायिनी ।।६।।
सिद्धिदा कुलमन्त्राणां डाकिनी खेचरी भव ।
नमामि वरदे देवि योगिनीगणसेविते ।।७।।
तवांघ्रियुगलं कान्ते चन्द्रकान्तिसुमालिनी ।
अमले कमले देवि दारिद्र्यदोषभञ्जिनी ।।८।।
वन्दे त्वां मनसा वाचा प्रसन्ना भव सुन्दरि ।
कलिकालकृते देवि खेचरीशतनायिके ।।९।।
धनसिद्धिं देहि शीघ्रं समागच्छ गृहे मम ।
सिद्धिदा विधुराणाञ्च अकालमृत्युनाशिनी ।।१०।।
दशवर्षसहस्राणि स्थिरा भव कुले मम ।
वाक्यसिद्धिप्रदा देवी पद्मरागसुमालिनी ।।११।।

तुम सन्ध्या, खेचरी विद्या, यक्षिणीप्रिया भूतिनी हो। कर-कमलों में स्वर्णपात्र-धारिणी तुम अकेली धात्री हो, मेरी रक्षा करो। तुम हिरण्याक्षी, विशालाक्षी, चपला, नागिनी, जयाकामिनी, कामदायिनी, शब्दाख्या हो। मुझ पर प्रसन्न रहो।

हे कान्ते! तुम्हारी दोनों जाँघें चन्द्रमा की ज्योति में सुशोभित हैं। हे अमले कमले देवि! तुम दरिद्रता के दुःख का नाश कर देती हो। हे कलिकालकृते देवी खेचरी शतनायिके! मैं मन और वचन से तुम्हारी वन्दना करता हूँ। हे सुन्दरि! प्रसन्न हो।

हे अकालमृत्यु का नाश करने वाली और विधुरों को सिद्धि देने वाली, मेरे घर में आओ और शीघ्र धन की सिद्धि प्रदान करो। पद्मराग और सुन्दर मालाओं से सुशोभित हे वाक्सिद्धिदायिनी देवि! मेरे कुल में दश हजार वर्षों तक स्थिर होकर रहो।।५-११।।

सर्वालङ्कारभूषाङ्गी प्रसन्ना भव सर्वदा ।
मायाबीजात्मिका देवी वधूबीजसमाकुले ।।१२।।
सिद्धिद्रव्यं सदा देहि कान्ता भव ममालये ।
विचित्राम्बरशोभाङ्गी नानालङ्कारवेष्टिते ।।१३।।
विम्बारमणिसूर्याभे चन्द्रकान्तिप्रभोज्वले ।
स्मेराननाब्जे कामेशि ममाज्ञापय दुर्लभम् ।।१४।।

कामेशि परमानन्द-राजभोगप्रदायिनी ।
सिद्धिदा वरदा मांता भगिनी वा भव प्रिया ॥१५॥
तवाज्ञाकिङ्करो देवि पूजयाम्यहमादरात् ।
ममाग्रे संस्थिरी भूत्वा सिद्धिदा भव सर्वदा ॥१६॥
कौलिनी गगनस्था त्वं मम पार्श्वचरी भव ।
शतवर्षसहस्राणि मामेकं रक्ष सेवकम् ॥१७॥
हृदयाम्भोरुहे ध्यायेत्सुन्दरीं नवयौवनाम् ।
किङ्किणीजालमालाढ्यां त्रिपुरां पद्मलोचनाम् ॥१८॥
वराभयकरां धन्यां योगिनीं कामचारिणीम् ।
त्वामेकां जगतां देवि सिद्धिविद्यां नमाम्यहम् ॥१९॥
ममाङ्गे चैव पार्श्वे त्वं कामिनी भव मे सदा ।
दशवर्षसहस्राणि सिद्धे कमललोचनाम् ॥२०॥
वनिता भव मे नित्यं नित्यं देहं कुरु प्रिये ।
एतत्स्तोत्रं पठेद्विद्वान् ध्यानाभ्याससमन्वितम् ॥२१॥
पक्वान्नं नारिकेलं वा खण्डमिश्रं निवेदयेत् ।
सिद्धिं यच्छन्ति भूतिन्यः स्तोत्रपूजाप्रभावतः ॥२२॥

इति वृहद्भूतसन्यानडामरे महातन्त्रे भैरवीभैरवसंवादे
नायिकास्तोत्रं समाप्तम्

मायाबीज ह्रीं और वधूबीज स्त्रीं से युक्त सभी आभूषणों से सुशोभित हे देवि! मुझ पर सदा प्रसन्न रहो। विलक्षण वस्त्रों से सुशोभित शरीर वाली, विविध अलंकारों से विभूषित हे देवि! मेरे घर में कान्तारूप से रहो और सदा सिद्धिरूपी द्रव्य प्रदान करो। सूर्य-चन्द्र-अग्नि और मणि जैसी कान्ति वाली मुस्कानयुक्त मुखकमले हे कामेशि! मुझे दुर्लभ ज्ञान प्रदान करो।

परमानन्द और राजसुख प्रदान करने वाली हे कामेशि! मेरे लिये सिद्धिदा वरदायिनी माँ या बहन या प्रिया बनो। हे देवि! मैं तुम्हारा सेवक हूँ। आदरपूर्वक तुम्हारी पूजा करता हूँ। मेरे घर में स्थिर होकर सदा सिद्धिदात्री रहो। तुम आकाश में रहने वाली कौलिनी हो। मेरे बगल में रहो और सैंकड़ों, हजारों वर्षों तक मुझ अकेले सेवक की रक्षा करो।

हे जगत् की देवि! तुझ अकेली सिद्धविद्या को मैं नमस्कार करता हूँ। तुम मेरे शरीर में और बगल में सदैव कामिनी-रूप में रहो।

हे कमलनयनी सिद्धे प्रिये! दस हजार वर्षों तक मेरी वनिता रहो। सदैव देहधारी रहो। ध्यान के अभ्याससहित विद्वान् इस स्तोत्र का पाठ करें। पका हुआ अन्न या नारियल या

मिश्रीखण्ड नैवेद्यरूप में निवेदित करे। इस स्तोत्रपूजा के प्रभाव से भूतिनियाँ सिद्धि प्रदान करती हैं।।१२-२२।।

●

गुरुकवचम्

नारद उवाच—

ब्रह्मन् गुरोर्मनुस्तोत्रं यथावदवधारितम् ।
कवचश्रवणे श्रद्धा साम्प्रतं कथ्यतां मम ।।१।।

ब्रह्मोवाच—

श्रीगुरोः कवचं गुह्यं वर्ण्यमानं निबोध मे ।
नाभक्ताय प्रदातव्यं देयं भक्तिमते सदा ।।२।।
श्रीगुरोः कवचस्यास्य ब्रह्मर्षिः परिकीर्तितः ।
छन्दोऽनुष्टुब्देवता च त्रिदेवात्मा गुरुः स्वयम् ।।३।।

नारद जी ने कहा कि हे ब्रह्मन्! गुरुमन्त्र और स्तोत्र का मैंने यथावत् अवधारण कर लिया है। सम्प्रति कवच सुनने की श्रद्धा है। मुझसे कहिये।

ब्रह्मा ने कहा कि श्रीगुरुकवच गुह्य है तथापि कहता हूँ, सुनो। इस कवच को अभक्त को देना मना है। सर्वदा भक्तों को ही यह देय है। इस श्रीगुरुकवच के ऋषि ब्रह्मर्षि, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता त्रिमूर्ति गुरु स्वयं हैं।।१-३।।

शिरो मे सर्वदा पातु गुरुः सर्वाङ्गसुन्दरः ।
उद्यद्भालललाटं मे कृपादृष्टिर्दृशौ मम ।।४।।
मन्दस्मितो मुखं पातु श्रुती च मधुरं वचः ।
हृदयं पातु मन्त्रोक्तिर्वराभयधरः करौ ।।५।।
गुरुपद्मासनं पातु नाभ्यादिचरणान्तिकम् ।
गुरुपादनखज्योत्स्ना सर्वाङ्गं सर्वदावतु ।।६।।
वाग्बीजं मे सदा पातु कामाद्यन्तांश्च खेचरी ।
आनन्दभैरवः पातु सदैवानन्दमन्दिरम् ।।७।।
आनन्दभैरवी पातु ममानन्दं सदैव सा ।
हिंस्रेभ्यः सर्वदा पातु श्रीप्रासादपरो मनुः ।।८।।
परा प्रासादमन्त्रस्तु पातु नित्यं विपद्दशाम् ।
हंसः पीठं पातु चोर्ध्वं सर्वदिक्षु सदावतु ।।९।।
कुलन्तु गुरवः पान्तु पात्वधः कमलासनः ।

ज्ञानं पातु च दिव्यौघा इच्छां सिद्धौघसंज्ञकाः ।
मानवौघाः क्रियां पान्तु श्रीगुरुः सर्वदावतु ॥१०॥

मेरे शिर की रक्षा सर्वांगसुन्दर गुरु सर्वदा करें। मेरे भाल-ललाट की रक्षा कृपा दृष्टि वाली आँखें करें। मेरे मुख की रक्षा मन्द मुस्कान करे। मधुर वचन मेरे कानों की रक्षा करे। वर-अभययुक्त हाथ और मन्त्रोक्ति मेरे हृदय की रक्षा करे। गुरु पद्मासन नाभि से पैरों तक की रक्षा करे। गुरु पाद नख ज्योत्स्ना सर्वदा मेरे सभी अंगों की रक्षा करे।

वाग्बीज और कामबीज आकाश में मेरी रक्षा करे। आनन्दमन्दिर में सदैव मेरी रक्षा आनन्दभैरव करें। मेरे आनन्द में सदैव आनन्दभैरवी मेरी रक्षा करे।

श्रीपराप्रसाद मन्त्र हिंस्र जानवरों के बीच मेरी रक्षा करे। विपत्ति की दशा में पराप्रसाद मन्त्र नित्य रक्षा करे। पीठ, ऊपर और सभी दिशाओं में मेरी रक्षा हंसः करे। कुल की रक्षा गुरु करे। अधोदिशा में मेरी रक्षा कमलासन करे। दिव्यौघ ज्ञान की और सिद्धौघ इच्छा की रक्षा करें। क्रिया की रक्षा मानवौघ करें। श्रीगुरु मेरी रक्षा सदैव करें।।४-१०।।

इतीदं कवचं नित्यं प्रातःकृत्यावसानके ।
यः पठेन्मानवो भक्त्या त्रैलोक्यविजयी भवेत् ॥११॥
मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य देवता च प्रसीदति ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं नात्र कार्या विचारणा ॥१२॥
गुर्वभिधानं कवचमज्ञात्वा क्रियते जपः ।
वृथाश्रमो भवेत्तस्य न सिद्धिर्मन्त्रपूजने ॥१३॥
गुरुपादं पुरस्कृत्य कवचं पठ्यते शुभम् ।
तदा मन्त्रस्य यन्त्रस्य सिद्धिर्भवति नान्यथा ॥१४॥
गुरु-गोप्यञ्च कर्तव्यं न वक्तव्यं कदाचन ।
यस्मै कस्मै न दातव्यं न प्रकाश्यं कदाचन ॥१५॥
दातव्यं भक्तियुक्ताय कुलीनाय विशेषतः ।
त्रैलोक्यदुर्लभञ्चैतद् भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१६॥
सर्वतीर्थफलं येन पठ्यते कवचं गुरोः ।
इति ते कथितं पुत्र सावधानाऽवधारय ॥१७॥

इति ब्रह्मयामले श्रीमद्गुरुकवचं समाप्तम्

प्रातःकृत्य के बाद इस कवच का पाठ जो नित्य भक्तिपूर्वक करता है, वह त्रैलोक्यविजयी होता है। उसे मन्त्रसिद्धि मिलती है, देवता प्रसन्न होते हैं। यह सत्य है, यह सत्य है, इसमें विचार करने की जरूरत नहीं है।

गुरुकवच को जाने विना जो जप किया जाता है, वह व्यर्थ का श्रम होता है। पूजा और मन्त्र सिद्ध होता है। गुरुचरणों का ध्यान करके इस शुभ कवच का जो पाठ करता है, उसके मन्त्र-यन्त्र सिद्ध होते हैं; अन्यथा सिद्धि नहीं मिलती।

गुरु को गुप्त रखना चाहिये। किसी से नहीं कहना चाहिये। इस गुरुकवच को जिस किसी को भी नहीं देना चाहिये। न इसे प्रकाशित करना चाहिये। इसे भक्तियुक्त कुलीन को विशेषतः देना चाहिये। यह कवच त्रैलोक्यदुर्लभ भुक्ति-मुक्तिप्रदायक है। इस गुरुकवच का जो पाठ करता है, उसे सभी तीर्थों का फल प्राप्त होता है।।११-१७।।

●

योषिद्गुरुध्यानम्

यथा—

प्रफुल्लपद्मपत्राक्षीं घनपीनपयोधराम् ।
प्रसन्नवदनां क्षीणमध्यां ध्यायेच्छिवां गुरुम् ।।१।।
पद्मरागसमाभासां रक्तवस्त्रसुशोभनाम् ।
रक्तकङ्कणपाणिञ्च रत्ननूपुरशोभिताम् ।।२।।
स्थलपद्मप्रतीकाशपादपद्मसुशोभिताम् ।
शरदिन्दुप्रतीकाशवक्त्रोद्भासितविग्रहाम् ।
स्वनाथवामभागस्थां वराभयकराम्बुजाम् ।।३।।

एवं ध्यात्वा पूजयेत्।

स्त्रीगुरु का ध्यान—प्रफुल्ल कमल पत्र के समान नयनों वाली, सटे भारी स्तनों वाली, प्रसन्नमुखी, पतली कमर वाली शिवा का ध्यान गुरुरूप में करना चाहिये। पद्मराग के समान आभा वाली, लाल वस्त्रधारिणी, लाल करतल और कंगन वाली, रत्न-नूपुर से शोभित स्थलकमल के समान चरणकमलों वाली, सुशोभित शरद चन्द्रमा-सी आभा वाली, आलोकित मुख वाली, अपने पति के वाम भाग में विराजमान वर और अभययुक्त हाथों वाली स्त्रीगुरु का ध्यान करके पूजन करे।

स्त्रीगुरु-कवचम्

अस्य स्त्रीगुरुकवचस्य स्त्रीगुरुर्देवता चतुर्वर्गप्राप्तये विनियोगः। शिरसि सदाशिव ऋषये नमः। हृदि स्त्रीगुरुदेवतायै नमः।

ईश्वर उवाच—

स्त्रीगुरोः कवचस्यास्य सदाशिवऋषिः स्मृतः ।
तदाख्या देवता प्रोक्ता चतुर्वर्गफलप्रदा ।।१।।

इस स्त्रीगुरुकवच के स्त्रीगुरु देवता हैं। चतुर्वर्ग-प्राप्ति के लिये विनियोग होता है। ऋष्यादि न्यास—शिर में सदाशिव ऋषि को प्रणाम, हृदय में स्त्रीगुरु को प्रणाम।

महादेव ने कहा—स्त्रीगुरुकवच के ऋषि सदाशिव हैं और देवता स्त्रीगुरु हैं। चतुर्वर्ग-फलप्रदायक यह कवच है।।१।।

क्लीं बीजं मेशिरः पातु तदाख्या च ललाटकम्।
क्लीं बीजं चक्षुषोः पातु सर्वाङ्गं मे सदाशिवः ॥२॥
ऐं बीजं मे मुखं पातु ह्रीं जिह्वां परिरक्षतु।
श्रीं बीजं स्कन्धदेशं मे हसखफ्रें भुजद्वयम् ॥३॥
हकारः कण्ठदेशं मे सकारः षोडशं दलम्।
क्षवर्णस्तदधः पातु लकारो हृदयं मम ॥४॥
वकारः पृष्ठदेशञ्च रकारो दक्षपार्श्वकम्।
हूङ्कारो वामपार्श्वञ्च सकारो मेरुमेव च ॥५॥
हकारो मे दक्षभुजं क्षकारो वामहस्तकम्।
मकारश्चांगुलिं पातु लकारः पातु मे नखम् ॥६॥
वकारो मे नितम्बञ्च रकारो जठरं मम।
यीङ्कारः पादयुगलं हसौः सर्वाङ्गकेऽवतु ॥७॥
हसौः लिङ्गञ्च लोमानि केशञ्च परिरक्षतु।
ऐं बीजं पातु पूर्वे मे ह्रीं बीजं दक्षिणेऽवतु ॥८॥
श्रीं बीजं पश्चिमे पातु उत्तरे भूतसम्भवम्।
ऐं पातु चाग्निकोणे च वेदाद्या नैर्ऋतेऽवतु ॥९॥
देव्यम्बा पातु वायव्यां शम्भोः श्रीपादुकान्तथा।
पूजयामि तथा चोर्ध्वं नमश्चाधः सदाऽवतु ॥१०॥

ॐ क्लीं बीज मेरे शिर की रक्षा करे। ॐ क्लीं ही मेरे ललाट की रक्षा करे। आँखों की रक्षा क्लीं बीज करे। सर्वांगों की रक्षा सदाशिव करें। ऐं बीज मेरे मुख की रक्षा करे। ह्रीं मेरे जीभ की रक्षा करे। कन्धों की रक्षा श्रीं बीज करे।

हस्ख्फ्रें दोनों भुजाओं की रक्षा करे। हकार कण्ठदेश की और सकार षोड़श दल की रक्षा करे। क्षवर्ण उसके निचले भाग की और लकार मेरे हृदय की रक्षा करे। पृष्ठदेश की रक्षा वकार करे। रकार दक्ष पार्श्व की रक्षा करे।

हूंकार वाम पार्श्व की एवं सकार मेरुदण्ड की रक्षा करे। हकार दाहिने हाथ की और क्षकार बाँयें हाथ की रक्षा करे। मकार पाँचो अंगुलियों की एवं लकार नखों की रक्षा करे।

वकार मेरे नितम्वों की एवं रकार उदर की रक्षा करे। योंकार दोनों पैरों की और हसौ: सभी अंगों की रक्षा करे। हसौ: लिंग, रोम और केश की रक्षा करे। ऐं वीज पूर्व में एवं ह्रीं बीज दक्षिण में रक्षा करे।

श्रीं बीज पश्चिम में और भूतसम्भव उत्तर में रक्षा करे। ऐं अग्निकोण में एवं ॐ नैर्ऋत्य में मेरी रक्षा करे। अम्वा देवी वायव्य में और श्रीपादुकां मेरी रक्षा ईशान में करे। पूजयामि ऊर्ध्व देश में और नम: अधोदिशा में मेरी रक्षा करे।।२-१०।।

इति ते कथितं कान्ते कवचं परमाद्भुतम् ।
गुरुमन्त्रं जपित्वा तु कवचं प्रपठेद्यदि ।
स सिद्धः स गणः सोऽपि शिवः साक्षान्न संशयः ।।११।।
पूजाकाले पठेद्यस्तु कवचं मन्त्रविग्रहम् ।
पूजाफलं भवेत्तस्य सत्यं सत्यं सुरेश्वरि ।
त्रिसन्ध्यं यः पठेद्देवि स सिद्धो नात्र संशयः ।।१२।।
भूर्जे विलिख्य गुटिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ।
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभां गताः ।।१३।।
विवादे जयमाप्नोति रणे च निर्ऋतेरिव ।
सभायां जयमाप्नोति मम तुल्यो न संशयः ।।१४।।
सहस्रारे भावयन् यस्त्रिसन्ध्यं प्रपठेद्यदि ।
स एव सिद्धलोकेशो निर्वाणपदमीयते ।।१५।।
समस्तमङ्गलं नाम कवचं परमाद्भुतम् ।
यस्मै कस्मै न दातव्यं न प्रकाश्यं कदाचन ।।१६।।
देयं शिष्याय शान्ताय चान्यथा विफलं भवेत् ।
अभक्तेभ्यस्तु देवेशि पुत्रेभ्योऽपि न दर्शयेत् ।।१७।।
इदं कवचमज्ञात्वा विद्याञ्चैव च यो जपेत् ।
स नाप्नोति फलं तस्य परे च नरकं व्रजेत् ।।१८।।

इति ब्रह्मयामले पार्वतीश्वरसंवादे
श्रीमत्स्त्रीगुरुकवचं समाप्तम्

इस प्रकार हे कान्ते! परम अद्भुत कवच को मैंने कहा। गुरुमन्त्र जपकर यदि कवच का पाठ करे तो वह सिद्ध, गणेश, साक्षात् शिव हो जाता है। इस मन्त्रविग्रह कवच का पूजाकाल में पाठ करने से उसे पूजाफल प्राप्त हो जाता है।

हे सुरेश्वरि! यह सत्य है। तीनों सन्ध्याओं में जो इसका पाठ करता है, वह सिद्ध हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। इसे भोजपत्र पर लिखकर सोने के ताबीज में भरकर

जो धारण करता है, उसके दर्शनमात्र से ही वादी निष्प्रभ हो जाता है। विवाद में जय मिलती है। युद्ध में निर्ऋति के समान जीत होती है। सभा में मेरे समान विजय होती है।

सहस्रार में भावना करके तीनों सन्ध्या में जो इसका पाठ करता है, वह सिद्धलोकेश हो जाता है। मरने पर निर्वाण प्राप्त करता है। यह पूरा मंगल नामक कवच परम अद्भुत है। जिस किसी को इसे न दे और न प्रकाशित करे। शान्त शिष्य को प्रदान करे; अन्यथा यह विफल होता है। हे देवेशि! अभक्त पुत्र को भी इसे न बतलावे। इस कवच को जाने विना जो विद्या का जप करता है, उसको जप का फल नहीं मिलता है। उलटे नरकवास होता है।।११-१८।।

◆

गुरुस्तोत्रम्

ज्ञानात्मानं परमात्मानं दानं ध्यानं योगं ज्ञानम्।
जानन्नपि तत्सुन्दरि मातर्न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्।।१।।
प्राणं देहं गेहं राज्यं भोगं मोक्षं शक्तिं पुत्रम्।
मन्ये मित्रं वित्तकलत्रं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्।।२।।
वाणप्रस्थं यतिविधधर्मं पारमहंस्यं भिक्षुकचरितम्।
साधोः सेवा बहुसुरभक्तिर्न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्।।३।।
विष्णोर्भक्तिः पूजनचरितं वैष्णवसेवा मातरि भक्तिः।
विष्णोरिव पितृसेवनयोगो न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्।।४।।
प्रत्याहारं चेन्द्रियजयता प्राणायामं न्यासविधानम्।
इष्टेः पूजा जपतपभक्तिर्न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्।।५।।
काली दुर्गा कमला भुवना त्रिपुरा भीमा बगला पूर्णा।
श्रीमातङ्गी धूमा तारा एता विद्या त्रिभुवनसारा-
न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्।।६।।
मात्स्यं कौर्मं श्रीवाराहं नरहरिरूपं वामनचरितम्।
अवतारादिकमन्यत्सर्वं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्।।७।।
श्रीरघुनाथं श्रीयदुनाथं श्रीभृगुदेवं बौद्धं कल्किम्।
अवतारानिति दशकं मन्ये न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्।।८।।
गङ्गा काशी काञ्ची द्वारा मायायोध्यावन्ती मथुरा।
यमुना रेवा परतरतीर्थं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्।।९।।
गोकुलगमनं गोपुररमणं श्रीवन्दावनमधुपुरमटनम्।
एतत्सर्वं सुन्दरि मातर्न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्।।१०।।

तुलसीसेवा हरिहरभक्तिर्गङ्गासागरसङ्गममुक्तिः ।
किमपरमधिकं कृष्णे भक्तिरेतत्सर्वं सुन्दरि मात-
र्न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ।।११।।
एतस्तोत्रं पठति च नित्यं मोक्षज्ञानी सोऽप्यतिधन्यः ।
ब्रह्माण्डान्तर्यद्यद् ज्ञेयं सर्वं तत्तन्न गुरोरधिकम् ।।१२।।

इति वृहत्पारमहंस्यां संहितायां श्रीशिव-पार्वतीसंवादे
श्रीगुरुस्तोत्रं समाप्तम्

ज्ञानात्मा, परमात्मा, दान, ध्यान, योग, ज्ञान और त्रिपुरसुन्दरी माता का ज्ञान गुरु से अधिक नहीं है, गुरु से अधिक नहीं है। मित्र, वित्त, पत्नी गुरु से श्रेष्ठ नहीं है, गुरु से श्रेष्ठ नहीं है।

वानप्रस्थ, यतिधर्म, परमहंस, बौद्धभिक्षुकचरित, साधुसेवा, अनेक देवताओं की भक्ति—इनमें कोई गुरु से श्रेष्ठ नहीं है, गुरु से श्रेष्ठ नहीं है।

विष्णु की भक्ति, पूजन, चरित, वैष्णवसेवा, माता की भक्ति, विष्णु के समान सेव्य में से कोई भी गुरु से श्रेष्ठ नहीं है, गुरु से श्रेष्ठ नहीं है।

प्रत्याहार, इन्द्रियजयता, प्राणायाम, न्यासविधान, इष्टपूजन, जप, तप, भक्ति में से कोई भी गुरु से श्रेष्ठ नहीं है, गुरु से श्रेष्ठ नहीं है। काली, दुर्गा, कमला, भुवनेश्वरी, त्रिपुरा, भीमा, बगला, पूर्णा, श्री, मातंगी, धूमावती, तारा—सभी विद्यायें त्रिभुवनसार हैं तथापि इनमें से कोई भी गुरु से श्रेष्ठ नहीं है, गुरु से बढ़कर नहीं है।

मत्स्य, कूर्म, नरसिंह, वामन आदि अन्य सभी अवतार गुरु से बढ़कर नहीं है, गुरु से बढ़कर नहीं है। श्रीरघुनाथ राम, श्रीयदुनाथ कृष्ण, श्रीपरशुराम, बुद्धदेव, कल्कि—इन दश अवतारों में से कोई भी गुरु से बढ़कर नहीं है; कोई भी गुरु से श्रेष्ठ नहीं है।

गंगा, काशी, कांची, द्वारका, हरिद्वार, अयोध्या, अवन्ती, उज्जैन, मथुरा, यमुना, रेवा आदि तीर्थों में से कोई भी गुरु से बढ़कर नहीं है; गुरु से श्रेष्ठ नहीं है। गोकुलगमन, गोपुररमण, श्रीवृन्दावन, मथुरा, अयोध्या, अटन—ये सभी तथा सुन्दरी माता गुरु से श्रेष्ठ नहीं हैं; गुरु से बढ़कर नहीं हैं।

तुलसीसेवा, हरिहरभक्ति, गंगासागरसंगम, मुक्ति, परम अधिक कृष्ण भक्ति—ये सभी सुन्दरि माते! गुरु से बढ़कर नहीं हैं; गुरु से श्रेष्ठ नहीं हैं। जो मोक्ष ज्ञानी इन स्तोत्र का पाठ नित्य करता है, वह धन्य है। इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी ज्ञेय हैं, वे सभी गुरु से बढ़कर नहीं हैं।

◆

श्रीहनूमत्स्तोत्रम्

ईश्वर उवाच—

अत्युत्कटप्रकटितातुलधैर्यवर्यः
श्रीरामकार्यकरणे प्रथितैकवीरः ।
गत्वा विलंघ्य गतवारिधिवारितीरः
श्रीमानसौ जयति वायुसुतो हनूमान् ॥१॥
यो जातमात्रसमये बलवान् गभस्ते-
र्विम्बं निरीक्ष्य फलमित्यविचार्य सम्यक् ।
जग्राह पाणियुगले सहसा मुमोच
श्रीमानसौ जयति वायुसुतो हनूमान् ॥२॥
विभ्रत्सदा वपुषि वज्रचये बलीयान्
तेजः सहायसमयं प्रकटीचकार ।
लङ्कां ददाह दशवक्त्रसभासमक्षं
श्रीमानसौ जयति वायुसुतो हनूमान् ॥३॥
रामानुजे महति यो जगतीतलेऽस्मिन्
शक्त्या हते रणमुखे दशकन्धरेण ।
आनीय भेषजमजीवयदेवमाशु
श्रीमानसौ जयति वायुसुतो हनूमान् ॥४॥
मुद्रां समर्प्य रघुनन्दननामचिह्नां
चूडामणिं जनकराजसुतागतं तम् ।
आनीय राममभिवेदयतिस्म वीरः
श्रीमानसौ जयति वायुसुतो हनूमान् ॥५॥
निघ्नन्नशोकवनभूरुहरक्षपालान्
भञ्जन् महाबहुपशूंश्च शतं सहस्रान् ।
भुञ्जन् फलानि विविधानि हि वीक्ष्य सीतां
श्रीमानसौ जयति वायुसुतो हनूमान् ॥६॥
कारागृहे मनसि चिन्तित एव यस्मिन्
बद्धो जनो हि लभते तत आशु मोक्षम् ।
क्रव्यादयक्षपवनादिभयापहारी
श्रीमानसौ जयति वायुसुतो हनूमान् ॥७॥
तुभ्यं नमः सकलमङ्गलदायकाय

तुभ्यं नमोऽस्तु पवनानलसम्भवाय ।
तुभ्यं नमोऽस्तु जगतां परमोपकर्त्रे
सर्वार्तदु:खहरणाय नमो नमस्ते ॥८॥

महादेव ने कहा कि अति उत्कट प्रकटित अतुल धैर्यवर्य श्रीराम-कार्य करने के लिये एक वीर प्रकट हुए। समुद्र के तट पर जाकर उसे पार करने वाले वायुसुत हनुमान की जय हो।

जिन्होंने जन्म लेते ही वलवान सूर्यविम्ब को देखकर फल समझकर दोनों हाथों से पकड़कर मुख में डाल लिया, ऐसे श्रीमान् हनुमान की जय हो।

जिनका वज्रदेह बलयुक्त है, सहायता के समय तेज प्रकट कर जिन्होंने लंका-दहन किया और रावण की सभा देखती रह गयी, ऐसे श्रीमान् वायुपुत्र हनुमान की जय हो।

महान् लक्ष्मण को मेघनाद ने युद्ध में शक्ति से मारा और वे धरती पर गिर पड़े तब सञ्जीवनी बूटी लाकर जिन्होंने जिलाया, ऐसे श्रीमान् वायुपुत्र हनुमान की जय हो।

सीता को राममुद्रिका देकर उनसे चूड़ामणि लेकर जिन्होंने श्रीराम को निवेदित किया, ऐसे श्रीमान् वायुपुत्र हनुमान की जय हो।

अशोकवाटिका के शत-सहस्र रक्षकों को मारकर जिन्होंने विविध फलों को खाया, ऐसे श्रीमान् वायुपुत्र की जय हो।

कारागृह में वन्दी, बन्धनयुक्त होने पर जो मन ही मन इस स्तोत्र का चिन्तन करता है, वह तत्काल कारागृह से छूट जाता है। ये क्रव्याद, यक्ष और पवनादि के भय को दूर करते हैं। ऐसे श्रीमान् वायुपुत्र हनुमान की जय हो।

हे सकल मंगलदायक! तुमको प्रणाम है। पवन अनलसम्भूत तुझको प्रणाम है। जगत् का परम उपकार करने वाले तुझको नमस्कार है। सभी दु:खों को हरने वाले तुमको प्रणाम है।।१-८।।

इदं हनूमतः स्तोत्रं महापातकनाशनम् ।
संग्रामजयदं पुण्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥९॥
यः पठेत् प्रातरुत्थाय स्नाने वा शयनेऽथवा ।
विषं न बाधते तस्य न तं हिंसन्ति हिंसकाः ॥१०॥
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ।
पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति नारी पत्युः प्रिया भवेत् ॥११॥
रोगी रोगात्प्रमुच्येत बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
दुर्बलो बलमाप्नोति भवेद्वायुसुतोपमः ॥१२॥

विघ्नाः सर्वे पलायन्ते तं दृष्ट्वा नात्र संशयः।
संग्रामे व्यवहारे च विजयस्तस्य जायते।
बन्धनान्मुक्तिमाप्नोति यात्रायां सिद्धिरेव च ॥१३॥

इति श्रीगरुडतन्त्रे हनूमत्कल्पे हनूमत्स्तोत्रं समाप्तम्

यह हनुमत् स्तोत्र महापातकों का नाशक है। संग्राम में विजयदायक देवताओं को भी दुर्लभ है। सवेरे उठकर शय्या पर या स्नान के समय इस स्तोत्र का जो पाठ करता है, उसे विषबाधा नहीं होती; हिसंक पशु उसकी हिंसा नहीं कर सकते।

विद्यार्थी विद्या का लाभ और धनार्थी को धन का लाभ होता है। पुत्रार्थी पुत्र प्राप्त करता है, नारी अपने पति की प्रिया होती है। रोगी निरोग होता है।

वन्दी जेल से छूट जाता है। दुर्बल बल प्राप्त करता है और हनुमान के समान बलवान हो जाता है। सभी विघ्न उसे देखते ही दूर भाग जाते हैं। संग्राम और व्यवहार में उसकी विजय होती है। बन्धन से छूट जाता है। यात्रा में सिद्धि मिलती है।।९-१३।।

●

मातङ्गीस्तवः

ईश्वर उवाच—

आराध्य मातश्चरणाम्बुजे ते ब्रह्मादयो विश्रुतकीर्तिमापुः ।
अन्ये परं वा विभवं मुनीन्द्राः परां श्रियं भक्तिभरेण चान्ये ॥१॥
नमामि देवीं नवचन्द्रमौलेर्मातङ्गिनीं चन्द्रकलावतंसाम् ।
आम्नायवाग्भिः प्रतिपादितार्थं प्रबोधयन्तीं प्रियमादरेण ॥२॥
विनम्रदेवासुरमौलिरत्नैर्विराजितं ते चरणारविन्दम् ।
भजन्ति ये देवि महीपतीनां व्रजन्ति ते सम्पदमादरेण ॥३॥
मातङ्गिनीनां गमने भवत्याः शिञ्जीनमञ्जीरमिदं भजे ते ।
मातस्त्वदीयं चरणारविन्दमकृत्रिमाणां वचनं विशुद्धम् ॥४॥
पादात्पदं शिञ्जितनूपुराभ्यां कृतार्थयन्तीं पदवीं पदाभ्याम् ।
आस्फालयन्तीं कलवल्लकीं तां मातङ्गिनीं सद्धृदयां धिनोमि ॥५॥

ईश्वर ने कहा कि हे माते! ब्रह्मादि देवों ने आपके चरणकमलों की आराधना करके विख्यात यशलाभ किया। अन्य श्रेष्ठ मुनियों ने परमा मन्त्रशक्ति और दूसरे लोगों ने भक्ति के प्रभाव से अपार ऐश्वर्य प्राप्त किया।

जिन्होंने वेदवाक्यों द्वारा प्रमाणित अर्थ को आदरपूर्वक अपने प्रिय भक्तों को बताकर

प्रबुद्ध किया, जिनके मस्तक पर शशिकला सुशोभित हैं, उन्हीं नव चन्द्रचूड भगवान् शिव की कामिनी मातंगिनी देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

हे देवि! आपके चरणकमल प्रणाम करते हुए देवताओं के मुकुटों के रत्नों से सदै सुशोभित रहते हैं। जो उनकी भक्ति करते हैं, वे राजाओं के ऐश्वर्य को ससम्मान प्राप करते हैं।

गजगामिनी सुन्दर रमणियों के समान चलने के समय आपके चरणकमलों के नूपुरों की जो मधुर ध्वनि होती है, उसकी मैं वन्दना करता हूँ। उसके प्रभाव से भक्तों के मुख से विशुद्ध वचन ही निकलते हैं।

एक पग के बाद दूसरा पग रखते समय दोनों चरणकमलों के नूपुरों की ध्वनि से आप जब पथ को कृतार्थ करती हैं तब आप सुन्दर वीणावादन करती प्रतीत होती हैं। उन्हीं सहृदया आप मातंगिनी की मैं वन्दना करता हूँ।।१-५।।

लीलांशुकाबद्धनितम्बविम्बां तालीदलेनार्पितकर्णभूषाम् ।
माध्वीसदाघूर्णितनेत्रपद्मां घनस्तनीं शम्भुवधूं नमामि ।।६।।
तडिल्लताकान्तमलक्ष्यभूषं चिरेण लक्ष्यं नवलोमराज्या ।
स्मरामिं भक्त्या जगतामधीशे बलित्रयाङ्कं तव मध्यमम्ब ।।७।।
नीलोत्पलानां श्रियमावहन्तीं कान्त्या कटाक्षैः कमलाकराणाम् ।
कदम्बमालाञ्चितकेशपाशां मतङ्गकन्यां हृदि भावयामि ।।८।।
ध्यायेयमारक्तकपोलविम्बं विम्बाधरन्यस्तललामरम्यम् ।
आलोलनीलालकमायताक्षं मन्दस्मितं ते वदनं महेशि ।।९।।
स्तुत्यानया शङ्करधर्मपत्नीं मातङ्गिनीं वागधिदेवतां ताम् ।
स्तुवन्ति ये भक्तियुता मनुष्याः परां श्रियं नित्यमुपाश्रयन्ति ।।१०।।

इति रुद्रयामले श्रीमातङ्गीस्तोत्रम्

जिनके नितम्ब-विम्ब विलासपूर्ण पट्ट वस्त्र से सुशोभित हैं। कानों में ताडपत्र के आभूषण हैं, माध्वी मद्यपान से दोनों नेत्रकमल चञ्चल हैं, उन्हीं पीनपयोधरा शिवप्रिया को मैं प्रणाम करता हूँ।

हे जगदीश्वरि! आपकी कटि विद्युल्लता के समान तेजयुक्त है। वह इतनी सूक्ष्म है कि आभूषण तक तो वह दिखाई नहीं देती। केवल कृष्णवर्ण रोमपंक्ति की ही सहायता से बड़ी देर में दृष्टिगत हो पाती है। हे माँ! तीन घेरे वाली आपकी उस कटि को मैं भक्तिपूर्वक स्मरण करता हूँ।

जो अपने शरीर की आभा से नीलकमलों की छटा का स्मरण करती है। जिनकी

कटाक्ष भौंरों की शोभा प्रस्तुत करते हैं और जिनके केशपाश कदम्बपुष्पों की माला से सुशोभित हैं, उन्हीं मतंगपुत्री का मैं अपने हृदय में ध्यान करता हूँ।

हे महेशि! आपके कपोल रक्तवर्ण के हैं, ओष्ठ रमणीय रत्नों के समान हैं, सुन्दर केशों की अलकें मुखमण्डल के चारो ओर चञ्चलतापूर्वक झूल रही हैं, मुख पर मन्द मुस्कान हैं; आपके ऐसे मुखमण्डल का मैं ध्यान करता हूँ।

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक वाणी की अधिष्ठात्री शिव की पत्नी देवी मातंगी की स्तुति इस स्तोत्र से करते हैं, उन्हें निरन्तर श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं।।६-१०।।

●

धूमावतीस्तोत्रम्

ईश्वर उवाच—

प्रातर्षा स्यात्कुमारी कुसुमकलिकया जापमालां जपन्ती
मध्याह्ने प्रौढरूपा विकसितवदना चारुनेत्रा निशायाम् ।
सन्ध्यायां वृद्धरूपा गलितकुचयुगा मुण्डमालां वहन्ती
सा देवी देवदेवी त्रिभुवनजननी चण्डिका पातु युष्मान् ।।१।।
बद्ध्वा खट्वाङ्गकोटौ कपिलवरजटामण्डलं पद्मयोनेः
कृत्वा दैत्योत्तमाङ्गैः स्रजमुरसि शिरःशेखरं ताक्ष्यर्पक्षैः ।
पूर्णं रक्तैः सुराणां यममहिषमहाश्रृङ्गमादाय पाणौ
पायाद्वो वन्द्यमानः प्रलयमुदितया भैरवः कालरात्र्या ।।२।।

जो प्रातःकाल में कुमारी मूर्ति धारण कर फूलों की कलियों से निर्मित जपमाला से जप करती हैं, मध्याह्न काल में प्रौढ़स्वरूप में प्रसन्न मुख से विराजमान रहती हैं, रात्रिकाल में सुन्दर आँखों वाली दिखाई देती हैं और सन्ध्याकाल में वृद्धारूप में जिनके पयोधर लटक जाते हैं, जिनके गले में मुण्डों की माला है; ऐसी त्रिभुवनजननी देवदेवी चण्डिका मेरी रक्षा करें।

जो प्रलयकाल में खट्वांग के अगले भाग में पिङ्गल वर्ण के ब्रह्मा के श्रेष्ठ जटामण्डल को बाँधकर, मस्तक पर दैत्यों के मुण्डों की माला बनाकर, गरुड़ के पंखों से शिर का मुकुट धारण कर विराजते हैं, यमराज के महिष के विशाल सिंग को देवताओं के रक्त से लिप्त कर अपने हाथ में धारण करते हैं तथा प्रलयकाल में आनन्दित होकर कालरात्रि जिनकी वन्दना करती हैं, वही भैरव सबकी रक्षा करें।।१-२।।

चर्वन्ती ग्रन्थिखण्डं प्रकटकटकटाशब्दसङ्घातमुग्रं
कुर्वाणा प्रेतमध्ये ककह-कह-कहा-हास्यमुग्रं कृशाङ्गी ।

नित्यं नृत्यप्रमत्ता डमरुडिमडिमान् स्फारयन्ती मुखाब्जं
पायान्नश्चण्डिकेयं झझम-झम-झमा जल्पमाना भ्रमन्ती ।।३।।
टण्टट्-टण्टट्-टटण्टा प्रकट-मटमटानादघण्टा वहन्ती
स्फें स्फें स्फेंकारकारा टकटकितहसा दन्तसङ्घट्टभीमा ।
लोलं मुण्डाग्रमाला ललहलहलहा लोललोलोग्ररावं
चर्वन्ती चण्डमुण्डं मटमटमटितं चर्वयन्ती पुनातु ।।४।।

तीव्र कट-कट शब्द करती हुई नरास्थि को चबाती हुई प्रेतों के बीच में जो क्षीणकाया भयंकर ध्वनि करती है और ककह-कहकह शब्द से उग्र अट्टहास करती है, डमरू की डिम-डिम ध्वनि करती हुई अपने मुखकमल को फैलाती हैं, प्रतिक्षण नृत्य करती हैं और इधर-उधर दौड़ती हुई झझम-झम-झम शब्द से बड़बड़ाती रहती हैं; ऐसी चण्डिका हमारी रक्षा करें।

जो टण्टट्-टण्टट्-टटण्टा-मटमटा के घोर नादपूर्वक स्फ्रें स्फ्रें स्फ्रें रव करती है, दाँतों की पीसती हुई भयानक रूप से टक-टक शब्द से अट्टहास करती हैं, ललह-लह-लह शब्द से उग्र रव करती हुई तृष्णायुक्त भाव से चण्ड-मुण्ड को चबाती हैं और मटमट शब्द से प्रचण्ड मुण्ड को चबाती हैं, वह देवी हम सबको पवित्र करे।।३-४।।

वामे कर्णे मृगाङ्कं प्रलयपरिगतं दक्षिणे सूर्यविम्बं
कण्ठे नक्षत्रहारं नरविकटजटाजूटके मुण्डमालम् ।
स्कन्धे कृत्वोरगेन्द्रध्वजनिकरयुतं ब्रह्मकङ्कालभारं
संहारे धारयन्ती मम हरतु भयं भद्रदा भद्रकाली ।।५।।
तैलाभ्यक्तैकवेणी त्रपुमयविलसत्कर्णिकाक्रान्तकर्णा
लोहेनैकेन कृत्वा चरणनलिनकामात्मनः पादशोभाम् ।
दिग्वासा रासभेन ग्रसति जगदिदं या जवाकर्णपूरा
वर्षिण्यूर्ध्वप्रवृद्धा ध्वजविततभुजा सासि देवी त्वमेव ।।६।।

जो प्रलयकाल में बाँयें कान में चन्द्रमा, दाँयें कान में सूर्यमण्डल, कण्ठ में नक्षत्रों का हार, प्रकाण्ड विकट जटाजूट में मुण्डमाला और कन्धे पर नागेन्द्रध्वजसमूह एवं ब्रह्मकंकालभार धारण किये रहती हैं, वही कल्याणदायिनी भद्रकाली हमारे भय को दूर करें।

जिनके शिर पर एक वेणी सदा तैलाक्त रहती है, कानों में शीशे की कर्णिका है, एक लौहाभूषण द्वारा जो अपने चरणकमलों को शोभायुक्त करती हैं, नग्न होकर गर्दभ पर चढ़कर इस जगत् का जो ग्रास करती हैं, जो जवापुष्पों के कर्णपूरों की इधर-उधर वर्षा करती रहती हैं, जो अपनी दीर्घ भुजा को ऊपर उठाकर ध्वजा फहराती हैं, वही देवी आप हैं।।५-६।।

संग्रामे हेतिकृत्तैः सरुधिरदशनैर्यद्भटानां शिरोभिर्माला-
माबध्य मूर्ध्नि ध्वजविततभुजा त्वं श्मशाने प्रविष्टा ।
दृष्ट्वा भूतैः प्रभूतैः पृथुजघनघना बद्धनागेन्द्रकाञ्ची
शूलाग्रव्यग्रहस्ता मधुरुधिरमदाताम्रनेत्रा निशायाम् ॥७॥
दंष्ट्रारौद्रे मुखेऽस्मिंस्तव विशति जगद्देवि सर्वं क्षणार्द्धात्
संसारस्यान्तकाले नररुधिरवसासम्प्लवे धूमधूम्रे ।
काली कापालिकी त्वं शवशयनरता योगिनी योगमुद्रा
रक्ता ऋद्धी कुमारी मरणभयहरा त्वं शिवा चण्डघण्टा ॥८॥

युद्ध में खड्ग से कटे हुए वीरों के रक्तपूर्ण मुण्डों की माला शिर में बाँधकर, भुजा द्वारा ध्वज को फहराती हुई तुम श्मशान में प्रवेश करती हो।

रात्रिकाल में स्थूल जघन, कमर में सर्पों से बनी करधनी, शूलधारी चंचल हाथ, मधु-रुधिरपान से मत्त, आरक्तनेत्रा होकर तुम असंख्य भूतों के साथ घूमती हो।

हे देवि! संग्राम के प्रलयकाल में दंष्ट्राभीषण तुम्हारे इसी मुखमण्डल में आधे क्षण में ही यह सारा विश्व समा जाता है। तुम्हारा यह मुखमण्डल नररक्त-वसा से परिव्याप्त होकर धूम्र वर्ण हो जाता है।

तुम्हीं शवशय्या पर शयन करने वाली कपालिनी काली हो। तुम्हीं रक्ता ऋद्धि, तुम्हीं कुमारी, तुम्हीं मृत्युभयनाशिनी और तुम्हीं शिवा चण्डघण्टा हो।

धूमावत्यष्टकं पुण्यं सर्वापद्विनिवारकम् ।
यः पठेत्साधको भक्त्या
सिद्धिं विन्दति वाञ्छिताम् ॥९॥
महापदि महाघोरे महारोगे महारणे ।
शत्रूच्चाटे मारणादौ जन्तूनां मोहने तथा ॥१०॥
पठेत् स्तोत्रमिदं देवि सर्वत्र सिद्धिभाग्भवेत् ।
देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगाः ॥११॥
सिंहव्याघ्रादिकाः सर्वे स्तोत्रस्मरणमात्रतः ।
दूराद् दूरतरं यान्ति किं पुनर्मानुषादयः ॥१२॥
स्तोत्रेणानेन देवेशि किं न सिध्यति भूतले ।
सर्वशान्तिर्भवेद्देवि चान्ते निर्वाणतां व्रजेत् ॥१३॥

इत्यूर्ध्वाम्नाये धूमावतीकल्पे धूमावत्यष्टकं
स्तोत्रसारं समाप्तम्

धूमावती का यह अष्टक बड़ा कल्याणकारी है। सभी विपत्तियों को दूर करने वाला है। जो साधक भक्ति से इसका पाठ करता है, वह अभीष्ट-सिद्धि को प्राप्त करता है।

महान् विपत्ति में, महाभयानक दशा में, महान् रोग से पीड़ित होने पर, महान् युद्ध होने पर, शत्रु के उच्चाटन में, मारण आदि षट्कर्मों में तथा प्राणियों को मोहित करने में हे देवि! इस स्तोत्र का पाठ करे तो सभी बातों में सफलता मिलती है। देव-दानव-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-पन्नग-सिंह-व्याघ्र आदि सभी इस स्तोत्र के स्मरण करने से ही दूर भाग जाते हैं।

हे देवेशि! इस स्तोत्र से कौन-सी बात सिद्ध नहीं होती। हे देवि! इससे सभी प्रकार की शान्ति होती है और अन्त में मोक्ष मिलता है।।९-१३।।

●

घटस्थापनम्

आगमतत्त्वविलासे यथा राजेश्वरीतन्त्रे शाक्ताभिषेकप्रकरणे घटमित्यनुवृत्तौ—

नातिह्रस्वं नातिदीर्घं मृत्ताम्रस्वर्णनिर्मितम् ।
कामबीजेन सम्प्रोक्ष्य वाग्भवेनैव ताडयेत् ।।
शक्त्या कलशमारोप्य मायया पूरयेज्जलैः ।
मन्त्रेणानेन तीर्थानि देशिकस्तत्र विन्यसेत् ।।
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च ।
सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि जलदा नदाः ।।
ह्रदाः प्रस्रवणाः पुण्याः स्वर्गपातालभूगताः ।
सर्वतीर्थानि पुण्यानि घटे कुर्वन्तु सन्निधिम् ।।
रमाबीजेन जप्तेन पल्लवं प्रतिपादयेत् ।
कूर्चेन फलदानं स्यात् स्त्रीबीजेन स्थिरीकृतिः ।।
सिन्दूरं वह्निबीजेन पुष्पं दद्याच्छवानुना ।
मूलेन दूर्वां प्रणवैः कुर्यादभ्युक्षणं ततः ।।
हूं फट् स्वाहेति मन्त्रेण कुर्याद्दर्भेण ताडनम् ।
विचिन्त्य देवीपीठन्तु तत्रावाह्य प्रपूजयेत् ।।

शक्त्या सौरिति बीजेन। शवानुना इत्यत्र शरानुना इति आगमतत्त्वधृतः पाठः। शरानुना अस्त्रमन्त्रेण इति तदर्थः।

घटस्थापन—आत्मतत्त्वविलास में बताया गया है कि राजराजेश्वरी तन्त्र में शाक्ताभिषेक प्रकरण में घट के प्रसंग में यह निर्देश है कि न बहुत छोटे और न बहुत बड़े मिट्टी, ताँबे

या सोने के घट को लेकर क्लीं से प्रोक्षण करे। ऐं से ताड़न करे। सौः से उसे स्थापित करे। ह्रीं से उसमें जल भरे। तब घट के ऊपर निम्न मन्त्र का पाठ कर उसमें तीर्थों का न्यास करे—

गंगाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च।
सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि जलदा नदाः।।
ह्रदाः प्रस्रवणाः पुण्याः स्वर्गपातालभूगताः।
सर्वतीर्थानि पुण्यानि घटे कुर्वन्तु सन्निधिम्।।

तब रमाबीज श्रीं से घट पर पल्लव रक्खे। हूं से फल रक्खे। स्त्रीं बीज से घट को स्थिर करे। रं बीज से सिन्दूर एवं 'यं' या 'फट्' या 'हसौः' मन्त्र से घट पर फूल चढ़ाये। जिस देवता का पूजन करना हो उसके मूल मन्त्र से घट पर दूर्वा चढ़ाए। प्रणव ॐ से घट का प्रोक्षण करे। हूं फट् स्वाहा मन्त्र से दूर्वा से घट का ताड़न करे।

इसके बाद घट को देवी समझते हुये उसमें पूजनीय देवता का आवाहन करके उसकी पूजा करे।

कवचसंस्कारः

दीपिकाधृततन्त्रान्तरे—

विलिख्य कवचं देवि रक्तसूत्रेण वेष्टयेत्।
वेष्टयित्वा ततो देवि स्वर्णादौ स्थापयेत्ततः।।
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः स्नापयित्वा शुभेऽहनि।
सम्पूज्य देवतारूपां गुलिकां सर्वकामदाम्।
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्राणांस्तत्र नियोजयेत्।।
अन्तर्योनिं ततो ध्यात्वा तत्र स्थापयेद्बुधः।
एषा तु गुलिका देवि कण्ठलग्ना सुखप्रदा।।

कवच-संस्कार—दीपिका में उद्धृत तन्त्रान्तर के अनुसार कवच को लिखकर उसे लाल डोरे से लपेटे। तब सोने आदि के ताबीज में उसे भरे। उस ताबीज को शुभ दिन में पञ्चगव्य और पञ्चामृत से धोये। तान्त्रिक कवच हो तो तान्त्रिक मूल मन्त्र से और पौराणिक कवच हो तो सम्बन्धित द्रव्यशोधक वैदिक मन्त्र से स्नान कराना चाहिये।

इसके बाद इस मन्त्र से उसकी पूजा करे—ॐ देवताकृपायै कवचगुलिकायै नमः। प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र से प्रतिष्ठा करे। उसके बाद तन्त्रोक्त मानसिक योनिमुद्रा के क्रम से मातृकावर्णों की आदिस्वरूपा कुलकुण्डलिनी का ध्यान कर कवच में उसकी स्थापना करे। कवच में देवता की पूजा करे। इस प्रकार शोधित कवच को धारण करने से सुख मिलता है।

यथा यक्षडामरे—

मर्त्यानामुपकाराय त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
भगवान् पुनराचक्षे श्रोत्रादीनां निरूपणम् ॥
हृदयं मूर्तिमास्थाय दृढचित्तः समाहितः ।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥
मनो हत्वेन्द्रियाद्यैश्च सर्वभावेन साधकः ।
पश्यतीति लयं श्रोत्रं नान्यथा शृणुयाद्वचः ॥
सौरे तथा गाणपत्ये दौर्गे शैवे तथैव च ।
भौतिके च मनावास्यहृन्नेत्रं द्योतते यथा ॥
मूलाक्षरे विचारोऽयं मूलानां बीजमुच्यते ।
मनोविचारः कर्तव्यो बीजे सति विषान्विते ॥
बीजत्वेन गता रुद्रहंसी डिण्डिमविद्रुमा ।
पुरी सेन्दुक्रमादत्र कुर्यादास्यादिचिन्तनम् ॥
यमस्त्यागी शुको दण्डी मणिभद्रो घटोकचः ।
भृङ्गिप्रभृतिबीजानां प्राग्वत्कुर्याद्विचारणम् ॥
यत्र यक्षेश्वरो मन्त्रे तत्रैवास्यं प्रधानतः ।
चण्डिकाया अभावेऽत्र विद्युन्नेत्रहृदासवः ॥
ज्योतिःकपर्दीखद्योतो ग्रासिनी च सुरान्तकः ।
वैवस्वतः केतुनाम शिखी प्राणप्रहारिणी ॥
कस्मिन्नुल्कामुखी जालन्धरी चण्डयुगान्तकौ ।
किङ्करी पिशिताक्षी सुकिन्नरश्च मनोहरी ॥
ध्वांक्ष्यं वैतानिकं फेत्कारिणी शूलपयोधरौ ।
चतुर्विंशतिबीजानि मन्त्रे स्युर्यक्षडामरे ॥
एभिरशेषमन्त्राणां हृन्नेत्रवदनानि च ।
मनवोऽस्य परिज्ञेयाः सर्वतन्त्रेषु गोपिताः ॥

तथा मूलार्णं मुखमादिष्टं हृदयं स्वरसंज्ञकम्। मूलार्णं प्रणवं मन्त्रस्य मुखमित्यर्थः। हृदयं स्वरशक्तयः इति षोडशाक्षरात्मिकाः शक्तयो मन्त्रस्य हृदयमित्यर्थः। तथाच

मूलार्णमास्यमाख्यं तं हृदयं स्वरशक्तयः ।

स्वरशक्तयो वक्तव्याः। अथ प्रणवाभावे तत् स्वरूपबीजानां विशेषमाह तत्रैव—

आदिमध्यावसानेषु पूर्वाभावे तथोत्तरम् ।
कीर्त्याख्या कालवक्त्रेण महाकालेन साधितम् ॥
तदनादि पञ्चरश्मि सृष्टिस्थित्यव्ययं विषम् ।
शूलिन्या सहितो गुह्यश्चण्डीशोऽग्नीन्दुविन्दुमान् ।
एतद्विष्णुप्रियाबीजं जगन्मान्यं जगत्प्रियम् ॥

आदिमध्यावसानेषु इति मन्त्रस्यादौ मध्ये चान्ते वा प्रणवस्थितिश्चेत्तदा तदैव तन्मुखमित्यर्थः। पूर्वाभावे यथोत्तरमिति प्रणवाभावे तत्परं विधानं यथेति कीर्त्याख्या कालवक्त्रेणेति अकार-उकारेण, महाकालेनेति मकारेण साधितं तदनादि पञ्चरश्मि इति तदेव प्रणवम्।

एतद्विष्णुप्रियाबीजं श्रीबीजमिति सार्द्धद्वयश्लोकेनान्वयः। तथा च यस्मिन् मन्त्रे श्रीबीजादिकमस्ति तत्र तदेव मुखमिति प्रणवस्वरूपत्वात्, अतः क्रमेण मन्त्रमुखात्मकबीजान्याह तत्रैव श्रीबीजमुक्तम्। तत्परं यथा—

क्षतजं व्योमवक्त्रञ्च चण्डोग्रेन्द्वादिभूषितम् ।
आर्द्रं रौद्रञ्च भूतञ्च बीजं प्राथमिकं स्मृतम् ॥

क्षतजं रेफः, व्योमवक्त्रं हकारः, चण्डोग्रा ईकारः, इन्द्वादिभूषितमिति इन्दुनादाभ्यां भूषितं मायाबीजम्।

क्रोधीशं रक्तगं धूम्र-भैरव्येन्द्वाद्यलंकृतम् ।
पितृभूवासिनीबीजं कालेयं पलभोजनम् ।

क्रोधीशं ककारं, रक्तगं रेफगं धूम्रभैरवी ईकारः, विन्दुनादयोगेन कालीबीजम्।

नादविदुसमायुक्तां समादायोग्रभैरवीम् ।
भौतिकं वाग्भवं बीजमृद्धिबुद्धिविवर्द्धनम् ॥

उग्रभैरवी ऐकारः, तेन वाग्भवबीजम् इत्यर्थः।

फडस्त्रञ्च प्रसिद्धं स्यात्काल्याग्निव्यापकांकुशः ।
शिरः स्वाहा द्विठो वह्निजाया ज्वलनवल्लभा ॥
इन्द्रासनगतो ब्रह्मा सा त्रिमूर्तिस्तु मन्मथः ।
व्योमास्यः कालवक्त्राढ्यो वर्मविन्द्विन्दुसंयुतः ॥

एतेन कामबीजं कूर्चबीजञ्च।

शून्यं क्षतजमारूढं चण्डभैरव्यलंकृतम् ।
विन्द्विन्दुभूषितं मूर्ध्नि ज्योतिर्मन्त्रमुदीरितम् ॥

शून्यं हकारः, क्षतजं रेफः, चण्डभैरवी ऐकारः।

आदिदेवेन निर्दिष्टं मन्त्रकोषमनुत्तमम् ।
यदास्येभ्य: परं गोप्यं तन्मयात्र प्रकीर्तितम् ॥
यक्षडामरमन्त्रस्य मनुकोषविवेचनम् ।
क्रोधाधिपेन यत्प्रोक्तं भैरवाय महात्मने ॥ इति।

अतएव प्रणव-श्रीबीज-माया-काली-वाग्भव-अस्त्र-वह्निजाया-काम-कूर्च-ज्योतिर्मन्त्राणां यत्र मन्त्रे यस्य स्थितिस्तत्र तस्य आस्यत्वमुक्तम्। एतेषां द्वयं वा त्रयं वा बीजं यत्र तिष्ठति तत्र तु उक्तमन्त्रेण तत्पूर्वबीजस्य ग्रहणम्।

मन्त्र के श्रोत्रादि निरूपण—यक्षडामरतन्त्र में कहा गया है कि मनुष्यों के कल्याण के लिये भगवान् ने मन्त्रों के श्रोत्रादि का निरूपण किया है। वह तीनों लोकों में दुर्लभ है।

दृढ़ चित्त होकर हृदय में देवतामूर्ति की स्थापना करे। अन्य किसी ओर न देखकर अपनी नाक के अगले भाग पर दृष्टि को स्थिर रक्खे। इन्द्रियों के साथ मन को नियन्त्रित कर एकाग्र होकर देखे। अन्य कोई शब्द न सुने। इस प्रकार का लयभाव ही मन्त्र के कान हैं।

सूर्य, गणेश, दुर्गा और शिव-सम्बन्धी मन्त्रों के मन मुख, हृदय और नेत्र होते हैं। ॐ और बीजयुक्त मन्त्र का विचार करे। बीजस्वरूप रुद्रादि क्रम से ही मन्त्र के मुख आदि का ध्यान करे।

यमादि बीजों का भी तात्पर्य पूर्ववत् समझना चाहिये। जिस स्थान पर 'ह' हो, उसे मन्त्र का मुख जाने। विसर्ग के अभाव में 'अ' को ही नेत्र, हृदय और प्राण मानना चाहिये।

यक्षडामरतन्त्र में ज्योति:, कपर्दी आदि मन्त्र के चौबीस बीज बताये गये हैं। १. ज्योति, २. कपर्दी, ३. खद्योत, ४. ग्रासिनी, ५. सुरान्तक, ६. वैवस्वत, ७. केतु, ८. शिखी, ९. प्राण, १०. प्रहारिणी, ११. उल्कामुखी, १२. जालन्धरी, १३. चण्ड, १४. युग, १५. अन्तक, १६. किंकरी, १७. पिशिताक्षी, १८. सुकिन्नर, १९. मनोहरी, २०. ध्वांक्ष्य, २१. वैतानिक, २२ फेत्कारिणी, २३. शूल, २४. पयोधर।

उक्त बीजों से सभी मन्त्रों के हृदय, नेत्र और मुख आदि ज्ञात होते हैं। ये मन्त्रसमूह तन्त्रों में गुप्त हैं।

ज्योतिमन्त्र— शून्य 'ह' क्षतज 'र' चण्डभैरवी 'ऐ' विन्द्विन्दु ँ को मिलाने से 'ह्रैं' बनता है। यही ज्योतिमन्त्र है।

ॐ को मन्त्र का मुख और सोलह स्वरों को हृदय जानना चाहिये। प्रणव का अभाव हो तो प्रणवस्वरूप बीजविशेष को मुख मान ले। जैसे मन्त्र के आदि, मध्य और अन्त में ॐ हो तो उसी को मन्त्र का मुख समझे। प्रणव न हो तो श्रीं बीज, 'ह्रीं', 'क्रीं', 'ऐं',

'फट्', 'स्वाहा', 'क्ली', हूं और ज्योतिबीजसमूह में से जो-जो जिन-जिन मन्त्रों में हों, उन सबों को मुख समझे। इन बीजों से दो या तीन बीज यदि एकत्र हों तो उस स्थान में उक्त क्रमानुसार पूर्व बीज को मुख माने।

नेत्रनिर्णय:

तदुक्तं तत्रैव—

बीजे रक्तमुखाः सर्वे मूलार्णा हृदयं स्वराः ।
दक्षवामदृशौ चण्डीविकले मध्यमे न चेत् ॥
बीजाभावे मनोर्विद्युन्नेत्रमास्यं मनोहरी ।
मूलार्णं हृदयं दण्डी प्राणोऽपि स्वरशक्तयः ॥

बीजे रक्तमुखा इति सर्वे मूलार्णाः श्रीबीजादयः बीजे सति इति स्वयं मन्त्रे सति रक्तमुखा भवन्तीति। चण्डीविकले विसर्गविन्दुमध्यमे न चेदिति मन्त्रस्य मध्यस्थौ न चेत्तदा तस्य दक्षवामदृशावित्यर्थः। बीजाभावे इति मुखनेत्रात्मक-बीजानामभावे। मनोर्विद्युन्नेत्रमिति मन्त्रस्य नेत्रम्। विद्युदिति अकारः। आस्यं मनोहरीति वह्निजाया मूलार्णमित्युक्तेः, हृदयं दण्डीति अनुस्वारः। प्राणोऽपि स्वरशक्तय इति दण्डिनः स्वरशक्तीनाञ्च हृत्प्राणत्वमिति रहस्याः। अत्र चिन्तामणि-नृसिंहयोर्विचारो न स्यात्। तथा च—

चिन्तामणिनृसिंहाख्यौ श्रोत्रास्यनेत्रहृद्गते ।
यत्र बीजाक्षरं मन्त्रं तत्र सर्वश एव हि ॥
प्रधानपूर्वा परगा विकला यत्र दृश्यते ।
तत्र नेत्रं विजानीयान्मुखञ्च क्षतजोक्षितम् ॥

अत्र बीजाक्षरं मन्त्रमिति केवलश्री-बीजादिकं मन्त्रं यत्र भवति प्रधानपूर्वापरगेति चण्डी पूर्वा विकला स्वयं परगा यत्र दृश्यते च तत्रैव नेत्रं विजानीयात् इति मुखञ्च क्षतजोक्षितं रेफ इत्यर्थः। रेफहीने मनौ तु तन्मूलवर्णं मुखमित्याह तत्रैव—

रक्तवर्जमनौ मूलवर्णमास्यं प्रकीर्तितम् ।
विद्युन्नेत्रं विनिर्दिष्टं चण्डीविकलवर्ज्जिते ॥

अन्यच्च—

गर्जिनीधूम्रभैरव्यावभावे च दृशौ स्मृतौ ।

गर्जिनी तृतीयस्वरः धूम्रभैरवी चतुर्थस्वरः। एतावपि विन्दुविसर्गयोरभावे दृशावित्यर्थः।

यत्र यक्षेश्वरो मन्त्रे तत्रैवास्यं प्रधानतः ।
चण्डिकाया अभावेऽत्र विद्युन्नेत्रहृदासवः ॥

तत्रैवाह—

सुग्रीवः स्याद् द्वयं श्रोत्रं हं शून्यं विकला दृशः ।
विकलाया अभावे च स्यातां गौरी च पार्वती ॥

यक्षेश्वरो हकारः, चण्डिका विसर्गः, विद्युत् अकारः, सुग्रीवो रेफः शून्यं हकारः विकला द्विविन्दुः, गौरी तृतीयस्वरः, पार्वती चतुर्थस्वरः। सर्वाभावे तु अकार एव तत्तद्रूपत्वेन ज्ञेय इत्यर्थः। तथा च—

विद्युदेवाह हृन्नेत्रं हृद्वक्त्रप्राणवर्जिते ।

एतेन हृन्नेत्रप्राणाः विद्युदेवेति प्राणोऽपि स्वरशक्तय इति वचनात्। इति श्रोत्रादिज्ञानम्। एतज्ज्ञानस्य नित्यत्वमाह तत्रैव—

यज्ज्ञानेन विना नालं जपहोमप्रयोगनिदानम् । इति।

तथा—

श्रवणास्यहृदयनेत्रज्ञानान्मोक्षो मनोः सद्यः ।
सिद्धिः सर्वविधा स्यात् सा
शिव एव स साधकः ॥

श्रोत्रादीनां ज्ञानाभावे मन्त्रस्य ग्रहणमात्रात्।

दारिद्र्यञ्च विपत्तिर्नरकप्राप्तिर्यशोभ्रंशः ।
दीनोऽतिदुःखी पराजितः शत्रुपीडितः शोकी ।
कुर्यादेव हि तच्चित्तो मन्त्री श्रोत्रादिविज्ञानम् ॥

इत्यादि ज्ञेयम्।

नेत्रनिर्णय—मन्त्र में श्रीं बीजादि, सभी मूल मन्त्रों में 'र'कार को मुख कहते हैं। सोलह स्वरों को हृदय कहते हैं। विसर्ग और विन्दु यदि मध्य में न हों तो उन्हें दाँयाँ-बाँयाँ नेत्र समझे।

मुख और नेत्रस्वरूप बीजों का अभाव हो तो अकार को ही मन्त्र का नेत्र और मूल वर्ण को मुख जाने। अनुस्वार को हृदय और स्वरशक्ति को प्राण समझे।

चिन्तामणि और नृसिंहमन्त्र में श्रोत्र आदि का विचार नहीं है। जहाँ केवल श्रीबीजादि मन्त्र हों और ईकार पहले और अनुस्वार अन्त में हो, वहाँ रेफ को मुख और अन्यान्य वर्णों को नेत्र आदि समझे। रकारहीन मन्त्र में मूल वर्ण ही मुख होता है। बिन्दु और विसर्गरहित अकार नेत्र होता है।

विन्दु और विसर्ग के अभाव में इकार और ईकार को नेत्र माना जाता है। यदि मन्त्र में हकार हो तो उसे मुख माने और विना विसर्ग के अकार ही नेत्रादिस्वरूप है। वहीं बताया गया है कि रकार दो कान, हकार हृदय, विसर्ग दो आँख और विना विसर्ग के ईकार और इकार दो आँखें हैं। सभी से रहित होने पर अकार ही नेत्र-मुख आदि होत है।

नेत्रज्ञान नहीं होने से जप और हवन आदि कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। मन्त्र के कान आदि का ज्ञान होने से मोक्ष मिलता है। साधक शिव के समान हो जाता है।

श्रोत्रादि का ज्ञान न प्राप्त करे और केवल मन्त्र का ग्रहण कर ले तो दरिद्रता, विपत्ति, यश की हानि और नरक की प्राप्ति होती है। मनुष्य बहुत दरिद्र, पराजित, शत्रुपीड़ित और शोकाकुल होता है। अत: विशेष यत्न करके मन्त्र के श्रोत्र आदि का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

स्वरशक्तय:

तत्रैव—

अकारे भीषणा कीर्तिर्विद्युज्जिह्वेति कीर्तिता। अ
आकारे तामसी कालरात्र्युग्रा कालभैरवी। आ
इकारे गर्जिनी चण्डा ज्ञेया रुद्रभयङ्करी। इ
ईकारे शूलिनी ख्याता चण्डोग्रा धूम्रभैरवी। ई
उकारे कालवक्त्राख्या प्रचण्डा चण्डवल्लभा। उ
विदार्युकारगा ज्ञेया तालजङ्घा कपालिनी। ऊ
ऋकारे स्यान्महारौद्री ज्वालिनी योगिनीत्यपि। ऋ
ॠकारे कालिकादेवी पितृकाली भयङ्करी। ॠ
संहारिणी ऌकारे स्यान्मेघनादोग्रहासिनी। ऌ
रुद्रचण्डा कालजिह्वा ॡकारे च करालिनी। ॡ
ऊर्ध्वकेशी च चामुण्डा नादिन्येकारगा स्मृता। ए
ऐकारे कोटराक्षी च मानिन्युत्तमभैरवी। ऐ
ज्वालास्योकारगा ज्ञेया भीमाक्षी मुण्डमालिनी। ओ
औकारे डाकिनी सिंहनादिनी चण्डभैरवी। औ
अक्रूराख्या विकारी च अकारे रुद्रडाकिनी। अं
शेषे कपालिनी याम्या चण्डिका कुण्डलद्वयम्।
विसर्ग आदनुस्वार: कलाश्च स्वरशक्तय:॥ अ:

इत्येतासां या या यस्मिन्मन्त्रे योजितास्तास्ता एव तस्य हृदयत्वेन भाव्या इति रहस्यार्थ:। एवं क्रमेण मन्त्रस्य श्रोत्रादिकं विज्ञाय पुरस्क्रियां कुर्यात्। तथा च—

मन्त्रं नीत्वा गुरोः पार्श्वे गुरुभक्तिपरायणः ।
मन्त्रश्रोत्रास्यहृन्नेत्रप्राणान् विज्ञाय यत्नतः ।।
मन्त्रञ्च कीलकं ज्ञात्वा कुर्यान्मन्त्रपुरस्क्रियाम् ।
पुरश्चरणसम्पन्नो वीरसिद्धिं समाचरेत् ।।

इति मन्त्रस्य श्रोत्रादिपरिज्ञानम्।

स्वरशक्तियाँ—अकार की अधिष्ठात्री देवी हैं—भयंकरा, कीर्ति, विद्युज्जिह्वा। इसी प्रकार सोलह स्वरों की शक्तियों का स्मरण करना चाहिये।

अ की शक्ति—भीषणा, कीर्ति और विद्युज्जिह्वा हैं।
आ की शक्ति—तामसी, कालरात्र्युग्रा और कालभैरवी हैं।
इ की शक्ति—गर्जिनी, चण्डा और रुद्रभयंकरी हैं।
ई की शक्ति—शूलिनी, चण्डोग्रा और धूम्रभैरवी हैं।
उ की शक्ति—कालवक्त्रा, प्रचण्डा और चण्डवल्लभा हैं।
ऊ की शक्ति—विदारी, तालजंघा और कपालिनी हैं।
ऋ की शक्ति—महारौद्री, ज्वालिनी और योगिनी हैं।
ॠ की शक्ति—कालिकादेवी, पितृकाली और भयंकरी हैं।
ऌ की शक्ति—संहारिणी, मेघनादा और उग्रहासिनी हैं।
ॡ की शक्ति—रुद्रचण्डा, कालजिह्वा और करालिनी हैं।
ए की शक्ति—ऊर्ध्वकेशी, चामुण्डा और नन्दिनी हैं।
ऐ की शक्ति—कोटराक्षी, मानिकी और उत्तमभैरवी हैं।
ओ की शक्ति—ज्वाला, भीमाक्षी और मुण्डमालिनी हैं।
औ की शक्ति—डाकिनी, सिंहनादिनी और चण्डभैरवी हैं।
अं की शक्ति—अक्रूरा, विकारी और रुद्रडाकिनी हैं।
अ: की शक्ति—कपालिनी, याम्या और चण्डिका हैं।
विसर्ग, अनुस्वार और कला स्वरशक्तियाँ हैं।

अकार के बाद अनुस्वार और विसर्ग को लेकर सोलह कलाओं को ही सोलह स्वरशक्तियाँ माना गया है। इस शक्तिसमूह की जो-जो शक्ति जिस-जिस मन्त्र में रहती है, उसी-उसी शक्ति को उस-उस मन्त्र का हृदय जानना चाहिये।

इसी प्रकार मन्त्र के श्रोत्र आदि को जानकर पुरश्चरण करे। लिखा भी है कि गुरु से मन्त्र लेकर उसके श्रोत्र-मुख-हृदय-नेत्र और प्राण का ज्ञान प्राप्त करे।

मन्त्र को कीलकस्वरूप समझकर पुरश्चरण करे। पुरश्चरणसम्पन्न व्यक्ति ही वीरसिद्धि प्राप्त करता है।

मन्त्राङ्गसङ्केतः

ज्ञानतन्त्रे—

कैलासशिखरे रम्ये गन्धर्वगणसेविते ।
स्थाणोर्वक्षःस्थिता देवं पृच्छति स्म नगात्मजा ॥

पार्वत्युवाच—

गणेशनन्दिचन्द्रेश भूतनाथ मदीश्वर ।
अनेकतन्त्रमन्त्राणां प्राकाशोऽन्तरगाणि च ॥
भेदश्च कीलकश्चैव शापोद्धारणमेव च ।
त्वत्प्रसादान्मया नाथ ज्ञातं तत्त्वं न संशयः ॥
नानातन्त्रेषु देवेश विद्या वर्णमयी स्मृता ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि मन्त्राङ्गं नामनिर्णयम् ।
मन्त्रसङ्केतकं नाम बहुधा मयि सूचितम् ॥
अस्मिंस्तु निर्जने देशे यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ।
तद्वदस्व महादेव नात्र कार्या विचारणा ॥
नो चेत् सत्यं वदाम्यद्य पुरस्कृत्य तवाग्रतः ।
प्राणत्यागं करिष्यामि सत्यं सत्यं न संशयः ॥

ईश्वर उवाच—

साधु पृष्टं त्वया भद्रे यद्यन्मे मनसि स्थितम् ।
देवि योषिच्चपलत्वात्पुरा नोक्तं त्वयि प्रिये ॥
इदानीं स्थिरतां ज्ञात्वा कथयामि तवानघे ।
न प्रकाश्यं महादेवि कदाचिदपि पार्वती ॥
प्रकाशिते महातत्त्वे नश्यन्ति सिद्धयस्तव ।
पुनरुक्तं महादेवि न वक्तव्यं सुनिश्चितम् ॥
विना जापेन होमेन पूजया वा दयान्विते ।
येन विज्ञानमात्रेण मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥
मन्त्रसङ्केतमज्ञात्वा यो जपेन्मन्त्रराजकम् ।
शतलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्न जायते ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ज्ञातव्याङ्गविभावना ।
तवातिगौरवात्साध्वि जगतां हितकाम्यया ॥
वक्ष्यामि शृणु देवेशि सारात् सारतरं महत् ।
एकाक्षरे महामन्त्रे सम्पूर्णं देहरूपकम् ॥

विभावयेन्महेशानि नान्यच्च परिचिन्तयेत् ।
प्रथमं बाहुमूलान्तं कट्यन्तं द्वितीयं भवेत् ॥
तृतीयं पादमूलान्तं क्रमेण परिचिन्तयेत् ।
चतुरर्णकमन्त्रेषु गण्डान्तं प्रथमं भवेत् ॥
बाह्वन्तं द्वितीयञ्चैव नाभ्यन्तं तृतीयं भवेत् ।
चतुर्थञ्च ततो देवि पदान्तं परिचिन्तयेत् ॥
पञ्चाक्षरे तु मन्त्रे तु पञ्चधा परिकल्पयेत् ।
ग्रीवान्तं प्रथमं देवि बाह्वन्तं द्वितीयं भवेत् ॥
तृतीयं कुक्षिपर्यन्तमूर्वन्तं चतुर्थं भवेत् ।
पादान्तं पञ्चमं देवि भवत्येव न संशयः ॥
षडक्षरे तु मन्त्रे तु मुखान्तं प्रथमं भवेत् ।
द्वितीयं गलपर्यन्तं बाह्वन्तं तृतीयं भवेत् ॥
चतुर्थं हृदयान्तञ्च ऊर्वन्तं पञ्चमं भवेत् ।
पदञ्च षष्ठवर्णञ्च क्रमेण परिचिन्तयेत् ॥
सप्ताक्षरे तु मन्त्रे तु मुखान्तं प्रथमं भवेत् ।
द्वितीयं गलपर्यन्तं बाह्वन्तञ्च तृतीयकम् ॥
चतुर्थं पृष्ठपर्यन्तं कुक्ष्यन्तं पञ्चमं भवेत् ।
षडर्णमूरुपर्यन्तं पादान्तं सप्तमं भवेत् ॥
अष्टाक्षरे महामन्त्रे मुखान्तं प्रथमं भवेत् ।
चिबुकान्तं द्वितीयञ्च गलान्तं तृतीयं भवेत् ॥
चतुर्थं बाहुपर्यन्तं पृष्ठान्तं पञ्चमं भवेत् ।
षडर्णमुदरान्तञ्च जायान्तं सप्तमं भवेत् ॥
पादान्तमष्टमञ्चैव भावाङ्गेऽपि न संशयः ।
नवाक्षरे तु मन्त्रे तु नासान्तं प्रथमं भवेत् ॥
मुखान्तञ्च द्वितीयं स्याद् ग्रीवान्तं तृतीयं भवेत् ।
चतुर्थं बाहुपर्यन्तं कुक्ष्यन्तं पञ्चमं भवेत् ॥
षष्ठञ्च मस्तकं ज्ञेयं स्तनान्तं सप्तमं भवेत् ।
ऊर्वन्तमष्टमञ्चैव पादान्तं नवमं भवेत् ॥
दशाक्षरे तु मन्त्रे तु शिरोऽन्तं प्रथमं भवेत् ।
चिबुकान्तं द्वितीयं स्यात्तृतीयं कर्णयुग्मकम् ॥
चतुर्थञ्च भवेद् ग्रीवा पञ्चमं बाहुयुग्मकम् ।

षष्ठं पृष्ठञ्च जानीयात्सप्तमं स्तनमण्डलम् ।।
उदरान्तमष्टमञ्च ऊर्वन्तं नवमं भवेत् ।
पादान्तं नवमं ज्ञेयमिति मन्त्राङ्गभावना ।।

एवं क्रमेण एकादशाक्षरादीनां मन्त्राणां बाह्यङ्गविभावनां कृत्वा मन्त्रजपादिकं कुर्यात्। ग्रन्थगौरवभयादन्यत्रोक्तमिति देवताया वाह्याङ्गसङ्केतः।

परिशिष्टं सम्पूर्णम्

◆

मन्त्राङ्ग-संकेत—ज्ञानतन्त्र में पार्वती ने महादेव से पूछा कि हे गणेश, लक्ष्मी और चन्द्र के प्रभो! आपने अनेक तन्त्र-मन्त्रों को प्रकाशित किया है। अब मैं मन्त्रांग नामक संकेत को सुनना चाहती हूँ। पहले आप मन्त्रसंकेत की चर्चा अनेक बार कर चुके हैं। अब उसे सुनाइये।

महादेव ने कहा कि महादेवि! सुनो। मन्त्रसंकेत को जानकर साधक जप-हवन-पूजन आदि के विना ही मन्त्रसिद्धि प्राप्त कर सकता है।

एकाक्षर मन्त्र में प्रथम वर्ण को ही समस्त देहरूप समझे। त्र्यक्षर मन्त्र में प्रथम वर्ण को बाहुमूल तक, द्वितीय वर्ण को कटिदेश तक और तृतीय वर्ण को पादमूलपर्यन्त ध्यान करे।

चतुरक्षर मन्त्र में प्रथम वर्ण कपोल तक, द्वितीय वर्ण भुजा के अन्त तक, तृतीय वर्ण नाभि तक और चतुर्थ वर्ण बाँयें पैरों के अन्त तक समझे।

पञ्चाक्षर मन्त्र का पाँच भागों में ध्यान करे। पहले वर्ण का ग्रीवा के अन्त तक, दूसरे का बाहु के अन्त तक, तीसरे को कुक्षि तक, चौथे को ऊरु तक और पाँचवें को पैरों के अन्त तक माने।

षडक्षर मन्त्र में पहला वर्ण मुखान्त तक, दूसरा गले तक, तीसरा करान्त तक, चौथा हृदयान्त तक, पाँचवाँ ऊरु के अन्त तक और छठा पैरों के अन्त तक होता है।

सप्ताक्षर मन्त्र में पहला वर्ण मुखान्त तक, दूसरा गले तक, तीसरा हस्तान्त तक, चौथा पीठ तक, पाँचवाँ कुक्षि तक, छठा ऊरु तक और सातवाँ वर्ण पैरों तक होता है।

अष्टाक्षर में पहला वर्ण मुखान्त तक, दूसरा चिबुक तक, तीसरा गले के अन्त तक, चौथा हस्तान्त तक, पाँचवाँ पीठान्त तक, छठा उदरान्त तक, सातवाँ जान्वन्त तक और आठवाँ वर्ण पादान्त तक होता है।

नवाक्षर मन्त्र में पहला वर्ण नासिका तक, दूसरा वर्ण मुखान्त तक, तीसरा वर्ण ग्रीवा तक, चौथा वर्ण हस्तान्त तक, पाँचवाँ कुक्षि तक, छठा मस्तक तक, सातवाँ स्तनों तक, आठवाँ ऊरु तक और नवाँ वर्ण पैरों तक होता है।

दशाक्षर मन्त्र में पहला वर्ण शिर के अन्त तक, दूसरा चिबुक तक, तीसरा दोनों कानों तक, चौथा गर्दन तक, पाँचवाँ हस्तान्त तक, छठा पीठ तक, सातवाँ स्तनमण्डल तक, आठवाँ उदर तक, नवाँ ऊरुओं तक और दसवाँ दोनों पैरों के अन्त तक होता है। इसी प्रकार का ध्यान करना चाहिये।

इसी क्रम से एकादशाक्षर आदि मन्त्रों के बाह्य अंगों की भावना करके मन्त्रजप करना चाहिये।

परिशिष्टं सम्पूर्णम्

⁂

समाप्तोऽयं बृहत्तन्त्रसारग्रन्थः